* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

पद-रत्नाकर

हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

पद-रत्नाकर

वन्दना एवं प्रार्थना

[१]

(दोहा)

दोउ चकोर, दोउ चंद्रमा, दोउ अलि, पंकज दोउ।
दोउ चातक, दोउ मेघ प्रिय, दोउ मछरी, जल दोउ॥
आस्त्रय-आलंबन दोउ, बिषयालंबन दोउ।
प्रेमी-प्रेमास्पद दोउ, तत्सुख-सुखिया दोउ॥
लीला-आस्वादन-निरत, महाभाव-रसराज।
बितरत रस दोउ दुहुन कौं, रचि बिचित्र सुठि साज॥
सहित बिरोधी धर्म-गुन जुगपत नित्य अनंत।
बचनातीत अचिन्त्य अति, सुषमामय श्रीमंत॥
श्रीराधा-माधव-चरन बंदौं बारंबार।
एक तत्त्व दो तनु धरें, नित-रस-पाराबार॥

[२]

(दोहा)

मन्मथ-मन्मथ मन मथत जाकें सुषमित अंग।
मुख-पंकज-मकरंद नित पियत स्याम-दृग-भृंग॥
जाके अंग-सुगंध कौं नित नासा ललचात।
तन चाहत नित परसिबौ जाकौ मधुमय गात॥
मधु-रसमयि बचनावली सुनिबे कौं नित कान।
हरि के लालाइत रहत, तजि गुरुता कौ भान॥

जाके मधुर प्रसाद कौ मधु रस चाखन हेतु।
हरि-रसना अकुलात अति तजि दुस्त्यज श्रुति-सेतु॥
जाकी नख-दुति लखि लजत कोटि-कोटि रबि चंद।
बंदौं तेहि राधा-चरन-पंकज सुचि सुखकंद॥

[३]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

जिनका शुचि सौन्दर्य-सुधा-रसनिधि नित नव बढ़ता रहता।
जिनका मधु माधुर्य माधुरी नित नव रस भरता रहता॥
नित नवीन निरुपम भावोंका जिनमें सदा उदय होता।
जिनमें अतुल तरंगें नित नव उठतीं, नहिं विराम होता॥
जिनमें अवगाहन कर कभी न होते तृप्त स्वयं भगवान।
रसमय स्वयं सदा जिनका रस करते लोलुपकी ज्यों पान॥
जिनको निज स्वरूप-सद्‌गुण-आनँदका कभी न होता भान।
शुचि सुन्दरता, मधुर माधुरीका होता न तनिक अभिमान॥
जो अपनेको सदा समझतीं सभी भाँतिसे दीन-मलीन।
देती रहतीं, नित्य मानतीं पर लेनेवाली अति हीन॥
ऐसी जो प्रियतमा श्यामकी, त्याग-मूर्ति, गुणवती उदार।
उन श्रीराधापद-कमलोंमें नमस्कार है बारंबार॥

[४]

(राग केदार—ताल कहरवा)

दुर्लभ परम त्यागमय पावन प्रेम-मूर्ति आदर्श महान।
महाभावरूपा श्रीराधा, जिनके प्रेमवश्य भगवान॥
नहीं तनिक भी स्व-सुख-वासना, नहीं मोह-माया-मद-मान।
प्रियतम-पद-पूर्णार्पित जीवन, जगके सारे द्वन्द्व समान॥
मुक्ति-बन्ध वैराग्य-भोगके ग्रहण-त्यागका कभी न ध्यान।
प्रियतम-सुख ही सब कार्योंमें करता नित्य प्रेरणा-दान॥
प्रेममयी शुचितम श्रीराधाके पद-रज-कण रसकी खान।
वे स्वीकार करें इस जन नगण्यके नमस्कार निर्मान॥

[५]

(दोहा)

श्रीराधारानी-चरन बंदौं बारंबार।
जिन के कृपा-कटाच्छ तें रीझैं नंदकुमार॥
जिन के पद-रज-परस तें स्याम होयँ बेभान।
बंदौं तिन पद-रज-कननि मधुर रसनि के खान॥
जिन के दरसन हेतु नित बिकल रहत घनस्याम।
तिन चरननि में बसै मन मेरौ आठौं जाम॥
जिन पद-पंकज पर मधुप मोहन-दृग मँड़रात।
तिन की नित झाँकी करन मेरौ मन ललचात॥
'रा' अच्छर कौं सुनत ही मोहन होत बिभोर।
बसै निरंतर नाम सो 'राधा' नित मन मोर॥

[६]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

बंदौं श्रीराधा-चरन पावन परम उदार।
भय-बिषाद-अग्यान हर, प्रेम-भक्ति-दातार॥

[७]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

श्रीराधारानी-चरन बिनवौं बारंबार।
बिषय-बासना नास करि, करौ प्रेम-संचार॥
तुम्हरी अनुकंपा अमित, अबिरत अकल अपार।
मोपर सदा अहैतुकी बरसत रहत उदार॥
अनुभव करवावौ तुरत, जाते मिटैं बिकार।
रीझैं परमानंदघन मोपै नंदकुमार॥
पर्‍यौ रहौं नित चरन-तल, अर्‍यौ प्रेम-दरबार।
प्रेम मिलै, मोय दुहुन के पद-कमलनि सुखसार॥

****

[८]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

बंदौं राधा-पद-कमल अमल सकल सुख-धाम ।
जिन के परसन हित रहत लालाइत नित स्याम ।।
जयति स्याम-स्वामिनि परम निरमल रस की खान ।
जिन पद बलि-बलि जात नित माधव प्रेम-निधान ।।

[९]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

रसिक स्याम की जो सदा रसमय जीवनमूरि ।
ता पद-पंकज की सतत बंदौं पावन धूरि ।।
जयति निकुंजबिहारिनी, हरनि स्याम-संताप ।
जिन की तन-छाया तुरत हरत मदन-मन-दाप ।।

[१०]

(राग तोड़ी—तीन ताल)

बंदौं राधा-पद-रज पावन ।
स्याम-सुसेवित, परम पुन्यमय, त्रिबिध ताप बिनसावन ।।
अनुपम परम, अपरिमित महिमा, सुर-मुनि-मन तरसावन ।
सर्बाकर्षक रसिक कृष्णघन दुर्लभ सहज मिलावन ।।

[११]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

जिन लक्ष्मीकी रूप-माधुरी, जिनका मधुर शील-सौजन्य ।
मधुर स्वभावजनित जिनकी शुचि लीला, प्रीति-माधुरी धन्य ।।
जो वैकुण्ठाधीश्वर-वक्ष-विहारिणि नित प्रेमार्णव-मग्न ।
जिनकी सेवा-अर्चामें नित रहते सुर-मुनिगण संलग्न ।।
राधाकी समता न कर सके उन लक्ष्मीजीके गुण-रूप ।
वे राधा निज चरण-कमल-रज परम, मुझे दें दान अनूप ।।

[१२]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

जिन श्रीराधा के करैं नित श्रीहरि गुन गान।
जिन के रस-लोभी रहैं नित रसमय रसखान॥
प्रेम भरे हिय सौं करैं स्त्रवन-मनन, नित ध्यान।
सुनत नाम 'राधा' तुरत भूलै तन कौ भान॥
करैं नित्य दृग-अलि मधुर मुख-पंकज-मधु-पान।
प्रमुदित, पुलकित रहैं लखि अधर मधुर मुसुकान॥
जो आत्मा हरि की परम, जो नित जीवन-प्रान।
बिसरि अपुनपौ रहैं नित जिन के बस भगवान॥
सहज दयामयि राधिका, सो करि कृपा महान।
करत रहैं मो अधम कौं सदा चरन-रज दान॥

[१३]

(राग मालकोस—तीन ताल)

स्वामिनी हे बृषभानु-दुलारि !
कृष्णप्रिया, कृष्णगतप्राणा, कृष्णा, कीर्तिकुमारि॥
नित्य निकुंजेस्वरि, रासेस्वरि, रसमयि, रस-आधार।
परम रसिक रसराजाकर्षिनि, उज्ज्वल-रस की धार॥
हरिप्रिया, अहलादिनि, हरि-लीला-जीवन की मूल।
मोहि बनाय राखु निसि-दिन निज पावन पद की धूल॥

[१४]

(दोहा)

श्रीराधा ! अब देहु मोहि तव पद-रज-अनुराग।
जातें इह-पर-भोग में होय उदय बैराग॥
मोच्छहु की माया मिटै, कटैं सकल भव-रोग।
तुम दोउन के चरन कौ बन्यौ रहै संजोग॥

****

जो कछु तुम चाहौ, करौ राधा-माधव ! दोउ।
तुम्हरे मन की सहज रुचि चाह जु मेरी होउ॥
सेवा कौ कछु काम जो हो मेरे अनुहार।
छोटौ-मोटौ बकसि मोहि करौ कृपा-बिस्तार॥
पर्‌यौ रहौं नित चरन-तल, परसौं नित पद-धूल।
पगदासी पौंछत रहौं, अग-जग सगरौ भूल॥

[१५]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

करौ कृपा श्रीराधिका, बिनवौं बारंबार।
बनी रहै स्मृति मधुर सुचि, मंगलमय सुखसार॥
श्रद्धा नित बढ़ती रहै, बढ़ै नित्य बिस्वास।
अर्पण हौं अवसेष अब जीवन के सब स्वास॥

[१६]

(राग खमाच—तीन ताल)

दयामयि स्वामिनि परम उदार !
पद-किंकरि की किंकरि-किंकरि करौ मोय स्वीकार॥
दूर करौ निकुंज-मग-कंटक-कुस सब सदा बुहार।
स्वच्छ करौं तव पगतरि पावन, धूर-धार सब झार॥
देखौं दूरहि तैं तब प्रियतम संग सुललित बिहार।
नित्य निहारत रहौं, मिलै कछु सेवा की सनकार॥
पद-सेवन कौ बढ़ै चाव नित काल अनंत अपार।
अर्पित रहै सदा सेवा में अंग-अंग अनिवार॥
कबहुँ न जगै दूसरी तृस्ना, कबहुँ न अन्य बिचार।
रहै न कितहूँ कछु 'मेरौपन', 'अहंकार' होय छार॥
होयँ तुम्हारे मन के ही, बस, मेरे सब ब्यौहार।
बनौ रहै नित तुम्हरौ ही सुख मेरौ प्रानाधार॥

[१७]

(राग आसावरी—तीन ताल)

राधाजू ! मोपै आजु ढरौ।
निज, निज प्रीतम की पद-रज-रति मोय प्रदान करौ ॥
बिषम बिषय-रस की सब आसा-ममता तुरत हरौ।
भुक्ति-मुक्ति की सकल कामना सत्वर नास करौ ॥
निज चाकर-चाकर-चाकर की सेवा-दान करौ।
राखौ सदा निकुंज निभृत में झाड़ूदार बरौ ॥

(१८)

(राग पीलू—ताल कहरवा)

निन्द्य-नीच, पामर परम, इन्द्रिय-सुखके दास।
करते निसि-दिन नरकमय बिषय-समुद्र निवास ॥
नरक-कीट ज्यों नरकमें मूढ़ मानता मोद।
भोग-नरकमें पड़े हम त्यों कर रहे विनोद ॥
नहीं दिव्य रस कल्पना, नहीं त्याग का भाव।
कुरस, विरस, नित अरसका दुखमय मनमें चाव ॥
हे राधे रासेश्वरी ! रसकी पूर्ण निधान।
हे महान महिमामयी ! अमित श्याम-सुख-खान ॥
पाप-ताप हारिणि, हरणि सत्वर सभी अनर्थ।
परम दिव्य रसदायिनि पञ्चम शुचि पुरुषार्थ ॥
यद्यपि हैं सब भाँति हम अति अयोग्य, अघबुद्धि।
सहज कृपामयि ! कीजिये पामर जनकी शुद्धि ॥
अति उदार ! अब दीजिये हमको यह वरदान।
मिले मञ्जरीका हमें दासी-दासी-स्थान ॥

****

[१९]

(राग वसन्त—ताल कहरवा)

हे राधे ! हे श्याम-प्रियतमे ! हम हैं अतिशय पामर, दीन ।
भोग-रागमय, काम-कलुषमय मन प्रपञ्च-रत, नित्य मलीन ॥
शुचितम, दिव्य तुम्हारा दुर्लभ यह चिन्मय रसमय दरबार ।
ऋषि-मुनि-ज्ञानी-योगीका भी नहीं यहाँ प्रवेश-अधिकार ॥
फिर हम जैसे पामर प्राणी कैसे इसमें करें प्रवेश ।
मनके कुटिल, बनाये सुन्दर ऊपरसे प्रेमीका वेश ॥
पर राधे ! यह सुनो हमारी दैन्यभरी अति करुण पुकार ।
पड़े एक कोनेमें जो हम देख सकें रसमय दरबार ॥
अथवा जूती साफ करें, झाड़ू दें—सौंपो यह शुचि काम ।
रजकणके लगते ही होंगे नाश हमारे पाप तमाम ॥
होगा दम्भ दूर, फिर पाकर कृपा तुम्हारीका कण-लेश ।
जिससे हम भी हो जायेंगे रहने लायक तव पद-देश ॥
जैसे-तैसे हैं, पर स्वामिनि ! हैं हम सदा तुम्हारे दास ।
तुम्हीं दया कर दोष हरो, फिर दे दो निज पद-तलमें वास ॥
सहज दयामयि ! दीनवत्सला ! ऐसा करो स्नेहका दान ।
जीवन-मधुप धन्य हो जिससे कर पद-पङ्कज-मधुका पान ॥

[२०]

(दोहा)

(राग पीलू—ताल कहरवा)

स्याम-स्वामिनी राधिके ! करौ कृपा कौ दान ।
सुनत रहैं मुरली मधुर, मधुमय बानी कान ॥
पद-पंकज-मकरंद नित पियत रहैं दृग-भृंग ।
करत रहैं सेवा परम सतत सकल सुचि अंग ॥
रसना नित पाती रहै दुर्लभ भुक्त प्रसाद ।
बानी नित लेती रहै नाम-गुननि रस-स्वाद ॥

लगौ रहै मन अनवरत तुम में आठौं जाम।
अन्य स्मृति सब लोप हों सुमिरत छबि अभिराम॥
बढ़त रहै नित पलहिं-पल दिब्य तुम्हारौ प्रेम।
सम होवैं सब छंद पुनि, बिसरैं जोगच्छेम॥
भुक्ति-मुक्ति की सुधि मिटै, उछलैं प्रेम-तरंग।
राधा-माधव सरस सुधि करै तुरत भव-भंग॥

[२१]

(राग भीमपलासी—तीन ताल)

श्रीराधा! कृष्णप्रिया! सकल सुमङ्गल मूल।
सतत नित्य देती रहो पावन निज-पद-धूल॥
मिटें जगतके द्वन्द्व सब, हों विनष्ट सब शूल।
इह-पर जीवन रहे नित तव सेवा अनुकूल॥
देवि! तुम्हारी कृपासे करें कृपा श्रीश्याम।
दोनोंके पदकमलमें उपजे भक्ति ललाम॥
महाभाव, रसराज तुम दोनों करुणाधाम।
निज जन कर, देते रहो निर्मल रस अविराम॥

[२२]

(राग ईमन—तीन ताल)

श्रीराधामाधव-युगल महाभाव-रसराज।
करुना करियो दीन पै रहियो हृदयँ बिराज॥
दीजौ निज पद कमल की प्रीति पवित्र अनन्य।
प्रभु-सुख-हित-सेवा बनै शुचि जीवन हो धन्य॥

****

[२३]

(राग बिलास टोड़ी—तीन ताल)

कृपा जो राधाजू की चहियै।
तो राधाबर की सेवा में तन मन सदा उमहियै॥
माधव की सुख-मूल राधिका, तिनके अनुगत रहियै।
तिन के सुख-संपादन कौ पथ सूधौ अबिरत गहियै॥
राधा पद-सरोज-सेवा में चित निज नित अरुझइयै।
या बिधि स्याम-सुखद राधा-सेवा सौं स्याम रिझइयै॥
रीझत स्याम, राधिका रानी की अनुकंपा पइयै।
निभृत निकुंज जुगलसेवा कौ सरस सुअवसर लहियै॥

[२४]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

राधा-नयन-कटाक्ष-रूप चञ्चल अञ्चलसे नित्य व्यजित—
रहते, तो भी बहती जिनके तनसे स्वेदधार अविरत॥
राधा-अङ्ग-कान्ति अति सुन्दर नित्य निकेतन करते वास।
तो भी रहते क्षुब्ध नित्य, मन करता नव-विलास-अभिलाष॥
राधा मृदु मुसकान-रूप नित मधुर सुधा-रस करते पान।
तो भी रहते नित अतृप्त, जो रसमय नित्य स्वयं भगवान॥
राधा-रूप-सुधोदधिमें जो करते नित नव ललित विहार।
तो भी कभी नहीं मन भरता, पल-पल बढ़ती ललक अपार॥
ऐसे जो राधागत-जीवन, राधामय, राधा-आसक्त।
उनके चरण-कमलमें रत नित रहे हुआ मम मन अनुरक्त॥

[२५]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

जय वसुदेव-देवकीनन्दन, जयति यशोदा-नँदनन्दन।
जयति असुर-दल-कंदन, जय-जय प्रेमीजन मानस-चन्दन॥
बाँकी भौंहें, तिरछी चितवन, नलिन-विलोचन रसवर्षी।
बदन मनोहर मदन-दर्प-हर परमहंस-मुनि-मन-कर्षी॥

अरुण अधर धर मुरलि मधुर मुसकान मञ्जु मृदु सुधिहारी।
भाल तिलक, घुँघराली अलकैं, अलिकुल-मद-मर्दनकारी॥
गुंजाहार, सुशोभित कौस्तुभ सुरभित सुमनोंकी माला।
रूप-सुधा-मद पी-पी सब सम्मोहित ब्रजजन-ब्रजबाला॥
जय वसुदेव-देवकीनंदन, जयति यशोदा-नँदनन्दन।
जयति असुर-दल कंदन, जय जय प्रेमीजन मानस-चन्दन॥

[२६]

(राग कालिंगड़ा—ताल कहरवा)

जयति राधिकाजीवन, राधा-बन्धु, राधिकामय चिद्घन।
जय राधाधन, राधिकाङ्ग, जय राधाप्राण, राधिका-मन॥
जय राधा-सहचर, जय राधारमण, राधिका-चित्त-सुचौर।
जय राधिकासक्त-मानस, जय राधा-मानस-मोहन मौर॥
जय राधा-मानस-पूरक, जय राधिकेश, राधा-आराध्य।
जय राधाऽराधनतत्पर, जय राधा-साधन, राधा-साध्य॥
जय सब गोपी-गोप-गोपबालक-गोधनके प्राणाधार।
जय गोविन्द गोपिकानन्दन पूर्ण सच्चिदानन्द उदार॥

[२७]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

हे परिपूर्ण ब्रह्म! हे परमानन्द! सनातन! सर्वाधार!
हे पुरुषोत्तम! परमेश्वर! हे अच्युत! उपमारहित उदार॥
विश्वनाथ! हे विश्वम्भर विभु! हे अज अविनाशी भगवान!
हे परमात्मा! सर्वात्मा हे! पावन स्वयं ज्ञान-विज्ञान॥
हे वसुदेव-देवकी-सुत! हे कृष्ण! यशोदा-नँदके लाल!
हे यदुपति! व्रजपति! हे गोपति! गोवर्धनधर! हे गोपाल!

मेरे एकमात्र आश्रय तुम, तुम ही एकमात्र सुखसार।
तुम्हीं एक सर्वस्व, तुम्हीं, बस, हो मेरे जीवन साकार॥
कितने बड़े, उच्च तुम कितने, कितने दुर्लभ, दिव्य, महान।
गले लगाया मुझ नगण्यको, सब भगवत्ता भूल सुजान॥

[२८]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

सत्-चित्-घन परिपूर्णतम, परम प्रेम-आनन्द।
विश्वेश्वर वसुदेवसुत, नँदनंदन गोविन्द॥
जयति यशोदातनय हरि, देवकि-सुवन ललाम।
राधा-उर-सरसिज-तपन, मधुरत अलि अभिराम॥
वाणी हो गुण-गान-रत, कर्ण श्रवण-गुण-लीन।
मन सुरूप-चिन्तन-निरत, तन सेवा-आधीन॥
पूर्ण समर्पित रहें नित, तन-मन-बुद्धि अनन्य।
सहज सफलता प्राप्तकर, हो मम जीवन धन्य॥

[२९]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

माधव! नित मोहि दीजियै निज चरननि कौ ध्यान।
सकल ताप हर मधुर सुचि, आत्यंतिक सुख-खान॥
सब तजि सुचि रुचि सौं सदा भजन करौं बसु जाम।
रहौं निरंतर मौन गहि, जपौं मधुरतम नाम॥
मन-इंद्रिय अनुभव करैं नित्य तुम्हारौ स्पर्श।
मिटैं जगत के मान-मद-ममता-हर्ष-अमर्ष॥
रति-मति-गति सब एक तुम, बनैं अनंत-अनन्य।
तुम में भावभरे हृदय जुरि हो जीवन धन्य॥

[३०]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

माधव ! मुझको भी तुम अपनी सखी बना लो, रख लो संग।
खूब रिझाऊँगी मैं तुमको, रचकर नये-नये नित ढंग॥
नाचूँगी, गाऊँगी, मैं फिर खूब मचाऊँगी हुड़दंग।
खूब हँसाऊँगी हँस-हँस मैं, दिखा-दिखा नित नूतन रंग॥
धातु-चित्र पुष्पों-पत्रोंसे खूब सजाऊँगी सब अङ्ग—
मधुर तुम्हारे, देख-देख रह जायेंगी ये सारी दंग
सेवा सदा करूँगी मनकी, भर मनमें उत्साह—उमंग।
आनँदके मधु झटकेसे सब होंगी कष्ट-कल्पना भङ्ग॥
तुम्हें पिलाऊँगी मीठा रस, स्वयं रहूँगी सदा असङ्ग।
तुमसे किसी वस्तु लेनेका आयेगा न कदापि प्रसङ्ग॥
प्यार तुम्हारा भरे हृदयमें, उठती रहे अनन्त तरंग।
इसके सिवा माँगकर कुछ भी, कभी करूँगी तुम्हें न तंग॥

[३१]

(राग आसावरी—तीन ताल)

रसस्वरूप श्रीकृष्ण परात्पर, महाभावरूपा राधा।
प्रेम विशुद्ध दान दो, कर करुणा अति, हर सारी बाधा॥
सच्चा त्याग उदय हो, जीवन श्रीचरणोंमें अर्पित हो।
भोग जगत्‌की मिटे वासना, सब कुछ सहज समर्पित हो॥
लग जाये श्रीयुगलरूपमें मेरी अब ममता सारी।
हो अनन्य आसक्ति, प्रीति शुचि, मिटे मोह-भ्रम-तम भारी॥

[३२]

(दोहा)

सोभित सिर सिखिपिच्छ, जो उज्ज्वल रस आधार।
बंदौं तिन के पद-कमल जुग सुचि भुवनाधार॥
महाभावरूपा परम बिमल प्रेम की खान।
बंदौं राधा-पद-कमल प्रियतम-सेव्य महान॥

****

[३३]

(राग-पीलू—ताल कहरवा)

राधा-माधव-पद-कमल बंदौं बारंबार।
मिल्यौ अहैतुक कृपा तें यह अवसर सुभ-सार॥
दीन-हीन अति, मलिन-मति, बिषयनि कौ नित दास।
करौं बिनय केहि मुख, अधम मैं, भर मन उल्लास॥
दीनबंधु तुम सहज दोउ, कारन-रहित कृपाल।
आरतिहर अपुनौ बिरुद लखि मोय करौ निहाल॥
हरौ सकल बाधा कठिन, करौ आपुने जोग।
पद-रज-सेवा कौ मिलै, मोय सुखद संजोग॥
प्रेम-भिखारी पर्‌यौ मैं आय तिहारे द्वार।
करौ दान निज-प्रेम सुचि, बरद जुगल-सरकार॥
श्रीराधामाधव-जुगल हरन सकल दुखभार।
सब मिलि बोलौ प्रेम तें तिन की जै-जैकार॥

[३४]

(राग परज—ताल कहरवा)

महाभाव-रसराज स्वयं श्रीराधा-माधव युगल-स्वरूप।
परम उपास्यदेव शुचि प्रेमीजनके नित्य नवीन अनूप॥
मदन अनन्त मनोहर, ज्ञानी-योगी-जन-मन-मोहन रूप।
सदा बसें मेरे मन-मन्दिर लोक-महेश्वर, सुरपति भूप॥

[३५]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

राधा-माधव-जुगल के प्रनमौं पद-जलजात।
बसे रहैं मो मन सदा, रहै हरष उमगात॥
हरौ कुमति सबही तुरत, करौ सुमति कौ दान।
जातें नित लागौ रहै तुव पद-कमलनि ध्यान॥

राधा-माधव ! करौ मोहि निज किंकर स्वीकार।
सब तजि नित सेवा करौं, जानि सार कौ सार॥
राधा-माधव ! जानि मोहि निज जन अति मति-हीन।
सहज कृपा तैं करौ नित निज सेवा में लीन॥
राधा-माधव ! भरौ तुम मेरे जीवन माँझ।
या सुख तैं फूल्यौ फिरौं, भूलि भोर अरु साँझ॥
तन-मन-मति सब में सदा लखौं तिहारौ रूप।
मगन भयौ सेवौं सदा पद-रज परम अनूप॥
राधा-माधव-चरन रति-रस के पारावार।
बूड्यौ, नहिं निकसौं कबहुँ पुनि बाहिर संसार॥

[३६]

(राग आसावरी—तीन ताल)

हमारे जीवन लाड़िलि-लाल।
रास-बिहारिनि रास-बिहारी, लतिका-हेम तमाल॥
महाभाव-रसमयी राधिका, स्याम रसिक रसराज।
अनुपम अतुल रूप-गुन-माधुरि अँग-अँग रही बिराज॥
दोउ दोउन हित चातक, घन प्रिय, दोउ मधुकर, जलजात।
प्रेमी प्रेमास्पद दोउ, परसत दोउ दोउन बर गात॥
मेरे परम सेव्य सुचि सरबस दोउ श्रीस्यामा-स्याम।
सेवत रहूँ सदा दोउन के चरन-कमल अभिराम॥

[३७]

(राग सारंग—ताल रूपक)

बंदौं मधुर लाड़िलि-लाल।
रूप-रसके दिब्य अनुपम उदधि अमित बिसाल॥
स्याम घन तन, मुरलि कर बर, अधर मृदु मुसकान।
सिर मुकुट-सिखिपिच्छ सोहत, सुभग दृग रसखान॥
नित्य अतुल अचिंत्य गुन, सौंदर्य-निधि अभिराम।
रूप राधा मदनमोहन-हृदय-हरन ललाम॥

चंद्रिका सिर सोहमोहन नयन, मुख मृदु हास।
कर रची मेंहदी, सजे तन दिव्य भूषन-बास॥
तरु-लता-पल्लव-सुमन-सिखि जुत अरन्य सुठाम।
स्याम-राधा मुदित ठाढ़े कदँब-तल सुखधाम॥

[३८]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

श्रीराधामाधव कर हमपर सहज कृपावर्षा भगवान—
ठुकरा सकें सभी भोगोंको जिससे दें यह शुभ वरदान॥
सहज त्याग दें लोक और परलोकोंके हम सारे भोग।
लुभा सकें न दिव्य लोकोंके भोग, मोक्षका शुचि संयोग॥
बने रहें हम रज-निकुञ्जकी क्षुद्रमञ्जरीं सेवारूप।
सखी दासियोंकी दासी अतिशय नगण्य, अति दीन अनूप॥
पड़ती रहे सदा हमपर उन सखि-मञ्जरियोंकी पद-धूल।
करती रहे कृतार्थ, बनाती रहे हमें सेवा-अनुकूल॥

[३९]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

मोहन-मन-धन-हारिणी, सुखकारिणी अनूप।
भावमयी श्रीराधिका, आनन्दाम्बुधि-रूप॥
आकर्षक ऋषि-मुनि-हृदय अनुपम रूप ललाम।
कृष्णारसार्णव रस-स्वयं लोकोत्तर सुखधाम॥
दीन-हीन मति मलिन मैं असत-पंथ आरूढ़।
दुःखद भोगोंमें सदा अति आसक्त विमूढ़॥
युगल कृपानिधि! कीजिये मुझपर कृपा उदार।
पद-रज-सेवाका सतत मिले मुझे अधिकार॥

[४०]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

श्यामा-श्याम युगल चरणोंमें करुण प्रार्थना है यह आज ।
सुनो दयामयि ! करुणामय हे ! महाभावरूपा ! रसराज ॥
गोकुलचन्द्र, गोपिकावल्लभ, राधाप्रिय, हे आनँदकन्द ।
दिव्यरसामृत-सरिता जिनके रस-लोलुप सत्-चित्-आनन्द ॥
मङ्गलमय यश सुनूँ तुम्हारा, करूँ नाम-यश-गुण नित गान ।
उभय पाद-पद्मोंकी सेवा करूँ नित्य तज सब अभिमान ॥
कृष्णप्रिया-शिरोमणि रसमयि ! रसमय प्रभु ! हे श्यामा-श्याम ।
रहै बरसती कृपा तुम्हारी नित्य अधम जनपर अविराम ॥
रक्खो सदा शरणमें ही निज इस पामरको विरद विचार ।
जर्जर देह-प्राण-मन अब तो रहें न पलभर तुम्हें बिसार ॥

[४१]

(दोहा)

श्रीराधामाधव जुगल दिब्य रूप-गुन-खान ।
अविरत मैं करती रहूँ प्रेम-मगन गुन-गान ॥
राधागोबिंद नाम कौ करूँ नित्य उच्चार ।
ऊँचे सुर तें मधुर मृदु, बहै दृगन रस-धार ॥
करि करुना या अधम पर, करौ मोय स्वीकार ।
पर्‍यौ रहूँ नित चरन-तल, करतौ जै-जैकार ॥
मैं नहिं देखूँ और कौं, मोय न देखैं और ।
मैं नित देख्यौई करूँ, तुम दोउनि सब ठौर ॥

[४२]

(राग जंगला—तीन ताल)

हे राधा-माधव ! तुम दोनों दो मुझको चरणोंमें स्थान ।
दासी मुझे बनाकर रक्खो, सेवाका अवसर दो दान ॥
मैं अति मूढ़, चाकरीकी चतुराईका न तनिक-सा ज्ञान ।
दीन नवीन सेविकापर दो समुद उँडेल सनेह अमान ॥

रजकण सरस चरण-कमलोंका खो देगा सारा अज्ञान।
ज्योतिमयी रसमयी सेविका मैं बन जाऊँगी सज्ञान॥
राधा-सखी-मञ्जरीको रख सम्मुख मैं आदर्श महान।
हो पदानुगत उसके, नित्य करूँगी मैं सेवा सविधान॥
झाड़ू दूँगी मैं निकुञ्जमें, साफ करूँगी पादत्रान।
हौले-हौले हवा करूँगी सुखद व्यजन ले सुरभित आन॥
देखा नित्य करूँगी मैं तुम दोनोंकी मोहनि मुसकान।
वेतन यही, यही होगा बस, मेरा पुरस्कार निर्मान॥

[४३]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

श्रीराधा-माधव ! यह मेरी सुन लो बिनती परम उदार।
मुझे स्थान दो निज चरणोंमें, पावन प्रभु ! कर कृपा अपार॥
भूलूँ सभी जगतको, केवल रहे तुम्हारी प्यारी याद।
सुनूँ जगतकी बात न कुछ भी, सुनूँ तुम्हारे ही संवाद॥
भोगोंकी कुछ सुधि न रहे, देखूँ सर्वत्र तुम्हारा मुख।
मधुर-मधुर मुसकाता, नित उपजाता अमित अलौकिक सुख॥
रहे सदा प्रिय नाम तुम्हारा मधुर दिव्य रसना रसखान।
मनमें बसे तुम्हारी प्यारी मूर्ति मञ्जु सौन्दर्य-निधान॥
तनसे सेवा करूँ तुम्हारी, प्रति इन्द्रियसे अति उल्लास।
साफ करूँ पगरखी-पीकदानी सेवा-निकुञ्जमें खास॥
बनी खवासिन मैं चरणोंकी करूँ सदा सेवा, अति दीन।
रहूँ प्रिया-प्रियतमके नित पद-पद्म-पराग-सुसेवन-लीन॥

[४४]

(राग शिवभैरव—तीन ताल)

बसा रहे मन-मधुप निरन्तर राधा-माधवके पद-पद्म।
मत्त रहे रस-सुधा पानकर अविरत, त्याग सभी छल-छद्म॥
मधुर नाम-लीला-गुण-रसमें रसना रहे निरन्तर लीन।
श्रवण सतत गुण-नाम-श्रवणमें लगे रहें ज्यों जलमें मीन॥

सदा देखते रहें नेत्र सर्वत्र रूप-माधुर्य ललाम।
घ्राणेन्द्रिय हो धन्य लाभ कर नित प्रभु-तन-सुगन्ध अभिराम॥
पाती रहे त्वगिन्द्रिय उनका मङ्गलमय संस्पर्श महान।
ऐसा नित्य बना दें जीवन रसमय मधुर सहज भगवान॥

[४५]

(राग इमन—ताल कहरवा)

श्रीराधा-माधव-जुगल ! कीजै कृपा महान।
जा सौं मैं करतौ रहूँ प्रेम-सुधा-रस पान॥
द्वन्द्वनि में समता रहै, सकल विषमता खोय।
पद-कमलनि में ही सदा ममता सगरी होय॥
मन सुमिरन करतौ रहै मधुर मनोहर नित्य।
नाम-रूप-गुन कौ, सकल तजि कै भोग अनित्य॥
जय श्रीराधा जयति जय, जय माधव घनस्याम।
जयति समरपनमय बिमल प्रेम नित्य सुखधाम॥

[४६]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

शुद्ध सच्चिदानन्द सनातन नित्यमुक्त जो परम स्वतन्त्र।
कर बन्धन स्वीकार उदरमें, हुए यशोदाके परतन्त्र॥
जिनके अतुल स्वरूप-सिन्धुके बिन्दु-बिन्दुमें विश्व अपार।
डूबे रहते नित्य, लाँघकर उसे कौन जा सकता पार ?
कभी नहीं हो सकता जिन असीमकी सीमाका निर्देश।
नित्य अनन्त पूर्ण चिदघनका नहीं प्राप्त हो सकता शेष॥
काम-क्रोध-लोभ-भय-क्रन्दन-बन्धनको वे कर स्वीकार।
दिब्य बना देते इनको, कर निज स्वरूपमें अङ्गीकार॥
नहीं कल्पना, नहीं भावना-माया-नाट्य, न दम्भ अनित्य।
है यह रसमयका शुचि पावन प्रेम-रस-सुधास्वादन सत्य॥

शुद्ध प्रेम-परवश हरिमें नित रहते साथ विरोधी धर्म।
इसीलिये होते उनके सब विस्मयभरे विलक्षण कर्म॥
ज्ञानी-मुक्त, सिद्ध-योगी—कोई भी थाह नहीं पाते।
श्याम-रूप-संदोह-महोदधिमें वे सहज डूब जाते॥
मधुर दिव्य इस भगवद्-रसका वही परम रस ले पाते।
केवल प्रेमपूर्ण सर्वार्पण कर जो उनके हो पाते॥
इसीलिये सर्वार्पित-जीवन महाभाग वे गोपी-ग्वाल।
दिव्य रस-सुधास्वादन करते रहते हैं दुर्लभ सब काल॥
नहीं छोड़कर जाते व्रजको कभी रसिकवर वे नँदलाल।
निज-जन सबको सुख देते वे, करते रहते नित्य निहाल॥
उन प्रेमीजनके पवित्र पद-रज-कणको है अमित प्रणाम।
जिनके प्रेमाधीन हुए हरि करते लीला मधुर ललाम॥

[४७]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

बंदौं गोपी-जन, हृदय जो हरि राखे गोय।
पलकहुँ नहिं निकसत कबहुँ, मानि परम सुख सोय॥
बंदौं गोपी-मन सरस, मिल्यौ जो हरि-मन जाय।
हरि-मन गोपी मन बन्यौ, करत नित्य मन-भाय॥
बंदौं गोपी-राग सुचि, जाके बस हरि होय।
नित्य रिनी बनि परम सुख लहत, ईसता खोय॥
बंदौं गोपी-नेह, जो हरि-पद-रज नित सेय।
भगवत-रूप प्रकास तैं बिनसे सब रस हेय॥
बंदौं गोपी-भाव, जो नित प्रियतम-सुख-हेतु।
बढ़त पलहिं-पल भंग करि सब मरजादा-सेतु॥
बंदौं गोपी-व्रत परम, स्व-सुख-वासना-हीन।
सती-धर्म राखत सतत जो प्रिय-सेवा-लीन॥
बंदौं गोपी-प्रनय, जो हरि आकरषै सत्य।
आकरषत जो ध्यान में बरबस मुनि-मन नित्य॥

बंदौं गोपी-नाम, जे हरि मुरली महँ टेर।
सुख पावत हरि स्वयं करि कीर्तन बेरहिं-बेर॥
बंदौं गोपी-रूप, जो हरि-दृग रह्यौ समाय।
निकसत नैकु न नयन तैं, छिन-छिन अधिक लुभाय॥

[४८]

(राग परज—ताल कहरवा)

श्री 'ललिता' लावण्य ललित सखि गोरोचन-आभा-जुत अङ्ग।
विद्युद्-वर्णि निकुञ्ज निवासिनि, वसन रुचिर शिखिपुच्छ सुरङ्ग॥
इन्द्रजाल-निपुणा, नित करती परम स्वादु ताम्बूल प्रदान।
कुसुम-कला-कुशला रचती कल कुसुम-निकेतन कुसुम-वितान॥
सखी 'विशाखा' विद्युद्-वर्णा, रहती बादल-वर्णा कुञ्ज।
तारा प्रभा सुवसन सुशोभित, मन नित मगन श्याम-पद-कंज॥
कर्पूरादि सुगन्ध-द्रव्य युत लेपन करती सुन्दर अङ्ग।
बूटे-बेल बनाती, रचती चित्र विविध रुचि अँग-प्रत्यङ्ग॥
'चित्रा' अङ्ग-कान्ति केसर-सी, काँच-प्रभा-से वसन ललाम।
कुञ्ज-रङ्ग किञ्जल्क कलित अति, शोभामय सब अङ्ग सुठाम॥
विविध विचित्र वसन-आभूषणसे करती सुन्दर सिंगार।
करती सांकेतिक अनेक देशोंकी भाषाका व्यवहार॥
सखी 'इन्दुलेखा' शुचि करती शुभ्र-वर्ण शुभ कुञ्ज-निवास।
अंग-कान्ति हरताल-सदृश, रँग दाडिम-कुसुम वसन सुखरास॥
करती नृत्य विचित्र भङ्गिमा संयुत नित नूतन अभिराम।
गायन-विद्या-निपुणा, व्रजकी ख्यात गोपसुन्दरी ललाम॥
'चम्पकलता' कान्ति चम्पा-सी, कुञ्ज तपे सोनेके रङ्ग।
नीलकण्ठ-पक्षीके रँगके रुचिर वसन धारे शुचि अङ्ग॥
चावभरे चित चँवर डुलाती अविरत नित कर-कमल उदार।
दूत-पण्डिता, विविध कलाओं से करती सुन्दर सिंगार॥
सखी 'रङ्गदेवी' बसती अति रुचिर निकुञ्ज, वर्ण जो श्याम।
कान्ति कमल-केसर-सी शोभित जवा-कुसुम-रँग वसन ललाम॥

****

नित्य लगाती रुचि कर-चरणोंमें यावक अतिशय अभिराम।
आस्था अति त्यौहार-व्रतोंमें, कला-कुशल शुचि शोभाधाम॥
सखी 'तुङ्गविद्या' अति शोभित कान्ति चन्द्र, कुंकुम-सी देह।
वसन सुशोभित पीत वर्ण वर, अरुण निकुञ्ज, भरी नव नेह॥
गीत-वाद्यसे सेवा करती अतिशय सरस सदा अविराम।
नीति-नाट्य-गान्धर्व-शास्त्र-निपुणा रस-आचार्या अभिराम॥
सखी 'सुदेवी' स्वर्ण-वर्ण-सी, वसन सुशोभित मूँगा-रङ्ग।
कुञ्ज हरिद्रा-रंग मनोहर, करती सकल वासना भङ्ग॥
जल निर्मल पावन सुरभितसे करती जो सेवा अभिराम।
ललित लाड़िलीकी जो करती वेणी-रचना परम ललाम॥

(दोहा)

(राग माँड़—ताल कहरवा)

अष्ट सखी करतीं सदा सेवा परम अनन्य।
राधा-माधव-जुगलको, कर निज जीवन धन्य॥
इनके चरण-सरोज में बारंबार प्रनाम।
करुना कर दें श्रीजुगल-पद-रज-रति अभिराम॥

[४९]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

ब्रह्म, ब्रह्मकी शक्ति नित्यमें नहीं कभी रञ्चक भी भेद।
जो वह, वही तुम्ही हो, है निश्चय दोनोंमें नित्य अभेद॥ १ ॥
शक्ति न हो तो कहीं रहेगा कभी न शक्तिमानका रूप।
शक्तिमानके बिना शक्तिको कहीं न होगा स्थान अनूप॥ २ ॥
शक्ति प्राण है शक्तिमानका, शक्तिमान है शक्ति-प्राण।
दोनोंसे दोनोंकी सत्ता है, अन्यथा उभय निष्प्राण॥ ३ ॥
नहीं कभी होता असङ्ग, चिन्मात्र ब्रह्मसे विश्व-विकास।
पराशक्तिके समाश्रयणसे ही होता सब भाँति प्रकाश॥ ४ ॥

कारण रूप जगत्की है वह परमोत्कृष्ट पूर्ण पर-शक्ति।
इसीलिये हरि-हर-ब्रह्मा सब देव कर रहे उनकी भक्ति॥ ५ ॥
जगकी बात अलग, उन तीनोंका भी जो है निज अस्तित्व।
एकमात्र कारण है उसमें, नित परिपूर्ण शक्तिका तत्त्व॥ ६ ॥
शक्ति बिना शिव 'शव' हो जाते, विष्णु 'अविष्णु', रमासे हीन।
हो अभाव यदि ब्रह्म-शक्तिका, विधि 'अशक्त' हो जाते दीन॥ ७ ॥
राधे बिना कृष्ण 'आधे' हैं, सीताहीन राम 'अति दीन'।
नहीं 'देव' हो कोई, वह यदि हो 'देवत्व-शक्ति' से हीन॥ ८ ॥
'भगवत्ता'-से रहित नहीं माना जाता कोई भगवान।
शक्तिरहित समझा जाता है इसी भाँति सब मृतक-समान॥ ९ ॥
जगन्नियामकत्व, शुचि सच्चित्-आनन्दत्व नित्य निर्बाध।
सृजन-स्थिति-संहार, जगत्-कर्तृत्व, नित्य ईशत्व अगाध॥ १० ॥
पृथक्-पृथक् हैं दोनोंमें, पर तनिक न अनुपपत्तिका दोष।
एक तत्त्व दोनों स्वरूपतः नित्य निरन्तर अविचल ठोस॥ ११ ॥
एक बने दो लीला-रत रहते नित शक्ति, शक्ति-आधार।
विविध खेल रचते, होते अति मुदित एकको एक निहार॥ १२ ॥
नहीं पुरुष तुम, नहीं नारि हो, नहीं नपुंसक, सर्वातीत।
तदपि सर्वमय सदा तुम्हीं हो; तुम ही पुरुष, नारि सुपुनीत॥ १३ ॥
मूलप्रकृति राधा तुम, दुर्गा, लक्ष्मी, शुभ सावित्री रूप।
सरस्वती, गङ्गा, तुलसी तुम दिव्यशक्ति सब भाँति अनूप॥ १४ ॥
स्वाहा, स्वधा, दक्षिणा, षष्ठी, मनसा, पुष्टि, तुष्टि हो स्वस्ति।
नहीं तुम्हारे बिना कहीं कुछ; तुम्हीं नास्ति हो, तुम ही अस्ति॥ १५ ॥
करुणा-सुधामयी देवी! तुम परम मनस्विनि, अमित उदार।
राधा-रूप-चरण-रज दे निज करो तुरंत कृपा-विस्तार॥ १६ ॥

[५०]

(राग सूहा—तीन ताल)

बंदौं हरि-पद-पंकज पावन।
विधि-हर-सुर-रिषि-मुनिजन-बंदित, सुमिरत सब अघ ओघ-नसावन॥

जे पद-पद्म-पराग परसि पुनि गोतम-तिय भइ भावनि भामिनि।
जे पद-पद्म-पराग परसि सुरसरि-जल अघ धोवत दिन-जामिनि॥
जे पद-पद्म भूमि-लक्ष्मी उर-मंदिर सुचि नित रहत बिराजित।
जे पद-पद्म प्रेम-रस-पूरित ब्रज-जुवतिन-उरोज रह रजित॥
जे पद-पद्म भक्त-संतनि के हियँ अति सुख सौं बसत निरंतर।
ते पद-पद्म बसहु लोलुप के धन-जिमि नित मेरे उर अंतर॥

[५१]

(राग जैजैवन्ती—ताल झूमरा)

शोभित चारों भुजा सुदर्शन-शङ्ख-गदा-सरसिजसे युक्त।
रुचिर किरीट, सुभग पीताम्बर, कमल-नयन शोभा-संयुक्त॥
चिह्न विप्र-पदका वक्षस्पर, कौस्तुभमणि, गल मञ्जुल हार।
परम सुखद श्रीविष्णु-चरण, वन्दन करता हूँ बारंबार॥

[५२]

(राग कल्याण—ताल कहरवा)

श्लोक—नारायणं हृषीकेशं गोविन्दं गरुडध्वजम्।
वासुदेवं हरिं कृष्णं केशवं प्रणमाम्यहम्॥

[५३]

(दोहा)

श्रीगनपति गुरु सारदा, बंदौं बारंबार।
परब्रह्म के रूप सब भिन्न-भिन्न आकार॥
पुनि सुमिरौं गुरुबर चरन, वांछित-फल-दातार।
अति दुस्तर भव-सिंधु तें, जे पहुँचावहिं पार॥

[५४]

(राग भैरवी—ताल रूपक)

वन्दौं विष्णु विश्वाधार।
लोकपति, सुरपति, रमापति, सुभग शान्ताकार।
कमल-लोचन, कलुषहर, कल्याण-पद-दातार॥

नील-नीरद-वर्ण, नीरज-नाभ, नभ-मनुहार।
भृगुलता-कौस्तुभ-सुशोभित हृदय मुक्ताहार॥
शङ्ख-चक्र-गदा-कमलयुत भुज विभूषित चार।
पीत-पट-परिधान पावन अङ्ग-अङ्ग उदार॥
शेष-शय्या-शयित, योगी-ध्यान-गम्य, अपार।
दुःखमय भव-भय-हरण, अशरणशरण अविकार॥

[५५]

(राग आसावरी—ताल धुमाली)

परम गुरु राम मिलावनहार।
अति उदार, मञ्जुल, मङ्गलमय, अभिमत-फलदातार॥
टूटी-फूटी नाव पड़ी मम भीषण भव-नद-धार।
जयति-जयति जय देव दयानिधि! बेग उतारो पार॥

[५६]

(राग गारा—ताल दादरा)

जयति देव, जयति देव, जय दयालु देवा।
परम गुरु, परम पूज्य, परम देव, देवा॥
सब बिधि तव चरन-सरन आइ पर्‌यौ दासा।
दीन-हीन-मति-मलीन, तदपि सरन-आसा॥
पातक अपार किंतु दया को भिखारी।
दुखित जानि राखु सरन पाप-पुंजहारी॥
अबलौंके सकल दोष छमा करहु स्वामी!
ऐसो करु, जातें पुनि हौं न कुपथगामी॥
पात्र हौं, कुपात्र हौं, भले अनधिकारी।
तदपि हौं तुम्हारो अब लेहु मोहि उबारी॥
लोग कहत तुम्हरो सब, मनहु कहत सोई।
करिय सत्य सोइ, नाथ! भव-भ्रम सब खोई॥

मोरि ओर जनि निहारि, देखिय निज तनही।
हठ करि मोहि राखिय हरि ! संतत तल पनही॥
कहौं कहा बार-बार जानहु सब भेवा।
जयति, जयति, जय दयालु, जय दयालु देवा॥

[५७]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

अर्पण मेरे हैं सदा तुममें जीवन-प्राण।
तुम्हीं एक आधार हो, तुम्हीं परम कल्याण॥
तुम ही मेरी परम गति, प्रीति बिना परिमाण।
मिलो तुरत, मेरा करो विरह-कष्टसे त्राण॥

[५८]

(राग आसावरी—तीन ताल)

मोपै गिरिधर ! कृपा करौ।
मोह-कूप में पर्‌यौ दुखी अति, प्रभु ! संताप हरौ॥
मन अति मलिन, बुद्धि नित बिचलित, रति अघ औगुन भारी।
इंद्रिय सकल सदा कुबिषय-रत, तज मरजादा सारी॥
छलन चहौं अंतरजामी कौं, दुरित दुरंत दुराऊँ।
कपट साधु बन, रचि प्रपंच, निज धवल चरित्र दिखाऊँ॥
मन अति जरत काम-कोपानल, नहीं सांति छिन पाऊँ।
बाहर ते अति सांत बन्यौ, समता कौ स्वाँग रचाऊँ॥
ममता-मोह तुच्छ जग-वस्तुनि, चित्त उनहिं में अटक्यौ।
कबउ न पलभर लगत राम में, फिरत भूत ज्यौं भटक्यौ॥
मेरे अमित दोष-दुख भीषन रोम-रोम प्रति छाये।
मिटैं नहीं तुम्हरी करुना बिनु काहूकेउ मिटाये॥

[५९]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

प्रियतम ! बनकर आओ चाहे झपक झपटते झंझावात ।
घोर घोष करते चाहे बन आओ प्रलयंकर पबि-पात ॥
मन्द-सुगन्ध मलय-मारुत बन आओ चाहे शुचि सुख-खान ।
सौम्य सुधा बरसाते चाहे आओ बन सुधांशु भगवान ॥
देख भयंकर-सुन्दर रूप तुम्हारे विविध विश्व-आधार ।
लूँ तुरंत पहचान, न भूलूँ, किसी वेषमें तुम्हें निहार ॥
नित्य नवीन रूप धर नटवर ! लीला तुम करते स्वच्छन्द ।
पाता रहूँ प्रणत-पद-रज मैं नत-सिर पल-पल लीलानन्द ॥

[६०]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

दिन-रजनी, तरु-लता, फूल-फल, सूर्य-सोम, झिलमिल तारे ।
प्रतिपल, प्रति पदार्थमें तुम मुझको देते रहते प्यारे ॥
कितना दिया, दे रहे कितना, इसका मिलता ओर-न-छोर ।
कितना ही दो, प्यास न बुझती, कहता सदा—'और दो, और' ॥
कभी नहीं मन मेरा भरता, कभी न पूरी होती आस ।
इतना देनेपर भी, कर अवहेला, रहता सदा उदास ॥
सदा कोसता रहता तुमको, सदा बताता रहता दोष ।
कभी नहीं कृतज्ञ होता मैं, कभी नहीं पाता संतोष ॥
इतनेपर भी तुम, प्रभु ! मुझको नहीं भूलते पलभर एक ।
नहीं ऊबते, नहीं खीझते, देते रहते रख निज टेक ॥
जरा दोष-अपराध न गिनते, बिना हेतु करते उपकार ।
तुम-से-तुम ही अतुल मनस्वी, तुम-से-तुम्हीं अमित दातार ॥
तुम जो कुछ भी देते, सबमें मधुर सुधारस भरा अनन्त ।
है समर्थ कर देनेमें जगकी सारी ज्वालाका अन्त ॥

मन मेरा यदि तनिक अमृत-कण लेकर उसमें रम जाता।
मिट जाते सब दुःख, तुम्हारा सुखमय दर्शन पा जाता॥
अब तो तुम ही कृपा करो, तुम ही सब कुछ मनका हर लो।
अपनी मधुर सहज अनुकम्पासे मुझको अपना कर लो॥

[६१]

(राग भीमपलासी—ताल मूल)

करो प्रभु ! ऐसी दृष्टि-प्रदान।
देख सकूँ सर्वत्र तुम्हारी सतत मधुर मुसकान॥
हो चाहे परिवर्तन कैसा भी—अति क्षुद्र, महान।
सुन्दर-भीषण, लाभ-हानि, सुख-दुःख, मान-अपमान॥
प्रिय-अप्रिय, स्वस्थता-रुग्णता, जीवन-मरण-विधान।
सभी प्राकृतिक भोगोंमें हो भरे तुम्हीं भगवान॥
हो न उदय उद्वेग-हर्ष कुछ, कभी दैन्य-अभिमान।
पाता रहूँ तुम्हारा नित संस्पर्श बिना-उपमान॥

[६२]

(राग जैतकल्याण—ताल मूल)

आते हो तुम बार-बार प्रभु ! मेरे मन-मन्दिरके द्वार।
कहते—'खोलो द्वार, मुझे तुम ले लो अंदर करके प्यार'॥
मैं चुप रह जाता, न बोलता, नहीं खोलता हृदय-द्वार।
पुनः खटखटाकर दरवाजा करते बाहर मधुर पुकार॥
'खोल जरा सा' कहकर यों—'मैं, अभी काममें हूँ, सरकार।
फिर आना'—झटपट मैं घरके कर लेता हूँ बंद किंवार॥
फिर आते, फिर मैं लौटाता, चलता यही सदा व्यवहार।
पर करुणामय ! तुम न ऊबते, तिरस्कार सहते हर बार॥
दयासिन्धु ! मेरी यह दुर्मति हर लो, करो बड़ा उपकार।
नीच-अधम मैं अमृत छोड़, पीता हालाहल बारंबार॥
अपने सहज दयालु विरदवश, करो नाथ ! मेरा उद्धार।
प्रबल मोहधारामें बहते नर-पशुको लो तुरत उबार॥

[६३]

(राग जोग—ताल दीपचंदी)

बिना याचनाके ही देते रहते नित्य शक्ति तुम नाथ !
करते सदा सँभाल, छिपे तुम अविरत रहते मेरे साथ ॥
देते तुम निर्भयता, नित्य निरामयता, निज आश्रय-दान ।
देते शुभ विचार, शुभ चिन्तन, शुभ जीवन, शुभ कर्म महान ॥
देते प्रेम प्रेम-सागर ! तुम देते स्वार्थहीन अनुराग ।
देते सुख शाश्वत आत्यन्तिक मिटा सभी दुःखोंके दाग ॥
एक चाहते, इन सबके बदलेमें तुम—अविचल विश्वास ।
पर मैं हीन उसीसे, तब भी होता नहीं कदापि निराश ॥
तुम्हीं मुझे विश्वास-दान दो, तुम्हीं करो मेरा उद्धार ।
ख्यात पतित-पावन, पामर-प्रेमी तुम, हे प्रभु ! परम उदार ॥

[६४]

(राग भूपालतोड़ी—तीन ताल)

बन जाओ तुम मेरे सब कुछ जप-तप, ध्यान, ज्ञान-विज्ञान ।
बन जाओ तुम मेरे साधन-साध्य, यज्ञ-व्रत, संयम-दान ॥
बन जाओ तुम मेरे शम-दम, श्रद्धा, समाधान, शुचि योग ।
बन जाओ तुम मेरे मन-मति, अहंकार, इन्द्रिय, सब भोग ॥
बन जाओ तुम मेरे प्राणोंके रहस्य, जीवनके मर्म ।
बन जाओ तुम मेरे वस्त्राभूषण, खान-पान गृह-धर्म ॥
स्पर्श तुम्हारा मिले सर्वदा सबमें, सभी ठौर अविराम ।
मेरे तुम हो, मेरे तुम हो, सभी भाँति, हे प्राणाराम ! ॥

[६५]

(राग भिन्नषड्ज—तीन ताल)

प्रभो ! मिटा दो मेरा सारा, सभी तरहका मद-अभिमान ।
झुक जाये सिर प्राणिमात्रके चरणोंमें, तुमको पहचान ॥

आचण्डाल, शृगाल, श्वान भी हों मेरे आदरके पात्र।
सबमें सदा देख पाऊँ मैं मृदु मुसकाते तुमको मात्र॥
सबका सुख-सम्मान परम हित ही हो, मेरी केवल चाह।
भूलूँ अपनेको सब विधि मैं, रहे न तनकी सुधि-परवाह॥
पूजूँ सदा सभीमें तुमको यथायोग्य कर सेवा-मान।
बढ़ती रहे वृत्ति सेवाकी, बढ़ती रहे शक्ति-निर्मान॥
परका दुःख बने मेरा दुख, सुखपर हो परका अधिकार।
बन जाये निज हित पर-हित ही, सुखकी हो अनुभूति अपार॥
आर्त प्राणियोंको दे पाऊँ सदा सान्त्वना-सुखका दान।
उनके दुःख-नाशमें कर पाऊँ मैं समुद आत्म-बलिदान॥

[६६]

(राग बिहाग—तीन ताल)

करुणामय! उदार चूड़ामणि! प्रभु! मुझको यह दो वरदान।
देखूँ तुम्हें सभीमें, सभी अवस्थाओंमें हे भगवान॥
शब्द मात्रमें सुन पाऊँ मैं नित्य तुम्हारा ही गुण-गान।
वाणीसे गाऊँ मैं गुणगण, नाम तुम्हारे ही रसखान॥
इन्द्रिय सभी सदा पुलकित हों पाकर मधुर तुम्हारा स्पर्श।
कर्म नित्य सब करें तुम्हारी ही सेवा, पावें उत्कर्ष॥
बुद्धि, चित्त, मन रहें सदा ही एक तुम्हारी स्मृतिमें लीन।
कभी न हो पाये विचार-संकल्प-मनन, प्रभु! तुमसे हीन॥
सदा तुम्हारी ही सेवामें सब कुछ रहे सदा संलग्न।
यही प्रार्थना—रहूँ तुम्हारे पद-रति-रसमें नित्य निमग्न॥

[६७]

(राग जौनपुरी—तीन ताल)

सबमें सब देखें निज आत्मा, सबमें सब देखें भगवान।
सब ही सबका सुख-हित देखें, सबका सब, चाहें कल्यान॥
एक दूसरेके हितमें सब करें परस्पर निज-हित-त्याग।
रक्षा करें पराधिकारकी, छोड़ें स्वाधिकारकी माँग॥

निकल संकुचित सीमासे 'स्व' करे विश्वमें निज विस्तार।
अखिल विश्वके हितमें ही हो 'स्वार्थ' शब्दका शुभ संचार॥
द्वेष-वैर-हिंसा विनष्ट हों, मिटें सभी मिथ्या अभिमान।
त्याग-भूमिपर शुद्ध प्रेमका करें सभी आदान-प्रदान॥
आधि-व्याधिसे सभी मुक्त हों, पायें सभी परम सुख-शान्ति।
भगवद्भाव उदय हो सबमें, मिटे भोग-सुखकी विभ्रान्ति॥
परम दयामय! परम प्रेममय! यही प्रार्थना बारंबार।
पायें सभी तुम्हारा दुर्लभ चरणाश्रय, हे परम उदार॥

[६८]

(राग काफी—ताल दीपचंदी)

केवल तुम्हें पुकारूँ प्रियतम! देखूँ एक तुम्हारी ओर।
अर्पण कर निजको चरणोंमें बैठूँ हो निश्चिन्त, विभोर॥
प्रभो! एक बस, तुम ही मेरे हो सर्वस्व सर्वसुखसार।
प्राणोंके तुम प्राण, आत्माके आत्मा आधेयाऽधार॥
भला-बुरा, सुख-दुःख, शुभाशुभ मैं, न जानता कुछ भी नाथ!
जानो तुम्हीं, करो तुम सब ही, रहो निरन्तर मेरे साथ॥
भूलूँ नहीं कभी तुमको मैं, स्मृति ही हो बस, जीवनसार।
आयें नहीं चित्त-मन-मतिमें कभी दूसरे भाव-विचार॥
एकमात्र तुम बसे रहो नित सारे हृदय-देशको छेक।
एक प्रार्थना इह-परमें तुम बने रहो नित सङ्गी एक॥

[६९]

(राग भैरवी—तीन ताल)

कहाँ तुच्छ सब, कहाँ महत् तुम, पर यह कैसा अनुपम भाव।
बने प्रेमके भूखे, सबसे प्रेम चाहते, करते चाव॥
धन देते, यश देते, देते ज्ञान-शक्ति-बल, देते मान।
किसी तरह सब तुम्हें, 'प्रेम' दें इसीलिये सब करते दान॥

लेते छीन सभी कुछ, देते घृणा-विपत्ति, अयश-अपमान।
करते निष्ठुर चोट, चाहते—'तुम्हें प्रेम सब दें', भगवान॥
सभी ईश्वरोंके ईश्वर तुम बने विलक्षण भिक्षु महान।
उच्च-नीच सबसे ही तुम नित प्रेम चाहते प्रेम-निधान॥
अनुपम, अतुल, अनोखी कैसी अजब तुम्हारी है यह चाह!
रस-समुद्र, रसके प्यासे बन, रस लेते मन भर उत्साह॥
रस उँड़ेल, रस भर, तुम करते स्वयं उसी रसका मधु-पान।
धन्य तुम्हारी रस-लिप्सा यह, धन्य तुम्हारा रस-विज्ञान॥
यही प्रार्थना, प्रेम-भिखारी! प्रेम-रसार्णव! तुमसे आज।
दान-पानकी मधुमय लीला करते रहो, रसिक रसराज॥

[७०]

(राग तोड़ी—तीन ताल)

मेरी शक्ति थक गयी सारी, उद्यम-बलने मानी हार।
हुआ चूर पुरुषार्थ-गर्व सब, निकली बरबस करुण पुकार॥
शक्तिमान हे! शक्ति-स्रोत हे! करुणामय! हे परम उदार।
शक्तिदान दे कर लो मुझको यन्त्र-रूपमें अङ्गीकार॥
हरो सभी तम तुरत, सूर्य-सम करो दिव्य आभा विस्तार।
जो चाहो सो करो, नित्य निश्शङ्क निजेच्छाके अनुसार॥
कहीं डुबा रक्खो कैसे ही, अथवा ले जाओ उस पार।
अथवा मध्य-हिंडोलेपर ही, रहो झुलाते बारंबार॥
भोग्य बना भोक्ता बन जाओ, भर्ता बनो भले सरकार।
बचे न 'ननु नच' कहनेवाला, मिटें अहंके क्षुद्र विकार॥
कौन प्रार्थना करे, किस तरह, किसकी, फिर, हे सर्वाधार!।
सर्व बने तुम अपनेमें ही करो सदा स्वच्छन्द विहार॥

[७१]

(राग गूजरी—तीन ताल)

जो चाहो तुम, जैसे चाहो, करो वही तुम, उसी प्रकार।
बरतो नित निर्बाध सदा तुम मुझको अपने मन-अनुसार॥

मुझे नहीं हो कभी, किसी भी, तनिक दुःख-सुखका कुछ भान।
सदा परम सुख मिले तुम्हारे मनकी सारी होती जान॥
भला-बुरा सब भला सदा ही; जो तुम सोचो, करो विधान।
वही उच्चतम, मधुर-मनोहर, हितकर परम तुम्हारा दान॥
कभी न मनमें उठे, किसी भी भाँति, कहीं, कैसी भी चाह।
उठे कदाचित् तो प्रभु उसे न करना पूरी, कर परवाह॥
प्यारे! यही प्रार्थना मेरी, यही नित्य चरणोंमें माँग—
मिटे सभी 'मैं-मेरा', बढ़ता रहे सतत अनन्य अनुराग॥

[७२]

(राग जोगिया—ताल आढ़ा चौताल)

'भोगोंमें सुख हैं'—इस भारी भ्रमको हर लो, हे हरि! सत्वर।
तुरत मिटा दो दुःखद सुखकी आशाओंको, हे करुणाकर॥
मधुर तुम्हारे रूप-नाम-गुणकी स्मृति होती रहे निरन्तर।
देखूँ सदा, सभीमें तुमको, कभी न भूलूँ तुमको पलभर॥
ममता एक तुम्हींमें हो, हो तुममें ही आसक्ति-प्रीति वर।
बँधा रहे मन प्रेमरज्जुसे चारु चरण-कमलोंमें, नटवर॥
दिखता रहे मधुर-मनहर मुख कोटि-कोटि शरदिन्दु-सुखाकर।
सुनूँ सदा मधुरातिमधुर मुनि-मन-उन्मादिनि मुरलीके स्वर॥
तन-मनके प्रत्येक कार्यसे पूजूँ तुम्हें सदा, हृदयेश्वर।
सहज सुहृद उदारचूड़ामणि! दीन-हीन मुझको दो यह वर॥

[७३]

(राग पीलू—तीन ताल)

हमें ऐसा बल दो भगवान!
जिससे कभी समीप न आयें पाप-ताप बलवान॥
पर-सुख-हित-निमित्त निज सुखका हो स्वाभाविक त्याग।
बढ़ते रहें पवित्र भाव, हो प्रभु-पदमें अनुराग॥

भोगोंमें न रहे रञ्चकभर मेरापन अभिमान।
बनी रहे स्मृति सदा तुम्हारी पावन मधुर महान॥
लीला-गुण, शुचि नाम तुम्हारा हों जीवन-आधार।
रोम-रोमसे निकले सदा तुम्हारी जय-जयकार॥

[७४]

(राग भूपाली—तीन ताल)

कैसैं बिनय सुनावौं, स्वामी !
छिपी न कछु तुम सौं अंतर की, सब के अंतरजामी॥
सब बिधि हीन, मलिन-मति मो पै परम अनुग्रह कीन्हौ।
निज स्वभावबस मान, बिपुल जस, धन-बैभव बहु दीन्हौ॥
सब लोकनि में साधु कहायौ, भक्तराज पद पायौ।
रह्यौ बासना-बिबस निरंतर नित बिषयन प्रति धायौ॥
कनक-कामिनी-रस-बस निसि-दिन सहज कुमारगगामी।
भूल्यौ परम अनुग्रह प्रभु कौ ऐसौं नौंन-हरामी॥
हौं अति कुटिल, कृतघ्नी, कामी, नरक-कीट, अघ-भार।
निज दिसि देखि, बिरुद लखि, मोहि उबारहु परम उदार॥

[७५]

(राग बहार—तीन ताल)

अब मोहि एक भरोसौ तेरौ।
भक्ति-भाव सौं बिरत, कलुष-रत, मोहावृत, बिषयन कौ चेरौ॥
काम-लोभ-मद-मोह बसत निसि बासर कियें हिये महँ डेरौ।
सिरपर मीच, नीच नहिं चितवत, रहत सदा रोगनि सौं घेरौ॥
परमारथ की बात कहत नित, भोगन सौं अनुराग घनेरौ।
बार-बार अनुभवत-नहीं कोउ तो-सौ हितू, न तो-सौ नेरौ॥
तदपि बिसारि-तोहि, हौं पाँवर सुमिरौं कामज सुखहि अनेरौ।
अब तौ, बस, तू ही अवलंबन, तो बिनु और न कोऊ मेरौ॥
निज पन-बिरद बिचारि, दयामय ! कृपा अहैतुक सौं नित प्रेरौ।
तू ही मोहि उबार बिषम भव-सागर सौं करि छोह बडेरौ॥

****

[७६]

(राग आसावरी—तीन ताल)

करौ, प्रभु ! ऐसी कृपा महान।
छाड़ि कपट-छल भजौं निरंतर सरल हृदै तजि मान॥
सत्य, बिरति, बिग्यान, चरन-रति देहु दया करि दान।
जीवन अर्पित होय जथारथ, मिटै मोह-अग्यान॥
ममता रहै सदा प्रभु-पद महँ रहै दास-अभिमान।
निज-पर, लाभ-हानि—सब महँ रह चित की बृत्ति समान॥
सब महँ लखौं निरंतर तुम कौं, करौं सदा सनमान।
जीवमात्र कौ करौं न कबहूँ अहित और अपमान॥
राग-द्वेष-रहित इंद्रिय-मन सेवा करैं अमान।
परम 'अकिंचन' सदा रहौं मैं तुमहिं परम धन जान॥

[७७]

(राग भूपाली—तीन ताल)

मुझे प्रभु ! दो वह सुन्दर स्थान।
जहाँ गा सकूँ सरस तुम्हारा मैं अचिन्त्त यश-गान॥
जहाँ न हो मानापमानका तनिक भी कहीं भान।
जहाँ न हो स्तुति-निन्दा, प्रिय-अप्रियका तनिक विधान॥
जहाँ न हो बँटवारेको कुछ धन-धरणी-सामान।
जहाँ न हो नकली पर्दा, जो झूठ दिखावे शान॥
जहाँ सत्य नित रहे प्रकाशित, बिना बाहरी वेष।
जहाँ प्रेमका शुद्ध सुधा-रस बहता रहे अशेष॥
जहाँ सरल शुभकी धारामें सब बह जाय भदेस।
जहाँ भरा हो भगवदीय भावोंसे सारा देश॥

[७८]

(राग पूरिया—तीन ताल)

दयामय ! मोहि दासता दीजै ।
सहज कृपाबस, दीनबंधु ! अपनौ सेवक करि लीजै ॥
अवगुन-खान, भर्‍यौ मल सौं मन, हौं अति मूढ़ गँवार ।
सेवा की नहिं नैक जोग्यता, नहिं सेवा-अधिकार ॥
छोटे मुँह अति बड़ी चीज मैं माँगी, कृपानिधान !
एक भरोसौ प्रबल बिरुद कौ, अघहारी भगवान ॥
निज दासनि मैं प्रभु जब मोकूँ करि लैंगे स्वीकार ।
पाप-ताप तब छिन में जरि-बरि सभी होंयँगे छार ॥

[७९]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

हे मेरे ! तुम, प्राण-प्राण ! तुम, जीवनके जीवन-आधान ।
'मैं' से रहित बना दो मुझको, हर लो अहंकार-अभिमान ॥
कर दो मुझे अकिंचन पूरा, हर लो सभी लोक-परलोक ।
भर जाओ उर अमित ज्योति तुम ! हर लो मिथ्या तम-आलोक ॥
नटवर ! नाचो मनमाने तुम, मुझे नचाओ मन-अनुसार ।
कण-कणपर हो प्रकट तुम्हारा क्रियाशील अनुपद अधिकार ॥
कठपुतलीकी भाँति सर्वथा सम्मत, नीरव, वाक्य-बिहीन ।
नाचें सभी अङ्ग-अवयव, हो तव रुचि रम्य रज्जु-आधीन ॥

[८०]

(राग काफी—तीन ताल)

हौं हरिदास-दास कौ दास ।
परम अनुग्रह करि पूरी प्रभु ने मो मन की आस ॥
तन-मन, धन-जन, कछु नहिं मो पै, हौं चरननि कौ चेरौ ।
बड़भागी को मो सम, पायौ पद-कमलनि महँ डेरौ ॥

नहिं कछु साधन कौ बल, हौं तौ दास-दास-पद-धूल।
यहै एक अवलंब, परम बल, यहै सजीवन मूल॥
श्रीहरि के प्रिय दास, जानि मोहि निज दासनि कौ दास।
सब अपराध छमा करि राख्यौ निज चरननि के पास॥

[८१]

(राग आसावरी—तीन ताल)

जला दो उर मेरे विरहानल।
प्रियतम ! बिना तुम्हारे बीते दुखमय युग-सम मेरा पल-पल॥
भोगासक्ति-कामना-ममता जग-ज्वालाएँ सब जायें जल।
मिट जाये सब दुःखयोनि आद्यन्तवन्त भोगोंका अरि-दल॥
जाग उठे दैवी गुण, हो वैराग्य-राग-रञ्जित अन्तस्तल।
मिलन तुम्हारा हो, मिल जाये मानव-जीवनका यथार्थ फल॥

[८२]

(राग विहाग—तीन ताल)

हमें प्रभु ! दो ऐसा वरदान।
तन-मन-धन अर्पण कर सारे, करें सदा गुण-गान॥
कभी न तुमसे कुछ भी चाहें, सुख-सम्पति-सम्मान।
अतुल भोग परलोक-लोकके खींच न पायें ध्यान॥
हानि-लाभ, निन्दा-स्तुति सम हों, मान और अपमान।
सुख-दुःख विजय-पराजय सम हों, बन्धन-मोक्ष समान॥
निरखें सदा माधुरी मूरति, निरुपम रसकी खान।
चरण-कमल-मकरन्द-सुधाका करें प्रेमयुत पान॥

[८३]

(राग ईमन—तीन ताल)

प्रभु ! तुम अपनौ बिरद सँभारौ।
हौं अति पतित, कुकर्मनिरत, मुख मधु, मन कौ बहु कारौ॥

तृस्ना-बिकल, कृपन, अति पीड़ित, काम-ताप सौं जारौ।
तदपि न छुटत विषय-सुख-आसा, करि प्रयत्न हौं हारौ॥
अब तौ निपट निरासा छाई, रह्यौ न आन सहारौ।
एक भरोसौ तव करुना कौ, मारौ चाहें तारौ॥

[८४]

(राग पीलू—तीन ताल)

प्रभु ! मोहि देउ साँचौ प्रेम।
भजौं केवल तुमहि, तजि पाखंड झूँठे नेम॥
जरै बिषय-कुबासना, मन जगै सहज बिराग।
होय परम अनन्य तुम्हरे पद-कमल-अनुराग॥

[८५]

(राग खमाच—तीन ताल)

छुड़ा दो विषयोंका अभिमान।
करके कृपा, कृपामय ! हमको दो यह शुभ वरदान॥
धन-जन-पद-अधिकार-देह-सुख-कीरति-पूजन-मान।
उच्च जाति-कुल, सबको समझें बिजली-चमक समान॥
सबको आदर दें, सब ही का करें सदा सम्मान।
दुखियोंमें, बस, तुम्हें देखकर, करें उन्हें सुख-दान॥
देखें नहीं उच्च महलोंको, नहिं देखें धनवान।
देखें राह पड़े दुखियोंको, अपने ही सम जान॥
आश्रयहीन, अनाथ, अपाहिज, रुग्ण, दीन, अज्ञान।
भूखों-नंगोंके हित कर दें जीवनका बलिदान॥
तप्त आँसुओंको नित पोंछें, निज सुखका कर दान।
कभी न इसका बदला चाहें, करें न कुछ अहसान॥
उनकी चीज उन्हींको दे दें, बनें न बेईमान।
इसे न समझें दान कभी भी, करें न गौरव-मान॥
सबमें तुम, सब ही तुम, सब कुछके स्वामी भगवान।
नित्य करें निश्चय अनुभव यह, 'मैं-मेरा' कर दान॥

[८६]

(राग आसावरी—तीन ताल)

माधव ! मो सम कौन अभागी ॥
करौं न पलक याद मैं तुम्हरी, नाहिं भगति उर जागी ।
हाय-हाय करतहि दिन बीतत, जरौं नित्य चिंतागी ॥
भय-बिषाद सौं भर्‌यौ रहौं, नित भटकत इत-उत भागी ।
मिलत न कतहुँ सांति-सुखमय थल, भोग-जगत जेहि लागी ॥
नाथ ! करहु अब सहज कृपा तुम, जागै तव बिरहागी ।
बनौं तुम्हारे पद-कमलनि कौ लघु सेवक बड़भागी ॥

[८७]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

प्रभो ! कृपा कर मुझे बना लो अपने नित्य-दासका दास ।
सेवामें संलग्न रहूँ उल्लसित नित्य, मन हो न उदास ॥
चिन्तन हो न कभी भोगोंका, नहीं विषयमें हो आसक्ति ।
बढ़ती रहे सदा मेरे मन पावन प्रभु-चरणोंकी भक्ति ॥
कभी न निन्दा करूँ किसीकी, कभी नहीं देखूँ पर-दोष ।
बोलूँ वाणी सुधामयी नित, कभी न आये मनमें रोष ॥
कभी नहीं जागे प्रभुता-मद, कभी न हो तिलभर अभिमान ।
समझूँ निजको नीच तृणादपि, रहूँ विनम्र, नित्य निर्मान ॥
कभी न दूँ मैं दुःख किसीको, कभी न भूल करूँ अपमान ।
कभी न पर-हित-हानि करूँ मैं, करूँ सदा सुख-हितका दान ॥
कभी न रोऊँ निज दुखमें मैं, सुखकी करूँ नहीं कुछ चाह ।
सदा रहूँ संतुष्ट, सदा पद-रति-रत, विचरूँ बेपरवाह ॥
प्राणि-पदार्थ-परिस्थितिमें हो कभी न मेरा राग-द्वेष ।
रहे न किंचित् कभी हृदयमें जग-आशा-ममताका लेश ॥
मस्त रहूँ मैं हर हालतमें, करूँ सदा लीलाकी बात ।
देखूँ सदा सभीमें तुमको, सदा रहे जीवन अवदात ॥

[८८]

(राग पीलू—तीन ताल)

प्रभो ! यह कैसा बेढब मोह !
मान लिया था मैंने अब तो गया, हुआ निर्मोह ॥
पर यह तो फिर लौटा, छाया परिकर-सह सब ओर।
आया परदा पुनः नेत्र-पटलोंपर, किया विभोर ॥
हुआ भ्रमित, जल उठी भोग-आकांक्षाकी यह आग।
नहीं तुम्हारा रहा पूर्ववत् आकर्षण-अनुराग ॥
पर अब भी तव मृदु चरणोंपर हैं मेरे हिय-हाथ।
वाणी तव मधुमयी, यदपि कुछ क्षीण, सुन रही नाथ!
इससे आशा अमित, करोगे नहीं कभी तुम त्याग ॥
तुम्हें देख, डरकर यह भारी मोह जायगा भाग।
फिर क्यों अब विलम्ब करते, क्यों नहीं पुराते आश?
क्यों इस मोह-कटकका करते नहीं आशु प्रभु ! नाश?
अब प्रभु ! पूर्णरूपसे मेरे उर नित करो निवास।
इसका पूरा उन्मूलन हो, हो न कदापि प्रकाश ॥

[८९]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

मैं शरण आ पड़ा शरणद नाथ ! तुम्हारी।
मनमें कर दृढ़ विश्वास, आस ले भारी ॥
मुझको अब, हे सर्वस्व ! तुरत अपना लो।
सब विधि करके स्वीकार, सु-यन्त्र बना लो ॥
मेरे जीवनमें अपनी ज्योति जगा दो।
चिर-अन्धकारको निश्चित मार भगा दो ॥
शीतल प्रकाशसे हो जगमग जग सारा।
तम मिटे सभीका, सबमें हो सुख न्यारा ॥

इस ज्ञान-ज्योतिसे हो जीवन आलोकित।
हो नाश सभी अज्ञान, ज्ञान-तन-पुलकित॥
तुम निज सुवास दे, जीवन सुरभित कर दो।
सब जगको उस सुन्दर सुगन्धसे भर दो॥
पाकर पावन सौरभ, पुनीत सब जग हो।
सबका जीवन अति पुण्यधाम सौभग हो॥
सबके जीवनमें तव महिमा जग जाये।
तव कीर्ति-गानमें ही जीवन लग जाये॥
तुम अपनी सुन्दरतासे मुझे सजा दो।
जीवनका बाह्य असार सु-रूप लजा दो॥
इस सुन्दरतासे सारा जग सुन्दर हो।
इससे ही विकसित सुन्दर मन-मन्दिर हो॥
सुन्दर हो सत्से भरा, भरा सुखसे हो।
यह सुन्दर ही तनसे, मनसे, मुखसे हो॥

[९०]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

हे यन्त्री! तुम मुझे बना लो यन्त्र तुम्हारा, सर्वाधार!
अपना कुछ भी रहे न मुझमें, मिटें सभी अभिमान-विकार॥
जो कुछ हो फिर, सभी तुम्हारे ही मनका हो मेरा कार।
भर जायें अणु-अणुमें मेरे सभी तुम्हारे गुण-आचार॥
जहाँ निराशा हो छायी, मैं करूँ वहाँ आशा-संचार।
जहाँ विषाद भरा हो, भर दूँ वहाँ अलौकिक हर्ष अपार॥
जहाँ अमित अपराध, करूँ मैं वहाँ क्षमाका शुचि विस्तार।
जहाँ अँधेरा छाया, मैं प्रकटा दूँ वहाँ प्रकाशागार॥
जहाँ वैर-विद्वेष, जोड़ दूँ वहाँ प्रेमका पावन तार।
जहाँ भरा हो भय पद-पद फैला दूँ वहाँ अभय अनिवार॥

जहाँ भोग रति अति हो, कर दूँ वहाँ विरतिमय सब व्यवहार।
जहाँ भरा अज्ञान, खोल दूँ वहाँ ज्ञानका मैं भण्डार॥
करूँ सभी, पर करूँ न कुछ भी जड पुतलीकी भाँति असार।
एक तुम्हारी ही लीलाकी हो अभिव्यक्ति अनेक प्रकार॥

[९१]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

हरो अभिमान मिटा दो मान, दान दो विनय, महादानी!
हरो अज्ञान, मिटा दो शान, बना दो मुझे सत्य-ज्ञानी॥
मिटें सब पाप, सकल संताप, दिखा दो मुझे रूप अपना।
चराचर अग-जगमें तुम एक सत्य अति, शेष सभी सपना॥
दुःख-सुख सभी तुम्हारे रूप, तुम्हीं छाये सबमें सर्वत्र।
देख पाऊँ मैं सबमें तुम्हें, जन्ममें यत्र, मृत्युमें तत्र॥
तुम्हें भूलूँ न कभी मैं नाथ! तुम्हीं बन रहो चित्त-मन-बुद्धि।
तुम्हीं बन जाओ 'मैं', मैं रहूँ न कुछ भी पृथक्, परम हो शुद्धि॥

[९२]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

हो परमबन्धु तुम पतितोंके, तुम दीनोंके रखवाले हो।
जिसका अपना कोई न रहा, तुम उसके निज घरवाले हो॥
जो होकर सब जगसे निराश, जो सबसे दुत्कारा जाकर।
आता जो शरण तुम्हारी है जो कहीं नहीं आश्रय पाकर॥
तुम उसको, पाप-ताप हरकर हर्षित हो गले लगा लेते।
तुम उसको अभय-दान देकर अति पावन कर अपना लेते॥
तुम सबके सुहद अहैतुक हो, तुम सबके अन्तर्यामी हो।
तुम सबके नित्य आतमा हो, तुम सबके सच्चे स्वामी हो॥
जो तुमपर है निर्भर करता, जो तुमपर न्योछावर होता।
वह छूट सभी जंजालोंसे, है सुखकी नींद सदा सोता॥
हम दीन तुम्हारे द्वार खड़े, हम पतित तुम्हारे पाँव पड़े।
हम घृणित तुम्हारे साथ लड़े, हम पापी अपनी आन अड़े॥

हम कहाँ जायँ ? हैं कौन यहाँ ? जो हमको अपना आश्रय दे ।
है कौन कलमुँहा, हमको रख कलङ्कका टीका सिरपर ले ॥
ऐसे तो एक तुम्हीं दीखे, जो सबसे हृदय मिलाते हो ।
बीती बातोंको याद न कर, जो सबको गोद खिलाते हो ॥
करके विश्वास विरदपर जो आशा करके आ जाता है ।
वह चाहे महापातकी हो, वह गोद तुम्हारी पाता है ॥
तुम नहीं उसे लौटाते हो फिर दुःखालय भव-सागरमें ।
वह शान्ति सनातन पाता है, मिल करके तुम नट-नागरमें ॥
हम भी करके विश्वास, इसी आशापर चरण शरण आये ।
हम निश्चय तुमको पायेंगे, चाहे जो कुछ भी हो जाये ॥

[९३]

(राग परज—तीन ताल)

हर लो हरि ! सुख-सुविधा सारी, तुरत छीन लो धन-जन-मान ।
पद-गौरव-अधिकार मिटा दो, धूल मिला दो झूठी शान ॥
हर लो कला-बुद्धि-विद्या-मद, करो चूर्ण सारा अभिमान ।
तुरत बहा दो विगलित करके ममता-विषयासक्ति महान ॥
नाथ ! हटा दो सारे पर्दे, तुरत मिटा दो सब व्यवधान ।
जिससे दीख पड़े मोहन-मुख, नित्य मिलन-सुखका हो भान ॥
पूर्ण अकिंचन कर दो, भर दो मनमें मधु मुरलीकी तान ।
प्रेम-सुधा-रस-पूर्ण हृदय आ बसो, उसे नित निज गृह जान ॥

[९४]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

'विपदा है करुणाभा, दुःख तुम्हारा है प्रभु ! आशीर्वाद ।
है प्रतिकूल परिस्थिति जगकी सुख-परिणामी बिना विवाद' ॥
यह अनुभूति करा दो, हे प्रभु ! जाग्रत कर दो यह विश्वास ।
लगा रहे मन नित्य तुम्हारे चरणोंमें कल्याण-निवास ॥

सब कुछ भूल, नित्य तुमसे प्रभु ! जुड़ा रहे जीवन निर्बाध।
तृप्त रहूँ मैं नित्ययुक्त हो, रहे न कोई भी मन-साध॥
रहूँ देखता हर हालतमें सदा तुम्हारी मुख-मुसकान।
स्मरण बने जीवनका जीवन, एक तुम्हारा ही हो ध्यान॥

[९५]

(राग वागेश्री—ताल कहरवा)

तोड़-फोड़कर मुझे बना लो, प्रभु ! अपने मनके अनुकूल।
रहने दो न किसी भी बाधक वस्तु-परिस्थितिको तुम भूल॥
तुरत छीन लो उस धनको, इज्जतको, जो बाधक हो अल्प।
कर दो ऐसा सारा सुख-विध्वंस, तुरत करके संकल्प॥
मेरे मनमें उठे कभी यदि तनिक कहीं ऐसा अभिलाष।
जो बाधक हो इसमें, कर दो तुरत, दयामय ! उसका नाश॥
करने मत दो, हाथ-पैर-मुख-मनको ऐसा कोई काम।
जिससे तनिक तुम्हारी अविरत स्मृतिमें आये क्षणिक विराम॥

[९६]

(राग शिवरञ्जनी—ताल-कहरवा)

किया नहीं मैंने सहर्ष प्रभुका विधान सादर स्वीकार।
परिवर्तन-परिवर्धन चाहा संतत निज इच्छा-अनुसार॥
सर्व-समर्थ, सर्व-ज्ञानी, शुचि, परम सुहृद, मङ्गल-आधार।
प्रभुका है अति मङ्गलमय निश्चित प्रत्येक विधान-विचार॥
कहता यह मन, कभी नहीं करता पर, इसको अङ्गीकार।
घोर अविश्वासी, अबुद्धि, उच्छृङ्खल, भोग-गुलाम, गँवार॥
टलता नहीं विधान, भोगना ही पड़ता होकर लाचार।
पर प्रतिकूल भावके कारण होता मनमें दुःख अपार॥
अति विश्वास-सहित यदि करता हर विधानका मैं सत्कार।
तो प्रभु मुझे तुरत अपनाकर स्वयं वहन करते सब भार॥

हो निश्चिन्त भजन-रत रहता पाता सहज शान्ति सुख-सार ।
प्रभुके बल विजयी होता, हट जाता सब मनसे संसार ॥
प्रभु ! मैं दीन-हीन, पामर अति, कलुषित, पतित, पाप-आगार ।
विरद विचार, दयामय ! दे विश्वास-दान, कर दो उद्धार ॥

[९७]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

दुःख दूर मत करो नाथ ! दो शक्ति घोर दुख सहनेकी ।
दुखमें किंतु कृपा-सुख अनुभव कर, कृतज्ञ हो रहनेकी ॥
सुख मत दो, पर हरण करो हरि ! भोग-सुखोंकी सारी भ्रान्ति ।
देख सदा सर्वथा कृपा तव, अनुभव करे चित्त नित शान्ति ॥
दुखमें कभी न रोऊँ मैं, सुखमें भी कभी नहीं फूलूँ ।
दुख-सुख उभय वेषमें लूँ पहचान तुम्हें, न कभी भूलूँ ॥
सुखमें कभी न जागे मेरे मनमें किंचित् भी अभिमान ।
दुखमें तुमपर कभी न हो संदेह तनिक, मेरे भगवान ॥

[९८]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

आर्त-त्राण-परायण, सहज सुहृद, करुणार्णव, परम उदार ।
दीनबन्धु, पामर-उद्धारक, पावन पतित, अमित-दातार ॥
अशरण-शरण, अकिंचनके धन, भयहर दया-समुद्र अपार ।
मुझ-जैसे सम्पूर्ण पतितके लिये तुम्हीं, प्रभु ! हो आधार ॥
दीन-हीन मुझ अशरणको दे पावन चरण-युगलमें स्थान ।
कर दो मुझे अभय अति निर्मल-चित्त-चरित्र आशु भगवान ॥
तनसे करूँ नित्य मैं सेवा, करूँ वचनसे नित गुण-गान ।
सेवारत हों सभी इन्द्रियाँ, मन नित करे तुम्हारा ध्यान ॥

[९९]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

क्षुद्र स्वार्थका नाश करो प्रभु ! कर दो मनको अभी महान।
'प्राणिमात्रका स्वार्थ, स्वार्थ है मेरा'—इसको ले मन मान॥
'मैं'-की सीमा अखिल विश्वके व्यापक 'मैं'-में मिल जाये।
'सबके हितमें ही अपना हित'—यह निश्चय नहिं हिल पाये॥
सब भूतोंमें तुम्हीं भरे हो, सभी तुम्हारे ही हैं देह।
सबकी पूजामें तव पूजा, सबका नेह तुम्हारा नेह॥
छोटे-बड़े, देव-दानव-मानव, पशु-पक्षी हैं तव रूप।
वृक्ष-पहाड़, नदी-नद-सागर, व्योम-वायुमें वही स्वरूप॥
वही पूर्ण हो तुम पृथ्वीमें, तुम्हीं अग्निमें छाये हो।
सूर्य-चन्द्र-नक्षत्र-ज्योतिमें सबमें सदा समाये हो॥
तुम्हीं चराचर सकल विश्वमें, सदा तुम्हारा यह परिचय।
सभी दिशाओं, सभी दशाओं, सब देशोंमें तुम निश्चय॥
सभी रसोंमें, रूप सभीमें, सभी दृश्य-दर्शनमें तुम।
तुम ही द्रष्टा बने सदा ही, तुम्हीं देखते तुममें तुम॥
तुम्हीं स्वप्न-जाग्रत-सुषुप्तिमें, तुम्हीं तुरीय-रूप प्यारे।
भूत-भविष्यत्-वर्तमानका तुम्हीं विचित्र रूप धारे॥
जीवन-मृत्यु, मिलन-बिछुड़न बन तुमही सबमें आते हो।
लाभ-हानि, मानापमानमें अपना रूप छिपाते हो॥
सदा सभीमें तुम्हें देखकर सबका सदा करूँ सम्मान।
नाथ ! कृपा कर मुझे आज ही दे दो यह सुन्दर वरदान॥

[१००]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

जबतक जगमें रहते मुझको 'मेरा' कहनेवाले।
तबतक तुम हो दूर खड़े हँसते हो सदा निराले॥

जबतक रखते मोह-ग्रस्त मुझको ये डाले घेरा।
तबतक तुम कहते सकुचाते खुलकर मुझको 'मेरा'॥
जबतक जगके प्राणि-पदार्थोंको मैं कहता 'मेरा'।
तबतक तुमको कभी नहीं कह पाता खुलकर 'मेरा'॥
जबतक तुमको ही मैं 'मेरा' नहीं बना हूँ पाता।
तबतक 'मेरे-मेरे'-का दावानल सदा जलाता॥
दया करो, इस मोह-पाशसे मुझको तुम्हीं छुड़ाओ।
प्यारभरे शब्दोंमें मुझको कह 'मेरा' अपनाओ॥
समझूँ मैं भी एकमात्र तुमको ही केवल 'मेरा'।
उठे तुरत मेरे जीवनसे सब मायाका डेरा॥

[१०१]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

किसी कामका नहीं जगतमें, हूँ मैं केवल 'भू'-का भार।
केवल एक विलक्षण है सौभाग्य, तुम्हारा पाया प्यार॥
पर यह है शुचि सहज तुम्हारा बिरद, तुम्हारा सहज सुभाव।
हो तुम सुहृद अहैतुक सबके सबको देते मीठे भाव॥
इतनी कृपा करो अब मुझपर, परम कृपामय हे सरकार।
मधुर तुम्हारा स्मरण बने, बस, मेरा एक जीवनाधार॥
मान करूँ मैं सदा तुम्हारा, सुनूँ तुम्हारा ही गुण-गान।
रोम-रोम नित जपे तुम्हारा नाम मधुर मेरे भगवान॥

[१०२]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

'भक्त' नाम लगता अति प्यारा, भक्ति सहज ही भाती है।
लोगोंकी चर्चा कि 'भक्त यह' मनको बहुत सुहाती है॥
'भक्त-भक्ति'के गुण-कीर्तनमें जिह्वा भी ललचाती है।
किंतु भक्तकी 'जीवनचर्या' जीवनमें नहिं आती है॥

भक्त जगत्का मोह त्याग सब, करते तुमसे अविरल प्रीति।
बनकर रसिक विराग-रागके, नित्य निभाते रसकी रीति॥
सभी छोड़कर सबमें रहते, करके ग्रहण अनोखी नीति।
सदा तुम्हें सर्वत्र देखते, कभी कहीं न मानते भीति॥
देख तुम्हें निज मन-मन्दिरमें पल-पलमे प्रमुदित होते।
केवल तुम्हें रिझानेको खाते-पीते, जगते-सोते॥
सतत स्मरण-परायण रहते, क्षणभर व्यर्थ नहीं खोते।
प्रेम-वारि सिञ्चन कर, नित्य तुम्हारे चरण-कमल धोते॥

[१०३]

(राग—भीमपलासी—ताल त्रिताल)

भेड़िया ओढ़ भेड़ की खाल। भुलाकर खा जाता तत्काल॥
यही था मेरा जग में हाल। कपट का फैलाया जंजाल॥
बना मैं साधु, बिरागी, भक्त। रहा मन भोगोंमें अनुरक्त॥
लगाता मैं बगुला-सा ध्यान। मूँदता आँख, रोकता प्रान॥
दृष्टि रहती मछलीकी ओर। सदा रहता मैं विषय—विभोर॥
प्रेमकी कहता सुन्दर बात। ज्ञान चर्चा करता दिन-रात॥
सुनाता मैं वैराग्य महत्त्व। लूटता अर्थ धर्म औ स्वत्व॥
बिचारे भूले, भोले जीव। समझते मुझको संत सजीव॥
ठगीका आता कभी न अन्त। बना रहता मैं पूरा संत॥
नीच मैं डरा नहीं क्षण एक। मिटानी चाही प्रभुकी टेक॥
हुआ सब भाँति अन्त हैरान। छुटानी कठिन हो गयी जान॥
चला तब मैं होकर अति खिन्न। हुई सब मेरी आशा छिन्न॥
नहीं मैं मुँह दिखलाने जोग। मुझे अब भूल जायँ सब लोग॥

[१०४]

(तर्ज गजल—ताल दादरा)

नहीं नापाक, नालायक खलकमें मुझसा कोई और,
भरा लाखों गुनाहोंसे दिखाऊँ मुँह तुझे कैसे?

इबादत की नहीं तेरी, भूलकर भी कभी मैंने,
सताया तेरे बंदोंको, सामने आऊँ मैं कैसे?
मुहब्बत जालिमोंसे की जोड़ ईखलास[1] पुर दिलसे,
किया ईख्तलाफ[2] नेकोंसे, बताऊँ क्या तुझे कैसे?
डराया बेगुनाहोंको, औ लूटा बेबसोंको खूब,
मिटायी आब आदिलकी, करूँ अब क्या, कहो, कैसे?
छोड़ खिदमत खुदा! तेरी, करी अख्तियार बेशर्मी,
बेवफा बन करी चुगली, बचाऊँ अब, कहो, कैसे?
मिटा इन्सानियत सारी, बना खूँखार बेहद मैं,
जान ली बेजुबानोंकी, डरूँ अब मैं नहीं कैसे?
बितायी असनाईमें उम्र, हो बेहया पूरा,
मागूँ अब किस तरह माफी, सजासे अब बचूँ कैसे?
रहमदिल, ऐ मेरे मालिक! करो अब परवरिश मेरी,
छोड़ परवरके दरको मैं जाऊँ अब गैर पै कैसे?

[१०५]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

दीनबन्धु! करुणा-वरुणालय! सहज पतितपावन स्वामी।
दीन-हीन, संतप्त, पतित, मैं सत्पथ-विमुख, कुपथगामी॥ टेक॥
नहीं धर्म-निष्ठा जीवनमें, नहिं सत्कर्मोंका आचार।
फिर निष्काम-भाव, प्रभु-अर्पित कर्मोंकी चर्चा बेकार॥
मलिन हृदयमें होता कैसे नित्य-अनित्य वस्तुका ज्ञान।
बिना विवेक विराग नहीं, वैराग्य बिना कैसा विज्ञान।
भोग-वासनाओंमें फँसकर जीवन बना काम-कामी॥ १॥ दीन॰

१-मेल मिलाप। २-विरोध।

ममता और अहंताका जीवनमें कभी न नाश हुआ।
ममता लगी न प्रभु-चरणोंमें, 'अहं' न प्रभुका दास हुआ॥
जगके प्राणि-पदार्थोंमें ममताका सदा विकास हुआ।
अहं-भावका तनमें, मनमें, कृतिमें नित्य प्रकाश हुआ॥
'मैं-मेरे'में मत्त, दीखती नहीं मुझे अपनी स्वामी॥ २॥ दीन०
नहीं प्रेमका लेश हृदयमें, भक्ति-भावका बीज नहीं।
बड़ी-बड़ी व्याख्याएँ करता, पर अपने घर चीज नहीं॥
कहता—'प्रभुपर श्रद्धा रक्खो', निज मन धीज-पतीज नहीं।
प्रीति-प्रतीति पापमें संतत, मनमें कुछ भी खीझ नहीं॥
तन, मन, वचन—सभीसे मैं अघभरे अधःपथका गामी॥ ३॥ दीन०
अपने अघ-सागर अगाधको सदा छिपाता मैं रहता।
रज-सम पर-अघ-अङ्कुरको पर्वतकर मैं सबसे कहता॥
पर-सुख देख जला करता मैं, पर-पीड़ामें सुख लहता।
पर-निन्दा प्यारी अति लगती, पर-यश दुःखसहित सहता॥
निन्दनीय मेरा जीवन यह, होगा क्यों न नरक-गामी!॥ ४॥ दीन०
विविध वेष धर विविध भाँतिसे लोगोंको नित मैं ठगता।
भक्ति-प्रेम, वैराग्य-ज्ञानके साधन कह-कह मुँह लगता॥
ऊपरसे निःस्पृह-सा रहता, स्वार्थ-सिद्धिमें नित जगता।
काम-भोगके साधनमें संलग्न, नहीं पलभर भगता॥
ऐसा मैं अति नीच, असुर-मति, दुष्कृति, सहज नरक-धामी॥ ५॥ दीन०
हुआ अमिट दृढ़ निश्चय अब तो, मुझे कहीं भी ठौर नहीं।
मुझको रक्खें ऐसे शरणद आप सरीखे और नहीं॥
घृणित, नराधम, नरक-कीट, मेरे पापोंका छोर नहीं।
कर विश्वास आ पड़ा प्रभुके चरणोंमें, कुछ जोर नहीं॥
होकर आज अनन्य अघी मैं, हूँ प्रभु-पदका अनुगामी॥ ६॥ दीन०

[१०६]

(राग कल्याण—तीन ताल)

नाथ ! हौं केहि बिधि करौं पुकार ॥
निपट निलज्ज निखिल खल-दल महँ, हौं सब कौ सरदार ।
जितने अवगुन गनिये जग महँ, मैं सब कौ भंडार ॥
अतिसय कुटिल कलंकी कामी, कल्मष कौ आगार ।
कलह-प्रिय, कलि-कलुष-निकेतन, कपटी, क्रूर-बिचार ॥
द्वेषी परम, दोष-दरसन-पटु, द्रोही, दंभाचार ।
दया-रहित, दुर्मद, दुर्भग अति, दुष्टाचार-बिचार ॥
लंपट, लोलुप इंद्रिय-सुख कौ, धन-लालची-लबार ।
निंदक, पिसुन-परायन, पामर, अति मानी, अबिचार ॥
ज्ञान-बिराग सिखावौं सब कौं, कहौं भगति कौ सार ।
प्रेम पुनीत बखान, ठगौं जग, मिथ्या आँसू ढार ॥
कहौं-कहावौं दास तिहारौ, सब महँ करौं प्रचार ।
सुख की आस लगी बिषयन सौं, प्रभु की कृपा बिसार ॥
'करौ सहज बिस्वास कृपा पर, उतरौ भव-निधि पार' ।
कहि-कहि सदा सबन्हि समुझावौं, निज मन कछु न बिचार ।
जिमि मलभरे बाल सौं माता करती सहज दुलार ॥
निज कर धोइ-पोंछि, गोदी लै, जननि बढ़ावति प्यार ।
तिमि मो सम अति नीच जंतु के सब अपराध बिसार ॥
सहज कृपालु दयासागर प्रभु कीन्ही कृपा अपार ।
मो सम महापातकी कौ नहिं नरकहु में निस्तार ।
निज दिसि देखि दयामय करिहैं निस्चै ही उद्धार ॥
दीनबंधु हरि सहज सुहृदबर, अघहर परम उदार ।
देहु ग्यान, बैराग्य, भगति, पद-प्रीति अमित-दातार ॥

[१०७]

(राग आसावरी—तीन ताल)

नाथ ! हौं निपट निरंकुस नीच ।
नरक-कीट मैं पर्‌यौ रहौं नित पाप-तापके कीच ॥
करौं भगति की बात मनोहर, भीतर भरे बिकार ।
अंतरजामी तुमहू तें मैं करौं कपट-ब्यौहार ॥
निज सुभावबस, नाथ दयाकर ! पकरि उधारौ हाथ ।
पाप-प्रबाह पतित पामर कौं करौ, कृपालु ! सनाथ ॥

[१०८]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

मेरे मनके धन तुम ही हो, तुम ही मेरे तनके श्वास ।
आश्रय एक, भरोसा तुम ही, तुम ही एकमात्र विश्वास ॥
मैं अति दीन सर्वथा सब विधि, हूँ अयोग्य असमर्थ मलीन ।
नहीं तनिक बल-पौरुष, आश्रय अन्य नहीं, सब साधन-हीन ॥
नहीं जानता भुक्ति-मुक्ति मैं, नहीं जानता है क्या बन्ध ।
एक तुम्हारे सिवा कहीं भी मेरा रह न गया सम्बन्ध ॥
नहीं जानता तुम कैसे हो, क्या हो, नहीं जानता तत्त्व ।
'तुम मेरे हो, मेरे ही', बस तुमसे ही मेरा अपनत्व ॥
दीनोंको आदर देने, उनको अपनानेका नित चाव—
रहता तुम्हें, तुम्हारा ऐसा सहज विलक्षण मृदु स्वभाव ॥
इस ही निज स्वभाववश तुम दौड़े आते दीनोंके द्वार ।
उन्हें उठाकर गले लगाते, करते उन्हें स्व-जन स्वीकार ॥
जैसे शिशु मलभरा, न धो सकता गंदा मल किसी प्रकार ।
नहीं जानता मल भी क्या है, केवल माँको रहा पुकार ॥
शिशुकी करुण पुकार सहज सुन, स्नेहमयी माँ आ तत्काल ।
मल धो-पोंछ स्व-कर कर देती स्तन्य-सुधा दे उसे निहाल ॥

वैसे ही तुम आकर उसके हरते पाप-ताप त्रयशूल।
हृदय लगा उल्लासभरे मुख, देते स्नेह-सुधा सुखमूल॥
करते उसे परम पावन तुम, पूजनीय सबका सब ठौर।
धन्य तुम्हारी दीनबन्धुता! धन्य स्वभाव सकल सिरमौर॥
तब भी मानव दीन न बनता, नहीं छोड़ता वह अभिमान।
इसीलिये वञ्चित रह जाता, कृपासुधासे कृपानिधान!
पूर्ण दैन्यका भाव जगा दो, पूर्ण बना दो अज्ञ अमान।
मातृपरायण शिशु-सा उसे बना दो, करुणाकर भगवान!
जिससे वह पा जाये सहज कृपामृत-सागरका संधान।
डूबा उसमें रहे निरन्तर, करता रहे सदा रसपान॥

[१०९]

(राग बिहाग—तीन ताल)

को अपराधी मो सम आन?
प्रभु-बंचक, पर-बंचक, पुनि निज-बंचक, बेईमान॥
भटक रह्यौ भोगनि महँ भूल्यौ सब भविष्य कौ भान।
अघमय नित्य कुकर्मपरायन, तजि मानवता-मान॥
मलिन बिचार, कर्म सब गंदे, ममता-मद-अभिमान।
काम-लोभ कौ चेरौ, निसि-दिन करौं पाप हित जान॥
नहीं धर्म कौ भय कछु मो मन, नहिं करतब कौ ग्यान।
बिसरि गए सब-दरसी उर में बसे सदा भगवान॥
जपूँ न नाम तुम्हारौ कबहूँ, करूँ न कबहूँ ध्यान।
जूता लगैं, तदपि मैं जाऊँ फिरि-फिरि तहँ जिमि स्वान॥
प्रभु मो नीच पतित पाँवर कौं करौ कृपा कौ दान।
जेहि-केहि बिधि राखौ चरननि महँ, निपट निराश्रय जान॥

[११०]

(राग भैरवी—तीन ताल)

नीच मैं मूढ़ दोष की खान।
बीत रह्यौ नर-जन्म बृथा ही, मानि रह्यौ मतिमान ॥
सुत-बित-रमनि-रमन पद-गौरव, जो छनभंग, अनित्य।
फँस्यौ रैन-दिन मन इन बिषयनि, भूलि सत्य सुख नित्य ॥
समुझौं-समुझावौं नित सब कौं, दुःखजोनि सब भोग।
पै मेरौ मन रम्यौ इनहि में, छाँड़ि कृष्न-संजोग ॥
सोवत, रोवत, पढ़त, खात, खेलत बीत्यौ बहु काल।
धन-जन मान-बड़ाई-हित नित चिंतातुर बेहाल ॥
मानव-जन्म सुदुर्लभ हरि नै बड़ी दया करि दीन्हौ।
सो हौं प्रभुहि बिसारि, भोग-रत, पाप-निकेतन कीन्हौ ॥
अब हे सहज दयानिधि ! अपनौ बिरुद देखि अपनाऔ।
पाप-पंक सौं खींचि तुरत, निज चरननि माँझ बसाऔ ॥

[१११]

(राग मालकोस—तीन ताल)

मलिन यह मन-मन्दिर, घनश्याम !
टूटा, बिखरा, पङ्कपूर्ण, भर रहे कुजन्तु तमाम ॥
नहीं खड़े होनेको भी है इसमें कोई स्थान।
फिर आसन-आचमन कहाँ ? हो कैसा अर्घ्य-स्नान ?
नहीं एक शुचि द्रव्य, दे सकूँ जो तुमको उपहार।
नहीं सरस वाणी जिससे कर सकूँ तनिक सत्कार ॥
नहीं तनिक पूजा-सामग्री, नहीं योग्यता-लेश।
मिथ्या बना पुजारी डोलूँ, धरे कपटमय वेश ॥
कैसे तुम्हें बुलाऊँ फिर, मैं कुमति कलुष-आगार।
उमड़ रहा दोषोंका जिसमें निरवधि पारावार ॥
नहीं सरल विश्वास, करा दे जो दुःखमें चीत्कार।
नहीं अनन्य प्रपत्ति, खुल पड़े जिससे करुणागार ॥

नहीं दैन्य, जो करवा देता नीरव करुण पुकार।
जिससे तुम हो द्रवित दौड़ते सहज दयालु उदार॥
तुम ही जानो, करो उचित जो लगे तुम्हें, सरकार!
शील-सुभाव तुम्हारा करना पामर-जनसे प्यार॥

[११२]

(राग भैरव—तीन ताल)

जनम सब बीत्यौ अघ कें काम।
फँस्यौ मोह-ममतामें निसि दिन भज्यौ न चित दै राम॥
लोगनि कह्यौ—'भजौ नित हरि कौं', धर्‌यौ साधु कौ बेष।
मन में रही कामिनी-कंचन की कामना बिसेष॥
जैसैं बिषपूरित घट-मुख मिथ्या पय सोभा पावै।
तैसैंहिं कुटिल-हृदय मम मुख पर सुचि हरिकथा सुहावै॥
पापी परम, अधम, अभिमानी, बंचक, मन कौ कारौ।
बिरुद बिचारि दयानिधि! अब मोहि निज चरननि में डारौ॥

[११३]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

नहीं गर्भगृह ऐसा, जिसमें नाथ! तुम्हें पधराऊँ।
नहीं उपकरण पूजाके कुछ, जिनसे पूज रिझाऊँ॥
नहीं स्वर-सुधा फटे कण्ठमें, जो मैं गाय सुनाऊँ।
नहीं वाद्य, जो नाथ! तुम्हारे सम्मुख सरस बजाऊँ॥
इस सराय-से घरमें प्रभु! तुम आओ तो आ जाओ।
बिना बुलाये, पूजाकी कुछ बात न मनमें लाओ॥
पामर-परित्राणका अपना मङ्गल विरद बढ़ाओ।
इस पद-विमुख अधमपर बरबस कृपा-सुधा बरसाओ॥

[११४]

(राग परज—ताल कहरवा)

मैंने कभी न चाहा तुमको, तुमने चाहा बारंबार।
बिना बुलाये ही आ हियमें, दर्शन दिये, किया अति प्यार॥
नित आदरके बदले तुमने मुझसे पाई निज दुतकार।
दूर चले जानेपर मुझको खींच लिया नित भुजा पसार॥
'लौटो, उस पथपर मत जाओ'—कहा कानमें कितनी बार।
तब भी चला गया, लौटानेको तुम दौड़े प्रिय! हर बार॥
चिर अपराधी, पापीका तुमने हँस उठा लिया सब भार।
मेरी निज-निर्मित विपदासे गोद उठाकर लिया उबार॥

[११५]

(राग शिवरञ्जनी—तीन ताल)

तुमने दिया सदा ही मुझको, अपना प्यार-दुलार महान।
मैंने सिर न चढ़ाया उसको, किया निरन्तर ही अपमान॥
मैं कृतघ्न अति, नीच नराधम, सभी भाँति अति हीन, मलीन।
दीनबन्धुने दोष न देखे, अपना लिया, जान जन दीन॥
जैसे स्नेहमयी माँ शिशुका मल धोती, नहलाती आप।
स्नेह सिन्धु तुमने वैसे ही किया विशुद्ध, मिटा मल-ताप॥
मेरी निपट नीचता अतिशय, दया तुम्हारी अमित, अपार।
सहज दयावश भस्म कर दिया तुमने मेरा अघ-सम्भार॥
चरण-शरण मिल गयी सदाको, छाया सुधानन्द सब ओर।
उदय हो गया प्रेम-सूर्य अब, मिटा मोह-माया-तम घोर॥

[११६]

(राग बागेश्री—तीन ताल)

सर्वरहित, एकाकी वनमें खड़ा कर रहा दीन पुकार।
'दीनबन्धु! हे सुहृद-शिरोमणि! सर्वेश्वर! अनुपम दातार॥

मैं अति पतित, विषय-विष-जर्जर, सन्मार्गच्युत, अधम अपार।
आश्रयरहित, साधना-विरहित, हृदय अपरिमित पूर्ण विकार॥
कर दृढ़ निश्चय हो अनन्य, मैं चरण-शरण आया हूँ द्वार।
कर परिशुद्ध, बना लो अपना, विरद-विवश हे परम उदार॥

[११७]

(राग भीमपलासी—तीन ताल)

कोई कहते 'संत' मुझे, कुछ कहते 'प्रेमी भक्त महान'।
कैसा था, क्या था, मैं अब कैसा, क्या हूँ सब तुमको ज्ञान॥
अगणित दुरितोंसे, दोषोंसे, दुर्भावोंसे हूँ भरपूर।
राग-कामना-कोप-दम्भ-मद-मान-मोह-ममतासे चूर॥
सदा छिपाता हूँ दोषोंको, साधु-वेष करता बदनाम।
घोर अशान्त, भयानक जलती चिन्ताकी भट्ठी अविराम॥
करुणासिन्धु पतित-पावन प्रभु ! सर्व-सुहृद तुम, सहज उदार।
विरद-हेतु प्रस्तुत रहते नित, करनेको तुम पतितोद्धार॥
दीनबन्धु ! मैं महापतित, अति दीन, पड़ा हूँ चरणप्रान्त।
दोष हरणकर सारे, मुझे बना लो निज सेवक शुचि, शान्त॥

[११८]

(राग पीलू—तीन ताल)

किया न मैंने भूलकर, तुमसे प्यारे ! प्यार।
पर तुम अपने-आप ही करते रहे दुलार॥
प्यार तुम्हारा मैं रहा ठुकराता हर बार।
दूर भागता, पकड़ तुम लाते हाथ पसार॥
'मत जाओ उस मार्ग' तुम कहते बारंबार।
हठपूर्वक जाता चला, दौड़े जाते लार॥
चिर अपराधी, अघोंका ढोया बोझ अपार।
(मेरे) निज निर्मित दुखमें लिया तुमने गोद सँभार॥

****

[११९]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

क्रोध-मोह-मद-अघ भर्‌यौ, धर्‌यो हृदय अभिमान।
सब कौं तुच्छ गनौं, करौं सबही कौ अपमान॥
प्रभु-बंचक, बंचक-जगत, निज-बंचक, अघ धाम।
फँस्यौ इंद्रियन के विषयँ, नित मैं भोग-गुलाम॥
प्रेमी, ग्यानी, भक्त, संत—बड़े दूर की बात।
नरक-कीट मैं मोहबस, पापनिरत दिन-रात॥
मो-सौ अधम न पातकी या जग में कोउ और।
स्वर्ग-भोग की का कथा, नरकहुँ में नहिं ठौर॥
सब सौं नित सेवा लहौं, करौं, भंड उपदेस।
हिय में तनिक न कतहुँ कहुँ, संतपने कौ लेस॥
फूटै मेरौ पाप-घट, घृना करें सब लोग।
अपनी करनी के विषम भोगूँ मैं सब भोग॥
प्रभु! मोकूँ यह दीजिये, करुनामय! बरदान।
जासौं मेरे अघ कटैं, होय परम कल्यान॥

[१२०]

(राग जंगला—तीन ताल)

मानव-जन्म सुदुर्लभ पाकर, भजे नहीं मैंने भगवान।
रचा-पचा मैं रहा निरन्तर, मिथ्या भोगोंमें सुख मान॥
मान लिया मैंने जीवनका लक्ष्य एक इन्द्रिय-सुख-भोग।
बढ़ते रहे सहज ही इससे नये-नये तन-मनके रोग॥
बढ़ता रहा नित्य कामज्वर, ममता-राग-मोह-मद-मान।
हुई आत्म-विस्मृति, छाया उन्माद, मिट गया सारा ज्ञान॥
केवल आ बस गया चित्तमें राग-द्वेष-पूर्ण संसार।
हुए उदय जीवनमें लाखों घोर पतनके हेतु विकार॥

समझा मैंने पुण्य पापको, ध्रुव विनाशको बड़ा विकास।
लोभ-क्रोध-द्वेष-हिंसावश जाग उठा अघमें उल्लास॥
जलने लगा हृदयमें दारुण अनल, मिट गयी सारी शान्ति।
दग्ध हो गया जीवन-सम्बल, छायी अमित-सी भ्रान्ति॥
जीवन-संध्या हुई, आ गया इस जीवनका अन्तिम काल।
तब भी नहीं चेतना आयी, टूटा नहीं मोह-जंजाल॥
प्रभो! कृपा कर अब इस पामर, पथभ्रष्टपर सहज उदार।
चरण-शरणमें लेकर कर दो, नाथ! अधमका अब उद्धार॥

[१२१]

(राग देस—तीन ताल)

मेरे अघका पार नहीं है।
इन्द्रिय-लोलुप मैं अति भारी,
खोकर कुल-मर्यादा सारी,
कुत्सित-कर्मी अत्याचारी,
कोई अघ इनकार नहीं है॥ मेरे०॥ १॥

जगमें ज्ञानी भक्त कहाता,
भाँति-भाँतिके तन-सुख पाता,
रखता सिर्फ भोगसे नाता,
क्या यह पाप-प्रसार नहीं है?॥ मेरे०॥ २॥

दिव्य प्रेमकी बातें बकता,
कामानल अति हृदय धधकता,
पाप-प्रवाह न पलभर रुकता,
क्या यह भ्रष्टाचार नहीं है?॥ मेरे०॥ ३॥

अपनेको 'चैतन्य' बताता,
प्रेमी सज, रस-अश्रु बहाता,
पर मन हरि-रस-रूखा पाता,
क्या यह दुष्टाचार नहीं है? ॥ मेरे० ॥ ४ ॥

मिथ्या गाता, मिथ्या रोता,
मिथ्या सारी सुध-बुध खोता,
मिथ्या ही मूर्छागत होता,
क्या यह मिथ्याचार नहीं है? ॥ मेरे० ॥ ५ ॥

कभी 'तथागत' बन इतराता,
'दुःख-दुःख'की टेर लगाता,
मनमें बँधा भोग-सुख-ताँता,
क्या यह छल-विस्तार नहीं है? ॥ मेरे० ॥ ६ ॥

खुद अवतार कभी बन जाता,
खुलकर खूब पाँव पुजवाता,
तरह-तरह छल-छद्म बनाता,
क्या यह कपटाचार नहीं है? ॥ मेरे० ॥ ७ ॥

रचकर ढोंग जगतको छलता,
महापाप भी मन नहिं खलता,
हरि-हित होती नहीं विकलता,
क्या यह असुराचार नहीं है? ॥ मेरे० ॥ ८ ॥

देख रहे सब अन्तर्यामी!
छिपा न कुछ भी तुमसे स्वामी!
तुमसे भी छल करता कामी,
मुझ-सा और गँवार नहीं है! ॥ मेरे० ॥ ९ ॥

मैं अघ सहज सदा ही करता,
कभी नहीं, कैसे भी डरता,
क्षमामूर्ति तुम, दुष्कृत-हर्ता,
क्या यह कृपा अपार नहीं है? ॥ मेरे० ॥ १० ॥

जिसने शुभ-धारा सब खोई,
मुझ-सा नीच न दूजा कोई,
पर तुम-सा न दयामय कोई,
ऐसा जग दातार नहीं है ॥ मेरे० ॥ ११ ॥

मैं अपराधी सदा तुम्हारा,
पर मैं नित्य तुम्हें अति प्यारा,
कभी न तुमने मुझे बिसारा,
क्या यह अजब दुलार नहीं है? ॥ मेरे० ॥ १२ ॥

सदा तुम्हारा प्यार पा रहा,
सदा तुम्हारा दिया खा रहा,
तब भी नित विपरीत जा रहा,
कुछ भी सोच-विचार नहीं है! ॥ मेरे० ॥ १३ ॥

नीच, दोष मम अन्तहीन है,
किंतु तुम्हारी क्षमा पीन है,
होती कभी न तनिक क्षीण है,
उसका कोई पार नहीं है ॥ मेरे० ॥ १४ ॥

करते कृपा न कभी अघाते,
गिरे हुएको स्वयं उठाते,
हाथ पकड़ सन्मार्ग चलाते,
तुम-सा प्रेमाधार नहीं है ॥ मेरे० ॥ १५ ॥

अपना विरद पुनीत निभाते,
दोष भूल सिर हाथ फिराते,
ले निज गोद नित्य दुलराते,
क्या अथाह यह प्यार नही है?
मेरे अघका पार नहीं है ॥ मेरे० ॥ १६ ॥

[१२२]

(राग परज—ताल कहरवा)

कैसे लूँ मैं नाम तुम्हारा, कैसे करूँ सुखद विस्तार।
ढका रहे वह, यही चाहता मैं, 'हो मेरा नाम-प्रचार' ॥
कहता हूँ—'मैं नाम तुम्हारा ही हूँ रात-दिवस गाता।'
पर उसकी ले आड़, नाम नित अपना ही मैं फैलाता!

ढककर ऋषि-मुनियोंकी और तुम्हारी भी वाणीको नित्य।
अपनी वाणीको कर आगे, उसे बताता हूँ ध्रुव सत्य ॥
काट तुम्हारी लिखी पङ्क्तियाँ, उनपर अपनी लिखता बात।
अपने लेखन-कौशलकी महिमासे मानो करता घात ॥

करके नीचे नाम सभीके, रखता ऊँचा अपना नाम।
शोभा हर औरोंकी, खूब सजाता अपनेको बेकाम ॥
सबके सुरको दबा, सहज मैं बजना स्वयं चाहता आप।
इसीलिये सबकी निन्दा कर मिथ्या नित्य बढ़ाता पाप ॥

हर लो नामजनित यह मेरी भीषणतम विपत्तिको नाथ!
अब इस नाम-मोहसे तुरत बचा लो, स्वयं बढ़ाकर हाथ ॥
फैले मेरे जीवनसे फिर जगमें सत्य तुम्हारा नाम।
इससे जीवोंके सँग मैं भी पहुचूँ परम तुम्हारे धाम ॥

[१२३]

(तर्ज गजल)

गुनाहोंसे भरी है यह नापाक जिंदगी मेरी।
परवरदिगार! कभी न गई गुनाहोंपर नजर तेरी॥
तूने हमेशा मुझ गुनहगारपर नजरे मेहर की।
प्यारसे पास बिठलाया, कभी भी दुत्कार न दी॥
कहा—'बच्चे! तुझ बेसमझके सारे गुनाह माफ हैं।
तेरे लिये मेरी रहमका रास्ता सदा साफ है'॥
क्या शुक्रिया अदा करूँ, मालिक! मैं खादिम तेरा।
कदमोंमें पड़ा रख औ कहता रह—'तू गुलाम मेरा'॥

[१२४]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

भरा अमित दोषोंसे हूँ मैं, श्रद्धा-भक्ति-भावना-हीन।
साधनरहित, कलुष-रत अविरत, संतत चञ्चल-चित्त, मलीन॥
पर तू है मैया मेरी वात्सल्यमयी शुचि स्नेहाधीन।
हूँ कुपुत्र, पर पाकर तेरा स्नेह रहूँगा कैसे दीन॥
तू तो दयामयी रखती है मुझको नित अपनी ही गोद।
भूल इसे, मैं मूर्ख मानता हूँ भवके भोगोंमें मोद॥
इसी हेतु घेरे रह पाते पाप-ताप मुझको सविनोद।
मैया! यह आवरण हटा ले, बढ़े सर्वदा शुभ आमोद॥

[१२५]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

परम सत्य जो नित्य हैं आत्यन्तिक सुखरूप।
चेतन, अमल, अनादि, अज, अव्यय, अचल, अनूप॥
सर्वरूप, सबसे परे, लीलामय, सब-मूल।
रामभद्र वे दासपर रहें सदा अनुकूल॥

[१२६]

(राग देस—तीन ताल)

जीवनको संगीत बना दो।
मेरी हृत्तन्त्रीके तारोंसे सबको मधु तान सुना दो॥
मेरे जीवनके मधु-रससे सबके जीवनको सरसा दो।
मेरी हँसी सुख-भरीसे तुम सबको हे! दुखमध्य हँसा दो॥
सबके दुखमें मेरे सुखको धन्य बनाकर नाथ! मिला दो।
निज पद-कमल-सुधा-रस-सरिता-तटपर सबको स्थान दिला दो॥

[१२७]

(राग जैजैवन्ती—ताल झूमरा)

कर प्रणाम तेरे चरणोंमें लगता हूँ अब तेरे काज।
पालन करनेको आज्ञा तव मैं नियुक्त होता हूँ आज॥
अन्तरमें स्थित रहकर मेरी बागडोर पकड़े रहना।
निपट निरङ्कुश चञ्चल मनको सावधान करते रहना॥
अन्तर्यामीको अन्तःस्थित देख सशङ्कित होवे मन।
पाप-वासना उठते ही हो नाश लाजसे वह जल-भुन॥
जीवोंका कलरव जो दिनभर सुननेमें मेरे आवे।
तेरा ही गुण-गान जान मन प्रमुदित हो अति सुख पावे॥
तू ही है सर्वत्र व्याप्त हरि! तुझमें यह सारा संसार।
इसी भावनासे अन्तरभर मिलूँ सभीसे तुझे निहार॥
प्रतिपल निज इन्द्रिय-समूहसे जो कुछ भी आचार करूँ।
केवल तुझे रिझानेको, बस, तेरा ही व्यवहार करूँ॥

[१२८]

(राग तिलंग—ताल तीन ताल)

अब हरि! एक भरोसो तेरौ।
नहिं कछु साधन ग्यान-भगति कौ, नहिं बिराग उर हेरौ॥

अघ ढोवत अघात नहिं कबहूँ, मन बिषयन कौ चेरौ।
इंद्रिय सकल भोगरत संतत, बस न चलत कछु मेरौ॥
काम-क्रोध-मद-लोभ-सरिस अति प्रबल रिपुन तें घेरौ।
परबस पर्‌यौ, न गति निकसन की जदपि कलेस घनेरौ॥
परखे सकल बंधु, नहिं कोऊ बिपद-काल कौ नेरौ।
दीनदयाल दया करि राखउ, भव-जल बूड़त बेरौ॥

[१२९]

(राग बागेश्री—ताल तीन ताल)

प्रभु ! तुम अपनो बिरद सँभारौ।
अधम-उधारन नाम धरायौ अब मत ताहि बिसारौ॥
मोसों अधिक अधम को जग महँ पापिन महँ सरदारौ।
ढूँढ़-ढूँढ़ जग अघ अति कीन्हें गनत न आवै पारौ॥
मोरे अघ कौं लिखत-लिखावत चित्रगुप्त पचि हारौ।
तऊ न आयौ अंत अघन कौ, छाड़ी कलम बिचारौ॥
अब लौं अधम अनेक उधारे, मो सों पल्लौ डारौ।
राखो लाज नाम अपने की, मत खोऔ पतियारौ॥

[१३०]

(राग खमाच—ताल दीपचंदी)

(मारवाड़ी बोली)

नाथ मैं थारो जी थारो।
चोखो, बुरो, कुटिल अरु कामी, जो कुछ हूँ सो थारो॥
बिगड़्यो हूँ तो थाँरो बिगड़्यो, थे ही मनै सुधारो।
सुधर्‌यो तो प्रभु सुधर्‌यो थाँरो, थाँ सूँ कदे न न्यारो॥
बुरो, बुरो, मैं भोत बुरो हूँ, आखर टाबर थाँरो।
बुरो कुहाकर मैं रह जास्यूँ, नाँव बिगड़सी थाँरो॥

थाँरो हूँ, थाँरो ही बाजूँ, रहस्यूँ थाँरो, थाँरो !!!
आँगलियाँ नुँहँ परै न होवै, या तो आप बिचारो ॥
मेरी बात जाय तो जाओ, सोच नहीं कछु म्हाँरो ।
मेरे बड़ो सोच यों लाग्यो बिरद लाजसी थाँरो ॥
जचे जिस तराँ करो नाथ ! अब, मारो चाहे त्यारो ।
जाँघ उघाड्याँ लाज मरोगा, ऊँडी बात बिचारो ॥

[१३१]

(राग जोगी—ताल दीपचंदी)

(मारवाड़ी बोली)

नाथ ! थाँरै सरणै आयो जी ।
जचै जिस तराँ खेल खिलाओ, थे मन-चायो जी ॥
बोझो सभी ऊतर्‌यो मनको, दुख बिनसायो जी ।
चिंता मिटी, बड़े चरणाँको स्हारो पायो जी ॥
सोच-फिकर अब सारो थाँरै ऊपर आयो जी ।
मैं तो अब निस्चिंत हुयो अंतर हरखायो जी ॥
जस-अपजस सब थाँरो मैं तो दास कुहायो जी ।
मन भँवरो थाँरै चरण-कमलमें जा लिपटायो जी ॥

[१३२]

(राग पीलू—ताल दीपचंदी)

(मारवाड़ी बोली)

नाथ ! थाँरै सरण पड़ी दासी ।
(मोय) भव-सागरमें त्यार काटद्यो जनम-मरण-फाँसी ॥
नाथ मैं भोत कष्ट पाई ।
भटक-भटक चौरासी जूणी मिनख-देह पाई ।
मिटाद्यो दुःखाँकी रासी ॥

नाथ ! मैं पाप भोत कीना।
संसारी भोगाँकी आसा दुःख भोत दीना।
कामना है सत्यानासी ॥
नाथ ! मैं भगति नहीं कीनी।
झूठा भोगाँकी तृसनामें उम्मर खो दीनी।
दुःख अब मेटो अबिनासी ॥
नाथ ! अब सब आसा टूटी।
(थाँरै) श्रीचरणाँकी भगति एक है संजीवन-बूटी।
रहूँ नित दरसणकी प्यासी ॥

[१३३]

(राग भीमपलासी—ताल तीन ताल)

(मारवाड़ी बोली)

नाथ ! मनें अबकी बार बचाओ ॥ टेक ॥
फँस्यो आय मैं भँवर-जाल, निकलणकी बाट बताओ।
रस्तो भूल्यो, मिल्यो अँधेरो, मारग आप दिखाओ ॥
दुखियानै उद्धार करणको, थाँरै घणो उमाओ।
मेरै जिस्यो दुखी कुण जगमें, प्रभुजी आप बताओ ॥
भोत कष्ट मैं भुगत्या स्वामी, अब तो फंद कटाओ।
धीरज गई, धरम भी छूट्यो, आफत आप मिटाओ ॥
आरत भोत हो रह्यो प्रभुजी ! अब मत बार लगाओ।
करो माफ तकसीर दासकी, सरण मनैं बकसाओ ॥

[१३४]

(राग पहाड़ी—ताल कहरवा)

(मारवाड़ी बोली)

अब कित जाऊँ जी ! हार कर सरणै थाँरै आयो ॥

जबतक धनकी धूम रही घर भायाँ सेती छायो।
साला-साढ़ू भोत नीसर्‌या, नेड़ोइ साख बतायो॥
अणगिणतीका बण्या भायला, प्रेम घणो दरसायो।
एक एकसें बढ़कर बोल्यो, एकहिं जीव बतायो॥
सभा-समाज, पंच-पंचायत, ऊँचो भोत बिठायो।
वाह-वाहकी धूम मचाई स्याणो घणो बतायो॥
घरका सभी, साख सबहींसूँ, सबहीकै मन भायो।
बाताँ सेती सभी पसीनै ऊपर खून बुहायो॥
लक्ष्मी माता करी कृपा जद, चंचल रूप दिखायो।
माया लई समेट, भरमको पड़दो दूर हटायो॥
मात-पितानै खारो लाग्यो, भायाँ मान घटायो।
साला-साढ़ू सभी बीछड़्या, कोइ न नेड़ो आयो॥
'एक जीवका' भोत भायला, एक न आडो आयो।
उलटी हँसी उड़ाई जगमैं, बेवकूफ बतलायो॥
टूट्यो प्रेम, छुट्यो सँग सबसूँ सब कोई छिटकायो।
नाक चढ़ाकर मुँहसूँ बोल्या, सब जग हुयो परायो॥
सुखको रूप समझकर जगने, भोत दिनाँ भरमायो।
खुल गई पोल, रूप सगलाँको असली चौड़ै आयो॥
मिटी भरमना सारी, थाँरै चरणाँ चित्त लगायो।
नाथ! अनाथ पतित पापीने तुरत सनाथ बणायो॥

[१३५]

(राग साहना—ताल तेवरा)

हे दयामय! दीनबन्धो! दीनको अपनाइये।
डूबता बेड़ा मेरा मझदार पार लँघाइये॥
नाथ! तुम तो पतितपावन, मैं पतित सबसे बड़ा।
कीजिये पावन मुझे मैं शरणमें हूँ आ पड़ा॥

तुम गरीब-निवाज हो, यों जगत सारा कह रहा।
मैं गरीब अनाथ दुःख-प्रवाहमें नित बह रहा॥
इस गरीबीसे छुड़ाकर कीजिये मुझको सनाथ।
तुम-सरीखे नाथ पा, फिर क्यों कहाऊँ मैं अनाथ॥
हो तृषित आकुल अमित प्रभु! चाहता जो बूँद-नीर।
तुम तृषाहारी अनोखे उसे देते सुधा-क्षीर॥
यह तुम्हारी अमित महिमा सत्य सारी है प्रभो!।
किसलिये मैं रहा वञ्चित फिर अभीतक हे विभो!॥
अब नहीं ऐसा उचित प्रभु! कृपा मुझपर कीजिये।
पापका बन्धन छुड़ा नित-शान्ति मुझको दीजिये॥

[१३६]

(राग ककरा—ताल रूपक)

दीनबन्धो! कृपासिन्धो! कृपाबिन्दू दो प्रभो।
उस कृपाकी बूँदसे फिर बुद्धि ऐसी हो प्रभो॥
वृत्तियाँ द्रुतगामिनी हों जा समावें नाथमें।
नदी-नद जैसे समाते हैं सभी जलनाथमें॥
जिस तरफ देखूँ उधर ही दरस हो श्रीरामका।
आँख भी मूँदूँ तो दीखै मुख-कमल घनश्यामका॥
आपमें मैं आ मिलूँ प्रभु! यह मुझे वरदान दो।
मिलती तरंग समुद्रमें जैसे मुझे भी स्थान दो॥
छूट जावें दुःख सारे, क्षुद्र सीमा दूर हो।
द्वैतकी दुविधा मिटै, आनन्दमें भरपूर हो॥
आनन्द सीमा-रहित हो, आनन्द पूर्णानन्द हो।
आनन्द सत-आनन्द हो, आनन्द चित-आनन्द हो॥
आनन्दका आनन्द हो, आनन्दमें आनन्द हो।
आनन्दको आनन्द हो, आनन्द ही आनन्द हो॥

[१३७]

(राग केदारा—ताल तीन ताल)

प्रभु ! मेरो मन ऐसो ह्वै जावै।
विषयन को विष सगरो उतरै, पुनि नहिं कबहूँ छावै ॥
बिनसै सकल कामना मनकी, अनत न कतहूँ धावै।
निरखत निरत निरन्तर माधुरि, स्याम मुरति सुख पावै ॥
कामी जिमि कामिनि-सँग चाहै, लोभी धन मन लावै।
तिमि अबिरत निज प्रियतमकी सुधि, छिन इक नहिं बिसरावै ॥
ममता सकल जगतकी छूटै, मधुर स्याम छबि भावै।
तव आनन-सरोज-रस-चाखन मन मधुकर बनि जावै ॥

[१३८]

(राग केदारा—ताल तीन ताल)

हुआ अब मैं कृतार्थ महाराज !
दिया चरण-आश्रय गरीबको, धन्य ! गरीबनिवाज ॥
घूमा नभ-जल-पृथ्वीतलपर, धरे नित नये साज।
मिली न शान्ति कहीं प्रभु ! ऐसी, जैसी मुझको आज ॥
विविध रूपसे पूजा मैंने कितना देव-समाज।
कितने धनी उदार मनाये, हुआ न मेरा काज ॥
दुख-समुद्रमें डूब रहा था मेरा भग्न जहाज।
चरण-किनारा मिला अचानक, छूटा दुखका राज ॥

[१३९]

(राग भीमपलासी—ताल तीन ताल)

नाथ ! अब कैसे हो कल्याण।
प्रभु-पद-पंकज-विमुख निरन्तर रहते पामर प्राण।
पर सुख-कातर महामलिन मन चाहत पद निर्वाण ॥

सत्य, अहिंसा, प्रेम, दया सब कर गये दूर प्रयाण।
लगा हृदयमें द्वेष-घृणा-हिंसाका बेधक बाण॥
भेद-बुद्धिसे भरा हृदय सब भाँति हुआ पाषाण।
आत्मभावना भूल वैरपर सदा चढ़ाता शाण॥
लगा कामना-भूत भयानक, मिटा धर्म-परिमाण।
उभय-भ्रष्ट हुआ बनकर अब पशु बिनु पूँछ-विषाण॥
श्रुति-स्मृतिकी करता अवहेला, पढता नहीं पुराण।
प्रभो! पतित इस अधम दीनका तुम्हीं करो अब त्राण॥

[१४०]

(राग आसावरी—ताल कहरवा)

खड़ा अपराधी प्रभु के द्वार।
न्याय चाहता, क्षमा नहीं, दो दण्ड दोष-अनुसार॥ १॥
अर्थदण्ड देना चाहो तो करो स्वार्थ सब छार।
रहने मत दो कुछ भी इसके 'अपना'-'मेरा'कार॥ २॥
कैद अगर करना चाहो तो प्रेम-बेड़ियाँ डार।
रक्खो बाँध इसे नित निज चरणोंके कारागार॥ ३॥
निर्वासित करना चाहो तो लूटो घर-संसार।
पहुँचा दो सत्वर दोषीको भव-समुद्रके पार॥ ४॥
कभी न आने दो फिर वापस, मरने दो बेकार।
बह जाने दो इसे वहाँ सच्चिदानन्दकी धार॥ ५॥

[१४१]

(राग भैरवी)

होगा कब वह सुदिन समयशुभ, मायावी मन बनकर दीन।
मोहमुक्त हो हो जायेगा पावन प्रभु-चरणोंमें लीन॥
कब जगकी झूठी बातोंसे, हो जावेगी घृणा इसे।
कब समझेगा उसे भयानक, मान रहा रमणीय जिसे॥

****

कब गुरु-चरणोंकी रजको यह निज मस्तकपर धारेगा।
काम-क्रोध-लोभादि वैरियोंको, कब हठसे मारेगा॥
पुण्यभूमि ऋषि-सेवितमें कब होगा इसका निर्जन-वास।
गङ्गाकी पुनीत धारासे कब सब अघका होगा नास॥
कब छोड़ेंगी सबल इन्द्रियाँ अपने विषयोंमें रमना।
कब सीखेंगी उलटी आकर अन्तरमें उसके जमना॥
कब साधनके प्रखर तेजसे सारा तम मिट जायेगा।
कब मन विषय-विमुख हो हरिकी विमल भक्तिको पायेगा॥
धन-जन-पदकी प्रबल लालसा कष्टमयी कब छूटेगी।
मान-बड़ाई, 'मैं-मेरे'-की फाँसी कब यह टूटेगी॥
कब यह मोह-स्वप्न छूटेगा, कब प्रपञ्चका होगा बाध।
पर-वैराग्य प्रकट कब होगा, कब सुख होगा इसे अगाध॥
कब भव-भयके कारण मिथ्या अहंकारका होगा नास।
कब सच्चा स्वरूप दीखेगा, छूट जायगा देहाध्यास॥
कब सबके आधार एक भूमा-सुखका मुख दीखेगा।
कब यह सब भेदोंमें नित्य अभेद देखना सीखेगा॥
कब प्रतिबिम्ब बिम्ब होगा, कब नहीं रहेगा चित-आभास।
निजानन्द, निर्मल अज अव्ययमें कब होगा नित्य निवास॥

[१४२]

(राग आसावरी—तीन ताल)

बना दो बिमल-बुद्धि भगवान।
तर्कजाल सारा ही हर लो, हरो सुमति-अभिमान।
हरो मोह, माया, ममता, मद, मत्सर, मिथ्या मान॥
कलुष काम-मति कुमति हरो, हे हरे! हरो अज्ञान।
दम्भ, दोष, दुर्नीति हरण कर करो सरलता-दान॥

भोग-योग, अपवर्ग-स्वर्गकी हरो स्पृहा बलवान।
चाकर करो चारु चरणोंका नित ही निज जन जान ॥
भर दो हृदय भक्ति-श्रद्धासे, करो प्रेमका दान।
कभी न करो दूर निज पदसे मेटो भवका भान ॥

[१४३]

(राग आसावरी—तीन ताल)

बना दो बुद्धिहीन भगवान।
तर्क-शक्ति सारी ही हर लो, हरो ज्ञान-विज्ञान।
हरो सभ्यता, शिक्षा, संस्कृति, नये जगतकी शान ॥
विद्या-धन-मद हरो, हरो हे हरे! सभी अभिमान।
नीति-भीतिसे पिंड छुड़ाकर करो सरलता-दान ॥
नहीं चाहिये भोग-योग कुछ, नहीं मान-सम्मान।
ग्राम्य, गँवार बना दो, तृण-सम दीन, निपट निर्मान ॥
भर दो हृदय भक्ति-श्रद्धासे करो प्रेमका दान।
प्रेमसिन्धु! निज मध्य डुबाकर मेटो नाम-निशान ॥

[१४४]

(राग आसावरी—तीन ताल)

नाथ अब लीजै मोहि उबार!
कामी, कुटिल, कठिन कलि-कवलित, कुत्सित, कपटागार।
मोही, मुखर, महामद-मर्दित, मन्द, मलिन-आचार ॥
वलयित विषय, विताडित विचलित विकसित विविध विकार।
दीन, दुखी, दुरदृष्ट, दुरत्यय, दुर्गत, दुर्गुण-भार ॥
पङ्किल प्रचुर, पतित, परिपन्थी, निरपत्रप, निःसार।
निःस्व, निखिल निगमागमवर्जित, निगडित नित गृह-दार ॥
दीनाश्रय! तव विरद विपत्ति-विदारण श्रुति-विस्तार।
सुनत सुयश शुचि सो अब मैं आगत अघहारी-द्वार ॥

****

[१४५]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

हे निर्गुण ! हे सर्वगुणाश्रय ! हे निरुपम ! हे उपमामय !
हे अरूप ! हे सर्वरूपमय ! हे शाश्वत ! हे शान्तिनिलय ! ॥
हे अज ! आदि ! अनादि ! अनामय ! हे अनन्त ! हे अविनाशी ।
हे सच्चित-आनन्द, ज्ञानघन, द्वैतहीन, घट-घटवासी ॥
हे शिव, साक्षी, शुद्ध, सनातन, सर्वरहित, हे सर्वाधार !
हे शुभ मन्दिर, सुन्दर, हे शुचि, सौम्य, साम्यमति, रहित-विकार ! ॥
हे अन्तर्यामी, अन्तरतम, अमल, अचल, हे अकल, अपार !
हे निरीह, हे नरनारायण, नित्य, निरञ्जन, नव, सुकुमार ! ॥
हे नव नीरद-नील, नराकृति, निराकार, हे नीराकार !
हे समदर्शी ! संत सुखाकर, हे लीलामय प्रभु साकार ! ॥
हे भूमा, हे विभु, त्रिभुवनपति, सुरपति, मायापति, भगवान !
हे अनाथपति, पतित-उधारन, जन-तारन, हे दयानिधान ! ॥
हे दुर्बलकी शक्ति, निराश्रयके आश्रय, हे दीनदयाल !
हे दानी, हे प्रणतपाल, हे शरणागतवत्सल, जनपाल ! ॥
हे केशव ! हे करुणा-सागर ! हे कोमल, अति सुहृद महान !
करुणा कर अब उभय अभय चरणोंमें हमें दीजिये स्थान ॥
सुर-मुनि-वन्दित कमला-नन्दित चरण-धूलि तव मस्तक धार ।
परम सुखी हम हो जायेंगे, होंगे सहज भवार्णव-पार ॥

[१४६]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

हे नाथ ! तुम्हीं सबके मालिक, तुम ही सबके रखवारे हो ।
तुम ही सब जगमें व्याप रहे विभु ! रूप अनेकों धारे हो ॥
तुम ही नभ-जल-थल-अग्नि तुम्हीं, तुम सूरज-चाँद-सितारे हो ।
यह सभी चराचर है तुममें, तुम ही सबके ध्रुवतारे हो ॥

× × ×

हम महामूढ़ अज्ञानी-जन प्रभु ! भव-सागरमें डूब रहे।
नहिं नेक तुम्हारी भक्ति करें, मन मलिन विषयमें खूब रहे ॥
सत्सङ्गतिमें नहिं जायँ कभी, खल-सङ्गतिमें भरपूर रहे।
सहते दारुण दुख दिवस-रैन, हम सच्चे सुखसे दूर रहे ॥

× × ×

तुम दीनबन्धु, जग-पावन हो, हम दीन—पतित अति भारी हैं।
है नहीं जगतमें ठौर कहीं, हम आये शरण तुम्हारी हैं ॥
हम पड़े तुम्हारे हैं दरपर, तुमपर तन-मन-धन वारे हैं।
अब कष्ट हरो हरि, हे हमरे ! हम निंदित निपट दुखारे हैं ॥

× × ×

इस टूटी-फूटी नैयाको, भवसागरसे खेना होगा।
फिर निज हाथोंसे नाथ ! उठाकर, पास बिठा लेना होगा ॥
हे अशरण-शरण ! अनाथनाथ ! अब तो आश्रय देना होगा।
हमको निज चरणोंका निश्चित नित दास बना लेना होगा ॥

[१४७]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

हे स्वामी ! अनन्य अवलम्बन, हे मेरे जीवन-आधार।
तेरी दया अहैतुकपर निर्भर कर आन पड़ा हूँ द्वार ॥
जाऊँ कहाँ जगतमें तेरे सिवा न शरणद है कोई।
भटका, परख चुका सबको, कुछ मिला न अपनी पत खोई ॥
रखना दूर, किसीने मुझसे अपनी नजर नहीं जोड़ी।
अति हित किया सत्य समझाया, सब मिथ्या प्रतीति तोड़ी ॥
हुआ निराश, उदास गया विश्वास जगतके भोगोंका।
जिनके लिये खो दिया जीवन, पता लगा उन लोगोंका ॥

अब तो नहीं दीखता मुझको तेरे सिवा सहारा और।
जल-जहाजका कौआ जैसे पाता नहीं दूसरी ठौर॥
करुणाकर ! करुणा कर सत्वर अब तो दे मन्दिर-पट खोल।
बाँकी झाँकी नाथ ! दिखाकर तनिक सुना दे मीठे बोल॥
गूँज उठे प्रत्येक रोममें परम मधुर वह दिव्य स्वर।
हत्तन्त्री बज उठे साथ ही मिला उसीमें अपना सुर॥
तन पुलकित हो, सु-मन जलजकी खिल जायें सारी कलियाँ।
चरण मृदुल बन मधुप उसीमें करते रहें रंगरलियाँ॥
हो जाऊँ उन्मत्त भूल जाऊँ तन-मनकी सुधि सारी।
देखूँ फिर कण-कणमें तेरी छबि नव-नीरद-घन प्यारी॥
हे स्वामिन् ! तेरा सेवक बन तेरे बल होऊँ बलवान।
पाप-ताप छिप जायें हो भयभीत मुझे तेरा जन जान॥

[१४८]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

पतित नहीं जो होते जगमें, कौन पतितपावन कहता ?
अधमोंके अस्तित्व बिना 'अधमोद्धारण' कैसे कहता ?
होते नहीं पातकी, 'पातकि-तारण' तुमको कहता कौन ?
दीन हुए बिन, दीनदयालो ! 'दीनबन्धु' फिर कहता कौन ?
पतित, अधम, पापी, दीनोंको क्योंकर तुम बिसार सकते।
जिनसे नाम कमाया तुमने, क्योंकर उन्हें टाल सकते॥
चारों गुण मुझमें पूरे, मैं तो विशेष अधिकारी हूँ।
नाम बचानेका साधन हूँ, यों भी तो उपकारी हूँ॥
इतनेपर भी नाथ ! तुम्हें यदि मेरा स्मरण नहीं होगा।
दोष क्षमा हो, इन नामोंका रक्षण फिर क्योंकर होगा ? ॥
सुन प्रलापयुत पुकार, अब तो करिये नाथ ! शीघ्र उद्धार।
नहीं छोड़िये नामोंको-यों कहनेको होता लाचार॥

****

जिसके कोई नहीं, तुम्हीं उसके रक्षक कहलाते हो।
मुझे नाथ अपनानेमें फिर क्यों इतना सकुचाते हो?
नाम तुम्हारे चिर सार्थक हैं मेरा दृढ़ विश्वास यही।
इसी हेतु, पावन कीजै प्रभु! मुझे कहींसे आस नहीं॥
चरणोंको दृढ़ पकड़े हूँ, अब नहीं हटूँगा किसी तरह।
भले, फेंक दो, नहीं सुहाता अगर पड़ा भी इसी तरह॥
पर यह रखना स्मरण नाथ! जो यों दुतकारोगे हमको।
अशरण-शरण, अनाथ-नाथ, प्रभु कौन कहेगा फिर तुमको॥

[१४९]

(राग बिलावल—ताल तेवरा)

प्रभु तव चरन किमि परिहरौं।
ये चरन मोहि परम प्यारे, छिन न इन ते टरौं॥
जिन पदनकी अमित महिमा, वेद-सुर-मुनि कहैं।
दास संतत करत अनुभव, रहत निसि-दिन गहैं॥
परसि जिनको सिला तेहि छिन बनी सुंदरि नारि।
घरनि मुनिवरकी अहल्या, सकौं केहि विधि टारि॥
इन पदन-सम सरन असरन दूसरौ कोउ नाहिं।
होइ जो कोउ तुम बतावहु, धाइ पकरौं ताहि॥
और बिधि नहिं टरौं टार्‌यौ, होइ साध्य सु करौं।
जल-जगत मकरंद-अलि ज्यौं, मनहि चरनन्हि धरौं॥

[१५०]

(राग देशी खमाच—ताल पंजाबी ठेका)

आयौ चरन तकि सरन तिहारी।
बेगि करौ मोहि अभय, बिहारी!
जोनि अनेक फिर्‌यो भटकान्यो।
अब प्रभु पद छाड़ौं न मुरारी!॥

मो सम दीन, न दाता तुम सम।
भली मिली यह जोरि हमारी॥
मैं हौं पतित, पतित-पावन तुम।
पावन करु, निज बिरद सँभारी॥

[१५१]

(राग देशी खमाच—ताल त्रिताल)

बहु जुग बहुत जोनि फिरि हारौ।
अब तौ एक भरोसो तिहारौ॥
जद्यपि कुटिल, कामरत, पापी।
तदपि गुलाम सदा हौं तिहारौ॥
जाउँ कहाँ तव चरन बिहाई।
लीन्हौ प्रभु-पद-कमल-सहारौ॥

[१५२]

(राग बिहाग—ताल त्रिताल)

मोहन ! राखु पद-रज-तरै।
सुर-सुरेन्द्र-बिधि-पद नहिं चहियै, डारहु मुकुति परै।
जग-सुख के सब साज सँभारहु, इनतें दुख न टरै॥
सुख-दुख, लाभ-हानि जगकी सम, नैकौ मन न जरै !
बिनु बिराम छबि-धाम निरखि, तन-मन नित प्रेम गरै॥

═══ ★ ═══

श्रीराधा-माधव-स्वरूप-माधुरी

[१५३]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

श्रीवृन्दावन, वेदी, योगपीठ और अष्टदल कमल

सुमन-समूह, मनोहर सौरभ मधु प्रवाह सुषमा-संयुक्त।
नव-पल्लव-विनम्र सुन्दर वृक्षावलिकी शोभासे युक्त॥
नव-प्रफुल्ल मञ्जरी, ललित वल्लरियोंसे आवृत, द्युतिमान।
परम रम्य, शिव सुन्दर श्रीबृन्दावनका यों करिये ध्यान॥
उसमें सदा कर रहे चञ्चल चञ्चरीक मधुमय गुञ्जार।
बढ़ी और भी, विकसित सुमनोंका मधु पीनेको झनकार॥
कोकिल-शुक-सारिका आदि खग नित्य कर रहे सुमधुर गान।
मत्त मयूर नृत्यरत, यों श्रीबृन्दावनका करिये ध्यान॥
यमुनाकी चञ्चल लहरोंके जल-कणसे शीतल सुख-धाम।
फुल्ल कमल-केसर-परागसे रञ्जित धूसर वायु ललाम॥
प्रेममयी ब्रज-सुन्दरियोंके चञ्चल करता चारु वसन।
नित्य-निरन्तर करता रहता श्रीबृन्दावनका सेवन॥

कल्पवृक्ष

उस अरण्यमें सर्वकामप्रद एक कल्पतरु शोभाधाम।
नव पल्लव प्रवाल-सम अरुणिम, पत्र नीलमणि-सदृश ललाम॥
कलिका मुक्ता, प्रभा, पुञ्ज-सी पद्मराग-से फल सुमहान।
सब ऋतुएँ सेवा करतीं नित परम धन्य अपनेको मान॥
सुधा-बिन्दु-वर्षी उस पादपके नीचे वेदी सुन्दर।
स्वर्णमयी, उद्भासित जैसे दिनकर उदित मेरु-गिरिपर॥

मणि-निर्मित जगमग अति प्राङ्गण, पुष्प-परागोंसे उज्ज्वल।
छहों ऊर्मियोंसे* विरहित वह वेदी अतिशय पुण्यस्थल॥
वेदीके मणिमय आँगनपर योगपीठ है एक महान।
अष्टदलोंके अरुण कमलका उसपर करिये सुन्दर ध्यान॥

भगवान् नन्दनन्दन

उसके मध्य विराजित सस्मित नन्द-तनय श्रीहरि सानन्द।
दीप्तिमान निज दिव्य प्रभासे सविता-सम जो करुणा-कंद॥
श्रीविग्रहका वर्ण नील-श्यामल, उज्ज्वल आभासे युक्त।
कमल-नीलमणि-मेघ-सदृश कोमल, चिक्कण, रससे संयुक्त॥
काले घुँघराले अति चिकने घने सुशोभित केश-कलाप।
मुकुट मयूर-पिच्छका मनहर मस्तकपर हरता हृत्ताप॥
मधुकर-सेवित कल्पद्रुमके कुसुमोंका विचित्र शृङ्गार।
नव-कमलोंके कर्णफूल, जिनपर भौंरे करते गुञ्जार॥
चमक रहा सुविशाल भालपर गोरोचन का तिलक ललाम।
चित्त-वित्तहर धनुषाकार भ्रुकुटियाँ अतिशय शोभाधाम॥
मुख-मण्डलकी कान्ति शरद-शशि-सदृश पूर्ण, अकलङ्क, अतोल।
नेत्र कमल-दल-से विशाल, निर्मल दर्पण-से गोल कपोल॥
दीप्त रत्नमय मकराकृति कुण्डलकी किरणोंसे सविशेष।
कीर-चञ्चु-सम सुन्दर नासा हरती जन-मनका सब क्लेश॥
अरुण अधर बन्धूक सुमन-से चन्द्र-कुन्द-जैसी मुसकान।
सम्मुख दिशा प्रकाशित करती दिव्य छटासे अति द्युतिमान॥
बनके कोमल पल्लव-पुष्पोंसे निर्मित निर्मल नव-हार।
मनहर शङ्ख-सदृश ग्रीवाकी शोभा बढ़ा रहे सुख-सार॥

---

* क्षुधा-पिपासा, शोक-मोह और जरा-मृत्यु—ये छः ऊर्मियाँ हैं।

कंधोंपर घुटनोंतक लटका पारिजात-पुष्पोंका हार।
मत्त मधुप मँडराते उसपर करते मधुर-मधुर गुञ्जार॥
हार-रूप नक्षत्रोंसे शोभित वक्षःस्थल पीन विशाल।
कौस्तुभमणिरूपी भास्कर है भासमान उसमें सब काल॥
शुचि श्रीवत्स-चिह्न वक्षःस्थलपर, शुभ उन्नत सिंह-स्कन्ध।
सुन्दर श्रीविग्रहसे निस्सृत विस्तृत विमल मनोहर गन्ध॥
भुजा गोल, घुटनोंतक लंबी, नाभि गभीर चारु-बिस्तार।
उदर उदार, त्रिवलि, रोमावलि मधुप-पंक्ति-सम शोभा-सार॥
दिव्य रत्न-मणि-निर्मित भूषण श्रीविग्रहपर रहे विराज।
अङ्गद, हार, अँगूठी, कङ्कण, कटि करधनी मनोरम साज॥
दिव्य अङ्गरागोंसे रञ्जित अङ्ग सकल माधुर्य-निवास।
विद्युद्वर्ण पीत अम्बरसे आवृत रम्य नितम्बावास॥
जङ्घा-घुटने उभय मनोहर, पिंडली गोलाकार सुठार।
परम कान्तिमय उन्नत श्रीपादाग्रभाग सुषमा-आगार॥
नख-ज्योति निर्मल दर्पण-सम, अरुण-वर्ण माणिक्य-समान।
अङ्गुलि-दलसे परम सुशोभित उभय चरण-पङ्कज सुख-खान॥
अङ्कुश-चक्र-शङ्ख-यव-पङ्कज-वज्र-ध्वजा चिह्नोंसे युक्त।
अरुण हथेली, तलवे सुन्दर करते जनको बन्धन-मुक्त॥
शुचि लावण्य-सार-समुदाय-विनिर्मित सकल मधुर श्रीअङ्ग।
अनुपम रूप-राशि करती नित अगणित मारोंका मद-भङ्ग॥
मुख-सरोजसे मुरली मधुर बजाते गाते नन्द-किशोर।
दिव्य रागकी सृष्टि रहे कर आनन्दार्णव मुनि-मन-चोर॥
मुरली-ध्वनिसे आकर्षित हो वनका जीव-जन्तु प्रत्येक।
निरख रहा श्रीमुखको अपलक बार-बार भुवि मस्तक टेक॥

गोप-बालक

हरि-सम-वय-विलास-गुण-भूषण-शील-स्वभाव-वेषधर गोप।
चञ्चल, बाहु नचानेमें अति निपुण, बढ़ाते अनुपम ओप॥
घेरे खड़े श्यामको करते मन्द-मध्य-ऊँचे स्वर गान।

छेड़ रहे वंशी-वीणाकी उसके साथ मधुरतम तान ।।
नन्हे-नन्हे शिशु विमुग्ध सब हरिका सुन्दर रूप निहार ।
कटि-रशनाकी क्षुद्र घंटियाँ हैं कर रहीं मधुर झनकार ।।
बघनखके आभूषण पहने घूम रहे सब चारों ओर ।
मीठी अस्फुट वाणीसे हैं भोले शिशु लेते चित-चोर ।।

गोपीजन

गोपीजनसे घिरे श्यामका अब कीजिये मधुरतम ध्यान ।
अति मनहर ब्रज-सुन्दरियोंकी श्रेणीसे सेवित भगवान ।।
स्थूल नितम्बोंके बोझेसे जो हो रहीं थकित, अति श्रान्त ।
मन्थर गतिसे चलतीं वे गुरु वक्षःस्थलसे भाराक्रान्त ।।
कबरी गुँथी कर रही उनके रम्य नितम्ब-देशका स्पर्श ।
रोम-राजि त्रिवलीयुत वक्षःस्थलसे सटी पा रही हर्ष ।।
देह-लता रोमाञ्च-अलंकृत पाकर वेणु-सुधा रसराज ।
मानो प्रेमरूप पादप हो गया पल्लवित, मुकुलित आज ।।
परम मनोहर मोहनकी अति मधुर मोहिनी मृदु मुसकान ।
चन्द्रालोक-सदृश करती अनुरागाम्बुधिका वर्धित मान ।।
मानो उसकी तरल तरंगोंके कणरूपी शोभा-सार ।
गोप-रमणियोंके अङ्गोंमें प्रकट चारु श्रमबिन्दु अपार ।।
परम मनोहर भ्रूचापोंसे वनमाली वर्षा करते ।
तीक्ष्ण प्रेम-बाणोंकी, उनसे तन-मनकी सुध-बुध हरते ।।
विदलित मर्मस्थल समस्त हैं, हुए जर्जरित सारे अङ्ग ।
मानो प्रेम-वेदना फैली अति दुस्सह, बदले सब रंग ।।
परम मनोहर वेष, रूप-सुषमामृतका करनेको पान ।
लोलुप रहतीं व्रज-बालाएँ नित्य-निरन्तर तज भय-मान ।।
प्रणयरूप पय-राशि-प्रवाहिणि मानो वे सरिता अनुपम ।
अलस-विलोल-विलोचन उनके उसमें शोभित सरसिज-सम ।।

कबरी शिथिल हुई सबकी, तब गिरे प्रफुल्ल कुसुम-सम्भार।
मधु-लोलुप मधुकर मँड़राते, सेवा करते कर गुञ्जार॥
व्रज-बालाओंकी मृदु वाणी स्खलित हो रही है उस काल।
छाया मद प्रेमामृत-मधुका, रही न कुछ भी सार-सँभार॥
चीर-वसन नीवीसे विश्लथ, उसका प्रान्तभाग सुन्दर।
करता अर्चि-नितम्ब प्रकाशित, लोल काञ्चि उल्लसित अमर॥
खसे जा रहे ललित पदाम्बुजसे मणिमय नूपुर भूपर।
टूट-टूटकर बिखर रहे हैं, फैल रहे सब इधर-उधर॥
निकल रहा मुखसे सी-सी स्वर, कम्पित अधर सुपल्लव-लाल।
श्रवणोंमें मणि-कुण्डल शोभित, छायी सुधा-रश्मि सब काल॥
अलसाये लोचन दोनों अति शोभित नील-सरोरुह-सम।
सुन्दर पक्ष्म-विभूषित मुकुलाकार दीर्घ अतिशय अनुपम॥
श्वास-समीरण शुचि सुगन्धसे अधर-सुपल्लव हैं अम्लान।
अरुण-वर्ण धन, मोहनके वे नित नूतन आनन्द-निधान॥
प्रियतम-प्रिय पूजोपहारसे उनके कर-पङ्कज कोमल।
सदा सुशोभित रहते, ऐसा अतुलित वह गोपी-मण्डल॥
अपने असित विशाल विलोल लोचनोंको ले व्रज-बाला।
उन्हें बनाकर नील नीरजोंकी मानो सुन्दर माला॥
पूज रहीं हरिके सब अङ्गोंको, यों सेवा करतीं नित्य।
छूट गये उनसे जगके सब विषय दुःखमय और अनित्य॥
नानाविध विलासके आश्रय हैं प्रेमास्पद श्रीभगवान।
परम प्रेयसी व्रज-सुन्दरियोंके लोचन हैं मधुप-समान॥
प्रणय-सुधारस-पूर्ण मनोमोहक मधुकर वे चारों ओर।
उड़-उड़कर मनहर मुख-पङ्कज-विगलित रस मधु-पान-विभोर॥
आस्वादन करते, पीते रहते, पाते आनन्द अपार।
मानो नेत्ररूप मधुपोंकी माला हरिने की स्वीकार॥
परम प्रेयसी व्रज-सुन्दरियाँ, परम प्रेम-आश्रय भगवान।
निर्मल कामरहित मनसे यह करिये अतिशय पावन ध्यान॥

****

गाय, बछड़े और साँड़

अब उन भाग्यवती गायोंका, गोकुलका करिये शुभ ध्यान।
जिनकी अपने कर-कमलोंसे सेवा करते हैं भगवान॥
थकीं थनोंके विपुल भारसे मन्थरगतिसे जो चलतीं।
बचे तृणाङ्कुर दाँतोंमें न चबातीं, नहीं जरा हिलतीं॥
पूँछोंको लटकाये देख रहीं श्रीहरिके मुखकी ओर।
अपलक नेत्रोंसे घेरे श्रीहरिको वे आनन्द-विभोर॥
छोटे-छोटे बछड़े भी हैं घेरे श्रीहरिको सानन्द।
मुरलीसे अति मीठे स्वरमें गान कर रहे हरि स्वच्छन्द॥
खड़े किये कानोंसे सुनते हैं वे परम मधुर वह गान।
भरा दूध मुँहमें, पर उसको वे हैं नहीं रहे कर पान॥
फेनयुक्त वह दूध बह रहा उनके मुखसे अपने-आप।
बड़े मनोहर दीख रहे हैं, हरते हैं मनका संताप॥
अतिशय चिकनी देह सुगन्धित-युत वह गो वत्सोंका दल।
सुखदायक हो रहा सुशोभित जिनका भारी गलकम्बल॥
माधवके सब ओर उठाये पूँछ, नये शृङ्गोंसे युक्त।
करते हैं प्रहार आपसमें कोमल मस्तकपर भययुक्त॥
लड़नेको वे भूमि खोदते नरम खुरोंसे बारंबार।
विविध भाँतिके खेल कर रहे पुनः-पुनः करते हुंकार॥
जिनकी अति दारुण दहाड़से क्षुब्ध दिशाएँ हो जातीं।
बृहत् ककुद्से भारी जिनकी चलते देह रगड़ खातीं॥
दोनों कान उठाये सुनते मुरलीका रव साँड़ विशाल।
महाभाग वे पशु, जो हरिका सङ्ग पा रहे हैं सब काल॥

देवता, मुनि, योगी

गोपी-गोप और पशुओंके घेरेसे बाहर मतिमान।
सुर-गण विधि-हर-सुरपति आदिक करते ललित छन्द यश-गान॥

वेदाभ्यास-परायण मुनिगण सुदृढ़ धर्मका कर अभिलाष।
घेरेसे बाहर दक्षिणमें स्थित, विषयोंसे सदा उदास॥
पृष्ठभागकी ओर खड़े सनकादि महामुनि योगीराज।
अन्य मुमुक्षु समाधि-परायण जिनके, साधनके सब साज॥

देवर्षि नारद

तदनन्तर आकाशस्थित देवर्षिवर्यका करिये ध्यान।
ब्रह्मपुत्र नारद जिनका वपु गौर सुधाकर-शङ्ख-समान॥
सकल आगमोंके ज्ञाता, विद्युत्-सम पीत जटाधारी।
हरि-चरणाम्बुजमें निर्मल रति जिनकी हैं अतिशय प्यारी॥
सर्वसङ्गका परित्याग कर जो हरिका करते गुण-गान।
नित्य-निरन्तर श्रुतियुत नाना स्वरसे स्तुति करते मतिमान॥
विविध ग्रामके ललित मूर्छनागणको जो अभिव्यञ्जित कर।
नित्य प्रसन्न कर रहे हरिको प्रेम-भक्ति-मणिके आकर॥

ध्यानका फल

इस प्रकार जो काम-राग-वर्जित निर्मल-मति परम सुजान।
नन्द-तनय श्रीकृष्णचन्द्रका प्रेमसहित करते हैं ध्यान॥
उनपर सदा तुष्ट रहते हरि, बरसाते हैं कृपा अपार।
देते प्रेमदान अति दुर्लभ, जो समस्त सारोंका सार॥

[१५४]

(राग बिलावल—तीन ताल)

कर नवनीत लियें नटनागर।
मधुर सरल सिसुभाव सखनि सँग निरतत निरवधि सर्वसुखाकर॥
कटि कछनी मुरली मधु खोंसे, कुंचित केस मयूर-पिच्छधर।
कठुला कण्ठ, बघनखा सोहत, बाजूबंद, हार-दुति मनहर॥
मधुर नयन मोहत मुनि-जन-मन, कुंडल रत्न स्रवन अति सुंदर।
तिलक भाल सुषमा अनुपम छबि जन-चकोर-दृग-हरन सुधाकर॥

****

[१५५]

(राग काफी—ताल कहरवा)

कृष्ण-अङ्ग-लावण्य मधुरसे भी सुमधुरतम।
उसमें श्रीमुख-चन्द्र परम सुषमामय अनुपम॥
मधुरापेक्षा मधुर, मधुरतम उससे भी अति।
श्रीमुखकी मधु-सुधामयी, ज्योत्स्नामयि सुस्मिति॥
इस ज्योत्स्ना-स्मिति मधुरका एक-एक कण अति मधुर।
होकर त्रिभुवन व्याप्त जो बना रहा सबको मधुर॥

[१५६]

(राग पीलू—तीन ताल)

सजल-जलद-नीलाभ तन, बदन-सरोज रसाल।
पीत-बसन, सिखि-पिच्छ सिर मुकुट, तिलक बर भाल॥
पग नूपुर, कुंडल श्रवन, कंठ हार-वनमाल।
हाथ लिएँ मुरली मधुर, ललित त्रिभंगी लाल॥
मुनि-मन-हर, जन-मन-सुखद, अपलक नैन बिशाल।
ठाढ़े भोले भावमय मधुर बाल-गोपाल॥

[१५७]

(राग काफी—ताल कहरवा)

मधुर मनोहर सुंदर अति सिखि-पिच्छ सुसोहत।
मलयानिल सौं नाचि-नाचि सब के मन मोहत॥
कुंतल चूर्न कपोल नाग-सिसु-सम सोभामय।
कुंचित केस-कलाप मनहुँ मधुपावलि रसमय॥
नील कमल बिकसित, मरकत मनि-सम मुख राजत।
चंदन-चर्चित चिबुक बिंदु मृगमद सुबिराजत॥
गजमुक्ता सुचि सुघर करन कुंडल-द्युति झलमल।
नीरद-स्याम कपोल कलित आभा अति उज्ज्वल॥

करतल अरुनिम उभय मनहुँ स्थल-पद्म प्रस्फुटित।
तेहि बिच बेनु मृनाल मनहुँ राजत सुचि सुघटित॥
नील बदन, उज्ज्वल मुक्ता-मनि, कौस्तुभ अरुनिम।
कालिन्दी-सुरसरी-सरस्वति कौ सुभ संगम॥
बैजयंति बनमाल जानु पर्जंत डुलति अति।
चलत, करत जनु नृत्य मनोहर मधुर ललित गति॥
कटि पट-पीत, क्वनित किंकिनि, पग नूपुर की धुनि।
करि मधु-सुधा-सुपरस मृतक मुनि-मन जीवित पुनि॥
बिंब-बिडंबित अधर मधुर मुरली रस बरसत।
मुनि-रिषि-अज-भव-इंद्र सकल जेहि लगि नित तरसत॥
बिस्व अखिल अगनित मैं नहिं कोउ मनुज-दनुज-सुर।
जो न मोह एहि रूप अलौकिक निरखि पलक भर॥

[१५८]

(दोहा)

नव-नीरद-नीलाभ तन, त्रिभुवन-मोहन रूप।
मधुप-मद-हरन कृस्न घन कुंचित केस अनूप॥
सिर चूड़ा, मनिमय मुकुट, मोरपिच्छ रमनीय।
चंचल दृग-जुग चित्तहर, भृकुटि कुटिल कमनीय॥
मुरलि मधुर राजत अधर, कटि पट पीत ललाम।
गुंजा-मुक्ता-बन-कुसुम माला गल अभिराम॥
सच्चिन्मय सुषमा परम, भूषन-भूषन अंग।
अनुपम मुख-छबि लखि लजत सत-सत कोटि अनंग॥
राधा-धन, राधा-रमन, राधा-प्रानाधार।
मुनि-मन-हर मोहन-चरन बंदौं बारंबार॥

****

[१५९]

(राग काफी—ताल कहरवा)

सजल-जलद-नीलाभ श्याम तन परम मनोहर।
गोरोचन-चर्चित तमाल-पल्लव-सम सुन्दर॥
गोल भुजा आजानु प्रलम्बित मद मनोज हर।
कङ्कण-केयूरादि विभूषित परम रम्य वर॥
गुञ्जावलि-परिवेष्टित, सुमन विचित्र सुशोभित।
चूड़ामण्डित रत्न-मुकुट शिखिपिच्छ नवल युत॥
घुँघराली अलकावलि, नील कपोल सुचुम्बित।
कुण्डल-द्युति कमनीय गण्ड-आभापर उजलित॥
बिम्बाफल-बन्धूक पुष्पके सुषमाहारी।
अरुण अधरपर मधुर मुरलिका मञ्जुल धारी॥
हास्य मधुरतम त्रिभुवन-मोहन अति मुदकारी।
नासा-अग्र सुराजित मुक्ता मणि-सहकारी॥
बिंधे नेत्र गोपी-कटाक्ष-शरसे शोभित नित।
जिनके भ्रू-चालनसे गोपीगण उन्मादित॥
सहज त्याग सब भोग निरन्तर सुख-सेवा-रत।
श्यामा-श्याम-सुखैकवासना अति मन अतुलित॥
रेखा-त्रय-राजित सुकण्ठमें खेल रही कल।
स्वर-संयुत मूर्च्छना, राग-रागिनियाँ निर्मल॥
कौस्तुभमणि देदीप्यमान विस्तृत वक्षःस्थल।
दिव्य रत्न-मणि-हार, सुमन-माला शोभित गल॥
कटि किङ्किणि मृदु मधुर शब्द घण्टिका-विकासित।
अरुण चरण-नख दिव्य ज्योतिसे ब्रह्म प्रकाशित॥
मणिमय नूपुर चरण करत जग मोद-सुहासित।
पीतवसन असमोर्ध्व ज्योतिमय देह सुलासित॥

अनुपम अङ्ग-सुगन्ध दिव्य सुर-मुनि-मन-हारी।
खड़े सुललित त्रिभङ्ग कल्पतरु-मूल-विहारी॥
साथ दिव्य-गुण-रूपमयी वृषभानु-कुमारी।
सदा अभिन्न, परम आराध्या राधा प्यारी॥
सखा-सुरभि-गोवत्स बन्धु-प्रिय माधव मनहर।
नन्द-यशोदा-नन्दन विश्व-विमोहन नटवर॥
हम सर्वथा अयोग्य, अनधिकारी, निकृष्टतर।
सहज दयावश करो हमें स्वीकार, मुरलिधर !॥
दो उन प्रेमी भक्तोंके भक्तोंकी पद-रज।
जो सेवनरत नित्य प्रिया-प्रियतम-पद-पङ्कज॥
परम सुदुर्लभ, जिसे चाहते हैं उद्धव-अज।
नहीं चाहते भुक्ति-मुक्ति, उस पद-रजका तज॥

[१६०]

(राग आसावरी—तीन ताल)

जयति जय गोप्रेमी गोपाल।
ठाढ़े मधुर मनोहर कमल-सरोबर-तट नँदलाल॥
नील स्याम उज्ज्वल आभा, कर मुरली गल बनमाल।
रत्न-मयूर-मुकुट, कुंचित कच कृस्न, तिलक बर भाल॥
पीत बसन, भूषित अँग भूषन, मोहन नैन बिसाल।
अरुन कमल कर बाम सुसोभित, नूपुर चरन रसाल॥
परस पाइ सुचि स्याम अंग सुखमग्न सुरभि ततकाल।
रही अचल पाहन-मूरति-सी भूलि जगत-जंजाल॥

[१६१]

(राग देश—ताल मूल)

कर मुरली कटि काछनी कलित कमल-मुख-नैन।
कृष्ण कलेवर, नील मनि सरस सकल सुख-ऐन॥

बिहरत बृंदा-बिपिन बर करषत मन बरजोर।
नित नूतन लीला ललित करत भुवन-मन-चोर॥
बरसावत रस-अमिय मधु, जन-जन करत निहाल।
ठाढ़े गो-तन तनु दिएँ गो-प्रेमी गोपाल॥

[१६२]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

कृष्ण-नील-द्युति तन सुन्दर अति, पीतवसन, उर मुक्ता माल।
भव्य विभूषण भूषित, भाल तिलक शुचि, ललित त्रिभङ्गी लाल॥
पदतल-करतल अरुण मनोहर, कम्बु-कण्ठ, सिर मुकुट विशाल।
जय जय भक्त-भीर-भञ्जन, जन-मन-रञ्जन, जय वेणु-गुपाल॥

[१६३]

(राग देश—तीन ताल)

कालिंदी-तट ठाढ़े नटवर।
कदँब-मूल मृदु बेनु बजावत, गावत मिलि सखियन सँग सुंदर॥
सिर सिखिपिच्छ मुकुटमनि-मंडित, अलकावलि अति लजवत मधुकर।
पीत बसन, बन-कुसुम-माल गल, कटि किंकिनि, पग बाजत नूपुर॥
ढोलक-झाँझ-सितार-सरंगी मधुर बजावत सखीं लिऐं कर।
जल-खग बन-पंछी सब मोहित, गौ सब मुग्ध सुनत मृदु-मधु-सुर॥

[१६४]

(राग झिंझोटी—ताल दादरा)

जय जय ब्रजराज-तनय ब्रजबन-बिहारी।
सोहत बर लकुटी कर, मोर-मुकुट मस्तकपर,
मुरली धर मधुर अधर, जमुना-तट-चारी।
नील बदन पीत बसन, संग ग्वाल-गोपीजन,
मुनि-मन-हर मंद-हसन, गुंज-माल-धारी॥

भ्रमर करत मधुर गुंज, सुरभित तन कंज-पुंज,
विहरत निकुंज-कुंज राधा-मन-हारी।
निरतत नटबर-सुबेस, सोहैं सिर कुँचित केस,
हरत मदन-मद असेस गोपी-सुख-कारी॥

[१६५]

(राग काफी—ताल कहरवा)

सजल-जलद-नीलाभ श्याम वपु मुनि-मन-मोहन।
अमित शरद-शशि-निन्दक मुख मनहर अति सोहन॥
कुञ्चित कुन्तल कृष्ण अपरिमित मधुकर-मद-हर।
रत्नमालयुत कमल-कुसुम शिखि-पिच्छ मुकुट बर॥
चित-वित्त-हर नयन, रत्न-कुण्डल श्रुति राजत।
मुक्तामणि वनमाल विविध कल कण्ठ विराजत॥
रत्नमयी मुँदरी, कङ्कण, भुजबंद भव्य अति।
वंशी धर कर-कञ्ज भर रहे सुर सुललित गति॥
कटि पट पीत परम सुन्दर, पग नूपुर-धारी।
मृदु मुसकान विचित्र नित्य ब्रज-विपिन-बिहारी॥

[१६६]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

नव किशोर नटवर मुरलीधर मधुर मयूर-मुकुटधर लाल।
कटि पट पीत, करधनी कूजित, कुटिल भ्रुकुटि, मधु नयन विशाल॥
अतुलनीय सौन्दर्य-निकेतन, द्विभुज, कण्ठ मणि-मुक्ता-माल।
गोल कपोल अरुण नीलाभायुत, गोरोचन-तिलक सुभाल॥
भूषण-भूषण अङ्ग ललित अति, तन त्रिभङ्ग सुषमा-आगार।
मुख शरदिन्दु-सुभग, सुषमा-निधि, राधा-तन-मन-सुख-आधार॥
देख रूप निज हुए चमत्कृत मोहन मन्मथ-मन्मथ श्याम।
जाग उठा तुरंत मनमें शुचि निज सौन्दर्यास्वादन-काम॥

[१६७]

(दोहा)

छैल-छबीले लाड़िले बर कालिंदी कूल।
अरुनोत्पल आसन सुखद सोभित पीत दुकूल॥
अधरनि धर मुरली मधुर मोहन मधुमय तान।
लगे अलापन, मगन ह्वै, सहज भुलावन भान॥
गैया नित की सहचरी ठाढ़ी दाहिनि ओर।
नयन मूँदि रहे रसभरी मुरली-तान-विभोर॥

[१६८]

(राग ईमन—तीन ताल)

कोटि-कोटि शत मदन-रति सहज विनिन्दक रूप।
श्रीराधा-माधव अतुल शुचि सौन्दर्य अनूप॥
मुनि-मन-मोहन, विश्वजन-मोहन मधुर अपार।
अनिर्वाच्य, मोहन-स्वमन, चिन्मय सुख रस-सार॥
शक्ति, भूति, लावण्य शुचि, रस, माधुर्य अनन्त।
चिदानन्द सौन्दर्य-रस-सुधा-सिन्धु श्रीमन्त॥

[१६९]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

शारदीय-पूर्णिमा-सुनिर्मल-स्निग्ध-सुधावर्षी द्युतिमान।
ज्योत्स्ना-स्मित-समूह-विकसित शुचि शीतल अगणित चन्द्र महान॥
जिनकी विश्व मोहिनी अङ्ग-द्युतिसे सब हो जाते म्लान।
परमोज्ज्वल नीलाभ-श्याम वे अनुपम विमल-दीप्ति भगवान॥
परमहंस-ऋषि-मुनि-मन-मोहन, गुरु-जन-मोहन मोहन रूप।
श्रुति-सुराङ्गना, स्वयं ब्रह्मविद्या मन-मोहन, परम अनूप॥
विश्वनारि-मन, स्व-मन, शत्रु-मन मोहन, सर्वरूप-आधार।
सौन्दर्यामृत-माधुर्यामृत-सागर लहराता सुख-सार॥

[१७०]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

मोरपिच्छ सिर, कर्णिकार श्रुति, स्वर्णवर्ण तन पीताम्बर।
पुष्पमाल गल, वैजयन्ति कल, नटवर वपु अतिशय सुन्दर॥
मुरलि-छिद्र शुचि अधर-सुधा-रस भरत, करत लीला मनहर।
प्रविशत वृन्दा-विपिन ग्वाल सब गावत ललित कीर्ति सुस्वर॥

[१७१]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

नित नूतन गुन-रूप-रस दिब्य बढ़त बिनु पार।
राधा-जीवन मुरलिधर सुंदर स्याम उदार॥

[१७२]

(राग तोड़ी—तीन ताल)

नित्य, अनन्त, अचिन्त्य, अनिर्वचनीय, प्रेम-विज्ञान-निधान।
विश्वातीत-विश्वमय, निर्गुण-सगुण, रस-सुधा-सिन्धु महान॥
अकल-सकल, सुर-मुनि-ऋषि-सेवित-चरण-सरोरुह श्रीभगवान।
परम शरण्य, परम गुरु, करते जन प्रपन्नका अभय-विधान॥

[१७३]

(दोहा)

उड़ा जा रहा प्रकृति पर रथ-विमान आकाश।
मानो हैं हय चल रहे, हरि-पग-तल-रथ-रास॥
दिव्य रत्नमणि-रचित अति द्युतिमय विमल विमान।
चिदानन्दघन सत् सभी वस्तु-साज-सामान॥
अतुल मधुर सुन्दर परम रहे विराजित श्याम।
नव-नीरद-नीलाभ-वपु, मुनि-मन-हरण ललाम॥
पीत वसन, कटि किंकिणी, तन भूषण द्युति-धाम।
कण्ठ रत्नमणि, सौरभित सुमन-हार अभिराम॥

मोर-पिच्छ-मणिमय मुकुट, घन घुँघराले केश।
कर दर्पण-मुद्रा वरद विभु-विजयी वर वेश॥
शोभित कलित कपोल अति अधर मधुर मुसुकान।
पाते प्रेम-समाधि, जो करते नित यह ध्यान॥

[१७४]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

रूप-सील-सौंदर्य-निधि महाभाव रसखान।
स्याम-सुखी स्यामा अतुल राधा परम सुजान॥

[१७५]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

मधुर-सुमधुर, मधुर उससे भी, परम मधुर, उससे भी और—
मधुर-मधुरतम, नित्य-निरन्तर वर्द्धनशील मधुर सब ठौर॥
अङ्ग-अङ्ग माधुर्य-सुपूरित, मधुर अमृतमय पारावार।
अखिल विश्व-सौन्दर्य, मधुर माधुर्य सकलका मूलाधार॥
कनक-कमल-कमनीय कलेवर, सहज सौरभित मधुर अपार।
नेत्रद्वय, मुख, नाभि, पदद्वय, हस्तद्वय द्युति-सुषमागार॥
विविध वर्ण, सौरभ विचित्र युत अष्ट कमल ये अति अभिराम।
यों विकसित नव-कमल मिलितसे, अनुपम शोभा हुई ललाम॥

[१७६]

(राग झिंझोटी—ताल दादरा)

जय जय हरि-हृदया वृषभानु-सुकुमारी॥
बिजुरि बरन गौर बदन, सोहत तन नील बसन,
बिंब अधर मधुर हँसन, माधव-मन-हारी।
सुषमामय अंग-अंग, लिएँ मधुर सखिन संग,
बिहरत भरि मन उमंग प्रियतम-सुखकारी॥

लोक-बेद-लाज त्यागि, त्यागि स्वजन महाभाग,
हरि-हित गावत बिहाग, डोलत मतवारी।
प्रियतम-सुख-जल-सुमीन, निज-सुख-बांछा बिहीन,
गुननिधि, पै बनी दीन, राधिका दुलारी॥

[१७७]

(राग सूहा—तीन ताल)

हरत मन माधव कंचन-गोरी॥
राधा अनियारे-रतनारे लोचन सौं, कछु भौंह मरोरी।
पग-पैंजनि, दोउ चरन महावर, करधनि धुनि मनु मधु-रस घोरी॥
दरपन कर, सोहत मुकता-मनि-हार हृदै, मृदु हँसनि ठगोरी।
नैननि बर अंजन मन-रंजन, चित्त-बित्त-हर नित बरजोरी॥
नील बसन, सरदिंदु बदन-दुति, बेंदी सेंदुर-केसर-रोरी।
सहज मथत मन्मथ-मन्मथ मन दिब्य छटा वृषभानु-किसोरी॥

[१७८]

(राग बागेश्री—ताल कहरवा)

अङ्ग-अङ्ग अप्रतिम अमित सौन्दर्य, अतुल माधुर्य महान।
दिव्य पवित्र अङ्ग-सौरभ, संतत शुचि अधर मधुर मुसकान॥
नेत्र सुधावर्षिणी दृष्टियुत, चञ्चलता, वक्रता विशाल।
दीर्घ कृष्ण कच, सोह चन्द्रिका, वेणि-सुगुम्फित मालति-माल॥
सुकुमारता, सहज श्री-सुषमा, प्रियदर्शना, विलक्षण रूप।
सहज सरलता परम बुद्धिमत्ता, सेवा-रति, धैर्य अनूप॥
नित्य विरह-कातरता, मिलनोत्कण्ठा, नित्य-मिलन-अनुभूति।
निरभिमानता, मान-रूपता, वामभावना, विमल विभूति॥
विनयशीलता, शुचि विनम्रता, सर्वत्यागमयता अति पूत।
करुणामयता, अति उदारता, कर्मकुशलता रस-सम्भूत॥

साधुभाव, सौशील्य परम, चापल्य मधुर, गाम्भीर्य अपार ।
गीत-वाद्य-शुचि-नृत्य-कुशलता, ललित अनन्त कला-आगार ।।
प्रिय-गुण-वर्णन-मुखरा अति, मन मौन, नित्य उद्दीपित भाव ।
स्व-सुख-कल्पनाशून्य सर्वथा, नित्य एक प्रियतम-सुख-चाव ।।
सहज प्रेम-प्रतिमा, पर निजमें नित्य प्रेमशून्यता-ज्ञान ।
आत्मनिवेदनमयता, पर है नहीं समर्पण-स्मृति-अभिमान ।।
सखी-सहचरी-प्रेमविवशता, सबमें गुण-महिमाका भान ।
सबके सुखमें सुखी सदा निज सुखका सहज त्याग निर्मान ।।
सौत-प्रियता-सेवा सुखमय प्रियतम-सुख-सम्पादन-जन्य ।
प्रियतम-वशीकरण गुणगणमय, परम त्यागमय जीवन धन्य ।।
रति, स्नेह अति, प्रणय, मान शुचि, पञ्चम राग तथा अनुराग ।
सप्तम दुर्लभ भाव, प्रेम अष्टम अति महाभाव युत त्याग ।।
आठोंसे सम्पन्न, इन्हींकी अगली शुभ परिणतिसे युक्त ।
प्रियतम-महिषी-प्रेयसिगणमें प्रमुख सर्व-अर्पण-संयुक्त ।।
प्रेम-विवशता मधुर, नित्य अभिसार-प्रियता, प्रिय-स्मृति-लीन ।
नवनिकुञ्जवासिनि, मधुभाषिणि, परमैश्वर्यमयी, शुचि दीन ।।
ममतामयी मधुकरी करती प्रिय-पद-कञ्ज मधुर-रस-पान ।
'मैं अभिन्न प्रियतमा श्यामकी'—एक अनन्य अहंका भान ।।

[१७९]

(राग आसावरी—तीन ताल)

जुगलबर एक तत्त्व, दो रूप ।
पुतरी-नयन-तरंग-तोय-सम, भिन्न न भिन्न-स्वरूप ।।
सुभ्र चंद्रिका-चंद्र, दाहिकासक्ति-अनल सम एक ।
अति उदार बितरत स्वरूप-रस सहज, निभावत टेक ।।

[१८०]

(राग देश—तीन ताल)

दोऊ सदा एक रस पूरे।
एक प्रान, मन एक, एक ही भाव, एक रँग रूरे॥
एक साध्य, साधनहू एकहि, एक सिद्धि मन राखैं।
एकहि परम पवित्र दिब्य रस दुहू दुहुनि कौ चाखैं॥
एक चाव, चेतना एक ही, एक चाह अनुहारैं।
एक बने दो एक संग नित बिहरत एक बिहारैं॥

[१८१]

(राग खमाज—तीन ताल)

दुहुनि की प्रीति अनादि, अनोखी।
परम मधुर मूरति सनेह की, चिदानंदमय चोखी।
मन-बचननि ते परे दिब्य दंपति अनादि अति सोहनि।
पटतर नहिं कोउ, भई, न होइहै, जोड़ी मोहन-मोहनि॥
प्रेमी-प्रेमास्पद दोउ नित ही, नित्य एक, द्वै देही।
नित्य रास-रस-मत्त, मत्ततारहित सुचारु सनेही॥
ब्रज-निकुंज प्रगटे दोउ रसमय, रसिक जननि सुख-हेतु।
करत नित्य लीला तहँ सुललित लोकोत्तर रस-केतु॥
सेवक मोहि करो दोउ रसनिधि, करि अति नेह अकारन।
राखौ चरननि में नित अपुनें, करि बिष-बिषय-निबारन॥

[१८२]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

कृष्ण शक्तिमय, शक्ति राधिका—चिन्मय एक तत्त्व भगवान।
नित्य, अनादि, अनन्त, अगोचर, अमल, अनामय, सत्य महान॥
त्रिगुणरहित, भगवद्गुणमय, शुचि सच्चिन्मय आनन्द-शरीर।
लीलामय, लीला, लीला-रत, दो तनु दिव्य नित्य अशरीर॥

[१८३]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

वह सखि ! शशधर सुखद सुठार। यह सखि ! शुभ्र ज्योत्स्ना-सार ।।
वह सखि ! सूर्य ज्योति-दातार। यह सखि ! द्युतिमा सूर्याधार ।।
वह सखि ! अग्नि देवता ताप। यह सखि ! शक्ति दाहिका आप ।।
वह सखि ! सागर अति गम्भीर। यह सखि ! जलनिधि जीवन नीर ।।
वह सखि ! सुन्दर देह सुठाम। यह सखि ! चेतन प्राण ललाम ।।
वह सखि ! भूषण सुषमा-सार। यह सखि ! स्वर्ण भूषणाधार ।।
वह सखि ! अतुल-शक्ति बलवान। यह सखि ! शक्तिमूल, बल-खान ।।
वह सखि ! सदा सुवर्धन रूप। यह सखि ! रूपाधार अनूप ।।
वह सखि ! अलख निरञ्जन तत्त्व। यह सखि ! तत्त्वाधार महत्त्व ।।
वह सखि ! मुनि-मोहन सुखधाम। यह सखि ! स्वयं मोहिनी श्याम ।।
वह सखि ! कला-कुशल रमनीय। यह सखि ! स्वयं कला कमनीय ।।
वह सखि ! अग-जग-सुख-आगार। यह सखि ! तत्सुखकी भण्डार ।।

[१८४]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

वह सखि ! नूतन जलधर अङ्ग। यह सखि ! सुस्थिर बिजलि-तरंग ।।
वह सखि ! मरकत मणि अभिराम। यह सखि ! निर्मल हेम ललाम ।।
वह सखि ! तरुवर तरुण तमाल। यह सखि ! लतिका कनक रसाल ।।
वह सखि ! मधुकर रसिक उदार। यह सखि ! पद्मिनि रस-भण्डार ।।
वह सखि ! बिधुवर विभा-विभोर। यह सखि ! अपलक नयन-चकोर ।।
वह सखि ! प्रिया-सुखागत-प्राण। यह सखि ! प्रियतम-सुखकी खान ।।

[१८५]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

रास-बिहारिनि राधिका, रासेस्वर नँद-लाल।
ठाढ़े सुंदरतम परम मंडल रास रसाल ।।

[१८६]

(दोहा)

भावमयी श्रीराधिका, रसमय श्रीगोविंद।
उभय उभय-मुख-कंज पै खिंचि रहे नैन-मिलिंद ॥
मधुर अधर मुरली धरे ठाढ़े स्याम त्रिभंग।
राधा उर उमग्यौ सु-रस रोमांचित अँग-अंग ॥
नील-पीत-पट दुहुँन के भूषन-भूषन देह।
होड़ लगी अति दुहुँन में बढ़त छिनहि छिन नेह ॥
मोर-मुकुट, सिर चंद्रिका, त्रिभुवन-मोहन रूप।
करत परस्पर पान दोउ नित रस दिब्य अनूप ॥

[१८७]

(राग आसावरी—तीन ताल)

जुगल बर परम मधुर रमनीय।
सहज मार-रति-मद-मर्दन छबि ललित, कलित, कमनीय ॥
बदन-कमल नित सहज प्रफुल्लित, सरस मधुर मुसुकान।
बरबस हरत मुनींद्र बिजित-मन बीतराग तपवान ॥

[१८८]

(राग खमाच—राग दादरा)

जयति जय जयति रस-भाव-जोरी।
नील घन स्याम अभिराम, मुनि-मन-हरन,
दुति करन ज्योति राधा किसोरी।
पीत पट ललाम छबिधाम सुचि, नील-बरन,
स्वर्न-तन राजत, डारत ठगोरी ॥
स्याम-छबि निरखत अनिमेष राधा सतत,
स्तब्ध मनु देखि ससधर चकोरी।

राधा-मुख-कमल लखि मत्त स्यामसुंदर-दृग-
भृंग रस-पान-रत अमिय घोरी ॥
सखियन अति भीर जुरी, जुगल रूप निरखन कौं,
रहीं सब चकित चित, तृनहि तोरी ।
राधिका-माधव द्वै लसत, मन बसत नित,
है रही प्रेमबस देह मोरी ॥

[१८९]

(दोहा)

परम प्रेम-आनंदमय दिब्य जुगल रस-रूप ।
कालिंदी-तट कदँब-तल सुषमा अमित अनूप ॥
सुधा-मधुर-सौंदर्य-निधि छलकि रहे अँग-अंग ।
उठत ललित पल-पल विपुल नव-नव रूप-तरंग ॥
प्रगटत सतत नवीन छबि दोऊ होड़ लगाय ।
हार न मानत जदपि, पै दोऊ रहै बिकाय ॥
नित्य छबीली राधिका, नित छबिमय ब्रज-चंद ।
बिहरत बृन्दा-बिपिन दोउ लीला-रत स्वच्छंद ॥

[१९०]

(राग आसावरी—तीन ताल)

जुगल छबि हरति हिये की पीर ।
कीर्ति-कुँअरि ब्रजराज-कुँअर बर ठाढ़े जमुना-तीर ॥
कल्पबृक्ष की छाँह, सुसीतल-मंद-सुगंध समीर ।
मुरली अधर, कमल कर कोमल, पीत-नील-दुति चीर ॥
मुक्ता-मनिमाला, पन्ना गल, सुमन मनोहर हार ।
भूषन बिबिध रत्न राजत तन, बेंदी-तिलक उदार ॥
स्त्रवननि सुचि कुंडल झुर झूमक झलकत ज्योति अपार ।
मुसुकनि मधुर अमिय दृग-चितवनि बरसत सुधा-सिंगार ॥

[१९१]

(राग पीलू—तीन ताल)

सोहत जुगल राधे-स्याम।
नील नीरद स्याम, गोरी राधिका अभिराम॥
पीत बसन सुनील तन पर लसत सोभा-धाम।
नील सारी अति सुसोभित गौर देह ललाम॥
उभय अनुपम रूप-निधि, सृङ्गार के सृङ्गार।
सील-गुन-माधुर्य-मंडित अतुल, सुषमागार॥
दिब्य देह, सुमन अलौकिक सुचि सदा अबिकार।
सर्ब, सर्बातीत, निरगुन, सकल गुन आधार॥
प्रकृति-गत, नित प्रकृतिपर, रस दिब्य पारावार।
एक नित जो, बने नित दो करत नित्य बिहार॥
करत अति पावन परस्पर प्रेममय ब्यौहार।
स्व-सुख-बांछा-रहित पूरन त्यागमय आचार॥

[१९२]

(राग भूपाली—तीन ताल)

स्याम-स्यामा सुषमाके सागर।
कोटि काम-रति मोहन सोहन नव-नागरि नट-नागर॥
कल कमनीय किसोर-बयस दोउ स्याम-गौर सुख-आगर।
मधुर-मधुर मुसुकात परसपर निरखत छबि नित जागर॥

[१९३]

(राग हमीर—तीन ताल)

बिराजत रासेस्वरि-रसराज।
गौर-स्याम तन नील-पीत पट सजे मनोहर साज॥
चंचल चपल नैन की चितवनि चित उपजावत मोद।
मधुर बचन रसभरे परस्पर कहि-कहि करत बिनोद॥
कलित केलि कमनीय अलौकिक रस-आनंद अनूप।
पल-पल बढ़त भाव-माधुरि सुचि, विकसत नव-नव रूप॥

[१९४]

(राग झिंझोटी—ताल दादरा)

सोहत सुठि स्याम संग राधा रस-भीनी।
राधा-मन लीन-स्याम, राधा हरि-लीनी॥
सुभग नील-स्याम बदन, राधा हेम रंगी।
पीत बसन सुंदर, नव नील पट सुरंगी॥
अंग बरन आपस के दिब्य बसन धारी।
मोर-मुकुट सोहत सिर, चंद्रिका उज्यारी॥
अधरनि पै दोउन के मृदुल हँसी छाई।
दोऊ ही दोउन के अनुपम सुखदाई॥
रास-रसराज स्याम, रासेस्वरि राधा।
सुंदर अभिराम स्याम, नित ललाम राधा॥

[१९५]

(राग बिहाग—तीन ताल)

बनहिं बन रस ढरकावत डोलैं।
राधा-माधव-अंसनि कर धरि मधुरी बानी बोलैं॥
स्याम-मेघ राधा-दामिनि नित नव रस-निर्झर खोलैं।
बिहरत दोउ रसमत्त परस्पर, अमिय प्रेमरस घोलैं॥
रसपूरित भुवि खग-मृग-तरु-सर-सरिता करत किलोलैं।
उमग्यौ मधु-रस-निधि अगाध, अति उछलत बिबिध हिलोलैं॥

[१९६]

(राग परज—ताल कहरवा)

लता-निकुञ्ज मध्य माधव धर नटवर वेश रहे सुविराज।
विधुबदनी पिय-हियकी रानी राधा रही अङ्कमें राज॥
निरख मुख-कमल मधुप बने हरि-नयन कर रहे मधु-रस-पान।
प्रेम मधुर पुलकित तन, विगलित हृदय, रसिक रसराज महान॥

[१९७]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

राधा-माधव माधव-राधा छाये देश-काल सब ओर।
नाच रही राधा मतवाली, मुरली टेर रहे मन-चोर॥
देखो, सुनो सदा सबमें सर्वत्र भरे दोनों रस-धाम।
मधुर मनोहर मूरति, मुरली-ध्वनि बरसाती सुधा ललाम॥
लीला-लीलामय ही है सब, लीला-लीलामय सर्वत्र।
लीला-लीलामय ही रहते, करते लीला विविध विचित्र॥
नित्य मधुर दर्शन, सम्भाषण, स्पर्श मधुर नित नूतन भाव।
नित नव मिलन, नित्य मिलनेच्छा, नित नव रस आस्वादन चाव॥

[१९८]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

कलित कल्पतरु-कुंज सुगंधित सुमनावलि-मंडित कमनीय।
अवतारावलि-अंबुज-दल मनि-रत्न-रचित आसन रमनीय॥
सुख पहुँचावन हेतु परस्पर सजे सकल अँग सुंदर साज।
मधुर मनोहर राधा-माधव एकहि दो बन रहे बिराज॥
सील-सँकोच-भरी मुख-छबि पर छलकि रह्यौ हिय-रस कौ भाव।
बोल न निकसत मुख दोउन कैं, उमगि उठ्यो बोलन कौ चाव॥
अति सुंदर माधुर्य-सुधानिधि, अखिल-रस-अमृत-सिंधु अपार।
जय रसमयि राधा, जय माधव रसिक-सिरोमनि परम उदार॥

[१९९]

(राग आसावरी—तीन ताल)

रसमयी संग रसिक बर-राज।
किसलय-सुमन-बल्लरी-बिरचित रहे निकुंज बिराज॥
अमित अनंत तरंगित स्यामल नील-नीरधर अंग।
रास-बिलास-कला-कौसल-निधि ठाढ़े ठसक त्रिभंग॥

****

हेम-बरनि, सुखकरनि लाडिली ललित रही नित संग।
मानौ बारिद-बिजुरी बिलसित नील-पीत नव रंग॥
बिबिध बिधान बिभाव-भावमय मधुमय रसमय रास।
मधुर अधर धर मुरलि मनोहर राग-सुराग बिकास॥

[२००]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

स्थिर बिजली सँग चंचल जलधर रस बरसत अनिवार।
कांचन मनि-गन मध्य महामरकतमनि नंद-कुमार॥
कनकलता अनेक सुस्पर्सित सुचितम तरुन तमाल।
कमलिनि दल महँ मुग्ध मधुप सम राजत श्रीनँदलाल॥
गोपीजन अगनित महँ सोभित प्रति गोपी के ग्यान।
एक-एक सँग बिलसत, नित प्रिय रसिक-मुकुट रसवान॥

[२०१]

(राग बिहाग—तीन ताल)

बिराजित स्यामा-स्याम निकुंज।
गौर-स्याम बदनारबिंद अनुपम सुषमा-सुख-पुंज॥
घुँघराली अलकावलि बिथुरी छाई कलित कपोल।
बाँईं बाँह स्याम की सोभित स्यामा-कंठ अतोल॥
दोनों के दृग बने मधुप दोनों के बदन-सरोज।
करत परस्पर प्रान सुधा-रस, लाजत अमित मनोज॥
प्रेम भरी सुचि सखी-मंजरीं ठाढ़ी सब चहुँ पास।
निरखि मनोहर मधुर जुगल छबि हिय अति भर्‌यौ हुलास॥

[२०२]

(राग देश—तीन ताल)

मिले श्याम-श्यामा दोनों तब उमड़ा अतिशय प्रेम।
मरकत मणिसे लिपटा जैसे—रसमय उज्ज्वल हेम॥
कनकलतासे घिरा मनोहर मानो तरुण तमाल।
नव-जलधरसे मानो बिजली स्वर्णिम मिली रसाल॥
मानो हुआ सरस सरसिजका मधुकरसे मधु सङ्ग।
अति आनन्दित दोनों ही, तन पुलकित प्रेम-तरंग॥
दोनों ही दोनोंको करते प्रेम-रसामृत-दान।
एक हो रहे थे दो, अब फिर एक हुए मतिमान॥

[२०३]

(राग आसावरी—ताल कहरवा)

गौर सुभग शशि अमित दीप्ति शुचि, श्याम-पराजित-अमित-अनंग।
दिव्य सलिल पूरित घन शोभित श्याम, दिव्य विद्युत्‌के संग॥
अंग-अंग विकसित तरंग नित, नव-माधुर्य सुधारस सार।
कलित कुसुम सौरभित मनोहर, झूल रहे दोनों उर-हार॥
कुटिल भृकुटि, चंचल दृग करते नित्य परस्पर आकर्षण।
दो बन पृथक्‌ प्रगाढ़ प्रेमवश करते नित्य प्रेमवर्षण॥
दोनों दोनोंके नित प्रेमी, दोनों दोनोंके शुचि प्रेष्ठ।
दोनों दोनोंको नित देते, सहज प्रेम-सुख-रस अति श्रेष्ठ॥
दोनोंमें है परम त्यागकी पराकाष्ठासे पर-त्याग।
दोनों दोनोंके सुसेव्य प्रिय, दोनों शुचि सेवक बड़भाग॥
रमणी-रमण कौन है, इसका नहीं कहीं कुछ भी है ज्ञान।
रमण-हीन नित रमण निरन्तर, सहज रुचिर रति रम्य महान॥
दोनोंके चरणारविन्दपर न्यौछावर नित मन-मति-प्राण।
दोनों बने रहें नित मेरे, नित्य-प्रिय प्राणोंके प्राण॥

═══★═══

बाल-माधुरीकी झाँकियाँ

[२०४]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

स्मरण-मात्रसे जिनके होता सूक्ष्म कामनाका भी अन्त।
'पूर्णकाम' वे 'स्तन्य-काम' हो दौड़ पड़े ले क्षुधा अनन्त॥
'नित्यतृप्त' जो रहते, जिनके ध्याता भी हो जाते तृप्त।
वे हरि मातृस्तन्य-हित समझ रहे अपनेको 'नित्य अतृप्त'॥
'शुद्ध सत्त्व' जो परमपुरुष हैं, जिनमें नहीं त्रिगुण-संश्लेष।
'क्रोध' वरणकर होठ काटते वे, दिखता न क्षमाका लेश॥
जिनकी शुभ स्मृति ही हर लेती जनके क्रोध आदि सब दोष।
प्रकट कर रहे वे, हो काम-प्रतिहत दधि-भाजनपर रोष॥
'पूर्णैश्वर्ययुक्त' जो नित स्वाराज्य-श्रीके परमाधार।
वही 'लोभ'वश 'चोरी' करते, घुसकर माखनके भंडार॥
जिनके भयसे यम-कुबेर—सब करते नियमित सारे काम।
छड़ी क्षुद्र वे देख जननि-कर बन जाते 'भय'रूप ललाम॥
'चौर्यविशङ्कित-नेत्र' देखते बारंबार द्वारकी ओर।
आ न जाय मैया, मारेगी मुझे समझ अपराधी-चोर॥
'भय-विह्वल' हो भाग चले हरि, सहज तीव्र गतिमें कर वृद्धि।
'पकड़ लिया' जाकर मैयाने, असफल हुई ईश्वरी-सिद्धि॥
पकड़ हाथ, मैयाने छड़ी दिखा, डाँटा अति, कहा—'अशान्त'।
वानरसखा! अदान्तात्मन्! तू हुआ 'धृष्ट' अति ही दुर्दान्त॥
आज मिटा दूँगी मैं तेरा सब चतुराईका 'अभिमान'।
'रोने लगे' आँख मल-मलकर एक हाथसे श्रीभगवान॥
पर जिनकी शरणागतिसे ही कट जाते तुरंत बन्धन।
बरबस वही बँधे ऊखल कमनीय कर रहे मधु-क्रन्दन॥
शुद्ध सच्चिदानन्द, सनातन, नित्यमुक्त जो परम स्वतन्त्र।
कर बन्धन स्वीकार उदरमें, हुए यशोदाके परतन्त्र॥

जिनके अतुलैश्वर्य-सिन्धुके बिन्दु-बिन्दुमें विश्व अपार।
डूबे रहते नित्य, लाँघकर, उसे, कौन जा सकता पार॥
नहीं कभी हो सकता जिन असीमकी सीमाका निर्देश।
नित्य अनन्त पूर्ण चिद्घनका नहीं प्राप्त हो सकता शेष॥
काम-क्रोध-लोभ-भय-क्रन्दन-बन्धनको वे कर स्वीकार।
दिव्य बना देते इनको, कर निज स्वरूपमें अङ्गीकार॥
नहीं कल्पना, नहीं भावना, माया, नाट्य, न दम्भ अनित्य।
है यह रसमयका शुचि पावन प्रेम-रस-सुधास्वादन सत्य॥
शुद्ध प्रेम-परवश हरिमें नित रहते साथ विरोधी-धर्म।
इसीलिये होते उनके सब विस्मयभरे विलक्षण कर्म॥
ज्ञानी-मुक्त, सिद्ध-योगी कोई भी थाह नहीं पाते।
श्याम-रूप-संदोह-महोदधिमें वे सहज डूब जाते॥
मधुर दिव्य इस भगवद्रसका वही परम रस ले पाते।
केवल प्रेमपूर्ण सर्वार्पण कर जो उनके हो जाते॥
इसीलिये सर्वार्पित-जीवन महाभाग वे गोपी-ग्वाल।
दिव्य रस-सुधास्वादन करते रहते हैं सब विधि सब काल॥
नहीं छोड़कर जाते ब्रजको कभी रसिकवर वे नँदलाल।
निज-जन सबको सुख देते वे, करते रहते नित्य निहाल॥
उन प्रेमीजनके पवित्र पद-रज-कणको है अमित प्रणाम।
जिनके प्रेमाधीन हुए हरि करते लीला मधुर ललाम॥
जिनकी माया-रज्जु कठिनसे बँधे अखिल अगणित संसार।
देव-दनुज, मुनि-मनुज, चराचर, है सबपर बन्धन-विस्तार॥

[२०५]

(राग भैरव—ताल मूल)

कर-कमलोंसे चरण-कमलको लिये मधुर मुख-कमल ललाम।
ब्रजेश्वरीकी गोद विराजित बालमुकुन्द नयन-अभिराम॥

[२०६]

(राग रामकली—तीन ताल)

व्रजेस्वरि-गोद में गोबिंद।
चकित दृष्टि, पद-कमल अँगूठा चूसत मुख-अरबिंद ॥
बालमुकुंद, केस घुँघुरारे, सिर सिखिपिच्छ अनूप।
बाजूबँद, बघनखा, करधनी, पग पैजनि अतिरूप ॥
निरखि रही मैया मुख-कमलहि स्नेह-दृगनि, मृदु हास।
कोमल कर सौं दिए सहारौ मन अतिसै उल्लास ॥

[२०७]

(राग भैरव—तीन ताल)

खेलत झुनझुनियाँ ते स्याम।
रतनजटित पलना में पौढ़े नंद-सुअन सुख-धाम ॥
कटि किंकिनी, कलित कंकन कर, गल मोतियन की माल।
उर बघनखा, बाहु बाजूबँद, तिलक सुसोभित भाल ॥
गोल कपोल, अधर अरुनारे, घन घुँघरारे केस।
मंजु मधुर दृग-कंज हरत मन मोहन बाल सुबेस ॥
मुकुट मयूर-पिच्छ राजत सिर मुक्ता गुँथे ललाम।
परम अकिंचन के धन दुर्लभ जसुधा-मन-विश्राम ॥

[२०८]

(राग तोड़ी—तीन ताल)

रतनभूमि पर चलत बकैयाँ।
चकित भये अति कान्ह बिलोकत निज मुख-पंकजकी परछैयाँ ॥
निज अनुहार निहारि सखा इक, पकरन हेतु पसारी बैयाँ।
पकरि न सके, सखेद तेरि जननी-मुख रोवन लगे कन्हैया ॥

[२०९]

(राग मालकोश—तीन ताल)

नेहभरे नयनन्हि सों निरखत लै कर कनक-कटोरी।
दूध पिवावति मातु जसोदा हिय महँ हरख हिलोरी॥
सखा ग्वाल-बालक खेलन को मुदित स्याम ढिग आये।
पय पीयत निहारि नँद-नंदन सब इत-उत छिप छाये॥
पाइ सुभग संकेत सखनि कौ धावन चहत कन्हैया।
'खेलन जाहु लाल! पय पीकर'—जननी जात बलैया॥

[२१०]

(राग भैरवी—तीन ताल)

मचलि रहे ता दिन मन मोहन, मैयाकी चढ़िबै को गोद।
सुनी नायँ मैया कछु तिनकी, लगी रही गृह-कार्य समोद॥
सुबुकि-सुबुकि रो रहे नीलमनि, रहे अजिर-कर्दम में लोट।
आँचर पकरि कही मैया 'तोहिं होन दऊँ नहिं आँखिन ओट॥
कैसे घर कौ काम करैगी, कैसे छोड़ जायगी मोय।
जोर करैगी तो बाबा कौं, मैं बुलवा लूँगौ अति रोय'॥
आइ गये नारद बाबा तेहि छिन तहँ लीला देखि अनूप।
चकित, थकित ह्वै डूबि गये आनंदोदधि लखि हरि कौ रूप॥
बोले 'मैया! तेरे कैसे पुन्य-पुंज तप तीव्र महान।
तेरी गोद चढ़न कों मचले, लोट रहे कीचड़ भगवान॥
विधि-हर-सुरपति बिबिध जतन करि पावत नायँ तनिक परसाद।
ललचाते तेरे प्रसाद कों पूर्न ब्रह्म सो तजि मरजाद॥
या ब्रजभूमि, धूलि-कण याके दिव्य पुन्यमय अतिसय धन्य।
स्वयं सच्चिदानंद सन रहे जिनमें ह्वै सुख-मत्त अनन्य'॥
लोट-पोट हो गये, भूलि सुध-तुरतहि नारद प्रेम-अधीर।
'धन्य-धन्य मैं धन्य आज मम भयो सफल देवर्षि-सरीर'॥
गदगद बचन बोलि नारद्र ब्रज-रज की अति मधुरिमा सराह।
लै प्रसाद आनंद-मगन, उठि चले ब्रह्म—मंदिर की राह॥

[२११]

(राग विलास—ताल रूपक)

'लालन ! देखु आयौ काग।
खान पूआ हाथ तेरे मधुर अति बड़भाग॥
'देउँ पूआ ताहि, मैया ! देखु जाइ न भाज।
ढिंग बुलावहु काग, खेलौं तेहि सँग हौं आज'॥
लाल के सुनि बैन जननी रही काग निहोर।
आइ खावहुँ पूप, खेलहु लाल सँग, खगमौर॥

[२१२]

(राग आसावरी—ताल तीन ताल)

नंदसुत चुपकै माखन खात।
ठाढो चकित चहूँ दिसि चितवत, मंद-मंद मुसुकात॥
मथनी महँ कोमल कर डारे, भाजन की ठहरात।
जो पावत सो लेत ढीठ हठि, नैकहु नाहिं डेरात॥
देखति दूरि ग्वालिनीं ठाढ़ीं, मन धरिबे की घात।
स्याम-ब्रह्म की माधुरि लीला निरखि-निरखि हरषात॥

[२१३]

(राग देशकार—तीन ताल)

भूषन-बसन सजाय सबिधि मैया मुरली कर दीनी।
कमलनैन ने कर्‌यौ कलेऊ, चलिबै की मन कीनी॥
मैया कह्यौ—'लाल मेरे तुम बहुत दूर जिन जइयौ।
साँढ-साँप-बीछिनि तें लाला दूर डरत ही रहियौ'॥
सूधे-से हामी भर, तुरतहि आँगन-बाहर भागे।
कारौ नाग देखि, तहँ, तातें करन अचगरी लागे॥
पाछे-पाछे आय रही ही मैया नेह-भरानी।
विषधर भुजँग निकट लाला कौं देखत ही डरपानी॥

दौरि हटकि धीरे तें नेह-भरे मन लगी डरावन।
कोमल अँगुरिन पकरि कान दहिनौ लागी धमकावन॥
अचरज भरे डरे मन लाला अपराधी-से ठाढ़े।
मैया च्यौं निरदोष मोय डरपावति, सोचत गाढ़े॥
लोकपाल काँपत जा के डर, अखिल भुवन के स्वामी।
डरपत लीला करत स्वयं वे भक्त-प्रेम-अनुगामी॥
वत्सलता परिपूरित मैया-हिय कैसो सुचि पावन।
देखत फन उठाय फनि निज लीला सुललित मन-भावन॥

[२१४]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

नारद बाबा कही वा दिनाँ, ब्रज की अति मीठी माटी।
तातैं चाखन कौं मैया! रसना सौं रही तनिक चाटी॥
सबरे बोलत झूठ, सुनौ, मैं नायँ कबहुँ खाई माटी।
तुहूँ रही पतियाय इनहि, यासौं न बात नैकहुँ काटी॥
मानि लई तूनैं इनकी नकली बातैं सबरी खाँटी।
यासौं पकरि मोय डरपावति, लै अपने कर में साँटी॥
काँपि रह्यौ डर सौं मैं, तौहू आँखि तरेरि रही डाँटी।
मैया! तू क्यौं भई निरदई, कैसें तेरी मति नाठी॥
खोल दऊँ मुख, देखि अबहिं तू, नैकु कतहुँ जो होय माटी।
का जगात, जब डारि दई मैंने अपनी सबरी छाटी॥

[२१५]

(दोहा)

बछरा की लै पूँछ कर पकरि भजावत ताहि।
पाछे-पाछे सखन-सँग ताके भाजत जाहिं॥
नित नूतन क्रीड़ा करत बालक श्रीब्रजचंद।
देत-लेत आनंद नित सच्चित-आनँद-कंद॥

[२१६]

(राग माँड़—तीन ताल)

करत विचित्र चरित्र नित परम मधुर नँदलाल।
बालसुलभ मनमोदमय, अति अबोध सजि बाल॥
खेलत, दौरत, हँसत, लै मधुर सखनि कौं संग।
बछरा कौं रोकन चहत पकरि पूँछ, करि रंग॥
जोर करत बहु, रुकत नहिं पै बछरा बलवान।
घसिटत ताके सँग चलत भाजत श्रीभगवान॥
धन्य गोपबालक परम, धन्य-धन्य गोबत्स।
जिन के सँग आनँद लहत अनवधि आनँद-उत्स॥

[२१७]

(राग आसावरी—तीन ताल)

सखनि सँग खेलत दोऊ भैया।
रुचिर खेल बहु भाँति, मुदित मन दाऊ, कुंअर कन्हैया॥
धावत मिलि गैयन के पाछें, बोलत 'हैया-हैया'।
ईस्वरपनौ बिसारि, अग्य-से नाचत 'ताता-थैया'॥
कोमल किसलय लेइ बनाई एक नैक-सी नैया।
लाइ तराय दई जमुना में हँसि-हँसि जात बलैया॥
डूबन लगी तरी जल में तब, 'हा मैया, री मैया'।
लगे पुकारन—'नारायन ! अब तुम ही बनौ खेवैया'॥
लरत कबौं, रूठत, रिझवत, पुचकारत दै गलबैयाँ।
धन्य-भाग्य ये हरि के प्यारे नैक-नैक-से छैयाँ॥

[२१८]

(राग देश—तीन ताल)

सो छबि छिनहुँ न हिय सों जाई।
करत गुपाल ललित लरिकैयाँ मैया लखि सचुपाई॥

इक दिन स्याम रूँठि जननी सों करी निपट लरिकाई।
हुमकि पीठ चढ़ि धरि दधि-भाजन गोरस लूट मचाई॥
बानर बोली-बोलि दधि बाँटत, माँगत सोउ किलकाई।
सो उतपात निरखि जननी अति आतुर चली रिसाई॥
छरी दिखाइ कहत—'रे कान्हा! तैं अति धूम मचाई।
करिहौं चूर चातुरी तोरी, अब लुकिहै कित जाई'॥
जननि सकोप बिलोकि स्याम तब रहे तहीं ठिठकाई।
सो ससंक चितवन मोहन की मुनि-मन लियो चुराई॥

[२१९]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

मैया! तू भोली है, नहीं जानती कुछ इसकी करतूत।
कैसा धूर्तशिरोमणि है यह तेरा सुघड़ साँवरा पूत॥
ननद जा रही थी मेरी वह प्रातः ही अपनी ससुराल।
बना रही थी उसको देने शकुन-बटेरी मैं ततकाल॥
लगा रही थी उसके मेंहदी, मेरी देवरानी थी व्यस्त।
छतपर थी वह, इधर साँवरा लगा रहा था बाहर गश्त॥
देखा—घर सूना है, आया चुपके-से, घर किया प्रवेश।
पक्का चोर, न पैरोंकी आहट भी होने दी कुछ लेश॥
एक-एक कर बुला लिया फिर अंदर, खोला दधि-भंडार।
घुसे सभी धीरे-धीरे, कर लिये बंद फिर सब ही द्वार॥
नजर गयी मेरी, दीखे कपाट मुझको दधि-घरके बंद।
मैं निश्चिन्त रही, ये घरमें करने लगे काम स्वच्छन्द॥
खाली थे कर दिये तुरत मधु दधि-माखनके सारे माट।
पता नहीं ये कितने थे सब, कैसे रचा अनोखा ठाट॥
खा-पीकर कुछ मटके फोड़े, होने दी न जरा आवाज।
धीरे-से पट खोल, सभी ये भागे निकल मनोहर साज॥

देखा—भाग रहे, मैं दौड़ी, झट जा पहुँची घरके द्वार।
तबतक दूर निकल, यह लगा चिढ़ाने मुझको, दे फटकार॥
दिखा-दिखाकर मुझे अँगूठा हँसा विचित्र हँसी यह चोर।
उड़ा रोष सब, रही देखती मैं अपलक हँस-मुखकी ओर॥
गयी भूल मैं इसे पकड़ना, इसके जादूके वश हो।
तबतक सब चल दिये नाचते-हँसते, करते हो-हो-हो॥

[२२०]

(राग खमाच—तीन ताल)

पनघट पर हरि करत अचगरी।
ग्वाल-सखा लै संग छरिन तैं ढुरकावत, फोरत जल-गगरी॥
हँसि-हँसि, हो-हो करि दिखरावत आँखि, करत सब मधुर मसखरी।
आगें-पाछें धाय, आय सामुहे, ठाढ़ ह्वै रोकत्त डगरी॥
भईं ग्वालिनीं बिकल सकल, पै मन मुसुकात मुदित ह्वै सगरी।
बोलीं—'अरे ऊधमी लाला! क्यौं नित करौ बात ये लँगरी'॥

[२२१]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

(राजस्थानी भाषा)

बरजै क्यूँ नी, लाल स्याम तेरो यो नटखट जसुमति रानी ए।
घर-घर जावै, धूम मचावै, करै खूब मनमानी ए।
सूत्योड़ा सब बाल जगावैं, खेलतड़ाँनै जाय रुवावै।
चोटी बाँध पिलँग कै पागै, हँस-हँस देखै कानी ए॥ १॥
छिपकर छानै-मानै आवै, चुपकै-सी घर में बड़ ज्यावै।
खाय चूँटियौ, मटकी फोड़ै, भाजै भय-सी मानी ए॥ २॥
पकड़ूँ तो यो हाथ न आवै, मूँ टेढ़ो कर मनै चिड़ावै।
पहुँचो पकड़ झटक कर भाजै करै बड़ी सैतानी ए॥ ३॥

आय अँधेरै मैं ल्हुक ज्यावै, धीरै-सी आगल दे आवे।
अंग-अंग सैं झरै चाँदणो, कर दे तम की हाणी ए॥ ४॥
ग्वाल-बाल घोड़ा बण ज्यावै, उन पर चढ़कर हाथ बढ़ावै।
ऊखल पर चढ़ जाय, मह्यो खावैं, ढोलै ज्यूँ पाणी ए॥ ५॥
बाल-सखा सब मिलकर खावैं, बँदराँ नैं यो खूब लुटावै।
आँख नचाकर, मूँ मटका कर, बोलैं मधुरी वाणी ए॥ ६॥
नाचैं-गावै खेल दिखावै, रिझा-रिझा हिवड़ो हुलसावै।
छलियो मन मोहै, यो चोरी करै फेर गुणखानी ए॥ ७॥
मुलक-मुलक कर मनैं हँसावै, काढ कालजो यो ले ज्यावैं।
के-के गुण ईं कान्हूड़े/जीवनधन का बरणूँ मैं नँद-राणी ए॥ ८॥

[२२२]

(राग आसावरी—तीन ताल)

कन्हैया गाय चरावन जात।
लाल काछिनी, कटि कल किंकिनि, पग नूपुर झननात॥
मोर-मुकुट सिर, कानन कुंडल, गल मुक्तामनि-माल।
बाजूबंद विचित्र, सुकंकन, तिलक सुसोभित भाल॥
पीत बसन दामिनि-दुति-निंदित, घूँघरवारे केस।
स्वर्न लकुटिया कमल लिये कर-कमलन्हि अतिहि सुबेस॥
धौरी, धूमरि, कारी, पीरी, सुंदर कबरी धेनु।
सखा सुबल-श्रीदाम-संग कटि राजत सींगा-बेनु॥

[२२३]

(राग भैरवी—ताल दीपचन्दी)

बनहिं बन स्याम चरावत गैया॥
सुभग अंग सुखमा को सागर कर बिच लकुट-धरैया।
पीत बसन दमकत दामिनि सम, मुरली अधर बजैया॥

धावत इत-उत दाऊ के सँग, खेल करत लरिकैयाँ।
गैयन के पाछे नित भाजत, नंदराय कौ छैया ॥
धन्य-धन्य वे व्रजकीं धूमरि-धौरी-कारी गैया।
जिनहि पियावत जल जमुना-तट ठाढ़ो आपु कन्हैया ॥

[२२४]

(राग बिलावल—तीन ताल)

खेलत ग्वालन सँग दोउ भैया।
नटवर वेष बने अति सुन्दर, चलीं जाति आगे सब गैया ॥
नव-पल्लव-बन-धातु-विभूषित, पुष्पहार-गल, निपुन नचैया।
मोर-पिच्छ-गुच्छन सों सोभित नाचत ताल सहित सरसैया ॥
सींग-बाँसुरी मधुर बजावत गावत सबके साथ कन्हैया।
ताल ठोंकि मल्लई करत सब एक एक को मन रिझवैया ॥
क्रीडत बिबिध भाँति मोहन बन करत हर्ष-धुनि 'हैयाहैया'।
ग्वाल-बाल को रूप धारि, सुर धन्य-धन्य कहि लेत बलैया ॥

[२२५]

(राग गौड़ सारंग—तीन ताल)

वृन्दा-विपिन तपन-तनया-तट शोभित पादप-लता तमाम।
कटि मुरली, घिर रहे मुग्ध गौ-गोपी-गोपोंसे अभिराम ॥
अलंकार-भूषित तन, सुन्दर कण्ठहार, बघनखा ललाम।
मोर-मुकुटधर क्षीर-पात्र कर लिये खड़े मन-मोहन श्याम ॥

[२२६]

(राग सारंग—ताल कहरवा)

नव-पल्लव सुगन्ध-सुमनोंसे शोभित वृक्ष-लता सम्पन्न।
होता जहाँ, वायु शीतल-सुरभित-सुमन्दसे सुख उत्पन्न ॥
यमुना-पुलिन सुवासित सुन्दर रहता सदा एक शुभ ओर।
वृन्दा-विपिन-वीथियोंमें उन विचर रहे व्रजराज-किशोर ॥

[२२७]

(राग बहार—तीन ताल)

बजावत मुरली मीठी तान।
ठाढ़े बालरूप मन-मोहन मोहन मधु रस खान॥
कान उठाये सुनत चकित-मन हर्षित बत्स महान।
सिखि सुस्थिर सर्वांग सुनत सुर करत दिव्य रस पान॥
मुख-छबि मनहर सरल सुशोभित अरुन अधर हर मान।
नयन विशाल चमत्कारी अति, खींचत बरबस प्रान॥
कुंचित कच सिर रतन-मुकुट, सिखि-पिच्छ, सुकुण्डल कान।
कर कंकन, कटि करधनि, कूजत नूपुर, कल कल गान॥
हेरत हरत सहज मुनि-जन-मन, करत प्रेम निज दान।
टूटत सकल बंध मायाके, मेटत मोह महान॥

[२२८]

(राग गौरी—तीन ताल)

गमन करत रबि लखि अस्ताचल मनमोहन लै गोधन संग।
उतरि रहे गोबरधन गिरि ते; रँगे रँगीले नित नव रंग॥
त्रिविध सुगंध पवन मनभावन परसत स्याम सलोने अंग।
फहरत बसन सुमन बर माला प्रगटत प्रकृति विचित्र तरंग॥
अलि-कुल-मद-हरनी अलकावलि सिर सिखिपिच्छ मुकुट छबिसार।
नयन बिसाल रसाल चित्तहर पल पल मोद बढ़ावनहार॥
मुरली बरसावत मधु रस अति उमगावत सब दिसि रसधार।
सोहत सुभग सुवेष नीलमनि सुषमा अमित करत बिस्तार॥

[२२९]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

नयननि कौ इतनौई फल है, करैं सदा माधव-दरसन।
नीलस्याम-घन-बरन, पीतपट बिजुरीबरन, परम सोभन॥

हियपर मुक्तामनि-बनमाला कौस्तुभ दिब्य नित्य राजित।
मधुर स्मित सोभित बिंबाधर, श्रवन मकर-कुंडल-भ्राजित॥
भाल तिलक कस्तूरी सोभित, भ्रमर-कृस्न घुँघुरारे केस।
रत्नमुकुट, सिखिपिच्छ मनोहर, नित्य मधुर नव नटवर-बेस॥
कोटि-कोटि मन्मथ-मनहारी, अधर धरें मुरली गावत।
बल-बालक-गोबृन्द संग लै, नाचत बृन्दावन आवत॥

[२३०]

(राग भैरवी—तीन ताल)

कालीदह-जल ऊपर सोहत।
करि कालिय-उद्धार सु निकसत बाहर, सुर-मुनि-जन-मन मोहत॥
कियौ सिंगार बिबिध बिधि अनुपम कालिय की घरिनी मिलि सारी।
मधुर रूप-सुंदरता पर सब त्रिभुवन की सुन्दरता वारी॥
मुसुकत मधुर मुरलि धरि अधरनि परम दिव्य रस-सरि बिस्तारत।
भव-दुख-दावानल-निर्वापित करत, सकल जंजाल निवारत॥

[२३१]

(राग गारा—ताल दादरा)

क्रीडत कल कुँमर कान्ह कालिय बदन पर।
चढ़े चलत ठुमुक-ठुमुक, चमकत कुंडल बर॥
कर कंकन, भुजाबंद, कंठहार मनहर।
नयन सुबिसाल, भाल दमकत सुचि तमहर॥
बिनवत कालिय-घरनि कलित कुसुम कर-धर।
अघ-रहित भक्त भयो सर्प पाय बिमल बर॥

[२३२]

(राग वागेश्री—ताल कहरवा)

दुर्मति दैत्य महाबलने आ, नन्द-भवनमें किया प्रवेश।
हाथ लिये पञ्चाङ्ग, रामनामी ओढ़े, शुचि ब्राह्मण-वेश॥

झूल रहा यज्ञोपवीत कंधेपर, भस्म त्रिपुण्ड्र सुभाल।
गले भव्य रुद्राक्ष-हार शुभ, पाण्डित्योचित मन्थर चाल॥
आदर किया सभीने नन्द-महलमें उसको पण्डित जान।
अर्घ्यासन मधुपर्क दानकर बैठाया सादर, सहमान॥
परिचय दे ज्योतिषका, उसने पूछा शिशुका जन्म-सु-काल।
बना कुण्डली, हो गम्भीर, लगा बतलाने फल तत्काल॥
कहा—'मूलमें जन्मा है यह, कर देगा कुलको निर्मूल।
गोकुलको पहुँचा पताल, यह सबके उर बेधेगा शूल॥
होली करके गोत्रमात्रकी, कर देगा सब वंश-विनाश।
अतः इसीमें है मङ्गल, कर दिया जाय इसका ही नाश॥
फेंका जाय घोर वनमें, या गाड़ा जाय भूमिको खोद।
बालक नहीं, काल है सबका, अशुभ अमङ्गल विगत-विनोद॥
सुन कर्कश वाणी दानवकी, हुए सभी नर-नारि उदास।
भड़क उठा क्रोधानल सबके, तुरत बढ़ चला श्वासोच्छ्वास॥
सुनते ही दुर्वचन, अचेतन भी हो उठे तुरत विक्षुब्ध।
व्याप्त चेतनाने उनको भी 'देने दण्ड' कर दिया क्रुद्ध॥
मटकी छींके टँगी गिरी आ दानवके सिर तुरत धड़ाम।
बेलन चला, आ घुसा मुखमें, बिगड़ गयी हुलिया बेकाम॥
सिलबट्टा झट उठा, धड़ाधड़ किया पीटना जो आरम्भ।
भगा महाबल चिल्लाता-रोता अति, लगा छिपाने दम्भ॥
खटिया खड़ी रोककर पथको, मूसलने उठ मारी मार।
पीठ पटा कर दी दानवकी, चीख उठा कर करुण पुकार॥
दम फूला, गिर पड़ा भूमिपर, पोथी-पत्रे फटे तमाम।
असत् जनेऊ टूटी, मिटे तिलक, हो गया शोकका धाम॥
पण्डितको यह मिली दक्षिणाकी जब देखी भारी पोट।
लोट-पोट हो हँसे नारि-बालक, बूढ़ोंने हँस ली ओट॥

——★——

श्रीराधा-माधव-लीला-माधुरी

श्रीराधा-माधव-लीला-माधुरी

[२३३]

(राग बहार—तीन ताल)

नवल बृन्दाबन सोभा-धाम।
नवल बसंत, नवल मलयानिल, तरुवर नवल ललाम॥
नवल कुसुम, मकरंद नवल, रस-लोलुप नवल मिलिंद।
नवल मोर, सुख-सारि-कोकिला कुहकत नवल सुछंद॥
नवल किसोर, नवल लीला रत नवल किसोरी संग।
नवल प्रेम, आनंद नवल, अति मूर्छित नवल अनंग॥

[२३४]

(राग बसन्त—तीन ताल)

नव कानन, नित नूतन तरु-गन, नव पल्लव, नव लता-बितान।
नव-बिकसित नव कुसुम सुगंधित नव मधुकर कर नव कलगान॥
नव-मनहर मधु रितु, नित नूतन मलयानिल, नव मुकुल रसाल।
नव-नव मधु, नव-नव कोकिल, नव तुलसि-मंजरी, नव बनमाल॥
नव-मुरली-धुनि, नव आवाहन, नित-नवीन सुचि हास-बिलास।
नव-ब्रज-तरुनी-गन, नव अरपन, मधुर सुचारु नित्य नव रास॥
नव-नट-नागर, नव बर नागरि, नित-नव प्रेम-सुधा, नव देह।
नव-माधुरी, नित्य नव लीला, नित नवीन बरसत रस-मेह॥

[२३५]

(राग मालकोश-ताल त्रिताल)

निभृत-निकुञ्ज-मध्य निशि-रत श्रीराधामाधव मधुर विलास।
मधुर दिव्य लीला प्रमत्त वर बहा रहे निर्मल निर्यास॥
बरस रही रस सुधा मधुर शुचि छाया सब दिशि अति उल्लास।
लीलामय कर रहे निरन्तर नव-नव लीला ललित प्रकास॥

सेवामयी परम चतुरा अति स्वसुख-वासनाहीन ललाम।
यथायोग साधन-सामग्री वे प्रस्तुत करतीं, निष्काम॥
'मधुर युगल हों परम सुखी' बस, केवल यह इच्छा अभिराम।
निरख रहीं पवित्र नेत्रोंसे युगल मधुर लीला अविराम॥

[२३६]

(राग आसावरी—तीन ताल)

प्रिया-प्रीतम नित करत बिहार।
नित्य निकुंज परम सोभन सुचि माया-गुन-गो-पार॥
नहिं तहँ रबि-ससि की दुति, नहिं तहँ भौतिक अन्य प्रकास।
नित्य उदित दिव्याभा तनु की छाई रहत अकास॥
जिन की पद-नख-प्रभा ब्रह्म बनि ग्यानी-जन-मन छाई।
जिन की ही सत्ता-प्रभुता सब जगमें रही समाई॥
जिन के हास-बिलास-रास-रस सब निरगुन हरि-रूप।
मायिक गुन प्रबिसत न तहाँ, चिन्मय सब वस्तु अनूप॥
दिव्य निकुंज मध्य नहिं संभव असरीरी-अस्तित्व।
बिलसित नित्य दिव्य अति भगवद्-रूप प्रेम कौ तत्त्व॥
सखी-मंजरी, सज्या-सोभा, लीला-साधन अन्य।
सबहि स्याम-स्यामामय, प्राकृत नाम, भए ते धन्य॥
कहत-सुनत-समुझत सोइ मानव, जो तजि भोगासक्ति।
रहत निरंतर सेवा-रत, जो करत भाव-रस भक्ति॥
सोइ देखत निकुंज की लीला अनुपम दिव्य महान।
जिन कों दै अधिकार दिखावत स्वयं जुगल भगवान्॥

[२३७]

(राग कालिंगड़ा—ताल कहरवा)

देख रहा मैं, करते लीला श्रीराधा-माधव सुख-धाम।
नित्य निकुञ्ज निभृतमें रसमय मधुर मनोहर दिव्य ललाम॥

त्यागमयी सब सखी-मञ्जरी रहतीं सेवामें तल्लीन।
किये नित्य राधा-माधव-सुख-सेवा-रस-निधिमें मन-मीन॥
उठतीं रस-समुद्रमें प्रतिपल दिव्य विविध-रसमयी तरंग।
नित्य नवीन सुधा-विस्तारिणि, नित्य नवीन दिव्य रस-रङ्ग॥
नहीं काम आदिक विकार कुछ, नहीं वासना-लेशाभास।
चिदानन्दमय होता रहता परम अलौकिक रास-विलास॥
मिटी सकल कल्पना जगतकी, नहीं रह गया कुछ अवशेष।
लीलामय श्रीराधा-माधव, लीला नित नव, शेषी-शेष॥

[२३८]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

मोहन के हिय में भरी मधुर सुधा-रसखान।
निकसी वह मधु-सरित-सी बनि मुरली की तान॥
निज रस-सरिता मधुर में बृत्ति हुई तल्लीन।
मुरलि-समाधि लगी हुए बाह्य चेतना हीन॥
त्यौं ही मोहन-मोहनी सुनि मुरली संगीत।
हुई स्तब्ध बेभान ज्यौं, चित्र-लिखी-सी भीत॥

[२३९]

(राग पीलू—तीन ताल)

बटाऊ! वा मग तैं मति जइयो।
गली भयावनि भारी, जा में सबरौ माल लुटइयो॥
ठाढ़ौ तहाँ तमाल-नील इक छैल-छबीलौ छैयो।
नंगे बदन मदन-मद मारत मधुर-मधुर मुसकैयो॥
देखन कौं अति भोरौ छोरा, जादूगर बहु सैयो।
हरत चित्त-धन सरबस तुरतहिं, नहिं कोउ ताहि रुकैयो॥

[२४०]

(राग कामोद—तीन ताल)

स्याम मोरे ढिग तें कबहुँ न जावै।
कहा कहूँ सखि! गैल न छाड़ै, जित जाऊँ तित धावै॥
गैया दुहत गोद आ बैठे, दूध धार पी जावै।
दही मथत नवनीत लेबे कौं, मटकी माहिं समावै॥
रोटी करत आइ चौका में, ऊधम अमित मचावै।
जेंवत बेर संग आ बैठै, माल-माल गटकावै॥
सखियन सँग बतरात आइ सो पंचराज बनि जावै।
मुरली मधुर बजाय देखु सखि, मोहन हमहिं रिझावै॥
सोवत समै सेज आ पौढ़ै, गृह-स्वामी बनि जावै।
स्वल्प निंदरिया बीच सपन महँ माधुरि-रूप दिखावै॥
तदपि न बरजत बनै ताहि सखि! चित अति ही सुख पावै।
बारहिं बार निहारि चंद्र-मुख, अंतर अति हुलसावै॥

[२४१]

(राग खट—झपताल)

मोहन-मुख-पंकज पै सरबस दीन्हौ वार री॥
ननद कह्यौ मो तें अति नेह सों 'भाभी! सुन,
एक बात मेरी तू मन तैं लै मान री।
निरखि लै मोहन कौ मोहन मुखारबिंद,
एक बार नैन भरि, तजि कै सब गुमान री'॥
गरब भरी हौं हठीली नहीं मानी बात,
कह्यौ दुत्कार—'ब्रजनारी! भूली भान री॥
नंद के नैक-से छोरा पै तजि दीन्ही,
सारी मरजादा लोक-लाज, कुल-कान री'॥

ननद सुनि बात मेरी हँसि कै दीन्हीं टार री।
मोहन-मुख-पंकज पै सरबस दीन्हौ वार री॥
ननद कौ डाँटि मानौ गढ़ जीति आई हौं,
गरब में भरी जाय लागी गृह-काम री।
मन नाहिं मानै, मनाय हारी बार-बार,
पल-पल में याद आवै मोहन प्रिय स्याम री॥
कृष्ण-कृष्ण कहें सब, मोहि अति प्यारौ लगै,
मन गुदगुदी होइ, बोलूँ कृष्ण-नाम री।
'हा कृष्ण ! हा प्रिय कृष्ण' मैं पुकारि उठी बरबस,
बही अश्रुधार, चौंकी सब बाम री॥
भई मैं अचेत, देखि मोहि हँस्यौ परिवार री।
मोहन-मुख-पंकज पै सरबस दीन्हौ वार री॥
'सारी ब्रजनारिन कौं बेभान कहति हुती,
भाभी ! तू भई बेभान क्यों अबार री ?'
'हा हा ! बीर ! कहो कहौं, बिंध्यौ आय तीर हिएँ,
तासौं बही प्रेम-रस-सुधा-धार री॥
बेगि मो मिलाय प्रान-प्यारे मन-मोहन सौं,
जनम-जनम भूलूँ नहीं उपकार री।
जाकौ नाम हृदय बेधि, दै बहाय सुधा-धार,
ताकौ बस मिलन सब सार-कौ-सार री'॥
स्याम प्रगट भए तहाँ, बामा के प्यार री।
मोहन-मुख-पंकज पै सरबस दीन्हौ वार री॥

[२४२]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

करते कभी छेड़ अति प्यारी,
खारी; भर लेते अँकवार।
पीते कभी, पिलाते रस अति
मधुर-मनोहर कर मनुहार॥

करते विविध भाँति क्रीडा वे,
भरते प्रेम-सुधा-भरपूर।
कर देते शुचि दिव्य प्रेम-
मद की मधु मादकता में चूर॥

[२४३]

(राग अल्हैया—तीन ताल)

गोपी घर तें निकसी बेचन दधि सिर धर भर कर मटकी।
'लेउ स्याम-गोबिंद'—पुकारत फिरत बावरी-सी भटकी॥
रँगी स्याम-रँग, बृत्ति-दृष्टि-मधुकरी स्याम-सरसिज-अटकी।
मुग्ध-मनोहर छबि पिय, बलिहारी फहरानि पीत पट की॥

[२४४]

(राग शुद्ध सारंग—तीन ताल)

ग्वालिनी भूली तन-धन-धाम।
फूली फिरत बावरी इत-उत निरखत मोहन-छबि अभिराम॥
डोलत सर-सरिता-तट, कानन-कुंज सदा एकाकिनि बाम।
जहँ दृग जाय तहाँ नित दीखत सोहन प्रियतम-बदन ललाम॥
एक दिना भटकत इकंत बन, दृष्टि गई नभ दिसि सुठि ठाम।
अपलक नैन मुग्ध भइ ठाढ़ी निरखत छबि मन-मोहन स्याम॥
देस काल सब भये कृष्णमय, छये कृष्णघन तत्त्व तमाम।
धन्य ग्वालिनी जाके दृग-पंकज बन मधुप बसे घन-स्याम॥

[२४५]

(राग सारंग—तीन ताल)

चली स्याम-गत-चित्ता ग्वालिनि धर सिर दधि-पूरन मटकी।
चिंतत स्याम, पुकारत स्यामहि, पहुँची बन इकंत भटकी॥
मधुर-बिकलता गोपी-मन की, स्याम-चित्त में जा खटकी।
प्रगटे तुरत, मधुर गोपी-मुख-पद्म दृष्टि-भ्रमरी अटकी॥

निरखि स्याम सन्मुख सहसा मन छयौ अमित अचरज आनंद।
देखि रही अपलक अचरज, अंगुरि धरि चिबुक, बदन सुख-कंद ॥
रसमय स्याम लैन हिय-रस-दधि भर्‌यौ लगे लूटन स्वच्छंद।
छलक्यौ दधि उत इत मन-रस-निधि छलक्यौ, बढ्यौ तोरि सब बंध ॥

[२४६]

(राग झँझोटी—तीन ताल)

मधुर ब्रजराजकुमर बन तैं बनि आए।
मधुर भेष नटवर-बपु अदभुत छबि छाए ॥
छबि-समुद्र मधुर देह, चिन्मय अति सरस नेह,
बरसत नित रूप-मेह, रस-नदी बहाए ॥
मधुर अति बिसाल हृदय, मधुर चित्त नित्य सदय,
मधुर बुद्धि कृपा-निलय, कृपानिधि लुटाए ॥
मधुर स्याम नील रंग, मधुर पीत बसन अंग,
मधुर ललित तन त्रिभंग, मोद मन भराए ॥
अधरनि धरें मुरलि मधुर, मधुर सप्त बाजत सुर,
मोर-पिच्छ मुकुट मधुर सोभा बगराए ॥
मधुर कुटिल भृकुटि-नैन, कुंचित कच मधुर ऐन,
सुधा-सने मधुर बैन, अमृत बरसाए ॥
मधुर भुज, बिसाल कंध, मधुर दिब्य अंग-गंध,
मधुर माल बर सुगंध करषत मन आए ॥
मधुर फुल्ल कमल-बदन-मधुर चिबुक रूप-सदन,
मधुर रसन क्लेस-कदन दुःख-अघ नसाए ॥
मधुरबिंब-सदृश अधर, मधुर दसन-पाँति सुघर,
मधुर हास मुनि-मन-हर सुषमा सरसाए ॥
मधुर अरुन गोल गाल, मधुर कुँडल अति रसाल,
मधुर तिलक सोह भाल, दुति अति दमकाए ॥

मधुर कंठ कमल हार, मधुर मधुप कर गुँजार,
मधुर गुंज-माल धार, नाचत हरि धाए॥
मधुर कटि, उदार उदर, त्रिवलि-मधुर नाभि सुघर,
मधुर स्त्रवन, नासावर, मधुरिमा रमाए॥
भूषन सृंगार मधुर, किंकिनि-झनकार मधुर,
नूपुर-छमकार मधुर, अग-जग मधुराए॥
मधुर अंग-अँग सुठाम, कोटि-कोटि लजत काम,
मुनि-मन-नैनाभिराम, रूप-निधि भराए॥
मधुर धातु अति बिचित्र, अंग-अंग मधुर चित्र,
रचे रुचिर मधुर मित्र, प्रेम-रस बढ़ाए॥
बृन्दाबन मधुर बास, मधुर रसिक, मधुर रास,
मधुर सकल रस-बिलास, रसिक-रूप भाए॥

[२४७]

(राग ईमन—तीन ताल)

नीलमनि धेनु लिये सँग आवत।
गोपद-धूरि गगन महँ छाई, गो-धन इत-उत धावत॥
क्रीड़त ग्वाल-बाल-सँग प्रमुदित हिलि-मिलि, हँसत-हँसावत।
नाचत-कूदत बिबिध ताल दै, बेनु-बिषान बजावत॥
मुरली-धुनि सुनि मधुर कान्ह की, घर-घर मंगल छाए।
व्रज-जन-मन-रंजन दुख-भंजन मोहन बन तें आए॥
अलकावलि अलि-पाँति-लजावनि, कुटिल भृकुटि अति बाँकी।
सिर सिखि-पिच्छ मुकुट मनि-मंडित, मधुर मनोहर झाँकी॥
बन बिहरत श्रम-जनित स्वेद-कन सुभ ललाट पर झलकत।
नीलोत्पल-दल-कांति मनोहर प्रेम-सुधा-सर छलकत॥
जलद निरखि ज्यों तृषित चातकी चित्त निरतिसय हरषत।
गोपीजन त्यों मगन होत हरि-रूप-माधुरी निरखत॥
रसमय बलित ललित मनि-कुंडल गंड मुकुर अति चमकत।
नटवर-वेष मदन-मोहन की रूप-ज्योति अति दमकत॥

[२४८]

(राग धनाश्री—तीन ताल)

नीलमनि मनहर बन तें आवत।
करतल लकुटि धेनु की हटकनि, बेनु अधर मीठे सुर गावत।
नील-स्याम तन मदन-मनोहर, अंग-अंग अतिसय छबि पावत।
बाँकी भौंह, कमल-दल-लोचन, करि बिनोद सब सखनि हँसावत॥
कारी-धौरी धूमरि-धूसरि चितकबरी लै नाम बुलावत।
नाचत-कूदत-उछरत कबहूँ, मंद-गयंद-गतिहि सरमावत॥
रूप-सुधा-सर बिमल मनौ ब्रज-जुबतिन-मन कुमुदहि बिकसावत।
मुख-सरदिंदु उदित छिन महँ सब गोपिन बिरह-तमिस्त्र नसावत॥
बिबिध सौरभित सुमन-माल गल, नव पल्लव-सुषमा सरसावत।
चपल ग्वाल-बालन सँग हिलि-मिलि नाना-बिध कौतुक उपजावत॥
निरखि परम सौंदर्य मधुर अतुलित मनमथ-मन सहज लजावत।
मोहन छैल-छबीले नटवर सब पर रूप-ठगौरी लावत॥

[२४९]

(राग गौरी—तीन ताल)

नंदसुत रसमय बन तैं आवत।
रसमय करत बिनोद बिबिध बिध, रसमय नयन नचावत॥
रसमय गो-पद-धूलि-धूसरित, रसमय बच्छ खिलावत।
रसमय नटवर-रूप मनोहर, रसमय कमल फिरावत॥
रसमय स्याम-नील श्रीतनु पर उज्ज्वल दुति दमकावत।
रसमय पीत बसन बिद्युत-सम अनिल-लहर लहरावत॥
रसमय मधुर अधर धर मुरली रसमय तान सुनावत।
रसमय मधुर सुधाधर सुर सौं रसमइ रागिनि गावत।
रसमय गोल कपोल, स्त्रवन रसमय कुंडल झलकावत।
रसमय भृकुटि कुटिल सौं रसमय गोपी-मन सरसावत॥

रसमय घुँघरारी अलकावलि अलिकुल-पाँति लजावत।
रसमय सिर सिखि-पिच्छ मुकुट रसमइ सुषमा बगरावत॥
रसमय सकल अंग अति रसमय, मधुर-मधुर मुसुकावत।
रसमय ललित भंगिमा रसमय सखनि समोद हँसावत॥

[२५०]

(राग गौरी—तीन ताल)

बन तें घर हरि पहुँचे आय।
गावत, नाचत, ताल बजावत, आगें-पाछें गाय॥
पीत-हेम-अंबर सुभ सोहत, बन-माला गल राजत।
बिबिध बिचित्र चित्र तनु मंडित, मुरली अधर बिराजत॥
अंग सकल गोधूलि-धूसरित, कुंचित कुंतल सोहत।
गुँथे सुमन नव पल्लव जुत, सिखि-पिच्छ-मुकुट मन मोहत॥
कुंडल मकराकृत स्रुति सोभित, पुष्प कनेर सुरंगी।
अरुनाभा स्यामल कपोल दमकत, दृग बंकिम भंगी॥
रुनझुन-रुनझुन किंकिनि बाजत, नूपुर पग झनकारत।
ब्रज-नव-रमनि निरखि छबि मोहन, बरबस सरबस वारत॥

[२५१]

(राग भैरव—तीन ताल)

देखी आजु अनोखी बात।
गई हुती लै खरिक दोहनी, सुमिरत मोहन-गात॥
मन की जाननिहारे आए मुरली मधुर बजात।
निरखि रहे ग्वालिनि तन ठाढ़े, मधुर-मधुर मुसुकात॥
सुनि मुरली-धुनि तिरछे नयननि निरखत मुख-जलजात।
भई बावरी, बिसरी तन-सुधि, रह्यौ नहीं कछु ग्यात॥
गैया के बदले नोई ले बाँधी बरधा-लात।
प्रेम-सुधा-रस छकी ग्वालिनी ठाढ़ी पुलकित गात॥

[२५२]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

यमुना-तट-संनिकट कुंजमें मृदुल शिलापर मोहन श्याम।
बैठे रूप-छटा बिखराते, बजा रहे वंशी अभिराम॥
सजी-सजायी चली जा रही गोपी ले करमें मटकी।
जल भरने, सुन मुरली-ध्वनि, वह रही राहमें ही अटकी॥
खिंची लोह-चुंबक-सी मुनि-मन-मोहन-मुख-माधुर्य निहार।
जा बैठी विमुग्ध, विस्मित-सी, भूल भवन-तन-मन-संसार॥
भरा अमित आमोद हृदयमें, उपजा मन मधुमये अभिलाष।
बैठी रहूँ सदा यों ही, बस, मुग्ध हुई मोहनके पास॥

[२५३]

(राग भैरवी—तीन ताल)

माधुरी मुरली अधर धरें।
बैठे मदनगुपाल मनोहर सुंदर कदँब तरें॥
इत-उत अमित ब्रज-वधू ठाढ़ीं, बिबिध बिनोद करैं।
गाय-मयूर, मधुप रस-माते, नहीं समाधि टरै॥
झाँकी अति बाँकी ब्रज-सुत की, कलुष-कलेस हरै।
बसत नयन-मन नित्य निरंतर, नव-नव रति सँचरै॥

[२५४]

(राग खमाच—तीन ताल)

बजावत मुरली स्याम सुजान।
बनि संगीत-रूप रसमय प्रिय छेड़त मीठी तान॥
धन्य भईं सब राग-रागिनीं, बड़भागिनी महान।
हरि-मुख बसीं, निकसि मुरली-छिद्रन तें सुधा-समान॥
हर्‌यौ सकल बिष जग-बिषयन कौ, कर्‌यौ उदय अनुराग।
प्रियतम स्याम-चरन-पंकज में, भयौ सहज सब त्याग॥
टूटि गये सब बंधन, जागे परम सखी के भाग।
मुरली की मोहनी मिटाए भोग-बिराग-बिभाग॥

[२५५]

(राग तैलंग—तीन ताल)

बजाऔ मति मुरली, घनस्याम !

जब लौं करौं रसोई तब लौं मति छेड़ो मधु तान ॥
बही धार रस की मुरली-सुर पहुँची चूल्है आय।
कीन्हीं सबरी लकरी गीली, दीन्हीं आग बुझाय ॥
धूआँ उठ्यौ, रुक्यौ मेरो रंधन कौ सगरौ काम।
बिना रसोई कहा खाइँगे घर के लोग तमाम ॥
मुरली मोय लगै अति मीठी बिसरि जाय सब आन।
या तैं सुनौ बीनती मोरी, मोहन जीवन-प्रान !
मीठी मुरली मैं सुनि पाऊँ, बुझै न मेरी आग।
जो तुम करौ बिवस्था दोऊ (ऐसी) जागै मेरौ भाग ॥

[२५६]

(राग भैरवी—तीन ताल)

मुरलिया ! मत बाजै अब और।

हर्‌यौ सील-कुल-मान, करी बदनाम मोय सब ठौर ॥
रह्यो न मोपै जाय, सुनूँ जब तेरी मधुरी तान।
उमगै हियौ, नैन झरि लागै, भाजन चाहैं प्रान ॥
कुटिल कान्ह धरि तोय अधर पर राधा-राधा टेरै।
रहै न मेरौ मन तब बस में गिनै न साँझ-सबेरै ॥
घर कौ काम, सास-पति-सेवा, सब कौ मोह बिसार।
करनौ परै मोहि बरबस तब मोहन हित अभिसार ॥
बंसी सखी ! बिनय सुन मेरी, तजि दै यह उतपात।
वा छलिया के बस ह्वै मो पै मती करै तू घात ॥

[२५७]

(राग आसावरी—तीन ताल)

ग्वालिन मुरली-धुनि सुनि अटकी।
रही निहारति तरु-साखा-दिसि बृत्ति न नेकहु सटकी॥
दधि ढुरि चल्यौ, लई सिर तैं जब कर उतारि दधि-मटकी।
ठाढ़ी माटी की पुतरी-सी अटल-अचल, मति ठिठकी॥
भौंचक रही देखि मोहन-छबि सुषमा पियरै पटकी।
बदन-कमल-रसमाती दृग-मधुकरी रहत, नहीं हटकी॥

[२५८]

(राग वागेश्री—ताल कहरवा)

सुनि मधु मुनि-मन-मोहनि मुरली, करि मधु रूप-सुधा-रस-पान।
बिसरे अग-जग, तन-मन सगरे, राधा भई तुरत बेभान॥
स्त्रवन-नयन-पथ करि प्रबेस उर, छेड़ि रहे मधु मुरली-तान।
छाय रहे, रस लगे उँड़ेलन दिब्य मधुर रसराज सुजान॥
जोगी, परम सिद्ध, तापस, मुनि, ग्यानी, जीवन्मुक्त महान।
सुनि मुरली, अवलोकि मधुर छबि, रखि नहिं सकत चित्त-अवधान॥
चकित-थकित, उर द्रवित, स्त्रवत दृग, बरबस तजि बिराग अरु ग्यान।
डूबत मधुर प्रेम-रस-निधि अति, भजत अहैतुक मन भगवान॥

[२५९]

(राग देश—ताल तीन ताल)

स्याम ने मुरली मधुर बजाई।
सुनत टेर तनु सुधि बिसारि सब गोप-बालिका धाई॥
लहँगा ओढ़ि, ओढ़ना पहिरे, कंचुकि भूलि पराई।
नकबेसर डारे स्त्रवनन महँ अदभुत साज सजाई॥
धेनु सकल तृन चरन बिसार्‌यौ ठाढी स्त्रवन लगाई।
बछुरन के थन रहे मुखन महँ सो पय-पान भुलाई॥

पसु-पंछी जहँ-तहँ रहे ठाढ़े मानो चित्र लिखाई।
पेड़-पहाड़ प्रेमबस डोले, जड़ चेतनता आई॥
कालिंदी-प्रबाह नहिं चाल्यौ, जलचर सुधि बिसराई।
ससि की गति अवरुद्ध, रहे नभ देव बिमानन छाई॥
धन्य बाँस की बनी मुरलिया, बड़ौ पुन्य करि आई।
सुर-मुनि-दुरलभ रुचिर बदन नित राखत स्याम लगाई॥

[२६०]

(राग पूरिया—तीन ताल)

मुरलिया बाजी रे बाजी।
जौ जहँ जैसैं रही तहाँ तहँ तैसैं ही उठि भाजी॥
तन-मन, असन-बसन, पति-सुत-घर सब की सुधि बिसराई।
चली बेगि आतुर सरिता ज्यौं, स्याम-समुँद कौं धाई॥
कोउ काहू की बाट न जोई, काउऐ संग न लीनी।
खिंचि चलि गई लोह-चुंबक-ज्यौं, भटू प्रेम-रँग-भीनी॥
जाइ मिली पिय सौं, मनभावति बस्तु अलौकिक पाई।
भुक्ति-मुक्ति, मैं-मेरी सगरी हरि महँ जाइ समाई॥

[२६१]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

मधुर मुरलि कर, मोर-मुकुट सिर, नूतन जलद-नील घनस्याम।
ऋषि-मुनि-मन-आकर्षक दृगयुग, कुटिल भ्रुकुटि, पट पीत ललाम॥
कोटि-कोटि मन्मथ-मन्मथ-माधुर्य रूप-गुण-निधि अभिराम।
स्मरण सतत करते रहते सुचि पावन प्रेमीजन अविराम॥
नियत समय-संकेत-स्थलपर पहुँच प्रतीक्षा करते स्याम।
शुचितम दिव्य रास-रस-स्वामिनि स्वयं पधार रहीं छबिधाम॥

[२६२]

(राग बसन्त—तीन ताल)

स्याम-दरस-परसनकी प्यासी बिरहाकुल सब ब्रजनारी।
धीरज गयौ, भई अति आतुर, बाढ़ी हियें प्रीति न्यारी॥
परम रसिक नागर रस-सागर जानि गये हरि हिय की बात।
जमुना-पुलिन सुकुसुमित कानन ठाढ़े जाय मधुर मुसुकात॥
धर मधु अधर मुरलिया, मोहन लगे बजावन अति अभिराम।
स्वर-संकेत नाम लै-लै, सब टेरीं भाग्यवती ब्रजबाम॥
सुनत सकल भाजीं ब्रज-बनिता, लखि प्रियतम कौ प्रिय आह्वान।
देह-गेह कौ मोह छाँड़ि सब, तजि मरजाद लोक, कुल-कान॥
प्रेम चतुर चातकि-गन नव घन निरखि भईं आनंद-बिभोर।
चतुर चकोरीं चन्द्र देखि जनु जुरि आईं सब एकहि ठौर॥
तैसहि दग्ध विषम बिरहानल ब्रजबाला सब जुरीं सुभाय।
दिव्य सुखद सौंदर्य-सुधा-सागर सीतल में रहीं नहाय॥
मिटीं सकल तन-मन की ज्वाला, अमित दुःख कौ आयौ अंत।
भेंटे प्रेमानन्द पूर्णतम प्रियतम बाढ्यो प्रेम अनंत॥

[२६३]

(राग देश—ताल मूल)

थीं वे विकसित शारदीय मल्लिका-सुमन शोभित रजनी।
देख उन्हें कर प्रकट 'योगमाया'—'अचिन्त्य निज शक्ति' धनी॥
षडैश्वर्य भगवान पूर्णने किया तुरत संकल्प महान।
रमण—'रसास्वादन-स्वरूप-वितरण'का, कर सबको रस-दान॥
दीर्घकाल पर दे दर्शन निज प्यारीको जैसे प्रियतम।
रँग दे केसरसे उसका मुख-मण्डल निज कर सुखद परम॥
वैसे प्राची दिशा सुमुखि मुख सुखद स्वकिरण-अरुणसे रंग।
उदय हुआ विधु जग-जीवोंका ताप मिटाता शीतल अंग॥

लक्ष्मी-मुख-सम शोभित नव कुङ्कुम-सम अरुण-वर्ण शशि देख ।
विधुकी कोमल किरणावलिसे उद्भासित अरण्यको लेख ॥
मधुर-मनोहर नेत्रवती शुचि व्रज-सुन्दरियोंका मन-हर ।
किया विचित्र वेणु-वादन माधवने सुललित मधुर-स्वर ॥
मुरलीके मधु स्वरमें पाकर प्रियतमका रसमय आह्वान ।
हुईं सभी उन्मत्त, चलीं तज लज्जा, धैर्य, शील, कुल-मान ॥
पति, शिशु, गृह, धन, धान्य, वस्त्र, भूषण, गौ, कर भोजनका त्याग ।
चलीं जहाँ जो जैसे थीं, भर मनमें प्रियतमका अनुराग ॥
नहीं किसीसे पूछा कुछ भी, कहा न कुछ भी, चित्त विभोर ।
चलीं वेगसे जहाँ बजाते थे मुरली मधु नन्द-किशोर ॥
प्रेमविवर्धक मुरली-स्वरसे हो अति विह्वल व्रजनारी ।
पहुँचीं तुरत निकट प्रियतमके भूल स्व-परकी सुधि सारी ॥
थीं वे कृष्णगृहीत-मानसा, थीं वे उज्ज्वल रसकी मूर्ति ।
थीं वे शुचितम प्रेमपूर्ण नटवरकी मधुर लालसा-पूर्ति ॥
आत्मनिवेदन, पूर्ण समर्पण था पवित्रतम उनका भाव ।
जिसमें था न स्व-सुख-वाञ्छाका किंचित् लेश, न किंचित् चाव ॥
विविध भाँतिसे किया परीक्षण, दिखा मोह, भय, धर्म, विवेक ।
पर उन प्रेममयी शुचि व्रज-वधुओंने तनिक न छोड़ी टेक ॥
कहा—'विभो ! सर्वत्र विराजित ! सर्व-समर्थ ! सर्व-आधार ।
क्यों नृशंस तुम बोल रहे यों ? आयीं हमें देख निज द्वार ॥
त्याग सर्व-विषयोंको—भुक्ति-मुक्तिको, हम आयीं पद-मूल ।
दुरवग्रह ! मत छोड़ो हमको, यों सारी रसमयता भूल ॥
प्रिय ! तुम ही हो प्राणिमात्रके बन्धु, आत्मा अति प्रियतम ।
पाकर छोड़ जाय जो तुमको, महामूर्ख वह, पतित, अधम ॥
तुम्हीं बताओ परम धर्मविद् ! नित्यप्रिय ! तुमसे कर प्रीति ।
भजे अन्य दुःखदको फिरसे, क्या है कभी उचित यह नीति ?

छोड़ कहाँ हम जायँ तुम्हें अब, चलते नहीं चरण पद एक।
सुखसे लूट सभीका मन-धन, चले बताने हमें विवेक'॥
आत्माराम-शिरोमणि सत्-चित्-परमानन्दरूप पर-धाम।
योगेश्वर-ईश्वर सब-लोक-महेश्वर नित्यतृप्त निष्काम॥
अज-भव-शेष-सनक-नारद सब करते नित जिनका गुण-गान।
प्रेममयी व्रज-बनिताओंके शुद्ध प्रेम-बस वे भगवान॥
अङ्ग विमल शुचि स्पर्श-दान कर किया सभीको पावन, धन्य।
भावोद्दीपन किया, जगाया शुद्ध-काम रतियोग्य अनन्य॥
आत्मरमण फिर किया परम शुचि पूर्णकाम हरिने अभिराम।
शारदीय उन शशधर-किरण-सुशोभित रातोंमें रस-धाम॥
सत्यकाम अवरुद्ध-सुसौरत हरिने किया पवित्र विहार।
सत्-संकल्प चिन्मयी लीला-रसमय मधुर नित्य अविकार॥
नहीं रमण यह था कदापि विषयासक्तोंका 'इन्द्रिय-भोग'।
नहीं आत्माराम योगियोंका भी 'आत्मरमण'-संयोग॥
'काम-विजय' का भी न कहीं था कुछ भी यहाँ कल्पना-लेश।
क्योंकि नीच कामका तो हो सकता यहाँ न कभी प्रवेश॥
था विशुद्ध वितरण माधवका 'निज-स्वरूप-आनंद' महान।
था यह परम 'रसास्वादन' का निजमें ही निजका सुविधान॥
आस्वादक आस्वाद्य न दो थे, था मधुमय लीला-संचार।
था यह एक विलक्षण पावन परम प्रेमरसका विस्तार॥
मधुर परम इस रस-सागरमें गोपीजनका ही अधिकार।
परम त्यागका मूर्त रूप लख, जिन्हें किया हरिने स्वीकार॥
प्रेममयी व्रज-रमणी-गणमण्डलमें हुए सुशोभित श्याम।
अगणित राशि तारिकामें अकलङ्क पूर्ण विधु विमल ललाम॥
अथवा नव नीलाभ-श्याम-घन दामिनि-दलमें रहे विराज।
घन-दामिनि, दामिनि-घन अन्तर अगणित उभय अतुल दुति साज॥
रासेश्वरी राधिकाके एकाधिपत्यमें सुन्दर साज।
शुचि सौन्दर्य मधुर रसमय असमोर्ध्व अमित बिजली-घनराज॥

एक एकके मध्य मनोहर एक एक, सब मिल, दे ताल।
रास-रसिक रस-नृत्य-निरत, शुचि बाज रहे मृदु वाद्य रसाल॥
जो इस मधुर शुद्ध रसका किंचित् भी कर पाता आस्वाद।
दृश्य जगत्‌का मिटता सारा शोक-मोह-भय-लोभ-विषाद॥
होता कामरोगका उसके जीवनमें सर्वथा अभाव।
राधा-माधव-चरण-रेणु-कण-करुणासे वह पाता 'भाव'॥
'भाव' प्राप्त हो वह हो पाता राधारानीका अनुचर।
सभी दोष मिट, होती उसमें प्रकट गुणावलि शुचि सत्वर॥
पाता वह फिर नित निकुञ्जमें अति दुर्लभ सेवा-अधिकार।
जिसके लिये सदा ललचाते ऋषि-मुनि-तापस छोड़ विकार॥

[२६४]

(राग शिवरंजनी—ताल कहरवा)

तुम लोगोंसे हुआ न होगा कभी प्रेमदेवियो! वियोग।
दिव्य नित्यलीलामें रहता है अविछिन्न नित्य संयोग॥
जैसे रहता छिपा सूर्य कुहरेमें होता नहीं प्रकाश।
वैसे ही वियोग-क्रन्दनमें रहता छिपा नित्य मैं पास॥
होता मैं उस काल देखकर मुग्ध तुम्हारे भाव अनन्य।
विरह-दुःख अति स्मृति-सुख युगपत दिव्य देख कह उठता धन्य॥
जगत, जगतके सुख, इन्द्रिय, इन्द्रियके सभी अर्थका त्याग।
मन-मति इह-पर भूल विरह-कातर होती मन भर अनुराग॥
अमिलनमें तुम देख वदन-विधु यों बन जाती चारु चकोर।
हो प्रमुदित उन्मत्त नृत्य करने लगता तब मानस-मोर॥
बनकर मैं मन-बुद्धि, प्राण, इन्द्रिय, सब अर्थ तुम्हारे आप।
बनता फिर उनका अनन्य आश्रय मैं करता नित्य मिलाप॥
नव किशोर नटवर मुरलीधर मोर-पिच्छ-सिर मोहन रूप।
प्रियतम सदा तुम्हारा नित-नव-वर्धन प्रेमानन्द अनूप॥

अतुल त्यागसे उदित तुम्हारे सहज प्रेमसे मैं भगवान।
रहता मिला सदा ही तुममें बाहर-भीतर सदा समान॥
भोग-जगत्‌से ऊपर उठकर तुमने मुझे ले लिया मोल।
प्रेम-सुधा-हित सदा तुम्हारे, ललचाता मन रहता लोल॥
इन्द्रिय-भोग-स्वर्ग-सुख कामी मोक्षाकांक्षी भी धीमान।
मुझे नहीं पा सकते वैसे, जैसे तुम पा चुकी अमान॥
मेरी श्रद्धा, सेवा, महिमाका रहस्य जो गोपन शुद्ध।
उसे यथार्थ जानती हो तुम जगत-वासना-शून्य विशुद्ध॥
मेरे सभी मनोरथ होते उदित यथार्थ तुम्हारे चित्त।
प्रिय अति मुझे इसीसे तुम त्यों, ज्यों प्रिय अति निर्धनके वित्त॥
कभी किया हो जिसने आनँदमयको यों आनन्दविभोर।
सदृश तुम्हारे तुम्हीं, जगत्‌में हुआ न कोई तुम-सा और॥

[२६५]

(राग हमीर—तीन ताल)

परम प्रेममयी श्रीराधा-गोपीजन सब कायव्यूह।
कृष्णप्रेम-परिपूर्ण हृदय सब दिव्य पूर्ण रस-भाव-समूह॥
क्षमा-क्रोध, सुख-दुःख, प्रशंसा-निन्दा, मान-नीच अपमान।
जीवन-मृत्यु, विराग-राग, शुचि त्याग-भोग सब, ज्ञानाज्ञान॥
शान्ति-अशान्ति, विवेक-भ्रान्ति सब, हास्य-रुदन, गायन-चीत्कार।
सभी श्याम प्रियतमको लेकर एकमात्र शुचि कर्म-विचार॥
कृष्णप्रेम-रस-भावित-मति सब कृष्णमिलन-हित आकुल प्राण।
रहतीं सदा समुत्सुक करने रूप-सुधा-मधु-रसका पान॥
इह-परके विलास-सुख-भोगोंका करके आत्यन्तिक त्याग।
कृष्णप्रेममत्ता थीं वे सब मूर्तिमान प्रियतम-अनुराग॥
पाकर आज अगाध अखण्ड स्वयं रसराज रसार्णवरूप।
महाभावरूपा व्रज-सुन्दरि सुख-सुषमासे हुईं अनूप॥

इसीलिये श्रीकृष्ण सच्चिदानन्द पूर्ण परतम भगवान।
भगवत्ता सब भूल रसिकचूडामणि रस-शेखर रसवान॥
प्रेम-विवश स्वेच्छामय वे कर सहज प्रेम-बन्धन स्वीकार।
करने लगे गोप-सुन्दरियोंका रसमय आदर-सत्कार॥
त्यागपूर्ण रस मधुर देखकर ललचा उठे स्वयं भगवान।
करने लगे स्वयं रस-लोलुप बन वे रस-याञ्चा मतिमान॥
नव-नीरद-नीलाभ श्याम-घन मानो दामिन-दलमें आज।
घन-दामिनि, दामिनि-घन अगणित बीच-बीचमें रहे विराज॥
दिव्य मिलनका उनको करके दुर्लभ दिव्यानन्द प्रदान।
करने लगे स्वयं उस दिव्य रसामृतका शुचि सादर पान॥

[२६६]

(राग बिहाग—तीन ताल)

उदय हुए जब श्रीवृन्दावन-चन्द्र पूर्णतम चन्द्रस्वरूप।
उज्ज्वल स्निग्ध सुधामयि शीतल किरणें लहरा उठीं अनूप॥
पूर्ण पूर्णिमा प्रकटी पावन, हुआ अविद्या-तमका नाश।
प्रेम-प्रभा हुई उद्भासित, छाया शुद्ध सत्त्व-उल्लास॥
पावन यमुना-पुलिन प्रकट हो, छेड़ी मोहिनि मुरली-तान।
किया श्यामने प्रेममूर्ति व्रज-सुन्दरियोंका प्रिय आह्वान॥
भूल गयीं अग-जगको, भूलीं देह-गेहका सारा भान।
जो जैसे थी, वैसे ही चल पड़ी, छोड़ लज्जा-भय-मान॥
होता उदय मधुर रस नव-नव रूपोंमें जब कृष्णानन्द।
रुक पाता न पलक प्रेमीका तब रस-लोलुप मन स्वच्छन्द॥
नहीं खींच पाता फिर उसको भुक्ति-मुक्तिका कोई राग।
प्रेम-सुधा-रस-मत्त दौड़ पड़ता, वह सहज सभी कुछ त्याग॥
प्रियतमके प्रिय मधुर-नाम-गुण लीला-कथा सुधा-रस मग्न।
सर्व-समर्पित होता उसका, होता सहज मोह-भ्रम भग्न॥

राधामुख्या भावमयी सब व्रजसुन्दरियाँ कर अभिसार।
पहुँचीं तुरत श्याम-चरणोंमें उन्मादिनि हो मधुर उदार॥
किया समर्पण परम मुदित मन, सहज अखिल जीवन आचार।
बनी सर्वथा एकमात्र वे प्रियतम सुख-मूरति साकार॥
सहज अमित सौन्दर्य, परम माधुर्य, अतुल ऐश्वर्यनिधान।
पूर्णकाम निष्काम सहज जो आत्माराम स्वयं भगवान॥
गोपीके उस त्यागशुद्ध रस मधुर दिव्यका करने पान।
लालायित हो उठे परम आतुर हो रसदाता रसखान॥
प्रेमीजन-मन-रञ्जन प्रभुने किया उन्हें सादर स्वीकार।
आत्माराममयी रस-क्रीडा विविध विचित्र रची सुखसार॥
किया-कराया दिव्य परम रस-दान-पान अति कर सम्मान।
प्रति गोपीको दिया परम सुख धर अनन्त वपु दिव्य महान॥
प्रेमभिक्षु बन स्वयं किया गोपी-प्रदत्त सुख-अङ्गीकार।
बोले—'प्रेमरमणियो! यह निरवद्य तुम्हारा रस-व्यवहार॥
घरको तोड़ अटूट बेड़ियाँ तुमने मुझे भजा अविकार।
सदा बढ़ाता रक्खेगा यह मुझपर सुखमय ऋणका भार॥
नहीं चुका सकता मैं बदला इसका देव-आयु—चिरकाल।
तुम्हीं स्वसाधुतासे कर सकतीं मुझे कभी ऋणमुक्त निहाल'॥
राधा आदि गोप-रमणी सब सुनकर प्रियतम की यह बात।
हुई चकित वे लगीं देखने अपलक दृग प्रिय-मुख-जलजात॥
देते दिव्य अनन्त परम सुख, निजको ऋणी मानते आप।
कैसा शील-स्वभाव विलक्षण, कैसा हृदय उदार अमाप॥

[२६७]

(राग कालिंगड़ा—ताल कहरवा)

कुसुमित कुंज कल्पतरु-कानन मनिमय अजिर सुहावन।
रास-विलास-निरत नट-नागर गोपी-जन-मन-भावन॥

बिमल बिनोदिनि बचन-बिदग्धा मुग्धा नागरि नारी।
नित नव तरुनि, नटिनि निरुपम, नित मनमोहन-मनहारी॥
कोटि-कोटि कामिनि, दामिनि घन संग सुसोभन साजै।
मन्मथ-मन्मथ मुरलि-मनोहर द्वै-द्वै के बिच राजै॥

[२६८]

(राग झँझोटी—तीन ताल)

रुचिर तपन-तनया-तट, निभृत-नव-निकुंज-निकट,
निरतत नव नागर नट, लसत पीत पट ललाम।
सोभा निरुपाधि सजत, कोटि-कोटि काम लजत,
मुरलि अधर मधुर बजत, भजत संत नित निकाम॥
मृग-मद रुचि तिलक भाल, चंचल लोचन बिसाल,
कुंचित कच कृष्न जाल, भ्रुकुटि कुटिल कला-धाम।
करि-बर-मद-हरनि चाल, कटि किंकिनि-रव रसाल,
सुरभित बन-कुसुम-माल, रत्नहार कंठधाम॥
कुंडल मनि-रत्न-चमक, सुचि कपोल गोल दमक,
अंग-अंग सुरभि-गमक, रमा रमत वक्षधाम।
निपट सुखद खटपट-रति, लपट-झपट नटखट गति,
आकरषत तन-मन-मति, इंद्रिय झट बिना दाम॥
मृदु मधु मुसुकान बिमल, मुनि-जन-मन हरत सबल,
मिटत दुःख-दैन्य सकल, परम रम्य सुधा-धाम।
रसमय रसराज सतत, रस-बरषा बरसत नित,
नेह-सिंधु उमगि अमित, बहे अन्य रस तमाम।
बाढ्यौ अति प्रेम-भाव, सब-कें मन भर्‌यौ चाव,
भाव भयौ महाभाव, भूले सब नाम-धाम॥

[२६९]

(राग हमीर—तीन ताल)

मंद मंद मुसकावत आवत।
देखि दूर ही तें भइ बिहवल राधा-मन आनँद न समावत॥
नव नीरद घनस्याम-कांति कल, पीत बसन बर तन पर सोभित।
मालति-कमल-माल उर राजत भँवर-पाँति मँडरात सुलोभित॥
सकल अंग चंदन अनुलेपित रत्नाभरन-बिभूषित सुचि तन।
सिखा सुसोभित मोर-पिच्छ, मनि-मुकुट सुमंडित, केस कृष्न-घन॥
मुख प्रसन्न मुनि-मानस-हर मृदुहास-छटा चहुँ ओर बिखेरत।
चित्त-बित्त हर लेत निमिष महँ जा तन करि कटाच्छ दृग फेरत॥
मुरली, क्रीड़ा-कमल प्रफुल्लित लिये एक कर, दूजे दरपन।
देखि राधिका, करन लगी निज पुनः पुनः अर्पित कौं अरपन॥

(दोहा)

उमग्यो परमानंद निधि, राधा भई बिभोर।
भूमि परत, दै कर-कमल, लई उठाय किसोर॥
चरन पकर बैठी निकट, निकसत नहिं मुख-बैन।
कछुक काल महँ धीर धरि, बोली—'सुनु! सुख-ऐन'॥

[२७०]

(राग खमाज—तीन ताल)

निरखि मुखचंद तुम्हारौ नाथ।
भयौ जनम-जीवन मेरो यह सार्थक धन्य सनाथ॥
भये प्रसन्न सफल मेरे ये जुगल नयन सब अंग।
उछलि रह्यौ मन आनंदांबुधि बिबिध बिचित्र तरंग॥
पाँच परान प्रेम-रस भींगे, आत्मा उमड़्यौ नेह।
जरत बिरह-पावक अति भीषन बरस्यौ अमरित-मेह॥

डारि पियूष-बरषिनी दृष्टी मो तन, मेट्यौ ताप।
भर्‌यो सुधा-सागर उर-अंतर सीतल सुखद अमाप॥
रहते तुम्हरे ढिग यह मेरी सुन्दर देह पवित्र।
सोभा-सुषमामयी रहत नित, सक्ति-सुरूप, बिचित्र॥
रहूँ सिवा, सिवदा, सिव-बीजा, सिव-स्वरूपा नित्य।
बनी रहूँ मैं प्रियतम! तुम्हरे संग सुमतिमयि सत्य॥
पलक एक तुम्हरे बिछुरत ही होय सकल सुभ नास।
सक्ति, सुमति, सुषमा, सुंदरता, सुद्धि, मधुर-आभास॥
बिनसत सकल तुरत मुर्दा-ज्यों धरनी पर्‌यौ सरीर।
सिव-बिहीन, अति दीन, दुःखमय, दारुन, बिकल, अधीर॥
यह सब समुझि प्रानवल्लभ! अब मति बिछुरौ पल एक।
परम उदार! निबाहौ प्रियतम! प्रीति-रीति की टेक॥

(सोरठा)

सुनि राधाके बैन, प्रीति-दीनता ते सने।
भरि आए दोउ नैन, बोले हरि बच मधुर सुचि॥

[२७१]

(राग केदारा—तीन ताल)

राधा! हम-तुम दोउ अभिन्न।
बारि-बीचि, चंद्रमा-चाँदनी सम अभिन्न नित भिन्न॥
नित्य सत्य सर्वदा सर्वथा रहूँ तुम्हारे संग।
आठौं पहर संग-सँग डोलूँ भर्‌यौ रहूँ अँग-अंग॥
मो बिनु तुम्हरी कछू न सत्ता, तुम बिनु मैं नाचीज।
समुझि न परत रहस्य रंच हू, को तरुवर, को बीज॥
बिरह-मिलन दोउ रस हम दोउन के हैं लीला-साज।
एक नित्य रस बिबिध रूप धरि क्रीड़त सहित समाज।

नित्य, एक ही नित अनेक सजि करत बिचित्र बिहार।
नित अनादि, आरंभ न कबहूँ, कबहुँ न उपसंहार॥
बिछुरन-मिलन तुम्हारौ मेरौ, नित्य मिलन के माँहिं।
जा बिछुरनमें मिलन मनोहर, सो तो बिछुरन नाहिं॥
मेरे रस तें तुम रसमयि, मैं तुम्हरे रस रसवान।
एक स्व-रस कौं द्विविध भेद तें करैं नित्य हम पान॥
रस, रस-पान रसिक, रस-दाता—एक परम रसरूप।
परमाश्चर्य, अचिंत्य अनिर्वचनीय अगम्य अनूप॥
कबहुँ न कतहुँ तुम्हारौ-मेरौ पलक बिछोह-बियोग।
नित्य सत्य अनिवार्य अलौकिक अविच्छेद्य संयोग॥
प्रिये! न तोहि स्वरूप की विस्मृति, नहीं कबहुँ कछु खेद।
एक परम रस-सरिता के ही वे तरंगमय भेद॥

(दोहा)

दोनों आप्यायित भए, मिले दिव्य रस-रीति।
महाभाव रसराज की अतुल अकल यह प्रीति॥*

[२७२]

(राग कल्याण—तीन ताल)

करत निज कर प्रीतम सृङ्गार।
सुबरन-बरन सु-तन पहिरायो नील बसन करि मधु मनुहार॥
कला-कलित कंचुकि पहिराई, रतन-हार, मनि-मुक्ता-माल।
दिव्य आभरन अन्य सकल अंगनि पहिराए बिबिध रसाल॥
सुरभित सुमन दिव्य चुनि निज कर, गूँथि गले पहिरायौ हार।
नयननि सावधान अति आँज्यौ अंजन कोमल अँगुरिन-सार॥

---

* पद-संख्या २६९ से २७१ तक एक ही लीलाके अंश हैं।

माँग सिंदूर देइ मनभावन, रची सुमन-बेनी रमनीय।
बेंदी भाल लगाइ मनोहर, पहिराए कुंडल कमनीय॥
पुष्पसार लै मधुर सुगंधित दियौ लगाय प्रिया सुचि अंग।
दै तांबूल सुबासित मुख, दृग अपलक निरखत अँग-प्रत्यंग॥
करने लगे प्रिया-सँग प्रमुदित स्मित-मुख मधुमय रस-आलाप।
पुष्प-सेज पर रहे बिराजित, उमग्यौ आनँद-सिंधु अमाप॥

[२७३]

(राग देश—तीन ताल)

थके पर छके न रस प्यासे।
रहत सतत रस-पान-निरत नित नूतन भाव-विकासै।
ज्यौं-ज्यौं पियत प्यास त्यौं बाढ़त, मधुर स्वाद उदभासै॥
महाभाव-रसराज-सिरोमनि दोऊ प्यारी-प्यारे।
लीला-रस-रत लखि सखि प्रमुदित भूली अग-जग सारे॥

[२७४]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

तत्सुख-सुखी त्यागमय अनुपम प्रेम-पियूष मनोहर।
पियत-पियावत नित अतृप्त मन दोउ नव नागरि-नटवर॥
तरुन तमाल, कनक-लतिका-सम, नित्य मिलित तजि निज-पर।
घन-दामिनि-सम, मोहन-मोहनि मोहत सतत परसपर॥

[२७५]

(राग बिहाग—तीन ताल)

प्रिया-प्रीतम दोउ करत किलोल।
रूप-उजागर नागरि-नागर बोलत मधुरे बोल॥
हास-बिलास करत दोउ रसमय, प्रीति न हिऐं समात।
श्रमित, हार नहिं मानत कोऊ, करत मधुर दोउ घात॥
निभृत निकुंज पुंज-सुख-माधुरि रस-स्वामिनि-रसराज।
तन-मन-प्रान अभेद, अलौकिक क्रीडत नित नव साज॥

[२७६]

(राग कान्हरा—तीन ताल)

कानन नव निकुंज अति सोहनि।
कुसुमित लता सुगंध-समन्वित सुर-मुनि-जन-मन-मोहनि॥
नव पल्लव सोभित कदंबकी साखा परम बिसाल।
तेहि पर सुक-सारिका-पिकादिक गावत राग रसाल॥
तहाँ सुदिब्य सुरम्य हेम-मनि-मंडित झूला डारी।
रसमय रहे बिराज नंद-नंदन-बृषभानु-दुलारी॥
ब्रज-रमनी सब देयँ झकोरे प्रियतम-प्रिया झुलावत।
रूप-सुधा-सागर-तरंग-सी मिलि सब मोद बढ़ावत॥
रस-प्रमत्त झूलत नव नागरि तुरत परन-सी लागी।
पकरि भरी अँकवार स्याम-घन प्रेम-सुधा-रस-पागी॥
राधा मोहन, मोहन राधा भए एक आकारा।
बिहँसि उठीं सब ब्रज की बाला, बही अमी-रस-धारा॥

[२७७]

(राग मल्हार—तीन ताल)

हँसि-हँसि झूलत फूल-हिंडोरें।
प्यारी-प्रीतम फूलनि फूले, फूले उर कर जोरें॥
फूलन कौ लहँगा, फूलन कौ पीतांबर अति सोहै।
फूलन के सिर मुकुट-चंद्रिका देखत ही मन मोहै॥
फूलन के तोसक-तकिया मृदु, फूलनि आसन राजैं।
फूलन के पहिरें भूषन तन सुंदर दोउ बिराजैं॥
फूलत-झूलत दै गर बैयाँ फूले अँग-अँग सारे।
फूले नयन नचावत दोऊ रतनारे अनियारे॥
फूलनि साज सजी सखिगन सब फूलनि माँग सँवारी।
फूल सजे कर फूल-चँवर लै ढुरवति मृदु सखि प्यारी॥

परमानंद झुलावति कर लै फूल रेसमी डोरी।
मृदु-मृदु झोटा देत मुदित मन फूलि रहीं सब गोरी॥
राधा-माधव-नेहरूप सुचि फूलन की फुलवारी।
बाँटि रही सुषमा-सुगंध निज दिव्य उच्च मनवारी॥

[२७८]

(राग मल्हार—तीन ताल)

झूलत फूल हिंडोरे स्याम।
स्यामा-सहित, वदन सुचि सुस्मित, चहुँ दिसि फूल ललाम॥
फूल हिंडोरा, फूल सुडोरी, आसन फूल सुठाम।
ता पर सुमन-सुकोमल राजत दोऊ मन-अभिराम॥
फूल झूल रहे नील-पीतपट, फूलन के सृङ्गार।
करनफूल-कुंडल फूलन के, फूलन के गल-हार॥
दोउन के सब अंग सुसोभित विविध सुगंधित फूल।
सखी-सहचरी झूला दै-दै रहीं मनहिं-मन फूल॥

[२७९]

(राग छायानट—तीन ताल)

हिंडोरें झूलत स्यामा-स्याम।
नव नट-नागर, नवल नागरी, सुंदर सुषमा-धाम॥
सावन मास घटा घन छाई, रिमझिम बरसत मेह।
दामिनि दमकत,चमकत गोरी, बढ़त नित्य नव नेह॥
कल्पद्रुम-तल सीतल छाया रतन-हिंडोरा सोहै।
झूलत प्रीतम-प्रिया ताहि पर चित्त परस्पर मोहै॥
नील-हेम तनु पीत-नील पट सोहत सरस सृङ्गार।
चंचल मुकुट, सुचारु चंद्रिका, गल मुक्तामनि-हार॥
सखि ललितादिक देत झकोरे, मिलत अंग-प्रति-अंग।
गावत मेघ-मलार मधुर सुर, बाजत ढोल-मृदंग॥
हँसत-हँसावत रस बरसावत सखी-सहचरी-बृंद।
उमग्यौ आनँद-सिन्धु, मगन भए दोऊ आनँद-कंद॥

[२८०]

(राग मल्हार—तीन ताल)

झुलावत निज कर नंद-किसोर।
रतन हिंडोरें बैठी राधा झूल रही आनंद-बिभोर॥
झूलि रही पिय के सुख कारन, भूलि रही सगरौ संसार।
मुख-पंकज-मकरंद-पानरत नयन-मधुप, आनंद अपार॥
निरखि किसोरी कौ सुस्मित आनंद-निमग्न बदन-सरदिंदु।
उमग्यौ हरि-उर परम मधुर अति प्रेमानंद-सुधा-रस-सिंधु॥
सखी-सहचरी भूलीं तन-मन, निरखि मधुर लीला-रस-रंग।
मर्माहत मूर्छित ह्वै रति-सँग अवनी ऊपर पर्‌यौ अनंग॥

[२८१]

(राग हमीर—तीन ताल)

झुलावति स्यामा स्याम-कुमार।
हेम-रत्न-निर्मित झूला पर, रुचिर रेसमी डोरी डार॥
मन अति मुदित झुलावति गोरी, सह न सकति स्रम तन सुकुमार।
सोहत ललित कपोल-भाल पर स्वेद-बिंदु स्रम-जनित अपार॥
कूदि परे लखि स्रमित श्रीमती, झट झूले का कर परिहार।
बैठारी कर-कमल पकरि कै निज कर, उर भरि अतिसय प्यार॥
कोमल कुसुम-कली मंडित सिंहासन पर, प्रिय अमित उदार।
निज पट-अंचल पौंछे निज कर स्वेद-वारि-कन नंद-कुमार॥
ललितादिक सखियन बैठारे जीवन-धन करि अति मनुहार।
आदरसहित मधुर बानी सौं, करन लगीं सौरभित बयार॥

[२८२]

(राग अडाना—झप ताल)

झूल[illegible]भिराम स्याम, स्यामा बामा ललाम,
सुषमा के सरस धाम, रतनमय हिंडोरे।

ललितादिक सखी-बृंद निरखत बदनारबिंद,
रसलोलुप मन-मिलिंद, देत मृदु झकोरे ॥
सरद-इंदु उदित गगन, बहत बिमल मलय-पवन,
अलि-कुल कल-मुखरित बन, सब्द सुधा-बोरे।
बिसद लता रही झूल, बिकसि रहे बिबिध फूल,
कालिंदी कलित कूल, सुखद सुचि हिलोरे ॥
सोभित मनि-रत्नहार, गुंजमाल गल बिहार,
अंग-अंग वर सिंगार, मुनिन चित्त चोरे।
नव-नीरद-नील स्याम, तडित-वरन रूप-धाम,
मोहित सत कोटि काम, रहत तृनहि तोरे ॥
नागर-नागरि-बिलास, सखियन मन अति हुलास,
मधुर अधर मंद-हास, रसमय झकझोरे ॥

[२८३]

(राग बिहागड़ा—ताल धमार)

झूलत कुंजनि प्रेम हिंडोरैं।
स्यामा-स्याम प्रीति तन पुलकित हिय रस लेत हिलोरैं ॥
नैन रसाल, बिसाल भाल, कल भौंह कटाच्छ झकोरैं।
तन-मन-प्राण परस्पर अर्पित परम रसिक रस बोरैं ॥
ललित सखी ललितादि झुलावत दै-दै झोंटा झोरैं।
स्याम-गौर तन झलकत श्रम-कन जोवन मदके जोरैं ॥
बोलनि मधुर-मधुर मृदु मुसुकनि निरखि-निरखि तृन तोरैं।
मन आनंद मगन दोउन के नित नवीन रस घोरैं ॥

[२८४]

(राग सोरठ मलार—ताल धमार)

झूलत हरित कुंज पिय-प्यारी।
हरित हिंडोरे, हरित डार में, हरित डोर डारे हरिआरी ॥

पावस ऋतु तरु-लता हरित सब, हरित भूमि-तृण छबि अनियारी।
हरित बसन, आभरन हरित सब, आसन हरित, हँसनि हियहारी।
हरित सखी दोउ ओर झुलावत, हरित हिये हर्षित अतिभारी।
हरित राग गावत मलार सखि, हरि-हरि मनहारिनि सुखकारी॥
पीत-स्याम मिलि भयौ हरित रँग रूप मदन कोटिन मदहारी।
खग-मृग हरित निहारत प्रमुदित मधुर स्याम-स्यामा सुकुमारी॥

[२८५]

(राग ईमन—ताल त्रिताल)

झूलत सघन कुंज पिय-प्यारी।
घन गरजत, मृदु दामिनि दमकत, रिमझिम बरसत बारी।
भींजत अंबर पीत, अलौकिक नील सुरंगी सारी।
मद भर मोर-मोरनी निरतत कूजत कोकिल सारी॥
गावत मधुरे सुर मल्हार मिलि सखिजन अरु पिय-प्यारी।
झौंटि देय झुलावत सखि ललितादिक बारी-बारी॥
चितवत स्यामा-स्याम परस्पर नित नव रस विस्तारी।
उमड़ि रह्यो आनंद सरस निधि सबहि जात बलिहारी॥

[२८६]

(राग गौड़ मलार—ताल त्रिताल)

भीजत रीझत दोऊ आवत।
रंग हिंडोरै झूलि मुदित मन सखियन मन सरसावत॥
उमगि-उमगि घन घनन-घनन धुनि गरजत भय उपजावत।
चपला चमकि-चमकि छिन-छिनमें घटा-छटा छहरावत॥
नाचत मोर मदन-मदमाते आनँद रस बरसावत।
प्रेमरसम्य पपीहा पी-पी धुनि करि मोद बढ़ावत॥
कदम-छाँह ठाढ़े भए दोऊ अंग-अंगनि लपटावत।
प्रिया-देह ढाँपी निज कामरि नेह ते मेह बचावत॥

[२८७]

(लावनी पहली तर्ज—ताल कहरवा)

आश्विन मास, शरद ऋतु शोभन, शीतल शुभ्र चाँदनी रात।
कालिन्दी-जल निर्मल मनहर, मन्द सुगन्ध रहा बह वात॥
रत्न-सुदीप्त रुचिर नौकापर रहे विराजित श्यामा-श्याम।
करते मधुर विनोद परस्पर नौ-विलास-रत अति अभिराम॥
श्रीमति बोली—'सुनो प्राणधन! तुम मुरलीकी छेड़ो तान।
सुन्दर-सुमधुर स्वर-लहरीमें मुझे सुनाओ रसमय गान॥
मैं खे लूँगी नाव, प्राण खेलेंगे रसमय खेल महान।
नयन-मधुप रसमत्त रहेंगे कर मुख-सरसीरुह-रस पान'॥
यों कह खेने लगी तरी कर दृष्टि अचञ्चल पियकी ओर।
दृष्टि जमा श्यामा-मुख मुरली लगे बजाने नन्द-किशोर॥

[२८८]

(राग काफी—ताल दीपचंदी)

नित्य मधुर ब्रज-धाम, खेल रहे हरि-सँग होरी॥
विषय बिराग-राग-रँग लिन्हों, प्रेमसुधा-रस घोरी।
एक लक्ष्य करि मोहन-आनन भरि पिचकारी छोरी॥
बदन सब अरुन भयो री॥
दंभ-दर्प-मद-मोह-कोह सब राख भए जरि होरी।
काम विसुद्ध भयो, हरि-मुख पै राजि रह्यो बनि रोरी॥
मिटी जग की सब खोरी॥
नाते-नेह खेह भये सारे, नातो एक रह्यौ री।
नेह-बिन्दु सब नेह-जलधि मिलि सागर रूप लह्यौ री॥
प्रेम-रस-रंग छयौ री॥

[२८९]

(राग काफी—ताल दीपचंदी)

खेलत सुन्दर स्याम सखिन सँग ब्रज रस-होरी ॥
भरि पिचकारी चोवा-चंदन रँग भरि केसर-रोरी।
डारत सखियन-अंग स्याम, नटवर-तन सब मिलि गोरी।
मच्यौ घमसान घनौ री ॥

भूमि लाल, नभ-लाल, ललित रँग सब दिसि लाल छयौ री।
लाल लता-तरु, लाल-सुमन-फल, निधुबन लाल भयौ री ॥
आन कोउ रँग न रह्यौ री ॥

मोर-चकोर लाल भए, अलि-कुल रंग गुलाल लह्यौ री।
लाल निकुंज, लाल सुक-कोकिल, लाल रसाल बन्यौ री ॥
लाल ही बीज बयौ री ॥

लाल दिवस-निसि, लाल सूर्य-ससि, लाल छितिज सु छयौ री।
लाल सलिल कालिंदी सोभित, लाल बयार बह्यौ री ॥
लाल दधि-दूध-मह्यौ री ॥

लाल स्वर्नजुत, लाल सु-मरकत बसन-बेस बनयौ री ॥
लाल अलक, दृग पलक लाल भईं, लाल सु-बचन कह्यौ री।
लाल ही लाल सुन्यौ री ॥

ललना-लाल लाल भए दोऊ सखी लाल रँग बोरी।
नील-पीत पट, चुनरी-पगरी—सबै लाल रँग घोरी ॥
सकल जग लाल भयौ री ॥

[२९०]

(राग काफी—ताल दीपचंदी)

खेलत स्यामा-स्याम ललित ब्रज में रस-होरी ॥
राधा-संग सखी-सहचरि सब मिलि केसर-रँग-घोरी।
सुन्दर स्याम-बदन पर डारत भरि-भरि कनक-कटोरी ॥
प्रेम-रस-रंग-बिभोरी ॥ खेलत० ॥
हेरि-हेरि हरि-मुख पिचकारी छाँड़ि रहीं चहुँ ओरी।
पकरि हाथ सखियन मलि दीन्हीं मुँह गुलाल अरु रोरी ॥
स्याम-मुख अरुन भयौ री ॥ खेलत० ॥
देखि प्रसन्न सखियन सँग रंगिनि नवल किसोरी।
उमग्यौ हिय आनंद-सिंधु, हरि रँग दीन्हीं सब गोरी ॥
सुरस-संग्राम मच्यौ री ॥ खेलत० ॥
बाजत ताल-मृदंग, ढोल-ढप, सिंगा-बेनु ढपोरी।
गावत राग धमार नृत्य करि, कर अबीर की झोरी ॥
पुकारत हो-हो होरी ॥ खेलत० ॥

[२९१]

(राग काफी—ताल दीपचंदी)

होरी में गए हार सकल खल-दल-संहारी ॥
सखी-सहचरी सब कौं लै सँग, भरी रस-रँग पिचकारी।
मधुर बदन, कोमल सब तन पर हेरि-हेरि कै मारी ॥
रँगीली कीर्ति-कुमारी ॥
लाल कपोल गुलाल लपेटे, दृग सुरभित जल डारी।
भाजि चले मन-मोहन सोहन पौंछत नयननि बारी।
हँसी सखि दै कर-तारी ॥
मुरली कर सौं परी धरनि पर, मोर-सिखा महि डारी।
भए स्रमित, मृदु चरन डगमगे, बैठि गए मन मारी ॥
घेरि लिए सखिन मुरारी ॥

बोलीं बचन ब्यंग सखि मृदु हँसि—'बड़े बीर गिरिधारी !
सहि न सके नारी कोमल कर-कंजनि की पिचकारी ॥
लाज सब कहाँ बिसारी' ॥
सुनि सखि-बचन सकुचि हरि बोले—'री बृषभानु-दुलारी !
मैं तो प्रिये ! सदा कौ हार्‌यौ, नई हार कहा हारी ॥
चरन-रज हौं बलिहारी' ॥
सुनि मृदु बचन, स्रमित लखि पिय कौं दुखित भई हिय भारी ।
राधा आइ उठाइ प्रान-धन सिंघासन बैठारी ॥
करन लगि बसन बयारी ॥
सुभग अंग सब पौंछि अरुन निज पट सौं राधा प्यारी ।
सीतल जल मुख धोइ अलक निज कर सरुझाई झारीं ॥
मुदित भइ लखि ब्रज-नारीं ॥

[२९२]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

याद पड़ रहा है आये थे, भोजन करने मोहन श्याम ।
परस रही थी मैं उनको अति रुचिकर भोज्य-पदार्थ तमाम ॥
यह मेरा भ्रम था, माधव तो खेल रहे कालिन्दी-कूल ।
आये क्यों न अभी ? क्या क्रीड़ामें वे गये सभी कुछ भूल ॥
भूखे होंगे, कैसे उन्हें बुलाऊँ अब मैं यहाँ तुरंत ? ।
हृदय विदीर्ण हो रहा, कैसे हो इस मेरे दुखका अन्त ॥
बना-बनाया भोजन क्या यह नहिं आयेगा प्रियके काम ? ।
क्या वे इसे धन्य करनेको नहीं पधारेंगे सुखधाम ? ॥
माधव सुन हँस रहे प्रियाका यह मधु प्रेम-विलाप-विलास ।
बोले—'राधे ! चेत करो, देखो, मैं रहा तुम्हारे पास ॥
छोड़ दिया क्यों तुमने वस्तु परसना, होकर व्यर्थ उदास ? ।
भूखा मैं यदि रह जाऊँगा, होगी तुम्हें भयानक त्रास' ॥

यों कह, मृदु हँस, माधवने पकड़ा राधाका कोमल हाथ ।
चौंकी, बोली—'हाय ! हो गयी मुझसे बड़ी भूल यह नाथ ! ॥
कैसी मैं अधमा हूँ, जो मैं भ्रमसे गयी जिमाना भूल ।
व्यर्थ मान बैठी, प्रिय ! तुम हो खेल रहे कालिन्दी-कूल' ॥
लगी प्रेमसे पुनः परसने विविध स्वादयुत वस्तु ललाम ।
भोग लगाने लगे, मधुर-लीला पर हँसकर प्रियतम श्याम ॥

[२९३]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

लता-वल्लरी रही प्रफुल्लित, श्याम-तमाल सुशोभित कुञ्ज ।
सुमन-समूह सौरभित सुन्दर, मँडरा रहा मुग्ध अलि-पुञ्ज ॥
मत्त मयूरी नृत्य कर रहीं, शुक-सारिका निरत कल गान ।
कालिन्दी कल्लोल कर रहीं मत्त बही जा रही उजान ॥
मधुर मुरलि मुखरित नभ-मण्डल सकल पूर्ण रसभरित निनाद ।
दिग्-दिगन्त आनन्द मत्त अति, हटे मिटे भय-शोक-विषाद ॥
प्रेम-रस-भरी भानु-नन्दिनी सब कुछ छोड़ चली अभिसार ।
कौन ? कहाँ मैं चली जा रही ? क्यों ? सब भूल गयीं संसार ॥
पहुँची प्रियतम पद-पद्मोंमें, देख रूप हो गयीं विभोर ।
अधर मधुर मृदु हास्य सुशोभित, नवल श्याम-घन मन-धन-चोर ॥
अगणित शरद-इन्दु-मद-हारी, वदन-इन्दु वर विमल विभ[illegible]
दृग विशाल मदभरे मनोहर, प्रेमीजन-मन-नयन विसाल ॥
सर्वाकर्षक सर्वाह्लादक, महारसायन रस-भरपूर ।
सौन्दर्यामृतसिन्धु तरंगित, ललना चित्त-प्लावन-शूर ॥
अङ्ग-सुगन्ध दिव्य देती नित घ्राणेन्द्रियको सुख स्वच्छन्द ।
भाल विशाल, केस घुँघराले, मुकुट मयूर-पिच्छ सुख-कन्द ॥
मुग्धा राधा बोल न पायीं, वाणी सहज हुई अवरुद्ध ।
चला परस्पर सुखद सरसतम भाव तरंगोंका शुचि युद्ध ॥

हृदय द्रवित हो, उमड़ा दिव्यामृत रस-सागर अमित अथाह।
धैर्य-कूल कर भङ्ग बह चला राधा दृगसे अश्रु-प्रवाह॥
हुए क्षणोंमें ही प्रक्षालित चरण-युगल अतिशय अभिराम।
जिनकी नख-चन्द्र-द्युति ही है—परब्रह्म सच्चित्-सुखधाम॥
सहसा देख प्रियतमको, उनकी इस लीलाको सुखसार।
विह्वल हुए श्याम, दृग आँसू बहे, उठा लीं भुजा पसार॥
कहने लगे—'तुम्हारा ही प्रियतमे! कर रहा था मैं ध्यान।
डूब रहा था मैं अगाध सौन्दर्य-सिंधुमें शुचि निर्मान॥
इतनेमें ही मिला तुम्हारा मुझको अकस्मात् संस्पर्श।
खुले नेत्र, सहसा दीखी तुम, भरा तुरंत हृदय अति हर्ष'॥
वचन-सुधा रमणीय दिव्य कर पान राधिका भूली भान।
दशा 'प्रेमवैचित्त्य' उदय हो उठी मिट गया बाह्य-ज्ञान॥
प्रियतमने संनिधिमें लेकर रक्खा शुचि मस्तक निज अङ्क।
अपलक लगे देखने वल्लभ सुधा-मधुर-श्री-सुमुख-मयङ्क॥
देख पा रही नहीं राधिका किंतु श्यामको अपने पास।
दर्शन-हेतु भाग चलनेको राधा करने लगीं प्रयास॥
किंतु नहीं उठा सकीं, कर उठीं हो व्याकुल अति करुण पुकार।
'हा प्राणेश! प्राणवल्लभ हे!' हा हृदयेश्वर! प्राणाधार!॥
कहाँ गये तुम मुझे छोड़कर एकाकिनी सहज असहाय?।
कैसे कहाँ मिलूँ अब तो ये प्राण नहीं रह सकते हाय!॥
हाँ, हाँ, मैं अब समझी, तुमको मिलता इससे सुख-आराम।
तो मैं मरती रहूँ, न मिलना मुझसे मेरे प्राणाराम!॥
तुम्हें चाहती मरकर भी मैं सुखी देखना नित्य अनन्त।
पूरी करो साध मेरी, यह मेरे सर्वेश्वर! श्रीमन्त!'॥
यों कहकर हो गयीं राधिका मूर्छित बाह्य-चेतनाहीन।
छाया अति विषाद मुख-विधुपर, दशा हो रही थी अति दीन॥

धोये नेत्र सुशीतल जलसे, प्रियने छिड़के मुख जलबिन्दु।
व्याकुल हुए देख प्यारीका सुखमय मलिन सुमुख-शरदिन्दु॥
बोले !—'प्रिय ! उठो तुम सत्वर, करो चेत, मत रहो उदास।
प्राणाधार तुम्हीं हो मेरी, अतः निरन्तर रहता पास॥
गया नहीं मैं कहाँ प्रियतमे ! जा न सकूँगा तुमको त्याग।
नहीं तुम्हारे सिवा कहीं भी है मेरा किंचित्-सा राग॥
तुम्हें सुखी करनेको ही बस मैं लेता भूपर अवतार।
प्रेम-रसास्वादन मैं करता दिव्य तुम्हारा अकथ अपार'॥
कहते-कहते श्याम हृदय-सागरमें उठीं अनेक तरंग।
बहने लगी अश्रु-सरिता, सब शिथिल हो गये चिन्मय अङ्ग॥
जगीं राधिका, मिटा 'प्रेमवैचित्त्य', हुआ सुस्मृतिका लाभ।
देखा अश्रु बहाते प्रियतम, म्लान नेत्र जो नित अमिताभ॥
आतुर आर्त रो पड़ी, बोलीं—'प्राणेश्वर ! मैं कैसी नीच !।
मेरे कारण नित प्रसन्न-मुख, आज विषण्ण जगतके बीच॥
कैसे दुःख मिटाऊँ प्यारे ! कैसे सुख पहुँचाऊँ आज !
कैसे मुखपर मुक्त हास्य मैं देखूँ, हे मेरे सिरताज !!
सुनकर बोले मेरे प्रियतम, 'प्रिये ! एक साधन विख्यात।
मुझे हँसाने, सुखी बनानेका अमोघ, यह निश्चित बात॥
सुखी बनो तुम, रहो प्रफुल्लित, रोम-रोम भर दिव्यानन्द।
मृदु मन्दस्मित रहे खेलता अधरोंष्ठोंपर नित्य अमन्द॥
प्रिये ! तुम्हारा सुख मेरा सुख, प्यार तुम्हारा मेरा प्यार।
सुखी करो, हो सुखी स्वयं तुम—यही एक बस साधन-सार'॥

(सोरठा)

प्रिय-मुखकी सुन बात, राधा अति हर्षित हुईं।
पुलक हो उठे गात, मिले परस्पर हर्षयुत॥

[२९४]

(राग वसन्त—ताल कहरवा)

'कहाँ गये तुम, कहाँ छिपे ? हे नाथ ! रमण ! जीवन-आधार !'
विरह-प्रेम-वैचित्त्य-विकल राधा कर उठी करुण चीत्कार ॥
विषम विरह-दावानलसे हो रहा दग्ध यह दीन शरीर ।
प्राण-पखेरू उड़ा चाहता, त्याग इसे, हो परम अधीर ॥
यद्यपि मैं अतिशय अयोग्य हूँ, सहज मलिन, गुण-रूप-विहीन ।
मान बढ़ाकर तुमने मेरा, मुझे कर दिया धृष्ट, अदीन ॥
लगी मानने तुम्ह प्राणवल्लभ, मैं मनमें कर अभिमान ।
लगा, तुम्हें मिलता होगा मुझसे कुछ विशेष, रस-खान ! ॥
परमानन्द-सुधार्णव तुम हो नित्य, अनन्त, अगाध, अपार ।
क्या आनन्द तुम्हें दे सकती गुण-दरिद्र मैं, दोषागार ॥
तो भी तुम मुझसे मिलते हो, हृदय लगाते, देते स्नेह ।
बरसाते रहते तुम संतत मुझपर प्रेम-सुधा-रस-मेह ॥
कोटि-कोटि सुन्दरियाँ हैं गुण-शील-रूप-सौन्दर्य-निधान ।
उन्हें छोड़, तुम मुझे निरन्तर देते रहते शुचि रस-दान ॥
निश्चय ही मिलता होगा तुमको इससे अतिशय आनन्द ।
मुझसे बिछुड़, हो रहे तुम उस सुखसे वञ्चित, हे स्वच्छन्द !
विरह-वेदनासे यदि, प्रियतम ! मेरे चले जायँगे प्राण ।
वञ्चित सदा रहोगे फिर तुम इस सुखसे, प्राणोंके प्राण !
करुण विलाप करोगे फिर तुम मेरे लिये नित्य, नँद-लाल !
रह जायेंगे प्राण तो दुःख न होगा तुम्हें, रमण ! उर-माल !
मिलकर प्राण बचा लो मेरे अभी तुरंत परम सुकुमार ।
करो शीघ्र आनन्द-लाभ फिर, प्रियतम हे व्रजराज-कुमार ॥
तुम्हें तनिक सुख होता तो रहता न मुझे प्राणोंका मोह ।
कोटि-कोटि हैं प्राण निछावर तुमपर, परानन्द-संदोह !

[२९५]

(राग मिश्रषड्ज—तीन ताल)

बिरहातुर, अति कातर, सब जग भूलि, गई कालिंदी-तीर।
पकरि कदंब-डारि ठाढ़ी, ह्वै बावरि, बहत अमित दृग-नीर॥
चित नहिं धरत धीर नैकहु, पल-पल प्रति काँपि रह्यो मृदु गात।
कल न परत, हिय जरत, दाह अति दारुन, भरत आह, बिललात॥
अति आतुर 'प्रिय सखी'* आइ पहुँची, तहँ, देखि दसा, तजि धीर॥
बोली अति मृदु बैन मैन-मोहनको, लखि हिय बिंध्यौ सु-तीर॥
'सखि! धीरज धरु, तजु गलानि, मैं जाइ तुरत सब हाल सुनाय।
प्रियतम-मन-मोहन कौं अब हीं हौं अपने सँग लाउँ लेवाय'॥
प्रिय सखिके मृदु वचन सुनत, भूली प्यारी निज तन को भान।
प्रियतम-रूप भई मन, तेहि छिन, करन लगी निज गुन-गन-गान॥
'हा राधे! प्रानेस्वरि! हा मनहरनि! मधुर सुन्दरता-खानि।
सद्‌गुन-निधि, नित-नव सुखदायिनि, सुमिरत होत सकल दुख-हानि॥
हौं नित बिक्यौ हाथ तुव स्वामिनि! बिना मोल को चेरौ मान।
प्यारी! मधुर दरस-रस कौं तुव तड़पि रहे ये प्यासे प्रान॥
छायौ अति दारुन वियोग-विष तुव, सब तन अति विषम अपार।
मुख-ससि-सुधा सींचि सत्वर, विष हरु, अब पिय कौं लेउ उबार'॥
प्रिय सखि आई हुती, तबहिं प्यारे हू हे पहुँचे तहँ आइ।
दसा प्रेम-वैचित्त्य मधुर प्यारी की निरखत रहे लुकाइ॥
'हा प्रियतमे! राधिके! प्रानाधिके! प्रान-पुत्तलिके! हाय!'
कहि यों, मूर्छित परी अवनि, ह्वै प्रकट स्याम ने लई उठाय—

* नायिका-भाववती समस्नेहा श्रीललिता-विशाखा आदि कुञ्जसेवाकी प्रिय सखी नहीं हैं। नायिकाभाव-शून्या केवल श्रीराधा-माधवकी निभृत निकुञ्ज-सेवामें ही जीवनकी सार्थकता समझनेवाली श्रीरूपमञ्जरी आदि ही नित्य प्रिय सखी हैं।

भुज भरि, निज पट पीत डासि महि, दी ता पर सुवाइ अभिराम।
मस्तक राखि समोद गोद निज, मुख छबि निरखन लगे ललाम॥
गाल-भाल के घर्मबिंदु दृग-सलिल पोंछ निज पट नँद-लाल।
भए द्रवित मन, तन पुलकित, दृग प्रेम-सलिल छाये ततकाल॥
मृदु मधु निज कर-अँगुरिन तें प्रिय लगे सँवारन कुंचित केस।
प्रियतम लखि प्यारी-सेवा-रत प्रिय सखि भई मुदित सबिसेस॥
खोलि नयन छिन, निरखि स्याम-घन, 'हा हृदयेस्वरि !' कहि ते काल।
मूँदे पुनि, मुख-पंकज-मधु पी, भये स्याम-दृग-मधुप निहाल॥
भई अर्ध-चेतन प्यारी तब, पुनि-पुनि खोलत-मूदत नैन।
घोरि अमिय-रस मधुर अमित पिय, बोले अति बिनम्र सुचि बैन॥
'नयन उघारि तनिक मो तन निरखौ तुम, हे मम जीवन-मूरि !
सेवक हौं तुव चरननि कौ नित, करौ न मोहि नैकु पल दूरि'॥
पिय के बचन सुधामय सुनि, करि पूर्न चेत, उठि बैठी बाल।
दोउन के कन-कन उमग्यौ अति प्रेम-सुधा-सागर सुबिसाल॥
सुखी भई सखि, नाचि उठ्यौ मन, जिमि घन लखि बन नाचत मोर।
भई सफल-जीवन लखि प्यारी-प्रीतम कौं आनंद-बिभोर॥

[२९६]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

अति एकान्त, बिकल बैठी थी आतुर मन कालिन्दी-कूल।
श्याम-विरह दुस्सह पीड़ासे व्यथित गयी थी सब कुछ भूल॥
'आवेंगे अब नहीं कभी, वे छोड़ गये मुझको मतिमान।
जान गये मुझको सब विधिसे हीन, मलीन, दोषकी खान॥
नहीं बाह्य सौन्दर्य तनिक भी, नहीं हृदय सुन्दरता-लेश।
अमित दोष-पूरित बाह्यान्तर, कलुषित कठिन कुबुद्धि विशेष॥
इसी हेतु वे गये, किया प्रियतमने समुचित निस्संदेह।
नहीं कदापि योग्य है उनके कुत्सित अति कुरूप यह देह॥

सुख पायें वे प्राणनाथ, है अमित मुझे इसमें आनन्द।
प्रिय-वियोग-विष-ज्वाला विषम जलाती रहे मुझे स्वच्छन्द' ॥
करती यों विचार थी, थी वह भाव-मुग्ध सब विधि बाला ॥
मन-ही-मन जप रही निरन्तर थी वह प्रिय-सुखकी माला ॥
प्रिय-सुख-स्मृतिसे एक-एक पल, नव-नव हृदय मोद भरता।
किंतु साथ ही प्रिय-वियोग-दावानल हृदय दाह करता ॥
भूल गयी वह कल-कल करती बहती कालिन्दी-धारा।
कूद पड़ी, कमनीय कलेवर सलिल-निमग्न हुआ सारा ॥
लगा, किसीने लिया गोदमें, हुआ सुकोमल तनका स्पर्श।
भरा सुधा-रस अङ्ग-अङ्गमें, मिटा खेद, छाया अति हर्ष ॥
हर्षपूर्ण हो गया हृदय अति, रहीं बंद आँखें कुछ काल।
उठी गुदगुदी तन-मनमें, तब खुले नयन-अरविन्द विशाल ॥
देखा बँधी हुई अपनेको प्रियतमके कोमल भुज-पाश।
देखा, देख रहे अपलक प्रिय, छाया अधरोंपर मृदु हास ॥
हुआ अमित आनन्द परस्पर, विकसे हृदय-कुसुम तत्काल।
होने लगा प्रिया-प्रियतममें रसालाप अति दिव्य रसाल ॥
बोले प्रियतम—'भूल गयी तुम, आये थे हम दोनों साथ।
दोनों ही बैठे यमुना-तट लिये परस्पर कोमल हाथ ॥
हुआ प्रेम-वैचित्त्य तुम्हें तब, जागा मन वियोगका ज्ञान।
हुआ विमुग्ध देख मैं अनुपम दिव्य प्रेमकी दशा महान ॥
कूदा मैं भी साथ तुम्हारे, लिया अङ्कमें भुजा पसार।
मैंने तुमको प्रिये ! उसी क्षण, मिला दिव्य आनन्द अपार ॥
रहा देखता निर्निमेष मैं प्यारी-मुख-सरोजकी ओर।
उमड़ा प्रेम-सुधा-रस-सागर, रहा कहीं भी ओर न छोर ॥
हटा भाव वह पाकर मुझको, हुआ तुम्हें तब बाह्यज्ञान।
महिमामयी ! नहीं तुमको है किंचित् निज महिमाका भान ॥'

[२९७]

(राग ईमन—तीन ताल)

देखा स्वप्न राधिकाने हों गयी दुखित अतिशय तत्काल।
सुना रहे माधव उद्धवसे अपनी दुर्गतिका सब हाल॥
दुर्बल, अति कृशकाय, मलिन-मुख, श्रान्तिपूर्ण मानस अति दीन।
बहा रहे थे नेत्र उष्ण जल दोनों, था सब वेश मलीन॥
'मेरे विरह-व्यथित अति राधा करती नित्य विलाप अधीर।
करती सदा स्मरण मेरा निर्दहन, बहाती लोचन नीर॥
क्षण न भूल सकती वह मुझको, क्षण न कभी पाती वह शान्ति॥
बढ़ता नित्य निरतिशय उसका हृदय-दाह भीषणतम भ्रान्ति॥
इसका कारण यही एक मैं भूल नहीं पाता क्षण एक।
रहता सदा धधकता उरमें विरहानल, कर भस्म विवेक॥
मेरे उरकी ज्वाला बढ़ती, नित्य बढ़ाती उसका दाह।
क्योंकि मधुर स्मृति उसकी रहती मेरे उरमें भरी अथाह॥
यह स्मृति ही उसमें नित जाग्रत करती मेरी स्मृति अविराम।
इससे जलता हृदय, सूखता जाता उसका बदन ललाम॥
किसी तरह यदि मैं राधाको उद्धव! यदि जा पाऊँ भूल।
तो उर-दाह बुझे राधाका, मिटे तभी मेरा उर-शूल॥
इसी भयानक चिन्तासे हो रही दुर्दशा मेरी आज।
इसी हेतु मेरे जीवनमें अद्भुत छाया शोक-समाज॥
कितना मैं निष्ठुर, निर्दय हूँ, सदा कोसता अपने-आप।
इतनी दूर मधुपुरीसे भी देता प्यारीको संताप'॥

× × ×

देख दशा प्रियकी, सुन उनकी व्यथापूर्ण वाणी निज कान।
हुई परम व्याकुल श्रीराधा, टूटा स्वप्न हुआ मुख म्लान॥
स्वप्न स्मरण कर हुई निरतिशय पीड़ित प्रेममयी राधा।
समझा उसने मैं ही हूँ बस, प्रियतमके सुखकी बाधा॥

हुआ कलेवर कम्पित कोमल, बही अश्रुओंकी धारा।
छाया मन विषाद भारी अति, विस्मृत हुआ जगत् सारा॥
लगी सोचने—'क्यों स्मृति होती मेरी उनके हृदय अपार ?
इसीलिये, मैं नहीं एक क्षण सकती उनको कभी बिसार॥
मेरी मनकी स्मृतिसे ही उनमें मेरी स्मृति उठती जाग।
इसीलिये उनके अन्तर में सदा धधकती रहती आग॥
जो मैं उन्हें भूल पाऊँ, जो करूँ नहीं उनको मैं याद।
तो मैं पाऊँ उनके सहज सुखी होनेका प्रिय संवाद'॥
यों निश्चय कर गयी अम्बिका-मन्दिरमें राधा तत्काल।
आर्द्र हो गये नेत्रोंके अविरत निर्झरसे अरुणिम गाल॥
करने लगी विनय गद्गद वाणीसे—'हे अम्बा माई!
मेरे उरसे तुरत हटा दे प्रियतमकी स्मृति सुखदाई॥
विरहानल जलता, पर पाती उस स्मृतिसे मैं सुख अनवद्य।
पर प्रियके सुख-हेतु हरण कर मैया! तू मेरा सुख सद्य॥
प्रियतमकी मधुर स्मृति ही है मेरे प्राणोंका आधार।
चले जायँगे प्राण, भले, करते भी क्या रहकर बेकार ?॥
नहीं रहेंगे प्राण, रहेगा नहीं हृदय स्मृतिका आगार।
हो जायेंगे सुखी सदाके लिये श्रेष्ठतम प्राणाधार'॥
बोली नहीं अम्बिका कुछ, इतनेमें जगा दूसरा भाव।
हैं, कितना दुःखप्रद होगा प्रियको मेरा प्राणाभाव॥
पता नहीं, कैसी होगी उत्पन्न हृदयमें उनके हूक।
पता नहीं, कैसे बच पायेगा वह बिना हुए दो टूक॥

× × ×

बोली—'मैया! नहीं चाहिये अब मुझको कुछ भी वरदान।
बना रहे सब कुछ मेरा ज्यों-का-त्यों, बदले नहीं विधान'॥
भावोदय हो उठा विलक्षण सत्वर राधाके उर-देश—
'हम दोनों हैं सदा परस्पर प्राण-प्रिय प्रियतम प्राणेश॥

सदा एक हैं, सदा साथ हैं, होता नहीं कदापि वियोग।
वे ही एक बने प्रिय-प्यारी, बने वही वियोग-संयोग' ॥

× × ×

इतना होते ही वह टूटा स्वप्न दूसरा भी तत्काल।
खोले नहीं नेत्र, वह रही सोचती निज मनमें क्षण-काल ॥
पूर्व स्वप्नके अंदर ही यह दीखा था फिर स्वप्न नवीन।
स्वप्न देख जब राधा तुरत हो गयी थी बेहद गमगीन ॥
सोई थी वस्तुतः कुञ्जमें सिर रक्खे प्रियतमकी गोद।
नींद आ गयी थी उसको, प्रिय देख रहे थे बदन समोद ॥
दीख पड़ी जब प्यारी मुख-आकृतिपर भावोंकी छाया।
हिले जगानेको प्रियतम, था मन उनका कुछ घबराया ॥

× × ×

जगी, नेत्र खोले—देखा, प्रियतमका सुन्दर बदन-सरोज।
जिनके सौन्दर्यांश कोटिपर न्योछावर शत-कोटि मनोज ॥
देखा, रहे सहेज स्वयं निज कर-कमलोंसे बिखरे केश।
पोंछ रहे निज बसन स्वेद-कण, हुआ स्वप्नमें था उन्मेष ॥
मिटा दुःख, छायी प्रसन्नता, बनी तुरत प्रियतम गल-हार।
उमड़ा लीलोदधि, लहराने लगीं लहरियाँ मधुर अपार ॥
शयन-स्वप्न-जागरण न कुछ था, था बस शुद्ध प्रेम-वैचित्य।
लीलारत राधा-माधव रहते हैं वे जैसे नित्य ॥

[२९८]

(राग जोगिया—तीन ताल)

विषम बिछुड़नेकी बेलामें राधा हुई उदास।
अश्रुधार बह चली दृगोंसे, चला दीर्घ निःश्वास ॥
बोली करती करुणा-क्रन्दन—'मेरे प्राणाधार !।
निराधार ये प्राण रहेंगे कैसे, क्यों, निस्सार ?' ॥
बदला भाव तुरंत, न जाने क्यों पलभरमें अन्य।
बोली—'हम दोनों स्वरूपतः अविरत नित्य अनन्य ॥

रहे कहीं भी देह छूटता नहीं कभी भी सङ्ग।
नित्य मिले रहते जीवनके सकल अङ्ग-प्रत्यङ्ग॥
हो पाता न कभी हम दोनोंका यथार्थ विच्छेद।
कर सकते न कभी, कैसे भी, देश-काल-तन भेद॥
बने तुम्हारे देह-प्राण-मन चरणयुगल मम प्राण।
हुआ तुम्हारे ही प्राणोंसे मेरा सब निर्माण॥
नित्य बसे रहते तुम मुझमें सहज मधुर आवास।
तुममें सहज हो रहा मेरा मीठा नित्य निवास॥
नित्य मिलनमें भी जब आती कभी विरहकी बात।
सुनते ही जल उठते सारे तत्क्षण मेरे गात'॥
इतना कहते ही आकुल हो हुई पुनः बेहाल।
तन-मनमें सर्वत्र जल उठी ज्वाला कठिन कराल॥
जली लता-सी पड़ी, उठाकर रखी श्यामने गोद।
कर कमलोंसे लगे केश सहलाने मधुर समोद॥
बचन-सुधा अति मधुर पिलाकर तन लौटाया चेत।
हृदय लगाकर बोले प्रियतम माधव प्रेम-निकेत॥
'प्रिये! मधुरतम है यह लीला-रस-वारिधिका रंग।
परम विचित्र तुम्हारा, इसमें उठती विविध तरंग॥
लीला-रसके ही स्वरूप दो विप्रलम्भ-सम्भोग।
नहीं वस्तुतः हुआ, न होगा, हममें कभी वियोग॥
दुग्ध-धवलता, अग्नि-दहनता ज्यों रवि-रश्मि अभिन्न।
त्यों—मैं तुम; तुम मैं, न करो तुम प्रिये! तनिक मन खिन्न॥
मथुरा रहूँ, तुलसिकावन या हो कोई-सा स्थान।
हम दोनोंके बीच न होगा कभी रञ्च व्यवधान॥
एक, बने दो खेल रहे हम नित्य अनादि अनंत।
मधुर दिव्य रस-मत्त परस्पर नित्य निरतिशय रंत'॥
राधा हुई प्रसन्न देखकर प्रियतम-वदन प्रसन्न।
तत्सुख-सुखी सदा ही दोनों सहज अभिन्न-विभिन्न॥

[२९९]

(राग काफी—ताल दीपचन्दी)

माधव ! हौं तुम्हरे सँग जैहौं।
तुम्हरे बिना न इक पल रहिहौं, लोक-लाज कुलकानि नसहौं ॥
बरजो नहिं रहिहौं काहू की, जो बाँधहिं तौ बंधन खैहौं।
जड़ तनु तजिहौं, यह मन—प्रिय सँग प्रानहिं अवसि पठैहौं ॥
मिलिहौं जाइ तहाँ प्रीतम में, जिमि सागर बीच लहर समैहौं।
स्याम-बदन महँ स्याम रंग रचि, स्याम-रूप लहि अति सुख पैहौं ॥

[३००]

(राग विहाग-तीनताल)

सखी री ! मो सम कौन कठोर ?
बिदर्यौ हियो न वा दिन, सुनि प्रियतम बानी अति घोर ॥
कह्यो—'काल्हि जाऊँगी मैं मथुरा निस्चै ही, प्यारी !'
सुनत रही बानी प्रियतम की निरभै मैं, अति खारी ॥
फिरि-फिरि चितै रहे संतत मोहन मो तन मनहारी।
तदपि न गई संग, फिरि आई, करी उपेच्छा भारी ॥
पठए प्रान नहीं प्रियतम-सँग, अजहूँ रहे अभागे।
जीवन-लोलुप निठुर रहे निर्लज्ज सदा संग लागे ॥
प्रीति-सुधा-रस तैं सूनौं हिय, मिथ्या आँसू ढारौं।
जीवन-मूल मूल पै या तै जीवन कों नहि वारौं ॥
प्रान-मोह-मोहित नित डोलूँ, कपट विलाप सुनाऊँ।
साँची प्रीति होय तौं सखि ! मैं कैसें नहिं मरि जाऊँ ॥

[३०१]

(राग सारंग—तीन ताल)

स्याम बिनु छिनहूँ नाहिं सरै।
[illegible]ल जुग समान बीतत, नहिं अधम प्रान निसरै ॥

बोलनि-चलनि, आवनि-धावनि की सुधि मोद भरै।
नव निकुंज की मिलनि मनोहर कबहूँ नहिं बिसरै॥
का कौं कहि कैसे समुझावौं, हिय बिच अगिनि जरै।
बिनु अनुभव कैसैं पतियावै, कैसैं समुझि परै॥
कहिबे में कछु सार न दीखत, उलटौ नाम धरै।
को जग ऐसौ है, जासौं यह जिय की जरनि जरै॥
जौ कहुँ स्याम सुधा-जल आकर मो पर बरसि परै।
तब ही बुझै अनल यह जड़ सौं, निर्झर अमृत झरै॥

[३०२]

(राग मल्हार—तीन ताल)

स्याम-घन कब बरसैगौ आय ?
कब अमिलन-संताप मिटैगौ, बिरह-निदाघ नसाय ?
कब मम मन-मयूर नाचैगौ, उर आनँद न समाय ?
कब चित चातक चहकि उठैगौ, स्याम स्वाति-जल पाय ?
स्याम-मिलन बिनु कछु नहिं भावै, कछु नहिं मोहि सुहाय।
स्याम-मिलन-रस ही साँचौ रस जीवन में सरसाय॥

[३०३]

(राग भैरवी—तीन ताल)

बज्र सम मेरौ हियौ कठोर।
स्याम-बिरह बिदरत नहिं, छिन महँ करत अरोर-मरोर॥
जल कौ प्रेम मीन जानत जग, बिछुरत ही मरि जात।
रच्छा हित इत-उत नहिं ताकत, नैन मूँदि रहि जात॥
मेरौ हियौ प्रेम तैं छूँछो, ता तैं प्रान न निकसत।
जद्यपि बिरह-व्यथा अति हिय में अधिक-अधिक ही विकसत॥
याकौ एक और ही कारन मेरे मन में आयौ।
तातें दुस्सह दुःख सहन करि, अपनौ मरन भुलायौ॥

स्याम कहि गए—'हौं आवौंगो फेरि तुम्हारे पास'।
तब तैं स्याम दरस की हिय में लगी पियारी आस॥
मधुर स्याम-दरसन तैं मेरौ मन अनुपम सुख पावै।
मोकूँ सुखी देखि प्रियतम-हिय सुख-समुद्र लहरावै॥
या सुख तैं बंचित न रहैं वे प्रियवर स्याम सुजान।
या कारन नहिं निकसत तन तैं परम कलंकी प्रान॥

[३०४]

(राग बिलावल—तीन ताल)

तिहारौ बिरह दुःख-सुख-रूप।
कबहुँ हँसावत, कबहुँ रुवावत, बिबिध भाव अनुरूप॥
जब तुम्हरे रस-सुंदर मोहन सुख की आवै याद।
तब बहि चलै प्रेम-सुख-सरिता, तजि कै सब मरजाद॥
जब अमिलन की दुखद भावना मेरे मन में आवै।
तब अति दारुन दुःख-अनल प्रगटै तन-मनहि जरावै॥
जब मन सुमिरन करै अननि ह्वै मधुर दिव्य रसराज।
तब उमड़ै आनंद-सुधानिधि, डूबै दुःख-समाज॥
जब मन महँ प्रत्यच्छ दरस की अति उतकंठा जागै।
तब अतिसय संताप बिरह कौ उमगै, सब सुख भागै॥

[३०५]

(राग भैरव—तीन ताल)

अहो हरि ! मो प्राननि के प्रान।
अब कब पुनि सुन पाऊँगी मैं मुरली की मधु तान॥
कब मुखचंद निहारौंगी पुनि रस-निधि, हौं रसराज !।
कब नव-नीरद तनु परसौंगी छाड़ि लोक-कुल-लाज॥
कब त्रिभंग-भंगिमा निरखि पुनि होंगे नैन निहाल।
कब हौं पुनि पहिरावौंगी गल गूँथि मालती-माल॥

कब पुनि ललित पान-बीरी दै अधर करौंगी लाल।
कब मैं पदपंकज-पराग लै तिलक करौंगी भाल॥
अब नहिं सह्यौ जात मो पै यह तेरौ विषम बियोग।
छटपट करत प्रान निकसेंगे, तजि सरीर-संजोग॥

[३०६]

(राग कामोद—तीन ताल)

स्याम मोहिं तुम बिन कछु न सुहाय।
जब तें तुम तजि ब्रज गये मथुरा, हिय उथल्यौई आवै॥
बिरह-बिथा सगरे तनु ब्यापी, तनिक न चैन लखावै।
कल नहिं परत निमिष इक मोहिं, मन-समुद्र लहरावै॥
नँद-घर सूनौ, मधुबन सूनौ, सूनी कुंज जनावै।
गोठ, बिपिन, जमुना-तट सूनौ हिय सूनौ, बिलखावै॥
अति विहवल वृषभानु-नंदिनी, नैननि नीर बहावै।
सकुच बिहाइ पुकारि कहति सो—'स्याम मिलैं सुख पावै'॥

[३०७]

(राग देशी—तीन ताल)

स्याम ! अब मत तरसाओ जी।
मन-मोहन 'नंद-लाल' दया कर दरस दिखाओजी॥
व्याकुल आज आपकी राधा माधव आओजी।
तब दरसन लगि तृषित दृगन कौ सुधा पिआओजी॥
तुम बिन प्रान रहैं अब नाहों धाय बचाओजी।
प्रानाधार ! प्रान चह निकसन, बेगि सिधाओजी।
राधा कहत, गए राधा के, पुनि पछिताओजी।
राधा बिना स्याम नहिं 'राधा-कृष्ण' कुहाओजी॥

[३०८]

(राग बिहाग—तीन ताल)

माधव ! करौ बचन निज याद ।
आज-काल्हि करि काल बितावत, जनम जात बरबाद ॥
मग जोहत दृग दृष्टि गई, नख कुचरत भुवि दिन जात ।
दिन-दिन मास-बरस सब बीतत, निसि रोवत बिलखात ॥
आवैं अब, अब ही आवैंगे, यहि आसा दिन बीतै ।
आवन-मिलन भए दुर्लभ दिन बीतत रीतैं-रीतैं ॥
जीवन भयौ मरन, चेतन हू भयौ अचेतन प्यारे !
तन-धन-भूषन-बसन भार ह्वै लगत अगिनि—सम सारे ॥
मृदु-मधु बचन सुनाइ, तबै तुम उपजायौ बिसवास ।
अब बिस्वास-घात करि, मोकूँ क्यौं करि रहे निरास ॥
बिरह-अगिनि अति प्रबल बरि रही, पल-पल जुग-सम जात ।
अब तौ बेगि मिलौ, जीवनधन ! करि साँची निज बात ॥

[३०९]

(राग भैरवी—तीन ताल)

प्रानधन सुंदर स्याम सुजान !
छटपटात तुम बिना दिवस-निसि मेरे दुखिया प्रान ॥
बिदरत हियौ दरस बिनु छन-छन, दुस्सह दुखमय जीवन ।
अमिलन के अति घोर दाह तैं दहत देह-इंद्रिय-मन ॥
कलपत-विलपत ही दिन बीतत, निसा नींद नहिं आवै ।
सुपन-दरसहू भयो असंभव, कैसैं मन सचु पावै ॥
अब जनि बेर करौ मन-मोहन ! दया नैक हिय धारौ ।
सरस सुधामय दरसन दै निज, उर की अगिनि निवारौ ॥

[३१०]

(राग बिहाग—तीन ताल)

सखी ! माय कारौ नाग डस्यौ।
व्यापि गयौ विष नस-नस बरबस, उर तैं जगत खस्यौ ॥
बिस बगराय, भुजंगम भीषन मृदु मधु हँसी हँस्यौ।
हँसतहिं विष अति भयौ मधुर सो, अवसर पाइ धँस्यौ ॥
विष भयौ अमिय, नाग पुनि मोहन,मधु मधुरिमा लस्यौ।
करत किलोल कलित अकलन, रस-सुधा-स्रोत निकस्यौ ॥
स्याम-मनहि सौं एकमेक मन अमन होइ बिकस्यौ।
कौ जानै कब लौं यौं मोहन मो महँ रह्यौ धँस्यौ ॥
जाके नाम कटत भव-बन्धन, सो स्वयमेव फँस्यौ।
ह्वै परतंत्र, सुतंत्र परम सो अपनेहि बंध कस्यौ ॥

[३११]

(राग आसावरी—तीन ताल)

परत मन छिन नैकहु नहिं चैन।
व्याकुल व्यथित चित्त दिन बीतत, परत नींद नहिं रैन ॥
घर-धन-परिजन हुते सबहि अति प्यारे, हुतौ ममत्व।
अब न सुहात कतहुँ, कोउ कबहूँ, सब महँ भयौ समत्व ॥
मन न करत कछु तिन के आवन-जावन की परवाह।
एकमात्र प्रियतम-दरसन की बढ़त नित नई चाह ॥
सुरति न करत अन्य की मन, तजि सगरी व्याधि-उपाधि।
'प्रिय-मिलनेच्छा' रूप भयौ बस, लागी सहज समाधि ॥
मिटी असांति-विथा-व्याकुलता, पायौ सब बिधि चैन।
इच्छा तीव्र अनन्य मिलन की भई सकल सुख-ऐन ॥

[३१२]

(राग टोड़ी—तीन ताल)

बिरह-दुख सजनी ! अति सुखरूप।
प्रियतम की प्रिय सुधि कौ सुन्दर साधन परम अनूप ॥
गृह-धन-जन-परिजन—सबकी सुधि बिसरावत ततकाल।
हिय महँ लाय बसावत मंजुल मोहन-सुधि सब काल ॥
छलकत रहत सदा हिय महँ सुचि प्रेमामृत सुख-सागर।
सकल अंग नित रहत रस-भरित, जग की सुरति बिसार ॥
बिरहानल अति प्रबल करत जग की ज्वाला कौ छार।
करत सुसीतल रूप-सुधा-सागर गँभीर महँ डार ॥
दरसन-रुचि पल-पल बाढ़त, पल-पल उतकंठा-जोर।
निसि-दिन एक मधुर चिंतन, कब मिलिहैं नंद-किसोर ॥

[३१३]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

झूर रहे दृग रूप-दरस कौं, रोय रहे अँग परसन अंग।
इन्द्रिय सकल विकल बिलखत प्रिय इंद्रिय कौ पाने मधु संग ॥
हृदय रह्यौ अति आतुर ह्वै पिय-हियके रस-आलिंगन हेतु।
प्रान प्रान में मिलन चहत उड़ि, सहज तोरि मरजादा-सेतु ॥
मन अति आकुल, जाय मिलौं कब प्रियतम-मन में अतिसय प्रीति।
अंग अधीर मिलन कौं सब अति, तजि सुभाव, निज-गुन, निज नीति ॥

[३१४]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

एक-एक पल बना युगों-सा दारुण पीड़ाका आगार।
आँखोंमें छायी वर्षा ऋतु, अविरत बही अश्रु-जल-धार ॥
हुआ व्यथामय हृदय, कर उठे प्राण करुण-स्वर हाहाकार।
प्रियतम-विरह विषमसे सूना हुआ सहज सारा संसार ॥

[३१५]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

दिन नहिं चैन, रैन नहिं निद्रा, भूख-प्यासका भान नहीं।
हियमें जलती आग अमित, पर उसका भी कुछ ज्ञान नहीं॥
रोती आँखें नित्य, बरसता रहता नित्य नेहका मेह।
याद नहीं, फरियाद नहीं कुछ, तेज उज्ज्वलित जर्जर देह॥

[३१६]

(राग बागेश्री—ताल कहरवा)

गये श्यामसुन्दर जब मथुरा, छोड़ पवित्र प्रेम-रस-धाम।
बिरहातुरा गोप-रमणी सब पागल-सी हो गयीं तमाम॥
एक देखती, कहीं प्रकट हो दर्शन दे दें, नभकी ओर।
एक निराश हुई अति आकुल भई पूर्व-स्मृति-मग्न, विभोर॥
एक देख कुछ आशा-अंकुर, भरती अति मनमें अनुराग।
एक चकित-सी सोच रही, क्यों किया हमारा प्रियने त्याग॥
सभी खिन्न, विच्छिन्न-हृदय सब, भिन्न-भिन्न कर रहीं विचार।
आठों पहर गोपियाँ करतीं श्याम-सङ्ग यों विरह-विहार॥

[३१७]

(राग विभास—तीन ताल)

मधुपुरी गवन करत जीवन-धन।
लै दाउए सँग सुफलक-सुत, सुनि जरि उठी ज्वाल सब मन-तन॥
भई विकल, छायौ बिषाद मुख, सिथिल भए सब अंग सु-सोभन।
उर-रस जर्‌यौ, रहे सूखे द्वय दृग अपलक, तम व्यापि गयौ घन॥
लगे आय समुझावन प्रियतम, पै न सके, प्रगट्यौ विषाद मन।
बानी रुकी, प्रिया लखि आरत, थिर तन भयौ, मनो बिनु चेतन॥
भावी विरहानल प्रिय-प्यारी जरन लगे, बिसरे जग-जीवन।
कौन कहै महिमा या रति की, गति न जहाँ पावत सुर-मुनि-जन॥

[३१८]

(राग देश—तीन ताल)

जब ते हरि मधुपुरी सिधाये।
तब ते रहत अनमन दोऊ तन-मन की सब सुधि बिसराये।
सूखी हृदय-अमी-रस-धारा, सूखे सकल अंग पथराये।
सूखे दृग थिर पलकहीन ह्वै चढ़े रहत मधुबन-चित लाये॥
भूषन-बसन-असन सब भूले, बाढ़ी जटा, केस अरुझाये।
ब्यापी बिपुल बेदना अंतर सहमे रोम-रोम अकुलाये॥
कर दै चिबुक बिसूरति जसुमति सुरति करत नँद बदन फिराये।
देखि न सकत परस्पर दोऊ उर की उर अति बिथा छिपाये॥
सूनी दृष्टि, सृष्टि सब सूनी, सून जो ब्रज ब्रजनिधि बिछुराये।
अतिहि अकिंचन भए रहत सब, स्याम-राम बिनु कछु न सुहाये॥

[३१९]

(राग आसावरी—तीन ताल)

ब्रज की सुरत मोहिं बहु आवै।
जसुमति-मैया कर-कमलन की माखन-रोटी भावै॥
बूढ़े बाबा नंद मोहि लै ललराते निज गोद।
हौं चढ़ि तौंद नाचतौ, तब वे भरि जाते अति मोद॥
बालपने के सखा ग्वाल-बालक सब भोरे-भारे।
सब तजि जिन मोहि कहँ सुख दीन्हौं, कैसें जायँ बिसारे॥
ब्रज-जुबतिन की प्रीति-रीति की कहौं कहा मैं बात।
लोक-बेद की तज मरजादा, मो हित नित ललचात॥
मेरे नयननि की पुतरी वे जीवन की आधार।
सुधि आवत ही प्रिय गोपिन की, बही नयन जल-धार॥
आराधिका, नित्य आराध्या राधा को लै नाम।
चुप रहि गए, बोल नहिं पाए, परे धरनि, हिय थाम॥

[३२०]

(राग भैरवी—तीन ताल)

ऊधौ ! बिसरत नहिं मनभावनि।
राधा, राधा की मधु लीला हिय-संताप-नसावनि ॥
मुक्त हँसनि, मुसुकावनि मधुमय, चोचल-करनि, हँसावनि।
ब्यंग करनि, मृदु रूठनि, मुख गंभीर करनि, उठि धावनि ॥
मान करनि, हिय-ताप जगावनि, नव निकुंज नहिं जावनि।
मन करि रोष, बाष्पपूरित दृग, सिसकि-सिसकि सुबुकावनि ॥
रोवनि, स्तब्ध रहनि, मूर्छित ह्वै मो मन भय-उपजावनि।
अकुलावनि अति, दुतिहि देखत आतुर मो ढिग आवनि ॥
मिलनि मधुर, कोकिल सम बानी सरस सुधा बरसावनि।
मृदुल मनावनि, सकुच सहित सुचिविनय-भाव दरसावनि ॥
मुसुकनि नैकु निरखि मो मुख तन, सहसा अति सरमावनि।
नैन मूँदि, मस्तक नीचौ करि, बदन ढाँपि चुचुकावनि ॥
सुनतहि बैन प्रेमपूरित मम, चंचल नैन चलावनि।
संभ्रम-सकुच सकल तजि, हँसि-हँसि नैननि नैन मिलावनि ॥
अंग-अंग सुचि गंध बिलेपनि, मधुर सुगंध लगावनि।
पुष्पहार, भुजहार मनोहर मुक्त-हृदय पहिरावनि ॥
चपल, सुधीर, चतुर-चूड़ामनि, सकल सुकला सिखावनि।
मो मन मोद भरनि, अति भोरी, अति सूधी बतरावनि ॥
मो सुख-हेतु बिचित्र बिबिध नित नव-नव रूप रचावनि।
प्रानाधिका प्रान-प्रतिमा मम प्रानाधारा पावनि ॥
निकसत नाहिं पलक मो मन तैं सुख-सागर लहरावनि।
प्रीति-सुधा-रस दिव्य मधुर दै, जीवन मधुर बनावनि ॥

[३२१]

(राग बागेश्री—तीन ताल)

ब्रज-बनितनि की महिमा न्यारी।
ऊधौ ! उन की मूरति छिन भर मन सौं टरत न टारी ॥

वे मेरे हिय बसत निरंतर, हौं नित उन के पास।
सत्य कहौं—वे स्वामिनि मेरी, हौं नित उन कौ दास॥
परम रहस्य, सत्य अति गोपन एक दूसरौ और।
हौं ही राधा बन्यौ रहूँ नित, गोपिन कौ सिरमौर॥
लीलारत राधा ही अगनित गोपीरूप बनाय।
लीला करत रसास्वादन-हित नित्य सहज समुदाय॥
या बिधि हौं ही गोपी सब, राधा, राधा कौ प्यारौ।
रसिक, रसास्वादनरत, रसमय, तदपि न कबहूँ न्यारौ॥
उन के छीन देह कौ दुख-सुख—सब मोकूँ ही होय।
हौं ही बिरह, मिलन पुनि हौं ही, वे-हम कबौं न दोय।

[३२२]

(राग देश—तीन ताल)

ब्रज-बनिता नहिं मो तैं न्यारी।
मम सुख-हित करि सरबस अरपन, मो में आइ समानी सारी॥
मेरौ मन नित तिन कौ मन बनि, करत मनोहर लीला सब दिन।
मेरे प्राननि सौं अनुप्रानित, मेरौ जीवन ही तिन जीवन॥
तिन की देह, अंग-अवयव—सब मेरी लीलाके आलंबन।
नहीं पृथक कबहूँ कछु तिन कौ, अपनौ अन्य साध्य अरु साधन॥
ग्रहन-त्याग अरु भोग-मोच्छ, नहिं कर्म-अकर्म-भाव तिन के मन।
सब कछु सदा एक मैं ही, बस, नित्य प्राप्त तिन कौ जीवन-धन॥

[३२३]

(राग खमाच—तीन ताल)

राधा की सुधि करत कन्हाई।
कहत रूप-गुन-सील प्रिया के, धीरज चली पराई॥
प्रगटी प्रिया-मूर्ति नभ स्मृति अनुरूप मंजु छबि छाई।
मृदु मुसुकान, तदपि मुख-पंकज रह्यौ मनौं कुम्हिलाई॥

थिर सब अंग, नैन नीचे थिर, सहज समाधि लगाई।
प्रिय-उर-भाव प्रगट भए सगरे, मूर्तिवंत ह्वै आई॥
लखि लच्छन बिरुद्ध-धर्माश्रय, मगन भए जदुराई।
हर्ष-बिषाद भरी मुख-छबि वह हरि-हिय माँझ समाई॥
ढरे अश्रु-मुक्ता ऊधौ-दृग, स्नेह-सुधा सरसाई।
अकथ कहानी दिब्य प्रेम की, कैसेहुँ कही न जाई॥

[३२४]

(राग देश—ताल रूपक)

ऊधौ ! निठुर मो सम कौन ?
कोटि कुलिसहु तैं कठिन, तेहि छिन रह्यौ धरि मौन॥
लै चल्यौ बैठारि रथ मोहि क्रूर अति अक्रूर।
दौरि आईं ब्रज-बधू सब, रहीं नैकहिं दूर।
धैर्य-मूरति राधिका, नहिं राखि पाई धीर॥
चली बिलपति करति क्रंदन, बहत दृग द्रुत नीर॥
गिरति, उठति, दहाड़ मारति, उच्च सुर बेहाल।
दौरि आवति अति उतावरि जुग-सदृस पल काल॥
उष्न अँसुअन ताप तें तरु-लता सब मुरझाय।
सूखि गइ पल माहिं, रोवत बिहग-कुल बिलखाय॥
वत्स-गो-बृष भए ब्याकुल, रहे करुन डकार।
भए जीवन हीन-से सब, बहि चली दृग-धार॥
लगे रोवन नेह-पूरित बन्यचर तजि धीर।
नभ घटा घन छई असमय, बढ्यौ जमुना-नीर॥
बाँस-बन में अनल प्रगट्यौ, बही बरति बयार।
धरा-हृदय तुरंत बिदर्‌यौ, परी प्रचुर दरार॥
रोय दीन्ही प्रकृति सब, बुधजन बिसार्‌यौ बोध।
रोकि लीन्ही गोपिका गुरुजनन करि पथ-रोध॥

राधिका सब सखिन के सँग भई अति निरुपाय।
रही कातर दृगनि देखत गमन-पथ असहाय॥
हृदय-बेधी देखि यह, नहिं फट्यौ हिय हहराइ।
रह्यौ देखत हौं मृतक-सो, दियौ रथहि चलाइ॥
उतरि रथ तें हौं पलक भर दई ताहि न धीर।
कौन मो-सौ निरदई निर्मम निपट बेपीर॥
राधिका की बिकल आकृति, अकथ निज अपराध।
छिन न भूलत मोय ऊधौ! जरत हृदय अगाध॥
देखि पावौं सकृत पद-जुग, अश्रु-जल सौं धोय।
करौं कछु हलकौ हियौ, नीरव नयन सौं रोय॥
किंतु डर यह लगत भारी, देखि रोवत मोय।
अमित हिय संताप, ताकौ अभल नहिं कछु होय॥

[३२५]

(राग परज—ताल कहरवा)

प्राणेश्वरि! जबसे मैं आया हूँ मथुरा कर तेरा त्याग।
तबसे तुझे भूलकर पलभर भी न पा सका सुख निर्भाग॥
मधुर एक, बस, तेरी ही स्मृति है मेरा जीवन-आधार।
प्रतिपल वह जीवनमें जीवन भरती रहती है अनिवार॥
स्वप्न-जागरणमें जो कुछ भी करते हैं सब इन्द्रिय-मन।
सबमें बस, तेरा मीठा सम्बन्ध बना रहता प्रति छन॥
भोजन-शयन—सभीमें तेरी संनिधि देती परमानन्द।
तेरे बिना सदा भूला रहता मैं सहज स्वरूपानन्द॥
तू ही एकमात्र सुख मेरा, तू ही है प्राणोंकी प्राण।
हृदयेश्वरि! तेरी विस्मृति लवभर न सहन कर सकते प्राण॥

[३२६]

(राग सोहनी—ताल दादरा)

मत समझना तुम कभी यह, मैं तुम्हें हूँ छोड़ आया।
नित्य आत्मा मिल रही है, कहीं भी यह रहे काया॥
नित्य अनुभव हो रहा है, हृदयमें है रूप छाया।
एक पलको भी कभी हटता न वह बलसे हटाया॥
हृदयके प्रत्येक स्तरमें, देहके हर रोममें नित।
स्पर्श मधुमय हो रहा है दे रहा है सुख अपरिमित॥
इह-परत्र सुमिलन ही, बस, हो चुका नित्य सत्य निश्चित।
विलग होता है कभी सम्भव नहीं, अब यही सुविहित॥
नित्य नव अनुराग, नित नव रस, विमल आनन्द नित नव।
हो रहे सब एक मिलकर मुदित आभ्यन्तरिक अवयव॥
प्रेम-मिलन वियोग-विरहित, नहीं तनिक विछोह त्रुटि-लव।
सूक्ष्म अणु-अणुमें सदा ही, सर्वथा आनन्द-अनुभव॥
पाञ्चभौतिक देह नश्वरका मिलन-अमिलन सदृश है।
क्योंकि दुष्परिणाम उसका एकमात्र वियोग-विष है॥
आत्म-मिलन अबाध अविनाशी मधुरतम परम रस है।
सदा लहराता अमृत-सागर वहाँ शुचि एकरस है॥

[३२७]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

हे राधे! उस दिन जिस क्षणसे तुझसे मेरा हुआ विछोह।
नहीं छूटती स्मृति पलभर भी, बढ़ा अमित शुचितम है मोह॥
जाग्रत्-स्वप्न, क्रिया-निष्क्रियता—सबमें स्मृति अखण्ड रहती।
तेरी रस-धारा नस-नसमें अतिशय सुखद मधुर बहती॥
रहता मन है सदा तुझीमें, रहती तू नित मेरे पास।
नित्य निरन्तर अनुभव होता, बढ़ता रहता रस-उल्लास॥
व्यथा विछोह-मोहकी मार्मिक करती मुझे सहाय विशेष।
मानस-संनिधि-सुखका निरुपम अनुभव होता सदा अशेष॥

[३२८]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

राधे ! तुम जो अनुभव करती, लीला-रत रहती हो नित्य ।
सो कल्पना नहीं है किंचित्, परम तथ्य है अतिशय सत्य ॥
लोग देखते हैं केवल मथुरामें मेरा नित्य निवास ।
किंतु तुम्हारा प्रियतम मैं रहता हूँ सदा तुम्हारे पास ॥
किसी परिस्थिति, किसी स्थानमें होता नहीं कदापि वियोग ।
खान-पान, व्यवहार-शयनमें रहता सदा नियत संयोग ॥
नहीं घृणा-लज्जा है कोई, नहीं कहीं संकोच-दुराव ।
एकरूपतामें कैसे कब रह सकता है भेद-छिपाव ॥
नहीं एक पल भी हटता मैं, नहीं छोड़ता मधुमय सङ्ग ।
अनुपम मधुर ललित लीलाका बढ़ता नित नवीन रस-रङ्ग ॥
सदा एक-तन, सदा एक-मन, सदा एक-रस, एकाकार ।
सदा बने दो, सदा बहाते पावन प्रीति-सुधा-रस-धार ॥
नहीं कभी होता बिछोह है, होता नहीं कभी अलगाव ।
बढ़ता नित्य मधुर रस उज्ज्वल, बढ़ता नया-नया नित चाव ॥
होती नहीं क्लान्ति, मिलती विश्रान्ति वरं सुखमय निर्मल ।
रहती सदा अशान्ति, शान्ति अति रस-आस्वादिनि अविचल चल ॥
नित्य नयी क्षमता है बढ़ती, नित्य नया उल्लास अथाह ।
नित्य नयी आकाङ्क्षा अविरल, बढ़ता नित्य नया उत्साह ॥
दोनों दोनोंके प्रिय-प्रियतम दोनों दोनोंके शृङ्गार ।
दोनों दोनोंके शुचि आत्मा, दोनों दोनोंके आधार ॥
दोनों दोनोंके नित सङ्गी दोनों दोनोंके हिय-हार ।
दोनों दोनोंमें मिल भूले, भुक्ति-मुक्ति, अग-जग संसार ॥

[३२९]

(दोहा)

ऊधौ ! तुम ते कहौं का गोपी-प्रेम-महत्त्व ।
जिन जान्यौ केवल परम सुद्ध प्रेम कौ तत्त्व ॥

मो में ही अनुराग सुचि ममता अमल अनन्य।
सेवत सरबस सौंपि सो मोय गोपिका धन्य॥
मो मन नित्य मनस्विनी प्रानवती मम प्रान।
मेरे ही हित कर्म सब करत बिगत अभिमान॥
असन-बसन तन-धन सकल धारत मम सुख-काज।
निज सुख-इच्छारहित नित तजि सब विषय-समाज॥
राग न नैकहु कितहुँ कछु अग-जग ममताहीन।
इह-पर-भोग-बिराग नित सहज नेह-रस-लीन॥
मम महिमा, सेवा, परम श्रद्धा, मन की बात।
केवल गोपी-जनन कौं सबै तत्त्वतः ज्ञात॥
तिन में सब की आतमा सब की परमाधार।
महाभावमयि राधिका रस-पर-पारावार॥
तिनके मन-बच-कर्ममें उमगत नित रस-सिंधु।
धन्य भयौ मैं पाय कछु तिन तें मधु-रस-बिंदु॥
परम त्यागमय प्रेम कौ सुख-सागर लहरात।
वा सुख चाखन कौं सदा मम मन अति ललचात॥
बनौं कबौं जो राधिका मैं लै तिन कौ भाव।
कृष्न मानि सेवौं तिनहिं तब पूरै मन-चाव॥
जाउ सखा, धनि होउ, लै सिर तिन चरनन-धूरि।
दरसन करि दृग-फल लहौ जो मम जीवन-मूरि॥

[३३०]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

मुझसे करके प्रेम, चाहता जो उसका बदला पाना।
वह भी सुकृति पुण्यजन, जिसने मुझको फलदाता जाना॥
उससे ऊँचा वह प्रेमी है, जो निष्काम प्रेम करता।
सेवा करके मुक्ति चाहता, मायिक जगसे जो डरता॥

उससे भी ऊँचा वह मेरा प्रेमी शुद्ध हृदय प्यारा।
देते-देते मुझे मधुरतम वस्तु कभी न थका-हारा॥
उससे भी उच्च स्तरपर वह, जो सेवा करता दिन-रात।
सेवाका फल सदा चाहता, सेवाकी बढ़ती अभिजात॥
जो न किसीका दास, किसीको नहीं बनाता दास कभी।
युग-युग सेवा ही जो करता, त्याग अन्य व्यवहार सभी॥
उससे ऊँची प्रेममयी हैं वे सौभाग्यवती गोपी।
जो निज-सुखको भूल सर्वथा सबसे बढ़कर हैं ओपी॥
स्नेह-राग-अनुराग-भावकी उठती जिनमें अमित तरङ्ग।
जिनका मुझसे छाया सारा जीवन, सभी अङ्ग-प्रत्यङ्ग॥
केवल यही चाहतीं—मैं बस, रहूँ देखता उनकी ओर।
बढ़ता रहे नित्य-प्रेमार्णव, रहे कहीं भी ओर-न-छोर॥
पर राधा तो उन सबकी है दिव्याधार-भूमि भावन।
जिसके स्नेह-सुधाका है शुचि एक-एक कण अति पावन॥
निरवधि, नित्य नवीन, नित्य निरुपम, निरुपाधिक, नित्य उदार।
नित्यानन्त-अचिन्त्य-अनिर्वचनीय अतुल रस-पारावार॥
राधा-प्रेम परम उज्ज्वलतम विधि-हरि-हर-अविगत-गति रूप।
परमहंस-तापस-योगी-मुनि-मति-दुर्गम आश्चर्य-स्वरूप॥
पर इससे उसका न तनिक भी परिचय कभी हुआ होता।
बहता सहज तीव्र-गति मञ्जुल मधुर दिव्य यह रस-स्रोता॥
चौसठ-कला-चतुर स्वाभाविक, पर वह मनकी अति भोली।
नहीं जानती दम्भ-कपट वह नहिं बनावटी कुछ बोली॥
सहज विनम्र, सरल शुचि अन्तर, निश्छल सुधासनी वाणी।
मधुर सुधास्रावी स्वभावसे आप्यायित सब ही प्राणी॥
सदा दीखती रहती उसको निजमें दोषावलि भारी।
समझ न पाती कैसे, क्यों उससे प्रसन्न सब नर-नारी॥

मेरे प्रति क्यों प्यार उसे है पता नहीं, कैसे इतना ?
पता नहीं मैं स्वयं खिंचा रहता क्यों उसके प्रति कितना ?
चकित, किंतु अति सहज प्रेमकी बनी दिव्य वह पावन मूर्ति।
करती सदा सहज ही मेरे मनमें नव-नव रसकी स्फूर्ति॥
राधा-गुण-गण विमल अमोलक रत्न विलक्षण पारावार।
जितना गहरा जभी डूबता, पाता नव-नव रत्न अपार॥
नहीं पा सका, पा न सकूँगा कभी गुण-गणोंकी मैं थाह।
बनी रहेगी राधा गुण-निधिमें डूबे रहनेकी चाह॥
कैसे मैं क्या-क्या गुण गाऊँ, क्या भेजूँ उसको संदेश।
जीवन ओत-प्रोत सदा है उसमें सभी काल सब देश॥
मेरी उस भोली-भाली प्राणेश्वरिसे यह कहना सत्य।
मधुर तुम्हारी ही स्मृतिमें है जीवन लगा निरन्तर नित्य॥

[३३१]

(राग देशकार—ताल कहरवा)

माधव-सखा मनीषी उद्धव सहज ज्ञान-विज्ञान-निधान।
सदाचार-रत शुचितम नैष्ठिक वाग्मी सुप्रसिद्ध विद्वान॥
हरिसे सुनकर ब्रजकी बातें उनके मन आया आवेश।
कहा—'मिटा दूँगा मैं उनका दुःख वहाँ जा, दे उपदेश'॥
बतलाया हरिने इङ्गितसे उद्धवको गोपिका-महत्त्व।
ज्ञान-गर्व कुछ था, इससे वे समझ नहीं पाये पर-तत्त्व॥
पहुँचे ब्रज, बाबा-मैयासे मिले, देख उनका शुचि स्नेह।
देख बालकोंकी गति उद्धव चकित-थकित हो गये विदेह॥
गलित-ज्ञान-गौरव उद्धव ब्रज-बनिताओंके आये पास।
देख श्याम-रसमय शुचि जीवन मन-ही-मन हो गये निराश॥
'क्या सिखलाऊँगा मैं इनको—प्रेम दिव्यतमकी ये मूर्ति।
नहीं अभाव-कामना कुछ जिसकी हो इनको इच्छित पूर्ति॥

त्यागमयी प्रतिमा ये सचमुच, कृष्ण-प्राण-मनसे संयुक्त।
इनके सम्मुख ज्ञान छाँटना है निश्चय अज्ञान, अयुक्त'॥
तदपि गोपिका-मुख-निःसृत रस-सुधा दिव्यका करने पान।
मचल उठे ज्ञानी उद्धवके प्राण-चित्त-मन दोनों कान॥
अति विनम्र वे बैठ निकट, फिर करने लगे विविध आलाप।
देख-देख गोपीजन-मुख-भङ्गिमा खो गये निजमें आप* ॥

[३३२]

(राग केदारा—तीन ताल)

ऊधौ ! स्याम बड़े ही धूत।
कारौ तन, मनहूँ अति कारौ, कारी सब करतूत॥
मीठी तान सुनाइ मुरलि की, मीठी करि-करि बात।
हँसि-हँसि कै सरबस हरि लीन्हौ, भीतर सौं करि घात॥
बार-बार करि सपथ कह्यौ—'हौं तुम्हरौ, तुम सब मेरी'।
कितव त्याग दीन्हीं नगन्य गनि, बिलपतहू नहिं हेरी॥
मुँह मीठौ, मन भर्‌यौ जहर-सौं, निठुर निरदई पूरे।
जरे घावपर नौन लगावन पठयौ तुमहि धतूरे॥
मति तुम गुन बरनौं उन के, मति करौ हमहिं उपदेस।
गुन-निधि के सब गुन हम जानैं, हिय कठोर, मृदु भेस॥
भयौ बिधाता बाम, तदपि हिय सुरति टरत नहिं टारी।
दरसन-हित नित रोवत-कलपत बयस बीति रहि सारी॥

[३३३]

(राग मलार—तीन ताल)

ऊधौ ! कहा सिखावौ जोग।
हमरो नित्य-जोग प्रियतम सौं, होय न पलक बियोग॥
वे ही हमरे मति-मन-इंद्रिय, वे ही जीवन-प्रान।
वे ही अंग-अंग सब हमरे, सेवैं बिनु व्यवधान॥

---

* यह पद एवं पद संख्या ३४८ एक ही लीलाके अंश हैं।

रहैं सदा हिय माँझ हमारे, भरे परम अनुराग।
रहि न सकैं वे मोहन हमकूँ, कबहूँ त्रुटि-भर त्याग ॥
वे हममें, हम उनमें निसि-दिन, हम वे सदा अभिन्न।
सूर्य-सूर्य की किरन-सदृस हम, रहैं कदापि न भिन्न ॥
नित्य बिहार, नित्य नव लीला, नित नव सुख-संजोग।
जोग-बिधान करौ तुम उनकूँ, जिनके स्याम-बियोग ॥

[३३४]

(राग हमीर—तीन ताल)

ऊधौ ! मोहन स्याम हमारे।
लिपटे रहत अंग-अँग निसि-दिन, होत न कबहूँ न्यारे ॥
मथुरा जाय मिले कुबजा तैं, ये बाहर के खेल।
हमरौ-उनकौ छुटत न कबहूँ, हिय तें हिय कौ मेल ॥
उनके बिना न सत्ता हमरी, छोड़ कहाँ वे जावैं।
वे न रहैं तो हमकूँ जीवित कोई कैसे पावैं ॥
ऊधौ ! तुम्हरे नहीं नेत्र सो, हमहिं स्याम जो दीन्हें।
या तें भरम परे तुम डोलत, ग्यान-जोग-पद लीन्हें ॥
हममें-उनमें दीखत जो कछु कबहुँ बियोग-बिछोह।
रस-वर्धन-हित उदय होत, सो लीला-रस-संदोह ॥

[३३५]

(राग खमाज—तीन ताल)

ऊधौ ! हम क्यौं स्याम-बियोगिनि ?
हम तो स्याम-सुहागिनि नित ही, नित ही स्याम-सँजोगिनि ॥
स्याम हमारे बाहर-भीतर रहत नित्य ही छाये।
काया में, मन में जीवन में, केवल स्याम समाये ॥
रमत सदा हममें वे मोहन, हम नित उनमें रेलैं।
पै वे रमन न, नहिं हम रमनी, एक बने दो खेलैं ॥

मथुरा-गमन, कंस-बध, कुबरी तें जो उनकौ नेह।
हमरे मन न अर्थ कछु इनकौ, नहिं कछु मन-संदेह॥
स्याम नित्य ही हमरे हैं, हमरे ही नित्य रहैंगे॥
बिछुरैंगे न पलक भर हम तें, बिछुरन की न कहैंगे॥
लीला करैं कितहुँ वे, कैसी लीलामय मन-मोहन।
यातें परमाह्लाद बढ़ै नित, देखि हँसी मुख सोहन॥
सब कूँ वे सुख देयँ, सबहि तें वे प्यारे सुख पावैं।
उन के मन की होय सदा, यह अति हमरे मन भावैं॥
हम तें होय न बिलग कबहुँ जब, तब हम क्यों रिस मानैं।
हमरे धन कूँ भले अन्य सब अपनौ ही धन जानैं॥

[३३६]

(राग मधुवंती—ताल धमार)

ऊधौ ! प्रिय तें कहियो जाय।
है बाहर की बात जदपि यह, पै सुनियो मन लाय॥
ऊधौ कूँ पठाय सुधि लीन्हीं, पठई निज कुसलात।
या तें अति सुख भयौ हृदय में, नहिं आनंद समात॥
कंस मारि, बसुदेव-देवकी कूँ जो तुम सुख दीन्हौं।
उग्रसेन कूँ राज दियौ सो सब ही अति भल कीन्हौं॥
वृंदावन तजि बसे जाय मथुरा हो सत्ताधारी।
सुखी देखि बातें तुम कूँ हम सुखी भईं अति भारी॥
जदपि बियोग तुम्हारो दुःसह, हृदयँ आग भभकावत।
पै तुम्हरौ मुख सुखी देख वह रस-सुखमयी सुहावत॥
कुबरी तें करि नेह प्रान-धन ! जो तुम छिन सुख पायौ।
हमरे मन उमग्यौ सुख-सागर भयौ देखि मन भायौ॥
धन्य कूबरी नमन-जोग नित, बनी जु प्रिय-सुख-साधन।
हम तो चरन-सेविका ता की, करैं समुद आराधन॥
सुखी रहौ तुम प्राननाथ ! नित एक यही हम चाहैं।
जो तुम्हरे सुख के कारन हों, तिन कूँ सदा सराहैं॥

[३३७]

(राग भैरवी—तीन ताल)

ऊधौ ! तुम तो बड़े बिरागी।
हम तो निपट गँवारि ग्वालिनीं, स्याम-रूप-अनुरागी ॥
जेहि छिन प्रथम स्याम-छबि देखी, तेहि छिन हृदय समानी।
निकसत नहिं अब कौनेहू बिधि रोम-रोम उरझानी ॥
आठों जाम मगन मन निरखत स्याम-मुरति निज माहीं।
दृग नहिं पेखत अन्य बस्तु जग, बुद्धि बिचारत नाहीं ॥
ऊधौ ! तुम्हरौ ग्यान निरंतर होउ तुमहिं सुखकारी।
हम तौ सदा स्याम-रँग राचीं ताहि न सकहिं उतारी ॥

[३३८]

(राग जैमिनि कल्याण—ताल घुमाली)

स्याम तव मूरति हृदय समानी।
अँग-अँग ब्यापी रग-रग राँची, रोम-रोम उरझानी ॥
जित देखौं तित तू ही दीखत दृष्टि कहा बौरानी।
स्रवन सुनत नित ही बंसी-धुनि, देह रही लपटानी ॥
स्याम-अंग-सुचि-सौरभ मीठी, नासा तेहि रति मानी।
जिभ्या सरस मनोहर मधुमय, हरि-जूठन-रस-खानी ॥
ऊधौ कहत सँदेस तिहारौ, हमहिं बनावत ग्यानी।
कहु थल जहाँ ग्यान कों राखैं, कहा मसखरी ठानी ॥
निकसत नाहिं हृदय तें हमरे बैठ्यौ रहत लुकानी।
ऊधौ ! स्याम न छाँड़त हम कों, करत सदा मनमानी ॥

[३३९]

(राग तिलंग)

ऊधौ ! सो मनमोहन रूप।
जो हम निरख्यौ सदा नैन भरि सुंदर अतुल, अनूप ॥
सिव-बिरंचि-सनकादिक-नारद-ब्रह्म-बिदित, जग जाने।
सुरगुरु-सुरपति जेहि देखन-हित रहत सदा ललचाने ॥

बेद-बुद्धि कुंठित भइ बरनत, 'नेति-नेति' कहि गायो।
सारद-सेस सहसमुख निसि-दिन गावत, पार न पायो॥
जेहि लगि ध्यान-निरत जोगी-मुनि, नित जप-तप-ब्रत-धारी।
तदपि सो स्याम त्रिभंग मुरलिधर सकत न नैन निहारी॥
सोइ प्रभु दधि-माखन-हित नित प्रति आँगन हमरे आये।
तनिक-तनिक दधि-नवनी दै-दै हम बहु नाच नचाये॥
ऊधौ! सोइ माधुरी मूरति अंतर-दृगन समाई।
ग्यान-बिराग तिहारौ बोरौ कालिंदी महँ धाई॥

[३४०]

(राग सारंग—तीन ताल)

[मारवाड़ी बोली]

ऊधो मधुपुरका बासी।
म्हाँरो बिछड्यो स्याम मिलाय, बिरहकी काट कठण फाँसी॥
स्याम बिन चैन नहीं आवै।
म्हाँरो जबसे बिछड्यो स्याम, हीवड़ो उझल्यो ही आवै॥
छाय रही ब्याकुलता भारी।
म्हाँरे स्याम बिरहमें आज, नैनसैं रह्यौ नीर जारी॥
स्याम बिनु ब्रज सूनो लागै।
सूनी कुंज, तीर जमुनाको, सब सूनों लागै॥
गोठ-बन स्याम बिना सूनो।
म्हाँरे एक-एक पल जुग सम बीतै, बिरह बढ़ै दूनो॥
ऊधौ! अरज सुणो म्हाँरी।
थाँरो गुण नहिं भूलाँ कदे, मिलाद्यौ मोहन बनवारी॥

[३४१]

(राग बिहाग—तीन ताल)

ऊधौ! तुम्हरे नैन अधूरे।
पहुँचि न पावत मो उर महँ, जहँ बसत स्याम नित रूरे॥

छिन नहिं छाँड़त उर-मंदिर कौं, समुझि परम निज धाम।
लीला करत बिचित्र बिबिध बिधि पूरित प्रेम ललाम॥
तहँ न प्रबेस करन पावत कोउ बिधि-हर-सुर-सिरमौर।
सुख-दुख, भुक्ति-मुक्ति, नहिं ग्यानाग्यान रहत तेहि ठौर॥
एक अनन्य स्याम-सुंदर कौ वह नित लीला-धाम।
दिब्य देस, तहँ बसौं नित्य हौं उनके सँग अभिराम॥
ऊधौ! जदपि सखा तुम उन के, रहौ निरंतर संग।
अंतरंग पहुँचे नहिं, हरि जहँ क्रीड़त नाना रंग॥
जौ कहुँ हरि कौ रंग-भवन मम हृदय देखि तुम पावौ।
तौ तुम रस-मद-माते ह्वै सब जोग-ग्यान बिसरावौ॥

[३४२]

(राग देश—तीन ताल)

ऊधौ! मो मैं नैकु न नेह।
या तैंई निकसत नहिं निष्ठुर प्रान, छाँड़ि यह देह॥
जात रहे मथुरा वे रथ पर सुफलक-सुत के संग।
फिरि-फिरि चितवत रहे दूरि तैं मो तन बिगत-उमंग॥
फिरि आई मैं जीवित तिन कौं त्यागि, लिएँ तन-प्रान।
प्रियतम-सून्य भवन, नहिं बिदर्‌यौ हिरदै बज्र-समान॥
मन में जीवन-लोभ, देह में अतिसै ममता-मोह।
रहे अभागे प्रान सहत अति दारुन बिथा-बिछोह॥
ऊधौ! तुम ही समुझौ, मेरौ कहाँ स्याम में प्रेम।
दंभ-भर्‌यौ रोनौ यह जानत, नाहिं प्रेम कौ नेम॥

[३४३]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

उद्धव! तुम मुझको किसका यह सुना रहे कैसा संदेश?
भुला रहे क्यों मिथ्या कहकर? प्रियतम कहाँ गये परदेश?

****

देखे बिना मुझे, पलभर भी कभी नहीं वे रह पाते !
क्षणभरमें व्याकुल हो जाते, कैसे छोड़ चले जाते ?
मैं भी उनसे ही जीवित हूँ, वे ही हैं प्राणोंके प्राण।
छोड़ चले जाते तो कैसे तनमें रह पाते ये प्राण ?
देखो—वह देखो, कैसे मृदु-मृदु मुसकाते नन्द-किशोर।
खड़े कदम्ब-मूल, अपलक वे झाँक रहे हैं मेरी ओर॥
देखो, कैसे मत्त हो रहे, मेरे मुखको पङ्कज मान।
प्राण-प्रियतमके दृग-मधुकर मधुर कर रहे हैं रस-पान॥
भ्रुकुटि चलाकर, दृग मटकाकर मुझे कर रहे वे संकेत।
अति आतुर एकान्त कुञ्जमें बुला रहे हैं प्राण-निकेत॥
कैसे तुम भौंचक-से होकर देख रहे कदम्बकी ओर ?
क्या तुम नहीं देख पाते ? या देख रहे हो प्रेम-विभोर ?
हैं ! यह क्या ? सहसा वे कैसे, कहाँ हो गये अन्तर्धान ?
हाय ? क्यों नहीं दीख रहे मुझको मन-मोहन मोद-निधान ?
आँखमिचौनी लगे खेलने क्या वे लीलामय फिर आज ?
दिखा दिया मैंने तुमको, क्या इससे उन्हें आ गयी लाज ?
नहीं, नहीं ! तब क्या वे चले गये सचमुच ही मुझको छोड़ ?
मुझे बनाकर अमित अभागिनि, हाय ! गये मुझसे मुख मोड़ ?
सच कहते हो, उद्धव ! तुम, हो सत्य सुनाते तुम संदेश।
चले गये, हा ! चले गये वे, छोड़ गये रोना अवशेष॥
प्रतिपल जो अपलक नयनोंसे मुझे देखते ही रहते।
सुखमय मुझे देखनेको जो सभी द्वन्द्व सुखसे सहते॥
मेरा दुःख दुःख अति उनका, मेरा सुख ही अतिशय सुख।
वे कैसे मुझको दुख देकर, खो देते निज जीवन-सुख ?
मुझे परम सुख देनेको ही गये मधुपुरीमें, बस, श्याम।
समझ गयी, मैं सुखी हो गयी, निरख सुखद प्रियतमका काम॥

याद आ गयी मुझको सारी मेरी-उनकी बीती बात।
जान गयी कारण, इससे हो रही प्रफुल्लित, पुलकित-गात॥
सद्गुणहीन, रूप-सुषमासे रहित, दोषकी मैं थी खान।
मोह-विवश मोहनको होता मुझमें सुन्दरताका भान॥
न्योछावर रहते मुझपर, सर्वस्व समुद कर मुझको दान।
कहते, थकते नहीं कभी—'प्राणेश्वरि !' 'हृदयेश्वरि !' 'मतिमान'॥
'प्रियतम ! छोड़ो इस भ्रमको तुम'—बार-बार मैं समझाती।
नहीं मानते, उर भरते, मैं कण्ठहार उनको पाती॥
गुण-सुन्दरता-रहित, प्रेमधन-दीन, कला-चतुराई-हीन।
मूर्खा, मुखरा, मान-मद-भरी मिथ्या, मैं मतिमन्द-मलीन॥
मुझसे कहीं अधिकतर सुंदर सद्गुण-शील-सुरूप-निधान।
सखी अनेक योग्य, प्रियतमको कर सकतीं अतिशय सुख-दान॥
प्रियतम कभी भूलकर भी, पर नहीं ताकते उनकी ओर।
सर्वाधिक क्यों ? प्यार मुझे देते अनन्यप्रियतम सब ओर॥
रहता अति संताप मुझे प्रियतमका देख बढ़ा व्यामोह।
देव मनाया करती मैं—'प्रभु ! हर लें सत्वर उनका मोह'॥
मेरा अति सौभाग्य, देवने सुन ली मेरी करुण पुकार।
मिटा मोह मोहनका, अब वे प्राप्त कर रहे मोद अपार॥
पाकर सुन्दर चतुरा किंसी नागरीको वे प्राणाराम।
भोग रहे होंगे अनुपम सुख, पूर्ण हुआ मेरा मन-काम॥
परम सुखवती आज हुई मैं, खुले भाग्य मेरे हैं आज।
सुनकर श्याम-सँदेश सुखाकर, मुद-मङ्गलमय, जीवन-साज॥
नहीं, नहीं ! ऐसा हो सकता नहीं कभी प्रियतमसे काम।
मेरा-उनका अमिट, अनोखा, प्रिय, अनन्य सम्बन्ध ललाम॥
मुझे छोड़ 'वे', उन्हें छोड़ 'मैं'—रह सकते हैं नहीं कभी।
'वे मैं' 'मैं वे'—एक तत्त्व हैं; एक रूप हैं भाँति सभी॥
अरे, अरे उद्धव ! देखो तो पुनः प्रकट हो गये सुजान।
प्रेमभरी चितवन सुन्दर, छायी अधरोंपर मृदु मुसुकान॥

ललित त्रिभङ्ग, कुटिल कुन्तल, सिर मोर-मुकुट, कल कुण्डल कान।
धर मुरली मुरलीधर अधरोंपर हैं छेड़ रहे मधु तान॥
प्रेम-सुधा-सागर राधामें उठतीं बिबिध-बिचित्र तरंग।
देख विमुग्ध हुए उद्धव अति, बरबस विवश हुए सब अङ्ग॥
उदित नवीन प्रेम-सरिता शुभ बढ़ी अचानक, ओर-न-छोर।
भू-लुण्ठित तन धूलि-धूसरित शुचि, उद्धव आनन्द-विभोर॥

[३४४]

(राग ईमन—तीन ताल)

ऊधौ ! सोई प्रीति अनन्य !
सोई जनम सफल, जेहि कबहूँ आवत नहिं सुधि अन्य॥
हमरे प्राननाथ मनमोहन, हम सौं उनकी प्रीति।
तुम का जानौं या रहस्य कौं, निपट अटपटी रीति॥
बिरह-बिकल यह देह दूबरी, दीखति गत-लावन्य।
सुधानंद-सागर हिय लहरत, बिकसित नित तारुन्य॥
कहाँ तिहारौ जोग-ग्यान-सीकर अति तुच्छ नगन्य।
कहाँ अतुल सौन्दर्य-सुधारस-बारिधि सुमधुर धन्य॥

[३४५]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

उद्धव ! राधा-सी अभागिनी, दुःखभागिनी, पापिनि कौन ?
जिसको छोड़, मधुपुरी जाकर माधव मधुर हो गये मौन !
ऐसी प्रिय-वियोगिनी तरुणी मेरे सिवा न कोई और।
प्रिय-बिछोहमें शून्य दीखते जिसको सभी काल, सब ठौर॥
पल-पलमें बढ़ता जाता है दारुण-से-दारुण उर-दाह।
सूखे कण्ठ-तालु सब जिसके, निकल न पाती मुखसे आह॥
प्रियतमके वियोगकी ज्वालामें कैसा भीषण उत्ताप।
कर न सकेगा उसका कोई, कभी कल्पनासे भी माप॥

मेरे मनकी विषम वेदना रहती मनमें ही अव्यक्त।
भाषा नहीं पहुँच पाती है, शब्द नहीं कर पाते व्यक्त॥
कैसे किसे सुनाऊँ, उद्धव! मैं अपने मनकी यह बात।
कौन बोध देकर कर सकता शीतल मेरे जलते गात॥
दुखी न होओ देख मुझे तुम, जाओ, उद्धव! हरिके पास।
झुलसा दें न कहीं ये मेरे तुम्हें घोर संतापी श्वास॥

[३४६]

(राग आसावरी—तीन ताल)

उद्धव! मुझमें तनिक नहीं है, प्रियतमके प्रति सच्चा स्नेह।
इसीलिये ये नहीं निकलते निष्ठुर प्राण छोड़कर देह॥
रथपर चढ़े जा रहे थे वे मथुरा जब अक्रूरके सङ्ग।
फिर-फिर देख रहे थे मेरी ओर दूरसे विगत-उमङ्ग॥
मैं जीवित ही लौटी प्रियतम-शून्य भवनमें लेकर प्राण।
हुआ न हृदय विदीर्ण उसी क्षण मेरा पामर वज्र समान॥
मनमें भरा लोभ जीवनका तनमें अतिशय ममता-मोह।
इसीलिये ये प्राण अभागे सहते दारुण व्यथा-विछोह॥
दम्भपूर्ण यह रोना-धोना है सब मेरा करुण विलाप।
भोले माधव समझ नहीं पाते हैं मेरे मनका पाप॥
प्रियतमके वियोगमें भी मैं चला रही निज योग-क्षेम।
उद्धव! तुम ही समझो मेरा कहाँ श्यामसुन्दरमें प्रेम॥
सत्य, हृदय छिदता है, होते नहीं किंतु उसके दो टूक।
जिससे विरह-मुक्त हो जाती, मरकर मन हो जाता मूक॥
विरह-विकल मूर्छा होती है, पर न चेतना करती त्याग।
अन्तर सदा जलाती रहती, भीषण बढ़ती उरमें आग॥
मेरे प्रियतमके समीपसे, आये हो उद्धव! बड़भाग।
कुशल, और संदेश सुनाओ यदि भेजा हो कर अनुराग॥

[३४७]

(राग जौनपुरी—तीन ताल)

राधे! क्या संदेश सुनाऊँ, क्या कहलाऊँ मनकी बात।
छिपा नहीं तुमसे कुछ भी जब घुला-मिला रहता दिन-रात॥
नित्य अहैतुक हम दोनोंका, प्रिये! प्रेम यह अति पावन।
नित्य-निरन्तर बढ़ता रहता, सहज मधुरतम मन-भावन॥
नहीं घटा सकते इसको हैं, कैसे भी शत-शत अपराध।
अनुनय-विनय—विषय-सुख मिथ्या नहीं बढ़ा सकते कर साध॥
निष्कारण, निरुपाधिक, निर्मल, नीरव, नित्य इयत्ताहीन।
अपरिमेय, अनवद्य, अनिर्वचनीय, अनन्त, अकाम, अदीन॥
अति शुचि गुरुतर प्रेम दिव्य यह दुर्लभ सुधा-विनिन्दक स्वाद।
वाणीमें ला कैसे कर दूँ, इसे अशुचि, लघु मैं अस्वाद॥
मथुरा में रहकर रहता मैं प्रिये तुम्हारे संतत पास।
इसी प्रेमसे बँधा, न पाता मैं अन्यत्र कदापि सुपास॥
पर मैं करता नित्य प्रेममें अपने अति अभावका बोध।
राधे! बढ़ते ऋण अपारका कभी न कर पाऊँगा शोध॥

[३४८]

(राग बिहाग—तीन ताल)

उद्धव! सत्य सुनाया तुमने, मुझको प्रियतमका संदेश।
घुले-मिले रहते मुझमें वे प्रियतम सर्व काल, सब देश॥
पर मैं प्रेमशून्य रस-वर्जित रसमय दिव्य चक्षुसे हीन।
उन्हें निरन्तर रहते भी मैं देख न पाती मलिना दीन॥
कभी विरह-व्याकुल हो जाती कर उठती तब करुण पुकार।
'हा प्राणोंके प्राण! दयित हे! दीनदयार्द्र-हृदय सुकुमार॥
यमुना-पुलिन नाचते सुन्दर नटवर वेश धरे घन-श्याम।
नहीं दिखाओगे क्या दुःखिनिको अब वह मुख-चन्द्र ललाम'॥

कोटि-कोटि विधु-सुधा मधुर हो सहसा उदय श्याम रस-सार।
लगते सतत अमित बरसाने शीतल परम सुधाकी धार॥
युगपत् बाह्याभ्यन्तर होता उनका मधुर मिलन अश्रान्त।
विरह-यन्त्रणाकी सब ज्वाला हो जातीं तुरंत ही शान्त॥
उठतीं प्रेम-सुधा-रस-सागरमें उत्ताल अनन्त तरंग।
हो जाते प्रफुल्ल सब अवयव पाकर प्रिय आलिङ्गन-सङ्ग॥
उठता नाच प्रेम-सागर तब बढ़ जाती रस-राशि अपार।
विस्मृत हो जाता तब सब कुछ कौन, कहाँ, शरीर-संसार॥
इसी समय सहसा फिर मनमोहन हो जाते अन्तर्धान।
जल उठतीं फिर वही विरहकी ज्वाला, अति मन होता म्लान॥
फिर मनमें आती—मैं क्यों हूँ जलती उनकी करके याद?
नहीं योग्य मैं उनके किंचित् दोषमयी नित भरी विषाद॥
रूप-शील-गुणहीन कहाँ मैं, कहाँ रूप-गुण-शील-निधान!
कहाँ प्रेम-सागर सुविज्ञ वे, कहाँ प्रेम-विरहित अज्ञान॥
उद्धव! इसी दुःख-सुख-सागरमें मैं रहती नित्य निमग्न!
इतना है संतोष, वृत्ति अविरत रहती उनमें संलग्न॥
सुनते ही उद्धवके अन्तरमें उमड़ा अतिशय अनुराग।
पड़े मुग्ध हो श्रीराधा-चरणोंमें तुरत चेतना त्याग॥

[३४९]

(राग देशकार—ताल कहरवा)

कहने लगे राधिकासे फिर कर अभिनन्दन आदर-मान।
"हरिने भेजा मुझे आपको देने यह संदेश महान॥
गये साथ अक्रूर चचाके मथुरा कंस-यज्ञके हेतु।
राज-रजक बधकर पहले सब नूतन बसन, उड़ा यश-केतु॥
धनुष-भङ्ग कर, मारे मुष्टिक तथा मल्ल-चाणूर विशाल।
गज कुवलया कदनकर, मारे मामा कंस वीर विकराल॥

माता-पिता देवकीजी-वसुदेव हुए फिर कारामुक्त।
प्रणत हुए उनके श्रीचरणोंमें हरि आदर-श्रद्धायुक्त॥
उग्रसेनका किया कृष्णने फिर सिंहासनपर अभिषेक।
त्राण किया द्विज-साधुवर्गका, रखी धर्मकी पावन टेक॥
अज, अविनाशी, अखिल भुवनपति, ब्रह्म परात्पर सर्वाधार।
दुष्कृत-नाश, साधु-संरक्षण-हित लेकर मानव अवतार॥
करते धर्म-स्थापना वे, पर रहते सदा स्वमहिमा-लीन।
चिदानन्दघन घट-घटवासी सम माया-ममतासे हीन॥
कहलाया है—'मोह त्याग कर करो निरन्तर मनमें ध्यान।
ब्रह्म रूपका जो व्यापक निर्गुण निरुपाधि नित्य निर्मान'॥''

(सोरठा)

सुन उद्धवकी बात विस्मय-विथकित राधिका।
हर्ष-प्रफुल्लित गात बोलीं—मधुर सरल वचन॥

(राग देशकार—ताल कहरवा)

'उद्धवजी! हम समझ न पायीं आप सुनाते किसका हाल।
कौन ब्रह्म व्यापक निर्गुण निरुपाधि कुवलयाके हैं काल॥
आकर श्रीअक्रूर ले गये जिनको मथुरा अपने सङ्ग।
रजक-प्राणहर, बसन पहनकर, किया जिन्होंने धनुका भङ्ग॥
होंगे कोई वीर जिन्होंने मार दिये मुष्टिक-चाणूर।
वध कर कंस नरेश किये वसुदेव-देवकीके दुख दूर॥
नहीं जानते उद्धवजी! वे प्रियतम श्याम नित्य मनचोर।
रहते आठों याम हमारे भीतर-बाहर शुचि सब ओर॥
ललित त्रिभङ्ग-अङ्ग सुषमा-निधि गुण-निधि शुचि सौन्दर्य-निधान।
नव-नव नित माधुर्य, मुरलिधर, मोर-मुकुटधर, शोभा-खान॥
गुञ्जमाल, लकुटी कर शोभित, अधरोंपर मधुमय मुसकान।
वन-वन विचरण कर, देते वे जीवमात्रको शुचि रस-दान॥

आते सदा घरोंमें प्यारे, खाते वे नित माखन चोर।
देख-देख उनकी लीला हम रहतीं नित आनन्द-विभोर॥
कालिन्दीके कूल खेलते मधुर मनोहर रचते रास।
निभृत निकुञ्जोंमें लीला कर मधुर बढ़ाते अति उल्लास॥
नहीं जानतीं हम वे क्या हैं? ब्रह्म परात्पर अज अखिलेश!
हम तो नित्य देखतीं पातीं उनको निज प्रियतम हृदयेश!
श्रीवसुदेव-देवकीके हैं कौन सुपुत्र तेज-बल-धाम?
नन्द-यशोदाके लाला हैं मधुर हमारे तो घनश्याम!
वे न छोड़ सकते हैं हमको, हम न छोड़ सकतीं पल एक।
रहते सदा मिले वे प्रियतम, भूल सभी कुछ त्याग-विवेक॥
नहीं चाहतीं भोग-मोक्ष कुछ, करतीं नहीं धारणा-ध्यान।
जब प्रियतमका सङ्ग प्राप्त है नित्य मधुरतम अव्यवधान॥
प्रियतम श्याम हमारे वे कर रहे यहींपर नित्य निवास।
किनका क्या संदेश सुनें हम, हों फिर किसके लिये उदास?
किसका ध्यान करें? क्यों? हम क्यों जानें किसी ब्रह्मका रूप।
मन-छाये—तन-मिले निरन्तर जब प्राणप्रिय श्याम अनूप॥'
सुनकर राधाकी रस-वाणी पाकर पावन प्रेम-समीर।
ज्ञान-गर्व उड़ गया, हो उठे उद्धव सहसा प्रेम-अधीर॥
'कैसा अनुपम त्याग परम है, कैसा परम दिव्य अनुराग।
कैसी प्रिय-उपलब्धि सहज है, नहीं कहीं भी कुछ भी दाग॥
धन्य-धन्य इन गोपी-जनको, सफल इन्हींका जीवन श्रेष्ठ।
बने प्रेमवश सर्वात्मा भगवान् स्वयं हैं जिनके प्रेष्ठ॥
श्रुतियाँ ढूँढ़ रहीं नित जिसको पातीं नहीं कहीं संधान।
उस दुर्लभ मुकुन्द-पदवीको पा प्रत्यक्ष भजा अम्लान॥
दुस्त्यज स्वजन-समूह—आर्य-पथका कर त्याग बिना आयास।
पाया माधवके शुचि हृदय-भवनमें इसीलिये शुभ वास॥

मेरे लिये यही सर्वोत्तम लाभ, यही है परम श्रेय।
पड़ती रहे चरण-रज मेरे मस्तकपर इनकी—यह ध्येय॥
बन जाऊँ मैं वृन्दावनमें लता-गुल्म-औषधि सामान्य।
मिलती रहे सतत मुझको इनकी पद-धूलि नित्य सुर-मान्य॥
दिव्य मनोरथ कर यों मनमें कर राधा-पदमें प्रणिपात।
चले नमन कर गोपी-जनको उद्धव हर्षित-पुलकित गात॥

[३५०]

(राग ललित—तीन ताल)

माधव दशा सुनाऊँ कैसे मैं उस प्रेममयीकी आज।
जुड़ा वहाँ है विषम विरहकी व्यथा-व्याधिका सभी समाज॥
रोती, करती करुणा-क्रन्दन, कर उठती वह हाहाकार!
करती अति विलाप कातर हो—'चले गये तुम प्राणाधार॥
रुग्णा मरणासन्ना आज तुम्हारी यह सेविका सुजान।
अभी बचाओ, परम महौषध अधरामृतका देकर दान॥
कभी देखती निर्निमेष हो, उन्मत्ता-सी नभकी ओर।
'हा प्रियतम!' पुकार कर उठती, 'हा! हा! प्यारे नन्द-किशोर'॥
कभी बैठती ध्यान-मग्न हो, हो जाते दोनों दृग बंद।
लग जाती समाधि शुचि अनुपम, होते सभी अङ्ग निस्पन्द॥
बनती वह वियोगिनी, योगिनि, धरकर मौन, त्याग व्यवहार।
बैठी रहती उदासीन एकान्त शून्य अविरत अविकार॥
खान-पान-तन-वसन—सभीकी स्मृतिका कर अतिशय उच्छेद।
एक अनन्य वृत्तिमें रहती नित्य निमग्न भूल सब भेद॥
कभी दौड़ती धैर्य छोड़कर व्याकुल हो अति भुजा पसार।
आलिंगनके लिये, न पाकर रोने लगती कर चीत्कार॥
दोनों कर कपालपर रखकर विरहानलसे हो संतप्त।
बार-बार मूर्छित होती वह, चलता दीर्घ श्वास उत्तप्त॥

निद्रारहित बीतती रजनी, क्षीण धूसरित-धूलि सुअङ्ग।
हृदय-दाह दारुण, अति पीड़ित दंशित द्वारा विषम भुजंग॥
श्वास निदाघ, नेत्र पावस ऋतु, बदन शरद, पुलगोद्गम शीत।
बुद्धि शिशिर, चन्दन-तन मधु, षड्ऋतु, राधा-तन प्रकट पुनीत॥
कोमल कमल-सेज शीतल, हो उठी तप्त राधा-तन-स्पर्श।
हरी लता जल गयी स्पर्श पा नासा-पवन-अनल दुर्धर्ष॥
इसी भाँति विरह-ज्वर पीड़ित, हैं ब्रजकी गोपिका तमाम।
कितने तुम निष्ठुर निर्दय हो, मिथ्या धरे मधुरतम नाम!
कर सर्वस्व समर्पण तुमको, पीड़ा-निधि-निमग्न वे आज।
व्यथित न हो उनकी पीड़ासे, भोग रहे मथुराका राज॥
जाओ शीघ्र धैर्य दो मिलकर, दो तुरंत शुचि जीवन-दान।
करो बिलम्ब न एक पलक अब रक्खो त्याग-प्रेमका मान॥

× × ×

करुण बचन सुनते ही उद्धवके हरि हुए व्यथित अति दीन।
सिहर उठा सहसा मङ्गल-वपु, विधु-निन्दक मुख-चन्द्र मलीन॥
रुका कण्ठ, कुछ बोल न पाये, आँखें लगीं बहाने नीर।
बढ़ा विरह-दावानल दारुण, लगा दहकने दिव्य शरीर॥
बोले गद्गद गिरा धैर्य धर, दीर्घकालतक रहकर मौन।
'उद्धव! मेरी विषम व्यथाको, है जग सुननेवाला कौन?
बता नहीं सकता मैं, कैसा विषय हृदयमें दारुण दाह।
कैसी मर्मवेधिनी पीड़ा, कैसी प्रबल मिलनकी चाह॥
सुधा-सुमधुर सरस सुन्दर सुस्निग्ध राधिकाके मधु बोल।
अतुलनीय अनवद्य नित्य सौन्दर्य, मधुर माधुर्य अतोल॥
सरल हृदय, सेवा, सहिष्णुता, त्याग, समर्पण, दैन्य अनूप।
भूल नहीं सकता मैं, अगणित-गुण-गण-संयुत राधा-रूप॥
मधुर मनोहर महिमामय वह रसमय शुचितम रास-विलास।
पावन विविध विनोद सुधा-रसपूर्ण मधुर मुख-पङ्कज-हास॥

परम मधुरतम निभृत निकुञ्जोंका वह शुचि आनन्द-विहार।
भूल नहीं सकता पल, होती मधुर-स्मृति मन बारम्बार॥
सर्वत्याग कर, मनमें केवल रखती मेरा सुख-अभिलाष।
इसी हेतु ये जीतीं जगमें, करतीं नित वृन्दावन-वास॥
खान-पान-परिधानाभूषण, जगके भोग-त्याग-व्यवहार।
मेरे ही सुख-हेतु एक, वे करतीं सदा सभी आचार॥
त्यागमयी गोपीजन-मण्डित उस राधाका विषम वियोग।
प्रतिपल है संतप्त कर रहा, चाह रहा मन नित संयोग॥
पर उद्धव! यह विप्रलम्भ ही करता अति सुखका संचार।
मिलनानन्द-रसामृतका यह करता शुचि विचित्र विस्तार॥
प्रेम-राज्यमें विप्रलम्भ-सम्भोग उभय रस नित्य स्वतन्त्र।
विविध रूप-भावोंमें नित करते रहते संयोग विचित्र॥
किंतु साथ ही रहते हैं ये आश्रय एक दूसरेके सब काल।
अविनाभाव बने, सरसाते नव-नव रस-पीयूष रसाल॥
किंतु तत्त्वतः बने, मेरा-उसका रहता नित्य सतत संयोग।
एक बने दो लीला करते नित्य वियोग, नित्य सम्भोग॥
आना-जाना कहीं कभी भी रखता नहीं तत्त्वतः अर्थ।
मिले हुए हैं सदा, सर्वथा, नित्य अभिन्न सत्य परमार्थ॥
देख कहीं पाते तुम उद्धव! हम दोनोंका तात्त्विक रूप।
सदा एक-तन सदा एक-मन, सदा एक-रस तत्त्व अनूप॥
मिट जाते संदेह सभी, तुम पाते भगवदीय आनन्द।
राधा-शरण-ग्रहण कर अब भी, प्राप्त करो इसको स्वच्छन्द॥

[३५१]

(राग खमाज—तीन ताल)

प्यारे कान्ह सखाकी मीठी स्मृतिमें सखा सभी लवलीन।
रहते सदा सोचते बात उसीकी, केवल मन अति दीन॥

डूबा अति आश्चर्य सोचता एक चिबुकपर अँगुलि टेक।
शोक-सिन्धु डूबा, विवेक तज, आँखें फाड़ देखता एक॥
आशा एक दिलाता, उड़ता, नभमें देख विहग-समुदाय।
कहता एक जियें कैसे हम हाय! कृष्ण-विरहित असहाय॥
खड़ा लकुटिया टेक भूमिपर, एक अपार विषाद-विभोर।
दीन-हीन मुख मलिन सखा सब आज बिना मोहन मन-चोर॥

[३५२]

(राग भूपाली—तीन ताल)

स्याम! तुम परम निठुर हम जाने।
कबहुँ न सुरति करत प्रेमिन की, करत करम मन-माने॥
हौं ब्रज जाय देखि आयौ निज आँखिन सब करतूत।
चित चुराय तजि आए रोवत-बिलपत, ऐसे धूत॥
ब्रज-जुबतिन कै देख्यौ मैंने स्रवत नयन नित नीर।
छिनहूँ भूलि न सकौं लाड़िली कौ अति छीन शरीर॥
जो तुम्हरे जिय नैक प्रेम है, जो उर करुना-लेस।
तौ ब्रज जाय, मिलौ उन सौं पुनि, तजि यह माथुर भेस॥

[३५३]

(राग विहाग—तीन ताल)

तुम सम निठुर दूजौ कौन?
राधिका-सी प्रेम-पुतरी रुदित छाड़ी भौन॥
बिंधि गयौ नहिं हियौ तेहि छिन कुटिल, बज्र-कठोर।
बीच धारा नाव तजि दइ, लै गए नहिं छोर॥
देखि आयौ, मलिन धूमिल स्वर्न-तन कृस छीन।
बिकल तड़पत दीन दिन-निसि, जल-रहित जिमि मीन॥
तजे भूषन, सकल सुबसन, अंगराग-सिंगार।
सिथिल बेनी, सुमन बिखरे, केस रूखे झार॥

बोध नहिं कछु रात-दिन कौ, नहीं जल-थल-ग्यान।
आत्म-पर, मानव-अमानव की न कछु पहचान॥
'हा दयित! हा हृदय-बल्लभ! हाय प्रानाधार!
अश्रु-धारा बहत अबिरत, करत करुन पुकार॥
बिरह-ज्वाला जरत मन, तन दहत दारुन पीर।
जरी परसत कुसुम-सज्या साँस-अनल-समीर॥
रस-रहित उर भयौ, सूख्यौ तप्त आँसू-स्रोत।
रुकत पुनि-पुनि प्रान, पुनि छिन पुनर्जीवन होत॥
'सकल सुख कारन' कहावौ, 'जगत-जीवन' नाम।
प्रान अबलनि के हरत, यह कहा तुम्हरौ काम॥
धाइ पहुँचौ बेगि, माधव! करौ जीवन-दान।
मिलि अबाधित बिरह-पीड़ा हरौ सपदि महान॥
भई कोउ न राधिका-सी, है, न आगें होय।
प्रेम-मूरति भजति तुम कौं लोक-बेदहि खोय॥

[३५४]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

मैं छोड़, प्रिये! तुमको, मथुरामें आया।
तुमपर दुख अति घनघोर घटा बन छाया॥
तुम प्रतिपल मन-ही-मन हो अविरत रोती।
मिथ्या ही खाती, मिथ्या निद्रा सोती॥
तुम एक पलक भी नहीं चैन चित पाती।
अंदर-ही-अंदर घुलती नित बिलखाती॥
भीतर जो भीषण अग्नि तुम्हारे जलती।
वह बिना जलाये नहीं किसीसे टलती॥
छू जाय किसीकी वृत्ति भूलसे जाकर।
जल जाती वह भी ताप भयानक पाकर॥

तुम पीड़ा अन्तरकी न किसीसे कहती।
ऊपरसे हँसती-सी दुख दारुण सहती॥
मैं जान गया यह दुःख तुम्हारा, प्यारी!
है भड़क उठी इससे उर ज्वाला भारी॥
था पहलेसे ही अति वियोग-दुख दुस्सह।
अब दोनोंने मिलकर धर दी तह-पर-तह॥
मेरी क्या दशा तुम्हें, प्यारी! बतलाऊँ।
कैसे भीषण संताप तुम्हें दिखलाऊँ॥
बढ़ रही सुदारुण पल-पल उरकी ज्वाला।
है पहनी जलते अङ्गारोंकी माला॥
कैसे तुमको धीरज दूँ मैं समझाऊँ।
जब अपनेको ही नित्य धधकता पाऊँ॥
पर उस दिन मैंने देखी बात अनोखी।
तुम बैठी मेरे पास उल्लसित चोखी॥
हँस बोली—'प्यारे! क्यों उदास तुम होते?
तुम तो नित मेरे साथ जागते-सोते॥
दिन-रात कदापि न होते मुझसे न्यारे।
करते तुम आठों याम काम सँग सारे॥
मैं रहती तुमको नित्य किये आलिङ्गन।
तुम कभी न होते विलग पलक, जीवनधन!
रोती मैं बाहर, हूँ अंदर नित हँसती।
मेरी बढ़ती रहती शुचि रसकी मस्ती॥
प्रिय! दृष्टि लौकिकी में तुम भले न आओ।
पर रहो नित्य ही पास, न पलभर जाओ॥
बिलसो ऐसे ही नित्य, मुझे बिलसाओ।
तुम हँसो, प्राणधन! मुझको सदा हँसाओ॥

हो कभी न पलक-वियोग तुम्हारा-मेरा।
दोनोंका गोपन रहे एक ही डेरा'॥
हँस उठा हृदय, यों सुनकर प्यारी वाणी।
हँस उठे सभी, मुरझाये थे जो प्राणी॥
तबसे तुम मेरे पास सदा ही रहती।
मीठा ही करती, सब मीठा ही कहती॥
विष-रहित हुआ दोनोंका सुखमय जीवन।
नित खिले रहेंगे अब तो अपने तन-मन॥
हम दोनों हैं नित एक, वियोग न सम्भव।
है, हुआ, न होगा, कभी विलग प्रेमार्णव॥
है लीला यह संयोग-वियोग दिखाती।
ये प्रेमोदधिमें रस-लहरें लहराती॥

[३५५]

(राग दरबारी—तीन ताल)

जबसे सुना सुधामय सुन्दर 'श्याम' नाम अतिशय सुख-धाम।
हुए मुग्ध मन-बुद्धि-प्राण सब चलने लगा नाम अविराम॥
नाम-माधुरीने प्राणोंमें कर दो जाग्रत् दर्शन-प्यास।
हुआ चित्त उत्कण्ठित आकुल चला सुतप्त दीर्घ निश्वास॥
स्नेहमयी शुचि सखी विशाखा देख राधिकाको बेहाल।
चित्रकला-निपुणा, अङ्कित कर लाई श्याम-चित्र तत्काल॥
निरख चित्र अति मधुर मनोहर नख-शिख रूप परम रमणीय।
मानो मिले मदन-मद-हर मन-मोहन प्राणकान्त कमनीय॥
हुई हर्षविह्वल विस्मित-मन करने लगी गँभीर विचार।
नहीं त्रिकाल—तीन लोकोंमें ऐसा दिव्य रूप रस-सार॥
जिसके क्षुद्र एक कणको ले सुमनोंका सारा संसार।
सबको सुख दे रहा अमित, कर रूप-माधुरीका विस्तार॥

जिसके कोटि अंशका लेकर एक अंश शुचि नीलाकाश।
विश्व-विमोहित करता विधु-मुख भरकर रूप-सुधामय हास॥
जिसकी एक बूँद-सुषमासे प्रकृति-सुन्दरी कर शृङ्गार।
अगणित विश्व सजाती रहती संतत विविध विचित्र प्रकार॥
अतल रूप-सागर जिसमें नित उठती अनन्त तरंग।
है न्यौछावर जिसके एक-एक कणपर नित अमित अनङ्ग॥
कैसे किया सुअङ्कित उसको लघुतम पटपर सखिने आज?
कैसे एक-एक अवयवपर सजा सकी वह सुन्दर साज?
कैसे द्रवि तन हृदय हो गया? कैसे रहा धैर्यका बन्ध?
कैसे खसी न हस्त-तूलिका पाकर श्याम-रूप-सम्बन्ध?
कैसे क्षुद्र तूलिकामें वह आया रूप-समुद्र महान?
मन-अतीत नित बुद्धि-अगोचर कैसे उसे सकी सखि जान?
जाग उठी सुस्मृति, उर अन्तर लगा दीखने रूप ललाम।
जो चिर अङ्कित था, अब प्रकटी पूर्ण मिलन-इच्छा अभिराम॥
पर, न हो सकी पूर्ण सदिच्छा, अमित यन्त्रणा बढ़ी तुरन्त।
बड़वानल अति विषम जल उठा, उठी हृदयमें हूक दुरन्त॥
हुआ युगों-सा एक-एक पल रहा न रंचक धैर्य-विवेक।
सूखा हृदय, अश्रु-दृग सूखे, एकमात्र प्रिय दर्शन-टेक॥
सहसा प्रगट हो गये प्रियतम अनुपम मधुर लिये मुसकान।
चकित-प्रहर्षित लगी देखने, उमड़ा सुख-समुद्र निर्मान॥

[३५६]

(राग ईमन—तीन ताल)

चित्रपट देखत भूली भान।
कैसौ रूप मनोहर-मंजुल, सुंदरता की खान॥
आँकि सकें सखि! छबि यह कैसें, कैसें राखों धीर।
कैसें रही तूलिका कर, जब उर उपजी तसबीर॥

श्रीप्रिया-प्रियतम-युगल
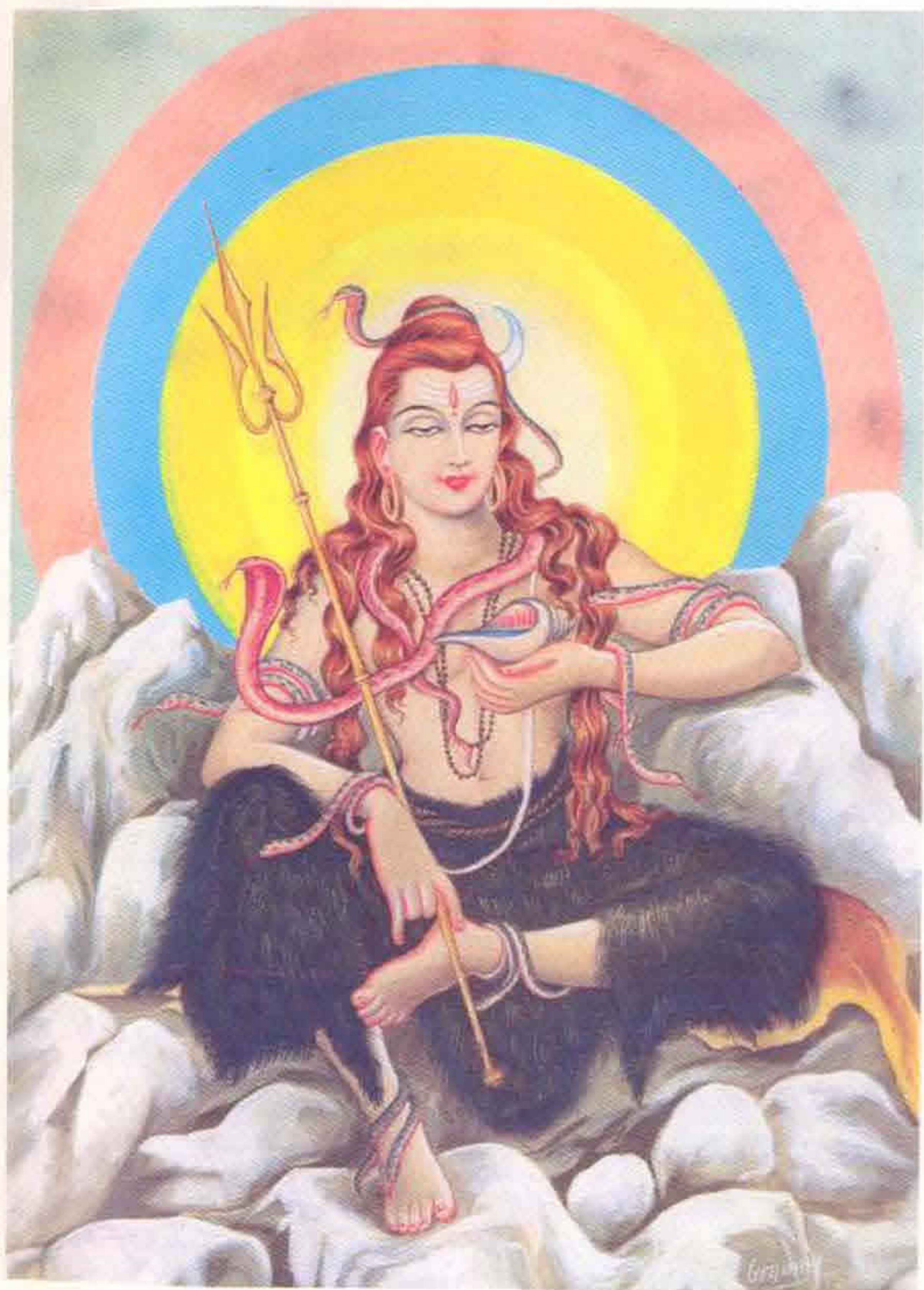
भगवान् श्रीशंकर

सखि ! मैं कैसें कहूँ हृदै की, कलित कसक की बात।
छिन आमोद, जरत छिन हिय, अति विषम जरनि दिन-रात ।।
चित्र देखि जब भई दसा यह, भयौ सहज सब त्याग।
निरखूँ नैन चित्रवारे कौं, कब जागैंगे भाग ।।
कल नहिं परत एक पल मोकूँ, भए चित्र-छबि नैन।
दरस-परस की लगी चटपटी, छायौ मन सुचि मैन ।।

[३५७]

(राग खमाच—तीन ताल)

श्रीमती मूरति अङ्कित करती।
मधुर तूलिका कोमल करमें ले नाना रँग भरती ।।
विविध भाँति अति मधुर मनोहर रूप बनाती जाती।
तन्मय मन, दृग-दृष्टि-अचञ्चल, उमँग न हृदय समाती ।।
नव-नीरद-शुचि-नील-श्याम तनु उज्ज्वल आभा आँकी।
भाल विशाल तिलक मृग-मदके, भ्रुकुटि मनोहर बाँकी ।।
सरस नयन शोभाके आकर मोहन आँजे अञ्जन।
अतिशय चपल, चोर मन-धनके, सुर-ऋषि-मुनि मन रञ्जन ।।
मुख मुसकान, नासिका नीकी,कानन कुण्डल झलकैं।
केश कृष्णघन घूँघरवारे, इत-उत बिथुरीं अलकैं ।।
मणिमय मुकुट मयूर-पिच्छ-युत सुन्दर सिर पै साजै।
कम्बुकण्ठ बनमाल विराजै रत्न-हार उर राजै ।।
पीत वसन दमकत दामिनि-सो कटि किङ्किणि अति सोहै।
निरखि-निरखि निज अङ्कित मूरति भामिनि निज मन मोहै ।।
लई तूलिका खींचि अचानक भई सशङ्कित भारी।
चरण उभय आँकि नहिं पियके, गहरी बात विचारी ।।
भाजि जायँ जीवनधन पाछें जो चरणनके पाये।
तो फिर कहा बनैगो, मेरो, यही सोच उर छाये ।।
ठाढ़े निरखि रहे मनमोहन प्रीति-रीति अति पावन।
प्रकट भये, बिहँसे, पुलकित तनु भई, देखि मनभावन ।।

[३५८]

(राग विलास—तीन ताल)

कृष्ण-सुखैक-वासना केवल कृष्ण-सुखैक-रूप सब काल।
काम-भोग-वर्जित स्वाभाविक राधा-हृदय रहित जग-जाल॥
महामोह-तम-रजनी-विरहित प्रकट प्रेम-रवि-ज्योति अपार।
कृष्ण-स्मरणपूर्ण शुचि जीवन अर्पित सहज अखिल आचार॥
प्रियतम परम श्यामकी स्मृतिमें हुई राधिका अति तल्लीन।
स्वयं हो गयी 'स्मृतिरूपा' वह अपनी सुधिसे हुई विहीन॥
श्यामा, श्याम, श्यामकी स्मृति—इस त्रिपुटीका हो गया अभाव।
रहे नहीं आस्वाद्यास्वादन, रहा न आस्वादकका भाव॥
स्मृति, स्मृतिकर्ताके अभावमें उपजा मनमे भाव नवीन।
विस्मय परम हुआ जब दीखा, खाली हृदय सहज स्वाधीन॥
जानें कैसे दीं दिखलायी, भाव भरी आँखें पल एक।
पता नहीं क्यों, जाग उठा कुछ, हार चला सब बुद्धि-विवेक॥
दीखा नेत्र-भावमें उसको रसका बहता विमल प्रवाह।
उसके प्रति आया द्रुत गतिसे, भरा शून्य उर अमित अथाह॥
उदय हुई जिज्ञासा, थे ये किसके नेत्र सुधा-रस-पूर।
रस-वन्यासे किया उसे अति विवश, विचित्र मधुर मद चूर॥
बसे नेत्र, नेत्रोंके द्वारा, आकर उर-मन्दिर तत्काल।
बता दिया उन नेत्रोंने, वे नेत्रवान् हैं श्रीनँदलाल॥
टूट गया तब मनका बन्धन, बरबस तुरत हुआ अभिसार।
कहाँ, कौन, वह क्यों जाती है, रहा न इसका तनिक विचार॥
चली तीरकी तरह लक्ष्यपर मिला स्वयं प्रियका संधान।
पहुँच गयी वह प्रिय चरणोंमें देखे चरण-जलज रस-खान॥
देख मृदु स्मित, दृष्टि-भङ्गिमा, चित्त-वित्तहारी भ्रू-भङ्ग।
बाह्य चेतना गयी, पड़ी प्रिय अङ्क, शिथिल सब अवयव-अङ्ग॥

सिर कर धर, कर पवन, कराया प्यारीको प्रियतमने चेत।
सहमी, उठी दूर जा बैठी, देख रही माधुर्य-निकेत॥
देख वदन मोहन रसवर्षी हुआ हृदय साहस-संचार।
बोली मधुर विनम्र वचन शुचि बनकर स्वयं 'दैन्य' साकार॥
मिटे अहंता-ममता, आशा-तृष्णा, भोग-वासना-काम।
हो समत्व सर्वत्र सर्वदा मिटे द्वन्द्वका भेद तमाम॥
रह न जाय जब कल्पित-सा भी भुक्ति-मुक्ति-इच्छाका लेश।
परम शान्तिका अनुभव हो जब, तब खाली हो हृदय अशेष॥
जिसका हृदय हो गया खाली पूरा, यों न रही कुछ चीज।
उसमें पड़ता पावन रसमय 'प्रिय-सुख-सुखी प्रेम' का बीज॥
पा वह प्रेमी जन-मनके मधुमय निर्मल रस-जलका सङ्ग।
बचनावलि-अनुकूल-पवन पा बीज बदलता अपना रङ्ग॥
होता वह अंकुरित, पल्लवित, पुष्पित, देता मधु फल-दान।
मिलता परमाह्लाद मुझे, मन बढ़ता अति लालच निर्मान॥
इसीलिये मैं सदा चाहता रहे नित्य वह मेरे पास।
पलभर, तिलभर भी न परे हो, रस-समुद्र आह्लाद-निवास॥
केवल परमाह्लाद-लालसा ही न मुझे करती लाचार।
प्रेम वही बन जाता मेरे जीवनका केवल आधार॥
पर उस रसका उदय कठिन अति, नहीं सहज सम्भव संसार।
हार गये ऋषि-मुनि, योगी-त्यागी, सुरपति, बिधि, मर्दनमार॥
राधे! तुम स्वरूपतः ही हो सहज उसी रसकी भंडार।
तुममें सदा उमड़ता रहता दिव्य प्रेम-रस-पारावार॥
रखती तुम मुझको जीवन, मन-तन-धन दिव्य गुणोंसे युक्त।
देकर निज सर्वस्व बढ़ाती महिमा नित्त सुषमा-संयुक्त॥
मेरे जीवनकी आशा तुम, मेरी एक सहाय उदार।
मेरे प्राणोंकी स्पन्दन तुम, परम हृदय-गति प्राणाधार॥

न हो 'दाहिका' शक्ति अग्निमें, न हो सूर्यमें ताप-प्रकाश।
अग्नि-सूर्य तब नहीं कहाते हो जाता अस्तित्व-बिनाश॥
इसी भाँति मैं, शक्ति-राधिका! हो जाऊँ यदि तुमसे हीन।
रहे न कुछ भी सत्ता मेरी, बन जाऊँ अस्तित्व-विहीन॥
शक्तिमान् मैं बना तुम्हींसे, तुम्हीं नित्य हो मेरी शक्ति।
हटती नहीं हृदयसे मेरे किसी तरह तुममें आसक्ति॥
जैसे चाहे खेल खिलाओ, जैसे जँचे कराओ नृत्य।
तुम स्वामिनि सब भाँति एक नित, मैं नित सहज तुम्हारा भृत्य॥

[३५९]

(राग ईमन—ताल रूपक)

स्वर्णपिंजरस्थित मगन मन सुक सुनावत बैन॥
नीलमनि-सौंदर्य-सुषमा कोटि मर्दन-मैन॥
मधुरतम मनहरन लीला सुनि चकित चित चैन।
लगीं निरखन छबि परम सुख रहे अपलक नैन॥
मुख-कमल कर-पद अचंचल अंग आनँद-ऐन।
मुक्त चंचु सु-मौन मुख, लखि लाड़िली सुख-दैन॥

[३६०]

(राग धनाश्री—तीन ताल)

राधिका आई कुंज-बिहार।
रह्यौ जहाँ कौ, जैसौ, जो संकेत-समय निरधार॥
आसा हुती, मिलैंगे मोहन तहँ सँकेत-अनुसार।
पर वे नहीं मिले, नहिं आए, घरी बीति गइँ चार॥
भई अनिष्टासंका जाग्रत, मिलै न दुस्संवाद।
कहा भयौ, कैसे नहिं आए, छायौ बिषम बिषाद॥
भई अबेर, चलन लागी लू, प्रगट्यौ निपट निदाघ।
आ न जायँ एहि काल स्याम कहुँ, कठिन भयानक दाघ॥

पठई एक सखी कौं देखन, जानन प्रिय-कुसलात।
कह्यौ सँदेसौ—'मत अइयौ अब, दाघ जरैंगे गात'॥
अति उदास, संका अनिष्ट की, भय-विह्वलता संग।
ह्वै निरास बैठी निकुंज में, जरत अंग-प्रत्यंग॥

[३६१]

(राग केदारा—तीन ताल)

स्याम पाकर निकुंज-संकेत।
कही—'काल्हि मैया! जाऊँगौ मैं इक सखा-निकेत॥
बहुत सिदौसी तहाँ जुरैंगी बहुत सखनि की भीर।
होंगी भाँति-भाँति की क्रीड़ा, खेलेंगे सब बीर॥
दाऊएं रखि लीजौ मैया! घरहीं तुम परभात।
हौं तिनके संकोच खेल में खा जाऊँगौ मात'॥
मैया तैं हाँ करवा लीनी, उठे सिदौसी भोर।
चले कलेऊ करि, लै सँग इक सखा कुंज की ओर॥
मारग में भिड़ रहे मत्त दो दीखे साँड़ बिसाल।
छाय रही नभ धूलि-रासि, जुरि रहे बृद्ध अरु बाल॥
पकरि गए मोहन मग में ही, कहि न सके कछु बात।
रुकनौ पर्‌यौ बिबस, भय-चिंता बस कुम्हिलाए गात॥
प्यारी देखि रही होगी उत मेरी ब्याकुल बाट।
कौन जुगुति भाजूँ कैसैं हौं, रचूँ कौन-सौ ठाट॥
सखी आय पहुँची इतने में, कह्यौ प्रिया-संदेश।
सुनत स्याम ह्वै चकित-व्यथित अति, रहे नैन अनिमेष॥
कह्यौ—'सखी नीकी! तुम जाकर प्यारी तैं यौं कहियौ।
अटक्यौ हौं मारग में बरबस, चूक मती तुम गहियौ॥
तुम निषेध कीन्हौ आवन कौ, मो पै रह्यौ न जाय।
आय रह्यौ, अब ही पहुँचूँगौ तुम्हरे चरननि धाय॥

[३६२]

(राग गौड सारंग—तीन ताल)

सखी ने आकर बात कही ॥
सुनत प्रिया प्रियतम कौ निस्चै, अतिसय हृदय दही।
सुखी भई प्रिय-कुसल जानि, सुनि आवन की जू कही ॥
ग्रीषम की बरती बयार में, भई बिषम असही।
भई रीस पिय पर सुनि आवन, दया संग उमही ॥
कह्यौ—'छाँह बैठइयौ, करि सीतल बयार तबहीं।
सीतल-सुरभित सलिल पियइयौ, करियौ हिरदै-चही ॥
पुनि रिसाइ बैठी हौं तिन तैं, बोलूँगी न कही।
घाम सहत आए, क्यों मेरी मानी बात नहीं' ॥
भरि बिषाद-अभिमान, मान करि रहो, कुरेदि मही।
बैठी हर्ष-बिषाद भरे हिय, सोच न सकति सही ॥

[३६३]

(राग विलावल—तीन ताल)

स्याम आ पहुँचे तुरत निकुंज।
सहमे देखि बिषाद भर्‌यौ अभिमान प्रिया-मुख-कंज ॥
नीचे नैन गड़े भूतल पर, सलिल-रहित गंभीर।
कर अवलंब कपोल बाम पर, मन अधीर धरि धीर ॥
सिथिल सरीर, पीर अभ्यंतर गए तुरत सब जान।
मेरे दुःख दुखी ह्वै प्यारी, करि बैठी है मान ॥
आ समीप अति आर्तभाव सौं, चरननि दृष्टि जमाय।
अति अपराधी-से संभ्रम अति, मन संकोच सुभाय ॥
कहन लगे मृदु बचन, बोलि नहिं पाए, उमड़्यौ नेह।
गद्‌गद कंठ, लगे बरसन दोउ नयन अमित रस-मेह ॥

देखि दसा प्रियतम की, भूली राधा सारौ मान।
कंठहार बनि लगी मनावन, उलटे तजि अभिमान॥
बोली—'भई अनिष्टासंका मेरे मन लखि देर।
तुम्हरे आवन में, बिलपी मैं, क्यों है गई अबेर॥
हौं इहि डर तैं डरी भयानक, देखि दाघ बिकराल।
आ न जायँ कहुँ वे मेरे डर इहाँ बिषम एहिं काल॥
सुनी बात तुमने नहिं प्यारे! तब मन उपज्यौ रोष।
देखि तुम्हारौ बदन क्लांत अति, बढ्यौ रोष-पर-रोष॥
पर एहिं रोष देखि तुम कूँ पिय! अब एहि भाँति उदास।
उदय भयौ अति दाह हृदय, जग उठी भयानक त्रास॥
थके-थकाए, प्यासे-झुलसे आए तुम करि प्यार।
स्वागत दूर, कियौ मैंने तुम्हरौ अपमान अपार॥
मीठी बात कही नहिं पूछी, करी न तनिक बयार।
मैं निर्दई मान कर बैठी, बढ़ा दियौ दुख भार॥
कैसैं कहा करूँ अब प्रियतम! जा तैं तव मुख-कंज।
देखूँ परम प्रफुल्लित, सुरभित, सुषमामय, सुख-पुंज'॥
हँसि बोले—'प्यारी! तुम्हरौ सुख ही मेरौ सुख-मूल।
होउ सुखी तुम, देखु, रह्यौ हौं सुख-झूले पै झूल'॥*

[३६४]

(राग सारंग—तीन ताल)

स्याम-सरोज-बदन सुचि सुन्दर नयन-जुगल चंचल सुबिसाल।
भ्रकुटि कुटिल आकर्षति मुनि-मन मृगमद-कुंकुम तिलक सुभाल॥
झूमि रहीं अलकावलि कारी घुँघुरारी घन रुचिर बिचित्र।
कानन कुंडल ज्योति छिटक रहि, कलित कपोलनि रचना चित्र॥

---

* पद सं० ३६० से ३६३ तक एक ही लीला-प्रसङ्ग है।

सीस मुकुट मनि-मोर-सिखाजुत लसत मंजु बर बिनु उपमान।
अरुन अधर बिकसित दसनावलि छाई मंद मधुर मुसुकान॥
उर बिसाल सोभित मुक्ता-मनि सुरभित कुसुम तुलसिका-हार।
कटि किंकिनि-रव सुमधुर बाजत झनकत पग नूपुर-झनकार॥
रूप अनूप अपार अलौकिक धरे चल रहे मारग स्याम।
राधा निरखि रही अपलक दृग बैठि झरोखे बदन ललाम॥
नेत्र अतृप्त निरखि सुंदरता आनँद-सागर उर न समात।
बही दृगन धारा अबाध गति प्लावित कर सुचि मुख-जलजात॥
देखि राधिका मुख-ससि सुखमय हरषि भये मोहन रस-मग्न।
सहसा एक नयो भय उपज्यौ तातें भयौ स्याम-सुख-भग्न॥
'देखि मोहि प्रियतमा राधिका कितनी सुखी भई एहि काल।
आँखिन ओझल होत अदरसन तें कैसी होगी बेहाल॥
सहि पावैगी कैसे राधा हृदय-बिदारक सो उर-सूल।'
'हाय' पुकार रो उठे मोहन सहसा गये सकल सुख भूल॥
देखि-बिषाद भर्‌यौ प्रियतम-मुख काँपि उठ्यौ राधा-तन धीर।
उठी हृदय तें हूक बिंधि गयौ मानों बिषम बिष-बुझ्यौ तीर॥
निज सुख-हेतु स्याम सनमुख मैं आई क्यों अपराधिनि आज?
जो सुख स्याम-दुःख कौ कारन ता पर परी क्यों नहीं गाज?
नहीं आवती जो सन्मुख मैं होती नहिं आनन्द-बिभोर।
मेरी भावी दुख-संका तें तो न दुखी होते चित-चोर॥
मेरे दुःख-दुखी वे प्रियतम मेरे सुख तें सुखी अमान।
तिन कूँ नित्य दुखी मैं करती निज-सुख-इच्छा में बेभान॥
कबहुँ न मैं देखूँ अब तिन कूँ, देख जु पाऊँ रहूँ सचेत।
सुख-लहरी आवै न बदन पर प्रगट न होवै सुख-संकेत॥

[३६५]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

कृष्णा-प्रिया राधा-चरन चिपकी रज बड़भाग।
छाड़ि ताहि चलत न चहति राधा अति अनुराग॥

[३६६]

(दोहा)

प्यारी-पग काँटौ चुभ्यौ, निकसी मुखसिसकार।
सुनि बेसुध दौरे तुरत, अति सुध रहे निकार॥

[३६७]

(दोहा)

कदँब-बृच्छ-छाया सुखद राजत स्यामा-स्याम।
करत परसपर रुचिर मधु बिबिध बिनोद ललाम॥
खेलत-खेलत ही लई राधा मुरलि छिपाय।
लाडिलि की लीला ललित समुझे स्याम सुभाय॥
छिपे तुरत, राधा बिकल, बिरहाकुल गंभीर।
ठाढ़ी भरे बिषाद मन, रस-सागरके तीर॥
औचक कहँ प्रियतम गए, चिंता चित्त अपार।
भ्रकुटि कुटिल भइ मान-बस, मगन बिचित्र बिचार॥

[३६८]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

लै मुरली प्रिय छिप गए, बिरहाकुल गंभीर।
मानिनि-सी बैठी बिकल, रस-सागरके तीर॥

[३६९]

(राग खमाज—तीन ताल)

विरह-व्यथा-पीड़ित, विषाद-मुख बैठी निज एकान्त निकुञ्ज।
प्रियतम-स्मृति-रत, विरत जगत सब, विस्मृत सकल बिषय-सुख-पुञ्ज॥
श्याम-वियोग-अनल जलते सब अङ्ग, अनलसे उपजा जल।
बही अश्रुधारा अजस्त्र अति उष्ण, जलाती सारा स्थल॥
उदय हुआ उच्चाट घोर उर, निकली मुखसे करुण पुकार—
'हा प्राणेश! प्राणवल्लभ, हे प्राण-प्राण, हा प्राणाधार'॥

बचन रुद्ध हो गया अचानक, सूखे नेत्र, स्तब्ध सब अङ्ग।
हुए, तभी दीखे मनमोहन, विजयी अमित अनन्त अनङ्ग॥
मधुर-सुमधुर, मधुर उससे भी, परम मधुर, उससे भी और।
मधुर-मधुरतम, नित्य-निरन्तर वर्द्धनशील मधुर सब ठौर॥

अङ्ग-अङ्ग माधुर्य-सुपूरित, मधुर अमृतमय पारावार।
अखिल विश्व सौन्दर्य, मधुर माधुर्य सकलके मूलाधार॥
नील कमल कमनीय कलेवर सहज सौरभित मधुर अपार।
नेत्रद्वय, मुख, नाभि, करद्वय, चरणद्वय द्युति-सुषमागार॥

विविध वर्ण, सौरभ विभिन्न युत अष्ट-कमल ये अति अभिराम।
यों विकसित नव कमल मिलित हो अनुपम शोभा हुई ललाम॥
देख छबीली छटा, देख छरहरा बदन, छाया आनन्द।
छकी, लुभाई, लगी देखने अपलक अति अतृप्त अद्वन्द॥

उमड़ा उर आनन्द-सुधा-निधि, बही नेत्र शीतल रस-धार।
देख अतुल छवि, माधव मृदु हँस बोले अमृत वचन सुख-सार॥
प्रिये! तुम्हारा तन-मनका यह दिव्य अतुल लीला-विस्तार।
सहज निरीहरूप मुझमें भी, करता इच्छाका संचार॥

परमानन्दरूप मैं पाता इसे देख अतिशय आनन्द।
इसीलिये मैं छिप-छिपकर अविरत देखा करता स्वच्छन्द॥
परमसिद्ध योगीन्द्र, ब्रह्मवेत्ता मुनीन्द्र, शुचितम सब संत।
छू सकते न तुम्हारी छाया, पा सकते न भावका अन्त॥

ललचाते नित रहते, कहते धन्य! धन्य!! गोपी-जन-भाव।
चरण-धूलि-कण सदा चाहते, सेवाका अति रखते चाव॥
इसीलिये वे पशु-पक्षी-द्रुम बन ब्रजमें लेते अवतार।
पद-रज-कण ले गोपीजनका होते धन्य सिरोंपर धार॥

[३७०]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

मलयज पवन, उल्लसित पुलकित लता-गुल्म-तरु क्षुद्र विशाल।
कानन कलित सुशोभित, पिक-शुक-कूजित, मुकुलित मधुर रसाल॥
निर्मल जल-पूरित सर-सरिता करती शीतलता संचार।
कुञ्ज-कुटीर कुसुम नव-पल्लव, करते अलि-कुल मधुर गुँजार॥
आयी अतिशय प्रमुदित राधा अन्तरङ्ग सखियाँ ले साथ।
हँस-हँस थी कर रही मधुर आलाप हिलाती कोमल हाथ॥
बता रही थी, कैसे वह कल आ न सकी थी कुञ्ज-कुटीर।
कैसे बेसुध थी, कैसे था रहा अचेतन स्थूल शरीर॥
प्रियतम-ध्यान-जनित-सुख-सागरमें वह कैसे रही निमग्न।
रहा न था कुछ भी थी वह बस केवल प्रियतमसे संलग्न॥
बाह्य-ज्ञान-विरहित, बरबस, वह याद न रख पायी संकेत।
इसीलिये वह बाहर देख न पायी प्रिय आनन्द-निकेत॥
सखियोंसे कह रही लाड़िली थी यों—इसी बीच शुचि एक।
श्याम-सखी आ बोली—'राधा! सुनो बात मेरी सविवेक॥
अखिल-रसामृत-सिन्धु रसिक-प्रिय यहाँ पधारे थे कल श्याम।
बड़ी मधुर आशा ले मनमें तुमसे मिलनेकी अभिराम॥
पर न प्राप्त कर तुम्हें हुए अति कातर-दुखी स्वयं सुख-धाम।
भूल अन्न-जल-निद्रा, रहे प्रतीक्षामें आतुर वसु-याम॥
अन्तरङ्ग सखियोंने प्रातः देखा, पड़े अचेत-उदास।
किसी तरह ले गयीं उठा वे उनको सत्वर कुञ्ज-विलास॥
छिड़क गुलाब कराया चेतन, मनमें भरे विषाद अपार।
'हा राधे! हा प्राणवल्लभे! प्रिये!' तभीसे रहे पुकार॥
श्याम-सखीसे सुनते ही दुःख-प्रद समाचार यह घोर।
अधोमुखी हो सुधा-मुखी श्रीराधा हुई विषाद-विभोर॥

राधा-हृदय-विषाद क्षणोंमें निकला, फैला चारों ओर।
मुरझाये तरु-लता, हो गये अति विषण्ण शुक-पिक-अलि-मोर॥
मलिन हुई सब वन्य-प्रकृति अति छाया सभी ओर अनुताप।
तुरत जल उठा बड़वानल-सा सर-सरिता-जल अपने-आप॥
हो व्याकुल अर्धोन्मत्त-सी उठी, न तनकी तनिक सँभाल।
नेत्रोंसे बह चली उष्ण धारा, था मन चञ्चल बेहाल॥
दिव्य सुकोमल काँप उठा सुकुमार मधुर वह स्वर्ण-शरीर।
करने लगी करुण क्रन्दन वह सिसक-सिसककर बनी अधीर॥
'हूँ मैं कैसी नीच पापिनी, हुई ध्यान-सुखमें जो लीन।
भूली प्रियतम-सुख, मैं बनकर स्व-सुख-वासना-जलकी मीन॥
दुःख-हेतु मैं हूँ प्रियतमकी नीच स्वार्थमें सनी असार।
ऐसे पतित घृणित जीवनको बार-बार अतिशय धिक्कार॥
मेरे लिये प्राणवल्लभको सहना पड़ा घोर संताप।
भूखे-प्यासे रहे, न सोये—किया भयानक मैंने पाप॥
प्रेम-नामको किया कलङ्कित काम-पापसे मैं भरपूर।
प्रियतम-सुख-घातिनि मैं दुःख-विधायिनी, सदा मोह-मद-चूर॥
कैसे, क्या मैं करूँ घोर इस पातकका अब प्रायश्चित्त।
नहीं त्याग, तप, शुचिता मुझमें, नहीं तनिक भी साधन-वित्त॥
डूबी रहूँ दुःख-सागरमें नित्य-निरन्तर काल अनन्त।
यदि इस पातक-बीज स्वसुख-अभिलाषा पातकका हो अन्त॥'
'प्रभो! कृपाकर करो आज तुम मुझे वरद दे! यह वर दान।
कभी नहीं छोड़ूँ प्रियतमको करूँ न कभी भूलकर ध्यान॥
जहाँ बुलावें, जब जो चाहें, जाऊँ, करूँ वही मैं काम।
मनकी छोड़ सभी मैं चिपटी रहूँ चरण-युग आठों याम॥'
इतना कह पड़ गयी धरणिपर अकस्मात् होकर अज्ञान।
प्रकट हुए वे प्रेमरसार्णव प्रियतम तुरत स्वयं भगवान॥

उठा, भुजा भर ले निजाङ्कमें किया भाल कोमल कर-स्पर्श।
जगी चेतना देख प्राण-प्रियतमको हर्षित, उमड़ा हर्ष॥
उठी, पार्श्वमें बैठी, दोनों लगे देखने अपलक नैन।
फिर बरसाने लगे नेत्र दोनोंके शीतल रस सुख-ऐन॥
लगे परस्पर क्षमा माँगने—दोनों दोनोंके आराध्य।
धन्य प्रेम! हो जाता जिसमें साध्य सुसाधक, साधक साध्य॥

[३७१]

(राग मधुवन्ती—तीन ताल)

विरहाकुल अति व्यथित-हृदय है, छाया है सब ओर विषाद।
एक परम सुख है—'प्रियकी है बनी निरन्तर प्यारी याद॥'
'श्याम आ गये', इसी समय, यह सखिने दिया सुखद संवाद।
सुनते ही, उर-व्यथा मिट गयी, बना विषाद परम आह्लाद॥
उठी, दर्शनातुर विह्वल हो, भाग चली प्रियतमकी ओर।
कौन, कहाँ, क्यों भाग रही मैं, भूली होकर प्रेम-विभोर॥
मदमाती डगमगाती दौड़ी, पहुँची तुरत कुञ्जके द्वार।
देखा, खड़े मधुर मुसकाते वहाँ प्रेम-धन नन्द-कुमार॥
देख परस्पर मुख-शशि अनुपम अगणित विधु-निन्दक सुख-सार।
हुए निमग्न प्रेम-सुख-रसनिधि दृगसे बही प्रेम-रस-धार॥
जगी तुरत अपनी अयोग्यता, प्रेम-हीनताकी अनुभूति।
दीखी उधर रूप-गुण-निधिकी अतुल पवित्र प्रेम-अभिभूति॥
उपजा मन संकोच, बढ़ी फिर प्रियता प्रियतमपर सविशेष।
कहाँ अतुल ये सर्वगुणाश्रय, कहाँ हीन मैं सद्गुण-लेश॥
कितने अमित प्रेममय प्रियतम, कितने सहज असीम उदार।
जो मिलने मुझ-सी मलिनासे आये स्वयं तुच्छता धार॥
इतनेमें प्रियतमने उसको स्नेह-भरे हाथोंसे खींच।
अति निषेध करते-ही-करते लिया उसे निज उरमें भींच॥

मिलनेपर निषेध शुचि होता, अमिलनमें मिलनेकी चाह।
पावन परम प्रेम-रस-निधिकी मिलती नहीं किसीको थाह॥
अपने दोष दीखते अगणित, उसका सद्गुण-सिन्धु अपार।
उदय नहीं हो पाता इससे, कहीं कभी गर्वाहंकार॥
भरता रहता प्रेम-सिन्धु नित पर न कभी भर पाता पूर्ण।
प्रेम वृद्धिकी सहज होड़ दिखलाती अपना प्रेम अपूर्ण॥

[३७२]

(राग भैरव—तीन ताल)

सखी! वह कैसौ मीठौ सपनौ।
देखत ही प्रेमांबुधि उमग्यौ, बिसर्‌यौ, तन-मन आपनौ॥
ठाढी हुती भोर की बेला हौं निकुंज के द्वार।
अति अनमनी, बिरह-दुख-पीड़ित, लखि जीवन निस्सार॥
आय अचानक पाछे सौं मेरे ढिग वे चुपचाप।
कोमल करतल सौं ढाँकि दृग दोऊ अपने-आप॥
कर परसत बिजुरी-सी दौरी, बाढ्यौ अति अनुराग।
हौं पहचानि गई प्रियतम-कर, प्रान उठे पुनि जाग॥
आय गये सनमुख जीवन-धन प्रियतम हरि अनवद्य।
हिय-सरोज बिकस्यौ दरसन करि प्रिय दिनकर के सद्य॥
मिले नयन-सौं-नयन, हृदय-सौं-हृदय, बिना व्यवधान।
सांत भयौ बिरहानल करि कै प्रेम-सुधा-रस-पान॥
इतने महँ कोउ आय जगाई मो कहँ कुलिस-कठोर।
जरत हियौ तबही सौं सजनी! बिछुरे प्रान किशोर॥

[३७३]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

नियत समयपर पहुँच न पायी मैं संकेत-स्थान।
आये विविध विघ्न-बाधा मिल, लज्जा-भय-अज्ञान॥

घन-विद्युत् गर्जन-तर्जन, अति वर्षा झंझावात।
अन्धकारमय पथ, दिनमें हो गयी भयानक रात॥
इतनेपर भी पहुँच गये प्रिय, क्षणभर हुई न देर।
हो अधीर, कर रहे प्रतीक्षा लगा रहे मन टेर॥
पहुँची अति विलम्बसे, प्यारे लगे पूछने बात।
मृदु कर-कमलोंसे सहलाने लगे स्वयं मम गात॥
बोले—'क्यों आयी तुम इस दुर्दिनमें, कर परिताप।
सुख पहुँचाने मुझको तुम नित ही सहती संताप॥
मैंने कहा—'प्राणधन ! तुम तो सदा यही हो कहते।
पता नहीं तुम मेरे सुख-हित कितने संकट सहते॥
कितना तुम्हें सताती, कितना देती कष्ट अपार।
पर तुम क्षुब्ध न हो कदापि, करते नित नूतन प्यार॥
गिनते मम दूषणको भूषण, तमको विमल विकास।
मेरे अघको पुण्य मानते, कटुताको उपहास॥
सदा देखते रहते, प्यारे ! मेरे मुखकी ओर।
देख जरा-सा मलिन, तुरत हो जाते दुःख-विभोर॥
मुझको सुखी देखनेको ही करते सारे काम।
एक इसी चिन्तामें रहते, प्यारे ! आठों याम॥
तरुण तमाल, कनक-लतिका सम, नित्य मिलित तजि निज-पर।
घन-दामिनि सम, मोहन-मोहनि मोहत सतत परसपर॥

[३७४]

(राग गुनकली—ताल रूपक)

जग रही थी रात भर सुधिहीन मैं।
थी सुखी प्रियके स्मरणमें लीन मैं॥
नित्य ही जगते निशा यों बीतती।
श्यामकी स्मृति-खान तदपि न रीतती॥

आज प्रातः सहज झपकी आ गयी।
वह मुझे मधुपुरीमें पहुँचा गयी॥
देखकर मैं दशा विचलित हो गयी।
उसी क्षण मन-शान्ति मेरी खो गयी॥
वाटिकामें घूमते वे श्याम थे।
दुखी व्याकुल हो रहे अविराम थे॥
नेत्र थे आँसू-सलिल बरसा रहे।
विकलताको और भी सरसा रहे॥
'हा प्रिये! हा राधिके! हृदयेश्वरी!
हा सकल सुखसाधिके! प्राणेश्वरी॥
लोग कहते यहाँ अति सुख-साज है।
देखता मैं, छा रहा दुख-राज है॥
है नहीं तेरे बिना सुख एक पल।
चित्त अधिकाधिक हुआ जाता बिकल॥
बिलखते यों पड़े सहसा भूमिपर।
दौड़ मैंने ले लिया निज गोद सिर!
हाय! इतनेमें तुरत मैं जग गयी!
अग्नि दारुण प्राणमें बस, लग गयी॥
सोचती हूँ, तभीसे मैं मन दिये।
हो रहे क्यों विकल प्रिय मेरे लिये॥
रूप-गुणसे हीन तुच्छ नगण्य मैं।
कुमति, कुत्सित-भाव नित्य जघन्य मैं॥
है रिझानेको नहीं गुण एक भी।
निन्दनीय नितान्त दोष भरे सभी॥
हूँ नहीं मैं कभी उनको भूलती।
इसी कारण, बस, जो रहती झूरती—

सदा उनके सरल मनमें मैं बुरी।
(यह) स्मृति ही आघात करती बन छुरी ॥
भूल उनको मैं अगर जाऊँ अभी।
तो न हो फिर दुःख प्रियतमको कभी ॥
प्राणका आधार है प्रियका स्मरण।
प्राण हर लेगा तुरत ही विस्मरण ॥
किन्तु दुःख-विमुक्त हों यदि प्राणधन।
लाख ऐसे प्राण दूँगी-सुखी मन ॥
श्यामकी स्मृति अभी तुम हर लो प्रभो !
मरूँ सुखसे, हों सुखी प्रियतम विभो ॥

[३७५]

(राग विलासखानी—ताल कहरवा)

सखी ! न कोई और जगत्में मुझ-सा कहीं अघी दुख-धाम।
जिसके कारण रहते प्रियतम दुखी, नहीं पाते बिश्राम ॥
भूल न सकती मैं प्रियतमको एक पलक भी आठों याम।
इसीलिये वे मेरी स्मृतिमें रहते सदा व्यथित घनश्याम ॥
सुख-साधन समग्र, सेवक शुचि, सु-प्रासाद, रम्य आराम।
ललना गुण-सौन्दर्य परम माधुर्यमयी सेविका ललाम ॥
सब कुछ होनेपर भी रहती मेरी स्मृति छाई उर-धाम।
इससे कुछ न सुहाता उनको, पाते नहीं तनिक आराम ॥
मैं यदि भूल सकूँ तो वे भी भूल जायँ मुझको सुखधाम।
पाकर सब अनुकूल, बनें वे सुखी सहज प्रिय प्राणाराम ॥
प्यारी सखी ! करो तुम ऐसा कोई तुरत सिद्धिप्रद काम।
मेरे मनसे मृत-संजीवनि स्मृति उनकी मिट जाय तमाम ॥
मुझे बताओ या मैं जिसको करूँ अभी मनसे अविराम।
जिससे हों वे सुखी प्राणधन खिले वदन-पंकज अभिराम ॥

[३७६]

(राग अड़ाणा—तीन ताल)

नाथ ! अब मो पै कृपा करौ !
जसुमति मैया के नारायन ! मो पै आजु दुरौ ॥
मोरे मन तैं मधुर स्याम की सुधि ततकाल हरौ ।
जातैं भूलि सकैं वे मो कूँ सुख हो बिनैं खरौ ॥
प्रिय-सुख-काज प्रान जो जावैं, मेरो काज सरौ ।
या तैं अधिक लाभ नहिं दूजो मो कूँ समुझि परौ* ॥

[३७७]

(राग वराड़ी—ताल मूल)

मधुर मनोहर नील-श्याम-तन अनुपम छबिमय ।
कोटि-कोटि मन्मथ-मन्मथ सौन्दर्य सुधामय ॥
कहाँ दिव्य गुण-रूप-राशि वह मुनि-मन-हारिणि ।
कहाँ कुरूपा मैं अति कुत्सित तन-मन-धारिणि ॥
यद्यपि बाहर नहीं दीखते चिह्न बुरे अति ।
पर चल रही अहं-क्षत-धारा हृदय तीव्र गति ॥
ममता मनमें भरी, नहीं समता है किंचित् ।
सदा रागमें रँगी, रागसे संतत सिञ्चित ॥
दीख रही ऊपर छायी ठंढक सुख-व्यापिनि ।
भीतर जलती अग्नि कामनाकी संतापिनि ॥
सहज हृदयका क्रोध छा रहा भीतर-बाहर ।
लोभ हृदयमें भरा कर्म करवाता दुखकर ॥
हुए प्रकट सब दोष भयानक मेरे सम्मुख ।
काँपी, डरी, निराशा-सी छायी मेरे मुख ॥

---

* पद सं० ३७४ से ३७६ तक एक ही लीला-प्रसङ्ग है ।

किस साहससे प्रियतमके समीप मैं जाऊँ ?
तन-मन मलिन अपार किस तरह मुख दिखलाऊँ ?
किस मुख उनसे कहूँ, मुझे दो पद-पङ्कज प्रिय !
शुचि पद-रज दे, मुझे बना दो शुद्ध सत्त्वमय ॥
मान नहीं मन रहा किंतु, मचला वह अतिशय।
चलो चलो प्रियकी संनिधिमें, छोड़ो भ्रम-भय ॥
उठने लगी, गिरी फिर अपनी ओर देखकर।
घृणित दोषसे पूर्ण हाय ! मैं जाऊँ क्योंकर ?
रूप-शील-सौन्दर्य-सद्गुणोंके वे सागर।
अतुलनीय अनुपम सब विधि प्रियतम नट-नागर ॥
मेरे सदृश न कोई पामर नीच घृणित जन।
मिलनेच्छाका त्याग तदपि करता न हठी मन ॥
तम-घन इच्छा करे सूर्यसे मिलनेकी ज्यों।
मेरा मन भी श्याम-मिलन-इच्छा करता त्यों ॥
पर साहस न जुटा पायी, स्थिति हुई भयानक।
मर्मव्यथा अति असहनीय जग उठी अचानक ॥
बाह्य चेतना गयी, पड़ी अब सुध-बुध खोकर।
अंदर प्रकटे श्याम रूप-गुण-निधि मुनि-मन-हर ॥
करने लगे दुलार सहज मनुहार अपरिमित।
नहलाने बस, लगे प्रेमधारामें अविरत ॥
कहने लगे—'तुम्हारे जो कुछ बाहर-भीतर—
है, होता है—छिपा न है मुझसे रत्तीभर ॥
अहं, ममत्त्व, सुराग, कामना, क्रोध-लोभ सब।
है नित मेरे लिये, नहीं कुछ उनमें तब-अब ॥
किंतु तुम्हारा प्रेम शील निज-गुण न मानकर।
गुणमें करता दोष-बुद्धि नित सत्य जानकर ॥

प्रिये! तुम्हारा दैन्य सहज पावन अति सुखकर।
अतः नित्य रहता मैं सुख-सम्पादन-तत्पर॥'
अन्तर्धान हुए सहसा शुचि रस वर्षा कर।
खुले नेत्र अविलम्ब, चेतना आयी सत्वर॥
देखा खड़े सामने मृदु मुसकाते प्रियवर।
हुई कृतार्थ विशुद्ध रसभरी पद-रज पाकर॥

[३७८]

(तर्ज-लावनी—ताल कहरवा)

बैठी राधा थीं यमुना-तट मन-ही-मन कर रहीं विचार।
मेरे कारण प्रियतमको होता है कितना कष्ट अपार॥
आते मेरे पास सभी आवश्यक कार्योंका कर त्याग।
सहते हिम-आतप-वर्षा अति, रखते नहीं कहीं कुछ राग॥
बड़े-बड़े तार्किक, सिद्धान्ती, तत्त्वज्ञानी, सिद्ध, विदेह।
निन्दा करते, खण्डन करते कर भगवत्तामें संदेह॥
महान ईश्वर सब लोकोंके, सबके एकमात्र आधार।
सर्वातीत, सर्वमय, जिनसे सबका होता है विस्तार॥
वही परात्पर प्रभु करते हैं, मुझमें कैसा पावन मोह!
नहीं पलकभर भी सह सकते मेरा कभी नितान्त बिछोह॥
परम प्रेममय, प्रेम-रसिक-वर प्रेम-विवश वे प्रेमाधार।
मेरे मनके तोष-हेतु वे करते सब कुछ अङ्गीकार॥
कहाँ नगण्य, तुच्छ मैं, रूप-गुणोंसे विरहित, दोषागार।
कहाँ सर्व सद्गुण-सुषमा-सौन्दर्य अप्रतिमके भंडार॥
मेरे दोषोंपर प्रियतमकी नहीं कदापि दृष्टि जाती।
लगता—उनके सुखकी मुझमें सब गुणराशि स्थान पाती॥
सब भगवत्ता भूल, वरण करते वे कुत्सा, कष्ट, कलङ्क।
देख तनिक मुख म्लान तुरत हो आतुर वे भर लेते अङ्क॥

नहीं तनिक भी लज्जा करते, करते नहीं तनिक संकोच।
ध्यान नहीं देते कदापि वे कोई कहे भला या पोच॥
मेरे वे सर्वस्व एक ही, वे ही मेरे इह-परलोक।
गति-मति-रति, मन-जीवन वे ही, एक मात्र वे ही आलोक॥
इस मेरी बाह्याभ्यन्तर स्थितिका उनको है पूरा ज्ञान।
इसीलिये वे मुझपर सदा निछावर रहते हैं भगवान॥
कैसे भी मैं, क्षण भर भी, इस स्थितिका त्याग न कर पाती।
सहते उन्हें देख पर-निन्दा-श्रम, जलती मेरी छाती॥
यद्यपि उनको होता अति सुख मुझे देखकर सुखी अपार।
पर मुझको लगता, वे सहते कष्ट नित्य अति प्राणाधार॥
कैसे, मैं क्या करूँ, मिटे जिससे यह प्रियका कष्ट तुरंत।
मेरे कारण होनेवाले कष्टोंका हो कैसे अंत॥
इस दुश्चिन्ताकी ज्वालासे जला हृदय, वे हुईं अचेत।
स्वर्ण-देह वे पड़ीं भूमिपर मलिन-बदन-सौन्दर्य-निकेत॥
प्यारे वहीं खड़े थे, गिरते देख तुरंत ले लिया गोद।
सिर सहलाने लगे स्व-कर मुखचन्द्र देखने लगे समोद॥

[३७९]

(राग भैरव—तीन ताल)

नित्य उन्होंने चाहा मुझको, मैंने सदा किया अपमान।
नित्य उन्होंने मान दिया, पर मैंने किया सदा अभिमान॥
मेरे ही सुख-हेतु नित्य ही दिया उन्होंने सारा प्यार।
पर मैंने अवहेला की नित, देती रही सदा दुतकार॥
बार-बार वे मुझको सुखी बनाने आये मेरे पास।
मधुर बोल सत्कार न करके, लौटा दिया निराश-उदास॥
पर वे तनिक न हुए रुष्ट, मुझपर न कदापि किया कुछ रोष।
उनके मनको कभी न दीखा मेरा सहज अल्प-सा दोष॥
देते-देते थके न पलभर, देते रहे सदा सर्वस्व।
मानिनि, किंतु उन्हें क्या देती मैं दरिद्र स्वाभाविक निःस्व॥

अब रो रही अभागिनि, पतिता, दीना मैं अविरत दिन-रात।
याद आ रही मुझको उनकी एक-एक अब मीठी बात॥
इसी योग्य हूँ मैं मिलता है उचित मुझे बस यह परिणाम।
रोना, अश्रु बहाना, व्याकुल स्मृतिमें रहना आठों याम॥
पर मैं मर न सकूँगी, कारण मृत्यु रहेगी मुझसे दूर।
होता नित्य रहेगा उनका स्मरण-सुधा-सिंचन भरपूर॥
यों कहती, रोती वह करती सिसक-सिसककर करुण विलाप।
मूर्च्छित हुई, लगी गिरने, ली थाम भुजामें प्रियने आप॥
हुए प्रकट, रक्खा सिर अपनी मधुर मनोहर कोमल गोद।
पीताम्बरसे पोंछ बदन, वे करने लगे पवन मन-मोद॥
गिरे अचानक मुखपर, प्रियतम—प्रेमामोद-सुधाके बिन्दु।
चेत हुआ, पा प्रिय गोदीमें, उमड़ा उरमें आनंद-सिन्धु॥
देखा, प्रियतम अपने कर-कमलोंको फिरा रहे सब गात।
अश्रुपूर्ण दृग देख रहे प्रिय अपलक प्यारी-मुख अवदात॥
उठीं, हृदयसे लगीं बही दोनोंके नेत्रोंसे शुचि धार।
वाणी रुद्ध, अमन मन, सारा हुआ निरुद्ध सहज व्यापार॥

[३८०]

(राग बिहाग—तीन ताल)

प्रियतम-भामिनि, मधुमय जामिनि, बिहरत जमुना-तीर।
अलिकुल गुंजत, कोकिल कूजत, मलयज बहत समीर॥

× × ×

सखी-सहचरी मृदुल मंजरी, गावत वाद्य सुतान॥
गोपी-चातकिगन निरखत घन-स्याम अतुल आनंद।
चतुर चकोरी निरखत गोरी रंग चाँदनी चंद॥
स्रम-जल-बिंदु सुरूप-सिंधु दोऊ नील-पीत रुचि रंग।
रसनिधि अमित अगाध तरंगित बिबिध विचित्र तरंग॥

[३८१]

(राग तोड़ी—तीन ताल)

एक दिना मिलि प्यारी-प्रीतम कुसुम-सरोवर गये नहान।
सखी-मंजरी चली संग लै वसनाभूषन अति अवधान॥
गुप्त-घाट जल अमल सुगंधित प्रविसे दोउ अति सुख स्वच्छंद।
रहि बाहर सखिगन, चर्चा-रत भई प्रिया-प्रिय की सुख-कंद॥
लागे करन परस्पर दोऊ जल में बिबिध भाँति कल्लोल।
अन्हवाये दोऊ दोउन कौं बाढ़्यो अमित रंग-रस-रोल॥

× × ×

भूले निज-निज रूप, भई बिपरीत दुहुन कौं निज परतीत।
प्रीतम प्यारी, प्यारी प्रीतम, समुझे ह्वै बिभोर रस-रीति॥
लगी सजावन प्यारी पिय कौं उन्हें समुझि प्यारी अति नेह।
पहिरायौ निज नील बसन, कंचुकि रुचि आभूषन सब देह॥
यही भाँति पिय प्यारी कौं पहिरायौ अपनौ पट रंग पीत।
पुरुष समान लाँग दै, सब आभरन सजाये सुंदर रीत॥
स्याम बने स्यामा सब बिधि सौं, बनी मनोहर स्यामा स्याम।
निकसे, निरखि सखी बिहँसी सब अति विपरीत वेष अभिराम॥
सहमि गये प्यारी-प्रीतम, लखि हँसिबै कौ रहस्य अज्ञात।
'क्यों तुम हँसी देखि हमरे तन'—पूँछीं सखियन सौं यह बात॥
हँसि बोली सखि 'देखौ पिय-प्यारी तुम निज बसनन की ओर'।
देखत ही सकुचे दोउ, बिहँसे, छूटी हँसी अमित सब छोर॥

[३८२]

(लावनी तर्ज दूसरी—ताल कहरवा)

खड़े हुए थे लिये सहारा तरुका, था सौन्दर्य अनूप।
दृष्टि चौंधियाई, मैं देख न सकी प्रथम वह द्युतिमय रूप॥
खुले नयन देखे मैंने तब अरुण-चरण-जलजात नवीन।
नूपुर सुभग सुसज्जित सुन्दर नृत्य-कुशल वे कला-प्रवीण॥

नील-श्याम बदनारबिन्द नव-नागर, कृष्ण सुकुञ्चित केश।
पीताम्बर विद्युत-द्युति आभूषणयुत अङ्ग मनोहर वेश।
मुक्ता-गुञ्जा हार सुशोभित झूल रही वनमाला वक्ष।
कुटिल भ्रुकुटि, अति दीर्घ नेत्र, रसमय दोनों मनहरण सुदक्ष॥
देख रूप मैं भूली अग-जग लोचन रहे स्तब्ध अनिमेष।
हुई कठिन अति स्थिति, न रही स्मृति, हूँ मैं कौन, कहाँ किस देश॥
देखा मधुर वक्र नयनोंसे नागरने हँस मेरी ओर।
मिले नेत्र-तारे, उमड़ा रस-उदधि हृदयमें ओर-न-छोर॥
प्रेमधाम सौन्दर्य-वाण सखि! बिंधा हृदयमें आ सुख-रूप।
हुई तुरंत विकल घायल मैं सुखमय पीड़ा बढ़ी अनूप॥
लज्जा-भय-संकोच-शील सब रमणी-गुण-गौरव शुचि भाव।
मिटा तुरंत किया आकर्षण, रहा एक दर्शनका चाव॥
छल-छल विमल सुकोमल नयन अरुण रस-पूरित हृदय महान।
नाना भाव तरंगित-विस्मित कम्पित मोहित गत तन-ज्ञान॥
उठी लहर, मन हुआ भाग अब चलूँ, नहीं पर उठते पैर।
बजे मधुर नूपुर, आये वे निकट तुरंत मनोहर गैर॥

× × ×

[३८३]

(राग भूपाली—तीन ताल)

उस कैतवके लिये कर रही क्यों तुम सखी! बिलाप?
माया-ममता-रहित, गूढ़तम जिसके कार्य-कलाप॥
निराकांक्ष, निर्भय, निज-निर्भर, निरवधि, भाव-निमग्न।
परम स्वतन्त्र सदा जो सस्मित मुख मुरली-संलग्न॥
नहीं किसीके मरने-जीनेकी जिसको परवाह।
अपने मनकी ही करनेमें जिसको परमोत्साह॥
काला, कुटिल-भ्रुकुटि, कपटी अति, कुलिस-हृदय, निर्मोह।
मोहितकर, हर मन-धन सत्वर, देता बिषम विछोह॥

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

पद-रत्नाकर

हनुमानप्रसाद पोद्दार

पुष्प-पुष्पपर मधुकर जो मँडराता नव-रस-हेतु।
भूल—भरोसा करना उसका रक्खेगा श्रुति-सेतु॥
परम राग-रति-रहित रमण, उसका करके विश्वास।
ठगी गयी सरला तुम, रसवति, रोती, अब भय-त्रास॥
प्रेमरहित वह निष्ठुर निरुपम, नहीं भरोसे जोग।
भूलो! उसे छोड़ सब आशा, क्यों करती दुख-भोग॥

[३८४]

(राग खमाज—ताल कहरवा)

सखि! सुख-दान करो कह मोहन मनहरकी मधु बात।
प्रियतमकी निन्दा कर तुम मत करो हृदयपर घात॥
मेरे प्राणनाथ वे गुण-निधि, रस-निधि, परम उदार।
परम प्रेम-रस-सुधा अमितके पावन पारावार॥
मेरे प्रति अति प्रीति विलक्षण चिर दिन नित्य नवीन।
रस-रहस्यमयि अन्तर्निहिता अनुपम अवधि-विहीन॥
उन मेरे प्रिय प्रियतमके प्राणाभ्यन्तर रस-धार।
मधुर सुधामयि अन्तःसलिला-सी बह रही अपार॥
मैं उस परम पावनी अन्तर्मधुरा धारा बीच।
रहती नित्य निमग्न, न छू पाता मुझको तट-कीच॥
अन्तर्दृष्टिरहित तुम, उनका देख न पायी भाव।
कर बैठी संदेह, परम शुचि रसका समझ अभाव॥
समझ लिया तुमने, वे करते मुझको दुःख-प्रदान।
दोष-छिद्र इससे ला-लाकर करने लगी बखान॥
सखि! मैं कैसे तुम्हें बताऊँ, मैं ही सदा सदोष।
प्रियमें बस, यह एक दोष है—वे नितान्त निर्दोष॥
सहते मेरे लिये नित्य वे विविध भाँति संताप—
कटु कुवाच्य, कुत्सा तथापि वे क्षुब्ध न होते आप॥

देते मुझे नित्य सुख अतुलित, बाहर रहते मौन।
सदा उपेक्षा-सी दिखलाते, मनकी जाने कौन ? ॥
रोती मैं न दुःखसे किंचित, नहीं मुझे भय-त्रास।
मेरे नयन-सलिलका प्रियतम मर्म समझते खास॥
सत्य प्रीतिवश ही तुम करती प्रियके अवगुण-गान।
चुभते किंतु हृदयमें आकर अति विष-बाण समान॥
एक तरफ दुस्सह प्रिय निन्दा, एक ओर तव प्यार।
सखी ! क्षमा करना, न समझना इसे कहीं दुत्कार॥
पर जिनको तुम बता रही हो निन्द्य दोषमय काम।
ऋषि-मुनि-वाञ्छित वे सद्गुण हैं श्लाघ्य विशुद्ध ललाम* ॥

[३८५]

(राग-तोड़ी—तीन ताल)

मग जोहति मन व्यथित भामिनी !
प्रियतम अजहुँ कुंज नहिं आये, बीति रही मधुमयी जामिनी॥
छटपटात अति प्रान मिलन कौं, चंद-बदनि सौंदर्य-धामिनी।
प्रेममयी प्रानेश्वरि राधा, साधारण नहिं जगत-कामिनी॥
हाय ! हाय ! क्यों प्रिय नहिं आये, बिलखि बिसूरति हृदय-स्वामिनी।
छायौ अति विषाद उर अंतर मति भइ संतत सोक-गामिनी॥

[३८६]

(राग सारंग—तीन ताल)

आय दूती ने बात कही॥
चंद्रावलि की कुंज सिधारे साँवर आजु सही।
सुनत प्रफुल्लित भई राधिका धीरज सहज गही॥
उठी अमित आनंद-लहर उर मानस-सिद्धि लही।
चंद्रावलि सम नहीं कितहुँ कोउ सुंदरि अन्य मही॥

---

* पद सं० ३८३ एवं ३८४ में एक ही लीला-प्रसङ्ग है।

मधुर सुहासिनि चतुर विलासिनि, गुन-समूह उमही।
मैं नित ही कहती पिय तैं, 'तुम क्यौं न जाउ उतही' ॥
सुनी नायँ पिय बिनय कबहुँ उलटे मो कूँ उलही।
दूती ! भयो विधाता दच्छिन मन की होय रही ॥

[३८७]

(राग गौड़सारंग—तीन ताल)

निरखि न्यौछावर प्रानप्रियारे ॥
भाव प्रिया के परम मनोहर जग की बिधि तैं न्यारे।
पठई हुती स्वयं दूती, छिपि ठाढ़े एक किनारे ॥
ब्याकुल दसा देखि प्यारी की निज वियोग मन हारे।
निरखि नयन तैं भाव प्रिया के आँसू ढारत प्यारे ॥
प्रिया-हृदय के भाव मधुरतम, सुचि, प्रिय, सुखमय सारे।
देखने कौं मन जग्यो मनोरथ नहीं टर्‌यौ सो टारे ॥
देखि प्रिया कौ सुखमय मुख अब, छूटे प्रेम-फुहारे।
पिय कौं सनमुख देखि सलज भये प्रिया-नयन अरुनारे* ॥

[३८८]

(राग पीलू—तीन ताल)

साँझ लौं रह्यौ कैसैं जाय ?
गाय चरावन गए हरि बन, चित्त अति अकुलाय।
निमिष एक अनेक जुग सम दीर्घ मोहि लखाय ॥
छिनहिं-छिन मन होय आतुर, मिलन कौं उड़ि धाय।
स्याम-दरसन बिना सबहि मसान-सौ दरसाय ॥

[३८९]

(राग पीलू—तीन ताल)

अनुपम मोरें मन अभिलास।
नव निकुंज सुख-सज्या बिरची, कान्ह-मिलन की आस ॥

---

* पद सं॰ ३८५ से ३८७ तक एक ही लीला-प्रसङ्ग है।

मंगल कलस धरे नव पल्लव, रोये रंभा-खंभ।
निभृत निकुंज करत नित जगमग रतन-दीप-सुस्तंभ॥
बिबिध भोग, बिंजन सुहृद्य, फल मधुर, सुधा-संभार।
सुरभित सलिल धर्‌यौ भरि झारी, बिबिध भाँति उपहार॥
मृगमद-चंदन-गंध, सुलेपन, विकसित चंपा-फूल।
संपुट भरि राखे अति रुचिकर सुचि कपूर-तंबूल॥
तुलसि-मंजरी-सहित सुमन सुंदर सुगंध बर हार।
मन में ललित लालसा लसि रहि, करन मधुर मनुहार॥
एक-एक पल बीतत जुग-सम, चित्त परत नहिं चैन।
धधकत मन बिरहानल भीषन, छिन-छिन बाढ़त मैन॥

[३९०]

(राग धनाश्री—तीन ताल)

सखी ! यह कैसी भूल भई।
लिखन लगी पाती पिय कौं लै दाड़िम-कलम नई॥
भूली निज सरूप हौं तुरतहिं, बन घनस्याम गई।
बिरह-बिकल बोली पुकार—'हा राधे ! कितै गई ?'
पाती लिखी—'प्रिये हृदयेस्वरि ! सुमधुर सु-रसमयी।
प्रानाधिके ! बेगि आऔ तुम नेह-कलह-बिजयी'॥
ठाढ़े हुते आय मनमोहन, मो तन दृष्टि दई।
हँसे ठठाय, चेतना जागी, हौं सरमाय गई॥

[३९१]

(राग हमीर—तीन ताल)

कान्ह बर धर्‌यौ बिनोदिनि रूप।
रूप-सुधा बरसावन भावन अति कमनीय सरूप॥
केस सँवारि, रम्य बेनि रचि, सुरभित सुमन गुँथाए।
बेंदी सुभ सिंदूर भाल पर, मृगमद चित्र बनाए॥

स्रवन झूमका, नासा में नथ, गल मोतियन कौ हार।
घूँघट काढ़ि चले गज-गति सौं, मंदस्मित सुख-सार॥
काजर रेख नयन अति सोभित, आभूषन सब अंग।
नुपूर छमछमात चरननि महँ मूर्छित होत अनंग॥

[३९२]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

मेरे हे जीवन-जीवन! मेरे हे जीवनके रस!
मेरे हे भीतर-बाहर! मेरे हे केवल सरबस!
मैं नहीं जानती कुछ भी अतिरिक्त तुम्हारे प्रियतम!
मैं नहीं मानती कुछ भी बस, तुम्हें छोड़कर प्रियतम!
हर सभी पृथकता, मेरे रह गये एक तुम-ही-तुम।
कर आत्मसात् 'मैं-मेरा' सब कुछ अपनेमें ही तुम॥
अब तुम्हीं सोचते-करते सब 'मैं' 'मेरा' मुझमें बन।
नित तुम्हीं खेलते रहते बन मेरे चित्त-बुद्धि-मन॥
आनन्द मुझे तुम देते नित बने पृथक् लीलामय!
अपनेमें अपनेसे ही तुम होते प्रकट कभी लय॥
नित मिलन बिरहकी लीला चलती यों सतत अपरिमित।
होते सब खेल अनोखे नित सुख-वाञ्छासे विरहित॥
मैं कहूँ अलग क्या प्रियतम! कहते हो तुम ही सब कुछ।
सुनते भी तुम ही हो सब, तुम ही हो, मैं हूँ जो कुछ॥
बैठी निकुञ्जमें आली! थी ध्यानमग्न सब कुछ तज।
एकान्त हृदय-मन्दिरमें यों थी मैं रही उन्हें भज॥
मेरे मनकी ये बातें सुनकर वे प्यारे मोहन।
हो गये प्रकट यमुना-तटकी उस निकुञ्जमें सोहन॥
उरसे अन्तर्हित सहसा हो गये प्राण जीवनधन।
व्याकुलता उदय हुई अति, खुल गये नेत्र बस, तत्क्षण॥

वे देख रहे थे मुझको रसभरे दृगोंसे अपलक।
मिलनेकी उठी हृदयमें अत्यन्त तीव्रतम सु-ललक॥
बस, मुझे लगा ली उरसे निज स्वयं भुजाओंमें भर।
रसभरे दृगोंसे आँसू बह चले प्रेमके झर-झर॥

[३९३]

(राग वसंत—तीन ताल)

प्राण-प्राण ! हे प्राणनाथ ! हे प्राण-प्रियतम ! हे प्राणेश !
परम रमण हे, मधुर मधुरता, सुन्दर सुन्दरताके देश॥
बिना तुम्हारे दर्शनके अब परमाकुल ये पीड़ित प्राण।
पाना सहज चाहते अब ही दुस्सह विरहानलसे त्राण॥
निकल भागनेको आतुर ये दर्शन-हेतु त्याग तन-धाम।
सुन्दर-सुन्दर कोटि-कोटि शशि-निन्दक मुख-चन्द्रमा ललाम॥
अङ्ग-अङ्ग जल रहा तापसे, मनमें भरा विषाद-विमर्श।
शीतल-शान्त-सुखी हो सकता नहीं, बिना पाये संस्पर्श॥
हरी-भरी हिय-लता सुधा-सी सूखी-जली विरहके ताप।
दर्शन-स्पर्श-सुधा बरसाकर जीवन-दान करो निष्पाप॥
पल-पलमें मूर्छित होती, फिर करती जाग करुणा-क्रन्दन।
हा गोविन्द, गोपिका-वल्लभ, गोपति, प्रियतम, नँद-नन्दन॥
प्रकटी मिलन-सुधा-धारा उस विरहानलसे अपने-आप।
अकस्मात् पलभरमें ही सब पलटा भाव, मिटा संताप॥
एक अनन्य तीव्र विरहानल जल उठता जब उर अन्तर।
होते प्रकट उसी क्षण प्रियतम स्वयं वहाँ व्याकुल होकर॥
उदय हुए वे मन्मथ-मन्मथ, लिये मधुर मुख-पङ्कज हास।
मुरली मधुर लिये कर, छाया सभी दिशाओंमें उल्लास॥
मिटी व्यथा, भूली स्मृति सारी, मानो था संतत संयोग।
मानो नित्य-प्राप्त था प्रियका चिद्रसरूप दिव्य सम्भोग॥

'गया न कहीं कभी था मैं, जा सकता कहीं न तुमको त्याग'।
बोले प्रिय—'मैं पान कर रहा था छिप तव रसमय अनुराग'॥
कहा श्रीमतीने—'हाँ-हाँ, सच, तुम न गये थे मुझको छोड़।
जा सकते न कभी अपने ही बाँधे स्नेह-बन्धनको तोड़॥
लुका-छिपी-लीलामें जब तुम हो जाते प्रिय! अन्तर्धान।
व्याकुलता लख मन-नैनोंको स्वयं बता देते संधान॥
जहाँ-जहाँ जाते फिर मेरे नेत्र ढूँढ़ने तुमको श्याम।
जहाँ-जहाँ जाता मन पाने तुम्हें, छोड़कर सारे काम॥
वहाँ-वहाँ तुम खड़े दीखते, मोहन! मधुर नचाते नैन।
बरबस हरते चित्त सुधा-से सुना-सुनाकर मीठे बैन॥
मधुर-मधुर मुसकाते, हृदय लगाते, कर मोहन भ्रूभङ्ग।
परम सुखद संस्पर्श प्राप्तकर होते धन्य, सुखी सब अङ्ग॥
सदा साथ रहते तुम मेरे, हो चाहे समीप या दूर।
जीवनमें भीतर-बाहर तुम, बस, छाये रहते भरपूर'॥
यों संयोग सुख-सुधा-रस-सागरमें दोनों हुए निमग्न।
उदित प्रेम निर्मल भास्कर हो मोह-निशा कर देता भग्न॥
प्रेमास्पद-सुख-रूप त्यागमय प्रेमराज्यके ये दो तत्त्व।
मिलन-वियोग नित्य रसवर्धक, दोनों रखते परम महत्त्व॥

[३९४]

(राग आडाणा—तीन ताल)

तुम बिनु बीतत छिन-छिन जुग-सम जीवनधन! बनवारी।
जरत रहत नित हिय दावानल दारुन दहत देह सारी॥
पै या तैं सुख होत जु तुमकूँ आवत जब यह सुधि न्यारी।
तब अति उपजत मो चित महँ सुख मिटत मरम पीरा सारी॥
धन्य वियोग-जनित मेरौ दुख जो तुम्हरे हित सुखकारी।
वा दुख पै हौं नित्य निछावर, पल-पल जाऊँ बलिहारी॥

जुग-जुग जनम-जनम रोवत मोय मिलत रहै यह सुख भारी।
तुम्हरौ सुख ही है मेरौ सुख केवल, मन्मथ-मनहारी॥
या सिवाय नहिं जगै कबहुँ कछु कोउ अभिलाषा अघहारी!।
बिछुरन-रोवन, मिलन-हँसन सब तुअ सुख-हित गिरिधारी॥
सुनि मृदु मधुर बचन प्यारी के पुलकित तन मुरलीधारी।
निज सुख हेतु त्याग लखि सखि कौ उमग्यौ हिय रह सुधि-हारी॥
निकस्यौ दृग-द्वारिका मधु-रस सो अमृत अनुत्तम बिस्तारी।
दोउ अति विह्वल भये प्रेमबस उदई प्रीति-रीति न्यारी॥
रहे मौन कछु काल रसिक प्रभु तब रस-बानी उच्चारी।
'मो पै प्रिये! बस्तु नहिं कोऊ तुम्हरे रसकी अनुहारी॥
कैसें करि सुख पहुँचावौं तोय त्याग-रस-मतवारी।
जुग-जुगको मैं रिनी, न मो पै वा रति रिन-सोधनवारी'॥
सुनि प्रिय बचन परी चरननि में प्रेमातुर सर्बस हारी।
लई उठाय तुरत प्रियतम ने भरी नेह भरि अँकवारी॥

[३९५]

(राग वागेश्री—ताल कहरवा)

कोटि-कोटि कंदर्प-दर्पहर हैं माधव सौन्दर्य-निधान।
तुम्हें देखते ही बढ़ आयी इनमें सुन्दरता सुमहान॥
माधव हैं सौन्दर्य अतुल-माधुर्य-रस-सुधा पारावार।
शशि-ज्योत्स्नासे सागरकी ज्यों उठती आनन्दोर्मि अपार॥
देखो! कैसे विह्वल हो, ये भूल स्वरूपानन्द पवित्र।
तव मुख-कमल-निरीक्षण-सुखमें खड़े विभोर लिखे-से चित्र॥

[३९६]

(राग विहाग—तीन ताल)

श्रीमती! छमा करौ, तजि मान।
हौं तो सदा तिहारौ सेवक, तुम स्वामिनी सुजान॥
बेर भई या कारन मोकूँ, करत रह्यौ तव ध्यान।
देखत रह्यौ निरंतर अति समीप तुम कूँ रसखान॥

करत रहीं नव-नव नाना-बिधि लीला तुम मो संग।
अति प्रत्यछ मिलन-माधुरि अति, रसमय कथा-प्रसंग॥
मधुर अमिय-रस-बरसी बचन, मनोहर मधुरालाप।
सुनत, निहारत रूप-माधुरी, देखत क्रिया-कलाप॥
आनंदामृत परम दिब्य पाकर हौं भूल्यौ भान।
रह्यौ तिहारे सुख-सेवा-रत, तुमहि निकट निज जान॥
टूट्यौ ध्यान, छिपी मन मूरति, उदयौ बाहर-ग्यान।
तब हौं दौरि चल्यौ आतुर ह्वै, मन महँ अति भय मान॥
छमहु छमा-मन्दिर! मेरौ यह मोह-जनित अपराध।
बाहर-भीतर सदा रहौं हौं तो तव ढिग निर्बाध॥

[३९७]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

'तुम कुछ भी कहो भले, कहकर सुख पाओ।
डाँटो, दुत्कारो, पर निकुञ्जमें आओ॥
अब देखे बिना न मैं पलभर रह पाता।
तुमसे क्या कहूँ—न कुछ भी मुझे सुहाता॥
मुरली, लकुटी, प्रिय सखा, वत्स, गो-माता।
है नहीं किसीसे मेरा मन हरषाता॥
मैयाका मिश्री-माखन मुझे न भाता।
मन अधर-सुधा-रस-पान-हेतु बिलखाता॥
क्या भेजूँ तुम्हें सँदेश, न मैं लख पाता।
तुम मिलो तुरत, बस, एक यही मन आता॥
है प्रेम नहीं मुझमें, जो मन सरसाता।
दृग-मधुप-युगल तव मुख-पङ्कज मँडराता॥
तुम हो प्राणोंकी प्राण न अब तरसाओ।
मैं पैरों पड़ता, मुझे न यों छिटकाओ॥

प्राणेश्वरि ! विनती सुनो मुझे अपनाओ।
दर्शन दे मुझको प्राण-दान दो, आओ ॥
आना न रुचे तो मुझको ही बुलवाओ।
दे अनुमति, मुझपर प्रिये ! दया दिखलाओ ॥
तुम अब भी यदि मुझपर न दया लाओगी।
तो मुझे प्राण-संकटमें तुम पाओगी' ॥
दूतीने आ जब यह संदेश सुनाया।
राई रो पड़ी, पड़ी हो मूर्च्छित काया ॥
दौड़ी सखियाँ, कर यत्न चेत करवाया।
बोली—'मैं कितनी हूँ निर्दयी, अमाया ॥
मैं प्राणनाथको हूँ कितना दुख देती ?
उनसे केवल मैं निज सुखको ही लेती' ॥
हो आतुर अति, दूतीको ले सँग आयी।
देखी प्रियतमकी बुरी दशा अकुलायी ॥
निज पटसे पोंछे नेत्र मधुर-मृदु हँसकर।
फिर प्राणनाथसे मिली बाहुमें कसकर ॥
सब मिटी व्यथा मुखपर मुसकाहट छायी।
कर अधर-सुधा-रस-पान गले लपटायी ॥
सब हुए प्रफुल्लित अङ्ग, बही रस-धारा।
सुख अन्तहीनने सारे दुखको मारा ॥

[३९८]

(राग आसावरी—तीन ताल)

स्याम-मन उमग्यौ आनँद-सिंधु।
निरखत मधुर, मनोहर, सुन्दर राधा-मुख-सरदिंदु ॥
तन अति पुलक, मुलक मधु अधरन, ह्रदै प्रेम-रस-पूर।
चंचल नयन अचंचल, अपलक ठिठकि रहे लखि नूर ॥

बही सुधा-धारा अति सीतल, भीगे मधुर कपोल।
गदगद कंठ, गिरा नहिं आवत, बोले रसमय बोल॥
प्रान प्रियतमे! तुम हो मेरे जीवन की आधार।
कबौं न बिछुरौ मन-नयननि तैं सहज कृपा उर धार'॥

[३९९]

(राग बिहाग—तीन ताल)

मो ते भईं चूक अन-गिनती राधे! जान-अजान।
अजहूँ होति रहति पद-पद पर पल-पल बिनु-परिमान॥
दीन्हें, देत रहूँ, मैं तुमकौं दुःख अनेकन भाँति।
लखि न लखौं, न तजौं, मैं कबहूँ अपनी अवगुन-पाँति॥
तुम-सी परम सती कहँ, पावन सखियन की सिरताज।
स्वसुख-वासनारहित, सुखाकर, जियन-मरन मम काज॥
कहँ मैं, अग्य-विसुद्ध-प्रीति-रस नित, अकृतग्य, गँवार।
कितव, नित्य नूतन रस-लोभी, लंपट, लँगर, लबार॥
तुम्हरौ प्रेम परम सुचि, पावन अति, अनन्य एकान्त।
जुग-जुग हौं मन राखौं सबकौ, कोटि कामिनी-कांत॥
नहीं तुम्हारी मेरी राधे! तुलना काहु प्रकार।
तुम उज्ज्वल प्रकास-गुन-निधि, हौं कारौ, निरगुन झार॥
तुम सौं करौं प्रीति जो कबहूँ सो अपने सुख-काम।
नहीं त्याग रंचक वा में, नहि निरमल प्रीति ललाम॥
तदपि न चख्यौ दोष एकहु मन, गुन करि जाने दोस।
बढ़त न रुकी, प्रेम-रस-सरिता अमित नित नये जोस॥
तुम्हरे बिमल हृदय-रस कौ मैं करूँ नित्य अपमान।
तदपि बढ़त देखौं, मैं तुम्हरी पावन प्रीति अमान॥
सर्व त्यागमय अति महान यह तुम्हरौ दुरलभ भाव!
तदपि दैन्य तें सन्यौ सहज नित, तनिक न मान-लगाव॥

भाव-सुधा-रस-बारिधि या कौ मिलै जु सीकर एक।
बनै धन्य मेरौ जीवन, तब रहै प्रेम की टेक॥
सहम गई, लज्जित भइ भारी, राधा सुनि प्रिय बैन।
धरती लगी कुरेदन, धारा बही सलिल दोउ नैन॥
बानी रुकी, कंठ भये गदगद, काँपी कंचन देह।
बरसन लग्यौ अमित उर अंतर सहज दैन्य-रस-मेह॥
अधम, निपट गुनरहित, मलिन-मन, औगुन की आगार।
विरहित नित सौन्दर्य, रहित माधुर्य कुरूपाकार॥
लेती रही नित्य सुख तिन्ह तें, निज सुख कौ नित चाव।
इतनौ ही प्रेमार्थ लह्यौ मन, यही मम महाभाव॥
बोली अति धीरज धर राधा—'सुनो, जीवनाधार!
हौं अति नीच मान की भूखी, मन अति तुच्छ बिचार॥
निकसे नहीं बिषम बानी सुन, या तें ये पबि-प्रान।
विदर्‌यौ नहीं हियौ कुलिसाधिक तुम तें लहि सम्मान॥
निस्चै ही प्रानेस्वर हौ तुम इतने अर्थ 'गँवार'।
देख रहे जो मो-सी नीच अधम मैं गुन-संभार॥
इसी भाँति तुम निस्चै ही हौ इतने अर्थ 'लबार'।
जो गुन-रूप-हीन मेरे गुन गाते बारंबार॥
निस्चै ही 'लंपट' हौ जो तुम करौ सबहिं सुख-दान।
नित 'नव-रस-लोभी' तुम, तुम कूँ प्रेम-तत्त्व-कौ ग्यान॥
कितव, लँगर, साँचे तुम छल सब ठगत फिरत संसार।
सुखमय निज निरमल रस दै तुम लेते स्वयं उबार॥
कोट़ि-कोटि है सक्ति-सरूपा प्यारिन कौ बिस्तार।
मन रख, बने कांत तुम सबके प्रियतम एक उदार॥
मो तें अधिक सकल सुंदर सुचि, मधुर सील गुनधाम।
सहज समर्पित जीवन, अति सुखदायिनि परम ललाम॥

सब तें दीन-हीन हौं कलुषित, मो में इतनो मोह ?
बिनु गुन मानत गुन, स्वभाव बस परानंद संदोह ! ॥
तुम्हरे मुख गुन-सुंदरता सुन सुख मानत मम चित्त।
काम, कलंक, बासना मन की, यहै एक है बित्त॥
मुँह न दिखाऊँ तुमहि, कहा मैं करूँ किंतु असहाय।
हिय बिदरत तुव दरसन बिन छिन, जरत जोर जिय हाय ! ॥'

[४००]

(राग नट—तीन ताल)

नहीं तुम्हारा अन्तर देखा, देखे नहीं भीतरी भाव।
भूलभरी अपनी आँखोंसे देखा बाहरका बर्ताव॥
भूल गयी मैं शील तुम्हारा सहज नित्य निर्मल निर्दोष।
अपने दृष्टि-दोषसे मुझको दिये दिखायी तुममें दोष॥
जाने लगे श्यामसुन्दर जब तुम मथुरा, हो रथ-आरूढ़।
लगी समझने निष्ठुर निर्दय प्रेमशून्य मैं तुमको मूढ़॥
यद्यपि तुम निज आत्मा-मनको छोड़ गये थे मेरे पास।
लोक-दिखाऊ तनसे जाते भी, थे अतिशय खिन्न, उदास॥
मेरे शुद्ध प्रेमका करके जान-बूझकर तुम अपमान।
जाते हो, माना, अकुलायी, लगी चोट, भड़का अभिमान॥
प्रेमरहित मिथ्या अभिमानिनि मुझ कुटिलाका यह दुर्भाव।
डाल न सका तुम्हारे निर्मल प्रेम-सूर्यपर किंतु प्रभाव॥
हुए प्रकट, नित नव-वर्धन-सौन्दर्य कमल-मुख किये मलान।
अपराधी-से खड़े हो गये, मस्तक नीचा किये अमान॥
नित्य अधर मुस्कान मधुरयुत मदन-मनोहर नित्य किशोर।
क्यों हो रहे खिन्न यों ? परमानन्द-सिन्धु मुनि-मानस-चोर॥
देख सहम मैं गयी, मलिन मुख-शशि, मन उमड़ा दुःख अपार।
बोल न सकी, बह चली नेत्रोंसे उत्तप्त अश्रुकी धार॥

बोले—'अति अगाध प्रेमोदधि-रूपे हे राधे ! सुख-खान।
तेरे गुण-सौन्दर्य-सुधा अनुपमसे पोषित मेरे प्राण॥
तेरे बिना नहीं क्षण भर भी है मेरा सम्भव अस्तित्व।
तू ही मेरी जीवन-जीवन, तू ही मेरी जीवन-तत्व॥
आत्मा तो तू ही है मेरी, तू ही मेरी है आधार।
तुझसे ही मैं हूँ, तुझसे ही चलते ये सारे व्यापार॥
नहीं गया था तुझे त्याग मैं, नहीं कहीं जा सकता त्याग।
मेरे प्राणोंका है बस, परमाश्रय, तेरा ही अनुराग॥
देह गया था मथुरा, सो भी लोक-दृष्टिसे ही केवल।
पर कर दिया उसीने आह्लादिनि ! तुझको अत्यन्त विकल॥
तेरी इस व्याकुलतासे ये प्राण रो उठे, हो उद्विग्न।
प्राणरूप-अनुराग इसीसे हुआ तुरंत शोक-संलग्न॥
शोकाकुल अनुराग-प्राणमें उठी त्वरित आतुरता जाग।
खड़ा कर दिया मुझे उसीने तेरे सम्मुख ला, बड़भाग॥
कर अपराध क्षमा हे करुणामयी ! क्षमामयि ! स्नेहागार !
निज-स्वरूप-महिमामयि स्वामिनि ! नित्य सहज ही रहित विकार॥
हो प्रसन्न-मुख देख सकृत इस अपने आश्रित तनकी ओर।
ह्लादिनि ! मुझे हँसा दे, हँसकर, रससागरे ! न जिसका छोर॥
नहीं समझना कभी मुझे रञ्चकभर भी अपनेसे भिन्न।
दिव्य अभिन्न प्रेमरस-सागर नित्य-निरन्तर अपरिच्छिन्न॥
प्रियतमके सुन वचन, भाव दर्शन कर, मैं हो गयी निहाल।
सदा बिकी बेमोल, पड़ी आतुर प्रिय-पद-पङ्कज तत्काल॥

[४०१]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

स्याम बतावत प्रेम-मूर्ति मोहि, सदा सुनावत आदर-बैन।
हौं निज हृदय देखि सरमाऊँ राखूँ नित्य झुकाये नैन॥

इत-उत दृष्टि जाय नहिं मेरी, सुनती रहूँ स्याम के बैन।
यासौं ध्यान-निरत हौं रहती, रखती निसि-दिन नीचे नैन॥
रूप-सुधा प्रिय स्याम-रूप की पीकर मस्त हो रहे ऐन।
और न कछु देखन चाहत यासौं लाड़िलि के नीचे नैन॥
प्रियतम की मुख-छबि मनहर पै नित्यहि मोहित रहते नैन।
दीठि न लगै, याहि डर सों वह सदा झुकाये रखती नैन॥

[४०२]

(राग वागेश्री ताल—त्रिताल)

स्याम-स्यामा दोउ करत बिहार।
नव निकुंज सौरभित सुमनकी छाई छटा अपार॥
खेलत हँसत लसत अति प्रमुदित बहत सुधा रस धार।
बढ़त अमित अनुराग परस्पर लोचन ललित निहार॥
सुचि रसपान-प्रमत्त परस्पर सुख सागर लहरात।
उठत तरंग बिबिध बिधि अनुपम फूले अँग न समात॥
रस-सागर रस-सरिता दोऊ, मिलि, करि प्रेम विकास।
अंग-अंग राजत सुषमा श्री माधुरि अमित विकास॥
रहत निहारत पल-पल दोऊ निरखि न नैन अघात।
उदित प्रेम प्रमुदित मन अतिसय पुलकित मधुमय गात॥

[४०३]

(राग छाया नट ताल—एकताल)

नव-निकुंज सुख-पुंज बिराजित, मोहनि मोहन मधुर महान।
सुन्दर बदन, सदन रसमाधुरि, बंकिम भृकुटि उभय रसखान॥
प्रिय-अनुरागिनि नित-बड़भागिनि निरखत नित नव रूप सुजान।
करत स्याम-दृग मधुप निरन्तर लाड़िलि-मुख-पंकज-मधुपान॥
कुटिल कटाच्छ बिसिख तन जरजर, पाइ सुधा-मधु मृदु वर हास।
भये परस्पर सबल रम्य तन, रचे रुचिर सुचि सुखद बिलास॥
प्रेम सुधारस-उदधि मध्य मृदु तीव्र उठत रस बिबिध तरंग।
सहज तरंगायित मन-मति सब पुलकित ललित अंग-प्रत्यंग॥

[४०४]

(राग आसावरी ताल—कहरवा)

मुरली ली, प्रिय छिप गये, बिरहाकुल गंभीर।
मानिनिसी बैठी, निल, रससागर के तीर॥

[४०५]

(राग बसन्त—तीन ताल)

बच रहे थे दो, नहीं जग-भान था।
लोक-सत्ताका मिटा सब ज्ञान था॥
नहीं कुछ कर्तव्य मनमें शेष था।
नहीं तिलभर जगत्-स्मृतिका लेश था॥
मिट गया सब भोगका अस्तित्व था।
कर्म न था कहीं तनिक कर्तृत्व था॥
मैं तथा मेरे हृदय-धन श्याम थे।
खेलते रहते सदा अविराम थे॥
थी नहीं मनमें कहीं कुछ वासना।
थी नहीं कुछ भी किसीकी त्रासना॥
अखिल प्राणि-पदार्थ थे मनसे हटे।
सभी ममता-रागके बन्धन कटे॥
श्याम शेषी, मैं उन्हींकी शेष थी।
एक यह 'प्यारी अहंता' शेष थी॥
एक 'प्रिय' हैं, 'प्रिया' उनकी एक मैं।
एक 'वे' बस, दूसरी हूँ एक 'मैं'॥
नहीं दोसे भिन्न कुछ भी था कहीं।
सब सिमट मिटकर समाया था यहीं॥
चल रही दोमें सदा रँगरेलियाँ।
हो रही थीं सुखमयी रस-केलियाँ॥

था नहीं व्यवधान कोई भी कहीं।
एक ही दो बने लीलारत वहीं॥
दो मिटे, फिर, एक ही बस हो गये।
भेद सारे सब तरहके खो गये॥
मैं समायी श्याममें हो श्याम ही।
प्रिया बन मुझमें समाये श्याम भी॥
कौन जाने श्याम हैं या राधिका?
नहीं अब आराध्य हैं, आराधिका॥
सब तरह घुल-मिल हुए बस, एक हैं।
इन्द्रियाँ, मन, चित्त, मति न अनेक हैं॥
सभी अवयव अङ्ग आपसमें मिले।
एक ही प्रिय मधुरिमासे हैं खिले॥
एक थे पहले, अभी भी एक हैं।
यही दोनोंकी मधुमयी टेक है॥

[४०६]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

महामहिम मुनि-मनहर, मञ्जुल, मधुर परम मङ्गलमय श्याम।
पल-पल वर्द्धमान शुचि अनुपम दिव्य रूप-लावण्य ललाम॥
कुटिल भ्रुकुटि करती आकर्षित बरबस मनको अपनी ओर।
उमड़ उठा रस-सागर परमानन्द, कहीं भी ओर-न-छोर॥
रूप सिन्धुमें मन निमग्न था, पर न तनिक-सा जगा विकार।
जगना दूर रहा, स्वाभाविक चित्त हो गया शुचि अविकार॥
तन्मयता हो गयी, तनिक भी रहा न तनका बाह्य ज्ञान।
प्रलय नहीं, पर मिटी जगत्की सारी रचना, सारा भाव॥
इतनेमें हो गया अचानक आँखोंसे ओझल वह रूप।
सहसा व्यथा-वियोग-वह्नि जल उठी, बढ़ गयी विपुल अनूप॥

पर आश्चर्य, विरह-दावानलमें प्रियतम-स्मृति रही अभङ्ग।
ले अगणित शीतल सुधांशुकी सुधामयी शीतलता सङ्ग॥
घोर तापमें थी विचित्र अनुपम शीतलताकी अनुभूति।
सहज विरोधी धर्म प्रकट थे, युगपत थी अद्भुत आकूति॥
सखी! बताऊँ मैं कैसे प्रियतमके प्रतिदिनके वे छन्द।
प्रियमत हैं स्वच्छन्द सदा, ये लीलाएँ भी हैं स्वच्छन्द॥

[४०७]

(राग जोगिया—तीन ताल)

खड़ा यह कौन कुंजके द्वार?
देखो ललिते! अरी विसाखे! करो न तनिक अबार॥
है घनश्याम वारिधर? है या गिरधर स्याम सुजान?।
उमड़ा घन नूतन? या आये घर मोहन रस-खान?॥
नव-जलधर में इंद्रधनुष है? या है सिर सिखि-पक्ष?।
बक-पाँती उड़ रही? हिल रही मुक्त-माल या वक्ष?॥
घन-तन-पर बिजली है? या है मोहन-तन पट पीत?।
मंद मेघ-गर्जन है? या है प्रियका मुरली-गीत?॥
सजनी! जाओ तुरत, बताओ आ मुझको सब बात।
हँस बोलीं—'सखि! माधोसे मिल करो सुसीतल गात'॥

[४०८]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

प्रिय-बियोगमें अबिरत स्मृति सौं भयौ नित्य मानस-संयोग।
भई बियोगिनि, नित्य स्याम-संजोगिनि, भूली दुःख-बियोग॥
रह्यौ न मन कछु देस-काल-कुल-लोक-बेद के भय कौ भाव।
नित निरवधि निर्बाध मिलन मनभर प्रिय कौ, चित नित नव चाव॥
उदै भई रति पूर्ण तीव्रतम, छाई सब दिसि, ओर-न-छोर।
बितरत नित्य नवीन अमित रस-सुख पिय, नित्य-रमन मन-चोर॥
भंगुर-भयद मिलन सुख सीमित, सुख-बियोग अतिसै अबिराम।
या तैं रहीं गोपिका ब्रज में, तजि भजनीय द्वारका-धाम॥

[४०९]

(तर्ज गजल—ताल रूपक)

सूखकर काँटा हुआ तन था बिकल बेहाल मन।
बाल बिखरे शुष्क थे मुरझा हुआ था विधु-वदन॥
मुख निकलती आह थी, थीं आँख आँसूसे भरी।
वसन अस्तव्यस्त थे, थी दुख-लता पूरी हरी॥
सखी समझाने लगी, 'तुम हो रही क्यों हो विकल?
भूल जाओ उसे अब क्यों रट रही प्रत्येक पल?'
'भूल जाना चाहती हूँ, भूल पर सकती नहीं।
ज्यों हटाना चाहती मन, दौड़कर जाता वहीं॥
नहीं लेना चाहती मैं उस निठुरका नाम भी।
जीभ पर रटती सदा, नहिं मानती मेरी कभी॥
रोकती हूँ कानको, पर वे न मेरी मानते।
प्रियवचन मुरली-सुधा ही सिर्फ पीना जानते॥
बंद करती हूँ निगोड़ी नासिकाको मैं सदा।
श्याम-अंग-सुगंधको, पर, नहीं तजती वह कदा॥
कब चरणरज सिर चढ़ाकर धन्य हूँगी मैं अमर।
कब करूँगी नेत्र शीतल निर्निमिष मुख देखकर॥
कब लगाऊँगी अगर-मृगमद-चुआ-चन्दन शरीर।
कब चढ़ाऊँगी सुमन सुरभित चरण, होकर अधीर॥
फट रहा है हृदय मेरा, जल रही ज्वाला अमित।
कहाँ जाऊँ? क्या करूँ? पाऊँ कहाँ प्रियतम अजित?'॥
आ गये नटवर अचानक लिये मुरली मधुर कर।
वितरते आनन्द, छायी मुसकराहट मृदु अधर॥
देखते ही मिट गये संताप तन-मनके सकल।
सुख-सुधोदधि उमड़ आया, हो गया जीवन सफल॥

ली तुरंत मधुर हृदयमें मिली खोई निधि ललाम।
सह न पायी तनिक-सा अवकाश, भूली निरख श्याम॥
हुई विस्मृति सकल जगकी, 'मैं' तथा 'मेरा' गये।
एक लीलामय मधुर रस-रसिक रसनिधि रह गये॥

[४१०]

(राग जैजैवंती—ताल कहरवा)

समझ रही मैं लाभ चित्त-इन्द्रिय-निग्रहका सहित बिबेक।
रोके भी रखती हूँ इनको, सदा-सर्वदा रखकर टेक॥
मर्त्य-भोग सब असत्, तुच्छ अति सभी नगण्य स्वर्गके भोग।
अपुनर्भवमें भी आकर्षित हो न चित्त करता संयोग॥
पर प्रिय-गुणगण, मुरली-रव कर देते सभी अङ्ग चञ्चल।
श्रोत्र मानते नहीं, चित्त हो जाता विकल परम विह्वल॥
मन करता—यदि रोम-रोम हो जाता केवल श्रोत्र-स्वरूप।
पीता वह अविरत प्रिय-गुण-गण-मुरली-रव-रस मधुर अनूप॥
कभी देख पाती यदि प्रियको मनमें उठती एक तरंग।
हो जाता यदि तुरत नयनमय मेरे तनका अँग-प्रत्यङ्ग॥
फिर तो डूबी रहती मैं उस रूप अनन्त सिन्धुमें नित्य।
उठ जाती मायाकी सारी मोहमयी यह हाट अनित्य॥
प्रियकी प्रिय इच्छासे मैं करती यदि उनसे वार्तालाप।
मनमें आता बने तुरत, सारा तन 'मुखमय' अपने-आप॥
करती रहूँ बात प्रियतमसे मधुर-मधुर मैं अनियत काल।
दिव्य प्रेमरस रहूँ पिलाती-पीती, होती रहूँ निहाल॥
सखिसे यों कह, ध्यानमग्न हो, राधा मौन हुई तत्काल।
प्रकट हो गये तभी अमित सौन्दर्य-सुधा-सागर नँद-लाल॥

[४११]

(राग गुनकली—तीन ताल)

मेरे इस प्रणको सुन लो, हे मेरे प्राण-प्राण सर्वस्व।
छोड़ूँगी अब मैं न परम निधि बहुत दिनोंपर मिला निजस्व॥
तुम-मैं एक हृदय हैं दोनों, एक प्राण हैं दोनों नित्य।
जान रही मैं इसे—यही है हम दोनोंका तात्त्विक सत्य॥
पर मैं नहीं जानती, नहीं बता सकती क्यों हुआ वियोग ?।
अति संतप्त जल रही थी, कर रही भयानक पीड़ा-भोग॥
यह भी सत्य, सदा देते रहते थे तुम दर्शन-आनन्द।
खेल रहे लीलामय तुम छिपने-दिखनेका खेल अमन्द॥
अब तो बाहर भी मैं तुमको सहज पा गयी हूँ प्रिय ! आज।
भीतर-बाहर, पद-तलमें अब पड़ी रहूँगी तज सब लाज॥
खाने-पीने, सोने-उठनेमें मैं सदा रखूँगी साथ।
कभी नहीं हटने दूँगी, मैं नहीं हटूँगी, मेरे नाथ !॥
मिटी सभी ममता अग-जगसे, हुई सभीमें समता प्राप्त।
रहा एक बस, तुममें ही मेरा सम्बन्ध मधुर नित व्याप्त॥
नहीं कामना भोग-मोक्षकी किंचित् भय-लज्जा न विषाद।
हुई मत्त पीकर मैं प्रियतम प्रेम-सुधा-मद दिव्य प्रसाद॥
बोले प्रियतम—'राधे ! हम-तुम नित संयुक्त नित्य हैं एक।
अमिलन-मिलन रस-सुधास्वादन कर रखते सुप्रेमकी टेक'॥

[४१२]

(राग आसावरी—तीन ताल)

सखी ! मैं भई अति असहाय !
त्रिभुवन-मोहन स्याम हमारे भए बावरे हाय !!
सहज चतुर-चूडामनि चिन्मय, सहज महामतिमान।
सकल ग्यान-आधार, ग्यान-निधि, आप स्वयं भगवान॥

संभव भयौ असंभव, तिन कौं निस्चै भयौ विकार।
भूले भले-बुरे के सगरे या तें सोच-बिचार॥
मो में सदा रूप-गुन-सुन्दरता कौ सहज अभाव।
मो प्रति बढ़त रहत तिनके मन तदपि नित नयौ चाव॥
मो में बृथा प्रेम करि मोहन रहे दुखहि सुख जान।
कैसे मिटै मोह-ब्याधी यह तिनकी विषम महान॥
नहिं कोऊ दैवग्य, बैद जो करै जथार्थ निदान।
होय चिकित्सा, जासौं प्रियतम बनैं स्वस्थ धीमान॥
मेरे कारन 'सुख-वंचित' जो अग-जग के सुख-मूल।
कहा करूँ, कछु बस नहिं मेरौ, चुभत रहत हिय सूल॥
चतुर-भुजा नारायन कौं मैं पूजूँगी सबिधान।
करुन पुकार सुनतहीं तिन के पिघरि जायँगे प्रान॥
दै बरदान करेंगे मो कूँ कृपा-निधान निहाल।
बरन करैंगे रस-सुखदायिनि सुंदरि कोउ नँद-लाल॥
सुख साँचिलौ मिलैगौ तिन कौं, पाइ सरस रस-खान।
सुखी होयगौ तब मन मेरौ, तिन कौं सुखिया जान॥
यौं निस्चै करि करन लगी वह जप-तप परमानंद।
एक लालसा—पावैं प्रियतम अनुपम सुख स्वच्छंद॥

[४१३]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

मधुर-मधुर, सुन्दर-सुन्दर प्रियतमके—मोह-नाश के काज।
करन लगी राधा आराधन नारायन कौ सब बिधि साज॥
ब्रत-उपवास-नेम तन-धारै, एकहि रही लालसा जाग।
त्याग करें मोहन, जो करते मोहबिबस मोमें अनुराग॥
अतुलनीय सुख लाभ करें वे, पाय जोग्य संगिनि कौ संग।
तब मैं परम सुखी होऊँगी, नाच उठैंगे सगरे अंग॥
एक लगन सौं चली साधना प्रियतम-सुख-बांछा मन लीन।
परमत्यागमय स्व-सुख-कल्पना-लेश-गन्ध-सम्बन्ध-विहीन॥

[४१४]

(राग ललित—तीन ताल)

प्रानप्रिय मथुरा जाय बसे।
भयौ मनोरथ सफल पुरानौ हिरदै के संताप खसे॥
जद्यपि ज्वाला जरी हिये बिच स्याम-बिरह की भारी।
दियौ परम सुख तदपि स्याम-सुख-काम-जरनि कौं जारी॥
पाइ सुयोग्य संगिनी सुख सौं करत होइँगे लीला।
बिसरि गये होंगे हरि मो कौं जो गुन-रहित असीला॥
नारायन की परम कृपा तें मन की आसा पूरी।
राधा सुखी भई अब सब बिधि करि पिय-सुख-सुध रूरी॥
काल अनंत जरौं बिरहानल, कह्यो सखिन सौं राधा।
प्रियतम सुखी रहैं, नित नव सुख-लाभ करैं बिनु बाधा॥*

[४१५]

(राग मालकोंस—तीन ताल)

औचक चौंकि उठे हरि बिलखत।
'हा राधा प्रानेस्वरि ! इकलौ छाँड़ि मोहि भाजी कित॥
ललिता ! अरी बिसाखा ! धावौ, रंगमंजरी ! धावौ।
मेरी प्रानाधिका राधिका कौं झट लाय मिलावौ'॥
लंबे साँस लेहिं, प्रलपहिं, बिलपहिं, दृग आँसू ढारैं।
रुकमिनि सहमि बहुत समुझावति, तदपि न होस सँभारैं॥
पटरानी सब जुरि आईं, लखि दसा, मनहिं भय मानी।
कहा भयौ, पिय भए बावरे, कहा दैव नै ठानी॥
रानी एक दौरि लै आई श्रीमति की छबि मनहर।
देखत ही हँसि उठे स्याम, लीन्हीं लगाय आतुर उर॥

---

* पद-संख्या ४१२ से ४१४ तक एक ही लीलाके अंश हैं।

मेरे हिय सौं लगी रहौ तुम निसि-दिन राधा प्यारी।
जीवन-मूरि ! छाँड़ि मोहि, छिन भर रहौ न कबहूँ न्यारी ॥
देखि विचित्र दसा प्रियतम की, बिस्मित सब पटरानी।
निज प्रेमहि धिक्कारन लागीं, भई उदय मन ग्लानी ॥
कियौ चेत हरि नै, पौंछे पट नैन मृदुल-अरुनारे।
पटरानी पद-पदुम परीं, सब विलखि रहीं मन मारे ॥
कर-कमलनि हरि नै उठाइ निज, धीरज दै चुचकारी।
मृदु हँसि कह्यो—'नैकु सकुचौ मति, छाड़ौ चिंता भारी ॥
सपनौ देखि भयौ हौं आतुर, सुध-बुध बिसरी सारी।
करौ हृदय बिस्वास, सदा हौं प्राननाथ, तुम प्यारी' ॥
आस्वासन दै या बिधि रानिन कौं हरि नै समुझाई।
राखी हृदय गोय राधा-रति, अनुपम, परम सुहाई ॥

[४१६]

(राग-देस—तीन ताल)

नव-निकुञ्जमें कृष्ण प्रेष्ठतम थके शरीर पधारे आज।
श्रान्त कलेवर था, सुभालपर श्रम-कण-बिन्दु रहे थे भ्राज ॥
राधा श्रमित देख प्रियतमको हुई दुखी, कर मधु मनुहार।
सुला दिया कोमल कुसुमोंकी शय्यापर प्रियको, दे प्यार ॥

करने लगी तुरत सुरभित पंखेसे, उनको मधुर बयार।
श्रम कम हुआ, स्वेद-कण सूखे, राधाको सुख हुआ अपार ॥
करने लगी पाद-संवाहन मृदु कर-कमलोंसे अति स्नेह।
श्रान्ति मिटी, मोहन-मुखपर बरसा मृदु-मधुर हास्यका मेह ॥

राधाने कहा—'प्रियतम अब कर लें निद्राको स्वीकार।
सो जायें कुछ काल, बढ़े शरीरमें स्फूर्ति-सँभार' ॥

नेत्र निमीलित हुए श्यामके, सोये सुखकी नींद मुकुन्द।
शायित प्रियको देख परम सुख, बढ़ा अमित राधा-आनन्द॥

होने लगे उदय तनमें आनन्द-चिह्न फिर विविध प्रकार।
हुआ उदय जब 'स्तम्भ', पाद-संवाहन छूटा तब 'क्षण' बार॥
प्रकट हुआ 'सेवाव्रत', तत्क्षण बोला श्रीराधासे आप।
'सेवानन्द-विभोर! किया कैसे सेवा तजनेका पाप?'॥

चौंकी, सजग हो गयी राधा, मनसे निकली करुण पुकार।
बना विघ्न 'सेवा' का 'सेवानन्द' जान, देकर धिक्कार॥
तिरस्कार कर उसका बोली—"मैं मन रख निज सुखकी चाह।
आनँद-मग्न हुई, सेवाकी मैंने की न तनिक परवाह॥

सचमुच मैंने किया आज यह घोर पाप, अतिशय अपराध।
सेवा-त्याग रखी मन मैंने 'सेवानन्द'—विघ्नकी साध॥
कौन स्वार्थसे सनी जगत्में मेरे-जैसी होगी अन्य।
जो न कर सकी प्रियतम-सेवा रख 'सेवाव्रत'-भाव अनन्य"॥

═══ ★ ═══

प्रेम-समुद्रकी मधुर तरङ्गें

[४१७]

(राग भूपाली—ताल कहरवा)

प्रियतमसे मिलनेको जिसके प्राण कर उठे हाहाकार।
गिना नहीं उसने पथकी दूरीको, भयको किसी प्रकार॥
विकल,चल पड़ी वह निर्भय हो, बीहड़ वनमें बिना विचार।
दुःख-कष्ट बन गये सभी पथके पाथेय, सुखद आहार॥
नहीं ताकती किसी ओर वह, नहीं किसीसे भी वह डरती॥
नहीं प्रलोभनमें पड़ती वह, नहीं चाह कुछ भी करती॥
पद-पदपर, पल-पल प्रियतमकी प्रिय सुधिमें आहें भरती।
चली जा रही अटल लक्ष्यपर, वह जगमें जीवित मरती॥
वस्तुमात्रसे मेरापन उठ गया, मिट गया जगका राग।
नहीं किसीसे द्वेष रह गया, जाग उठा मन विमल विराग॥
मिटी कामना विषयमात्रकी, रहा न असत् अहंका भाग।
ममता पूरी प्रभु-चरणोंमें, अपनापन, अनन्य अनुराग॥
तन-मन-भोग, स्वर्ग-अपुनर्भवकी सुधि सारी सहज विसार।
प्रिय-आकर्षणसे खिंच वह जा पहुँची प्रियतमके दरबार॥
प्रेम-सुधाकी मधु धारासे प्रियतमकेपन-पद्म पखार।
वह गिर पड़ी अचेतन-सी हो चेतन-चरणोंमें अनिवार॥
उठे प्राणधन, उसे उठाया, प्रेमविकल भरकर अँकवार।
लगा लिया निज वक्षःस्थलसे, वही अश्रुओंकी शुचि धार॥
कोमल कर धर शीश, प्राणधन मधुर दृष्टिसे उसे निहार।
अमिय-मधुर वाणीसे फिर वे करने लगे सरस सत्कार॥
दुर्लभ-दर्शन-स्पर्श प्राप्तकर, प्रियतमके सुन प्रेमालाप।
आनन्दोदधि उछला, उसमें उठी तरंगें अमित, अमाप॥
धन्य हुई वह, मिटा सदाके सकल, विरहानल-ताप।
रखा उसे निज हृदय-देशके मधु-मन्दिरमें प्रभुने आप॥

[४१८]

(राग लावनी—ताल कहरवा)

[मारवाड़ी बोली]

अब तो कुछ भी नहीं सुहावै, एक तुं ही मन भावै है।
तनै मिलणनै आज मेरो हिवड़ो उछल्यौ आवै है॥
तड़फ रह्यो ज्यूं मछली जल विन, अब तूँ क्यूं तरसावै है।
दरस दिखाणेमैं देरी कर क्यूं अब और सतावै है?॥
पण, जो इसी बातमैं तेरौचित राजी होतो होवैं।
तौ कोई भी आँट नहीं, मनै चाहै जितणौ दुख होवै॥
तेरै सुखसैं सुखिया हूँ मैं, तेरे लिये प्राण रोवै।
मेरी खातिर प्रियतम! अपणै सुखमैं मत काँटा बोवै॥
पण या निश्चै समझ, तनें मिलणैकी खातर मेरा प्राण।
छिण-छिणमें व्याकुल होवै है, दरसणकी है भारी टाण॥
बाँध तुड़ाकर भाग्या चावै, मानैनहीं किसीकी काण।
आठों पहर उड्या-सा डोलै, पलक-पलककी समझै हाण॥
पण प्यारा! तेरी राजीमैं है नित मेरौ मन।
प्राणधिक, दोनूं लोकाँकौ तूँ ही मेरौ जीवन-धन॥
नहीं मिलै तौ तेरी मरजी, पण तन-मन तेरै अरपन।
लोक-वेदहै तूँही मेरौ, तूँ ही मेरौ परम रतन॥
चातककी ज्यूं सदा उड़ीकूँ कदे नहीं मुहनैं मोड़ूँ।
दुख देवै, मारै, तड़पावै तो भी नेह नहीं तोड़ूँ॥
तरसा-तरसाकर जी लेवै तो भी तनैं नहीं छोड़ूँ।
झाकूँ नहीं दूसरी कानी तेरैमैं ही जी जोड़ूँ॥

[४१९]

(राग काफी—तीन ताल)

छलकि रहि गोपी मन अति प्रीती।
चली छाँडि लज्जा सब कुल की, त्याग लोककी नीती॥

भई बावरी, दृग अपलक, सिर बिथुरे कुंचित केस।
सुधि नहिं कछु मन-तन-बसननि की, कौन सँवारै बेस॥
भटकि रही मद-छकी-सदृस अति, नहीं बाह्य कछु चेत।
रुकि-रुकि बोलि उठत गद्गद—'हा प्यारे! प्रान-निकेत!'॥
नाचि उठी करि हास्य मनोहर—'आय गए प्रानेस'।
कह, पुनि पकरन भुजा पसारी, परम प्रीति-आवेस॥
नहीं पाय, संकुचित बाहु करि, परी धरनि बेहाल।
मन-भावन गोपी-प्रानाधिक आय गये ततकाल॥
लई उठाइ, अंक सिर राख्यौ, करि निज बसन बयार।
भयौ चेत, आनंद हृदय अति, मिली सुभुजा पसार॥

[४२०]

(राग कालिंगड़ा—तीन ताल)

प्रियतमकौ अतिमधुर मनोहर 'कृष्ण' नाम जब सुन्यौ ललाम।
भर्‌यौ अमिय रस तबहिं हृदय में, भरत रहत तब तें सुख-धाम॥
अग-जग केबिसरी मैं तब तें सगरे मीठे-खारे नाम।
'कृष्ण' नाम धुनि मंजु गूँज रहि सब दिस सकल काल अभिराम॥ ॥
सज्जन-सेवित वेद-लोक की मिटी सकल मरजादा-लाज।
पिघल्यौ हियौ, वही दृग-धारा अधर नाम सुचि रह्यौ, विराज॥
रही न सुधि कछु कहन-करन की समुझि न परत कहा यह रोग।
'कृष्ण' नाम-रस उपजावत हिय नितनूतन वियोग-संयोग॥
कबहुँ हँसावत कबहुँ रुलावत, कबहुँ करावत करुन पुकार।
चेत-अचेत करावत पुनि-पुनि कबहुँ मौन, कबहुँ चीत्कार॥
कहा करूँ, जाऊँ कहँ मैं अब मैं पाऊँ जहँ प्राननिके प्रान।
मिलूँ हृदय भर तिन्ह तें मैं सखि! पाऊँ तुरत दुख ते त्रान॥
सखि समुझावन लगी—'सुनो-हे राधा! धरौ हृदय में धीर।
स्वयं कृष्ण मिलि सपदि हरेंगे सगरी तुम्हरे हिय की पीर'॥
इतने ही में सहसा प्रगटे, राधा-प्रिय हरि प्रेमाधार।
विह्वल परी चरन राधा,ली तुरत उठाय, भरी अँकवार॥

[४२१]

(राग जैजैवंती—तीन ताल)

भई गति कैसी सुनु सजनी !
धुनी मनोहर कृष्ण नाम की, जब तैं मधुर सुनी ॥
अचरज भर्‌यौ अमृत हियमें, तातें प्रगटी अगिनी।
बुझै न बिनु पाये यह दरसन-सुधा दाह-समनी ॥
नित्य नितर तड़फत मन, नहिं चैन दिवस-रजनी।
सार-हीन जीवन बिनु प्रियतमसु-मिलन नीलमनी ॥
सखी ! सुदौसी लै चलु,हों जहँ माधव नाम-धनी।
नहिं उपकार बिसाऊँ पल-छिन, रहूँ कृतग्य-रिनि ॥

[४२२]

(राग आसावरी—तीन ताल)

लग्यौ तब हिय मीठौ आघात।
जब वनितोत्सवरूप-सील की दूती ने कहि बात ॥
तब तें घाव हरौ ही है सखि ! पल-पल बढ़ती पीर।
देखन कौं वा रूप-सील-छवि मैं अतिभई अधीर ॥
नव-नीरद-दुति,नटवर सुंदर मोरपिच्छ सिर सोह।
मुरली मधुर अधर परसोभित चिदानन्द-संदोह ॥
मृदु मुसकान नैन-भौं बाँकी, घन घुँघरारे केस।
बिजुरी-बरनबसन तन राजत सुर-मुनि-मोहन भेस ॥
कटि करधनि, पग नूपुर बाजत, गल गुंजा-बनमाल।
कैसे करि सखि ! सपदि बिलोकूँ मैं वह रूप रसाल ॥
नहिंतर, टीस मिटै नहिं कबहुँ सूखै कबहुँ न घाव।
विषम वेदनामें स्मृति-सुख अति रहत बढ़ावत चाव ॥

[४२३]

(राग नट—तीन ताल)

बंदीजन आए गुन गावत।
मोद-भरे मन मोहन-प्रिय गुन-रूप रुचिर बहुभाँति सुनावत ॥

अतुलनीय गुन-रूप-सुधा-निधि कितहुँ न कछु उपमा कवि पावत ।
बिबिध बिचित्र बिमल गुन बरनन करत, सबनि कौ मोद बढ़ावत ।।
भाग्यवान उन बंदीजन कूँ देखि मधुरतम रस बरसावत ।
प्रेम-अगिनि प्रगटी उर-अंतर भोग-राग-अभिलाष जरावत ।।
मधुर रूप गुन-निधि कौं सुनि, मो लगी न बेर हृदय में लावत ।
कर एकाधिपत्य मो मन में आइ बसे पिय हँसत-हँसावत ।।
तब तें सखी ! मैं भई बावरी रही न सुधि कछु करत-करावत ।
कब वे मिलैं प्रान-धन मोकूँ, सरस हृदय सौं हिय सरसावत ।।

[४२४]

(राग दिव्य हिंदोल—तीन ताल)

सखी सौं सुनि वा दिन गुन-गान ।
रंग-रूप-रस-जस परिपूरन रसिकराज रसखान ।।
ता दिन तें उर बसी माधुरी मूरति मोद-निधान ।
चलत-खात, सोवत-जागत नित, पल न परत व्यौधान ।।
सखि ! तुम कहौ सबइ मेरे हित, चहौ सदा कल्यान ।
किंतु बिबस, मोहि सुधि न रही कछु, रह्यौ न जग कौ ध्यान ।।
बिसरी लोक-बेद-मरजादा ममता कुल की कान ।
मिलिबे कौ अति आतुर मन, पल बीतत जुगनि समान ।।
मोहि न मुक्ति की बांछा सजनी ! नहीं नरक भय-भान ।
अब तौ मिलौं स्याम-प्रिय निधरक गाय, बजाय निसान ।।

[४२५]

(राग पटदीप—तीन ताल)

स्याम विमल गुन सुनत गोपिका तन-धन सकल भुलानी हो ।
मन हर लियौ स्याम-गुन ताकौ, सो बिनु मोल बिकानी हो ।।
रंग-भरे, रस-भरे, गुन-भरे मोहन रस के खानी हो ।
करी ताहि सब भाँति अकरमी, दुख-सुख रहित दिवानी हो ।।
रोवत कबहुँ, हँसत, बिलपत अति, निरतत, रहत चुपानी हो ।
कबहुँ प्रेम-रस बरनत बहु बिधि भाव निमग्न सयानी हो ।।

कबहुँ असंबद्ध बोलत, बहु करत प्रलाप, परानी हो।
भई बिचित्र दसा गोपी की प्रेम-समुद्र समानी हो॥
पूर्वराग के परम प्रेम की मूरति प्रिय-मन मानी हो।
धन्य-धन्य रसमयी गोपिका दिव्य प्रेम सहदानी हो॥

[४२६]

(राग काफी—ताल मूल)

सुनि सहसा सुर मधुर भई हौं बावरी।
बिंध्यौ प्रेम कौ बान भयौ हिय घाव री॥
मधुर कसक कमनीय भर्‌यौ रस भाव री।
मिट्यौ सकल अभिमान, गयौ सब ताव री॥
भोग-राग मिटि गयौ, न रह्यौ झुकाव री।
भयौ समरपन निराबरन, न दुराव री॥
मन-गति सूधी भई, न रहे पड़ाव री।
भय-बिषाद-लज्जा कौ भयौ अभाव री॥
जाग्यौ अमिट अमाप मिलन कौ चाव री।
सखि ! अब मो कूँ माधव बेगि मिलाव री॥

[४२७]

(राग मालकोश—तीन ताल)

गयौ मन मेरौ, सब कछु त्याग।
मुरली की सुनि मधुर तान मन उमग्यौ अति अनुराग॥
अधर-सुधा-रस-सनी सुनाई गाय मधुरतम राग।
मधुर दिब्य रस भर्‌यौ हृदय में, अग-जग छयौ विराग॥
जिनसे सोक-मोह-मद-लज्जा-गर्ब चल्यौ भय भाग।
मिटी सकल ममता, अभिलाषा, भुक्ति-मुक्ति की माँग॥
मधुर मिलन की एक लालसा उठी तीव्रतम जाग।
दै दरसन कृतार्थ करिहैं कब मन-मोहन बड़भाग॥

[४२८]

(राग कालिंगड़ा—तीन ताल)

जा दिन तैं मुरली-धुनि मेरे श्रवननि आइ समानी री।
ता दिन तैं हौं भई बावरी, पिय के हाथ बिकानी री॥
कछु न सुहावै, भावै मो कूँ, ना कछु घर कौ सोच री।
जस-अपजस कौ मोहि न डर कछु, भइ मति अतिही पोच री॥
रात-दिनाँ बिरमत मो मन में, वा मुरली कौ राग री।
हौं तो मिलि मुरलीवारे सौं, पायौ सहज सुहाग री॥
सब बिधि सौं हौं भई अकिंचन, कछु नहिं मेरे पास री।
मोहन मुरलीधर माधौ सौं लगी प्रेम की फाँस री॥

[४२९]

(राग सूहाबिलावल—तीन ताल)

सोवत रही सखी ! मैं अति सुख।
कोटि भानु-दुति राजत, सीतल प्रगट्यौ मधुर मनोहर श्रीमुख !
अधर मधुर मृदु मुसुकनि मोहनि, ऋषि, मुनि, ग्यानी-तापस-मन-हर।
भ्रुकुटि कुटिल सुचि चंचल दृग-जुग, मोहन बेनु विमल राजत कर॥
मुक्ता-मनि-गुंजा-तुलसी-बन-सुमन-हार सोभित सुंदर गल।
पग नूपुर छमकार चित्तहर, बाजत कटि किंकिनि घूँघर कल॥
पाय रूप-सौन्दर्य-सुधा मैं छकी, थकी-सी रही चकित मन।
भुजा पसार चली अति आतुर बिहवल तुरत चरन-जुग पकरन॥
टूट्यौ सुपन, जगी औचक, रहि भौंचक दीखे नहिं नँद-नंदन।
तब तें दारुन जरत जरनि जिय, निसि-दिन दहत रहत सखि ! मन-तन॥

[४३०]

(राग केदारा—तीन ताल)

सखी ! मैं कहा कहूँ मन की।
जागत बनै न सोवत मो तें, भइ बौरी, सनकी॥
गई हुती वा दिन मैं बन कूँ सुध बिसरी तन की।
जा पहुँची प्रेरित-सी लीला-भुवि मन-मोहन की॥

देखी तहाँ बिचित्र बिलच्छन सुषमा श्रीबन की।
परस्यौ पवन तहाँ कौ तन, भइ संगति रज-कन की॥
बे-सुध, फिरि आई मैं भूली संग्या जीवन की।
तब तें कछु न सुहावै, लगि रहि ललक सु-दरसन की॥

[४३१]

(राग कालिंगड़ा—ताल कहरवा)

आजु देखि आई हौं सजनी ! उन कौं जमुना-तीर री।
निरखे अतिहि निकट सौं नख-सिख, तब तैं भई (हौं) अधीर री॥
मैंने सुन्यौ, नाम लै मेरौ मुरली माँहि सुजान री।
मो कूँ टेरि बुलावत निज ढिग, मो प्राननि के प्रान री॥
जा बिधि चुंबक कें आकरषन लोह चलत अनयास री।
ता बिधि हौं दौरी आतुर ह्वै, पहुँची उनके पास री॥
जमुना-कूल कदँब की छाया, ठाढ़े मोहन बेस री।
मृदु मुसकानि देखि बौरी भइ, रह्यौ न मति कौ लेस री॥
ठाढ़ी माटी की पुतरी-ज्यौं, नाहिं काल कौ ग्यान री।
रूप-सुधा पी-पी अति माती, मिटि गयौ तन कौ भान री॥
मोतै कही—'जाहु घर अपने, मन महँ भरि अनुराग री'।
चली देह तब अभिमंत्रित-सी, प्रियतम कौ सँग त्याग री॥
मन रहि गयौ स्याम-चरननि महँ, सरबस आई सौंप री।
तन ब्याकुल, उपाय नहिं सूझत, मिलिबे की अति चौंप री॥

[४३२]

(राग परज—ताल कहरवा)

देखे जब मन-मोहन मोहन प्रेमानन्द-सुधा-सागर।
नित-नवरूप-महोदधि, गुण-निधि सकल कलामय, नट-नागर॥
शब्द एक निकला नहिं मुखसे, नेत्र एकटक रहे निहार।
बिगलित हुआ हृदय क्षण भरमें, बही आँसुओंकी शुचि धार॥
अङ्ग-अङ्ग आकुलता छायी, सबके एक यही अभिलाष—
कर स्वीकार हमें सेवामें, देते रहें नित्य उल्लास॥

नव-नीरद-नीलाभ श्याम विद्युत-सी शोभित भानु-लली।
मुख-पङ्कज-रस-मत्त परस्पर दोनोंके शुभ नेत्र-अली॥
सखी-सहचरी राधाकी सब कायव्यूहरूपा सुख-सार।
नित्य युगल-सुख-सेवा-रत निर्मल रति की मूरति साकार॥
निरखि श्याम-श्यामा छबि अनुपम व्रज-वनितागण सहित ललाम।
धन्य हो गया, जीवन मेरा, पूर्ण हुए मनके सब काम॥

[४३३]

(राग टोड़ी—तीन ताल)

मन की मन ही माँहि रही।
मनमोहन-मुख निरखत भूली, एकौ नायँ कही॥
भई बिमुग्ध, सब्द नहिं निकस्यौ, नैनन सुधा बही।
तब तें हिए-हिंडोरें निसि-दिन पिय-छबि झूलि रही॥

[४३४]

(लावनी पहली तर्ज—ताल कहरवा)

हौं जल भरन गई री सजनी ! सजि वा दिन कालिंदी-कूल।
देखि तहाँ ठाढ़े नटवर नँद-लाल, गई सारी सुध भूल॥
अंग-अंग रस-सुधा बरसि रहि, नव किसोर, लावन्य ललाम।
कुंचित कच, त्रिभंग तनु-भंगिम, सिर मयूर-चंद्रिका सुठाम॥
चंचल दृग तिरछे-अरुनारे, स्रवत प्रेम-रस की मधु धार।
बरबस करषि लियौ मन मेरौ कोटि मनोज लजावनहार॥
सुस्मित अधर बदन मुनि-मन-हर, बरन नील, उर मुकता-पाँति।
मधुर मुरलि मधु-नाद-निनादिनि हरत मदन-मानस सब भाँति॥
वा दिन तैं मोहि कछु न सुहावै, काँपत सकल अंग दिन-रात।
कब निरखौं मन भरि मन-मोहन, कब परसौं सुचि पद-जलजात॥

[४३५]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

जब तैं मैं देखे मन-मोहन ठाढ़े रबि-तनया के तीर।
तब तैं कल न परत पलभर मोहि, मन अति बिकल, धरत नहिं धीर॥

नैननि झरत सलिल निसि-बासर, नींद नैकु नहिं आवति रात।
बिरमत मन न कितहुँ छिन एकहु, घर-आँगन-बन कछु न सुहात॥
अधर मधुर मृदु हास, सरद-ससि लजत बदन-बिधु अनुपम देखि।
बिधि-रचना-अतीत, अतुलित, अतिसय रसमय, सुषमा अवरेखि॥
कुटिल भ्रुकुटि, कटि पीत बसन, सिर मुकुट मोर, कल कुंचित-केस।
झलमलात स्त्रुति कुंडल दुति दमकत कपोल, सुचि नटवर बेस॥
मधुर दृष्टि मानौ बरछी-सी करि घायल पियूष भरती।
घाव हरौ ही रहत नित्य, मधु-तीखी कसक मोद करती॥
परसन कौं अँग-अंग बिसूरत, तिलमिलात तन, होत अधीर।
तरफरात ये प्रान नित्य, ढूँढ़त उड़ि मिलिबे की तदबीर॥
देखन कौं पुनि सुखद स्याम-घन बने पपीहा हैं ये नैन।
पल-पल पीउ रटत, न हटत मन, बिकल सुनन कौं मधुरे बैन॥
सखि ! तुम जतन करौ, काहू बिधि दरसन करि पावैं चितचोर।
प्रान रहैं, मन नाचि उठै भरि मोद, नचत जिमि घन लखि मोर॥

[४३६]

(राग आसावरी—तीन ताल)

सखी ! मैं स्याम लुभानी हो।
बिबस भई, बिनु गथ मन-मोहन हाथ बिकानी हो॥
सखियन सँग इक दिनाँ गई हौं भरने पानी हो।
रबि-तनया-तट मिल्यौ मदन-मद-हर रसखानी हो॥
तिरछी भौंह भँवाय ठगौरी मो पर ठानी हो।
तब तैं कहा भयौ, को जानै, भाव भुलानी हो॥
बिसरी तन-मन की सुध-बुध, सब लोक-कहानी हो।
आठौं जाम लगत यौं, ज्यौं तिन तन लपटानी हो॥

[४३७]

(राग भैरवी—तीन ताल)

जब तैं मैं देखे नँद-नंदन, खेलत जमुना-कूल री।
तब तैं कुल कौ कूल बहि गयौ, गइ सब सुध-बुध भूल री॥
तन-मन-प्रान पलटि गए सगरे, भए कान्ह के रूप री।
निसि-दिन अनुभव करत आपु मँह मोहन रूप अनूप री॥
घर-बाहर, जल-थल, नभ-कानन, जहँ-तहँ दृष्टि-पसार री।
तहँ-तहँ हौं नित निरतत निरखौं प्यारौ नंद-कुमार री॥
हौं बौरी, की दृष्टि पलट गइ, की जग छायौ श्याम री।
नैन-प्रान-मन सब जा अटके रूप-सुधा-रस-धाम री॥

[४३८]

(राग भूपाली—तीन ताल)

आजु इन नयनन्हि निरखे श्याम।
निकले है मेरे मारग तैं नव नटवर अभिराम॥
मो तन देखि मधुर मुसुकाने मोहन-दृष्टि ललाम।
ताही छिन तैं भए तिनहिं के तन-मन-मति-धन-धाम॥
हौं बिनु मोल बिकी तिन चरनन्हि, रह्यौ न जग कछु काम।
माधव-पद-पंकज पायौ नित मन-मधुकर बिश्राम॥

[४३९]

(राग आसावरी—तीन ताल)

कहौं का मन-नयननि की बात।
देखन-हित नित नँद-नंदन कौं छन-छन अति अकुलात॥
बिनु देखें तिन जो पल बीतत, कलप समान लखात।
बिरहानल नित बरत हिए महँ, छार करत सब गात॥
आवत रही मायके सौं हौं एक दिनाँ परभात।
गैयन के सँग देखे मैंने मंद-मंद मुसुकात॥

वा दिन तैं मोहि लग्यौ रोग यह, मच्यौ घोर उतपात।
अष्टजाम हौं रहौं अनमनी, घर-बाहर न सुहात॥
रैन-दिवस प्रतिपल देखन कौं नयन रहैं ललचात।
हौं कुलबधू रहौं सँग कैसें तिन के सब दिन-रात॥
मैं मनाय हारी मन-नयननि समुझाए बहु भाँत।
ये हठि परे, न मानैं, बीतत काल सदा बिललात॥

[४४०]

(लावनी पाँचवीं तर्ज—ताल कहरवा)

गई हुती वा दिनाँ किसोरी, ले मटकी जमुना के तीर।
ता दिन सौं ह्वै रही अनमनी, रहति निरंतर अबुध-अधीर॥
नयन मूँदि, निज कर कपोल धरि, बैठि इकंत करति कछु ध्यान।
नित उदास, उल्लास-रहित, मुख-कंज संकुचित, सदा मलान॥
सिथिल अंग, सावन-भादौं-ज्यौं बहती सदा दृगन जल-धार।
छन-छन कंप, अचेतन तन, अति दीर्घ साँस, अधरनि फुतकार॥
अस्त-ब्यस्त भए अति रूखे, धूरि भरे सुचि कुंचित केस।
बसन मलिन, सृंगार-हीन-तन, छीन-दीन अति दारुन बेस॥
ललिता आइ भई अति पीड़ित, देखि किशोरी कौं बेहाल।
गोद लेइ, मृदु कर निज आँचल सौं आँसू पौंछे ततकाल॥
प्रीति-सुधामय मीठी बानी सौं ललिता नैं पूँछी बात।
'सदा सुखी, हँस-मुखी, आज सखि ! सूखि रह्यौ क्यौं रसमय गात ?
क्यौं तू बिलखि रही अति आतुर, क्यौं तेरे अति आकुल प्रान ?'
ललिता समुझि गई मन, निस्चै बिंध्यौ हियौ मोहन के बान॥

[४४१]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

देखा मैंने उस दिन प्रातः प्रियको कालिन्दीके कूल।
सिरपर मोर-पिच्छ था, चूड़ामें थे गुम्फित मालति-फूल॥

श्यामवर्ण छिटकी आभा थी, तनपर पीत वस्त्र द्युतिमान।
मधुर-मनोहर मुख था, छायी थी मृदु अधरोंपर मुसकान॥
गले झूलता था सुरभित वन-कुसुमोंका तुलसीयुत हार।
भ्रम-समूह कर रहा था उसपर अति मधुर-स्वर गुंजार॥
छेड़ रहे थे मुरलीमें मोहन मुनि-मोहिनि मीठी तान।
रूप-छटाको निरख, सखी! मैं भूल गयी सत्वर निज भान॥
तबसे सखी! हुई मैं पगली, रहा न तन-मनका कुछ ज्ञान।
कब देखूँगी पुनः मुख-कमल मधुर-मनोहर मैं रस-खान॥

[४४२]

(राग जोगिया—तीन ताल)

मेरौ मन रूप-समुद्र पर्‌यौ।
बदन-सुधानिधि इकटक निरखत नैकहु नायँ टर्‌यौ॥
नैन बिसाल रसाल बस्यौ मन छिनहु नायँ निसर्‌यौ।
अमल अधर मृदु हास मधुर छबि आनँद अमित भर्‌यौ॥
अलक-झलक मधुकर मदहारी लखि निज सुधि बिसर्‌यौ।
अंग-अंग नख-सिखकी माधुरि, बरबस रहत हर्‌यौ॥

[४४३]

(राग पटदीप—तीन ताल)

मेरौ मन मोहन छबि पै अटक्यौ।
छायौ अति आनंद जबहिं तें रूप-सुधा-रस गटक्यौ॥
जग के हास-विलास-त्रास तें रहत सदा ही सटक्यौ।
स्वर्ग-मोच्छकी मिटी कलपना, रूप-डोर-मन लटक्यौ॥
तड़फड़ात दरसन-हित निसि-दिन नैकु न मानत हटक्यौ।
नित नव-नव उतकंठा जागत रहत सदा ही मटक्यौ॥

[४४४]

(राग धनाश्री—तीन ताल)

बरजी मैं काहू की न रहूँ।
जा तें सुखी होयँ जीवन-धन सोई पंथ गहूँ॥
कीरति-जस सब नसैं अबहि, मैं घोर कलंक लहूँ।
सगरौ मान जाय, मन प्रमुदित मैं अपमान सहूँ॥
मन की बात मनहि में राखूँ काहू तें न कहूँ।
प्रियतम प्यारे तें मैं कबहूँ निज-सुख नायँ चहूँ॥
कैसी हूँ स्थिति होय न मन में जगै छोभ कबहूँ।
एकमात्र प्यारे के बल, मैं निबहि बहुरि निबहूँ॥

[४४५]

(राग भैरव—तीन ताल)

श्याम ने कहा ठगोरी डारी।
बिसरे धरम-करम, कुल-परिजन, लोक-लाज गइ सारी॥
गई हुती मैं जमुना-तटपर, जल भरिबे लै मटकी।
देखत स्याम कमल-दल-लोचन, दृष्टि तुरतहीं अटकी॥
मो तन मुरि मुसुकाए मनसिज-मोहन नंद-किसोर।
तेहि छिन चोरि लियौ मन बरबस परम चतुर चित-चोर॥
देह-गेह की सुध न रही कछु, खान न पान सुहाय।
एक मधुर छबि रसिक स्याम की रही हृदय मैं छाया॥

[४४६]

(राग भैरवी—तीन ताल)

निरखु सखि! कैसौ मोहन रूप।
निरखत नैन रहे अपलक ह्वै, बाढ़्यौ प्रेम अनूप॥
नव जलधर, मरकत मनि, नील सरोरुह-सम तन स्याम।
मनसिज-सर-सम तिरछे लोचन, कुंचित केस ललाम॥

कंठ सुसोभित गुंज-हार, सुंदर सुरभित बनमाल।
गुंजत मधुर मधुप मधु-लोभी, मृगमद-तिलक सुभाल॥
व्रज-जुबतिन मुनि-मनहर कोमल अरुन चरन-अंभोज।
पूजन चहत नित्य तिन कौं मन, दै निज कमल-उरोज॥

[४४७]

(धुन लावणी—ताल कहरवा)

जल भरिबे कूँ आज भोर में लै गागर निकसी आली।
मारग में औचक ही आ मेरे दृग मग चढ़ि गयौ बनमाली॥ १ ॥
गुंजमाल गल, तिलक भाल भल, काली घुँघरारी अलकैं।
नैन नुकीले, रसभरी जादूगरनी-सी पलकैं॥ २ ॥
मोर मुकुट, मकराकृत कुंडल, मुरलि-धुनि मुनिमन-हारी।
पीत बसन, मृदु हँसन मनोहर, नील-स्याम तन छबि प्यारी॥ ३ ॥
गोपीचंदन-चर्चित बपु, सुषमा अर्चित, मधु बोल अमोल।
बिंबाफलसे अधर, दसन दाडिमसे दुतिमय गोल कपोल॥ ४ ॥
अटके दृग अनिमेष, भूलि रहि देह-गेह की सुधि सारी।
प्रतिमा-सी ठाढ़ी हिय उझल्यों, अपलक नैन बह्यो बारी॥ ५ ॥
या विधि मन मेरो हर आली ! ज्यों ही चल्यो स्याम चित चोर।
कॉंप्यो बदन, उठी उर ज्वाला, आकुलता की ओर-न-छोर॥ ६ ॥
बौरी-सी दौरी तिन पाछे सिरकी लै गागर पटकी।
कहा भयो, मो कहँ सुधि नाहीं, कहाँ-कहाँ लौं हौं भटकी॥ ७ ॥
चेत भयौ, देख्यौ, हों ठाढ़ी हुती ठेठ जमुना के तीर।
निज कर कमल धरत मोहन मो सिर पर गागर भरकर नीर॥ ८ ॥
सकुची, लै गागर सिर मेली चली भवन मन जानि अबेर।
वा छिन की मुसक्यान स्यामकी हियो हिलोरति बेरहि बेर॥ ९ ॥
कहा करौं सखि, कैसे राखौं अब मैं धरम-करम आचार।
स्याम भयो सरबस बस मोरे, मैं सरबस दियो तिनपर वार॥ १० ॥

[४४८]

(राग यमन—ताल कहरवा)

मेरे जीवन-धन प्यारे ! मैं कबसे तुम्हें बुलाऊँ ॥
आओ नैनोंके तारे ! मैं चरण-कमल सहलाऊँ ॥
यसुमति मैयाके बारे ! मैं माखन तुम्हें खिलाऊँ ।
व्रजपति के परम दुलारे ! मैं सुललित लाड़ लड़ाऊँ ॥
आओ नयनोंके तारे ॥
हे सखा-प्राण-आधारे । मैं मनहर खेल खिलाऊँ ॥
व्रज-युवतिन प्राण-पियारे । मैं हिय-रस तुम्हें पिलाऊँ ॥
आओ नयनोंके तारे ॥
राधा-आराधनवारे ! मैं सरबस चरण चढ़ाऊँ ।
अर्पितकर तन-मन सारे । मैं तुमपर बलि-बलि जाऊँ ॥
आओ नयनोंके तारे ॥
तुम रहो प्रेम-मतवारे । मैं प्रेम-सुधा ढलकाऊँ ।
तुम रहो न मुझसे न्यारे । मैं हियमें आय समाऊँ ॥
आओ नयनोंके तारे ॥
अनुपम सुषमा-श्री धारे । मोहन ! मैं तुम्ह रिझाऊँ ।
हियकी सब जाननहारे । तुमसे मैं कहा छिपाऊँ ॥
आओ नयनोंके तारे ॥

[४४९]

(राग यमन—ताल कहरवा)

प्यारे मोहन मनभावन ! अमिलन-संताप-नसावन ।
सब कुछ करनेको पावन, तुम मेरे मनमें आओ ॥
यह नित्य तुम्हारा घर है, इसमें न कहीं कुछ पर है ।
यह तुमपर ही निरभर है, तुम स्वयं इसे अपनाओ ॥

तुम हटो न इससे पलभर, खेलो तुम इसमें खुलकर।
नाचो-गाओ घुल-मिलकर, इसको रस-धाम बनाओ॥
जब सारी वस्तु तुम्हारी, मैं भी न कभी कुछ न्यारी।
क्या करूँ पृथक् तैयारी, यह तुम ही मुझे बताओ॥
तुम मेरे तन-मन-धन हो, तुम मेरे शुचि जीवन हो।
तुम मेरे प्राण-पवन हो, इसको अब नहीं छिपाओ॥
तुम 'मैं-मेरे'-के मेरे, क्यों रहते छिपे अनेरे?
निज परमानन्द बिखेरे। तुम नित्य रूप प्रकटाओ॥

[४५०]

(राग यमन—ताल कहरवा)

मैं तुमको श्याम बुलाऊँ, सादर घरमें पधराऊँ।
नयनोंसे स्वागत गाऊँ सरबस दे तुम्हें रिझाऊँ॥
अँखियन-जल पैर धुलाऊँ, हिय-झूले तुम्हें झुलाऊँ।
प्रेमामृत-रस नहलाऊँ भोजन रस-मधुर कराऊँ॥
हिय कोमल सेज सुलाऊँ, सुरभित अति पवन डुलाऊँ।
कोमल कर चरण दबाऊँ, छबि निरख-निरख सुख पाऊँ॥
छन-छन मन मोद बढ़ाऊँ, नाचूँ गाऊँ हरषाऊँ।
नख-सिखपर बलि-बलि जाऊँ, मैं न्योछावर हो जाऊँ॥

[४५१]

(तर्ज गजल—ताल कहरवा)

चतुर चञ्चल चपल चित-चोरको जो पकड़ पाऊँ मैं।
छबीले छैल छरहरको तुरत छाती छिपाऊँ मैं॥
रसीली रस भरी रसकी उसे चर्चा सुनाऊँ मैं।
मधुर मिश्री-मिला माखन उसे ताजा खिलाऊँ मैं॥
जड़ाऊँ जेवरों, जामों, जरीसे शुचि सजाऊँ मैं।
सुमन सुरभित सुपल्लव मृदुलकी शय्या रचाऊँ मैं॥

श्रम हरूँ स्वयं सेवा कर, उसे सादर सुलाऊँ मैं।
प्रेममय प्रेमके पथपर उसे पावन चलाऊँ मैं॥
मान कर ले मनस्वी, तो उसे मनसे मनाऊँ मैं।
सरस सुख दे उसे संतत, परम सुखमय बनाऊँ मैं॥

[४५२]

(राग बिहाग—तीन ताल)

सखी ! मैं जाऊँ जमुना-तीर।
बिरह-निदाघ दही दिन भर की, न्हाऊँ सीतल नीर॥
बिरमूँ जमुना-तट, सेऊँ सुचि सुरभित मंद समीर।
मिलूँ तीर सरि में नित की ज्यौं, मेटूँ हिय की पीर॥
नौका-बिहरन करूँ स्याम-सँग, गाऊँ गीत अधीर।
मुरली मधुर बजाय हरैं हरि तन-मन की सब पीर॥

[४५३]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

प्यारे आकर हँसकर तुरत खड़े होंगे वे मेरे पास।
देख उन्हें मैं सँकुचित होकर मुँह ढक लूँगी, कर मृदु हास॥
रस-सागर नटनागर वे यह देख धरेंगे बसनाञ्चल।
उछलेगा तब हृदय, बहेगा नेत्रोंसे शुचि प्रेम-सलिल॥
कर कर पकड़ सुनायेंगे वे मृदु वाणी होकर गद्गद।
अवश बनूँगी मैं प्रेमातुर, बह जायेगा सारा मद॥
प्रेम-आर्त वे देख प्राण-प्रिय मुझे मनायेंगे मन खोल।
खोलेंगे रहस्य सब मधुमय शुचि बचनोंमें मिश्री घोल॥
देख सुअवसर प्यारे मेरी पूरेंगे सब मनकी आस।
मुझे सदाके लिये स्नेह दे, रख लेंगे अपने ही पास॥

[४५४]

(राग बागेश्वरी—तीन ताल)

सौंप दिये मन प्राण तुम्हींको सौंप दिये ममता अभिमान।
जब जैसे, जी चाहे बरतो, अपनी वस्तु सर्वथा जान॥
मत सकुचाओ मनकी करते, सोचो नहीं दूसरी बात।
मेरा कुछ भी रहा न अब तो, तुमको सब कुछ पूरा ज्ञात॥
मान-अमान, दुःख-सुखसे अब मेरा रहा न कुछ सम्बन्ध।
तुम्हीं एक कैवल्य मोक्ष हो, तुमही केवल मेरे बन्ध॥
रहूँ कहीं, कैसे भी, रहती बसी तुम्हारे अंदर नित्य।
छूटे सभी अन्य आश्रय अब, मिटे सभी सम्बन्ध अनित्य॥
एक तुम्हारे चरणकमलमें हुआ विसर्जित सब संसार।
रहे एक स्वामी बस, तुम ही, करो सदा स्वच्छन्द विहार॥

[४५५]

(राग भैरव—तीन ताल)

होय पद-कंज-प्रीति स्वच्छन्द।
करत रहै रस-पान नित्य मम मन-मधुकर मकरंद॥
हानि-लाभ, निंदा-स्तुति, अति अपमान महा सनमान।
प्रेम-पगे जीवन में इन कौ रहै न कछु मन-भान॥
रसना रटै नाम प्रिय पिय कौ, हिय हो लीला-धाम।
परसै प्रभु के अंग-अंग, दृग निरखैं रूप ललाम॥
मिटै मोह-तम्, जनम-मरन की रहै न कछु परवाह।
पल-पल बाढ़ै प्रीति अहैतुक, पल-पल रस की चाह॥
डर न रहै परलोक-लोक कौ बाढ़ै प्रेम अबाध।
जनम-जनम में बनौ रहै तव पावन प्रेम अगाध॥
मिटिबे, घटिबे, थमिबे कौ नहिं होय कबहुँ संकल्प।
उमगत रहै प्रेम-रस-सरिता प्रतिपल बिना विकल्प॥

काहु लोक में, कहूँ जाय जौ जीव करम-आधीन।
बसौ रहै पिय-प्रेम-सरित में, जिमि जल-सरिता मीन॥
चहौं न दुरलभ इंद्र-ब्रह्म-पद, चहौं न गति निरबान।
प्रीतम-पद-पंकज में अनुदिन बाढ़ै प्रेम महान॥
नरक-प्राप्ति, नीची गति तैं मैं डरौ न रंचक मान।
रहौं प्रेम-मद में मतवारी, तज मति कौ अभिमान॥

[४५६]

(राग माँड़—तीन ताल)

सजनी ! चलु वा पिय के देस।
जहँ न मोह-ममता की रजनी, जहँ न बिछोह-कलेस॥
जहँ नहिं आवन-जावन कितहूँ, पिय संग नित्य मिलाप।
जहँ न ग्राम्य-चर्चा कौ डर कछु, जहँ न अजस कौ पाप॥
जहँ नहिं होत अंग-सँग कबहूँ, मिले रहैं दिन-रैन।
बिछुरत नाहिं एक पल मन सौं, मृतक-सजीवन-मैन॥
सहज अकिंचन तन-मन सगरे भरे रहैं पिय नेह।
आठों जाम धाम प्रियतम कें बरसत रस कौ मेह॥

[४५७]

(राग बागेश्री—ताल कहरवा)

बनी रहे नित बिरह-वेदना, जिससे आती प्रियकी याद।
अति ही मीठी, दिव्य रसमयी, हर लेती सारा कटु स्वाद॥
जिससे मिट जाते अशान्ति मय जगत्‌-जनित भय-मोह-विषाद।
जो नित देती रहती प्रियके रसका परम मधुर आस्वाद॥

[४५८]

(राग खमाच—ताल कहरवा)

तरस रहीं अँखियाँ देखन कौं, दरसन कबहुँ न दीन्हे।
अब आवैंगे, अब दीखैंगे, आसा उर में लीन्हे॥

देखत रहूँ बाट हौं निसि-दिन, प्यारे ! छिन-छिन तेरी ।
सुखदायिनी प्रतीच्छा की यह बृत्ति रहै नित मेरी ॥
ठाढ़ी तेरे द्वार भिखारिनि कृपा नेक तुअ चाहै ।
द्वार खुलैंगे भीख मिलेगी मन में अमित उमाहै ॥
पल-पल बीतत जुग-समान है, उर बिच आस घनेरी ।
बनी रहे मेरे मन में, बस, चाह कृपा की तेरी ॥
जग में कोउ न संगी-साथी, कोउ न बूझनहारौ ;
अपने-अपने पंथ चलत सब, पंथ सबनि कौ न्यारौ ॥
कृपा एक सब दिन, सब दिसि तुअ सदा सहायक मेरी ।
होतौ रहै सदा अनुभव यह बढ़त कृपा नित तेरी ॥

[४५९]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

हों चाहे वे परम अनिर्वचनीय, मधुर, सौन्दर्य-निधान ।
हों नव-यौवनके सखि ! सरवर सुखद, नयन मन-हरण महान ॥
नहीं चाहती, जाकर करूँ कभी मैं उसमें अवगाहन ।
सुख-उपभोग करूँ मैं उनसे, नहीं चाहता मेरा मन ॥
इच्छा एक यही मन मेरे—कभी सुअवसर मैं पाऊँ ।
ऊँचे स्वरसे रोकर, तज लज्जा 'हा प्रिय ! हा प्रिय !' गाऊँ ॥
रोऊँ, रोती रहूँ सदा, वह रुके नहीं मेरा क्रन्दन ।
हो अनन्त सुखमय वह मेरा क्रन्दन ही, हे जीवनधन ॥

[४६०]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

बने रहें प्रभु एकमात्र मेरे जीवनके जीवन-धन ।
प्राणों के प्रियतम वे मेरे, प्राणाधार, प्राण-साधन ॥
स्वप्न-जागरणमें प्रमादसे भी न कभी हो भूल-विभोर ।
नहीं जाय मेरा मन उनको छोड़ कदापि दूसरी ओर ॥

जैसा, जो कुछ भला-बुरा, सब रहे सदा प्रिय-सेवा-लीन।
रहे देह भी सदा एक प्रियकी पूजामें ही तल्लीन॥
पूजाकी बन शुचि सामग्री होते रहें नित्य सब धन्य।
रहूँ किसी भी स्थितिमें, कैसे भी, पर मानस रहे अनन्य॥
कुछ भी करें, रहे नित तन-मन-धन सबपर उनका अधिकार।
रस-चिन्तनमें लगा रहे मन, नित्य करे गुण-गान उदार॥
घुली-मिली मैं रहूँ नित्य प्रियतमसे, रहूँ दूर या पास।
बाहर-भीतर मेरे प्रियतम, करें सदा-सर्वत्र निवास॥

[४६१]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

नहीं चाहती मनोनाश मैं, नहीं चाहती चित्तनिरोध।
श्याम-सिन्धुमें सुरसरिवत् नित वृत्ति प्रवाहित हो अविरोध॥
जैसे सुर-सरिता बहती नित करती सब विघ्नोंका नाश।
वैसे ही सब भूल दौड़ता रहे चित्त प्रियतमके पास॥
नहीं चाहती इन्द्रिय-संयम, बनी रहें वे सक्रिय सत्य।
शब्द-स्पर्श-रस-रूप-गन्ध प्रियतमके सेवन-रत हों नित्य॥
नहीं चाहती हटे कभी मेरे मनसे किंचित् आसक्ति।
बढ़ती रहे सदा प्रियतममें दिन-प्रतिदिन अतिशय अनुरक्ति॥
नहीं चाहती मिटे कामना, कभी वासनाका हो अन्त।
तीव्र कामना नित्य वासना प्रियकी बढ़ती रहे अनन्त॥
नहीं चाहती मैं जीवनभर ममताका हो अन्त कभी।
सबसे हटकर रहे सदा प्रियतममें पूर्ण अनन्य सभी॥
नहीं चाहती मिटे कभी भी मेरा अहंकार भारी।
'मैं प्रियतमकी नित्य सहचरी'—रहे सदा यह सुखकारी॥
नहीं चाहती कोई भी मैं कभी—समाधि, राज-लय योग।
बना रहे प्रियतमसे मेरा नित्य अनन्य मधुर संयोग॥
नहीं चाहती कभी मिटे यह अति वैचित्र्य-भरा संसार।
प्रियतम ही दीखें सबमें, सर्वत्र सदा सुचि लीलाकार॥

[४६२]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

स्वर्ग जायँ या पड़ी रहें हम घोर नरकमें आठों याम।
यश पायें या कहलायें व्यभिचारिणि-कुलटा, हों बदनाम ॥
सुख पायें या घिरी रहें हम नित दुःखोंमें ही अविराम।
देखे बिना न रह सकतीं पल हम मोहन-मुख-चन्द्र ललाम ॥
पड़ें पैर-हाथोंमें बेड़ी-कड़ी, बँधे बन्धन विकराल।
पीना पड़े हलाहल विष, फिर पड़े खिंचानी कच्ची खाल ॥
रहे झूलती जीवन-उरपर नित भीषण दुःखोंकी माल।
भूलें नहीं भूलकर पलभर, हम प्राण-प्रियतम नँद लाल ॥
तन-धन-परिजन रहें, जायँ या मिटे रहे सुन्दर संसार।
धर्म-कर्म-लज्जा-कुल-मर्यादाका हो चाहे संहार ॥
मिटें मान-सम्मान, मिले अपमान, छिनें सारे अधिकार।
उतरें नहीं हृदयसे पलभर चित्त-वित्त-हर नन्द-कुमार ॥
आयें काले-काले बादल, आये भीषण झंझावात।
घन गरजे, घन बरसे पत्थर, बार-बार हो विद्युत्-पात ॥
कष्ट-अशान्ति-क्लेश सब आकर करें नित्य नूतन उत्पात।
डूबी रहें मधुरतम प्रियकी मधुमय स्मृतिमें हम दिन-रात ॥
पुण्य बने या लगे पाप भीषण, हो चाहे कर्म-अकर्म।
हो अतिशय यातना घोर, सब मिट जायें वाञ्छित सुख-शर्म ॥
चुभती रहे शूल उर संतत, बिंधता रहे सदा ही मर्म।
छूटें नहीं कभी मन-मोहन—यही परम सुख, यही सुधर्म ॥
प्रियतम स्वयं न चाहें चाहे, चाहे करें नहीं स्वीकार।
विनय-प्रार्थना करने पर भी मिले मार, चाहे दुत्कार ॥
पहरेदार भले बैठा दें, बंद करा दें सारे द्वार।
तनिक न दोष-दृष्टि हो, पल-पल प्रिय-पद बढ़े प्रेम अधिकार ॥

[४६३]

(राग मालकोश—ताल मूल)

मन की बात मन हि भर जानै, गोपन अति नहिं कहिबे जोग।
एकमात्र प्रियतम सौं मेरौ भयौ मधुर नित कौ संजोग॥
मिटी सकल ममता अग-जग की, खुले सकल माया के बंध।
रह्यौ न कितहुँ, कबहुँ, कछु अपनौ, रह्यौ एक पिय कौ संबंध॥
निज-पर कोउ न रह्यौ अब जग में तिन बिनु मेरो प्रानि-पदार्थ।
वे ही परम स्वार्थ हैं मेरे, वे ही मेरे सब पुरुषार्थ॥
मन तिन कौ, मति तिन की, रति में तिन की ही बिसर्‌यौ सब ग्यान।
निसि-दिन करत रहत छिप-छिप, सुचि तिन की ही पूजा ये प्रान॥
पल-पल नव-नव पूजन-पद्धति, पल-पल नव-नव रस-आस्वाद।
पल-पल बढ़त सहज सुख, सुख-रुचि, सुख-रतिनव-नव बिनु मरजाद॥
प्रियतम अजहुँ जानि नहिं पाये—है यह मूक पुजारिन कौन।
अर्चन-रत नित, अर्पित जीवन, छिपी निरंतर, रहती मौन॥
सखि! मैं भई बावरी या बिधि करौं नित्य अभिलाषा एक।
प्रियतम देख न पावैं कबहूँ मो कूँ पूजा-रत सबिबेक॥
समुझैं सदा मोय वे प्यारे श्रद्धा-प्रीति-अर्चना-हीन।
करत रहैं वे करुना मो पर जानि मोय अति दीन-मलीन॥
पूजा कौ फल मो कूँ बस, यह मिलतौ रहै एक अनिवार।
बढ़त रहै अर्चा नित मेरी, छिन-छिन रति बढ़ै अपार॥
जान न पावै तदपि प्रानप्रिय मेरी पूजा की कछु बात।
रहै सदा ही तिन कौं मेरी यह प्रियतम-पूजा अज्ञात॥
जानि जायँगे जो सखि! प्रियतम सरस हृदय सुचि परम उदार।
मानैंगे न दिये बिनु मो कूँ अपनौ नेह-सुधा-रस-सार॥
या तैं जौ जगि उठै कबहुँ, मो मन प्रिय-सुख मिलिबे की चाह।
या बिधि पूजा रति न रहैगी, नहीं रहैगौ यह उत्साह॥

सुख न मिलै प्रियतम तैं मो कूँ जा तैं जग न मन सुख-काम।
पूजा सदा छिपाऊँ या तैं, छिप-छिप छबि निरखूँ अभिराम॥
चलै सदा यह पूजा मेरी, प्रियतम-सुख-हित काल अनंत।
मिलै सदा प्रिय कौं सुख नव-नव, नवता कौ नहिं आवै अंत॥

[४६४]

(राग यमन—ताल कहरवा)

मेरे जीवनके जीवन, मैं तुमपर नित बलिहारी।
मेरे तन-मन-धन सब तुम, मैं बरबस तुमपर वारी॥
मेरे प्राणोंके स्पन्दन, मैं कभी न तुमसे न्यारी।
मेरे तुम मादक मधु हो, मैं नित्य रहूँ मतवारी॥
मेरे तुम फुल्ल कमल हो, मैं रस-मधुकरी तुम्हारी।
मेरे तमाल तरु हो तुम, मैं कनकलता रस-धारी॥
मेरे तुम चन्द्र कलाधर, मैं हूँ कुमुदिनि बनवारी।
मेरे प्रीतम तुम जलधर, मैं तृषित चातकी भारी॥
मेरेमें घुले-मिले तुम, मैं नित्य मिली गिरिधारी।
मेरे तुम हो प्रेमास्पद, मैं नित्य तुम्हारी प्यारी॥

[४६५]

(राग कालिंगड़ा—ताल कहरवा)

राजी रहो सदा प्यारे! तुम, अपने मनको करो तमाम।
हम राजी हैं सदा तुम्हारी राजीमें ही प्रिय सुख-धाम॥
रहना-जाना, जीना-मरना, कुछ भी रखता अर्थ नहीं।
एक तुम्हारे मनकी हो, बस यही स्वार्थ, परमार्थ यही॥

[४६६]

(राग परज—ताल कहरवा)

तुम ही मेरे प्राण-प्राण हो, तुम ही मेरे जीवन-धन।
तुम ही अहंकार-ममता हो, तुम ही मेरे हो मति-मन॥

तुम ही मेरे एक साध्य हो, तुम ही एकमात्र साधन।
तुम ही मेरी हो अनन्य गति, तुम ही मेरे हो आँनद-घन॥
तुम ही हो सम्पत्ति अतुल, तुम ही हो मेरी कीर्ति धवल।
तुम ही मेरे वर्तमान हो, तुम ही हो भविष्य उज्ज्वल॥
तुम ही हो सर्वस्व, तुम्हीं हो मेरे नित्य पराक्रम-बल।
तुम ही नित्य रहोगे मेरे, तुम ही हो मेरे केवल॥

[४६७]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

मेरा मन, मनके सारे संकल्प तुम्हीं शुचितम हो एक।
बुद्धि, बुद्धिके पावन निश्चय—सभी तुम्हीं हो, पूर्ण विवेक॥
तुम ही धर्म-कर्म सब मेरे, तुम्हीं हृदयके शुचि सुख-धाम।
धन-सम्पदा अमूल्य तुम्हीं हो, प्राण, प्राण-प्रियतम अभिराम॥
तुम्हीं एक हो आवश्यकता, तुम्हीं पूर्तिकी उसकी चाह।
तुम्हीं चाहकी पूर्ति मधुर हो; जीवन-जीवनके निर्वाह॥
परमधाम वैकुण्ठ तुम्हीं हो; शुचि गोलोक, तुम्हीं हो ज्ञान।
मोक्ष तुम्हीं बन्धन तुम ही हो; तुम्हीं भोग, तुम ही भगवान॥
निराकार-निर्गुण तुम ही हो; सगुण अरूप सगुण साकार।
सद्गुण-निधि; सौन्दर्य-सुधानिधि; तुम ही श्रीपति, विश्वाधार॥
तुम ही अज, भव, रवि, गणपति हो; तुम्हीं शक्ति-बल-वीर्य-निधान।
एक उपास्य तुम्हीं इन सबमें, विविध वेष-लीला-रस-खान॥
सहज समेट सभी निज रूपोंको अपनेमें, बने अनूप।
सिर शिखिपिच्छ, त्रिभङ्ग, द्विभुज, चञ्चल-दृग, मधु मुरलीधर-रूप॥
इसी रूपमें तुम उपास्य हो, मेरे नित रहते हो साथ।
रखते मुझे निकट अति नित ही, मधुर मनोहर मेरे नाथ॥
रस उँडेलकर तुम अपना ही, रस-सागर हो बने महान।
मुझे मिला उसमें, नित नव-रस करते, स्वयं कराते पान॥

[४६८]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

हो चाहे तुम खुद ब्रह्म, ब्रह्मसे न्यारे।
हो चाहे तुम भगवान भक्तके प्यारे॥
हो चाहे नित्य अखण्ड तत्त्व अविनाशी।
हो चाहे तुम सच्चिदानन्द सुख-राशी॥
हो चाहे तुम 'हरि', पालक, सबके स्वामी।
हो चाहे तुम निज भक्तोंके अनुगामी॥
हो चाहे तुम औढरदानी शिव शंकर।
हो चाहे तुम प्रलयंकर रुद्र भयंकर॥
हो चाहे लोक-पितामह सृष्टि-विधाता।
हो चाहे वेदोंके वक्ता सुख-दाता।
हो चाहे तुम क्षेत्रज्ञ सभीके द्रष्टा।
हो चाहे तुम इस अखिल विश्वके स्रष्टा॥
हो चाहे योगी-हृदय-ज्योति परमात्मा।
हो चाहे तुम ही जीवमात्रके आत्मा॥
हो राम, कृष्ण, हो बुद्ध, भले दत्तात्रय।
हो वेदव्यास-वसिष्ठ ज्ञानके आश्रय॥
हो चाहे तुम ऋषि, सिद्ध सफल, मुनि साधक।
हो चाहे तुम अति योगिराज भव-बाधक॥

[४६९]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

हो चाहे शंकर शुचि अद्वय-ज्ञान-ज्योति-विस्तारक।
हो चाहे चैतन्य मधुरतम प्रेम-प्रवाह-प्रसारक॥
हो चाहे आचार्य अन्य कोई, जग-तमके नाशक।
हो चाहे तुम किसी अन्य प्रभु-पथके परम प्रकाशक॥

हो चाहे तुम देव, पितर, गन्धर्व, भले हो दानव।
हो चाहे तुम योगिराज, हो सत्पथगामी मानव॥
हो चाहे तुम अतिमानव, हो चाहे कोई कारक।
हो चाहे तुम महापुरुष, हो संत लोक-उद्धारक॥
हो चाहे सामान्य मनुज, जो कर्म भोगने आये।
हो चाहे कोई भी प्राणी, जिसपर तम घन छाये॥
नहीं जानना मुझको—तुम हो कौन ? कहाँ क्या परिचय ?
तुम मेरे हो, अपने हो, बस, यही सदा दृढ़ प्रत्यय॥
हो चाहे तुम सद्गुण-निधि, चाहे दोषोंके सागर।
मेरे वैसे ही हो, जैसे राधाके नट-नागर॥
मेरा प्रेम तुम्हारा यह शुचि सदा परम निर्गुण है।
बढ़ता रहता प्रतिपल—इसमें यही विलक्षण गुण है॥

[४७०]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

दृढ़ रति, मन विश्वास अति, श्रद्धा सरल सुभाव।
माधव-विग्रह-अर्चना करती मन अति चाव॥
प्रतिदिन नियमित समयपर ले पूजा-सम्भार।
सरस-हृदय नित पूजती समुद विविध उपचार॥
नमस्कार करती सदा, कर पूजा सम्पन्न।
सर्व-समर्पण भाव शुचि होता मन उत्पन्न॥

[४७१]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

'मैं, बस, उनकी ही', 'वे ही, बस, मेरे'—यह सम्बन्ध अनूप।
निश्चय नित्य अनन्त बन गया जीवनका स्वाभाविक रूप॥
मेरे सभी विचार, भाव, व्यवहार हुए उनके अनुरूप।
कर न मुझे सकती अब विचलित जगकी कोई छाया-धूप॥

जली ज्योति निरुपम निर्मल अति अमर प्रेम प्रभु-पदकी नित्य ।
हिला न सकती इसको दुःख-सुखोंकी आँधी कभी अनित्य ॥
हुए सहज निर्मूल जगतके द्वन्द्व दुःखमय सभी असत्य ।
हुई नित्य आत्यन्तिक सुखमय, पीकर प्रेम-सुधा-रस सत्य ॥

[४७२]

(राग भीमपलासी—ताल मूल)

हुआ समर्पण प्रभु-चरणोंमें जो कुछ था सब—मैं-मेरा ।
अग-जगसे उठ गया सदाको चिर-संचित सारा डेरा ॥
मेरी सारी ममताका अब रहा सिर्फ प्रभुसे सम्बन्ध ।
प्रीति, प्रतीति,. सगाई सबही मिटी, खुल गये सारे बन्ध ॥
प्रेम उन्हींमें, भाव उन्हींका, उनमें ही सारा संसार ।
उनके सिवा, शेष कोई भी बचा न जिससे हो व्यवहार ॥
नहीं चाहती जाने कोई मेरी इस स्थितिकी कुछ बात ।
मेरे प्राणप्रियतम प्रभुसे भी यह सदा रहे अज्ञात ॥
सुन्दर सुमन सरस सुरभित मृदुसे मैं नित अर्चन करती ।
अति गोपन, वे जान न जायें कभी, इसी डरसे डरती ॥
मेरी यह शुचि अर्चा चलती रहे सुरक्षित काल अनन्त ।
रहूँ कहीं भी कैसे भी, पर इसका कभी न आये अन्त ॥
इस मेरी पूजासे पाती रहूँ नित्य मैं ही आनन्द ।
बढ़े निरन्तर रुचि अर्चामें, बढ़े नित्य ही परमानन्द ॥
बढ़ती अर्चा ही अर्चाका फल हो एकमात्र पावन ।
नित्य निरखती रहूँ रूप मैं उनका अतिशय मनभावन ॥
वे न देख पायें पर मुझको, मेरी पूजाको न कभी ।
देख पायँगे वे यदि, होगा भाव-विपर्यय पूर्ण तभी ॥
रह नहिं पायेगा फिर मेरा यह एकाङ्गी निर्मल भाव ।
फिर तो नये-नये उपजेंगे 'प्रिय'से सुख पानेके चाव ॥

[४७३]

(राग लावनी—ताल कहरवा)

वे प्रियतम मेरे श्याम प्राणधन प्यारे।
रहते नित मेरे पास, न होते न्यारे ॥
खाने-पीने-सोने-जगनेके सारे।
करते वे मेरे साथ कर्म, ध्रुव-तारे ॥
वे घुले-मिले रहते हैं मुझसे प्रतिपल।
जो देख न पायें पलभर, होते व्याकुल ॥
मेरा सुख ही है उनका सुख अति निर्मल।
वे रहते नित्य निमग्न उसीमें अविचल ॥
यों नित्य पास रहते भी मैं खो जाती।
खोकर फिर उनको मैं दुखिया हो जाती ॥
रोती, विलाप करती, पर उन्हें न पाती।
मैं नित्य प्राप्त उन प्रियतम-हित बिलखाती ॥
लगता, वे रहते दूर, पास नहिं आते।
मुझ प्रेमहीनको क्यों वे पास बुलाते ॥
मैं रोती रहती नित्य, न वे लख पाते।
वे नहीं इसीसे खुद संयोग लगाते ॥
वे हँसते मुझको देख भूल में भारी।
लख, नित्य मिलनमें अमिलन-गति हिय-हारी ॥
कहते—'देखो, मैं पास तुम्हारे, प्यारी !
इस प्रेम-दशा विचित्रपर मैं बलिहारी' ॥
सुधि होती, खुलते नेत्र, चेत हो जाता।
रस-स्रोत मधुरमें दुःख सभी बह जाता ॥
बढ़ता रसका अति वेग, परम सुख छाता।
प्रियको नित पाकर साथ न हर्ष समाता ॥

[४७४]

(राग खमाच—ताल दादरा)

कृष्ण उठत, कृष्ण चलत, कृष्ण शाम-भोर है।
कृष्ण बुद्धि, कृष्ण चित्त, कृष्ण मन विभोर है॥
कृष्ण रात्रि, कृष्ण दिवस, कृष्ण स्वप्न-शयन है।
कृष्ण काल, कृष्ण कला, कृष्ण मास-अयन है॥
कृष्ण शब्द, कृष्ण अर्थ, कृष्णहि परमार्थ है।
कृष्ण कर्म, कृष्ण भाग्य, कृष्णहि पुरुषार्थ है॥
कृष्ण स्नेह, कृष्ण राग, कृष्णहि अनुराग है।
कृष्ण कली, कृष्ण कुसुम, कृष्ण ही पराग है॥
कृष्ण भोग, कृष्ण त्याग, कृष्ण तत्त्व-ज्ञान है।
कृष्ण भक्ति, कृष्ण प्रेम, कृष्णहि विज्ञान है॥
कृष्ण स्वर्ग, कृष्ण मोक्ष, कृष्ण परम साध्य है।
कृष्ण जीव, कृष्ण ब्रह्म, कृष्णहि आराध्य है॥

[४७५]

(राग बिहाग—ताल दादरा)

देश कृष्ण, काल कृष्ण, दिवस कृष्ण, रात कृष्ण।
जन्म कृष्ण, मरण कृष्ण, संरक्षण-घात कृष्ण॥
दुःख कृष्ण, सुख कृष्ण, तम औ प्रकाश कृष्ण।
हानि कृष्ण, लाभ कृष्ण, विलय औ विकास कृष्ण॥
काम कृष्ण, क्रोध कृष्ण, लोभ कृष्ण, मोह कृष्ण
हर्ष कृष्ण, शोक कृष्ण, दम्भ-दर्प-द्रोह कृष्ण॥
तोष कृष्ण, क्षमा कृष्ण, समता, विवेक कृष्ण।
विनय कृष्ण, ऋजुता कृष्ण, सुहृदता-टेक-कृष्ण॥
लेन कृष्ण, देन कृष्ण, ग्रहण कृष्ण, दान कृष्ण।
स्तुति कृष्ण, निन्दा कृष्ण, मान-अपमान कृष्ण॥

तिक्त कृष्ण, मधुर कृष्ण, सुन्दर-वीभत्स कृष्ण।
घोर विष-कुण्ड कृष्ण, मधुर अमृत-उत्स कृष्ण ॥
पतित कृष्ण, उन्नत कृष्ण, निर्धन-धनवान कृष्ण।
पापी-पुण्यवान कृष्ण, अज्ञ-ज्ञानवान कृष्ण ॥
सब विधि स्वतन्त्र कृष्ण, कारागार-बद्ध कृष्ण।
नित्य सहज मुक्त कृष्ण, माया-सम्बद्ध कृष्ण ॥
दण्ड-पुरस्कार कृष्ण, बन्धन कृष्ण, मुक्ति कृष्ण।
युक्ति-सिद्धान्त कृष्ण, विभ्रम-अयुक्ति कृष्ण ॥
विप्र कृष्ण, शूद्र कृष्ण, अन्त्यज-अस्पृश्य कृष्ण।
गोपन रहस्य कृष्ण, इदमित्थं दृश्य कृष्ण ॥
नर कृष्ण, नारी कृष्ण, बालक औ वृद्ध कृष्ण।
बुद्धिहीन मूढ़ कृष्ण, शुद्ध मति समृद्ध कृष्ण ॥
त्यागी, महायोगी कृष्ण, कुलटा औ सती कृष्ण।
वर्णी-गृहस्थ कृष्ण, वानप्रस्थ-यती कृष्ण ॥
भोग कृष्ण, त्याग कृष्ण, राग औ विराग कृष्ण।
खरधुनि कठोर कृष्ण, मधुर रसमय राग कृष्ण ॥
सम कृष्ण, विषम कृष्ण, मलिन कान्तिमान कृष्ण।
शेष कृष्ण, शेषी कृष्ण, भक्त-भगवान कृष्ण ॥
शिव कृष्ण, विष्णु कृष्ण, सगुण कृष्ण, निर्गुण कृष्ण।
कृष्ण कृपा, कृष्ण-कृष्ण, कृष्ण कृपा, कृपा कृष्ण ॥

[४७६]

(राग जंगला—तीन ताल)

श्याम हमारे तन-मन-धन हैं, श्याम हमारे जीवन-प्रान।
श्याम हमारे अङ्ग-अङ्गमें, रोम-रोममें बसे महान ॥
श्याम मिले ही रहते हैं नित, नहीं छोड़ते हैं पल एक।
घरमें, वनमें, भीतर-बाहर, सदा साथ रहते रख टेक ॥

स्वप्न-जागरण, भोग-योगमें घुले-मिले रहते हैं नित्य।
साथ खेलते, साथ विहरते, सदा साथ सोते हैं सत्य॥
होता नहीं वस्तुतः उनसे क्षणभर मेरा कभी वियोग।
रहता सदा श्यामसे मेरा सुखमय परम मधुर संयोग॥
कभी-कभी ये अंधी आँखें उनको नहीं देख पातीं।
विरह-अग्निसे इसीलिये मैं हूँ तत्काल जली जाती॥
एक साथ सम्मिलित, एकरस, बिना तनिक-से भी व्यवधान।
मिले-मिलाये रहते हैं वे प्रियतम मेरे श्रीभगवान॥

[४७७]

(लावनी चौथी तर्ज—ताल कहरवा)

श्याम नित्य सुन्दर मेरे मन, श्याम नाम नित नव सुख सार।
श्याम स्मरण, श्याम ही जीवन, श्याम प्राण,शुचि प्राणाधार॥
श्याम प्राणधन, श्याम बुद्धि-मन, श्याम करण, तन सोहन श्याम।
श्याम सुकण्ठहार, सिर-भूषण, कर्णफूल नकबेसर श्याम॥
श्याम केश सिर, श्याम वेश वर, श्याम नील सारी शृङ्गार।
श्याम जाति-कुल,श्याम अर्थ-बल, श्याम भजन-पूजन-सम्भार॥
श्याम भोग-सुख श्याम आत्म सुख, प्राणनाथ हैं मेरे श्याम॥
श्याम स्वप्न, जागरण श्याम ही, श्याम सुषुप्ति, तुरीया श्याम।
श्याम जन्ममें, श्याम मृत्युमें श्याम भरे सारे संसार।
श्याम बसे हैं नित्य हृदयमें श्याम सटे तनमें साकार॥

[४७८]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

श्याम हमारे वस्त्राभूषण, श्याम हमारे भोजन-पान।
श्याम हमारे घर, घरके सब, श्याम हमारे ममता-मान॥
श्याम हमारे भोग्य, सुभोक्ता, श्याम हमारे कर्त्ता, कर्म।
श्याम हमारे तन-मन-धन सब, श्याम हमारे केवल धर्म॥

श्याम हमारे त्याग, भोग सब, श्याम हमारे श्वासोच्छ्वास।
श्याम हमारे स्व-पर सभी कुछ, श्याम हमारे सब अभिलास॥
श्याम हमारे परम गुप्त निधि, श्याम हमारे प्रकट विभूति।
श्याम हमारे भूत भविष्यत्, वर्तमानकी वाञ्छित भूति॥
श्याम लोक-परलोक हमारे, बन्धन-मोक्ष हमारे श्याम।
श्याम हमारे चरम परम गति, श्याम हमारे चिन्मय धाम॥
श्याम-प्रीति-रुचि-सुख ही केवल एक हमारा सहज सु-रूप।
श्याम-सुखार्थ सभी कुछ होता रहता उनके मन-अनुरूप॥
श्याम करावें पूर्ण त्याग, या खूब करावें इन्द्रिय-भोग।
श्याम रखें सब भाँति स्वस्थ, या दे दें चाहे कठिन कुरोग॥
श्याम कहें तो प्राण त्याग दें सुखपूर्वक अति मन उत्साह।
श्याम कहें तो अमर रहें हम, पूरी हो प्रियतमकी चाह॥
श्याम भले अपमान करावें, करें, करावें या सम्मान।
श्याम सुखी हों जिससे, केवल वही हमारा सच्चा मान॥
श्याम मिले नित रहें, एक पल भी न हमें छोड़ें, रख राग।
श्याम कभी भी मिलें न हमसे, जीवनमें निज भरें विराग॥
श्याम सुखी हों जैसे ही, है हमें उसीमें परमानन्द।
श्याम-चित्त विपरीत न रहता मनमें कभी कहीं आनन्द॥
श्याम-सुखार्थ त्याग यदि होता, उसका रहता हमें न भान।
श्याम प्रेमसे ही सब होता सहज, सरल, सुखमय, गत-मान॥
श्याम-प्रीतिसे भरा हृदय तब कौन करे, कैसा अभिमान।
श्याम बन रहे जीवन ही तब किसपर कौन करे अहसान॥
श्याम-प्रेम-फल प्राप्त सर्वथा, कौन परम फल अब अवशेष।
श्याम-हेतु सब काम, त्यागका कौन महत्त्व बचा अब शेष॥
श्याम हमारे हैं सब कुछ, हम सदा श्यामकी सुख-साधन।
श्याम स्वयं हमसे करवाते रहते निज-सुख-आराधन॥

[४७९]

(राग सोहनी—ताल दादरा)

श्यामकी चर्चा हमारा प्राण है।
श्यामकी चर्चा सुखोंकी खान है।
श्यामकी चर्चा हमारी शान है।
श्यामकी चर्चा हमारा मान है।
श्याम-चर्चा है सुखद हमको परम॥
श्यामकी चर्चा सुनाता जो हमें।
श्यामकी चर्चा बताता जो हमें।
श्याम-परिपाटी सिखाता जो हमें।
श्यामकी रतिमें लगाता जो हमें।
हैं कृतज्ञ सदैव हम उसके परम॥

[४८०]

(लावनी पाँचवीं तर्ज—ताल कहरवा)

राधा घर, काननमें राधा, राधा नित यमुनाके तीर।
राधा मोद, प्रमोद राधिका, राधा बहै नयन बन नीर॥
राधा प्राण, बुद्धि-मन राधा, राधा नयनोंकी तारा।
राधा तन-इन्द्रियमें, राधा प्रेमानन्द-सुधा-धारा॥
राधा मन है, राधा धन है, नाम-धाम सब है राधा।
राधा भजन, ध्यान राधा ही, जप-तप-यजन सभी राधा॥
राधा जगते, सोते राधा, खान-पानमें है राधा।
राधा उठने और बैठनेमें भी, हँसनेमें राधा॥
राधा नव बसन्त-मलयानिल, राधा हरै सभी बाधा।
राधा सदा स्वामिनी मेरी, परमाराध्या है राधा॥

[४८१]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

प्रियतम नित्य प्राण हैं मेरे, मैं हूँ उनके अपने प्राण।
विधनाने क्यों रचे देह दो, क्या सोचा इसमें कल्याण॥
उनका जैसा होता है मेरे प्रति अति-विचित्र व्यवहार।
नहीं चुका सकती मैं उसका बदला कुछ भी, किसी प्रकार॥
प्रियतमका व्यवहार देख मैं हूँ लज्जासे गड़ जाती।
विविध भाँति विनती करती, पर नहीं उन्हें समझा पाती॥
कभी देख पाते जो मुझको खाते पथमें भी ताम्बूल।
हाथ पसार माँगते मंगनकी ज्यों, सब मर्यादा भूल॥
मेरे तनका वर्ण देख वे पीताम्बर धारण करते।
मुरलीमें ले नाम सदा मेरा ही प्यारे सुर भरते॥
मेरी अङ्ग-सुगन्ध जिधरसे आती प्रियतम लख पाते।
उसी ओर पागल-से हो वे अलि समान उड़-उड़ जाते॥
सेवाको ललचातीं शत-शत रूप-गुणवती नारि ललाम।
नहीं किसीकी ओर ताकते मेरे सिवा कभी भी श्याम॥
छोड़ दिया सारा प्रियतमने मेरे लिये जाति-कुल-मान।
कैसे ऋणका शोध करूँ मैं, गुण-दरिद्र, दोषोंकी खान॥
नहीं रोकनेमें समर्थ मैं, हूँ सहनेमें भी असमर्थ।
जो जी चाहे करें प्राणधन, वे ही समझें अपना अर्थ॥

[४८२]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

हटे वह सामनेसे, तब कहीं मैं अन्य कुछ देखूँ।
सदा रहता बसा मनमें तो कैसे अन्यको लेखूँ?
उसीसे बोलनेसे ही मुझे फुरसत नहीं मिलती।
तो कैसे अन्य चर्चाके लिये फिर जीभ यह हिलती?

सुनाता वह मुझे मीठी रसीली बात है हरदम।
तो कैसे मैं सुनूँ किसकी, छोड़ वह रस मधुर अनुपम ?
समय मिलता नहीं मुझको टहलसे एक पल उसकी।
छोड़कर मैं उसे, कैसे करूँ सेवा कभी किसकी ?
रह गयी मैं नहीं कुछ भी किसीके कामकी हूँ अब।
समर्पण हो चुका मेरा जो कुछ भी था उसीके सब ॥

[४८३]

(राग कालिंगड़ा—ताल कहरवा)

प्यारे प्रियतम प्रभु अवश्य ही रहते हैं नित मेरे पास।
खाते-पीते, सोते-जगते, चलते-फिरते कर मृदु हास ॥
मेरी नजर खींचते, मुझे रिझाते वे रहते प्रिय नित्य।
विविध भाँतिसे लीला करते, हृदय लगाते निश्चय सत्य ॥
आलिङ्गन कर बात पूछते, अन्तरङ्ग कहते निज बात।
निज कर मेरे केश सजाते, मृदु-मृदु खुद सहलाते गात ॥
जब मेरा भावान्तर होता, नहीं दीखते मुझको तब।
होती विरह-वेदना भारी, व्याकुल तन-मन होते सब ॥
एक-एक पल युग-सम जाता, उठती हृदय विषम ज्वाला।
तब हो प्रकट तुरत बन जाते मेरी मधुर कण्ठमाला ॥
रहते सदा मिले मुझसे वे हर स्थितिमें प्यारे घनश्याम।
मिलन और बिछुड़नकी लीलाका सुख देते सदा ललाम ॥

[४८४]

(राग कल्याण—ताल कहरवा)

रहते नित हृदयमें मेरे, कभी न ओझल होते।
वहाँ अचल डेरा डाले, बस, रहते सुखसे सोते ॥
नहीं किसीको घुसने देते, नहीं झाँकने देते।
पूरा निज अधिकार जमाये, पूरा आनँद लेते ॥

बाहर भी वे रहते मेरे चारों ओर निरन्तर।
नहीं किसीको आने देते इन्द्रिय-सीमा भीतर॥
रहते सदा दृगोंमें छाये, वे नयनोंके तारे।
कानोंमें मधु-वचन-सुधा, संगीत सुनाते प्यारे॥
नासाको मीठी अति अङ्ग-सुगन्ध सुँघाते अनुपम।
सरस प्रसाद-सुधा रसनाको मधुर चखाते हरदम॥
अङ्ग-अङ्गको स्पर्श-दान कर, धन्य सदा वे करते।
अन्य सभी जगके सम्बन्धोंको वे बिलकुल हरते॥
यों मतिमें, मनमें, इन्द्रियमें सदा बसे वे रहते।
एकछत्र अधिकार किये वे दृढ़ स्वरमें यों कहते—
''तुमपर, वस्तु तुम्हारी सबपर पूरा कब्जा मेरा।
मेरे सिवा अन्यको तुम भी कभी न कहती 'मेरा'॥
यों मैं सिर्फ तुम्हारी, तुम हो केवल मेरे प्यारे।
एक, सदा ही एक रहेंगे, कभी न न्यारी-न्यारे''॥

[४८५]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

नहीं छोड़ते हैं पलभर भी करते रहते मनमानी।
नटखट निपट निरन्तर मुझसे करते मधुर छेड़खानी॥
अपने मनकी मुझे कभी वे तनिक नहीं करने देते।
कभी रुलाते, कभी हँसाते, कभी नचाकर सुख लेते॥
हृदय लगाते कभी मोद भर, कभी हटाते कर दुर-दुर।
सुधा पिलाते मधुर कभी, भर मुरलीमें अपना ही सुर॥
इसीलिये इस जीवनमें, बस उनका ही सुर है बजता।
उनके ही रससे रसमय मन सदा सहज उनको भजता॥
मेरे मनकी रही न कुछ भी, उनके मनकी सब मेरी।
करें-करायें वे चाहे सो, मिटी सभी हेरा-फेरी॥

[४८६]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

नित्य सुदारुण विरह भयानक, उत्कट मिलनेच्छा, उर दाह।
नित्य मिलन-सुख मधुर-मनोहर, नित उत्सव, शुचि नित उत्साह॥
दोनों ही शुभ, दोनों ही सुख, दोनों में रहता संयोग।
भीतर एक भरा नित रहता, देता एक बाहरी भोग॥
बाहर-भीतर दोनोंमें ही रहते युगपत् नित एकत्र।
दोनोंमें ही होती नित ही रस-वर्षा शुचि विविध विचित्र॥
हुआ न कभी, न है, हो सकता क्षणभर नहीं कदापि बिछोह।
नित्य एक ही, नित्य बने दो रसमय चिदानन्द-संदोह॥

[४८७]

(राग बिहाग—तीन ताल)

स्याम मो मन में आय बस्यौ।
निकसत नायँ एक छिन कबहूँ, संतत रहत धँस्यो॥
करत सदा मनमानी, चाहत पलभर नायँ खस्यो।
झकझोरत, हिय-कली मरोरत, अति आनंद गस्यौ॥
राखत मोय नेह-परिपूरन निज भुज-पास कस्यौ।
मिल्यौ रहत नित अंग-अंग सौं, निर्मल रसहिं रस्यौ॥
ज्यौं-ज्यौं कली मरोरत, त्यौं-त्यौं हिय मम रहत हँस्यौ।
स्याम-सनेह-जाल मेरौ मन निरबधि काल फँस्यौ॥

[४८८]

(राग कालिंगड़ा—ताल कहरवा)

कहाँ असीम अनन्त प्रेम आनन्द मधुर रसके सागर।
अमित अपार महत्त्व दिव्य गुण-श्री-यशके अतुलित आगर॥
कहाँ असीम नगण्य तुच्छ मैं, दीन-हीन सूखी बागर।
पर आश्चर्य! मिले ही रहते नित मुझसे वे नट-नागर॥

[४८९]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

सखी ! हो गयी क्या मैं पागली, बदल गया या तेरा रूप ।
तेरी जगह दिखायी देते मुझको मोहन रूप-अनूप ॥
ऊपर-नीचे, दायें-बायें, जिधर फिराती हूँ मैं नैन ।
सभी जगह हैं मुझे दीखते मोहन नट-नागर सुख दैन ॥
कानोंसे भी मुझे सुनायी देती मधु मुरलीकी तान ।
केवल वह बज रही सर्वदा, अथवा हुए विमोहित कान ॥
नासा नित्य पा रही उनकी अंग-सुगन्ध मधुर चहुँ ओर ।
चखा रहे रसनाको वे नित मधुर सुधा निज नन्द-किशोर ॥
अङ्ग सदा पाते रहते हैं प्रियतमका प्रिय अङ्ग-स्पर्श ।
जीभ सदा गाती है उनके नाम गुणोंका ही उत्कर्ष ॥
कौन कहे किससे क्या कैसे, मिटे सभी माया के द्वन्द ।
चलती रहती अब तो लीलामयकी नित लीला स्वच्छन्द ॥

[४९०]

(दोहा)

हरि मेरे प्रियतम सदा रहते मेरे पास ।
देखा करते वे मुझे छाया मुख मृदु हास ॥
एक पलक होते नहीं प्रियतम मुझसे दूर ।
सदा दिखाते वे मुझे मुख-मयङ्कका नूर ॥
देते रहते नित्य सुख निज संनिधिका पूर्ण ।
हुए अन्य संकल्प सब मेरे मनके चूर्ण ॥
लगी हृदयमें एक ही मीठी लगन ललाम ।
रहूँ निरखती मैं सदा मनहर-छवि सुख-धाम ॥

[४९१]

(राग कालिंगड़ा—ताल कहरवा)

नहीं चाहती याद रखूँ मैं, वरं चाहती जाऊँ भूल।
पर हटता वह नहीं हृदयसे, सदा चुभाता रहता शूल॥
कठिन नुकीला शूल, किंतु वह बन जाता तुरंत मृदु फूल।
मुझे सदा असीम सुख देता, काट बहाता दुखका मूल॥

[४९२]

(राग मालव—तीन ताल)

दीर्घकालके बाद हुआ प्रियतमका सुखद मिलाप।
बुझीं हृदयकी ज्वालाएँ सब, मिटे सभी संताप॥
पूर्ण चन्द्र हों उदित गगनमें, करूँ कोकिला कूक।
नहीं उठेंगी ज्वाला तनमें, नहीं हृदयमें हूक॥
मलय मन्द हो पवन प्रवाहित, करें मधुप गुंजार।
प्राणनाथके साथ नहीं अब होगा दुख-संचार॥
हुए क्लेश सब दूर, मिले चिर-बिछुड़े मोहन श्याम।
जीवन हुआ मोदमय, मेरे पूर्ण हुए सब काम॥

[४९३]

(राग काफी—तीन ताल)

लालची लोचन मधुप हमारे।
पियत रूप-रस मधुर निरंतर, होत न छिनहूँ न्यारे॥
जिमि प्रति लाभ लोभ बाढ़ै अति, त्यों ही ये ललचाने।
पल-पल बढ़त लालसा इन की, करत काम मनमाने॥
लोक-वेद की मरजादा तजि, रहत स्याम-रँग राते।
मानत नहीं नैक कछु हटके, गटकि-गटकि रस-माते॥
मोहन कौ मुख-कमल मधुर नहिं हटै पलक दृग-मन तैं।
निरखत रहैं दिवस-निसि, बाहर-भीतर नित्य जतन तैं॥

[४९४]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

हुआ मधुर सम्बन्ध प्रेमका, नित्य अभिन्न परम शुचि भाव।
खुले हृदयके द्वार, मिट गये मिलकर सारे दूर-दुराव॥
जान गये दोनों दोनोंके अन्तरका रहस्यमय मर्म।
बने परस्पर जीवनके वे चिर अपृथक् सब धर्मी-धर्म॥
सदा एकरस, सदा एक मन, सदा एक अभिलाष अनूप।
सदा एक, पर सदा बने दो, दोनों के आकर्षक रूप॥
देह-गेहके टूट गये प्यारे-खारे सारे सम्बन्ध।
नित्य मुक्त कर मुक्त बँध गये स्वयं प्रेमके स्थायी बन्ध॥
विगत हुए दोके अभावमें भय-लज्जा-विषाद-मद-मान।
दो परंतु निज बने कराते-करते आपसमें रस-पान॥
जीवन-मरण-भरे द्वन्द्वोंका हुआ अतुल अत्यन्ताभाव।
लगा विशुद्ध त्यागमय सुख पहुँचानेका आपसमें चाव॥
उठा सभी शासन, न रहा अब कर्मोंका कुछ भी अवशेष।
मिला लिया प्रियतमने परा, रखा न तनिक पृथकता-लेश॥

[४९५]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

रहते हैं प्यारे नित सारे लिये मधुर गुण मेरे पास।
सुमधुर स्पर्श-शब्द, सुन्दर छवि, मधुर सु-रस अति मधुर सुवास॥
करते नित रहते मुझको वे अपनी सभी वस्तुएँ दान।
नहीं अदेय मानते कुछ भी मेरे प्रियतम वे भगवान॥
मैं अति सकुचाती, शरमाती, देख-देखकर अपनी ओर।
बोली मधुर बोल, शरमाता देख पैर निज जैसे मोर॥
लालायित-से हुए सतत देते रहते आलिङ्गन-दान।
होते परम प्रसन्न देख वे मेरे ओठोंपर मुसकान॥

पर वे नहीं देखते कुछ भी भली-बुरी जीवनकी चाल।
दे अपना सर्वस्व मुदित मन, सदा कर रहे मुझे निहाल॥
पता नहीं, ये रीझ रहे क्यों गुणनिधि परम चतुर रसराज।
क्या देखा प्रियतमने मुझमें छिपा विलक्षण सुन्दर साज॥
यह सब अनुभव करके भी मैं नहीं स्पष्ट अनुभव करती।
अतः तरसती, विलखाती नित, रोती, नित आहें भरती॥
नित्य मिलनमें भी अमिलनका कटु अनुभव कर दुख पाती।
मृदु हँस, कर-संस्पर्श जगाते, प्रिय-मुख देख लजा जाती॥

[४९६]

(दोहा)

कैसे देखूँ दूर मैं, प्रभु जब रहते पास।
करती मैं इससे सदा प्रभु-चरणोंमें बास॥
निरख रहे मुझको सदा प्रभु नित निज रस-नैन।
मेरे दृग भी लग रहे, भोग रहे सुख चैन॥
रस-बर्षा करते मधुर प्रिय मुझपर दिन-रात।
रहती रसमें मग्न, सब डूबे रहते गात॥
मिले नित्य रहते सभी—मन-मति, इन्द्रिय-अङ्ग।
बिना किसी व्यवधानके, नित नव-नव रस-रङ्ग॥
भुक्ति-मुक्ति-वाञ्छा मिटी, रही न देहासक्ति।
प्रियतममें नित बढ़ रही अति निर्मल अनुरक्ति॥

[४९७]

(राग खमाच—ताल कहरवा)

हो गया उनका सब संसार। उठ गया मेरा कुल अधिकार॥
मिटा सब 'मेरे' पनका भान। मिट गया 'मैं' पनका अभिमान॥
मिटा सब अलग-अलग व्यापार। हुआ सब उनमें एकाकार॥
रह गये वही एक अब शेष। सभी 'हैं उनके अपने वेश॥

दुःख-सुख सब उनके ही रूप। छा रहे सबमें वही अनूप ॥
कर रहे लीला अपने आप। दिखाते अपनेको ही आप ॥
मधुर अति, कभी भयानक घोर। भरा उनका मधु-रस सब ओर ॥
रही मैं घुल-मिल उनके साथ। नित्य दासी, वे मेरे नाथ ॥

[४९८]

(राग गुनकली—ताल कहरवा)

मिल्यौ स्याम कौ मधु-संयोग।
मिटे जगतके सारे रोग ॥
मिल्यौ एक फिर मीठो रोग।
बढ्यौ खाय सो सारे भोग ॥
बढ्यौ रहै यह प्यारौ रोग।
बढ़तौ रहै सदा यह रोग ॥
होइ न याकौ, कबौं वियोग।
मिल्यौ स्याम कौ मधु-संयोग ॥

[४९९]

(राग मालश्री—ताल मूल)

सजनी ! जो कटा अंग अँग मेरा। खिला कुछ और ही तब रँग मेरा ॥
अंदरका पूरा बंध काट डाला। तनको सुरोंके लिये छेद डाला ॥
छेदोंसे मेरा सीना भरा है। तुम देखो कैसा यह माजरा है ॥
मैं कुछ न कह कर नित्य मौन रहती। छेदोंसे प्रियकी मधुर तान बहती ॥
वे अपने मनसे गायें जो चाहें। मुझे भले कोई कितना सराहें ॥

[५००]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

मिटे सब शोक, मोह, भय, मान। कामना, ममता, मद, अभिमान ॥
जन्मका चक्र, मरणकी भीति। मिटी सब राग-वैरकी रीति ॥

मिटे सब अग-जगके जंजाल। हो गयी मैं सब भाँति निहाल ॥
रह गये प्यारे केवल एक। मिट गयी सभी दूसरी टेक ॥
भरा सर्वत्र प्रेम स्वच्छन्द। रहा केवल मधुमय आनन्द ॥
बही रस-सुधा मधुरकी धार। रह गया, बस, प्रियतमका प्यार ॥

[५०१]

(राग सारंग—ताल त्रिताल)

पलभर नहीं छोड़ते प्यारे, पलभर नहीं छोड़ते साथ।
सदा-सदा समीप रहते वे, घुले-मिले प्राणोंमें नाथ ॥
देख-देखकर मैं उनका वह पल-पल बढ़ता नूतन रूप।
नित्य-निरन्तर पावन पाती हूँ प्रमोद अति मधुर अनूप ॥

[५०२]

(राग खमाच—तीन ताल)

कान्ह बर मेरे जीवन-प्रान।
देखि रूप छूट्यौ जग सारौ, रह्यौ न कछु संधान ॥
वे ही अब सब तन-मन मेरे, वे ही जीवन-जीवन।
नयननि की पुतरी वे मेरी, वे ही हिय कौ स्पंदन ॥
मोहि सिख दैबे में सखि ! क्यों तुम करौ समय बरबाद।
रूप-सुधा पी भई बावरी हौं, टूटी मरजाद ॥
भूलि जाहु मो कूँ तुम सब अब, कुल की जानि कलंक।
हौंहूँ परी रहूँ पगली है, प्रियतम के प्रिय अंक ॥
कट्यौ लोक-बंधन सब सहजहिं, रह्यौ न कोउ परलोक।
चरननि नित्य बसाय लई प्रिय, रह्यौ न चिंता-सोक ॥
पास रहूँ वा दूर, नित्य वे रहते मेरे पास।
भयौ नित्य संबंध तिनहिं ते अमिट-अटूट-अनास ॥

[५०३]

(राग खमाच—ताल कहरवा)

बिछुरे होयँ जु मिलैं प्रान-धन, गए होयँ तौ आवैं।
आठौं जाम बसैं उर-मंदिर, कबहुँ न इत-उत जावैं॥
जब मन होय प्रगट ह्वै बाहर, रूप-सुधा बरसावैं।
भाँति-भाँति रस-दान-पान करि मधुर-मधुर मुसुकावैं॥
करैं अचगरी, अधरामृत-रस अबिरल पियैं-पियावैं।
सब बिबधान दूर करि मोकौं मोहन अंग लगावैं॥
जब मन होय छिपैं पुनि उर-घर, लीला ललित रचावैं।
सुपन-जागरन रहैं संग नित, अंग-अंग बिलसावैं॥
समुझैं नायँ रहस्य अग्य जन, आय-आय समुझावैं।
जानि बियोगिनि ग्यान-दान दै, धीरज मोय बँधावैं॥
मेरौ पलहू कौ बियोग वे प्यारे सहि नहिं पावैं।
सखि ! तुम तौ रहस्य सब जानौं, हम न कबहूँ अरगावैं॥

[५०४]

(राग देस—ताल कहरवा)

सरबस छीन लै गयौ मेरौ वो लंपट अति धूत।
परम चतुर ठग लंगर छलियौ वो जसुमति कौ पूत॥
प्याय रूप-मद मधुर मोय मादक कीन्ही बेभान।
लूट लई, कीन्ही मनमानी ता पाछै सैतान॥
अब का करौं, कहौं का सौं, कछु रह्यौ न मेरे पास।
मन-मति-गति-रति लूटि कितव मोहि देई दासता खास॥
अब तो हौं नहिं रही आपु में, सभी अपनपौ लूट्यौ।
घुली-मिली सबरी मैं वा सँग, सब सौं नातौ टूट्यौ॥

[५०५]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

पता नहीं कुछ रात-दिवसका, पता नहीं कब संध्या-भोर।
जाग्रत्-स्वप्न दिखायी देता श्याम सदा मेरा चितचोर॥
भूल गयी मैं नाम-धाम निज, भूल गयी सुधि-हूँ मैं कौन।
नयन नचाकर, प्राण हरण कर, खड़ा हँस रहा धरकर मौन॥
कैसी मधुर मूर्ति, वह कैसा था विचित्र मनहारी रूप!
आँखें झूर रहीं, झरतीं नित, करतीं स्मृति सौन्दर्य अनूप॥
मर्म बेधकर धर्म मिटाया, किया चूर सारा अभिमान।
लोक-लाज, कुल-कान मिटी सब, रहा न कुछ निज-परका भान॥
हा! कैसा बिधु-वदन सुधामय, विचर रहा कालिन्दी-कूल।
हर सर्वस्व बाँध सब तोड़े, मिटे सभी मर्यादा-कूल॥
मनसा मिल रहते मेरे सब अङ्ग नित्य प्रियतमके अङ्ग।
नहीं छूटता कभी, सभी विधि रहता सदा श्यामका सङ्ग॥
रसमय हुई नित्य रस पाकर रसिक-रसार्णवका सब ओर।
बही रस-सुधा-सरिता-धारा प्लावित कर सब, रहा न छोर॥
श्याम रहे या रही मैं—कहीं, कुछ भी नहीं रहा संधान।
श्याम बने मैं, श्याम बनी मैं, एकमेक हो रहे महान॥

[५०६]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

सखि! क्या हुआ? मुझे अब नहीं दिखायी देता तन तेरा।
दीख रहा मुस्काता केवल मधुर श्यामसुन्दर मेरा॥
अनल-अनिल-आकाश-धरा-जल—सबमें मधुर कराता स्पर्श।
मनुज-दनुज-सुर-पशु-पक्षीमें छिपा दिखा सुख देता हर्ष॥
स्वप्न-जगत्में भी रहता नित मधुर श्यामसुन्दर छाया।
मोहन मुख दिखलाता, हरकर मिथ्या सभी मोह-माया॥
रहा नहीं कुछ भी, कोई भी, एक श्यामसुन्दरको छोड़।
सबमें सभी और दिखाता है मधुर मुस्कुराता रणछोड़॥

[५०७]

(राग हुजाज—तीन ताल)

सुनौ सखि ! यह अनुभव की बात।
घुलीं-मिली मैं रहूँ स्याम प्रियतम सौं सब दिन-रात ॥
मन-मति-इंद्रिय धन्य होत नित, करत स्याम-संस्पर्स।
जग के सब मिटि गए दुःख-सुख द्वंद्व विषाद-प्रहर्ष ॥
मैं हूँ अथवा हैं वे प्यारे, रह्यौ न तनिकहु ग्यान।
'मैं'-'तू' की मिटि गई कलपना, रह्यौ न निज-पर-भान ॥
करिबेवारी रही न अब मैं, न्यारी तिन तें नेक।
कौन, कहा सुख दै अब काकौं, भए निरंतर एक ॥

[५०८]

(राग पीलू—तीन ताल)

नैन-मन जब तैं आइ बसे।
तब तैं आठौं जाम, दिवस-निसि, निमिषौ नाहिं खसे ॥
सब के नैन प्रपंचहि निरखत, सब कें मन संसार।
इहाँ जगत आवन पावत नहिं, निरतत नंद-कुमार ॥
ललित त्रिभंग पीत पट सोभित, गल गुंजन की माल।
मुकुट मयूर-पिच्छ, कुंचित कच, मृगमद-तिलक सुभाल ॥
कर मुरली, कटि किंकिनि राजत, पग नूपुर-झनकार।
नील-स्याम-बदनारविंद पर काम कोटि सत बार ॥
अधर मधुर मुसक्यान मनोहर, तिरछी चितवनि जाल।
मुनि-मन-बिहग अगम्य निरखि छबि आइ फँसत तत्काल ॥
नित्य प्रकासित स्याम-सूर्य, तहँ जग-तम जात डराय।
दुस्साहस करि जाय कबहुँ जौ, बिनु मारें मरि जाय ॥

[५०९]

(राग भैरवी—तीन ताल)

सखी री ! यह अनुभव की बात।
प्रतिपल दीखत नित नव सुंदर, नित नव मधुर लखात ॥
छिन-छिन बढ़त रूप-गुन-माधुरि, छिन-छिन नूतन रंग।
छिन-छिन नित नव आनँद-धारा, छिन-छिन नई उमंग ॥
नित नव अलकनि की छबि निरखत अलि-कुल नित नव लाजै।
नित नव सुकुमारता मनोहर अंग-अंग प्रति राजै ॥
नित नव अंग-सुगंध मधुर अति मनहि मत्त करि डारत।
नित नव दृष्टि सुधामइ जन के ताप असेष निवारत ॥
नित नव अरुनाई अधरन की, नित नूतन मुसक्यान।
नित नूतन रस-सुधा-प्रवाहिनि मधु मुरली की तान ॥
नित नूतन तारुन्य, ललित लावन्य नित्य नव बिकसै।
नित नव आभा बिबिध बरन की पिय के तनु तैं निकसै ॥
कछुवै होत न बासी कबहूँ, नित नूतन रस बरसत।
देखत-देखत जनम सिरान्यौ, तऊ नैन नित तरसत ॥
वे ही आत्मा के प्रिय आत्मा, मम प्राननि के प्रान।
मेरे परम प्रानवल्लभ वे, प्रानाराम सुजान ॥
तेरे अनुभव की तू जानै, तेरी बुद्धि बिसाल।
मैं तौ अपने मन नित निरखौं नित-नूतन नँदलाल ॥
एक बेर तू नैकु निरखि लै वा जादू की झाँकी।
फिरि तौ तू नहिं मानैगी बिनु देखे वा छबि बाँकी ॥

[५१०]

(राग विहाग—तीन ताल)

निरखि सखि ! मोहनकी मुसक्यान।
निरखत ही सुधि बिसरि जायगी, भूलि जायगौ मान ॥

सुर-मुनि, मनुज-दनुज, पसु-पंछी, को अस जो जग जायौ।
लखि कै मृदु मुसक्यान ललन की, सुध-बुध नहिं बिसरायौ॥
जोगी, परम तपस्वी, ग्यानी, जिन निज-निज मन मार्‌यौ।
तनिक निरखि मुसक्यान मधुर तिन बरबस जीवन हार्‌यौ॥
बिसर्‌यौ सहज बिराग, ब्रह्म-सुख, थकित बिलोचन ठाढ़े।
तनु पुलकित, दृग प्रीति-सलिल, द्रुत हृदय, प्रेम-रस बाढ़े॥
तैरौ हियौ नेह-परिपूरन, तेरी कौन बिसात।
कछु न बचैगौ, निरखैगी जब मोहन कौं मुसकात॥
जौ कहुँ कबहुँ लई सुनि तैंने वा मुरली की तान।
तौ सब छूटि जायगी ममता, लोक-लाज कुल-कान॥
जौ लौं दृष्टि परै नहिं तेरी वा मधुरी मुसक्यान।
तौ लौं बकै-झकै, हिय राखै भलैं अधम अभिमान॥

[५११]

(राग पीलू—तीन ताल)

सखी ! हौं स्याम-रंग-रँगी।
बिनु गथ बिकी स्याम कर चिर दिन, प्रेम-पराग पगी॥
रूप-छटा मोहन की मन-मंदिर मम आय खगी।
तिरछी नजर मधुर बरछी-सी उर-बिच आन लगी॥
छत्त गंभीर भयौ उर, तामें सुखमय जोत जगी।
भयौ सुखद दुख, पीरा में मधु रस-धारा उमगी॥
भूली अग-जग की सुध सारी, ममता सब बिलगी।
देखि बिचित्र दसा तन-मन की, हौं रहि गई ठगी॥
काहू सौं न रही रति, मति-गति मोहन-बदन लगी।
प्रेमानंद छकी संतत, माया की फौज भगी॥

[५१२]

(राग आसावरी—तीन ताल)

सखी ! हौं प्रीतम-प्रीति पगी।
गति-मति-रति सब स्याम, रहौं हौं उनमें सगी-बगी ॥
कौन काम कैसें कब करिबौ, कहाँ कौन के संग।
सब कछु करैं-करावैं वेई, रचैं नित नए ढंग ॥
पालन-परिचालन-चिंतन, सब भले-बुरे ब्यौहार।
वेई करैं, जहाँ जब जैसौ उनकौ होय बिचार ॥
दोष, अभाव, भूल, भ्रम, त्रुटि कौ मोय न कछु मन भान।
सोच-बिचार करन कौं मोकूँ नहिं कछु ग्यानाग्यान ॥
कठपुतरी उनके कर की हौं, निज मन मोहि नचावै।
खेल खिलावैं, जो कछु मेरे तिन पिय के मन भावै ॥
मोय बनाय बावरी राखी, सुध-बुध रही न नेक।
तन-मन-धन चेतन मेरे सब मुरलीवारे एक ॥

[५१३]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

प्रियतम मेरे, मैं प्रियतमकी, रहती सदा उन्हींके पास।
एकमेक रहते नित घुल-मिल, नित्य बना रहता सहवास ॥
हैं हम दोनों सदा एकरस, एक दूसरेके आधार।
सुख सुखके, जीवन जीवनके, मन मनके एकान्त उदार ॥
मिलना और बिछुड़ना कैसा, कैसा हम दोनोंका भेद।
कैसा सुख संयोग-जनित, फिर कैसा वह वियोगका खेद ॥
एक तत्त्वका एक तत्त्वमें होता शुचि लीला-विस्तार।
नित्य बने दो करते हैं हम अपनेमें ही नित्य विहार ॥

[५१४]

(राग कालिंगड़ा—तीन ताल)

रूप अनूप सुधा-रस-सागर निरुपम प्रियतम नन्द-किशोर।
अगणित ब्रह्मानन्द-विनिन्दक परमानन्द चरम चित-चोर॥
मन्द मधुर मुसकाते मुझको दीखे जब वे ललित त्रिभङ्ग।
धुले सभी मल, शान्त हुआ मन, तत्क्षण हुआ आवरण-भङ्ग॥
टूटी हृदय-ग्रन्थि तत्क्षण ही, खुला कञ्चुकी-बन्ध तुरंत।
निरावरण सब अङ्ग हो गये, आया व्यवधानोंका अन्त॥
अनिमिष, स्पन्दरहित लोचन-अलि करते रूप-जलज-मधु-पान।
सेवा-सुख-निमग्न देहेन्द्रिय, सहज भूल सब जगका भान॥
चिदानन्द-रसमय प्रियतममें मिल मैं हुई सदेह विदेह।
रहा नहीं संकल्प जगत्‌का, नष्ट हुए समूल संदेह॥

[५१५]

(राग कल्याण—तीन ताल)

स्याम-सो साँचौ स्नेही कौन ?
को चित देइ सुनै सब मन की, मन की राखै कौन ?
को मो दृगन सलिल-कन देखत ही ह्वै जाय अधीर।
को निज कर सौं पौंछि अश्रु-जल, सुहृद बँधावै धीर॥
कोमल हाथ पीठि पर फेरै, धीरज दै पुचकारै।
मम आसा-लतिका की जड़ में मधुर अमी-रस ढारै॥
मीठें-मीठें बोलि सिहाबै, हिय सौं नित सुख साधै।
कितनौ बड़ौ, भूलि सब बड़पन मेरौ मन आराधै॥
जाके पद-पराग-परसन-हित नित सुरपति ललचावै।
मो-सी अधम गाँव की ग्वारिनि केहि लेखे महँ आवै॥
तदपि मोहि भूलत नहिं कबहूँ, खरौ अपनपौ जानै।
मेरे सुख सौं सुखी होय, मो दुख में अति दुख मानै॥
जाके चरन-कमल निर्मल मुनि-मानस में नहिं आवै।
सो अति अगम प्रेम-परबस मोहि अपने हृदै बसावै॥

[५१६]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

शुद्ध सच्चिदानन्द, परम निज महिमामें स्थित, नित्य अकाम।
मेरे सुख-हित वे करते स्वीकार स-मुद अपने मन काम॥
सहज वासना-राग-रहित जो, ममता-रहित नित्य अविकार।
करते मेरे लिये मुझे वे 'प्रिया' रूपमें अङ्गीकार॥
एक-एक गुणपर जिनके मोहित सब सुर-ऋषि-मुनि-संसार।
प्रेम-रूप वे रहते नित्य विमोहित मुझपर बिना विकार॥
जिनके अङ्ग-अङ्गपर नित्य निछावर कोटि-कोटि-शत काम।
वे मेरा सौन्दर्य निरखते नित्य, न ले पाते विश्राम॥
जिनको कभी न पलभर लगती भूख-प्यास, जो रहते तृप्त।
मेरे रस-प्रसाद कण-हित शुचि वे रहते हैं नित्य अतृप्त॥
रति-रस-मय, रस-रूप, रसिक वे दिव्य प्रेम-रस-पारावार।
प्रेम-सुधा-रस-पान-निरत नित दिव्य प्रेम-विग्रह साकार॥

[५१७]

(राग बसंत—तीन ताल)

मैं तो सदा बस्तु हूँ उनकी, उनकी ही हूँ भोग्य महान।
मेरी पीड़ा, मेरे सुखका इसीलिये उनको ही ज्ञान॥
मेरे तनका घाव तथा मेरे मनकी जो व्यथा अपार।
उसके सारे दुःख-दर्दका वही वहन करते हैं भार॥
अगर किसी मेरे सद्गुणसे होता है उनको आह्लाद।
तो वह सद्गुण भी है दिया उन्हींका अपना कृपा-प्रसाद॥
जीवन उनका, मति उनकी, मन उनका, तन उनका ही धन।
वे ही इन्हें सुरक्षित रक्खें तोड़ें-फोड़ें, मारें घन॥
जैसे, जब, जो कुछ करवावें और नचावें थनन-थनन।
कटु बुलवावें, गीत गवावें, कहलावें अति मधुर वचन॥

सुग्गा नहीं जानता कुछ भी अर्थ बोलता—'राधेश्याम'।
जिसने उसे सिखाया है, उसका ही अर्थ जानना काम॥
स्वयं मधुर संगीत सिखाकर सुनते, करते यदि यश-गान।
वह यशगान उन्हींका अपना, करे किस तरह शुक अभिमान॥
जीवनमें अपना मधु भर वे करें स्वयं उस मधुका पान।
यों अपने सुखसे ही हों वे सुखी, व्यर्थ दे मुझको मान॥
पर जब मेरा नहीं कहीं भी कुछ भी रहा पृथक् अस्तित्व।
तब सुख-मान सभी हैं उनके, क्योंकि सभी उनका कर्तृत्व॥
मेरा यह 'सम्बन्ध' श्यामसे, श्याम बने मेरे आकार।
तन-मन-वचन, भोग्य-भोक्ता सब, वे ही हैं आधेयाधार॥
यदि मेरा अपना कुछ भी हो, छिपा कहीं भी हो कुछ भाव।
आग लगे उसमें इस ही क्षण, हो जाये अत्यन्ताभाव॥

[५९८]

(राग कल्याण—तीन ताल)

मेरे इक जीवन-धन घनस्याम।
चोखे-बुरे, दयालु-निरदई, वे मम प्रानाराम॥
चाहे वे अति प्रीति करैं, नित राखैं हिय लिपटाय।
रास-बिलास करैं नित मो सँग अन्य सबै छिटकाय॥
मेरे सुख तैं सुखी रहैं नित, पलक-पलक सुख देहिं।
मो कारन सब अन्य सखिन महँ दारुन अपजस लेहिं॥
आठौं जाम रहैं मेरे ढिग, नित नूतन रस चाखैं।
नित नूतन रस मोहि चखावैं, मधुरी बानी भाषैं॥
अथवा वे अति बनैं निरदई, मेरे दुख-सुख मानैं।
मोय दिखाइ-दिखाइ अन्य जुबतिन कौं नित सनमानैं॥
जो वे प्राननाथ सुख पावैं मेरे दुख तें सजनी।
तो मैं अति सुख मानि चहौं वह बनौ रहै दिन-रजनी॥

प्राननाथ कौ जिय जेहि चाहै, सो जदि करै गुमान।
मेरे हेतु करैं नहिं कुटिला प्रियतम कौ सनमान॥
तौ मैं जाइ, चरन परि ताके, करि मनुहार मनावौं।
दासी बनी रहूँ जीवनभर, कबौं न मान जनावौं॥
जा बिधि तिन्हैं होय सुख, ताही बिधि मैं अति सुख पाऊँ।
प्राननाथ कौं सुखी देखि पल-पल मैं मन हरषाऊँ॥
जो तिय निज-इंद्रिय सुख चाहै, इहि कारन प्रिय सेवै।
गाज गिरै ताके सिर, जो इहि बिधि पिय तैं सुख लेवै॥
मैं तौ तिन कें सुख सुख पाऊँ, वे मम जीवन-प्रान।
केहि बिधि होयँ सुखी वे प्यारे, एक यही मम ध्यान॥

[५१९]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

मैं हूँ एकमात्र उनकी ही, वे ही एकमात्र मेरे।
रहा न मेरे मन कोई, जो मुझको अपनी कह टेरे॥
इसी भाँति उठ गया सभीपरसे अब मेरा भी अधिकार।
जबसे हुई समर्पित, जबसे की प्रियतमने अङ्गीकार॥
देह कहीं भी रहे, इसे दे कोई चाहे मनका प्यार।
अथवा इसे सताये कोई, देता रहे सदा दुत्कार॥
कोई कैसे भी माने, बरते इसको इच्छा अनुसार।
मुझसे मतलब नहीं, देहसे ही यह सारा है व्यवहार॥
मैं तो बन सकती न किसीकी ममताकी अब वस्तु कभी।
'मेरे'-'तेरे' के द्वन्द्वात्मक नष्ट हुए सम्पर्क सभी॥
वे मेरे, मैं उनकी अब, बस, रहा एक ही यह सम्बन्ध।
कटे मोह-ममताके सारे छोटे-बड़े विविध-विध बन्ध॥

सखि ! जो नहीं जानते पावन प्रेमदेवका रूप-महत्त्व ।
काम-कलुष-मन देख न पाते वे वियोगमें सुमिलन-तत्त्व ॥
विषयासक्त देह-सुख-कातर कभी न पाते यह आनन्द ।
देह-वियोग उन्हें करता ही रहता नित्य दग्ध स्वच्छन्द ॥

[५२१]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

तुम उनकी, वे नित्य तुम्हारे, रहते नित्य तुम्हारे साथ ।
तुम्हें नित्य रखते अपनेसे मिली, श्याम अपनी ही पाथ ॥
'उनसे तुम हो अलग'—करो मत ऐसा कभी भूल संदेह ।
घुला-मिला एकत्व सत्य है, भले पृथक् दिखते दो देह ॥
देश-कालका, कोई भी हो सकता कभी नहीं व्यवधान ।
सभी देश-कालोंमें निश्चित नित्य सङ्गका बना विधान ॥
तुम स्वरूपतः और तत्त्वतः दोनों सचमुच नित्य अभिन्न ।
करते तत्सुख-सुखी परस्पर लीला मधुर, बने-से भिन्न ॥
विरह-मिलन हैं प्रेममयी इस लीलासरिताके दो छोर ।
इनमें नित बहती वह दिव्य सुधा-रसकी धारा सब ओर ॥

[५२२]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

सखी ! यह अतुल अनोखी बात ।
भीतर कोटि-कोटि रबि राजत, बाहर घोर अँधेरी रात ॥
भीतर खुले द्वार रस-गृह के, बाहर लगे कठोर कपाट ।
बाहर निर्जनता-नीरवता, भीतर लगी रूप की हाट ॥
असती परम सती प्रबेस कर भीतर, रही नित्य सत-संग ।
बिनु जल, स्नान किये नित रहती, भींगी प्रीतम के रस-रंग ॥
परस-रहित तन परस-परायन, परसत स्याम सलोने गात ।
अग-जग-रहित दिब्य तहँ गोपन माधव मधुर-मधुर मुसुकात ॥

पति तजि तप-मूरति, पर-पति-रत कत दांत अस्रांत बिहार।
भोग-बिराग-राग नित रंजित सहज बिराग-बिराग बहार॥
सिव-अज-सेष-व्यास-सुक-नारद-सारद सतत करत गुन-गान।
नित निर्ग्रन्थ मुक्त मुनि-जन-मन अति सिहात लखि लीला-तान॥

[५२३]

(राग पीलू—तीन ताल)

स्रवननि भरि निज गिरा मनोहर, मधु मुरली की तान।
सुनन न दै कछु और सब्द, नित बहिरे कीन्हे कान॥
लिपट्यौ रहै सदा तन सौं मम, रह्यौ न कछु बिबधान।
अन्य परस की स्मृति न रही कछु, भयौ चित्त इकतान॥
अँखियन की पुतरिन में मेरे निसि-दिन रह्यौ समाय।
दैखन दै न और कछु कबहूँ, एकै रूप रमाय॥
रसना बनी नित्य नव रसिका चाखत चारु प्रसाद।
मिटे सकल परलोक-लोक के खारे-मीठे स्वाद॥
अंग-सुगंध नासिका राची, मिटी सकल मधुबास।
भई प्रमत्त, गई अग-जग की सकल सुबास-कुबास॥
मन में भरि दीन्ही मोहन निज मुनि-मोहनि मुसकान।
चित्त कर्‌यौ चिंतन-रत चिन्मय चारु चरन छबिमान॥
दई डुबाय बुद्धि रस-सागर, उछरन की नहिं बात।
आय मिल्यौ चेतन में मोहन, भयौ एक संघात॥

[५२४]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

मिले रहते मुझसे दिन रात। कराते-करते मनकी बात॥
न करने देते कुछ भी और। लगे रहते पीछे सब ठौर॥
स्वप्नमें भी न छोड़ते साथ। वहाँ भी पकड़े रहते हाथ॥
तुड़ाकर जगके सब सम्बन्ध। बाँधकर निज ममताके बन्ध॥

दान कर अपना रसमय प्यार। नचाते निज इच्छा-अनुसार॥
प्राप्तकर मैं अपूर्व आनन्द। अतीन्द्रिय निर्मलतम स्वच्छन्द॥
न कुछ भी भाता मुझको अन्य। अनुग मैं रहती नित्य अनन्य॥
स्वयं भी रहते नहीं स्वतन्त्र। बने नित मेरे ही परतन्त्र॥
दुःख-सुख रहे न पृथक् नितान्त। हो गया भेद-भाव सब शान्त॥
इसीसे मेरे सुखके हेतु। उड़ाते दिव्य प्रेमका केतु॥
स्वयं बन मेरे मनकी मूर्ति। प्रकट कर मधुर नित्य नव स्फूर्ति॥
विलक्षण देते नित रस-दान। स्वयं भी करते शुचि रस-पान॥
अनोखी उनकी लीला सर्व। दूर कर सारे मिथ्या गर्व॥
खींचती नित अपनी ही ओर। सदा रखती आनन्द-विभोर॥
एक ही बने नित्य दो रूप। कर रहे लीला मधुर अनूप॥

[५२५]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

हृदय-भवनमें बसे निरन्तर करते खेल मधुर अविराम।
देते नित्य महासुख मुझको दिखा रूप-सौन्दर्य ललाम॥
आ सकता न कल्पनासे भी उसमें कोई भी कुछ और।
क्यों कि सदा छाये रहते प्रियतम मेरे माधव सब ठौर॥
जो चाहे सो करते और कराते वे प्यारे स्वच्छन्द।
नित्य बढ़ाते रहते नव-नव शुचि चिन्मय रसमय आनन्द॥
नहीं लोक-परलोक रह गये, रहा न कोई प्राणि-पदार्थ।
भोग-त्याग कुछ रहा न मेरे, रहे एक प्रियतम परमार्थ॥
मिटा जगत्, मिट गये जगत्के सारे द्वन्द्व दुःख-सुखरूप।
छलक रहा आनन्द-रसाणर्व श्याम ऊर्मिमय मधुर अनूप॥

[५२६]

(राग पीलू—तीन ताल)

सखी री ! तू क्यों भई उदास।
जो गिरिराज-धरन नहिं पूजी मेरे मन की आस॥

वे अति रस-रति-चतुर, रसिक-उर-सेखर, परम सुजान।
हौं रस-अग्य, गवाँर ग्वालिनी, छायौ हिय अग्यान॥
वे सब गुन-सागर, नव नागर, उन कौ रूप अपार।
हौं गुन-गरिमा-हीन, कृपन, ग्रामीन, कुरूपाधार॥
या बिधि हौं अजोग सब ही बिधि, सब बिधि हीन-मलीन।
तदपि सदा तिन के ही मृदु पद-पंकज की रज दीन॥

[५२७]

(राग गौरी—तीन ताल)

सखी ! जो रूठे स्याम सुजान।
कहा बस मेरौ, सुखी रहैं वे मो प्राननि के प्रान॥
रूप-सुधा-रस मधुर पान-हित नित्य नयन-मन तरसत।
आकुल प्रान रहन नहिं चाहत, छिन-छिन मरनहि करषत॥
जो सरीर पाँवर प्रीतम ने दीन्हौ या बिधि त्याग।
सो अब निस्चै ही छूटैगौ महामंद, हतभाग॥
एक बात सखि ! मेरी रखियो, पूरी करियो साध।
स्याम तमाल-तरोवर दीजौ बाहु-लता सौं बाँध॥
नित्य सँभारत रहियो, जासौं स्वान न पावैं काग।
कबौं आइ प्रिय के देखत पुनि प्रान उठैंगे जाग॥

[५२८]

(राग पीलू—तीन ताल)

अरी सखि ! मेरे तन, मन, प्रान—
धन, जन, कुल, गृह—सब ही वे हैं, सील-मान-अभिमान॥
आँसू सलिल छाँड़ि नहिं कछु धन है राधा के पास।
जा कें विनिमय मिले प्रेम-धन नीलकांत-मनि खास॥
जानि लेहु सजनी ! निस्चै यह, परम सार कौ सार।
स्याम-प्रेम कौ मोल अमोलक सुचि अँसुवन की धार॥

****

[५२९]

(राग बिहाग—तीन ताल)

सखी ! जनि करौ अयानी बात।
प्राननाथ की निंदा करि जनि करौ हिए आघात॥
मेरे जीवन के जीवन वे सुखी रहैं दिन-रात।
मोय सुनावौ तुम तिन के गुन मधुर, कलित कुसलात॥
दूर रहैं या पास, न मो तैं वे पलहू बिलगात।
अंतर मेरे बसे निरंतर रहत, न इत-उत जात॥
ताप जु रहै नैकु मो अंतर, जरैं सुकोमल गात।
तातैं रहैं मोद-सीतलता, सुख नहिं हिएँ समात॥
मोय दुखी जो देखैं छिनहू, रहैं सतत बिलखात।
तिन कें सुख सखि ! मेरे हिय नित सुख-सागर लहरात॥

[५३०]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

सुनु प्यारी मम बैन, सुने जु पिय-मुख तैं सरस।
आजु भोर सुख-दैन जमुना-तट सब सखिन नै॥
बोले अति सुख मानि—'राधा-सी नहिं कतहुँ कोउ।
रूप-शील-गुन-खानि, परम प्रेमिका बिस्व महँ'॥
खिले तुरंत अमान सुनि सखियन के मुख-कमल।
निज सखि के गुन-गान प्रियतम के मुख-कमल तैं॥
धन्य-धन्य, अति धन्य, प्यारे प्रियतम के वचन।
सखी राधिका धन्य, जिनहि प्रसंसत आपु पिय॥

[५३१]

(राग कालिंगड़ा—ताल कहरवा)

याद आ रही थी मुझको वह मधुर-मनोहर मृदु मुसकान।
भूला नहीं जा रहा था मुझसे वह मुरलीका मधु-गान॥

तना जा रहा था मन बेहद, मिटा जा रहा था तन-भान।
उड़ा जा रहा था जीवन शुचि विहग श्याम प्रति गति निर्मान॥
इतनेमें मद-मादनि मुरलीकी दी मधुर सुनायी तान।
औचक चौंक उठी, दौड़ी उस ध्वनिको लक्ष्य बना, तज मान॥
दीख पड़े तुम खड़े चलाते विकट भ्रुकुटिके सायक तान।
मत्ता हुई चली भुज भरने, भरा प्राण उल्लास महान॥
पहुँच न पायी निकट, हुए तुम सहसा प्रियतम अन्तर्धान।
जल-वियोगिनी मछलीकी ज्यों तड़प उठी, मुख-मण्डल म्लान॥
चल न सकी, विषण्ण-वदना मैं बैठ गयी बन दुखकी खान।
बाँध लिया आ भुज-पाशोंमें मुझे किसीने दे सुख-दान॥
स्पर्श-जनित सुख मिला अपरिमित, खुले नेत्र, प्रिय मिले सुजान।
दीखा मुझे अङ्कभर प्रियतम करने लगे मधुर रस-पान॥
मिला हृदयसे हृदय, हुए सब अङ्ग मत्त, रस-सुधा-निधान।
बढ़ी अमित रस-सुधा-तरंगिणि, बहा समस्त ज्ञान-विज्ञान॥
भूला विश्व, हुआ सब विस्मृत, रही एक मधुरिमा अमान।
मैं हूँ या तुम हो, इसका मुझको न रहा किंचित् भी ध्यान॥

[५३२]

(राग आसावरी—तीन ताल)

सखी री! हौं अवगुन की खान।
तन गोरी, मन कारी, भारी पातक-पूरन प्रान॥
नहीं त्याग रंचकहू मन में, भर्‌यौ अमित अभिमान।
नहीं प्रेम कौ लेस, रहत नित निज सुख कौ ही ध्यान॥
जग के दुःख अभाव सतावैं, हो मन पीरा-भान।
तब तेहि दुख दृग स्त्रवै अश्रु-जल, नहिं कछु प्रेम निदान॥
तिन दुख-अँसुवन कौं दिखरावौं हौं सुचि प्रेम महान।
करौं कपट, हिय-भाव दुरावौं, रचौं स्वाँग सग्यान॥

भोरे मम प्रियतम विमुग्ध ह्वै करैं विमल गुन-गान।
अतिसै प्रेम सराहैं, मो कूँ परम प्रेमिका मान॥
तुमहू सब मिलि करौ प्रसंसा, तब हौं भरौं गुमान।
करौं अनेक छद्म तेहि छिन हौं, रचौं प्रपंच-बितान॥
स्याम सरल-चित ठगौं दिवस-निसि, हौं करि बिबिध बिधान।
धिग जीवन मेरौ यह कलुषित, धिग यह मिथ्या मान॥

[५३३]

(राग आसावरी—तीन ताल)

सखी ! तुम इतनौ करियो काम।
मेरे मृत सरीरकी या विधि करियो गती ललाम॥
प्रानाधिका सखी तुम सगरी मंत्र दीजियो कान।
'कृष्ण' नाम अति मधुर सुनइयो, जब निकसैं ये प्रान॥
मरनोत्तर भी कृष्ण-नाम की अमित मधुर धुनि करियो।
लिखियो 'कृष्ण' नाम सब अंगनि, मन महँ धीरज धरियो॥
मत जमुना-जल देह डारियो, मती जरैयो आग।
ब्रज-रज में लुढ़कावत ही लै जइयो देय सुभाग॥
दोनों बाहु बाँध रखियो तुम सुचि तमाल की डाल।
कृष्ण-बरन अति रुचिर परस करि तनु नित होय निहाल॥
प्रतिदिन सब मिलि आय देखियो पावन ऊषा-काल।
क्रीडा-भूमि स्याम की रज लै तिलक दीजियो भाल॥
जुगल-स्रवन मधु नाम सुनइयो 'कृष्ण-कृष्ण' अभिराम।
कृष्ण-कृष्ण कौ कीर्तन करियो चहुँ दिसि नित्य ललाम॥
भुज-ललाट-मुख-उर पै लिखियो प्रियतम कौ प्रिय नाम।
तुलसी-मालगले पहिरैयो हरिप्रिया सुख-धाम॥
कबौं जो प्रियतम कछु कारन तैं पुनि वृन्दावन आवैं।
दरस-परस-संजीवनि पावत देह प्रान पुनि छावैं॥
या विधि मैं पुनि जीवन-धन कौं सकृत देखि जो पाऊँ।
चरन पकरि राखौं नित संनिधि करि अति विनय मनाऊँ॥

—★—
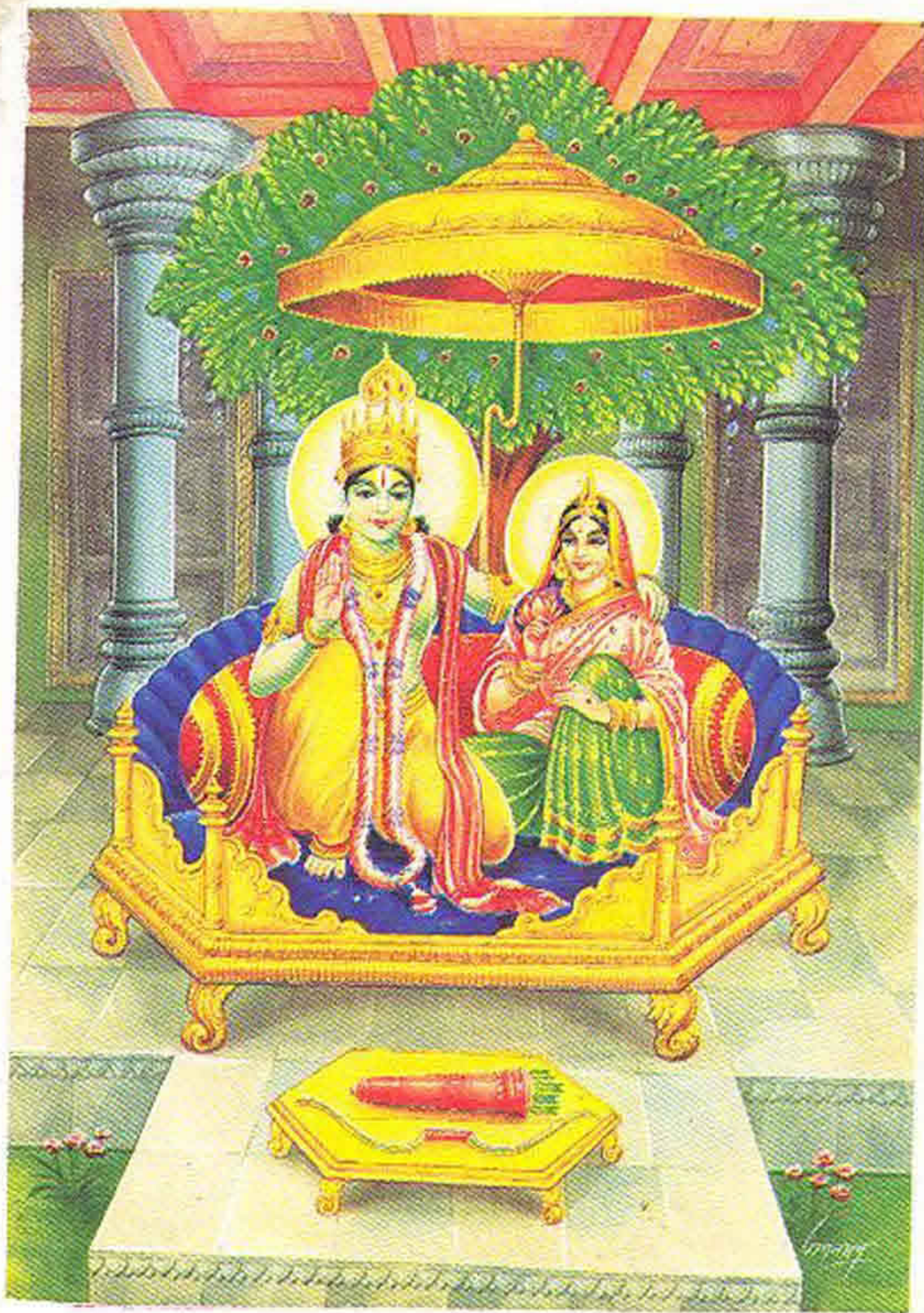
श्रीसीता-राम-युगल

दोऊ हम नित एक हैं, दोऊ
पै राधा विभु-प्रेम की महिमा अमि

[५३५]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

राधा बिना अशोभन नित मैं रहता केवल
राधा-सङ्ग सुशोभित होकर बन जाता हूँ
राधा बिना बना रहता मैं क्रियाहीन, निश्चल
राधा-सङ्ग बनाता मुझको सक्रिय, सचल, अप
राधा मेरी परम आतमा, जीवन-प्राण नि
राधासे मैं प्रेम प्राप्तकर करता निज ज
राधा मैं हूँ, राधा मैं है, राधा-माधव नि
एक सदा ही बने सरस दो करते लीला ल

[५३६]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

मैं हूँ पूर्णानन्द परम शुचि, मैं हूँ नित्य
मैं रसमय, रसराज, सदा रसपूर्ण, रसिकजन
मुझ आनन्द-सिन्धुका पाकर सीकर एक आ
पाता रहता नित्य-निरन्तर विविध भाँति अ

जगज्जनी श्रीराधाजी

मुझसे भी हो जिसमें निर्मल शत-शतगुना अधिक आनन्द।
एक वही, बस, दे सकता है मेरे मनको परमानन्द॥
ऐसी एक राधिका ही है, जो मुझको देती आह्लाद।
लेता रहता हूँ अतृप्त मैं मधुर निरन्तर उसका स्वाद॥
कोटि-कोटि कंदर्प-दर्पका करता मर्दन मेरा रूप।
सकल जगत्‌को मोहित, आप्यायित करता वह नित्य अनूप॥
वह मैं छविकी छवि राधाका सौन्दर्यामृत करके पान।
नहीं अघाता कभी, विकल दर्शन-हित रहते मेरे प्रान॥
मेरी मुरलीकी स्वर-लहरी त्रिभुवनको कर्षित करती।
राधा-वचन-सुधाकी माधुरि अविरत मेरा मन हरती॥
मेरे तनकी मधुर गन्धसे अखिल विश्व होता सुरभित।
राधा-अङ्ग-सुगन्ध हरण करती बरबस मेरा मन नित॥
अग-जगको है आदि सृष्टिसे सरस बनाता मेरा रस।
राधा-अधर-सुधारसने कर रक्खा मुझे सदा निज वश॥
यद्यपि मेरा स्पर्श कोटि शरदिन्दु-सदृश अति है शीतल।
राधा-अङ्ग-स्पर्श-सुख मेरा तुरत बुझाता हृदयानल॥
मेरा सुख-कण पाकर सुख अनुभव करता जगका जन-जन।
राधाके गुण-रूप सुरक्षित रखते नित मेरा जीवन॥

[५३७]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

मुझ 'रस'को, मेरे 'रसके जीवन'को अपने 'रस'से भरकर।
सरस किया, माधुर्य भर दिया, हुआ पूर्णसे परम पूर्णतर॥
'रस' में जगी पिपासा 'रस' की नित्य बढ़ रही उत्तरोत्तर।
इस 'विशेष सुख' की इच्छा करता नित 'सच्चित्-सुख निरीह वर'॥

[५३८]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

नहीं चुका सकता मैं बदला, कर सकता न कभी ऋण-शोध।
बँधा प्रेम-बन्धन, मैं करता स्वतन्त्रताका कभी न बोध॥
सहज स्वतन्त्ररूप मैं रहता स्वयं-रचित सुखमय परतन्त्र।
नहीं छूटना कभी चाहता, नहीं चाहता बनूँ स्वतन्त्र॥
मधुर प्रेम-परवशता मेरी प्रभुतापर प्रभुत्व करती।
रस-स्वरूप मुझमें यह पल-पल मधुर नित्य नव रस भरती॥
भूल सभी सत्ता-भगवत्ता मैं रस-सागर बन जाता।
नयी-नयी रस-सरिताओंसे भर, मैं रससे सन जाता॥
यह मेरा रस-लुब्ध, नित्य रस-मत्त, सदा रस-पूर्ण स्वरूप।
ब्रह्म सच्चिदानन्द पूर्णसे नित्य विलक्षण, परम अनूप॥
अतः सिद्ध-मुनि, परमहंस-योगी-विज्ञानी-आत्माराम।
इसे जाननेके प्रयत्नमें रहते लगे सदा अविराम॥
किंतु न पाते इस सागरकी गहराईका थाह कभी।
हार मान, ऊपर आ जाते परम सिद्ध वे लोग सभी॥
निर्मल प्रेम-बन्धसे जो मेरा रसरूप बाँध पाते।
वही विलक्षण इस स्वरूपको रसिक सुजान देख पाते॥
वे फिर इसमें अवगाहन कर करते मधुमय रसका पान।
वे ही फिर मुझको देते मेरा अभिलषित मधुर रस-दान॥

[५३९]

(राग पीलू—तीन ताल)

कहत स्याम निज मुख सदा-हौं चिन्मय पर-तत्त्व।
पूर्न ग्यानमय, पै न लखि पायौ प्रिया-महत्त्व॥
रहै सदा बरबस लग्यौ, राधा में मन मोर।
रहौं प्रेम-बिहवल सदा, लखि राधा चित-चोर॥

राधा-प्रेम अगाध निधि पर्‌यौ रहौं दिन-रात।
बिबिध बीचि सँग मधुर नित नाचौं प्रमुदित गात॥
रहत लोभ मो मन सदा, पाऊँ राधा-प्रेम।
दुर्लभ, दोष-रहित, परम सुचि ज्यौं निर्मल हेम॥
राधा-प्रेमास्वाद की महिमा अमित अपार।
मो सुख ते कोटिन गुनौ वामें सुख-बिस्तार॥

[५४०]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

अन्त-विहीन, अनादि, नित्य हम दोनों एक सनातन-रूप।
बने सदा दो लीला करते, सहज अनन्त अचिन्त्य-अनूप॥
नित्य पुरातन, नित नूतन हम, सदा एकरस, एक अभिन्न।
पर भिन्नतामयी रस-लीला-धारा बहती नित अविछिन्न॥
सुखमय मिलन सहज, नित दारुण विरह-वियोग नित्य उर दाह।
नित्य मधुर-मृदु-हास्य-मनोहर, करुण-रूदन नित आह-कराह॥
है अनादि क्रन्दन यह मेरा, हैं अनन्त सुखमय दुख-भार।
अमिलन-मिलन, मिलन-अमिलन नित परम अतर्क्य मधुर सुख-सार॥

[५४१]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

दूर रहें या पास, नित्य ही रहते एक साथ निर्बाध।
लहराता अनन्त सागर है, भरा प्रेम-रस-अमृत अगाध॥
उठती रहतीं विविध भाँतिकी ऊपर लहरें क्षुद्र-महान।
लोग देखकर उन्हें लगाते दूर-पासका मन अनुमान॥
हम दोनों नित एकरूप हैं, एक तत्त्व हैं नित संयोग—।
नित्य मिलन रहता अटूट, हो चाहे विप्रलम्भ-सम्भोग॥
नित्य मिलन, नित रस-आस्वादन, नित्य अतृप्ति, नित्य नव चाह।
मिलन विरहमय, विरह मिलनमय, लीलोदधि विचित्र अविगाह॥
मोद-विषाद, हास्य मृदु, रोदन, निपट निराशा, अति उत्साह।
परम मधुरतम, परम दिव्य, शुचि लीला रस-माधुरी-प्रवाह॥

[५४२]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

कैसे किसे बताऊँ अब मैं अपने मनकी अकथ कहानी।
मेरे अभ्यन्तरमें नित्य समायी मेरी राधा रानी॥
नूतन नित्य ललित लीलाओंका करती उद्भव रस-खानी।
बाहर भी उसका ही मिलता मधुमय स्पर्श सरस सुख-दानी॥

[५४३]

(राग जौनपुरी तोड़ी—तीन ताल)

मो मन राधा-छबि पै अटक्यौ।
मिलत नाहिं, छोड़त न बनत पुनि, रहत सदा ही लटक्यौ॥
प्रथमहिं निरखि सफल भए लोचन, मन न कतहुँ फिरि भटक्यौ।
सुख-सागर लहरात तबहि तैं, रूप-सुधा-रस गटक्यौ॥
पद-पल्लव उदार सेवन-हित मम मानस अति मटक्यौ।
पद-पराग पाऐं बिनु मो मन-मधुकर कबहुँ न सटक्यौ॥

[५४४]

(राग वागेश्री—ताल कहरवा)

राधासे भी लगता मुझको अधिक मधुर प्रिय 'राधा' नाम।
'राधा' शब्द कान पड़ते ही खिल उठती हिय-कली तमाम॥
मूल्य नित्य निश्चित है मेरा—'प्रेम-प्रपूरित राधा-नाम'।
चाहे जो खरीद ले, ऐसा मुझे सुनाकर राधा-नाम॥
नारायण, शिव, ब्रह्मा, लक्ष्मी, दुर्गा, वाणी मेरे रूप।
प्राण-समान सभी प्रिय मेरे, सबका मुझमें भाव अनूप॥
पर राधा प्राणाधिक मेरी, अतिशय प्रिय, प्रियजन-सिरमौर।
राधा-सा कोई न कहीं है मेरा, प्राणाधिक प्रिय और॥
अन्य सभी ये देव-देवियाँ बसती हैं नित मेरे पास।
प्रिया राधिकाका है मेरे वक्षःस्थलपर नित्य निवास॥

[५४५]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

जिह्वाके मम अग्रभागपर रहे विराजित राधा-नाम।
मेरी आँखोंके सम्मुख नित रहे राधिका-रूप ललाम॥
कानोंमें नित रहे गूँजती राधा-कीर्ति-कथा अभिराम।
बना रहे श्रीश्रीराधाका गुण-गण-चिन्तन मन अविराम॥

[५४६]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

मानो या मत मानो, मुझको भी न मनानेकी कुछ चाह।
करो पूर्ण विश्वास भले, या मुझे जान लो बेपरवाह॥
मेरे पास 'प्रेम' नामक था जो कुछ, जैसा विमल पदार्थ।
उसको मैं दे चुका पूर्ण तुमको, मैं कहता तुम्हें यथार्थ॥

[५४७]

(राग कालिंगड़ा—ताल कहरवा)

'मैं प्रियतम, तू प्रेयसि मेरी'—यों कहना है गिरा प्रवाद।
'तू मम प्राण, प्राण मैं तेरे—यह भी है प्रलाप-संवाद॥
'तू मेरी, मैं तेरा'—राधे! यह भी नहीं साधु व्यवहार।
समुचित नहीं कभी हममें—'तू-मैं' का कोई भेद-विचार॥

[५४८]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

प्रिये! लखौ तुम सर्व-बिलच्छन अपनौ रूप अनूप।
दोउ अनादि बिहरत-बिलसत हम, नव पद्धति, नव रूप॥
हम न रमन-रमनी जथार्थ में, न स्वकीय-परकीय।
प्रकृति-पुरुषहू नहीं, निरत नित सुचि क्रीडा कमनीय॥
निराकार-साकार न हम हैं, निर्बिसेष-सबिसेष।
नहीं सगुन-निरगुन हम दोऊ, नहिं सेषी, नहिं सेष॥

****

माया-ब्रह्म, न मायामय हम, नहीं ब्यक्त-अब्यक्त।
प्रेम पूर्णतम, प्रेम-रस-रसिक, रसमय, रस-आसक्त॥
नित नव बिकसत मधुर हमारौ रूप अनन्त, अपार।
बढ़त नित्य निष्काम कामना, नित्य नबीन बिहार॥
द्विभुज रूप, लावन्य ललित अति, अतुल, अनिर्बचनीय।
प्रेम-मूर्ति सुचि रूप-सुधा, सौंदर्य नित्य रमनीय॥
प्रेम आत्मा, प्रेम बुद्धि-मन, इंद्रिय पूरन प्रेम।
स्थूल-सूक्ष्म-कारन-बिरहित नित देहहु चिन्मय प्रेम॥
लीला सकल प्रेम-रसरूपा, नित नव प्रेमानंद।
नित्य अबाध, अपरिमित, नव-नव लीला-गति स्वच्छन्द॥
सुर-मुनि समुझि न पाए या कौं, गए जतन करि हार।
नित्य अचिंत्यानंत, अनिर्बचनीय बिचित्र बिहार॥

[५४९]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

सुन्दर-मधुर सदा मैं मुनि-मनको भी करता आकर्षण।
ऋषि-मुनि, मनुज-दनुज-सुर—सबपर करता सदा सुधा-वर्षण॥
वह मैं खिंचा नित्य रहता तव मुख-शशि-सुधा-पानके हेतु।
ललचाता, मैं सदा तरसता, करता भङ्ग स्वयं श्रुति-सेतु॥
जिसके गुण-गण गाते नहीं अघाते अज-भव-शारद-शेष।
वही समुद करता गुण-गान तुम्हारा मैं साग्रह सविशेष॥
जिसकी महिमाका न पा सका अबतक कोई कहीं न अन्त।
वही तुम्हारी महिमाका अनुभव करता अज्ञात, अनन्त॥
जो सब लोक-महेश्वर, अतुलैश्वर्य विश्व-भर्ता-धर्ता।
वह मैं तव पद-सेवनरत सुख-गौरवका अनुभव करता॥
नित्य सच्चिदानन्द-रूपकी भी वे वाञ्छित भाव-तरङ्ग।
लहरातीं जब मुझे दीखतीं अति शुचि, पुलकित होते अङ्ग॥
बह जाता मैं उनमें, प्यारी! रहता नहीं भिन्न कुछ तत्त्व।
कौन बता सकता कैसा, क्या अतुल तुम्हारा मर्म महत्त्व॥

[५५०]

(राग मालकोस—तीन ताल)

राधिके ! तुम मम जीवन-मूल।
अनुपम अमर प्रान-संजीवनि, नहिं कहुँ कोउ समतूल॥
जस शरीर में निज-निज थानहिं सबही सोभित अंग।
किंतु प्रान बिनु सबहि ब्यर्थ, नहिं रहत कतहुँ कोउ रंग॥
तस तुम प्रिये ! सबनि के सुख की एकमात्र आधार।
तुम्हरे बिना नहीं जीवन-रस, जासौं सब कौ प्यार॥
तुम्हारे प्राननि सौं अनुप्रानित, तुम्हरे मन मनवान।
तुम्हरौ प्रेम-सिंधु-सीकर लै करौं सबहि रसदान॥
तुम्हरे रस-भंडार पुन्य तैं पावत भिच्छुक चून।
तुम सम केवल तुमहि एक हौ, तनिक न मानौ ऊन॥
सोऊ अति मरजादा, अति संभ्रम-भय-दैन्य-सँकोच।
नहिं कोउ कतहुँ कबहुँ तुम-सी रसस्वामिनि निस्संकोच।
तुम्हरौ स्वत्व अनंत नित्य, सब भाँति पूर्न अधिकार।
कायब्यूह निज रस-बितरन करवावति परम उदार॥
तुम्हरी मधुर रहस्यमई मोहनि माया सौं नित्य।
दच्छिन बाम रसास्वादन हित बनतौ रहूँ निमित्त॥

[५५१]

(राग भैरवी—तीन ताल)

हे आराध्या राधा ! मेरे मनका तुझमें नित्य निवास।
तेरे ही दर्शन कारण मैं करता हूँ गोकुलमें वास॥
तेरा ही रस-तत्त्व जानना, करना उसका आस्वादन।
इसी हेतु दिन-रात घूमता मैं करता वंशीवादन॥
इसी हेतु स्नानको जाता, बैठा रहता यमुना-तीर।
तेरी रूपमाधुरीके दर्शनहित रहता चित्त अधीर॥

इसी हेतु रहता कदम्बतल, करता तेरा ही नित ध्यान।
सदा तरसता चातककी ज्यों, रूप-स्वातिका करने पान॥
तेरी रूप-शील-गुण-माधुरि मधुर नित्य लेती चित चोर।
प्रेमगान करता नित तेरा, रहता उसमें सदा विभोर॥

[५५२]

(राग परज—तीन ताल)

हे वृषभानुराजनन्दिनि! हे अतुल प्रेम-रस-सुधा-निधान!
गाय चराता वन-वन भटकूँ, क्या समझूँ मैं प्रेम-विधान!
ग्वाल-बालकोंके सँग डोलूँ, खेलूँ सदा गँवारू खेल।
प्रेम-सुधा-सरिता तुमसे मुझ तप्त धूलका कैसा मेल!
तुम स्वामिनि अनुरागिणि! जब देती हो प्रेमभरे दर्शन।
तब अति सुख पाता मैं, मुझपर बढ़ता अमित तुम्हारा ऋण॥
कैसे ऋणका शोध करूँ मैं, नित्य प्रेम-धनका कंगाल!
तुम्हीं दया कर प्रेमदान दे मुझको करती रहो निहाल॥

[५५३]

(राग भैरवी तर्ज—तीन ताल)

हे प्रियतमे राधिके! तेरी महिमा अनुपम अकथ अनन्त।
युग-युगसे गाता मैं अविरत, नहीं कहीं भी पाता अन्त॥
सुधानन्द बरसाता हियमें तेरा मधुर वचन अनमोल।
बिका सदाके लिये मधुर दृग-कमल कुटिल भ्रुकुटीके मोल॥
जपता तेरा नाम मधुर अनुपम मुरलीमें नित्य ललाम।
नित अतृप्त नयनोंसे तेरा रूप देखता अति अभिराम॥
कहीं न मिला प्रेम शुचि ऐसा, कहीं न पूरी मनकी आश।
एक तुझीको पाया मैंने, जिसने किया पूर्ण अभिलाष॥
नित्य तृप्त, निष्काम नित्यमें मधुर अतृप्ति, मधुरतम काम।
तेरे दिव्य प्रेमका है यह जादूभरा मधुर परिणाम॥

[५५४]

(राग गूजरी—ताल कहरवा)

राधे, हे प्रियतमे, प्राण-प्रतिमे, हे मेरी जीवन मूल !
पलभर भी न कभी रह सकता, प्रिये मधुर ! मैं तुमको भूल ॥
श्वास-श्वासमें तेरी स्मृतिका नित्य पवित्र स्रोत बहता।
रोम-रोम अति पुलकित तेरा आलिङ्गन करता रहता ॥
नेत्र देखते तुझे नित्य ही, सुनते शब्द मधुर यह कान।
नासा अङ्ग-सुगन्ध सूँघती, रसना अधर-सुधा-रस-पान ॥
अङ्ग-अङ्ग शुचि पाते नित ही तेरा प्यारा अङ्ग-स्पर्श।
नित्य नवीन प्रेम-रस बढ़ता, नित्य नवीन हृदयमें हर्ष ॥

[५५५]

(राग शिवरञ्जनी—तीन ताल)

मेरा तन-मन सब तेरा ही, तू ही सदा स्वामिनी एक।
अन्योंका उपभोग्य न भोक्ता है कदापि, यह सच्ची टेक ॥
तन समीप रहता न स्थूलतः, पर जो मेरा सूक्ष्म शरीर।
क्षणभर भी न विलग रह पाता, हो उठता अत्यन्त अधीर ॥
रहता सदा जुड़ा तुझसे ही, अतः बसा तेरे पद-प्रान्त।
तू ही उसकी एकमात्र जीवनकी जीवन है निर्भ्रान्त ॥
हुआ न होगा अन्य किसीका उसपर कभी तनिक अधिकार।
नहीं किसीको सुख देगा, लेगा न किसीसे किसी प्रकार ॥
यदि वह कभी किसीसे किंचित् दिखता करता-पाता प्यार।
वह सब तेरे ही रसका बस, है केवल पवित्र विस्तार ॥
कह सकती तू मुझे सभी कुछ, मैं तो नित तेरे आधीन।
पर न मानना कभी अन्यथा, कभी न कहना निजको दीन ॥
इतने पर भी मैं तेरे मनकी न कभी हूँ कर पाता।
अतः बना रहता हूँ संतत तुझको दुखका ही दाता ॥
अपनी ओर देख तू मेरे सब अपराधोंको जा भूल।
करती रह कृतार्थ मुझको दे पावन पद-पङ्कजकी धूल ॥

[५५६]

(राग बागेश्री—तीन ताल)

राधे ! तू ही चित्तरञ्जनी, तू ही चेतनता मेरी।
तू ही नित्य आत्मा मेरी, मैं हूँ बस, आत्मा तेरी ॥
तेरे जीवनसे जीवन है, तेरे प्राणोंसे हैं प्राण।
तू ही मन, मति, चक्षु, कर्ण, त्वक्, रसना, तू ही इन्द्रिय-घ्राण ॥
तू ही स्थूल-सूक्ष्म इन्द्रियके विषय सभी मेरे सुखरूप।
तू ही मैं, मैं ही तू बस, तेरा-मेरा सम्बन्ध अनूप ॥
तेरे बिना न मैं हूँ, मेरे बिना न तू रखती अस्तित्व।
अविनाभाव विलक्षण यह सम्बन्ध, यही बस, जीवन-तत्त्व ॥

[५५७]

(राग भैरवी—तीन ताल)

राधा ! तुम-सी तुम्हीं एक हो, नहीं कहीं भी उपमा और।
लहराता अत्यन्त सुधा-रस-सागर, जिसका ओर न छोर ॥
मैं नित रहता डूबा उसमें, नहीं कभी ऊपर आता।
कभी तुम्हारी ही इच्छासे हूँ लहरोंमें लहराता ॥
पर वे लहरें भी गाती हैं एक तुम्हारा रम्य महत्त्व।
उनका सब सौन्दर्य और माधुर्य तुम्हारा ही है स्वत्व ॥
तो भी उनके बाह्य रूपमें ही बस, मैं हूँ लहराता।
केवल तुम्हें सुखी करनेको सहज कभी ऊपर आता ॥
एकछत्र स्वामिनि तुम मेरी अनुकम्पा अति बरसाती।
रखकर सदा मुझे संनिधिमें जीवनके क्षण सरसाती ॥
अमित नेत्रसे गुण-दर्शन कर, सदा सराहा ही करती।
सदा बढ़ाती सुख अनुपम, उल्लास अमित उरमें भरती ॥
सदा सदा मैं सदा तुम्हारा, नहीं कदा कोई भी अन्य।
कहीं जरा भी कर पाता अधिकार दासपर सदा अनन्य ॥
जैसे मुझे नचाओगी तुम, वैसे नित्य करूँगा नृत्य।
यही धर्म है, सहज प्रकृति यह, यही एक स्वाभाविक कृत्य ॥

[५५८]

(राग कालिंगड़ा—ताल कहरवा)

राधे ! तुम-सी तुम्हीं एक हो, नहीं कहीं भी उपमा और ।
रहता मैं तुममें ही निसि-दिन, अन्य कहीं भी मुझे न ठौर ॥
सदा तुम्हारा ही मैं पूरा, तब भी नित ललचाता चित्त ।
तुम ही मेरी नित्य सम्पदा, तुम ही मेरा जीवन-वित्त ॥
सदा मानती रहो प्रियतमे ! अपना ही तुम मुझको दास ।
सदा तुम्हारा ही मैं केवल, रखो प्रिये ! यह दृढ़ विश्वास ॥
नहीं वासना किसी तरहकी, नहीं मुझे कोई भी चाह ।
नहीं मुझे किंचित् भी, कैसी भी, कुछ स्थितिकी है परवाह ॥
तुम्हें छोड़ यदि अन्य कहीं भी, कभी दीखता मेरा वास ।
उस क्षण भी यथार्थमें रहता तुममें मेरा नित्य निवास ॥
किसी रूप-गुण--शील-महत्ताका न कभी मेरे मन चाव ।
एक तुम्हारे सिवा दीखता सब कुछ मुझे अवस्तु, अभाव ॥
अतः कहीं भी, कभी न होता मेरा सत्य प्रेम, सद्भाव ।
मिलना-जुलना, कहना-सुनना होते सभी बाहरी भाव ॥
एक तुम्हारा ही होता शुचि उसमें भी महत्त्व-विस्तार ।
जिससे तव पद-कमलोंमें आ झुक जाये सारा संसार ॥
समझ सकें सब विषय-वासना-रहित विशुद्ध प्रेमका तत्त्व ।
जान सकें सब पूर्ण त्यागमय रतिका जिससे पूत महत्त्व ॥
यह भी गौण, सहज ही केवल होता लीलाका उन्मेष ।
केवल एक तुम्हारे अंदर, तुमसे ही सब शेषी-शेष ॥
तुममें कभी, कहीं कैसी भी नहीं वासनाका लवलेश ।
स्व-सुख-वाञ्छारहित परम शुचि मत्सुख-सुखी भाव सविशेष ॥
इसी परम रस मधुर सदा शुचितमका करता मैं आस्वाद ।
नहीं अघाता, नित्य नयी बढ़ती रहती आशा अविवाद ॥

[५५९]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

हे राधे वृषभानुनन्दिनी, मम मन-नन्दिनि सुषमागार।
तेरी परम सुखद सुस्मृति ही है मेरी जीवन-आधार॥
कनक-गौर अनुपम बर तनपर नील वसन नव रहा विराज।
अङ्ग-अङ्ग अति मधुर मनोहर सजे सकल विधि सुन्दर साज॥
बदन-सरोज प्रफुल्ल, सौरभित, नव पीयूष मधुर मकरन्द।
रहते सदा अतृप्त पान-रत मधुलोभी मम नयन-मिलिन्द॥
रासेश्वरि, रस-रास-विलासिनि मन-मोहनि निर्मल सुख-सार। तेरी०

बिम्बाधर अति मधुर सुधा-रस-भरित, ललित शुचि गोल कपोल।
रत्नद्युति-भासित, श्रुति-रञ्जन परम सुशोभित कुण्डल लोल॥
कुटिल नयन कज्जल-अनुरञ्जित, अति विशाल, रसभरे ललाम।
वङ्किम भ्रुकुटि पञ्चशर-शर-सी, सुघड़ नासिका शोभा-धाम॥
परमाह्लादिनि ह्लादिनि श्यामा प्रेम-सुधा-रस-उदधि अपार। तेरी०

मधुकर-कृष्ण, मनोहर, चिक्कण चिकुर सुशोभित वेणि अनूप।
सुमन सुगन्धित गुँथे मनोरम, मणिमय मुकुट, विलक्षण रूप॥
नित नव अनुरागिनि, बड़भागिनि, भूषण विविध विराजित अङ्ग।
वक्ष उतुंग कञ्चुकी-शोभित, शीश चूनरी मोहन रङ्ग॥
चिबुक मनोहर, कम्बु-कण्ठ, कमनीय कुसुम-मुक्ता-मणिहार। तेरी०

मन्द उदर रेखात्रय-राजित, नाभि गभीर-मधुर-अभिराम।
कृश कटि सुन्दर किङ्किणि शोभित, कर-पद मेंहदी रची सुठाम॥
सकल कला-निधि, गुण-निधि, गुण-वर्णन-अक्षम श्रुति-शारद-शेष।
मन्मथ-मन्मथ-मानस-मन्थिनि सदा सुहागिनि सुन्दर वेश॥
नित्य निकुञ्जेश्वरी नव-कुञ्जविहारिणि करती नित्य विहार। तेरी०

[५६०]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

प्रिये ! तुम्हारा-मेरा यह अति निर्मल परम प्रेम-सम्बन्ध।
सदा शुद्ध आनन्दरूप है, इसमें नहीं काम-दुर्गन्ध॥
कबसे है, कुछ पता नहीं, पर जाता नित अनन्तकी ओर।
पूर्ण समर्पण किसका किसमें, कहीं नहीं मिलता कुछ छोर॥
सदा एक, पर सदा बने दो करने लीला-रस-आस्वाद।
कभी न बासी होता रस यह, कभी नहीं होता विस्वाद॥
नित्य नवीन मधुर लीला-रस भी न भिन्न, पर रहता भिन्न।
नव-नव रस-सुख सर्जन करता, कभी न होने देता खिन्न॥
परम सुहृद, धन परम, परम आत्मीय, परम प्रेमास्पदरूप।
हम दोनों दोनोंके हैं नित, बने रहेंगे नित्य अनूप॥
कहते नहीं, जनाते कुछ भी, कभी परस्पर भी यह बात।
रहते बसे, हृदयमें दोनों दोनोंके पुनीत अवदात॥
नहीं किसीसे लेन-देन कुछ, जगमें नहीं किसीसे काम।
नहीं कभी कुछ इन्द्रिय-सुखकी कलुष-कामना अपगति-धाम॥
नहीं कर्मका कहीं प्रयोजन, नहीं ज्ञानका तत्त्वादेश।
नहीं भक्ति-साधन विधि-संगत, नहीं योग अष्टाङ्ग विशेष॥
नहीं मुक्तिका स्थान कहीं भी, नहीं बन्ध-भयका लवलेश।
आत्मसात् सब हुआ प्रेम-सागरमें, कुछ भी बचा न शेष॥
प्रेम-उदधि वह तल गभीरमें रहता शान्त, अडोल, अतोल।
पर उसमें उन्मुक्त उठा करते हैं नित्य अमित हिल्लोल॥
उठती वहीं असंख्य रूपमें ऊपर उसमें विपुल तरंग।
पर उन तरुण तरंगोंमें भी उसकी शान्ति न होती भङ्ग॥
अडिग, शान्त, अक्षोभ सदा गम्भीर सुधामय प्रेम-समुद्र।
रहता नित्य उच्छलित, नित्य तरंगित, नृत्य-निरत अक्षुद्र॥

शान्त नित्य नव-नर्तनमय वह परम मधुर रस-निधि सविशेष।
लहराता रहता अनन्त वह नित्य हमारे शुचि हृद्देश॥
उसकी विविध तरंगें ही करतीं नित नव-लीला-उन्मेष।
वही हमारा जीवन है, है वही हमारा शेषी-शेष॥
कौन निर्वचन कर सकता, जब सुर-मुनि-परमहंस असमर्थ।
भोक्ता-भोग्य-रहित विचित्र अति गति, कहना-सुनना सब व्यर्थ॥

[५६१]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

प्राणेश्वरि! निश्चय ही तू ही है मेरी आत्मा अभिराम।
तुममें सदा रमण करता मैं, इससे कहते 'आत्माराम'॥
मेरे तन-मन, मति-गतिकी है एकमात्र तू ही आधार।
तू ही जीवनका मधुमय रस, तू ही है बस, जीवन-सार॥
तू ही है सर्वस्व प्रिये! है तू ही मेरी जीवन-मूल।
तब कैसे यह है सम्भव मैं लवभर तुझको जाऊँ भूल॥

[५६२]

(राग भिन्नषड्ज—ताल कहरवा)

प्रिये! तुम्हारी महान महिमा मन-वाणीसे परे अनन्त।
लाख देव-जीवनमें गानेपर भी कहीं न आता अन्त॥
दिव्य रूप-सौन्दर्य, भाव, गुण, दिव्य-मधुर माधुर्य महान।
पूर्ण अनन्त सहज पावन तुम, इन सबकी अनन्त हो खान॥
तुम्हें दीखता किंतु न निजमें तनिक रूप, गुण, भाव, महत्त्व।
यह है शुचितम दैन्य प्रेम-पावनका, जो स्वाभाविक तत्त्व॥
देती रहती मुझे अमित सुख नित्य-निरन्तर परम उदार।
होता कभी विराम न पलभर बहती नित्य अमृत रस-धार॥
सहज समर्पण किया सहित मन-बुद्धि दिव्य आत्मा सर्वस्व।
रखा एक मेरी स्मृतिको मेरे सुखको ही बना निजस्व॥

सतत दे रही रत्न दिव्य सुख नित्य नवीन, नवीन प्रकार।
घटता नहीं तथापि तुम्हारा रंचक दिव्य रत्न-भण्डार॥
पर न देखती, नहीं जानती इस अनवरत दानकी बात।
वस्तु-योग्यता हीन-दीन लखती रहती निजको दिन-रात॥
मिलता तुमसे मुझे अनोखा सुख, मिलता नित नव रस-भाव।
बढ़ता ऋण, पर बढ़ता तुमसे नित नव सुख पानेका चाव॥
मूल-व्याज दोनों नित बढ़ते—यों नित ऋण बढ़ रहा अपार।
सदा रहूँगा ऋणी तुम्हारा मैं प्रियतमे! जीवनाधार॥

[५६३]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

मिली सदा रहतीं तुम मुझमें, मैं तुममें रहता नित युक्त।
प्रेम-हेतु दो बने परस्पर रहते लीलासे अनुरक्त॥
दोके बिना न हो पाता यह लीला-रस-वितरण-आस्वाद॥
इसीलिये दो बने हुए नित लीला-रत रहते अविवाद।

[५६४]

(राग वागेश्री—ताल कहरवा)

सुमधुर स्मरण तुम्हारा-मेरा बना आजकल पूरा जीवन।
पलभर बिना तुम्हारे रहना नहीं मानता है मचला मन॥
जाग्रत्-स्वप्न—सभीमें, राधे! भरी सदा रहती तुम अंदर।
बना तुम्हारे लिये मधुर यह मेरा अति सुखमय मन-मन्दिर॥
रहती सदा बसी तुम इसमें, निज अधिकार पूर्ण इसपर कर।
क्षण-क्षणमें नव-नव सुख देती मुझको, राधे! परम मधुरतर॥
मधुर, मधुरतम मिलन तुम्हारा नित्य बना रहता है प्रतिपल।
परम पवित्र भाव-मुख-दर्शन कर मैंने पाया वाञ्छित फल॥

[५६५]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

तेरी चिन्ता, तेरी पीड़ा, तेरा दुःख, विषम उर-दाह।
तेरे मनकी सभी असुन्दर-सुन्दर मीठी-खारी चाह॥
सभी, प्रिये! वे मुझमें होतीं, होगी आगे भी अनुभूत।
तन-मन तेरे सारे मुझमें मिलकर परम हो गये पूत॥
मेरे पावन पूत हृदयकी पूत वासना तुममें जाग।
करती सदा मुझ प्रतिभावित, प्रकटाती विशुद्ध अनुराग॥
वही परम अनुराग-भाव बन सदा खेलता नाना रंग।
महाभावमें परिणत हो, वह करता उदय अनन्त तरंग॥
ये विशुद्धतम विपुल तरंगें हैं सब मेरा मधुमय रूप।
मैं ही तू मैं दोनों बन नित करता रास-विलास अनूप॥
बन जाता मैं दारुण दुःख-वियोग, परम सुखमय संयोग।
तेरे अंदर रोकर-हँसकर करता नित निज रस-सम्भोग॥
इस अनुपम लीला-रहस्यको समझ, पृथक्ताका तज भान।
लीला, लीलाकर्ता-भोक्ता, मैं-तू सदा एक भगवान॥

[५६६]

(राग कालिंगड़ा—ताल कहरवा)

आतुर मैं अत्यन्त सदा तुमसे मिलनेको रहता।
मनकी बात किसीसे पर मैं कभी नहीं कुछ कहता॥
मेरी वह आत्यन्तिक आतुरता आकर्षित करती।
तुमको तुरत खींचकर मेरे तन-मनमें है भरती॥
भीतर-बाहर तुम्हें प्राप्तकर मैं निहाल हो जाता।
मधुमय स्पर्श तुम्हारा पाकर मेरा 'मैं' खो जाता॥
रह जाती हो एक तुम्हीं अपनी ही महिमा लेकर।
मुझे मिला लेती अपनेमें अपना सब कुछ देकर॥

हो जाते हम एक उसी क्षण, पृथक् भान मिट जाता।
अतुल, अनिर्वचनीय, अचिन्त्यानन्त प्रेम छा जाता॥
किससे कौन मिले हैं, किसके कौन प्रिया-प्रियतम हैं?
जान नहीं पाते, कह पाते नहीं, कौन तुम-हम हैं?
सदा एक थे, सदा एक हैं, एक सदैव रहेंगे।
नहीं सुनेंगे कभी किसीकी, कुछ भी नहीं कहेंगे॥

[५६७]

(दोहा)

विषय-कामना, भोग-रति इन्द्रिय-सुखका चाव।
नहीं तुम्हारे हृदयमें ये तीनों दुर्भाव॥
इह-परके सुख-भोगसे तुमको सहज विराग।
मेरे सुखमें ही सदा पूर्ण नित्य अनुराग॥
छोड़ न सकता इसीसे प्रिये! तुम्हारा सङ्ग।
अनुपम रस मिलता मुझे, मधुर नित्य नव रङ्ग॥
रहता प्यारी! सदा मैं बसा तुम्हारे पास।
क्षणभर भी हटता नहीं, करता नित्य निवास॥
हर स्थितिमें, हर समयमें, शुचि आनन्द-निधान।
लेता प्रेमानन्द-रस स्वयं बिना व्यवधान॥
देख-देख तुम रीझतीं, करतीं मधु रस-दान।
तुम ही मेरी हो परम शुचितम सुखकी खान॥
बिका तुम्हारे हाथ मैं, इन भावोंके मोल।
तो भी ऋण न चुका सका, कैसे तुले अतोल॥

[५६८]

(दोहा)

प्रिये! तुम्हारी मूर्ति नित अपृथक्, हिय कौ अंग।
जुड़ी रहत हिय सौं सदा सुधा-सरस लै संग॥

मधुर मनोहर परम यह पै न कबहुँ जड-तत्त्व।
चेतन घन आनंदमय लिऍं विचित्र सिवत्व॥
नित अभिन्न, पै भिन्न नित, लै सँग सखिन समूह।
खेलत मो सँग लै तिनहि, जो निज काय-व्यूह॥
नित्य मिलन नव, नित्य नव लीला-रस-संचार।
बढ़त बिलच्छन नित्य नव, सुख-सौंदर्य उदार॥
सखिदल सकल दुराइ जब खोलि सुरस-भंडार।
पियौ-पियावौ रस अमित नित बिनु प्रकृति विकार॥
मो सुख-निधि में परम सुख उपजत नित्य नवीन।
बढ़त नित्य सुख-लालसा, नव-नव अवधि-विहीन॥
नित अतृप्ति नित तृप्त में, नित कामना अकाम।
सुख-घन में सुख की स्पृहा, अकथ प्रेम के धाम॥

[५६९]

(राग सारंग—तीन ताल)

राधे! क्यों मैं रीझा तुमपर, क्यों मैं तुममें हूँ आसक्त।
आज बताता हूँ—रहस्य कुछ, क्यों मैं सदा तुम्हारा भक्त॥
तुममें जो सौन्दर्य अतुल है निर्मल मधुर विचित्र अपार।
वैसा कहीं न देखा मैंने, वर्द्धनशील सतत सुकुमार॥
तनका भी सौन्दर्य तुम्हारा सर्व-बिलक्षण परम अनूप।
पर मैं देख पा रहा, उत्तम परम तुम्हारा मानस रूप॥
पावन मन है बना तुम्हारा शुद्ध प्रेमका पारावार।
नहीं कहीं कुछ मिश्रण उसमें, नहीं तनिक-सा कहीं विकार॥
नहीं मलिन ममता, मैं-पन कुछ, नहीं मोह कुछ राग-द्वेष।
नहीं कहीं अभिमान तनिक, निज-सुख-इच्छाका कहीं न लेश॥
सर्व त्यागकर, मेरे सुखके लिये किया जो आत्मोत्सर्ग।
नहीं कहीं भी तुलना उसकी सहज, विमलतम वर्जित-वर्ग॥

अग-जग भुक्ति-मुक्ति सबसे तुम, हृदय देशको खाली कर।
रक्खा केवल शुद्ध हृदयमें नित्य निरन्तर मुझको भर॥
यह मानस-सौन्दर्य तुम्हारा, प्रकट नित्य अङ्ग-प्रत्यङ्ग।
मुग्ध बनाता रहता मुझको, नव-नव नित्य दिखाता रंग॥

[५७०]

(राग-परज—ताल मूल)

है कर्तव्य नहीं कुछ मुझको, नहीं कहीं कुछ पाना शेष।
सत्य, तुम्हारी किंतु रूप-सुषमासे मैं खिंच रहा अशेष॥
सत्य, सभीका आत्मा हूँ मैं, करते हैं सब मुझमें प्रेम।
किंतु 'अहं'से भरे, चाहते सभी 'अहं'का 'योगक्षेम'॥
अतुल गुणवती रूपवती तुम, अनुपम पावन रससे पीन।
रहती अहंकारसे विरहित, नित्य मानती निजको दीन॥
तुम फिर जो वह नहीं जानती अपने शुद्ध सत्त्वका तत्त्व।
मानरहित नित भूली रहती अपना उपमा-रहित महत्त्व॥
इससे पल-पल और निखरता पावन रूप तुम्हारा सत्य।
पल-पल मुझे खींचता रहता, यह नव-नव आकर्षण नित्य॥
ललचाता रहता मेरा मन, करनेको इस रसका पान।
शुचितम, परम सुखाकर,सुन्दर, मधुर-मधुर, अति दिव्य महान॥
इसीलिये मैं रहता करता नित्य प्रलुब्ध रसास्वादन।
मेरी आत्माकी तुम आत्मा, मेरी एक साध्य-साधन॥
रहता बसा तुम्हारे मन-मन्दिरमें, संनिधिमें दिन-रैन।
इसी हेतु मैं तुम्हें छोड़कर पलक नहीं पा सकता चैन॥
विवश, प्रेमवश हूँ मैं, तुमपर नहीं कहीं कुछ भी एहसान।
सहन नहीं कर सकता मैं हूँ, कैसा कभी क्षणिक व्यवधान॥

[५७१]

(राग-भैरवी—तीन ताल)

एक तुम्हारे सिवा न राधे! अन्य किसीकी चाह।
बिगड़े-सुधरे, उजड़े-बने न कुछ मुझको परवाह॥

रहो पास तुम सदा, रहूँ मैं सदा तुम्हारे पास।
समझो तुम चाहे निज प्रियतम या समझो निज दास॥
मिले रहें हम, सब स्थितियोंमें बना रहे संयोग।
देह कहीं भी रहे, न हो पर अपना कभी वियोग॥
इतने दूर द्वारका-व्रज, पर रहते हम नित सङ्ग।
कभी नहीं हटते, न बदलता पक्का प्यारा रङ्ग॥

[५७२]

(राग कालिंगड़ा—ताल कहरवा)

नहीं जानता मैं भगवत्ता, नहीं मुझे प्रभुताका ध्यान।
मेरे तो, बस, एकमात्र हो तुम ही मन-मति जीवन-प्रान॥
रहता सदा तुम्हारे पावन प्रेम-सुधा-रस-निधिमें मग्न।
इसी हेतु रहता मैं तुमसे हूँ प्रियतमे! सदा संलग्न॥
सुखी देखता हूँ जब तुमको, मिलता मुझको मोद-महान।
इसी स्वार्थ-रक्षामें रहता, नहीं तनिक तुमपर एहसान॥
स्थान तुम्हारे सदा सुरक्षित, सदा तुम्हारा ही अधिकार।
एकमात्र तुमही हो स्वामिनि, तुम ही उनकी हो आधार॥
तुमने दिव्य मनोहर अपना देकर प्रेम-सुधा-रस-दान।
ऋणी बनाया मुझे सदाके लिये सहज ही, हे रसखान॥

[५७३]

(राग लावनी—तीन ताल)

कभी न होता, कभी न होगा मेरा-तेरा सुखद बिछोह।
तो भी नित मिलनेच्छा बढ़ती रहती, यह कैसा प्रिय मोह॥
नित्य मिलन-अनुभूति साथ ही, तदपि दीखता कभी बियोग।
नित्य मिलनमें अमिलन दिखता, अमिलनमें दिखता संयोग॥
रहती लगी प्रतीक्षा मधुर स्मृतियुत, बढ़ता रहता वेग।
बढ़ती असहिष्णुता उत्तरोत्तर, बढ़ता मनका संवेग॥
मिलन-विरहके इसी परम सुखमें रहता मन सदा विभोर।
अविरत चलता रहता यह नित शुचि प्रवाह अनन्तकी ओर॥

[५७४]

(राग भैरव—ताल त्रिताल)

जिससे मुझ 'आनन्द रूप' को मिलता है अति परमानन्द।
सदा खिला जिससे खिल उठता है, वह मधुर कौन-सा छन्द ?
जिससे नित्य-तृप्त मुझमें जग उठती सहज अतृप्ति अपार।
मचला नित रहता मन मेरा जिसके लिये अमन अविकार॥
मैं रस-रूप स्वयं जिसके रस-आस्वादनको बना अधीर।
रहते नित्य देखते मेरे नेत्र अतृप्त बहाते नीर॥
राधे! एक तुम्हीं हो मेरी वही मधुरतम मञ्जुल मूर्ति।
हो सकती न कदापि किसीसे रञ्चक मात्र तुम्हारी पूर्ति॥
नहीं बजारू सौदा हो तुम, नहीं लेन-देन व्यापार।
शुद्ध प्रेमका मधुर उछलता हो अनन्त रस-पारावार॥

[५७५]

(राग परज—ताल मूल)

प्रिये! तुम्हारी मधुर मनोहर स्मृतिका होता नहीं बिराम।
सदा तुम्हारी मूर्ति-माधुरी रहती मुझसे मिली ललाम॥
मुझे बनानेको अपना, अति तुमने किया अनोखा त्याग।
जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्ति-तुरियमें रक्खा मुझमें ही अनुराग॥
नहीं लिया देनेपर भी कुछ जगका सुख-वैभव-सौभाग्य।
दिव्य लोक, कैवल्य मुक्तिमें भी रक्खा अनुपम वैराग्य॥
फिर, उस शुचि वैराग्य विलक्षणमें भी नहीं रखा कुछ राग।
उसकी भी परवाह न की, करके मुझमें विशुद्ध मधु-राग॥
नहीं तुम्हारे मनमें भोगासक्ति, नहीं वैराग्यासक्ति।
भोग-त्याग कर त्याग सभी, की मुझमें ही अनन्य अनुरक्ति॥
बना तुम्हारा शुचि सेवक मैं, बना ऋणी रहता मैं सत्य।
रहती बसी प्रियतमे! तुम मेरे बाह्याभ्यन्तरमें नित्य॥

रसमय मैं अति स-रस तुम्हारा निर्मल रस चखनेके हेतु।
रहता नित्य प्रलुब्ध छोड़ मर्यादा, तोड़ सभी श्रुति-सेतु॥
प्रिये! तुम्हारे लिये सहज बन रहता मैं कामी, निष्काम।
सहज तुम्हारे रसका लोभी—मैं रस-रत रहता अभिराम॥
भोग मोक्षकी शुद्ध कामनाका भी जिसमें रहा न शेष।
वही मधुर रस निर्मल मुझको आकर्षित करता सविशेष॥
तुम अति, और तुम्हारी व्यूह-स्वरूपा गोपीगण भी धन्य।
जिनमें भरा समुद्र इसी रसका लहराता नित्य अनन्य॥

[५७६]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

अन्तरकी रस-धाराकी हो मेरी तुम्हीं मूर्ति प्रत्यक्ष।
स्मृतिकी क्या चर्चा, जब हो तुम जीवन-रस, जीवनका लक्ष्य?
जहाँ वचन हैं पहुँच न पाते, जहाँ न खिंच पाता है चित्र।
मुझमें वही स्थान हो तुम ही, नित अनुभवकी वस्तु विचित्र॥
कैसे कोई कहे किसीसे, इस स्थितिकी कैसी क्या बात।
रसलीला-सागर मधुमयमें, होता दिव्य रास दिन-रात॥
अपने अंदर तुम्हीं देख लो, कहीं न कभी अन्य अस्तित्व।
यही हमारे दिव्य नित्य-जीवनकी लीलाका है चित्र॥

[५७७]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

एक तुम्हींमें मन अटका है, एक तुम्हारी ही है याद।
ललचाता रहता पानेको नव-नव नित्य मधुर-रस-स्वाद॥
प्राण-इन्द्रियाँ बुद्धि-चित्त—सब तुममें ही संतत संलग्न।
अतल अथाह प्रेम-रस-सागरमें ही हूँ मैं नित्य निमग्न॥
मिलती परम प्रेरणा तुमसे, मिलता अमित शक्तिका दान।
बना हुआ हूँ जिसको पाकर मैं नित अतुलित शक्ति-निधान॥
जीवन-मूल तुम्हीं हो, केवल तुम्हें देखता हूँ नित पास।
मधुर मनोहर तुममें ही, बस, रहता मेरा नित्य निवास॥

[५७८]

(राग बागेश्री—तीन ताल)

प्रिये ! प्राण-प्रतिमे ! मैं कबसे आया बैठा तेरे पास।
कबसे तुझे निहार रहा हूँ, देख रहा शुचि प्रेमोच्छ्वास॥
धन्य पवित्र प्रेम यह तेरा, हूँ मैं धन्य, प्रेमका पात्र।
नित्यानन्द-विधायिनि मेरी, तू ही एक ह्लादिनी मात्र॥

[५७९]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

प्रिये ! तुम्हारी वाणी सुननेको जी हरदम ललचाता।
तुम्हें बोलनेको उकसाने, सुनी अनसुनी कर जाता॥
जब मैं नहीं बोलता कुछ, तब तुम उत्तेजित हो जाती।
प्रणय-कोपमें हरदम मुझको युक्त-अयुक्त सुना जाती॥
तब मुझको होता प्रमोद अति, भर उठता मनमें उल्लास।
विनय-विनम्र मनाने लगता, करने लगता हास-विलास॥
तब तुम प्रेम-सुधा-रस-पूरित अतिशय मधुर सुनाती बैन।
जिन्हें न सुन पाता पलभर तो हो उठता बिल्कुल बेचैन॥

[५८०]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

पल भर नहीं छोड़ते बनता मुझसे प्रिये ! तुम्हारा सङ्ग।
देख-देख नव-नव ललचाता मैं सागर-रस-सुधा-तरंग॥
नित्य चाहता मन मेरा करना अविरत अवगाहन-पान।
तनिक सह नहीं सकता मैं तुमसे पलभरका भी व्यवधान॥
भरता नहीं कभी मन मेरा, बढ़ती ही रहती नित चाह।
नहीं देखता द्वन्द्व एक भी, करता नहीं कभी परवाह॥
तुमसे घुला-मिला रहता मैं हर हालतमें हूँ दिन-रैन।
अमिलनका कल्पना-लेश भी कर देता मुझको बेचैन॥
रहो कहीं तुम, कभी किसी भी स्थितिमें, कैसे भी प्यारी।
सदा रहूँगा मिला साथ मैं, हो न सकोगी तुम न्यारी॥

[५८१]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

तेरे उरकी शुचि सुन्दरता, पावन बह माधुर्य महान।
तेरा शोभा-शील-भरा वह सरल हृदय सद्‌गुणकी खान॥
तेरी अनुपम वह अनन्यता, तेरा वह पवित्रतम त्याग।
तेरा वह सम्पूर्ण समर्पण, आत्मनिवेदन, शुचितम राग॥
तेरा वह संकोच सुधामय, तेरा वह आदर्श सु-भाव।
तेरी अमर्याद मर्यादा, गोपनीय उत्सुकता, चाव॥
सभी पवित्र, सभी सुषमामय, सहज दिव्य आचार-विचार।
उज्ज्वल, त्यागपूर्ण, प्रेमामृत-पूरित, परमानन्दाधार॥
कभी विस्मरण हो न पा रहा, बनी विलक्षण स्मरणासक्ति।
तेरे पद-कमलोंमें मेरी बढ़ती रहे सदा अनुरक्ति॥

[५८२]

(राग कालिंगड़ा—ताल कहरवा)

देख छबीली छटा, देख छरहरा बदन छाया आनन्द।
छकी-लुभाई लगी देखने अपलक, अति अतृप्त, अद्वन्द॥
उमड़ा उर आनन्द-सुधानिधि, बही नेत्र शीतल रस-धार।
देख अतुल छवि, माधव मृदु हँस बोले अमृत-वचन सुख-सार॥
'प्रिये! तुम्हारा तन-मनका यह दिव्य अतुल लीला-विस्तार।
सहज निरीहरूप मुझमें भी करता इच्छाका संचार॥
परमानन्दरूप मैं पाता इसे देख अतिशय आनन्द।
इसीलिये मैं छिप-छिपकर अविरत देखा करता स्वच्छन्द॥
परमसिद्ध योगीन्द्र, ब्रह्मवेत्ता मुनीन्द्र, शुचितम सब संत।
छू सकते न तुम्हारी छाया, पा सकते न भावका अन्त॥
ललचाते नित रहते, कहते धन्य, धन्य गोपी-जन-भाव।
चरण-धूलि-कण सदा चाहते, सेवाका अति रखते चाव॥
इसीलिये वे पशु-पक्षी-द्रुम बन व्रजमें लेते अवतार।
पद-रज-कण ले गोपीजनका होते धन्य सिरोंपर धार॥

[५८३]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

कैसे तुम्हें दिखाऊँ, हे बृषभानुलली ! मेरा मन खोल।
कैसे तुम्हें बताऊँ मनके भावोंका स्वरूप अनबोल॥
तुम्हें देखता जब वियोगपीड़ित, मन व्यथित कभी क्षण एक।
दारुण पीड़ार्णव उरमें अति पड़ता उमड़, छोड़ सब टेक॥
कितनी व्यथा भयानक, कितनी मर्मघातिनी वह पीड़ा।
नहीं बता सकता, बतलाना चाहूँ भी यदि तज व्रीड़ा॥
किंतु इसीके साथ अनोखा मिलन सदा होता रहता।
उससे एक अजस्र विलक्षण मधुमय रस-सोता बहता॥
अति गम्भीर अमल उस सुधा-स्रोतमें कर अवगाहन-पान।
सुख अनुपम अनवद्य प्राप्तकर निरवधि शीतल होते प्राण॥
अनुभव होता प्रिये ! तुम्हारा रहता नित अभिन्न संयोग।
होता नहीं तुम्हारा मुझसे राधे ! पलभर कभी वियोग॥
सदा मिले रहते हम दोनों सूर्य-सूर्यकी रश्मि समान।
विलग नहीं हो सकते तुम-हम दोनों भगवत्ता-भगवान॥
इतनेपर भी होता रहता सदा मिलन-बिछुड़नका भान।
ललित लहरि-लीलोत्सव प्रेम-सुधा-सरिका यह दिव्य महान॥
अथवा प्रेम-तटिनिके ये दो सुन्दरतम तट अति पावन।
विप्रलम्भ, प्रिय-मिलन बिमल रसवर्द्धक प्रियजन-मन-भावन॥
विरह-तप्त हो जब तुम दिखलाया करती हो मुझपर रोष।
मुझे दिखायी देने लगते तब मुझमें अति अगणित दोष॥
सोचा करता तब मैं, हे प्राणेश्वरि ! तुम कर सोच-बिचार।
त्याग क्यों नहीं कर देती हो क्यों सहती यों अत्याचार ?
कर जाता प्रवेश तब शुचितम उर-मन्दिरमें मैं तत्काल।
देख वहाँका दृश्य दुःख सब मिटते, होता तुरत निहाल॥

सुन्दर विकसित सुमनावलि सुरभितसे सज्जित नवल निकुञ्ज।
रस-साधन समस्त आपूरित मधुर मनोहर सुषमा-पुञ्ज॥
बाह्य रोषको देखा मैंने वहाँ मधुर-रस प्रेमाधार।
दोष-कल्पना-शून्य नित्य निरवधि गुण-दर्शन सहज अपार॥
बिछी कुसुम-कोमल सुख-शय्या, प्रिये कर रही आलिङ्गन।
परम सुखास्वादन-रत, अति व्यवधान-रहित सुस्मित तन-मन॥
नहीं लेशभर क्लेश-कल्पना, नहीं कदापि वियोग-विछोह।
नहीं जगतकी—भोगोंकी स्मृति, नहीं विषय-ममता-मद-मोह॥
इसी तरह बाह्याभ्यन्तरमें रहता सदा तुम्हारा सङ्ग।
करते शुभ संस्पर्श परस्पर सदा-सर्वदा ही सब अङ्ग॥
कभी तुम्हारे सिवा किसीको यदि देता मनमें कुछ स्थान।
विमल तुम्हारे ,रसका केवल अधिकाधिक करनेको पान॥
सभी जानती हो तुम मेरे मनकी छोटी-मोटी बात।
क्योंकि स्वामिनी बन तुम उसमें करती हो निवास दिन-रात॥
करो प्रशंसा-निन्दा या दुत्कारो, करो परम सत्कार।
नित नव-रस-आस्वादन, नित्य नवीन मधुर लीला-विस्तार॥

[५८४]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

जब तुम कहती हो—'हे छलिया, जादूगर, निष्ठुर, शठराज'!
कहती—'हृदय छीनकर अब यों नहीं, रुलाते आती लाज॥
समझ न सकी तुम्हें मैं, भूली देख मधुरतम मोहन वेश।
वज्र-कठोर हृदय है, जिसमें नहीं तनिक करुणाका लेश॥
व्याकुल-विह्वल होती मैं अति, पाती नहीं पलकभर चैन।
नित रहते सावन-भादों-से सतत बरसते दुखिया नैन॥
भूले, नहीं बुलाते मुझको, आनेकी न चलाते बात।
जलती रहूँ विरह-ज्वालामें मैं चाहे अविरत दिन-रात॥

होने लगी तुम्हें क्यों मेरी कितव ! तनिक-सी भी अब चाह।
डूबे रहते सुख-सागरमें, क्यों मेरी करते परवाह ॥
करना था यदि यही तुम्हें, तो क्यों मुझसे जोड़ा था नेह।
मनमें आता, कर दूँ तुमसे त्यक्त भस्म यह पापी देह' ॥
सम्बोधन अति लगते मीठे, सुनता रहूँ चाहता मन।
पर जब उनके साथ देखता मलिन-विषण्ण सुधांशु-वदन ॥
यद्यपि करता सदा तुम्हारे ही पावन तन-मनमें बास।
छोड़ नहीं जा सकता पलभर अन्य किसीके भी मैं पास ॥
पर जब हृदय-सुधोदधिमें भड़का तव विरहज बड़वानल।
मेरे जुड़े हृदयमें भी जल उठी तुरत विरहाग्नि प्रबल ॥
सुनकर दुःखभरे फिर भीषण प्रिये ! तुम्हारे ये उद्गार।
मर्म-वेदना बढ़ी भयानक, उमड़ा दुःखका पारावार ॥
दीर्घ कालसे सहन कर रहा मानो मैं वियोग-संताप।
मानो लगा मुझे है कोई दारुण अति विछोह-अभिशाप ॥
कितनी पीड़ा है अन्तरमें कितना हैं भीषण उर-दाह।
नहीं बता सकता कैसे भी, करनेपर भी शत-शत चाह ॥
अब तो तुम्हीं मिटाओ, प्यारी ! दे दर्शन, मधु आलिङ्गन।
बिना तुम्हारे अब तो सम्भव नहीं पलकभर यह जीवन ॥
प्यारी ! किंतु तुम्हारा-मेरा सम्भव नहीं कदापि वियोग।
मैं तुम, तुम मैं, कभी न न्यारे—नित्य ऐक्य संतत संयोग ॥

[५८५]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

तुम्हें क्या कहूँ, क्या न कहूँ, कुछ नहीं उपजती मनमें बात।
रहता हूँ अधिकांश समय मैं पास तुम्हारे ही दिन-रात ॥
दूर रहे या पास रहे तन, इसका कुछ भी है न महत्व।
नित्य मिलनमें नित्य बना है सुखमय पूर्ण नित्य अस्तित्व ॥

अनुभव जब होगा, तब तुमको भी यह दीखेगा अति सत्य।
मिट जायेगी भ्रमयुत सब अमिलनकी यह धारणा असत्य॥
संशय त्याग, करो तुम मनमें दृढ़ निश्चय, दृढ़तम विश्वास।
दर्शन होंगे तुम्हें सत्यके, मैं जो रहता हूँ नित पास॥
विस्मृतिकी है नहीं कल्पना, जहाँ न होता कभी वियोग।
सदा सर्वदा रहता है जब मधुर मनोहर शुचि संयोग॥

[५८६]

(तर्ज गजल—ताल दादरा)

मैं न तुमसे एक क्षण भी दूर हूँ।
नित्य ही तुममें निरत भरपूर हूँ॥
नित्य तुम रहतीं मुझीसे हो मिली।
नित्य ही रहती कलित कलि है खिली॥
चल रही है ललित लीला सर्वदा।
बह रही है मधुर-रस-सरिता सदा॥
उसीमें नित डुबकियाँ हैं लग रही।
नित्य आस्वादन-स्पृहा नव जग रही॥
रस-सुधा-निधि अमित है, परितृप्त है।
किंतु आस्वादन सदा अवितृप्त है॥
चल रहा पर रास नित्य अबाध है।
रासकी नित नयी मनमें साध है॥

[५८७]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

तुमने मुझे दिया सुख नित ही, मैंने तुम्हें सताया।
तुमने निर्मल प्रेम दिया, मैंने उसको ठुकराया॥
तुमने अपनी शुद्ध हँसी-सेवासे मुझे हँसाया।
मैंने तुमको तुरत तिरस्कृत कर अबिराम रुलाया॥

तुमने सर्व-समर्पण कर मुझको सब भाँति सजाया।
मैंने तुमपर बुरी तरहसे बाग-बाण बरसाया॥
तुमने सदा सहा, अब भी सह रही छोड़ मद-माया।
तुम्हें दुःख देनेमें मैं कर रहा सदा मनभाया॥
इतनेपर भी तुमने मुझको रखा सदा अपनाया।
नहीं तुम्हारे चरणोंकी मैं छूने लायक छाया॥
तुम-सी तुम्हीं एक हो, मुझ-सा मैं हूँ एक अभाया।
रहता सदा तुम्हारे शुचि मधु-रससे मैं सरसाया॥

(दोहा)

नहीं देखना तुम कभी मेरे अगणित दोष।
स्थित निज महिमामें सदा रहना तजकर रोष॥
देना अपने प्रेमका मधुर सुधा-रस-बिंदु।
बने अमृतमय हृदय यह मेरा, जो बिष-सिन्धु॥
कहता क्या, मैं कह गया, देख तुम्हें अति खिन्न।
प्रेम-सिन्धुकी हैं सभी ये लहरियाँ विभिन्न॥
इस रस-वारिधिमें सदा डूबी रहो अनन्त।
मिटा सभी प्रतिकूलता, भय-भ्रमका कर अन्त॥

[५८८]

(राग सोहनी—ताल कहरवा)

रोजकी आदत मेरी यह छूटनी सम्भव नहीं।
भूल जाओ तुम मुझे, यदि चाहती हो सुख कहीं॥
भरा दोषोंसे, तुम्हारे साथ कुछ तुलना नहीं।
रूप-गुण-माधुर्यमें तुम-सी नहीं ललना कहीं॥
दिव्य प्रतिमा प्रेमकी तुम त्यागकी शुचि मूर्ति हो।
इस अभावोंसे भरे जीवनकी मधुमय पूर्ति हो॥

अतुल निज गुणसे मुझे गुणवान ही तुम जानती।
प्रेम-गुण-माधुर्य-पूरित हो मुझे तुम मानती॥
गुण अमल अति पर असलमें है तुम्हारा भ्रम महान।
भूलसे तुम जानती हो, मुझे नित शुचि प्रीतिमान॥
प्रेम निर्मलसे रहित, शुचि रूप सद्गुणहीन मैं।
मधुरिमा मुझमें न कुछ, हूँ कलुष-पूरित दीन मैं॥
योग्यताकी दृष्टिसे मैं अनधिकारी हूँ सदा।
पर न करती तुम मधुर निज प्रीतिसे वञ्चित कदा॥
इस तुम्हारे एक-अङ्गी प्रेमका मैं दास हूँ।
इसीसे रहता तुम्हारे पद-युगलके पास हूँ॥
चाहता, तुम छोड़कर मुझको बनो, बस, सुखी अब।
देखकर तुमको सुखी होगा मुझे सुख परम तब॥
पर सकोगी छोड़ तुम, सम्भव नहीं लगता मुझे।
तुम्हीं प्राणाधार, भारी दुःख भी होगा मुझे॥

[५८९]

(राग देश—तीन ताल)

प्रियतमे ! मैं नित रिनी तिहारौ।
तेरे प्रेमरसाम्बुधि के सीकर कौ मोय सहारौ॥
प्रेम-सुधा पावन अति तेरी, मो नित जीवन देत।
तन-मन-इंद्रियगन की ज्वाला सब छिन-छिन हरि लेत॥
हौं तेरे अति बिमल प्रेम के हूँ सर्बथा अजोग।
तू उदार-चूड़ामनि निज दिसि देखि देय संजोग॥
तू अनन्य, हौं घर-घर डोलौं, मेरौ प्रेम अपावन।
तौहू तू मेरी आराध्या, करत रहत मोहि पावन॥
तेरौ प्रेम सदा ही निर्मल, नित्य परम सुख-मूल।
तू नित ही अति छमा-परायन, नित्य करौं मैं भूल॥
मत मेरी दिसि कबौं देखियो, नित अनुकंपा रखियौ।
अपने पावन पद-कमलनि महँ मोय निरंतर लखियौ॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

पद-रत्नाकर

हनुमानप्रसाद पोद्दार

[५९०]

(राग सोहनी—ताल दादरा)

तुम कभी मनमें तनिक भी, नहीं दुःख-विषाद करना।
कभी तुमसे पृथक् हूँ मैं, भूल मन यह भ्रम न भरना॥
नित्य दोनों एक हैं, दो थे न, दो होने असम्भव।
प्रकृतिमें होता रहे कुछ भी, कहीं भी नाश-उद्भव॥
नित्य आत्माका मिलन है, नित्य सुखमय स्पर्श-अनुभव।
हृदय-अभ्यन्तर सतत चलता मिलनका मधु-महोत्सव॥
नित्य नव रस, नित्य नव अनुराग, निर्मल नित्य सुख नव।
नित्य मिलन-वियोग-विरहित, नहीं पलक विछोह त्रुटि-लव॥
भावमय यह मिलन अविनाशी, अबाधित, नित्य निर्भय।
मधुरतम, अति दिव्य, अमृत, पवित्र, परमानन्द-रसमय॥
पाञ्चभौतिक देहकी इसमें न कुछ भी है महत्ता।
भावकी पावन समुज्ज्वल अमल छायी नित्य सत्ता॥
प्रकृति-नियमोंका न बन्धन, देशकालातीत स्तर है।
शुद्ध सच्चित्-सुधामय यह भाव-तत्त्व परात्पर है॥
परम दुर्लभ, अति सुलभ है, मिली भाव-ज्योति शुचितम।
तनिक भी आने न देता पापमय संदेहका तम॥

[५९१]

(लावनी ताल तर्ज—कहरवा)

प्राणाधिके! प्रियतमे! मुझको सतत स्मरण होता तेरा।
भूल नहीं सकता मैं पल भर कभी शशाङ्क-वदन तेरा॥
तेरे प्रेम-सुधानिधिमें नित डूबा रहता मन मेरा।
मधुमय वाणी सुननेको नित चित्त लुभाता है मेरा॥
प्रेम छलकती आँखें तेरी नित मेरे सम्मुख रहती।
सदा समीप खड़ी तू मन भर मनकी सब बातें कहती॥

आलिङ्गन करती, सुख देती, गल-बैयाँ देकर मिलती।
चिपटी सदा हृदयसे रहती, कभी न रत्तीभर हिलती॥
कभी मधुर संगीत सुनाती, कभी हँसाती औ हँसती।
कभी नयन मटकाती, भौंह चलाकर मनमें आ धँसती॥
प्रीति-विवश हो कभी मनोहर, रसमय तीव्र व्यङ्ग कसती।
रोकर कभी रुलाती, कभी फँसाती, अपने ही फँसती॥
हो अति आतुर कभी दीन, दयनीय बनी चरणों पड़ती।
कभी विचित्र भंगिमा करती, कटु वाणी कहकर लड़ती॥
कभी परम संतोष दिलाकर, मनकी सभी व्यथा हरती।
हो करबद्ध कभी अति करुणापूर्ण मधुर बिनती करती॥
भोली-भाली निपट मनोहर सूरत मधुर कभी धरती।
कभी सरल-हृदया हो, अति सीधी-सादी बातें करती॥
कभी चतुर, अति बुद्धिमती बन, तर्क-विवाद विशद करती।
कभी कला-नैपुण्य दिखाती, कभी ज्ञान उत्तम भरती॥
बनती कभी भीरु अतिशय, पा आहट तनिक सहज डरती।
कभी निडर हो, परम साहसी, भीषणतम भयको हरती॥
मुरली कभी चुराती, ले छिप जाती मोर-मुकुट सुन्दर।
कभी भुलाती छद्मवेश धर, कर देती सब इधर-उधर॥
कभी हृदयसे हृदय सटाकर करती मधुमय रसका दान।
करती, कभी कराती अति सुखदायक अधर-सुधा-रस-पान॥
यों नित होता सरस सुधामय सुख-स्पर्श तेरा अभिराम।
मनमें सदा चटपटी रहती, छटपट हिय करता अविराम॥
रहता सदा चित्त यह मेरा तेरे शुभ दर्शनमें लीन।
हट सकता न कभी, ज्यों जलसे नहीं पलक हट सकता मीन॥
सदा मिले रहते सारे अँग, होता सदा ब्रह्म-संस्पर्श।
मग्न-प्रेम-रस, रहित शोक-भय, अनुभव करता चिन्मय हर्ष॥

[५९२]

(राग सारंग—तीन ताल]

तोसे मिलहौं, हे राधिके !

रहे कैसे एक छिन हूँ प्राण तुम बिन दीन, राधिके ॥
रहे कैसे अग्नि जीवित दहन-शक्ति-विहीन राधिके ।
रहे सूरज-चाँद कैसे प्रभा-आभा-हीन राधिके ॥
सत्त भगवत्ता बिना भगवान जीवनहीन राधिके ।
ज्यों परस जहँ, स्याम-जीवन राधिका आधीन राधिके ॥

[५९३]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

जबसे छूटा था राधे ! वह मधुर तुम्हारा प्रिय संयोग ।
तबसे व्याप रही थी दारुण व्यथा, बढ़ रहा मानस-रोग ॥
नहीं चैन पड़ता पलभर था, नहीं सुहाता था कुछ और ।
रहना नहीं चाहता था मन लवभर कभी दूसरी ठौर ॥
प्रिये ! तुम्हारी प्यारी स्मृतिसे भरा चित्त मेरा भरपूर ।
रोम-रोम खिल उठा अचानक, व्यथा हो गयी सारी दूर ॥
मधुर तुम्हारा प्यारा विग्रह तुरत सटा आकर सब-अङ्ग ।
तिलभर पृथक् न रहा, बढ़ चला परम नवीन अतुल रस-रङ्ग ॥
कभी बड़ी व्याकुलता होती, फिर जब होता अमिलन-भान ।
तुरत प्रकट होकर स्मृतिमें तुम करतीं सुखद स्पर्शका दान ॥
तबसे कभी वियोग-मिलन होता, फिर कभी मिलन-सम्भोग ।
रहती प्रिय अनुभूति बाह्य, अन्तर रहता नित रस-संयोग ॥
इस प्रकार तुम राधे ! मुझसे होती दूर न पलक कभी ।
रहती सदा परिस्थिति अब मेरी रस-आनँदमयी सभी ॥

[५९४]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

भूल गया मैं अन्य सभी कुछ, केवल एक तुम्हारी याद।
राधे! एक तुम्हीं हो मेरा परमानन्द बिना मर्याद॥
एक तुम्हारी प्यारी स्मृतिमें डूबा रहता है नित चित्त।
तुम ही प्राण-प्राण हो मेरी, लोभनीय अति तुम ही वित्त॥
अनुभव करता मैं प्रतिपल ही—कभी नहीं तुम रहती दूर।
सदा मिली ही रहती हो तुम अणु-अणु कण-कणमें भरपूर॥
कहीं रहूँ मैं कभी नहीं हो पाता तुमसे तनिक वियोग।
बना हुआ है, बना रहेगा, निर्मल नित्य सरस संयोग॥

[५९५]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

राधा! तेरे दर्शनको मैं उत्सुक रहता, नित्य अधीर।
कोई नहीं जान सकता यह मेरे अन्तस्तलकी पीर॥
पीड़ा वह अति व्यथित बनाती, व्याकुल करती अति स्वच्छन्द।
सीमासे अतीत उस स्मृतिसे होता उदय अमित आनन्द॥
वह आनन्द नित्य पल-पल नव-पीड़ाका उद्भव करता।
पीड़ासे फिर स्मृति बढ़ती, फिर नवानन्द मनमें भरता॥
यों ही अमिलन-दुःख स्मृति-सुखका सागर रहता लहराता।
उसमें सहज प्रिये! मैं रहता सतत डूबता-उतराता॥
बीच-बीचमें मिलनाकाङ्क्षा बढ़कर उग्र रूप धरती।
तब हो उदित रूप-माधुरी मधु मनके सारे दुख हरती॥

[५९६]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

प्रिये! तुम्हारी विरह-वेदना मुझे सताती है भारी।
पल-पलमें पीड़ा है बढ़ती, सुध-बुध मिट जाती सारी॥

****

सोते-जगते सभी समय है मीठी याद बनी रहती।
बुद्धि-चित्त सब इन्द्रियगण हैं तुमसे सदा सनी रहती॥
तो भी तुम्हें देखनेको नित व्याकुल रहता मेरा मन।
आँखें अकुलाती रहतीं, नित परसनको ललचाता तन॥
अधरामृत दे मधुर प्रियतमे! मुझको सुखी करोगी कब?
आठों याम तरसते हैं ये प्राण, न कल पड़ती पल अब॥
मोर-मुकुट, मुरली, माखन, मधुसे अब मेरा मन भगता।
बिना तुम्हारे नन्द-भवनका सुख सारा खारा लगता॥
वंशीवट, कालिन्दीका तट, शरद-रैन सब लगते घोर।
मचला मन है, कहीं न टिकता, पाता नहीं कहीं भी ठौर॥
मान त्यागकर मुझे हृदयसे कब चिपटाओगी अब तुम।
चरण-धूलि अपनी पावन दे, कब सुख सरसाओगी तुम॥
कृपा करो इस तुच्छ दासपर अब प्यारी राधारानी।
सुखी करो अब मुझे सुना निज अमृत-मधुर रसयुत बानी॥

[५९७]

(दोहा)

विधु-बदनी श्रीराधिके! मेरी जीवन-मूल।
तेरे विषम वियोगकी चुभी हृदयमें शूल॥
असहनीय अति वेदना, छिपा न रक्खी जाय!
कहना भी सम्भव नहीं, हुआ निपट असहाय॥
पूर्वपुण्य-परिपाकसे पाऊँ निभृत अरण्य।
पथिक-रहित पथ, जो कभी दीर्घकाल तक शून्य॥
तो विछोहके शोककी बहे अश्रु-जल-धार।
मिश्रित घर्घर शब्द, सब प्लावित हो संसार॥

[५९८]

(ताल घनाश्री—तीन ताल)

राधिके ! तुम सलिल, हौं मीन।
रहैं कैसें एक छिन हूँ प्रान तुम बिन दीन॥
रहैं कैसें अग्नि जीवित दहन-शक्ति-विहीन।
रहैं सूरज-चाँद कैसे प्रभा-आभा-छीन॥
सक्ति-भगवत्ता बिना भगवान जीवन-हीन।
त्यों सरस यह स्याम-जीवन राधिका-आधीन॥

[५९९]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

तुम्हारी स्मृति नित बन साकार। चित्तपर रहती मधुर सवार॥
दुःख-सुख देती उभय अपार। अनिर्वचनीय सु-रस-आगार॥
तुम्हारा मधुर समर्पण-भाव। तुम्हारा संयम शील-स्वभाव॥
दूसरेपनका निपट अभाव। सदा उपजाता नव-नव चाव॥
बना देता अविलम्ब विदेह। भरा नेत्रोंमें पावन स्नेह॥
सदा बरसाता सुखका मेह। सरस नित ही रखता मन-देह॥

[६००]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

रहता पुरी द्वारिकामें मैं, करता हूँ सबका शासन।
सभी सदा अनुगत रह मेरा सतत मानते अनुशासन॥
विविध प्रचुर ऐश्वर्योंसे युत सुन्दर भव्य राज-प्रासाद।
रमणी-रत्न सहस्रोंसे जगमग, उपजाते अति आह्लाद॥
तन-मनसे सेवा-रत विनय-विभूषित, गलित-गर्व सारी।
एक-एकसे बढ़कर शुभ गुण-रूपवती निर्मल नारी॥
राज-काज करता सब अनलस, शत्रु-मित्रसे सदा सचेत।
राष्ट्र-नीतिकी रक्षा करता, सदा सतर्क, धर्म-समवेत॥

ये सब, और अनेकों अति दायित्वपूर्ण सब करता काम।
पर क्षणभर भी नहीं भूल सकता मैं तव मुख-चन्द्र ललाम॥
स्वप्न-राज्यमें भी, प्यारी! मैं पाता सदा तुम्हारा सङ्ग।
दर्शन-मिलन-विलास विविध होते, बढ़ता नूतन रस-रङ्ग॥
बहता नित्य प्रवाह तुम्हारी मधुर रूप-सरिका निर्बाध।
पल-पल बढ़ती रूप-माधुरी, पल-पल नयी-नयी मन साध॥
दूर रहो या पास रहो तुम, हम दोनोंका रस-संयोग।
अटल, अचल, अतुलित, अनुभवमय रहता, होता नहीं वियोग॥
सदा नाचती रहती प्रिय छवि, प्रिये! तुम्हारी मधुर अशेष।
पल-पल नव उल्लास उपजता, पल-पल रस-आस्वाद विशेष॥
नहीं देहमें सीमित यह अति पावन दिव्य प्रेम-सम्बन्ध।
जन्म-मरण, परलोक-लोकका भी न कभी होता प्रतिबन्ध॥
नित अक्षुण्ण, नित्य वर्धनमय, नित्य प्रेम-रस मधुर अपार।
रहता सदा सुधा शुचि चिन्मयका सीमा-विरहित विस्तार॥

[६०१]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

तुम यह शायद समझ रही, मैं करता तुम्हें नहीं हूँ याद।
पर मेरे मन कैसा अति छाया रहता नित विषम विषाद॥
किसे बताऊँ मैं मनकी स्थिति, किससे करूँ, प्रिये! फरियाद।
किसे सुनाऊँ हृदय-दाहका भीषण ज्वालामय संवाद॥
जलता हृदय वियोगानलसे, झूर रहे दृग दर्शन-हेतु।
चाह रहा मिलना अति सत्वर, तोड़ सभी मर्यादा-सेतु॥
कैसे देखूँ तुम्हें इसी क्षण, बीत रहा युग-तुल्य निमेष।
छूट रहा सब धैर्य, बचा कुछ नहीं हृदयमें धृतिका शेष॥
बसा दूर मैं पुरी द्वारिका, घेरे रहते अगणित लोग।
विविध विचित्र विषय मनहारी, लोकदृष्टिके सुखकर भोग॥

कहीं नहीं लगता मन मेरा, रहा तुम्हारी स्मृतिमें डूब।
लगते सब सुख-भोग परम दुखरूप, गया इनसे मन ऊब॥
यों तो सदा तुम्हारा मुझसे रहता सरस सुभग संयोग।
होता नहीं स्वप्नमें भी, पलभर भी तुमसे कभी वियोग॥
और किसी लीलाका मुझको रहता कभी नहीं अब ज्ञान।
तुम ही एकमात्र लीलाकी हो रसमयी अनोखी खान॥
डूबा रहता हूँ प्राणेश्वरि! मैं इस लीलामें दिन-रात।
नहीं सुहाती तनमनसे है कभी दूसरी मुझको बात॥

[६०२]

(राग बिहारी—ताल कहरवा)

हे व्रजरमणि-मुकुटमणि राधे! मत्सुख-सुखिनि मधुर रसखान।
नित-नूतन उत्कर्षशील शुचि महाभावरूपा द्युतिमान॥
पल-पल पद-पदपर जो करती सहज सदा मम सुख-सुविधान।
नहीं लेश गुण-गौरवकी स्मृति, नहीं कहीं कुछ भी अभिमान॥
स्थिति, गति, भाव, विचार, भङ्गिमा, इङ्गित, सकल अङ्ग-प्रत्यङ्ग।
विविध विचित्र नित्य रस-पूरित प्रेम-पयोनिधि मधुर तरङ्ग॥
जिसका कनक-कमल-मुख होता परम प्रफुल्लित नित्य नवीन।
पा रवि-रश्मि-दृष्टि मम उज्जवल हृदय स्व-सुख-अभिलाषा-हीन॥
मम जीवन-जीवन, मम मन-मन, नित मत्प्राण-प्राण परिपूत।
अविनाभाव भाव सत्ता सब क्रिया सहज ही एकीभूत॥
मिली सदा रहती तुम मुझमें, मैं तुममें रहता नित युक्त।
प्रेम हेतु दो बने परस्पर रहते लीलासे अनुरक्त॥
दोके बिना, न हो पाता, यह लीला-रस-वितरण-आस्वाद।
इसीलिये दो बन लीलारत रहते अमर्याद अविवाद॥

[६०३]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

सर्वनियन्ता सर्वेश्वर मैं, सब गुण-रहित सर्व-गुण-धाम।
सर्वभूतमय, सर्वाश्रय मैं सर्वातीत, सर्वविश्राम॥
सर्वमूल मैं, पूर्ण तृप्त नित, आप्तकाम हूँ, नित निष्काम।
नित्य निरीह, पूर्ण नित सुखसे, निज महिमा-स्थित, आत्माराम॥
नहीं अभाव कहीं कुछ भी है, नहीं कदापि चाह-परवाह।
नहीं किसी सुखकी प्रसन्नता, नहीं दुःखकी आह-कराह॥
पर राधे तेरा अति पावन, मधुर प्रेमरस-सिन्धु अपार।
आकर्षित नित करता, रहता, प्रति तरंगमें मुझे पुकार॥
क्षुधा-तृषा जग उठी विलक्षण, नित्यतृप्त मुझमें सुमहान।
आतुर मैं तटपर आ करने लगा मधुर अवगाहन-पान॥
पर न कदापि तृप्त हो पाता, बढ़ता नया-नया अभिलाष।
बढ़ता लोभ हरेक लाभमें, बढ़ती नित नव क्षुधा-पिपास॥
अनुपम अतुल त्याग-परिपूरित तेरा यह रस-निधि अभिराम।
मेरे लिये हो गया अब तो यही जीवनाधार ललाम॥
इस रस-सिंधु मधुरमें ही मैं रहा चाहता नित्य निमग्न।
राधे! रहूँ सदा ही तेरे दिव्य प्रेममें मैं संलग्न॥

[६०४]

(राग देशकार—तीन ताल)

राधा मेरी प्राण-प्रतिमा, मैं राधाका प्राणाराम।
राधा मेरी, मैं राधाका, नित्य मधुर सम्बन्ध ललाम॥
राधा मैं हूँ, मैं राधा है, भिन्न तथापि, कदापि न भिन्न।
नित्य भिन्न नव-नव लीला-रस-आस्वादन अनवद्य अभिन्न॥
राधामय जीवन नित मेरा, मैं नित राधा-जीवन-रूप।
राधाकी-मेरी यह एकमेकता दिव्य पवित्र अनूप॥

मेरे हित राधा उन्मादिनि, राधा-हित मुझमें उन्माद।
करते किंतु एक-दूसरेके मनका अनुभव अविवाद॥
करते एक-दूसरेके मनकी, प्रेमी-प्रेमास्पद भाव।
नित्य निरन्तर नव-नव सुख-देनेका बढ़ा परस्पर चाव॥

[६०५]

(राग धनाश्री—तीन ताल)

राधिके! तुम सौं होड़ लगी।
हौं अनुरक्त रहौं या तुम नित रहौ सनेह-पगी॥
ठगौ मोय तुम प्रेम-अमिय दै, तुम ही जाउ ठगी।
लगन लगै मो में, या मेरी तुम में रहै लगी॥
सगबग सदा रहौं तुम में, या तुम ही रहौ रँगी।
रहौं सचेत प्रीति में हैं, या तुम नित रहौ जगी॥
मैं जीतूँ या तुम ही जीतौ, अब तौ बात दगी।
जो हारै सो स्वामि बनै, दै पद-रज समुद सगी॥

[६०६]

(राग मालकोस—तीन ताल)

गोपिका! (प्रिया सब) हौं नित रिनी तिहारौ।
नव-नव बढ़त जात रिन छिन-छिन, नहिं घटिबे कौ बारौ॥
घटै तबहिं, जब तुम गोपिन हौं सुख बिसेष दे पाऊँ।
तुम्हरे सुख बिसेष कौ साधन हौं निज सुखहि बढ़ाऊँ॥
ज्यौं-ज्यौं बढ़ै तिहारे द्वारा मेरौ नव सुख प्रति छिन।
त्यौं-त्यौं बढ़तौ रहै तिहारौ रिन मो पै नित नूतन॥
या बिधि तुम्हरे रिन-सोधन कौ जो उपाय कछु करियै।
तौ उलटौ रिन बढ़ै, न साधन कोउ, जासौं रिन भरियै॥
तन-मन-धन-जीवन अरपन करि मेरौ ही सुख साधौ।
धर्म-लोक-परलोक-स्वजन-कुल त्यागि मोहि आराधौ॥

****

या रिन तैं नहिं उरिन कबहुँ ह्वै सकौं, न होनौ चाहौं।
नित नव सेवा कौ अवसर लहि नित नव मनहि उमाहौं॥
कबहुँ सोधि पाऊँ न तिहारौ रिन अति मधुर मनोहर।
बँध्यौ रहौं तुव प्रेम-दाम सौं, भूलि सबहिं जोगेस्वर॥
खेलूँ सदा तिहारे सँग, हौं नित नव रास रचाऊँ।
तुम्हरे रस तैं परम सुखी बनि तुम्हरौ सुख सरसाऊँ॥

[६०७]

(राग नट—तीन ताल)

निर्मल प्रेम नित्य यौं बोलै।
अपने दोष विमल गुन पिय के लाख करि काढ़ै—तोलै॥
छक्यौ प्रेम-रस-सुधा निरंतर अग-जग भयौ बावरौ डोलै।
दीखै हियौ प्रेम-रस छूँछौ पाय प्रेम-धन-रतन अमोलै॥
प्रेम-पियास बढ़त नित पावन-प्रेम अभाव दिखावत रोलै।
धनि-धनि ऐसौ प्रेम-धनी जो नित नव प्रेम-गोलकहि खोलै॥
मोय परम सुख पहुँचावन-हित नित अति मधुर अमी-रस घोलै।
तुम ऐसी, तातैं मैं रिनिया, सेवौं सकुचत हौले-हौले॥

═══ ★ ═══

श्रीराधाके प्रेमोद्गार—श्रीकृष्णाके प्रति

[६०८]

(राग रागेश्वरी—ताल दादरा)

हौं तो दासी नित्य तिहारी।
प्राननाथ जीवनधन मेरे, हौं तुम पै बलिहारी॥
चाहैं तुम अति प्रेम करौ, तन-मन सौं मोहि अपनाऔ।
चाहैं द्रोह करौ, त्रासौ, दुख देइ मोहि छिटकाऔ॥
तुम्हरौ सुख ही है मेरौ सुख, आन न कछु सुख जानौं।
जो तुम सुखी होउ मो दुख में, अनुपम सुख हौं मानौं॥
सुख भोगौं तुम्हरे सुख कारन, और न कछु मन मेरे।
तुमहि सुखी नित देखन चाहौं निस-दिन साँझ-सबेरे॥
तुमहि सुखी देखन हित हौं निज तन-मन कौं सुख देऊँ।
तुमहि समरपन करि अपने कौं नित तव रुचि कौं सेऊँ॥
तुम मोहि 'प्रानेस्वरि', 'हृदयेस्वरि', 'कांता' कहि सचु पावौं।
यातैं हौं स्वीकार करौं सब, जद्यपि मन सकुचावौं॥

[६०९]

(राग भैरवी—तीन ताल)

मेरी इस विनीत विनतीको सुन लो, हे व्रजराजकुमार!
युग-युग, जन्म-जन्ममें मेरे तुम ही बनो जीवनाधार॥
पद-पङ्कज-परागकी मैं नित अलिनी बनी रहूँ, नँदलाल!
लिपटी रहूँ सदा तुमसे मैं कनकलता ज्यों तरुण तमाल॥
दासी मैं हो चुकी सदाको अर्पणकर चरणोंमें प्राण।
प्रेम-दामसे बँध चरणोंमें, प्राण हो गये धन्य महान॥

देख लिया त्रिभुवनमें बिना तुम्हारे और कौन मेरा।
कौन पूछता है 'राधा' कह, किसको राधाने हेरा॥
इस कुल, उस कुल—दोनों कुल, गोकुलमें मेरा अपना कौन!
अरुण मृदुल पद-कमलोंकी ले शरण अनन्य गयी हो मौन॥
देखे बिना तुम्हें पलभर भी मुझे नहीं पड़ता है चैन।
तुम ही प्राणनाथ नित मेरे, किसे सुनाऊँ मनके बैन॥
रूप-शील-गुण-हीन समझकर कितना ही दुतकारो तुम।
चरणधूलि मैं, चरणोंमें ही लगी रहूँगी बस, हरदम॥

[६१०]

(राग परज—तीन ताल)

सुन्दर श्याम कमल-दल-लोचन दुखमोचन व्रजराजकिशोर।
देखूँ तुम्हें निरन्तर हिय-मन्दिरमें, हे मेरे चितचोर!
लोक-मान-कुल-मर्यादाके शैल सभी कर चकनाचूर।
रक्खूँ तुम्हें समीप सदा मैं, करूँ न पलक तनिकभर दूर॥
पर मैं अति गँवार ग्वालिनि गुणरहित कलङ्की सदा कुरूप।
तुम नागर गुण-आगर अतिशय कुलभूषण सौन्दर्य-स्वरूप॥
मैं रस-ज्ञान-रहित रसवर्जित, तुम रसनिपुण रसिक सिरताज॥
इतनेपर भी दयासिन्धु तुम मेरे उरमें रहे विराज॥

[६११]

(राग भैरवी तर्ज—तीन ताल)

सदा सोचती रहती हूँ मैं—क्या दूँ तुमको, जीवनधन!
जो धन देना तुम्हें चाहती, तुम ही हो वह मेरा धन॥
तुम ही मेरे प्राणप्रिय हो, प्रियतम! सदा तुम्हारी मैं।
वस्तु तुम्हारी तुमको देते पल-पल हूँ बलिहारी मैं॥

प्यारे ! तुम्हें सुनाऊँ कैसे अपने मनकी सहित विवेक।
अन्योंके अनेक, पर मेरे तो तुम ही हो, प्रियतम ! एक ॥
मेरे सभी साधनोंकी बस, एकमात्र हो तुम ही सिद्धि।
तुमही प्राणनाथ हो बस, तुम ही हो मेरी नित्य समृद्धि ॥
तन-धन-जनका बन्धन टूटा, छूटा, भोग-मोक्षका रोग।
धन्य हुई मैं, प्रियतम ! पाकर एक तुम्हारा प्रिय संयोग ॥

[६१२]

(राग गूजरी—ताल कहरवा)

मेरे धन-जन-जीवन तुम ही, तुमही तन-मन, तुम सब धर्म।
तुम ही मेरे सकल सुखसदन, प्रिय निज जन, प्राणोंके मर्म ॥
तुम्हीं एक बस, आवश्यकता, तुम ही एकमात्र हो पूर्ति।
तुम्हीं एक सब काल सभी विधि हो उपास्य शुचि सुन्दर मूर्ति ॥
तुम ही काम-धाम सब मेरे, एकमात्र तुम लक्ष्य महान।
आठों पहर बसे रहते तुम मम मन-मन्दिरमें भगवान ॥*
सभी इन्द्रियोंको तुम शुचितम करते नित्य स्पर्श-सुख-दान।
बाह्याभ्यन्तर नित्य निरन्तर तुम छेड़े रहते निज तान ॥
कभी नहीं तुम ओझल होते, कभी नहीं तजते संयोग।
घुले-मिले रहते करवाते करते निर्मल रस-सम्भोग ॥
पर इसमें न कभी मतलब कुछ मेरा तुमसे रहता भिन्न।
हुए सभी संकल्प भङ्ग मैं-मेरेके समूल तरु छिन्न ॥
भोक्ता-भोग्य सभी कुछ तुम हो, तुम ही स्वयं बने हो भोग।
मेरा मन बन सभी तुम्हीं हो अनुभव करते योग-वियोग ॥

---

* (दूसरा पाठ) आठों पहर सरसते रहते तुम मन सर-वर में रसवान ॥

[६१३]

(राग शिवरंजनी—तीन ताल)

तुमसे सदा लिया ही मैंने, लेती-लेती थकी नहीं।
अमित प्रेम-सौभाग्य मिला, पर मैं कुछ भी दे सकी नहीं॥
मेरी त्रुटि, मेरे दोषोंको तुमने देखा नहीं कभी।
दिया सदा, देते न थके तुम, दे डाला निज प्यार सभी॥
तब भी कहते—'दे न सका मैं तुमको कुछ भी, हे प्यारी!
तुम-सी शील-गुणवती तुम ही, मैं तुमपर हूँ बलिहारी'॥
क्या मैं कहूँ प्राणप्रियतमसे, देख लजाती अपनी ओर।
मेरी हर करनीमें ही तुम प्रेम देखते नन्दकिशोर!॥

[६१४]

(राग वागेश्री—तीन ताल)

तुम अनन्त सौन्दर्य-सुधा-निधि, तुममें सब माधुर्य अनन्त।
तुम अनन्त ऐश्वर्य-महोदधि, तुममें सब शुचि शौर्य अनन्त॥
सकल दिव्य सद्गुण-सागर तुम लहराते सब ओर अनन्त।
सकल दिव्य रस-निधि तुम अनुपम, पूर्ण रसिक, रसरूप अनन्त॥
इस प्रकार जो सभी गुणोंमें, रसमें अमित असीम अपार।
नहीं किसी गुण-रसकी उसे अपेक्षा कुछ भी किसी प्रकार॥
फिर मैं तो गुणरहित सर्वथा, कुत्सित-गति, सब भाँति गँवार।
सुन्दरता-मधुरता-रहित कर्कश कुरूप अति दोषागार॥
नहीं वस्तु कुछ भी ऐसी, जिससे तुमको मैं दूँ रसदान।
जिससे तुम्हें रिझाऊँ, जिससे करूँ तुम्हारा पूजन-मान॥
एक वस्तु मुझमें अनन्य आत्यन्तिक है विरहित उपमान।
'मुझे सदा प्रिय लगते तुम'—यह तुच्छ किंतु अत्यन्त महान॥
रीझ गये तुम इसी एक पर, किया मुझे तुमने स्वीकार।
दिया स्वयं आकर अपनेको, किया न [illegible] भी सोच-बिचार॥

भूल उच्चता भगवत्ता सब सत्ताका सारा अधिकार।
मुझ नगण्यसे मिले तुच्छ बन, स्वयं छोड़ संकोच-सँभार॥
मानो अति आतुर मिलनेको, मानो हो अत्यन्त अधीर।
तत्त्वरूपता भूल सभी नेत्रोंसे लगे बहाने नीर॥
हो व्याकुल, भर रस अगाध, आकर शुचि रस-सरिताके तीर।
करने लगे परम अवगाहन, तोड़ सभी मर्यादा-धीर॥
बढ़ी अमित, उमड़ी रस-सरिता पावन, छायी चारों ओर।
डूबे सभी भेद उसमें, फिर रहा कहीं भी ओर न छोर॥
प्रेमी, प्रेम, परम प्रेमास्पद—नहीं ज्ञान कुछ, हुए बिभोर।
राधा प्यारी हूँ मैं, या हो केवल तुम प्रिय नन्दकिशोर॥

[६१५]

(राग भैरवी तर्ज—तीन ताल)

तुम हो यन्त्री, मैं यन्त्र, काठकी पुतली मैं, तुम सूत्रधार।
तुम करवाओ, कहलाओ, मुझे नचाओ निज इच्छानुसार॥
मैं करूँ, कहूँ, नाचूँ नित ही परतन्त्र, न कोई अहंकार।
मन मौन—नहीं, मन ही न पृथक् मैं अकल खिलौना, तुम खिलार॥
क्या करूँ, नहीं क्या करूँ—करूँ इसका मैं कैसे कुछ विचार?
तुम करो सदा स्वच्छन्द, सुखी जो करे तुम्हें, सो प्रिय विहार॥
अनबोल नित्य निष्क्रिय स्पन्दनसे रहित सदा मैं निर्विकार।
तुम जब जो चाहो, करो सदा बेशर्त, न कोई भी करार॥
मरना-जीना मेरा कैसा—कैसा मेरा मानापमान।
हैं सभी तुम्हारे ही, प्रियतम! ये खेल नित्य सुखमय महान॥
कर दिया क्रीडनक बना मुझे निज करका तुमने अति निहाल।
यह भी कैसे मानूँ-जानूँ, जानो तुम ही निज हाल-चाल॥
इतना मैं जो यह बोल गयी, तुम जान रहे—हैं कहाँ कौन?
तुम ही बोले भर सुर मुझमें मुखरा-से मैं तो शून्य मौन॥

[६१६]

(लावनी तीसरी तर्ज—ताल कहरवा)

हे प्रियतम ! माधुर्य-सुधानिधि ! रस-सागर, प्राणोंके प्राण ।
नित्य निवास करो मेरे उर-मन्दिर, निरुपम प्रेम-निधान ।।
नव-नीरद-नीलाभ श्याम तन, पीत बसन वर रहा विराज ।
वय किशोर, कमनीय कान्ति सच्चिन्मय बपु, सब सुन्दर साज ।।
मधुर, मनोहर, दिव्य सौरभित, अति सुकुमार अङ्ग-प्रत्यङ्ग ।
अतुल रूप-रस-सिन्धु-बिन्दुसे रूप-समन्वित अमित अनङ्ग ।।
ललित त्रिभङ्ग, कमलदल-लोचन, मोचन मायारचित विधान ।
नित्य०

चारु चन्द्रिका भूषितकुञ्चित कुन्तल, मृगमद-तिलक सुभाल ।
कम्बु-कण्ठ शोभित मुक्ता-मणि, तुलसी-वन-कुसुमोंकी माल ।।
कौस्तुभमणि-श्रीवत्स-विभूषित वक्षःस्थल मनहरण, विशाल ।
अरुणिम मधुर अधर मुरलीधर, त्रिभुवन-मोहन यशुमति-लाल ।।
परमहंस मुनि-जन-मन-मोहनि सोहनि मन्द मधुर मुसकान ।
नित्य०

श्रवण-सुशोभित कुण्डल छवि अति झिलमिलात शुचि रुचिर कपोल ।
चिबुक चित्तहर, प्रेम-सुधा-रस-भरे मनोहर मीठे बोल ।।
उन्नत कंध, विशाल भुजा सुन्दर मृणाल-सम शोभा धाम ।
नित नवीन सौन्दर्य-सुधामय मुख-सरोज मोहन अभिराम ।।
प्रेमानन्द-तरंगित-विग्रह, रास-रसिक, रस-धाम सुजान ।
नित्य०

अङ्ग सकल आभरण-विभूषित, दिव्य द्युति, अति सुषमागार ।
कोमल, कान्त, सुशान्त, दमन, दुख, दिव्य सुखप्रद [illegible]म उदार ।।
ब्रज-युवतीजन-मन-आकर्षक, रूप-राशि, नव नित्य[illegible]शोर ।
नन्दानन्दन, सखा-प्राणधन, जड-चेतन सबके चितचोर ।।
मेरे हृदयेश्वर, रस-पान-रसिक, शुचि करते रसका दान !
नित्य०

[६१७]

(लावनी दूसरी तर्ज—ताल कहरवा)

प्रियतम ! तव रूप-सुधा-रस-माधुरि प्यारी।
मो दृग सौं छिनहू नायँ टरति है टारी॥ टेक ॥
नव-जलद-नील तनु स्याम नयन-मन-मोहन।
मुख सरद-इंदु-सम पूर्ण प्रभामय सोहन॥
बनमाला गल अति सुरभित नित मन मोहै।
सिखि-पिच्छ-सुसोभित अलकनि की छबि सोहै॥
बाँकी भौंहैं, तिरछी चितवन अनियारी॥ मो दृग॰ ॥
हौं कुमुदिनि तव मुख-चंद्र बिना नहिं विकसति।
हौं चारु चकोरी नित दरसन-हित तरसति॥
बस, मिलौ तुरत तुम, करौ न पलभर देरी।
मैं हौं अनन्य तव चरन-जुगल की चेरी॥
तुम बिनु नहिं छिन भर चैन, बिथा हिय भारी॥ मो दृग॰ ॥
मन ऐसी आवै, नित्य रहौं तुम सौं जुत।
छिनहू नहिं तुम कूँ जान दऊँ मैं इत-उत॥
राखूँ उर-मंदिर बाँधि प्रेम की डोरी।
खेलूँ प्रिय ! तुम सँग सदा रंग-रस-होरी॥
तुम बनौ नित्य मम हृदय-सरोज-विहारी॥ मो दृग॰ ॥
तुम बने रहो हरि ! हार गलेका सोभन।
नित प्रेम-रसास्वादनका बढ़ै प्रलोभन॥
तुम-हम, बस, दो ही रहैं, न कोई दूजा।
मैं करती रहूँ प्रान-धन नित रस-पूजा॥
त्रुटिभर न तुम्हें मैं बिलग करूँ हियहारी॥ मो दृग॰ ॥
मम मुख-पंकजके मधुकर मधुर पिआरे।
तुम प्रान-प्रान, मेरे नैनों के तारे॥

छूटै अग-जग की सुरति देखि तव मूरति।
मुक्ती न पाय मो कूँ नित रहैं बिसूरति ॥
तुम में मैं घुल-मिल जाऊँ, रहूँ न न्यारी ॥ मो दृग० ॥

[६१८]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

तुम अपनी असमोर्ध्व, अतुल महिमामें करते नित्य निवास।
कौन तुम्हें पा सकता, प्यारे ! कौन पहुँच सकता है पास ॥
क्या देकर तुमको, कैसे है कोई दे सकता आह्लाद।
स्वयं अमित आह्लाद-सुधा-निधि, स्वयं सदा आस्वादन-स्वाद ॥
स्वयं नित्य रस तुम स्वरूपतः, पर रस-लोभी मधुर महान।
रस-वितरण कर, रस विस्तृत कर, स्वयं नित्य करते रस-पान ॥
अपना ही रस दे मुझको कर रक्खा तुमने ही रस-मत्त।
करते तुम्हीं पान रस-अविरत, रहते नित्य तृषित, उन्मत्त ॥
देख अलखकी यह अद्‌भुत रस-लिप्सा मैं होती हैरान।
कैसे भूल रहे तुम अपनी [illegible]-भगवत्ता, भगवान !
जब तुम देख मुझे हो जाते विह्वल, [illegible]ल-चित्त, विमुग्ध।
बहने लगता तब अजस्र धारा बन अति अनुराग विशुद्ध ॥
रहता नहीं तुम्हें अपना तब तन-मनका कुछ भी संधान।
होता एकाकार सभी कुछ, रहता तनिक नहीं व्यवधान ॥
रह जाता तथापि अतल-स्पर्शी प्रियतमके सुखका भान।
तुम ही सहज देखते, करते मेरे सुखका नित्य विधान ॥
नीच-उच्च, अणु-तुच्छ-महत्‌का रहता नहीं कदापि विचार।
मेरे तुम स्वरूप बन जाते, मैं बन जाती तुम साकार ॥

(अथवा)

(बन जाते स्वरूप दोनोंके, दोनों तज निज-निज आकार) ॥
कौन कहे कैसा रस-अनुभव, कैसा अनिर्वाच्य आनन्द।
प्रेम बना आनन्द नाचता, बना प्रेम आनँद स्वच्छन्द ॥

[६१९]

(राग माँड—ताल कहरवा)

यहाँ-वहाँ कुछ कहीं न मेरा, मेरे केवल तुम ही।
मन-इन्द्रिय, शरीर, धन, जीवन मेरे केवल तुम ही॥
राग अनन्य, शुद्ध ममतास्पद मेरे केवल तुम ही।
भोग-मोक्ष, वैराग्य-भाग्य सब मेरे केवल तुम ही॥
तुम्हें छोड़कर कुछ भी मेरा कहीं न कोई, प्यारे!
अर्पण करूँ जिसे मैं तुमको, ऐसा क्या है, प्यारे!
खेल रहे तुम स्वयं आपमें खेल अनोखा, प्यारे!
रहो खेलते खुल इस निज निर्जन निकुञ्जमें, प्यारे!

[६२०]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

एकमात्र उनकी ही हूँ मैं, एकमात्र वे ही मेरे।
रहा न कोई, जिसको मैं हेरूँ, वा जो मुझको हेरे॥
टूट गया अग-जगसे मेरा सभी तरहका सब सम्बन्ध।
बचा न कुछ भी, जिससे मेरा हो कोई ममताका बन्ध॥
मेरे मनकी छोटी-मोटी सभी जानते हैं वे बात।
उनसे मेरा, उनका मुझसे सदा बना रहता संघात॥
वे मुझमें रहते नित, मैं हूँ करती नित्य उन्हींमें वास।
वे ही मेरे जीवन-जीवन, वे ही मेरे श्वासोच्छ्वास॥
कभी न हूँ मैं उनसे न्यारी, वे भी कभी न हैं न्यारे।
नित्य प्रियतमा उनकी मैं, वे केवल नित मेरे प्यारे॥

[६२१]

(राग कालिंगड़ा—ताल कहरवा)

तुम करते रहो रसिकवर! यह रस-पान निरन्तर।
फिर भरते रहो नित्य नव रससे मेरा अन्तर॥

मैं तुम्हें कराऊँ पान मधुरतम रस नित, नटवर !
तुम मुझे पिलाते रहो स्व-रस, रसमय ! जीवनभर ॥
रस-दान-पानमें रहें सदा संलग्न परस्पर।
बस, काल अनन्त न हो विराम, रस-धाम ! पलकभर ॥
नित नयी-नयी लीलाका हो निर्माण मनोहर।
हो कभी न किंचित् तृप्ति, बढ़े नित प्यास अधिकतर ॥
हम करते रहें प्रिया-प्रियतम शुचि रास रसाकर।
हो नित्य उच्छलित परम मधुर रस-सुधा-उदधि वर ॥

[६२२]

(राग प्रभाती—ताल दीपचंदी)

स्याम ! तोय नैननि रखूँ छिपाय।
प्रेम-डोर तैं बाँधि चरन तव, राखूँ उर बिच लाय ॥
देखन दऊँ न काहू कौं मैं कबहुँ परम धन रम्य।
किंतु बन्यौ वह रहै निरंतर मेरे लोचन-गम्य ॥
कबहुँ नायँ मैं देख्यौ-जान्यौ मन तैं काहू अन्य।
सौंपि सहज सर्बस्व समुद, हौं भई सबहि विधि धन्य ॥
देखत-सुनत, खात-पीवत, सब करत जगत-ब्यौहार।
जागत-सोवत सदा एक, बस, सुरति तुम्हारी सार ॥
तन-मन, धन-जन, जीवन-जौबन, ममता-मद-अभिमान।
प्रानि-पदार्थ-परिस्थिति सब कुछ तुम, प्राननि के प्रान ॥
पलक अदरसन सहन होत नहिं, ब्याकुल चित्त अधीर।
निकसन चहत प्रान तब तन तैं, बढ़त भयानक पीर ॥
हौं अति दीन-मलीन, रूप-गुन-हीना अबला नारि।
अवहेला मत करियो कबहूँ, निज दिसि देखि मुरारि !
रहियो सदा बसे प्राननि में, सदा कीजियो सार।
जानि मोय चेरी चरननि की, रखियो नित्य दुलार ॥

[६२३]

(राग गौरी—ताल कहरवा)

रहते घुले-मिले ही तुम नित, कभी न होते विलग, सुजान !
मेरे निकट सदा रहनेमें पाते तुम सुख मधुर महान ॥
मुझको भी कैसा सुख होता परम विलक्षण मधु रस-खान ।
अनुभवकी वह वस्तु अनोखी, कर सकती मैं नहीं बखान ॥
मिली हुई मैं तुमसे ही नित करती सभी देहके काम ।
यथायोग्य जो जहाँ उचित, पर रहती सङ्ग-रहित, निष्काम ॥
नित रस-पान कराती-करती, निरख-निरख विधु-मुख अभिराम ।
रहती परम प्रसन्न, सुखी हर स्थितिमें बन तव रूप ललाम ॥

[६२४]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

नहीं चाहती तुमसे कुछ भी, नहीं तनिक सुख-आशा ।
नहीं लोक-परलोक-नाशकी चिन्ता, तनिक दुराशा ॥
कहीं रहो तुम, कहीं रहूँ मैं, पड़ता तनिक न अन्तर ।
तुममें मैं, तुम मुझमें, रहती यह अनुभूति निरन्तर ॥
पर यदि तुम चाहो न इसे तो मुझको दूर हटाओ ।
कभी न आने दो, फिर चाहे रोज-रोज बुलवाओ ॥
मुझे कहीं भी नहीं, जरा भी, कोई भी कुछ मतलब ।
तुम मेरे हो—मेरे हो, बस, अटल अचल निश्चय अब ॥
नहीं छूट सकते तुम प्यारे ! अब मुझसे मनहारी !
सहज स्वभाव बँध गये तुम, यह गाँठ घुल गयी भारी ॥

[६२५]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

देख रही सुन रही सभी, जो सुनने और देखने योग्य ।
पर मैं जुड़ी सदा ही तुमसे, भोक्ता तुम्हीं, तुम्हीं सब भोग्य ॥

मेरा दर्शन, श्रवण हो रहा सभी सहज तुममें संन्यस्त।
मुझे बना माध्यम तुम रखते नित सेवा-लीलामें व्यस्त॥
सुनना, कहना तथा देखना-करना सब चलता अश्रान्त।
पर होने देते न कभी तुम उनसे भ्रान्त तथा आक्रान्त॥
कर तुम रहे विविध लीला सब बना नगण्य मुझे आधार।
नित्य दिव्य बल-कला-शक्ति निजसे करते लीला-विस्तार॥
चरण तुम्हारे पावनमें आ बसी पूर्ण मेरी आसक्ति।
भोग-राग मिट गया, हुई प्राणों की तुममें ही अनुरक्ति॥
नहीं छोड़ने देते ममता मुझे, छोड़ते कभी न आप।
एकमात्र ममतास्पद मेरे तुम्हीं बने रहते बेमाप॥
सब कर्मोंका प्रेरक है अब केवल यह ममता-संबन्ध।
बँधी इसीमें मैं, तुमने भी है, स्वीकार किया यह बन्ध॥
स्वयं बँधे ममतामें, मुझको बाँध किया मायासे मुक्त।
रहे देख यों मुझे, देखता भोगोंको ज्यों विषयासक्त॥

[६२६]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

मिलती अगर सान्त्वना तुमको मेरे दुखसे, हे प्रियतम!
तो लाखों अतिशय दुःखोंसे घिरी रहूँगी मैं हरदम॥
किंचित्-सा भी यदि सुख देता हो तुमको मेरा अपमान।
तो लाखों अपमानोंको मैं मानूँगी प्रभुका बरदान॥
यदि प्यारे! मेरे बियोगमें मिलता तुम्हें कहीं आराम।
कभी नहीं मिलनेका मैं व्रत लूँगी, मेरे प्राणाराम॥
मेरी आर्ति-विपत्ति कदाचित् तुम्हें सुहाती हो यदि श्याम!
तो रक्खूँगी इन्हें पास मैं सपरिवार नित, दे आराम॥
मेरा मरण तुम्हें यदि देता हो किंचित्-सा भी आश्वास।
तो मैं मरण वरण कर लूँगी, निकल जायगा तनसे श्वास॥
सुखी रहो तुम सदा एक बस, यही नित्य मेरे मन चाह।
हर स्थितिमें मैं सुखी रहूँगी, नहीं करूँगी कुछ परवाह॥

[६२७]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

हो चाहे तुम सर्वदोषमय, दोषरहित, गुणमय, गुणहीन।
निर्मल मन अति हो चाहे, हो चाहे मन अत्यन्त मलीन॥
प्यार करो, चाहे ठुकराओ, आदर दो, चाहे दुत्कार।
तुम ही मेरे एक प्राण-धन, तुम ही मेरे प्राणाधार॥
कोटि गुना हो कोई तुमसे बढ़कर सुघड़ रूप-गुण-धाम।
मैं तो नित्य तुम्हारी ही हूँ, नहीं किसी से कुछ भी काम॥
फूट जायँ वे पापिनि आँखें, बहरे हो जायें वे कान।
देखें, सुनें भूलकर भी जो अन्य किसीका रूप, बखान॥
निन्दा करो पेटभर चाहे, मैं नित तुम्हें सराहूँगी।
दारुण दुःख सदा दो तो भी मैं तुमहीको चाहूँगी॥
बदतरसे बदतर हालतमें भी तुमको न उलाहूँगी।
मरकर भी तुमको पाऊँगी, संतत प्रेम निबाहूँगी॥
नहीं कभी उपजेगी मेरे मनमें अन्य किसीकी चाह।
नरकोंकी, दुर्गतिकी कुछ भी मुझे नहीं होगी परवाह॥
एक तुम्हारा ही बस, होगा मुझपर सदा पूर्ण अधिकार।
एक तुम्हीं बस, नित्य रहोगे मेरे परम जीवनाधार॥

[६२८]

(दोहा)

दुतकारो-डाँटो सदा, करो घोर अपमान।
सुख सब छीनो, दुःख दो, मार करो बेभान॥
कभी न निकलेगी जरा मेरे मुखसे आह।
यही कहूँगी बिहँस मैं—'वाह, वाह, प्रिय! वाह'॥
तुमने अपनी वस्तुको बरता मन-अनुसार।
छोड़ा-बिसराया नहीं यह क्या थोड़ा प्यार?
जो मन भाये, सो करो भला-बुरा व्यवहार।
पर मनमें रक्खो सदा, यही करो इकरार॥

[६२९]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

मिलो कभी मत, नहीं खबर लो, कभी न दो सुख-दुख-संवाद।
पूर्णरूपसे भूलो मनसे, मरनेपर भी करो न याद॥
मैं पर तुम्हें नहीं भूलूँगी, ताकूँगी न दूसरी ओर।
न्योछावर हो चुका तुम्हींपर जीवन यह मेरा, चितचोर!
मरण-समय मानस-थलमें रख मस्तक बन्धु! तुम्हारी गोद।
निरख तुम्हें अपलक नेत्रोंसे मर जाऊँगी मैं अति मोद॥
मरनेपर भी सदा रहेगा मेरा तुमसे प्रिय सम्बन्ध।
टूट नहीं सकता वह, जहाँ न होती काम-कलुषकी गन्ध॥

[६३०]

(राग कालिंगड़ा—ताल कहरवा)

हो चाहे तुम सबके स्वामी, हो चाहे सबसे बलवान।
हो चाहे तुम अमित शक्तिधर, हो चाहे तुम खुद भगवान॥
हो चाहे तुम विश्वरूप, हो चाहे तुम ही विश्वाधार।
हो चाहे तुम नित्य अचिन्त्यानन्त गुणोंके पारावार॥
हो चाहे तुम सर्वभूतमय, हो चाहे तुम सर्वातीत।
गाना-सुनना मुझे न आता निर्गुण-सगुण किसीके गीत॥
नहीं जानती मैं महत्त्व कुछ, नहीं जानती हूँ मैं तत्त्व।
कभी जानना भी न चाहती, तुम विशुद्ध कैसे हो सत्त्व॥
मेरे हो, बस मेरे हो, मेरे ही नित्य रहोगे एक।
इतना ही जानना-मानना—यही एक, बस, मेरी टेक॥
इसी तरह मैं भी हूँ केवल एक तुम्हारी वस्तु महान।
देख रही मैं, प्रियतम मेरे चढ़े निरन्तर अन्तर-यान॥
करो-कराओ तुम जो चाहे, सदा-सर्वदा हो निश्शङ्क।
अति प्रसन्न मैं हूँगी हँसता देख तुम्हारा वदन-मयङ्क॥

कुछ भी हो, कैसे भी, मुझे तुम्हारे मनका सब स्वीकार।
मरने-जीने, आने-जानेपर न चाहती मैं अधिकार॥
प्रिय-इच्छा-निर्मित यह मेरी पराधीनता शुचि सुख-धाम।
प्रिय-परवशता बनी रहे यह, नित्य-निरन्तर, आठों याम॥
पृथक् कामनायुक्त न जीवित रहे कभी अब मेरा मन।
ममता कभी न जागे, केवल बने रहो तुम मेरे धन॥
सोच न पाऊँ कभी न कुछ मैं अपने लिये पृथक् घनश्याम!
तुम ही साध्य, साधना तुम ही, तुम ही साधक हो अभिराम॥

[६३१]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

बहुत दूर तुम, बहुत पास तुम, दूर-पास दोनोंसे दूर।
तुममें नित्य बसी मैं, मुझमें तुम सब ओर सदा भरपूर॥
एक-पृथक्का प्रश्न बने तब, जब हो कभी भिन्न अस्तित्व।
एक रहस्यपूर्ण रसमय है नित्य अभिन्न सत्त्व-चित्तत्त्व॥
तब भी अनुभव करते दोनों दोनोंका संयोग-वियोग।
मिलन परम अचिन्त्य सुख देता, अमिलन परम दुःख-संयोग॥
बढ़ती पल-पल मिलनाकाङ्क्षा, जाती नित अनन्तकी ओर।
रस-समुद्र शुचि बहने लगता, सहज छोड़ मर्यादा-छोर॥

[६३२]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

देह-प्राण, मन-बुद्धि, अहं-मम—सभी समर्पणकर मैं आज।
तुमको वरण कर रही केवल, हे वरणीय परम वरराज॥
तुम्हीं सभी कुछ, सब कुछके सब, मैं नित निष्किञ्चन निस्तत्त्व।
सत्-सौन्दर्य दानकर तुमही मुझे सजा लो, हे सर्वस्व॥

****

[६३३]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

नहीं चाहती दुःख मिटाना, नहीं चाहती मैं आराम।
सुखसे सहन कर सकूँ, मुखसे जपती रहूँ तुम्हारा नाम॥
तुम्हें न भूलूँ कभी, सदा सबमें देखूँ लीला अभिराम।
जीवन-मरण, कुशल-अकुशलमें देखूँ तुमको भरे तमाम॥

[६३४]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

तन कौ कन-कन मेरौ होवै तेरे सुख कौ साधन।
प्रतिपल जीवन में होवै, बस, तेरौ सुख-आराधन॥
परम लाभ मेरौ सुख तेरौ, तेरौ सुख अतुलित धन।
तेरे सुख के अमित दुखों में, कटें सभी दुख-बन्धन॥
मो कूँ मिलै व्याधि, पीड़ा, अपमान, नरक, भव-बन्धन।
तो कूँ जदि सुख होय नैकु जो तिन तैं हे जीवनधन!॥
तौ वे व्याधि-जातना सगरी करि अति सुख-संपादन।
देयँ परम आनंद मोय, करि तुच्छ मुक्ति-सुख तेइ छन॥
बुद्धि रमै तेरे सुख में, मन रत नित तुव सुख-चिंतन।
बिसरै अन्य कल्पना, उर में छाय रहै तव सुख-घन॥
प्रियतम-सुख अति मधुर नित्य सर्वत्र दिव्य सुख-पावन।
प्रियतम सुख हो प्रियतम हूँ तैं अधिक सुखद, मन-भावन॥

[६३५]

(राग विहाग—तीन ताल)

देउँ कहा तुम कहँ स्याम सुजान!
तुम ही एकमात्र धन मेरे, सरबस-जीवन-प्रान॥

मन मेरौ इक हुतौ मलिन, मल भर्‍यौ दोष-आगार।
काम-क्रोध-मोह-मद-ममता कौ पूरौ भंडार॥
सोऊ हरि! तुम ने हरि लीन्हौ, बच्यो न कछु मो पास।
तुम ही बस्तु लैनहारे तुम, तुम ही दाता खास॥

[६३६]

(राग कालिंगड़ा—ताल कहरवा)

मेरे तुम, मैं नित्य तुम्हारी, तुम मैं, मैं तुम, सङ्ग-असङ्ग।
पता नहीं कबसे, मैं तुम बन, तुम मैं बने कर रहे रङ्ग॥
होता जब बियोग, जब उठती तीव्र मिलन-आकाङ्क्षा जाग।
पल-अमिलन होता असह्य, तब लगती हृदय दहकने आग॥
चलती मैं रस-सरि उन्मादिनि विह्वल-विकल तुम्हारी ओर।
चलते उमड़ मिलाने निजमें तुम भी रस-समुद्र तज छोर॥
लीला-रस-आस्वादन-हित तुम-मैं बनकर वियोग-संयोग।
धर अनेक रस-रूप रमण-रमणी करते नव-नव सम्भोग॥
किंतु मैं न रमणी, न रमण तुम, एक परम चिन्मय रस-तत्व।
आश्रय-विषयरूप हो सुमधुर शोभन सदा शुद्धतम सत्व॥

[६३७]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

करना तुम मत नाश कभी यह मेरा प्यारा मानस-रोग।
बड़ा मजा आता है इसमें, यद्यपि तनका सदा वियोग॥
हरा रहे यह घाव हृदयका, रहे टीसका नित संयोग।
मधुर तुम्हारी स्मृतिसे बढ़कर सुखद न कोई-सा सम्भोग॥

[६३८]

(राग भैरवी—तीन ताल)

खूब जानती हूँ मैं, मुझमें सुन्दरताका कहीं न लेश।
अङ्ग-अङ्गमें है कुरूपता भरी, सत्य यह तथ्य विशेष॥

यह भी खूब जानती हूँ मैं, नहीं कहीं भी सद्गुण एक।
जीवन दोषपूर्ण है सारा, छाया सभी ओर अविवेक॥
यह भी सत्य तथ्य है, मुझमें नहीं तनिक भी सच्चा प्रेम।
निज सुख-काम-वृत्ति नित रहती, सदा चाहती योग-क्षेम॥
यह भी सत्य, कहीं भी मुझमें नहीं दिखायी देता त्याग।
मैं जिसको 'विराग' कहती, है उसके भी अन्तर्हित राग॥
इतनेपर भी मुझसे प्रियतम क्यों करते हैं इतना प्यार।
इसमें एकमात्र कारण है—उनका सहज स्वभाव उदार॥
जो सब तरह अकिंचन होता, समझा जाता तुच्छ नगण्य।
अपनाकर, दे प्यार तुरत, उसको वे कर देते हैं धन्य॥
मैं अति मलिन, अयोग्य सभी विधि, अन्याश्रयसे नित्य विहीन।
सद्गुण-शुचि-सौन्दर्य-रहित, अति अरस, अकिंचन, सब विधि दीन॥
एक बात पर यही हृदयमें रहती, कभी न टलती भूल।
एकमात्र मैं सदा श्यामकी, श्याम सदा मेरे अनुकूल॥
इसी हेतु वे निज स्वभाववश, मुझपर रीझ रहे भगवान।
रीझ-रीति उनकी यह नित्य निराली करती प्रेम-विधान॥

[६३९]

(राग बहार—ताल कहरवा)

अतुल रूप-सौन्दर्य तुम्हारा, अनुपम सर्वविलक्षण रूप।
अतुल परम ऐश्वर्यरूप तुम, तत्त्व-महत्त्व असीम अनूप॥
नहीं प्राप्त करना कुछ तुमको, है कर्त्तव्य नहीं कुछ शेष।
निज महिमामें तृप्त सर्वदा, नहीं कहीं अतृप्ति लवलेश॥
जीव मात्रके तुम्हीं आत्मा, करते सब तुममें हैं प्रीति।
तुम्हीं सभीके एकमात्र हो, आश्रय, यही सनातन नीति॥
फिर तुम मुझ नगण्य दीनामें, क्यों इतने रहते आसक्त?
क्यों निज महिमा भूल, बन रहे मुझ मलिनाके इतने भक्त?
दोषमयी मैं नित्य, नहीं कोई भी, मुझमें गुण निर्दोष।
क्यों तुम रीझ रहे हो मुझपर, देख न पाते कुछ भी दोष?

[६४०]

(राग तोड़ी—ताल त्रिताल)

मैं अति दीन, मलिन मति, अन्तरमें अत्यन्त भरे कुविचार।
सहज कुरूपा बाहर-भीतर, नित्य दरिद्रा सभी प्रकार॥
नहीं रूप-गुण, वस्तु-भाव मन योग्य तुम्हारे किसी प्रकार।
पावन पद-रज-स्पर्श मात्रकी नहीं योग्यता, भरे बिकार॥
पता नहीं तुम मुझपर कैसे रीझे, कैसे करते प्रीति।
भोलापन सर्वथा तुम्हारा, अथवा परम अनोखी रीति॥
मैं लज्जित होती-सकुचाती जब तुम निज गुण-गौरव भूल।
कहते मुझे प्रियतमे, प्राणेश्वरी तोड़ मर्यादा-कूल॥
हृदय लगाते, करते फिर लीला, विचित्र सर्वदा अनूप।
पाते अति आनन्द, अचिन्त्यानन्त स्वयं आनन्द-स्वरूप॥
देते मुझे असीम परम सुख निज स्वभाववश सहज उदार।
स्वार्थभरी डूबी रहती है बढ़ती सुख-लालसा अपार॥

[६४१]

(राग तैलंग—तीन ताल)

नहीं शक्ति, सामर्थ्य न कुछ भी, नहीं योग्यता, नहीं पदार्थ।
नहीं भाव कुछ, त्याग न कुछ भी, भरा मन्द जीवनमें स्वार्थ॥
तन-मन मलिन, न शोभा-सुषमा, नहीं कहीं सुन्दरता-लेश।
कैसे क्या देती तुमको मैं! दीन हीन अति, तुम सर्वेश॥
सेवाका उपकरण न कुछ भी, नहीं हृदयमें कुछ भी चाव।
तो भी मान रहे तुम सेवा, परम विचित्र तुम्हारा भाव॥
गुण-वर्णन करते न अघाते, देते बार-बार सम्मान।
बारंबार ऋणी बनते तुम, षड्-ऐश्वर्य-पूर्ण भगवान॥
मेरी सेवासे ही चलते मानो सभी तुम्हारे काम।
मुझसे सेवा लिये बिना तुम पाते नहीं पलक विश्राम॥

मेरे लिये तुम्हारा ऐसा है कुछ शुचि अचिन्त्य अनुराग।
देख रहे इससे तुम मेरी हर कृतिमें सेवा बड़भाग!
देख तुम्हारा यह पवित्र अप्रतिम अनोखा शील अमान।
नहीं समझ पाती मैं कैसे तुम्हें कराऊँ अपना ज्ञान॥
कहाँ नगण्य, नित्य सेवासे विरहित, मैं अति तुच्छ, गँवार।
कहाँ विलक्षण तुम 'महान्' का मेरे प्रति यह अतुलित प्यार॥
छिपी इसीसे रहती मैं नित, रहती सदा गुप्त-आवास।
निजको, अपनी हर चेष्टाको, सदा छिपाती कर आयास॥
पर यदि कभी तुम्हारे सम्मुख, मैं आ पड़ती प्रेमागार!
करने लगते कैसे क्या तुम, मानो दबे विपुल ऋण-भार॥
गड़ जाती मैं तब लज्जासे भर जाता उरमें संकोच।
देख तुम्हारी अति उदारता, निजकी देख परिस्थिति पोच॥
तब तुम हे अनन्त! कैसे क्या, देते फूँक कान (हृदय) में मन्त्र।
उन्मादिनि तुरंत हो जाती, अस्वतन्त्र बन जाती यन्त्र॥

[६४२]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

नहीं एक भी सद्गुण मुझमें, नहीं प्रेमका किंचित् लेश।
भरा हृदय अगणित दोषोंसे, रस, विरहित, कलुषित सविशेष॥
लेती रही सदा सुख तुमसे मैं नित नव-नव अतुल अपार।
दे न सकी मैं कभी तुम्हें सुख-कण क्षणभर, हे परमोदार!
रोती रही सदा इस दुखसे, रोती नित्य रहूँगी, श्याम!
कभी देख तव मलिन चन्द्र-मुख बरबस लूँगी आँसू थाम॥
सुखी देखना तुम्हें चाहती, नित्य प्रफुल्लित मुख सुख-सार।
इसीलिये दुखसे रोती भी, करती मैं सब सुख स्वीकार॥

[६४३]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

मैं अपराधिनि, अघी, कलङ्किनि हूँ निश्चय ही सभी प्रकार।
छोड़ तुम्हारे पद-तलको पल-भर न मुझे जाना स्वीकार॥
दुत्कारो, डाँटो, ठुकराओ, भय दो, करो असद्-व्यवहार।
पड़ी रहूँगी, नहीं हटूँगी, तिलभर छोड़ चरण-तल-द्वार॥
अति रूखा बर्ताव करो या दो मनमाना मनका प्यार।
पर मत कहना कभी चले जानेको मुझसे तुम, सरकार!
नहीं लाज-भय-सकुच-सहज-भ्रम, नहीं लोक-परलोक-विचार।
नहीं तनिक स्तुति-निन्दाका डर, कहे क्यों न कुछ भी संसार॥
मधुर-भयानक सब स्थितियोंका सदा करूँगी मैं सत्कार।
चरण-धूलि मैं चरणोंमें ही लगी रहूँगी नित अनिवार॥

[६४४]

(राग विलासखानी—तीन ताल)

'काया' मैं न 'जीव' तुम हो नहिं, 'दाता' तुम न, नहीं मैं 'दीन'।
'प्रकृति' नहीं मैं 'पुरुष' नहीं तुम; 'माया' मैं न, 'ब्रह्म' तुम भी न॥
नहीं 'नायिका' हूँ मैं, तुम भी नहिं यथार्थतः हो 'नायक'।
नहीं स्वरूपतः 'परकीया' मैं; नहीं 'जार' तुम सुखदायक॥
नहीं 'स्वकीया' पतिव्रता मैं; नहीं 'विवाहित' तुम स्वामी।
मैं न तुम्हारी 'साध्य', नहीं तुम मेरे 'पथके अनुगामी'॥
किंतु सभी ये सत्य, चिरंतन, शुचि, मधु असंबंध-संबन्ध।
जहँ न मुक्ति की कहीं कामना, जहाँ न कोई किंचित् बन्ध॥
अनुपम अतुल अचिंत्य अनिर्वचनीय तुम्हारा-मेरा सत्त्व।
अनुभव करते हैं हम, पर न बता सकते रहस्यमय तत्त्व॥
अखिल भेद-विरहित हम हैं नित, निज-स्वरूप-रस-रसधि-निमग्न।
नित वियोग-संयोग-रूपमय, नित्य वियुक्त नित्य संलग्न॥

वृन्दारन्य, ललित लीला-स्थल, कालिंदी-जल कलित तरंग।
बृच्छ-बल्लरी वनज विहंगम, धातु विचित्र विविध रुचि-रंग॥
मलय-पवन, उद्दीपन-साधन, राका-रश्मि-सुधा अभिराम।
मुरली मधुर सुधा-रस-सरिता, परिकर-मंजरि सखी ललाम॥
नित्य नवल कमनीय केलि रस, मधुर परम नव नित्य विहार।
निज स्वरूपगत सभी दिव्यतम लीला-रस-अभिव्यक्ति अपार॥
इतनेपर भी हो तुम मेरे प्रियतम परम प्रान-आराध्य।
नित्य मिले रहने पर भी, तुम नित्य लक्ष्य, नित मेरे साध्य॥
पाना तुम्हें तुम्हीं से पाना, नित्य पा रही तुम्हें अनंत।
पाने की, इस परम साधना का न कभी आयेगा अंत॥

[६४५]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

कैसी दिव्य तुम्हारी ममता, कैसा दिव्य तुम्हारा प्रेम।
तनिक उदास देख मुझको, तुम गल जाते ज्यों तापित हेम॥
सब भगवत्ता भूल, तुरत प्रिय! करने लगते करुण विलाप।
मुझ-सी अति नगण्यके कारण कर उठते तुम सहज प्रलाप॥
कैसा मधुर, अनन्त स्नेह-सागर लहराता उर अन्तर।
मैं हो गयी धन्य अब पाकर उसका एक पुण्य सीकर॥
कैसे अपना भाग्य बखानूँ, कैसे हृदय दिखाऊँ खोल।
पाया मैंने दुर्लभ अतिशय प्रेम तुम्हारा यह अनमोल॥
रहे सुरक्षित मेरा उरमें, सुखद गोदमें प्यारा स्थान।
करती रहूँ सदा अनुभव मैं प्रियतमका प्रिय सङ्ग महान॥

[६४६]

(राग आसावरी—तीन ताल)

अनोखौ प्रेम तुम्हारौ स्याम!
बिनु कारन तुम नेह बढ़ायौ, सहज सुभाव बिबस अभिराम॥

स्वारथ भर्‌यौ हुतौ हिय मेरौ, छूँछौ सदा प्रेम के नाम।
काम-कलुष-पूरित, नित कारौ, तामें कियौ आय विश्राम॥
नहीं प्रवेस प्रेम-चटसारै, नहीं ककहरा सौ कछु काम।
दिब्य प्रीति-रस मोय पियाऔ, अपने आप आय रस-धाम॥
छकी, प्रेम-रस छलक्यौ पावन, मधुर भयौ जीवन सुख-धाम।
तुम्हरे सुरभित गुन-सुमननि के तुम ही नित्य सुभग आराम॥

[६४७]

(राग खमाच—तीन ताल)

पियारे! तुम ही तुम्हरे जोग।
तुम्हरे पटतर कहूँ न कोऊ सुर-नर, सुख-संभोग॥
राखौ मोहि जहाँ मन भावै, सुरग-नरक-नरलोक।
पै तुम बसौ दृगंचल मेरे, मन-भावन हर-सोक॥
तुम्हरे मधुर-मधुर स्मृति-सुख पै कोटि ब्रह्म-सुख वारौं।
जोग-सिद्धि केहि लेखे माहीं, वाहि बिघ्न गनि टारौं॥
लागे रहौ सदा हिय सौं पिय! सब बिबिधान-बिहीन।
पूरन प्रान पियारे! तुम महँ रहै सदा लय-लीन॥

[६४८]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

क्षणभर मुझे उदास देख जो कभी प्राणप्रिय! पाते।
सारा मोद भूल तुम, प्यारे! अति व्याकुल हो जाते॥
कभी किसी कारण जब मेरे नेत्र-कोण भर आते।
तब तुम अति विषण्ण हो, प्यारे! आँसू अमित बहाते॥
कभी म्लानताकी छाया यदि मेरे मुखपर आती।
लगती देख धड़कने, प्रिय! तत्काल तुम्हारी छाती॥
मेरे मुख मुसकान देख तुमको अतिशय सुख होता।
हो आनन्द-मग्न अति, मन तब सारी सुध-बुध खोता॥

मुझको सुखी देखने-करनेको ही प्रतिपल, प्यारे !
होते पुण्य-विचार मधुर तव, कार्य त्यागमय सारे ॥
मेरा सुख-दुख तनिक तुम्हें अतिशय है सुख-दुख देता।
मेरा मन नित इन पावन भावोंसे अति सुख लेता ॥
दिया अमित, दे रहे अपरिमित, देते नित्य रहोगे।
सहे सदा अपमान-अवज्ञा, आगे सदा सहोगे ॥
किया न प्यार कभी सच्चा, मैंने निज सुख ही देखा।
निज सुख-हेतु रुलाया, कभी हँसाया किया न लेखा ॥
दे न सकी मैं तुम्हें कभी कुछ सुख-सामग्री कोई।
निज मन-इन्द्रिय-तृप्ति हेतु मैंने सब आयुस् खोई ॥
बुरा मानना, दोष देखना, पर तुमने नहिं जाना।
मेरे स्वार्थ-सने कामोंको सदा प्रेममय माना ॥
मत्सुखकारक विमल प्रेमको मैंने नित ठुकराया !
तब भी प्रेम तुम्हारा मैंने नित बढ़ता ही पाया ॥
तुम-से तुम ही हो, अग-जगमें तुलना नहीं तुम्हारी।
मेरा अति सौभाग्य यही, जो मान रहे तुम प्यारी ॥

[६४९]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

कभी मत मिलो, पूछो न कभी तुम मुझसे कुछ मनकी बात।
भूलो, भूले रहो सदा ही अति नगण्य मुझको दिन-रात ॥
पर मैं कभी न भूलूँ तुमको, करती रहूँ याद निर्मल।
नित्य देखती रहूँ तुम्हारा मैं शुचि सुन्दर वदन-कमल ॥
खाली करूँ हृदयको सबसे, खूब सजाऊँ तव अनुकूल।
सदा बसाये रखूँ तुम्हें उसमें, तुम चाहे हो प्रतिकूल ॥
बढ़ता रहे उत्तरोत्तर मेरा यह केवल एकाङ्गी प्रेम।
यही बने सर्वत्र सदा ही मेरा वाञ्छित योग-क्षेम ॥

[६५०]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

प्रियतम ! मीठी नित याद तुम्हारी आती।
मैं पलभर तुमको कभी बिसार न पाती॥
जगनेमें-सपनेमें तुम, मेरे प्यारे।
हो होते कभी न मुझसे पलभर न्यारे॥
दे दर्शन मुझको सदा परम सुख देते।
कर मीठी रसकी बातें, दुख हर लेते॥
देते रहते दिन-रात स्पर्श-सुख भारी।
निज हृदय खोल, कह देते मनकी सारी॥
यों मिलनेपर भी मिलनेकी अभिलाषा।
रहती बढ़ती ही नित्य मिलनकी आशा॥
नित मिलनेपर भी पल न दूर स्मृति होती।
वह सदा तुम्हींमें प्यारे ! जगती-सोती॥

[६५१]

(राग भीमपलासी—तीन ताल)

कभी मत मिलें, मिले रहें नित, पर स्मृति रहती नित्य नवीन।
स्मृतिकी परम मधुरता पल-पल बढ़ती होती कभी न छीन॥
स्मृति ही तन-धन, स्मृति ही जीवन, स्मृतिमें ही मन रहता लीन।
प्राणरूप ये, स्मृति-जल-धारासे ही बचे हुए हैं मीन॥

[६५२]

(राग भैरवी—तीन ताल)

कितने तुम अनुपम, अति सुन्दर, मधुर, मनोहर हो प्यारे।
सुधा अनन्त पूर्ण, मधुमय तुम सबके जीवन-धन प्यारे॥
तुम्हीं विश्वमय, सभी विश्वके जड-चेतन तुममें, प्यारे !
एक-एक अणु अखिल जगत्का सना तुम्हींसे है प्यारे॥

अतुल, असीम-अपार तुम्हारा है ऐश्वर्य परम प्यारे !
देव-दनुज-मुनि-मनुज चरण-रज सदा चाहते हैं प्यारे ॥
पर न उन्हें देते कदापि तुम, हारे सभी नित्य प्यारे !
सर्व-रहित सर्वेश्वर वह तुम त्याग महत्ता सब प्यारे ॥
जाग रहे हो नित्य निभृत मम हृदय-कुञ्जमें हे प्यारे !
हो अधीर, अति विरहाकुल प्राणोंसे टेर रहे प्यारे ॥
फँसी सदा मैं विविध कर्म-भोगों, जंजालोंमें प्यारे !
फिर भी मेरा संग चाहते, अतुल प्रीतिवश तुम प्यारे ॥
मुझ दुर्गुणी, कुरूपापर हो कैसे रीझ गये प्यारे !
क्या सुख तुम पाते मुझसे, मैं समझ न पाती कुछ प्यारे ॥
अपने मनकी तुम्हीं जानते, नहीं बताते पर प्यारे !
केवल विवश हुए रहते हो, तुलना नहीं, कहीं प्यारे ॥

[६५३]

(राग पीलू—तीन ताल)

तुम्हारी स्मृति ही है आधार। वही इस जीवनका सुख-सार ॥
नहीं पलभर विस्मृतिको स्थान। नहीं है कभी अन्यका भान ॥
देह, मन, मति, इन्द्रिय, सब अङ्ग। रँगे हैं सभी उसीके रङ्ग ॥
रहे यह देह कहींपर कभी। सने हैं मधुर स्मृतिसे सभी ॥
तुम्हीं, बस, केवल प्राणाराम। तुम्हीं मेरे जीवन-विश्राम ॥
तुम्हींसे एकमात्र सम्बन्ध। कट गये सभी दूसरे बन्ध ॥
हुआ जीवन सुखमय, स्वच्छन्द। प्राप्तकर तुम्हें, चिन्मयानन्द ॥

[६५४]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

चाहता मन है नित संयोग। इसीसे लगता दुखद वियोग ॥
नहीं पर तनिक स्व-सुखकी चाह। इसीसे मुझे न कुछ परवाह ॥
मिलन हो या हो नित्य विछोह। किसी भी स्थितिमें रहा न मोह ॥

****

रही, बस, एक लालसा जाग। बढ़े नित नव तुममें अनुराग॥
दुःख गुरु हो या सुख सुविशाल। तुम्हारे सुखसे रहूँ निहाल॥
रहो तुम सदा परम सुखरूप। मुझे सम है छाया औ धूप॥
नरकका डर न स्वर्गकी चाह। न जाती कभी मुक्तिकी राह॥
प्रेम-बन्धन नित रहे अटूट। भले संकटसे मिले न छूट॥
नहीं प्रतिकूल, न कुछ अनुकूल। तुम्हारा सुख ही सब सुख मूल॥
तुम्हें यदि सुख हो, हे हृदयेश ! । विरह-दुःख देगा दुःख न लेश॥
तुम्हारा वदन प्रफुल्लित देख। दुःखकी नहीं रहेगी रेख॥
करो तुम अपने मनकी, नाथ! छोड़ दो, चाहे रक्खो साथ॥
लगेगा शीतल दारुण दाह। नहीं निकलेगी मुखसे आह॥
एक अनुभवयुत दृढ़ विश्वास। सदा तुम रहते मेरे पास।
दिखायी पड़ो, रहो या गुप्त। कभी होते न पाससे लुप्त॥
छा रही सुखकी मुख-मुसकान। यही, बस मेरे सुखकी खान।
देख तुम रहे सभी सब काल। सुखी मैं हूँ कि नहीं, हर हाल॥

[६५५]

(राग आसावरी—तीन ताल)

बिसारूँ कैसे स्याम सुजान ?
एकमात्र स्मृति ही है आत्मा, स्मृति ही जीवन-प्रान॥
एक मधुर अनन्य स्मृति प्रिय की नित्य अखंड बनी मन।
प्रानि-पदार्थ-परिस्थिति, सब कौ सहजहिं भयौ बिसर्जन॥
नित नव सुंदरता, नव माधुरि, नित नव रूप बिकास।
नित नव प्रीति, नित्य नव गौरव, नित नव रास-बिलास॥
नित नव नेह, भाव नित नूतन, रात-दिवस मन राजत।
नित नव संगम की सुमधुर स्मृति हिय महँ नित्य बिराजत॥

[६५६]

(राग कालिंगड़ा—ताल कहरवा)

मैं भूली थी अपने भ्रमसे, समझे थी तुमको दूर-दूर।
पर तुम तो नित ही रहते थे मेरे समीप मन प्रेम-पूर॥
मैंने समझा—तुमने मुझको है भुला दिया, परवाह छोड़।
पर तुम तो मुझे झाँकते नित, दूसरी ओर मुँहको न मोड़॥
मैंने सोचा—तुम मनसे नहीं चाहते मुझे, न करते प्यार।
अब समझी, तुम तो प्रेमभरा करते नित ही मेरा दुलार॥
मैंने देखा, तुम करते हो पद-पदपर मेरा तिरस्कार।
पर जाना अब, उसमें था पावन, मधुर, निजत्व-भरा सत्कार॥
मैं ही तो कर संदेह, तुम्हें थी मान रही अपने प्रतिकूल।
पर मेरे प्रभु! तुम तो हो मेरे प्रतिपल ही अति सानुकूल॥
टूटा भ्रम, अब मिट गयी ग्लानि, जाना स्वभाव, शुचि अन्तर्मन।
लहराने लगी हृदयमें अति आनन्द-ऊर्मि, रोमाञ्चित तन॥
प्यारे प्रभु! हो तुम ही केवल निज सदृश मनोहर प्रेमरूप।
हो नहीं देखते दोष कभी जनका, मेरे प्रियतम अनूप॥

[६५७]

(राग नालगुंजी—तीन ताल)

मैं थी पहले मलिना, दीना हीना अब भी मैं हूँ वैसी।
बाहर-भीतर मेरी कुरूपता छायी जैसी की तैसी॥
मुझमें सुशीलता, सुन्दरता, सद्गुणता, शुचिता कब कैसी॥
तुम जान रहे हो अन्तरकी, अन्तर्यामी! मैं हूँ जैसी॥
मैं यही चाहती रहती हूँ तुमसे न मिलूँ बस, भूल कभी।
दुख देनेवाली है मेरी बाह्याभ्यन्तरकी क्रिया सभी॥
तुम सुन्दर सहज सुहृद हो संतत सदय हृदय सब काल अभी।
सद्गुण पूरित दृग देख रहे सर्वत्र दिव्य गुणराशि तभी॥

तुम सहज प्रेममय हो स्वभाव-वश करते हो बस, प्रेम सदा।
तुम मेरी त्रुटियोंको—दोषोंको अतः दुःख पाते न कदा॥
है नहीं दीखता तुम्हें कभी जो है मुझपर अघभार लदा।
देते-देते थकते न कभी हो, दोष दीखते हैं न तदा॥
तुम नहीं मानते हो, मैं हूँ निरुपाय, करूँ क्या मैं अबला ?
तुम जो चाहो सो करो, तुम्हारी अमित शक्ति-मति है प्रबला॥
पर मेरी है विनीत विनती यह एक इसे कर दो सफला।
मैं रहूँ सदा गुण-मान-शून्य कोई निजकी जागे न कला॥
तुम करो-कराओ जो चाहो, मैं बनी रहूँ पुतली करकी।
जीना-मरना, हँसना-रोना, सब ही हो लीला नटवरकी॥
जागे न कदापि 'अहं' मुझमें सुधि हो न भयंकर-सुन्दरकी।
मैं रहूँ नाचती इच्छासे अपने जीवन-धन प्रियवरकी॥

[६५८]

(राग पूर्वी—तीन ताल)

प्रेमाधीन शिरोमणि हो तुम प्रेमीके कर बिक जाते।
प्रेम विशुद्ध देख भगवत्ताको भी सहज बिसर जाते॥
तुम रस हो, रसमूल, रसिक तुम परम रसोंके हो ज्ञाता।
देख दिव्य रस, तुम्हें सहज ही निज रस-रूप भूल जाता॥
परम गुणाकर हो, गुणज्ञ तुम, तुम सद्गुण वितरण करते।
देख दिव्य सद्गुण, अपनेको उसपर न्योछावर करते॥
जो सब छोड़ परम श्रद्धासे तुम्हें लक्ष्यकर चल पड़ता।
तुरत सामने आ जाते तुम, नहीं उसे चलना पड़ता॥
मैं तो नित्य प्रेम-कण-विरहित हूँ सर्वथा शुष्क रसहीन।
सद्गुण एक नहीं है मुझमें दोष पूर्ण हूँ, दुर्गुण-पीन॥
पीठ दिये ही हूँ मैं रहती, सदा विमुख ही हूँ चलती।
इतनेपर भी कभी न मुझको अपनी नीच दशा खलती॥

फिर तुम क्यों रीझे हो मुझपर ? क्यों देते हो इतना प्यार ?
क्यों पीछे-पीछे फिरते हो ? क्यों करते ममता-विस्तार ?
जाना, तुम अति ही भोले हो, या तुम हो अत्यन्त उदार !
निज स्वभाववश दोषीमें भी देख रहे गुण नित्य अपार ॥
बिना हेतु नित देते रहते हो तुम इतना प्रेम ममत्व।
यही जानकर मुझ अधमामें जाग उठा है यह विषमत्व ॥
कर आरोप उसीका तुमपर देख रही तुममें वैषम्य।
पक्षपातवश करते मुझसे प्रेम, न जो सुधियोंको क्षम्य ॥
इसीलिये मुझ गर्वीलीने तुमको मान लिया अपना।
तुमपर नित अधिकार मानती, जागूँ या देखूँ सपना ॥
तुम ही मेरे प्राणनाथ हो, हो सर्वस्व, एक आधार।
अपने ही गुणसे जो मुझको सदा दे रहे इतना प्यार ॥

[६५९]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

दूर करो, ठुकराओ चाहे, प्यारे ! घरसे निकलवाओ।
खूब सताओ, पर मुझको मनसे न कभी तुम बिसराओ ॥
सदा चाहती मिले रहो तुम, पर जो तुम्हें यह चाह नहीं।
कभी मिलो मत, दूर रहो, मुझको इसकी परवाह नहीं ॥
सुखसे सदा रहो तुम प्यारे ! इसके सिवा कुछ चाह नहीं।
दुख देते जाओ चुपके-से, रखने भी दो गवाह नहीं ॥
चाहे जैसे रखो मुझे, पर मनसे कभी न भूल जाओ ॥ खूब० ॥
नहीं चाहती सुखमें हिस्सा, नहीं चाहती धनमें भाग।
नहीं चाहती राय सुनो तुम, नहीं चाहती मैं अनुराग ॥
नहीं चाहती आदर दो तुम, नहीं चाहती प्रेम-पराग।
यही चाहती भूलो मत, तुम सुखसे रहो, बस, यही सुहाग ॥
अपनी चीजको चाहे जैसे बरतो, कभी मत सकुचाओ ॥ खूब० ॥

यही सुहाग बड़ा भारी है, जो तुम नहीं भुलाते हो।
सता-सताकर निर्दयतासे मुझको सदा रुलाते हो॥
दुःखोंके संदेश भेजकर बरबस पास बुलाते हो।
ठुकराते, गिर पड़ती, तब तुम भुजभर स्वयं उठाते हो॥
इसी तरह मेरी सुख-साधोंको पूरी करते जाओ॥ खूब०॥
रुची तुम्हारी मेरी रुचि हो, चाह तुम्हारी मेरी चाह।
हो चाहे प्रतिकूल सर्वथा, इसकी मुझे न कुछ परवाह॥
चाहे दम घुट जाये, मुखसे कभी नहीं निकलेगी आह।
तुम ही प्राण प्राण हो मेरे, तुम ही सब चाहोंकी चाह॥
मेरा भाव नहीं बदलेगा, भले बदलते तुम जाओ॥ खूब०॥

[६६०]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

चाह-कुचाह मिट गयी सारी, रही एक यह 'प्यारी चाह'।
मधुर तुम्हारे स्मृति-सागरमें डूबी रहूँ, न पाऊँ थाह॥
मेरे सब कुछ एक तुम्हीं हो, सारी ममताके आधार।
मैं भी एक तुम्हारी ही हूँ, ममता मुझपर नित्य अपार॥
तुम्हें छोड़कर नहीं दीखता कभी कहीं भी कोई और।
एक तुम्हीं करते विहार नित मधुर मनोहर सब ही ठौर॥
नहीं दीखता मुझमें मेरा कुछ भी भला-बुरा गुण-दोष!
नित्य कर रहे तुम वे लीला, जिनसे तुम पाते परितोष॥
क्या मैं कहूँ, करूँ कैसे कुछ और ? बताओ प्रियतम श्याम।
जब कि तुम्हीं बाहर-भीतर कर रहे नित्य लीला अभिराम॥
करते रहो सदा तुम लीला यों ही मनमानी स्वच्छन्द।
अङ्ग-अङ्ग, मन-मति-आत्मा, सब देते रहें तुम्हें आनन्द॥

═══ ★ ═══

'प्रेम-तत्त्व एवं गोपी-प्रेमका महत्त्व'

[६६१]

(राग वागेश्री—ताल कहरवा)

प्रेम-राज्यके सभी विलक्षण होते हैं शुभ भोग-विराग।
नहीं समझमें आ सकते वे, जागे बिना शुद्ध अनुराग॥
होते सभी नाम लौकिक कामोंके भी, वैसे ही रूप।
होते परम पवित्र किंतु लोकोत्तर सभी विशेष अनूप॥
हर्ष, शोक, आसक्ति, वासना, भय, संकोच, विकलता, काम।
बन्धन, मान, बिलास, रास, सहवास आदि सब होते नाम॥
करना मान, रूठना रोना, करना तिरस्कार-अपमान।
करना तंग, सताना, चुगली, चाटुकारिता कर्म महान॥
मन विकार होता न तनिक पर, नीयतमें न कभी कुछ दोष।
दक्षिण-बाम—सभी ये होते लीलाके शुचि रस निर्दोष॥
त्याग-पूर्ण निज-सुख-वाञ्छा-विरहित यह प्रेम-राज्य सुविशाल।
पर इसमें न कभी जा पाते प्रकृतिजनित विकार क्षण-काल॥
अपनेमें अपनेसे अपने ही होते सब भाव-विशेष।
भौतिक समल विकारोंका—भावोंका रहता कहीं न लेश॥
सभी दिव्य, चिन्मय, भगवन्मय, सभी विकार-रहित पर-भाव।
प्रेमी प्रियतम बने स्वयं प्रभु लीलारत रहते अति चाव॥

[६६२]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

'कर्म-राज्य' से उच्च स्तरपर सुन्दर 'भाव-राज्य' जगमग।
'तत्वज्ञान' उच्चतर उससे, कष्टसाध्य अति 'राज्य' सुभग॥
परम-'भाव' का है उससे भी परे 'राज्य' अतिशय उज्ज्वल।
होती जहाँ 'प्रिया-प्रियतमकी लीला' मधुर, अचिन्त्य, अमल॥
जिसकी पद-नख-आभा अक्षर ब्रह्म, ब्रह्मका जो आधार।
उसी परात्परकी लीलाका संतत होता जहाँ विहार॥
सदा उछलता रहता वह लीलाका शान्त मधुर सागर।
विविध भाव-लहरें मनहर बन, स्वयं खेलते नट-नागर॥
छिपे ज्ञान-विज्ञान देखते जहाँ मधुर लीला-रस-भङ्ग।
होते परम प्रफुल्लित पाकर अपने दुर्लभ फलका सङ्ग॥
प्रकट नहीं होते, करते वे नहीं कभी लीला-रस-भङ्ग।
उठती वहाँ अलौकिक लीलाकी नित मधुर अनन्त तरङ्ग॥
रस वह सभी रसोंका उद्गम, नित्य परम रस मधुर महान।
महाभाव-परिनिष्ठित नित्य-निरतिशय रसमय श्रीभगवान॥
देव-दनुज-किंनर-ऋषि-मुनि, शुचि तापस, सिद्ध परम पावन।
ललचाते रहते, मनसे भी देख न पाते मन-भावन॥
कर्म-कुशल कर्मी, समाधि-रत योगी, छिन्न-ग्रन्थि ज्ञानी।
नहीं कल्पना भी कर पाते, समझ नहीं पाते मानी॥
जो इस 'भाव-राज्य' के वासी, रस-लीला रत परम उदार।
सखी-सहचरी, दिव्य मञ्जरी, रस-सेवा-विग्रह साकार॥
उनकी चरण-धूलिकी अति श्रद्धासे जो सेवा करता।
तर्कशून्य जो सरस हृदयको उज्ज्वल भावोंसे भरता॥
रहता तुच्छ घृणित भोगोंसे तथा मुक्तिसे सदा विरक्त।
जिसका हृदय निरन्तर रहता राधा-माधव-चरणासक्त॥
'भाव-राज्य'के महाजनोंका वही कृपा-कण पा सकता।
वही चरम इस भाव-राज्यकी सीमामें जन जा सकता॥

[६६३]

(राग पीलू—तीन ताल)

सबहि सौं पृथक प्रेमपथ पावन।

सूधौ, सरल, सरस, रस-बरसी स्यामहि सपदि मिलावन॥
बिषय-जगत सौं होय आँधरौ, प्रियतम तन जो धावन।
प्रियतम-सुख सरबस, जीवन निज, सुख-सुधि सहज भुलावन॥
बानी-मन तें परै महारस महाभाव मन-भावन।
प्रेम-सिंधु सोई सहसा रसराज रसिक प्रगटावन॥

[६६४]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

प्रेमका महत्त्व

प्रेम हृदय की बस्तु है, परम गुह्य अनमोल।
कथनी में आवै नहीं, सकै न कोऊ तोल॥ १॥
रसमय, आनँदमय, बिमल, दुरलभ यह उन्माद।
अकथनीय, पै अति मधुर, गूँगेकौ-सौ स्वाद॥ २॥
तीन लोक की संपदा, इंद्रभवन कौ राज!
प्रेमी तृन-सम लखत तेहि, तजत प्रेम के काज॥ ३॥
दुरलभ झाँकी प्रेम की, जिन झाँकी ते धन्य।
उपजत-बिनसत जगत में जड़ पसु सम सब अन्य॥ ४॥
धरा-धाम, धन-धान्य, धी-धीरज, धरम-बिबेक।
प्रेम-राज्य सब ही छुटे, रही एक ही टेक॥ ५॥
प्रेम सदा बढ़िबौ करै, ज्यौं ससि-कला सुबेष।
पै पूनौ यामें नहीं, तातें कबहुँ न सेष॥ ६॥
एक नेम यह प्रेम कौ, नेम सबै छुटि जाहिं।
पै जो छाँड़ै जानि कै, तहाँ प्रेम कछु नाहिं॥ ७॥

प्रेम अवसि पागल करै, हरै सकल कुलकान।
बेद-धरम मेटै सकल, हिय प्रगटै भगवान॥ ८॥
जग में चार प्रसिद्ध हैं सेब्य परम पुरुषार्थ।
पंचम हरि कौ प्रेम है, परम मधुर परमार्थ॥ ९॥
राग-सोक, भय-कामना, मान-मोह, मद-क्रोध।
प्रेम-राज्य प्रबिसैं नहीं, अरि आठौं निर्बोध॥ १०॥
प्रेमदेव के दरस तैं, सब बंधन कटि जायँ।
ममता-मान सबै नसै, उर अति आनँद छाय॥ ११॥

प्रेमके साधन

प्रेम-पंथ अति ही बिकट, देखत भाजें लोग।
कोउक बिरले चलि सकैं, जिन त्यागे सब भोग॥ १२॥
भोग-बासना सब तजै, तजै मान-सनमान।
प्रेम-पंथ पर जो चलै, सहै हृदय पर बान॥ १३॥
प्रेम-पंथ सोइ चलि सकैं, जिन छाँड़ी सब चाह।
जर्‌यौ करैं बिरहाग्नि में, मुख नहिं निकसै आह॥ १४॥
प्रेम-डगर सोई चलै, अगर-मगर दै छोरि।
बिषय-राग राखै नहीं, सब सौं नातौ तोरि॥ १५॥
संत-वैद्य सेवन करै, करुई औषध खाय।
भोग-रोग राखै नहीं, तबै प्रेम प्रगटाय॥ १६॥
जो तू चाहै प्रेमधन, बिषयन सौं मुख मोरि।
स्रद्धा-तत्परता सहित, चित्त भजन में जोरि॥ १७॥
जे प्यासे हरि-प्रेम के, तिन के निरमल भाव।
तन मन धन अरपन करैं, धरैं मुक्ति कौ दाव॥ १८॥
स्वर्ग मोच्छ चाहैं नहीं, चाहैं नंदकिसोर।
सुघड़ सलोनौ साँवरौ, मुरलीधर मन-चोर॥ १९॥

बिद्या बुद्धि बिबेक कौ तजै सबै अभिमान।
सो पावै प्रभु-प्रेम कौं, जेहि सम तुलै न ग्यान॥ २०॥
सप्त स्वर्ग के सुख सकल बिष सम देवै त्याग।
नहीं चाह अपबर्गकी (सो) पावै प्रभु अनुराग॥ २१॥
जो चाहै हरि-प्रेम कौं, राग-भोग दै त्याग।
निसिदिन प्रेमी सँग करै, तब बाढ़ै अनुराग॥ २२॥
प्रेम-पंथ कंटक भर्‌यौ, चालै बिरलौ कोय।
बिंधत-छिदत हुलसै हियौ, यहि मग आवत सोय॥ २३॥
कूदि परै जो सूरमा प्रेमसिंधु के माँहिं।
परम अमोलक रतन हरि पावै संसय नाहिं॥ २४॥
प्रेम-अनल कूदै वही, जो मन बे-परवाह।
जियन-मरन भावैं नहीं, नहीं सरग की चाह॥ २५॥
प्रेमानिल के परस तैं, ग्यानानल बढ़ि जाय।
जारै कर्म-समूह सब, हरि-ही-हरि रह जायँ॥ २६॥
हरि-छबि-हबि-आहुति हिएँ ज्यौं-ज्यौं लागत जात।
प्रेम-अनल त्यौं-त्यौं अतिहि अधिकाधिक सुलगात॥ २७॥
प्रेम-अनल जेहि जिय जरत, जारत तीनिहुँ ताप।
सुद्ध-स्वर्ण आसन अमल आइ बिराजत आप॥ २८॥

प्रेमके विघ्न

प्रेम अमिय चाहै पियौ, करै बिषय सौं नेह।
बिष ब्यापै, जारै हियौ, करै जर्जरित देह॥ २९॥
मन बिषयन में रमि रह्यौ, करत प्रेम की बात।
सो मिथ्याबादी सदा जग में आवत [illegible]॥ ३०॥
भव-बारिधि तरिबौ चहै, गहै बिषयकी नाव।
डूबै सो मँझधार ही, तनिक न लागै दाव॥ ३१॥

प्रेम-पंथ पर पग धरै, करै जगत कौ सोच।
तिन कौ मन अति मलिन है, बुद्धि निपट ही पोच ॥ ३२ ॥
प्रेम-सिंधु कूदत डरै, करै जगत की याद।
सो डूबै भवसिंधु में, जीवन करि बरबाद ॥ ३३ ॥
दंभी, द्रोही, स्वारथी, बादी, मानी—पाँच।
ये खल नाहिन सहि सकैं प्रेम-अगिनि की आँच ॥ ३४ ॥

प्रेमकी स्थिति

कहि न जाय मुख सौं कछू स्याम-प्रेम की बात।
नभ, जल, थल, चर-अचर—सब स्याम-हि-स्याम लखात ॥ ३५ ॥
ब्रह्म नहीं, माया नहीं, नहीं जीव, नहिं काल।
अपनीहू सुधि ना रही, रह्यौ एक नँदलाल ॥ ३६ ॥
को कासौं केहि बिधि कहा कहै हृदय की बात।
हरि हेरत हिय हरि गयौ, हरि सर्बत्र लखात ॥ ३७ ॥
प्रेम-बान बेध्यौ हियौ, घायल भयौ अचेत।
एक राम में रमि गयौ, दुर्‌यौ बिषय कौ खेत ॥ ३८ ॥
प्रेम-पयोनिधि परत हीं पबि-सम भयौ सरीर।
काम-कटक भाज्यौ सबै, तजि निज तरकस-तीर ॥ ३९ ॥
रँग्यौ सदा जाकौ हियौ, बिमल स्याम-अनुराग।
दूजौ रँग कबहुँ न चढ़ै, भयौ सहज बैराग ॥ ४० ॥
मोहन की मधुरी हँसी, बसी हृदय में जाय।
माया-ममता-अघ अनल तेहि हिय नाहिं समाय ॥ ४१ ॥
जिन कौ हिय नित हँसि रह्यौ, हेरि-हेरि हरिरूप।
कबहूँ ते न पलटि परैं सोकरूप भवकूप ॥ ४२ ॥
जिन के दृग हेरत सदा हरि-मूरति चहुँ ओर।
तिन के चित कबहुँ न बसत काम-मोह-मद चोर ॥ ४३ ॥

जिन के दृग हरि-रँग रँगे, हिय हरि रहे समाय।
नभ, जल, अवनि, अनिल, अनल—सब में स्याम दिखाय ॥ ४४ ॥
जिन कें मन मोहन बस्यौ, फँस्यौ दृगन में आय।
धँस्यौ सकल संसार में, तिन कौं वही दिखाय ॥ ४५ ॥
जिन नैनन में परि गई हरि निरखन की बान।
ते नित स्याम निहारहीं, नाहिं सुहावत आन ॥ ४६ ॥
जिन के जिय में रमि रह्यौ मोहन चतुर सुजान।
तिन के नयन बिलोकते सब जग श्रीभगवान ॥ ४७ ॥
चित्त नित चिंतन में रम्यौ, नैन रमे छबि माँहि।
बानी गुन-बरनन रमी, राम सदा तेहि ठाँहि ॥ ४८ ॥
जे मतवारे ह्वै रहैं, प्रेम-सुरा करि पान।
तिन कौं कछू न करि सकैं, बेद, पुरान, कुरान ॥ ४९ ॥
अमर भए जे नर सुघर, प्रेम-सुधा करि पान।
तिन कौं जारि सकै नहीं काम-अनल बलवान ॥ ५० ॥
ही-तल सीतल ह्वै चुक्यौ, प्रेम-बारि सौं पूरि।
जग की सब ज्वाला रहै तासौं अति ही दूरि ॥ ५१ ॥
तेजपुंज जेहि हिय उग्यौ प्रबल प्रभाकर प्रेम।
मोह-निसा, अघ-तम सकल नासे तजि निज छेम ॥ ५२ ॥
प्रेम-दिवाकर उगत हीं छायौ पूर्न प्रकास।
बिषय-नखत दीखत नहीं, भयौ मोह-तम-नास ॥ ५३ ॥
प्रेम-सुधा सिंचन कियौ, अमर भयौ बिग्यान।
सकल बिस्व हरि ह्वै गयौ, मिट्यौ ग्यान-अज्ञान ॥ ५४ ॥
प्रेम-अनल लागत जर्‌यौ जग को जाहिर रूप।
भए तिरोहित रूप त्रै, रह्यौ एक हरि-रूप ॥ ५५ ॥
भक्ति-मुक्ति दोऊ तजीं, तजे लोक-परलोक।
बूड़्यौ प्रेम-पयोधि में, नहीं हरष नहिं सोक ॥ ५६ ॥

****

जिन चाख्यौ हरि-रस मधुर, अमर भए तेहि पीय।
सब रस नीरस ह्वै गए, जिनके जीहा जीय ॥ ५७ ॥
जिन के हिय हरि नै लियौ प्रेमरूप अवतार।
तिन के पातक जरि मरे, भए करम सब छार ॥ ५८ ॥
हरि-रस पीयत हीं छक्यौ, झूमत-गिरत अचेत।
उठत-चलत, रोवत-हँसत, नाचत भूलि निकेत ॥ ५९ ॥
डूब्यौ प्रेम-पयोधि में, भयौ प्रेम कौ रूप।
रसाद्वैत याकौं कहत, रहत न भिन्न सरूप ॥ ६० ॥
प्रेम हरी, हरि प्रेम है, प्रेमी, प्रियतम आप।
जहाँ प्रेम कौ बास, तहँ रहै न जग कौ ताप ॥ ६१ ॥
जे माते हरि-प्रेम के तिन कें हिय भगवान।
पाप-ताप कछु ना रहै, नसै भरम की खान ॥ ६२ ॥
मोहन की मुसुकान मधु जिन निरखी निज नैन।
ते प्रेमी बड़भाग जन छके रहैं दिन-रैन ॥ ६३ ॥
प्रेम-रसायन पियत हीं बाढ़ी सक्ति अपार।
काम, क्रोध, मद, लोभ रिपु भागे सीमा पार ॥ ६४ ॥
प्रेम-उदधि में परत हीं, ज्यौं पहुँच्यौ तल सेष।
उछरत फेरि न कबहुँ सो जनम-मरन के देस ॥ ६५ ॥
जेहि मन मनमोहन बस्यौ, सब अँग रह्यौ समाय।
तेहि मन ठौर न और कौं, आइ देखि फिर जाय ॥ ६६ ॥
स्याम रह्यौ मन-नैन में सुंदरता की खान।
सब में सो दीखत तिन्हैं ब्रज-जुबतिन कौ प्रान ॥ ६७ ॥
सब जग मोह्यौ मोहनें, सब कौं रह्यौ नचाय।
सो मोह्यौ, ह्वै प्रेमबस, ब्रज में नाच्यौ आय ॥ ६८ ॥
प्रेमांजन आँजत दृगन बाढ़ी जोति अपार।
तम-भ्रम नास्यौ, स्याम छबि छाई सब संसार ॥ ६९ ॥

प्रेम प्रगट जब होत है, रहन न पावत आन।
'तू', 'तू' हीं रहि जाय फिर, 'मैं' कौ मिटै निसान॥ ७०॥
प्रेम-धाम प्रीतम बसै, प्रीतम में रह प्रेम।
दोनों एक सरूप हैं, तहाँ न कोऊ नेम॥ ७१॥

ज्ञान और प्रेम

ग्यान-प्रेम दोउ पूज्य अति, दोउ बिमल बरनीय।
पै प्रेमी के मन सदा प्रेम-रूप कमनीय॥ ७२॥
ग्यानी बोध-सरूप ह्वै, होहिं ब्रह्ममें लीन।
निरखत पै लीला मधुर प्रेमी प्रेम-प्रबीन॥ ७३॥
ग्यानी ढिग गंभीर हरि सच्चित-ब्रह्मानंद।
प्रेमी सँग खेलत सदा चंचल प्रेमानंद॥ ७४॥
ग्यानी ब्रह्मानंद सौं रहै सदा भरपूर।
पै प्रेमी निरखै सुखद, दुरलभ हरि कौ नूर॥ ७५॥
प्रेमी सँग कबहुँ न तजत, रहत निरंतर पास।
हँसत-हँसावत आप हरि, करत अनेक बिलास॥ ७६॥
ब्रह्म ग्यान बिग्यान कौ, अमृत कौ आधार।
भेंट्यौ हृदय लगाय हरि, स्त्रवै नैन जलधार॥ ७७॥
प्रेमी-भाग्य सराहि मुनि ग्यानी बिमल बिबेक।
चहैं सुदुरलभ प्रेम-पद, तजि निज पद की टेक॥ ७८॥

प्रेमीका स्वरूप

प्रेमी जन मुक्ति न लहैं, प्रेमरूप हरि त्याग।
स्याम बदन देखै सदा, परम सुखी बड़भाग॥ ७९॥
सनमुख मारै मोरचा, सिर पर बरछी लेय।
प्रेमी पन छाँड़ै नहीं, हरि हित जीवन देय॥ ८०॥
जियै तौ हरि हित ही जियै, मरै तौ हरि हित लागि।
दह्यौ करै बिरहागि में, सरबस देवै त्यागि॥ ८१॥

****

प्रेमी पहिचानत नहीं एक स्याम बिनु और।
सोवत-जागत जगत में स्याम सदा सब ठौर॥ ८२॥
लोक-बेद सब ही तजै, भजै रैन-दिन स्याम।
सीस समरपै मुदित मन, एक प्रेम के नाम॥ ८३॥
तनु काटै, खंडित करै, खुसी खवावै काग।
जो रुचि देखै पीय की, कौन बड़ी यह त्याग॥ ८४॥
प्रेम कहै, प्रेमहि सुनै, प्रेम निहारै नैन।
प्रेम चखै, प्रेमहि भखै, प्रेम लखै दिन-रैन॥ ८५॥
बड़भागी जिन के हिये, बिंध्यौ प्रेम कौ बान।
तिन कौं तनिक न सुधि रही, बिसरि गए सब ग्यान॥ ८६॥
तन-मन-धन—सब में तुमहि, सबै तुम्हारे काज।
भावैं ज्यौं बरतौ इनै, प्रेम-सिंधु ब्रजराज॥ ८७॥
भोग-मोच्छ सौं रति नहीं, सब सौं सदा बिराग।
पै प्रीतम-छबि सौं सतत बढ़त जात अनुराग॥ ८८॥
ब्रह्मलोक परजंत के सबै भोग निस्सार।
जानत, पै प्रिय-प्रीति हित करत सदा सिंगार॥ ८९॥
जो रुचि देखै राम की, बिलग होइ ततकाल।
नरक परै, दुख सहै, पै सुखी रहै सब काल॥ ९०॥
पच्यौ करै नरकाग्नि, पै पल-पल बाढ़ै प्रेम।
प्रीतम के सुख सौं सुखी, यहै प्रेम कौ नेम॥ ९१॥
प्रेम-अनल जे जरि मरे, अपनौ आपौ खोय।
ते ही जीये जगत में, शेष रहे मृत होय॥ ९२॥
जिहिं नित चित चातक कियौ, नेम प्रेम कौ लीन्हि।
निरखे नित घनस्याम छबि, अन्य सबै तज दीन्हि॥ ९३॥
बिपति सहै, प्यासौ मरै, जरै बिरह की आग।
दूसरि दिसि चितवै नहीं, सो प्रेमी बड़भाग॥ ९४॥

स्याम-सुधाकर में लग्यौ जाकौ चित्त-चकोर।
सो प्रेमी दृढ़निश्चयी, तकै न दूसरि ओर॥ ९५ ॥
मोह मिट्यौ संसार कौ, बिनस्यौ सब अग्यान।
पै प्रिय-ममता बढ़त नित, यहै प्रेम-पहिचान॥ ९६ ॥
'अहं' देह कौ सब दह्यौ, रह्यौ न बिषय-ममत्व।
पै प्रिय-सुख-लगि तजत नहिं बपु, यह प्रेम ममत्व॥ ९७ ॥
दोउ दृढ़ आलिंगन करत, करत सदा सुख-भोग।
एकरूप नित ह्वै रहैं, तदपि न अँग-संयोग॥ ९८ ॥
सदा रहत संजोग ध्रुव, तदपि बियोग लखात।
जोग, बियोग-सरूप धरि, नित्य जरावत गात॥ ९९ ॥
पै राखत यह जरनि जिय, प्रिय सम हिय सौं लाय।
नहिं कुछ यहि सम सांतिकर, सीतल, सुखद सुभाय॥ १०० ॥

[६६५]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

प्रेम सदा पावन परम रहित समस्त विकार।
प्रियतम सुख ही परम धन जीवन को सुचि सार॥
अति विचित्र अति ही मधुर प्रेमी को संसार।
सदा सकल दिसि प्रेमधन करत प्रेम विस्तार॥
नहिं चिन्ता नहिं बिकलता नहीं जगत को भान।
लाभ-हानि जीवन-मरन सुख-दुःख सदा समान॥
सदा परस्पर मधु मिलन सदा सरस रति रंग।
सदा जगत्-विस्मृति, सदा प्रियतम-प्रेमी संग॥

[६६६]

(राग माँड़—तीन ताल)

परम गोप्य, अतिसय अमल, सुचि रस यह अनमोल।
कबहुँ न परगट कीजियै, कितहूँ बाचा खोल॥

****

प्रियतम परसत प्रिया के, प्रिया पीउ के अंग।
तनिक न सहम-सँकोच मन, करत बिबिध रस-रंग॥
कहत न काहू सौं कबहुँ, दोउ एहि रस की बात।
रहत सदा मन-मधुप पै रस-सरोज मँडरात॥
रस अगाध सर रहिय नित मगन, उछरियै नायँ।
जानि न पावै पै न कोउ, कोउ न आवैं जायँ॥

[६६७]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

उत्कट काम, अमर्ष, चपलता, मत्सरता, मद, हिंसा, खेद।
आकाङ्क्षा, असत्य, आशङ्का, भ्रम, श्रम, मोह, विषमता, भेद॥
परापेक्षता, आमय, भय, विनाशिता, तन्द्रा, राग-द्वेष।
असौन्दर्य, विषाद रहते न दिव्य विग्रहमें किंचित लेश॥
नित्य सत्य, विभु, प्रभु माया-गुणरहित, सर्वसद्गुण-आधार।
सकल भेद विरहित, अज, अव्यय, सत-चित-आनँदमय साकार॥
परम स्वतन्त्र, स्वरूपदेह, शुचि, देही-देह-भेदसे हीन।
स्वेच्छामय-लीला-वपु न कभी देश-काल-कर्मादि-अधीन॥

[६६८]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

अति निर्मल, अति ही मधुर, दिव्य सुधा-रस-धाम।
भोग-कामना बासना राग रहित अभिराम॥ १॥
निज-सुख की इच्छा रहित, बिरत भोग-संसार।
मन-इंद्रिय के मिटत सब बिषय-भोग-ब्यापार॥ २॥
अति विरक्त मन भोग तैं, मुक्ति-कामना-हीन।
चित्त-बुद्धि सब ह्वै रहैं प्रियतम-प्रेम-बिलीन॥ ३॥

रहत न रंचक हू तहाँ अघजुत कर्म विचार।
प्रगटत पावन प्रेम जहँ परम सुद्ध अबिकार॥ ४ ॥
चिंता-भय-माया रहित, सहित सांतिमय त्याग।
अनु-अनु में छायौ रहत नित बिसुद्ध अनुराग॥ ५ ॥
कामासक्ति-बिहीन सब पावन भाव सुकर्म।
केवल प्रियतम-सुख अमल एक प्रेम कौ धर्म॥ ६ ॥
प्रभु-महत्त्व, सेवा परम, प्रभु के मन की बात।
जानि तत्त्वतः रहत प्रिय-सेवा रत दिन-रात॥ ७ ॥
प्रियतम प्रभु कौ प्रेम ही हो जीवन कौ रूप।
प्रियतम के गुन बिसद तहँ प्रगटित रहैं अनूप॥ ८ ॥
बढ़त, घटत, बदलत सतत, होत जगत कौ अंत।
बढ़त रहत पै त्यागमय पल-पल प्रेम अनंत॥ ९ ॥
कलुषरहित, उज्ज्वल, अकल, अनुपम, परम, अमान।
प्रेमरूप हरि ही स्वयं, प्रेम स्वयं भगवान॥ १० ॥
सोइ प्रेम नित मूर्त है, बन्यौ राधिका रूप।
बिलसत संतत स्याम सँग, प्रगटत सुधा अनूप॥ ११ ॥

[६६९]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

प्रेम पवित्र, परम उज्ज्वल, जो काम-कलुषसे रहित, उदार।
शशधर-कलासदृश प्रतिपल ही बढ़ता रहता सहज अपार॥
नहीं कभी भी, किसी हेतुसे, हो सकता उसका प्रतिरोध।
नहीं कभी उसका कर सकता कोई लौकिक भाव निरोध॥
धन-जन-तन, बहु-भोग-जनित सुख, दुःखप्रबलका तनिक प्रभाव।
नहीं कभी होता प्रेमाप्लावित मनपर, रहता सद्भाव॥
नहीं नरकका भय रहता कुछ, रहता नहीं स्वर्गका काम।
जीवन-मरण प्रेम-रसमें नित डूबे ही रहते अभिराम॥

प्रियतम प्रभु बन स्वयं मधुरतम प्रेमसुधा-रस-पारावार।
करते परम मनोहर अपनेमें ही आप विचित्र विहार॥
उठतीं ललित लहरियाँ उसमें अनुपम, अमल, अमित, अविराम।
देतीं सतत अनन्त कालतक सुख शुचि, नित्य नवीन, ललाम॥
इह-पर रहता नहीं, नहीं रहता अनित्य दुखमय संसार।
उठता नहीं मोक्ष-सुखका भी मनमें लव भर कामविकार॥
रहते प्रियतम सुख-सच्चिन्मय छाये एक सदा सर्वत्र।
सदा अमृत-रस-वर्षा होती सुर-मुनि-दुर्लभ, परम पवित्र॥

[६७०]

(दोहा)

काहू कौं जानौं न मैं, ना मोहि जानै कोय।
तुम सौं प्रीति लगी रहैं, हम-तुम जानें दोय॥
प्रेम हृदय कौ गुपुत धन, परम अमोलक सोय।
बिबिध जतन करि राखियै ताहि हृदय महँ गोय॥
प्रेम अनन्य बिसुद्ध अति, नित्य अखंड, असेष।
प्रतिपल बढ़िबौ ही करै अनुभवरूप बिसेष॥
गोपन अति गति प्रेम की, हिय महँ रहै सुभाय।
ज्यौं ब्यापक सर्बत्र हरि, बाहेर कछु न जनाय॥
प्रेम अगाध उदधि सरिस, अतिसय तल गंभीर।
बिरले पहुँचैं अतल तल, ठाढ़ि रहैं सब तीर॥
प्रेमोदधि के अतल तल जे जन पहुँचे जाय।
ते नहिं उछरत कबहुँ फिरि, रहत निमग्न सदाय॥
छुद्र सरित कछु पाइ जल उमगत, बढ़त गुमान।
सब सरितन कौ नीर भरि बढ़त न जलधि अमान॥
छलकै-मुलकै प्रीति जो, ताकी हलकी जाति।
उप्र प्रेम गंभीर अति, अमित उदधि की भाँति॥

अति पवित्र, अति ही बिमल, बिषय-बासना-हीन।
मोह-मैल नहिं रहत तहँ करि पावत न मलीन॥
बिषय-बासना जो बसी आइ हृदै के बीच।
तहाँ प्रेम नहिं जानियै, रह्यौ काम-अरि नीच॥
जोगसिद्धि अरु ब्रह्मपद, गति न चहै निर्बान।
इंद्रिय-सुख कौं गनै को, तम जिमि उदऐं भान॥
बिषय-बासना अंध तम, जहँ न अमा-निसि होत।
परम समुज्ज्वल प्रेम-रबि तेहि घट परगट होत॥

[६७१]

(राग ईमन—तीन ताल)

सुनै सदा चाहे न कुछ, सहै सबै जो होय।
रहै एक-रस एक-मन प्रेम कहावत सोय॥
तन-मन-धन-अर्पन कियौ सब तुम पै ब्रजराज।
मन भावै सोई करौ हाथ तुम्हारे लाज॥

[६७२]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

जो परतन्त्र सदा प्रिय-सुखके जो न कदापि स्वतन्त्र।
जिसका सुख प्रिय-सुख केवल, जो प्रिय-सुखका ही यन्त्र॥
जो प्रियमें संदेहरहित नित, प्रिय ही जिसका क्षेम।
प्रिय ही जिसका जीवन-जीवन, वही मधुरतम प्रेम॥

[६७३]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

पावन पावक प्रेम कौ प्रगट्यौ जब अनिवार।
पाप-ताप, संदेह-भय भए तुरत जरि छार॥

[६७४]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

जितने सब हैं भाव विलक्षण, एक एकसे उच्च उदार।
वे सब अति अभ्यन्तर होकर भी हैं बाह्य सरस व्यवहार॥
हैं वे परमादर्श, पुण्यतम प्रेमराज्यके भाव महान।
मिलते हैं उनसे प्रेमास्पद प्रेष्ठरूपमें श्रीभगवान॥
पर राधा स्वरूपतः बँधी न उनसे किंचित् कभी कहीं।
एक श्यामके सिवा तत्त्वतः राधामें कुछ और नहीं॥
राधा नित्य श्यामकी मूरति, नहीं अन्य कुछ भावाभाव।
राधा श्याम, श्याम राधा हैं, अन्य तत्त्वका नित्य अभाव॥

[६७५]

(राग-माँड़—ताल कहरवा)

प्रेमके आठ स्तर

प्रेम

सुद्ध सत्त्वकी वृत्ति जो कृष्न-सुखेच्छारूप।
त्यागी जन मन में उदित 'प्रेम' पबित्र अनूप॥

स्नेह

प्रेम बिषय कौं प्राप्त करि द्रवित करै जब चित्त।
'स्नेह' कहावत सोइ तब प्रेमी जन कौ वित्त॥
बढ़त उष्नता-ज्योति, जब घृत पूरन होय दीय।
दरस-लालसा बढ़त त्यौं स्नेह-उदय तें हीय॥

मान

अति नूतन माधुर्य कौ अनुभव जामें होय।
नेह पाइ उत्कर्षता 'मान' कहावत सोय॥
भाव छिपावन हृदय कौ बनै बक्र अरु बाम।
सुख उपजावत स्याम कौ धारि 'मान' मधु नाम॥

प्रणय

ममता की अति बुद्धि तैं मान पाइ उत्कर्ष।
प्रिय सौं होय अभिन्नता, बढ़त हृदय अति हर्ष॥
प्रान-बुद्धि-मन-देह जब, असन-बसन, सब काम।
रहै न प्रिय सौं पृथक कछु, होत 'प्रनय' तब नाम॥

राग

स्याम-मिलन की आस में दुःख परम सुख होय।
अमिलन में भासत सकल सुख अति दुखमय सोय॥
प्रनय पाय उत्कर्ष जब या स्थिति पहुँचै जाय।
नाम 'राग' तब धरत सो पावत प्रीति सुभाय॥

अनुराग

प्रतिपल नव दीखत जबै स्याम नित्य-अनुभूत।
नित नव सुंदरतर, सरस, परम मधुर, अति पूत॥
पाय परम उत्कर्ष कौं, बढ़त अमित जब राग।
प्रगटत लच्छन सहज अस, धरत नाम 'अनुराग'॥

भाव

प्रान-त्याग हू तैं कठिन दुःख तुच्छ जब होय।
कृष्न-प्राप्ति हित लगत जब मधुर परम सुख सोय॥
स्याम-मिलन अरु स्याम-सुख-हित अति मन में चाव।
बढ़त, बढ्यौ अनुराग सोइ धरत नाम सुभ 'भाव'॥

महाभाव

भाव सिखर जब उच्चतम पहुँचत सहजहिं जाय।
'महाभाव' सो मधुरतम परम बिमल मन-भाय॥
महाभाव के दो परम स्तर उज्ज्वल सुचि हेम।
'मोदन', 'मादन' नाम धरि प्रगटत पूरन प्रेम॥
महाभाव मादन परम दुरलभ, सहज सुतंत्र।
केवल राधा में प्रगट, कबहुँ न कहुँ अन्यत्र॥

****

[६७६]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

प्रेम-अमिय के पियत ही होइ बिषय-बिष-नास।
बहन लगै आनंद-सरि मधुर बिनहि आयास॥

[६७७]

(राग सोहनी—ताल दादरा)

जन्म-मरण न दुःख-सुख कुछ हैं नहीं जिसमें कभी।
बह रही रस-सुधा-धारा, नित्य प्लावित कर सभी॥
छा रहा आनन्द अनुपम, परम अतुल सदा वहाँ।
नाचते रहते निरन्तर नीलमणि नित हैं जहाँ॥

[६७८]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

भोग-मोक्ष-इच्छा पिशाचिनी जबतक करती मनमें बास।
तबतक पावन दिब्य प्रेमका कभी न होता तनिक विकास॥

[६७९]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

इत-उत जो धावत फिरै, रसना-रस-बस होय।
पावै नहिं श्रीकृष्ण कौं सिस्नोदरपर सोय॥

[६८०]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

लौकिक भोग-काम है—छोटे-बड़े सभी पापोंका मूल।
प्रेम-कामना शुद्ध करो, कर भोग-कामनाको निर्मूल॥

[६८१]

(राग पीलू—तीन ताल)

श्याम प्रेम तब जानिये, जब न रहे दुख-लेश।
अघ-अशान्ति-ज्वाला—सभी हों समूल निःशेष॥

कभी न तनिक हिला सके भीषण झंझावात।
टूटें दुःख-पहाड़, पर लगे न उर आघात॥
भोग-रागका, कामका रहे न नाम-निशान।
राग-कामके हों विषय एकमात्र भगवान॥
जग-ममताका नाश हो, हरिमें जगे ममत्व।
द्वन्द्वात्मक इस जगतमें हो सर्वत्र समत्व॥
जगके मिलन-बिछोह सब, मान और अपमान।
लाभ-हानि, जीवन-मरण हों सब एक समान॥
विषय-जगत्में हो मरण, प्रभुमें जीवन नित्य।
मिथ्या सत्ता असतकी मिटे, प्रकट हो सत्य॥
रहें निरन्तर नित्य हरि बसे हृदय शुचि धाम।
पलभर हों न विलग कभी, मिले रहें अबिराम॥
निरख-निरख निरुपम नवल नख-सिख नन्दकुमार।
आनन्दाम्बुधिमें उठें नव-नव ऊर्मि अपार॥

[६८२]

(राग-भैरव—ताल कहरवा)

शुद्ध-प्रेम राधा-माधवका सहज मिटा देता सब चाह।
रहती नहीं मोक्ष-सुख-इच्छा, नहीं नरक-दुखकी परवाह॥

[६८३]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

उड़ता नहीं निरा भ्रम-नभमें मिथ्या भावुकताके हेतु।
काम-लोभ-मोहादि विकारोंके वश वह न तोड़ता सेतु॥
नहीं कभी आच्छादित कर सकता उसकी मतिको अज्ञान।
भोग-विलासावेश, विषय-रतिवश वह नहीं भूलता भान॥
प्रभु मेरे, मैं प्रभुका, प्रभुपद-पद्मोंमें निर्मल अनुराग।
रहता परम ज्ञान उसको यह सदा, सर्वथा विमल विराग॥

अतः नहीं छाते उसपर कदापि जगके सब हर्ष-अमर्ष।
अपने प्रभु प्रेमास्पदका वह पाता नित्य सत्य संस्पर्श॥
सर्वार्पण कर प्रियतमको, वह रहता नित सेवामें रत।
भोगी-जीवनसे वह रहता सहज इसीसे नित्य विरत॥
नहीं सताती उसे कामना, कभी न मत्तता, विषयासक्ति।
बढ़ती नित रहती प्रभु-चरणोंमें उसकी नव-नव अनुरक्ति॥
प्रभुके दुर्लभ भावराज्यमें दिव्य सदा करता विचरण।
मोह-जगत्के कभी नहीं छू पाते उसको जन्म-मरण॥
जगमें नित्य मरा वह, प्रभुमें पाकर नित्य अमर जीवन।
परम सफल, अति बुद्धिमान है, ज्ञानवान, शुचि, वही सुजन॥

[६८४]

(राग जंगला—तीन ताल)

भोगासक्ति-कामना करती रहती जहाँ चित्त चञ्चल।
'प्रेम' नामपर बहती धारा विषय-वासनाकी प्रतिपल॥
वहाँ प्रेमका शान्त सुशीतल बहता नहीं स्रोत निर्मल।
घोर नरक-फल फलता, होता कलुष-कलङ्क-लाभ केवल॥
सर्वत्यागकी विमल भूमिमें फलता प्रेमरूप शुचि फल।
मिटता सभी एषणा-तम, जब भावद्युति दिपती उज्ज्वल॥
प्रेमराज्यका पावन वह अति मधुर भावमय रङ्गस्थल।
करते वहाँ रास नित रसमय राधा-माधव दिव्य-युगल॥

[६८५]

(तर्ज परज—ताल कहरवा)

कामके उच्च-नीच स्वरूप

नीच 'काम'

'काम' रहेगा, तबतक होंगे 'पाप', मिलेंगे 'दुःख' अपार।
'काम-नाश'का देते शुभ संदेश इसीसे गीताकार॥

****

उच्च 'काम'

भौतिक सुख-ऐश्वर्य, विविध स्वर्गादि देवलोकोंके भोग—
प्राप्ति हेतु जो होता है जीवोंका तन-मन-धन-संयोग ॥
यज्ञ, दान, तप, सेवा, पूजा, देवाराधन, पुण्याचार।
वह भी 'काम' सुनिश्चित है; है शुद्ध, तदपि बन्धन-आधार ॥

आदर्श उच्च 'काम'

सबसे ऊँचा है वह सत्पुरुषोंद्वारा सेवित शुभ 'काम'।
परमादर्श, सफलकर जीवन, शास्त्रविचार, कर्म निष्काम ॥
अन्तःकरण-शुद्धिके द्वारा देता मोक्ष-तत्त्वका ज्ञान।
है मुमुक्षुजनका नित वाञ्छित, श्लाघ्य 'विनाशक मोहाज्ञान' ॥

सर्वोच्च 'काम'

इससे ऊँची भक्ति-'कामना', जिससे सर्वेश्वर भगवान।
सेवित होते नित्य, अनन्तैश्वर्य-भूति-श्री-मोद-निधान ॥
बार-बार दर्शन देते, करते जनकी रुचिके अनुसार।
देते सालोक्यादि पञ्चविध मुक्ति सहज ही परम उदार ॥

काम-नाशका उपाय और काम तथा प्रेमका भेद

'काम' सृष्टिका मूल, काम है सहज जीवका निज संस्कार।
अतः मिटा देना उसका अस्तित्व असम्भव-सा व्यापार ॥
कभी 'काम-रिपु'का केवल बल-संयमसे होता न विनाश।
'प्रेम'-रूप आते ही पर वह होता नष्ट, बिना आयास ॥
'काम-नाश'का इसीलिये है साधन एक नित्य अव्यर्थ—
'त्याग-विशुद्ध प्रेम'में परिणत कर दे उसे, समझकर अर्थ ॥
प्रेम-रूपमें परिणत हो, फिर काम नहीं रह जाता 'काम'।
लौह स्वर्ण बन जानेपर ज्यों हो जाता है शुद्ध ललाम ॥

'काम' नित्य 'विषमिश्रित मधु' है, 'प्रेम' नित्य शुचि सुधा अनूप।
काम 'दुःखपरिणामी' निश्चित, 'प्रेम' नित्य आनन्दस्वरूप॥
'काम' अन्धतम प्राप्त कराता निन्दित नरक, तमोमय लोक।
'प्रेम' ज्योतिमय रवि देता सुख, दिव्य लोक, निर्मल आलोक॥
'काम' स्व-सुखमय, सदा चाहता विविध भोग-अपवर्ग पदार्थ।
'प्रेम' त्यागमय, प्रियसुखकामी, मुनिवाञ्छित 'पञ्चम पुरुषार्थ'॥

प्रेम

पर जिनमें अपनी रुचि कुछ भी नहीं, नहीं कुछ पाना शेष।
नहीं कामना भुक्ति-मुक्तिकी, नहीं वासनाका लवलेश॥
साधन-साध्य प्रेम-सेवा ही, त्यक्त सभी विधि काम-विचार।
सालोक्यादि मुक्ति, दर्शन भी सेवा बिना नहीं स्वीकार॥
नहीं त्यागमय परम प्रेम है, रसिक प्रेमियोंका आदर्श।
परमहंस-तापस-ऋषिवाञ्छित वही सुदुर्लभ 'परमोत्कर्ष'॥

राधा—प्रेमप्रतिमा

राधा इसी नित्य निर्मल अति त्याग-प्रेमकी केवल मूर्ति।
परम प्रेमरूपा वह करती नित माधव-मन-इच्छा-पूर्ति॥
नहीं 'त्याग' करती वह कुछ भी, करती नहीं कभी वह 'प्रेम'॥
स्वयं प्रतिष्ठा 'त्याग-प्रेम' की, सहज शुद्ध ज्यों निर्मल हेम॥
उसके दिव्य प्रेम-रस-आस्वादनमें हरि नित रहते लीन।
नित्य स्वतन्त्र, पूर्ण वे रहते प्रेमविवश राधा-आधीन॥

[६८६]

(राग पीलू—तीन ताल)

प्रेम कौ एक मधुर यह नेम।
जो प्रिय के मन भावै, सोई धर्म, जोग अरु छेम॥
जो नित प्रेम-सुधा-रस-पूरित, भूल्यौ सब संसार।
निज बिस्मृति सौं भए धर्म बिस्मृत, कछु रही न सार॥

धर्मी बिना धर्म कहुँ कैसैं रहै पृथक रखि टेक।
घुलि-मिलि भयौ नित्य प्रियतम के मन सौं प्रेमी एक॥
नहीं कामना, तृस्ना, आसा, नहीं स्व-पर कौ भाव।
एकमात्र प्रियतम कर की पुतरी वह सहज सुभाव॥
नहीं नैकु निज दुख-सुख की सुधि, नहीं राग नहिं रोष।
नहीं अहित-हित की चिंता कछु, नहिं बिराग लखि दोष॥
सर्बत्याग अति सहज, नहीं कछु मद-ममता-अभिमान।
तन-मन-प्रान-बुद्धि सब प्रियतम, जीवन-मरन समान॥
बिधि-निषेध कौ नहिं बिबेक कछु, नहीं बोध आचार।
प्यारौ जो करवावै सोई करै, न अन्य विचार॥

[६८७]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

प्रेम-राज्यमें निज-सुख-इच्छा—अपने मनकी कोई चाह।
प्रेम-मार्गकी भारी बाधा, उपजाती अतिशय उर-दाह॥
इन्द्रिय-सुखकी तनिक वासना भी है इसमें भारी पाप।
बड़े पारखी हो तुम, प्रियतम! नित्य परखते रहते आप॥
निज जनका यह पाप मिटाने, रहते सदा सजग तुम, नाथ!
तनिक न करते उसके मनकी, देते नहीं कभी भी साथ॥
इसपर जो अति असंतुष्ट हो, दोष देखती करती रोष।
छोड़ बैठती भजन अधम वह, बन जाती दोषोंकी कोष॥
पर जो भजन त्याग नहिं करती, नहीं त्याग करती विश्वास।
मनकी इच्छा पूर्ण कराना मूर्ख चाहती बिना प्रयास॥
इस प्रकार जो तुमसे कहती पूरी करने मनकी साध।
होती क्षुब्ध-दुखी, तब उसका नहीं देखते तुम अपराध॥
कर देते तुम उसके मनकी, होती वह यदि शुचि निर्दोष।
पर देते न प्रेम तुम उसको, जबतक उसे न आता होश॥

रह जाती वञ्चित वह, पाकर कृपा तुम्हारीका संयोग।
भजनशील होकर भी मूढ़ा, प्रेम नहीं पाती, रत-भोग॥
भाग्यवती जो प्रेम-परीक्षा दुर्गममें होती उत्तीर्ण।
विघ्न तुरंत नष्ट हो जाते सारे उसके, होकर जीर्ण॥
भोग-मोक्षकी—अपने सुखकी सारी इच्छाका कर त्याग।
करती सदा तुम्हारे मनकी, कर प्रियतम-सुखमें अनुराग॥
देकर उसे प्रेम अति पावन, होते तुम उसके आधीन।
उसके तन-मनमें आ बसते, करते उसको निजमें लीन॥
तुमने ही दिखलाया मुझको स्नेह-सहित यह परमादर्श।
इससे रही न जगकी सत्ता, रहा न कोई हर्ष-अमर्ष॥
अनुभव यह हो रहा—'तुम्हारे सिवा नहीं कोई भी और'।
अपनेमें अपनी ही लीला तुम कर रहे रसिक-सिरमौर॥

[६८८]

(राग वागेश्री—तीन ताल)

स्व-सुख-वासना-गन्ध-लेशकी भी न कल्पना पाये जाग।
सर्वत्यागमय कृष्णसुखेच्छापूर्ण उदय हो शुचि अनुराग॥
भुक्ति-मुक्तिमें रहे न अणुभर राग-कामना-ममता-लेश।
पावन प्रेम-अनलमें सब कुछ जलकर हो जायें निश्शेष॥
सर्वसमर्पण रहे, रहे पर नहीं समर्पणकी कुछ याद।
प्रियतम-सुख जीवन हो, जाग्रत् रहे नित्य नव-रस-उन्माद॥
बने लोक-परलोक सभी कुछ प्रिय-सुख-लीला-रङ्गस्थान।
'बन्धन-मोक्ष' मुक्त हों, लीला-साधन बन पायें सम्मान॥
विरह-मिलन दोनोंमें रति-रस-सागर प्रतिपल बढ़े अपार।
थाह न पाये परमहंस योगी, ऋषि-मुनि मन मानें हार॥

[६८९]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

समय-स्थानकी दूरी कुछ भी कभी नहीं कर सकती दूर।
जहाँ हृदयमें हृदय परस्पर रहता सदा सतत भरपूर॥

[६९०]

(दोहा)

हमको दुःखी देखकर प्यारे तनिक दुःख यदि हैं पाते।
अति अपराधी, क्यों न हमारे सभी मनोरथ मर जाते ! ॥
क्यों न सदा हम सुखी परम हो उन्हें खूब सुख पहुँचाते !।
क्यों न सदा प्रसन्नमुख हँस-हँस कर हम उन्हें हँसा पाते ॥

[६९१]

(दोहा)

प्यारे ! हँसो, रहो ही हँसते तुमको खूब हँसायें हम।
प्यारे ! सदा प्रसन्न रहो तुमको अति सुखी बनायें हम ॥
तन-मन-बुद्धि तुम्हारे सारे इनको नहीं रुलायें हम।
वस्तु तुम्हारीको सुख देते संतत शुचि सुख पायें हम ॥

[६९२]

(दोहा)

कैसे वह दुखिया माने, क्यों समझे वह अपने को दीन।
जिसके तन-मन वे समझेंगे, भोगेंगे दुख-दैन्य नवीन ॥
रखें शरीर, न रखें भले ही, रखें निकट अति, रखें सुदूर।
रखते वे अपनेमें नित ही, रहते स्वयं सदा भरदूर ॥

[६९३]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

सुमधुर स्मृतिमें होता नित ही मधुर मिलन-दर्शन-सुस्पर्श।
मधुर-मनोहर चलती चर्चा, चारु-मधुर उपजाती हर्ष ॥
मधुर भाव, शुचि चाव मधुर, माधुर्य नित्य पाता उत्कर्ष।
मधुर नित्य निर्मल रसमयमें रहता नहीं अमर्ष-विमर्श ॥

[६९४]

(राग भैरव—तीन ताल)

मिला जिसको हरि मिलनानंद।
डूबा वही अतल तल में रस-सागर के स्वच्छन्द॥
जग के भोग-राग सब छूटे, टूटे सब छल छन्द।
श्याम-चरण-पङ्कज मधु-रस-रत मन हो गया मिलिन्द॥
मिटी वासना, भुक्ति-मुक्ति की, पड़ा स्नेह का फन्द।
होता प्रतिपल नव सुख सर्जन देख-देख मुख-चंद॥

[६९५]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

ज्यों-ज्यों प्रभु-समीपता बढ़ती, ज्यों-ज्यों बढ़ता त्याग अमान।
त्यों-ही-त्यों होता रस उज्ज्वल मधुर उत्तरोत्तर अतिमान॥
शान्त, दास्य-शुचि, सख्य रुचिर, वात्सल्य, मधुर रस परम उदार।
त्याग और सामीप्य उत्तरोत्तर बढ़ता इनमें अविकार॥
आत्मनिवेदन, अनावरण सामीप्य, मधुरतम निर्मल त्याग।
इसीलिये कहलाता 'उज्ज्वल रस' यह 'मधुर' भरा अनुराग॥
इसमें भी 'परकीय' अधिक उज्ज्वल 'स्वकीय' से शुचितम भाव।
रहता जिसमें एकमात्र प्रियतमको सुख देनेका चाव॥
सर्वत्यागमय पूर्ण समर्पण, दोषबुद्धि-विरहित व्यवहार।
भोग-मोक्ष-इच्छा-विरहित प्रियतम-सुख केवल जीवन-सार॥

× × × ×

ईश्वरमें न स्वकीया-स्वामी, परकीया-परपतिका भाव।
एक सर्वमय सर्वरूप सच्चिदानन्दघन अविगत-भाव॥
लीला-लीलामय अभिन्न नित, नहीं भोग्य, भोक्ता, उपभोग।
त्रिपुटी-त्रिगुणरहित लीलावपु, नित्य रहित संयोग-वियोग॥
तो भी 'महाभाव' रस-लीला-निरत नित्य 'रसराज' अनूप।
नित्य अनिर्वचनीय विरोधी-गुणधर्माश्रय भगवद-रूप॥

[६९६]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

शुद्ध प्रेमरूप हैं केवल प्रियतम परम मधुर श्रीकृष्ण।
देते प्रेम सर्वथा अविरत, लेते सदा प्रेम श्रीकृष्ण॥
कहते-सुनते, सदा सूँघते केवल एक प्रेम श्रीकृष्ण।
प्रेम देखते-चखते, करते स्पर्श प्रेम केवल श्रीकृष्ण॥
करते प्रेम-कार्य ही केवल, पावन प्रेम-प्राण श्रीकृष्ण।
रहते सदा प्रेमके चाकर, नित्य प्रेम-स्वामी श्रीकृष्ण॥

× × ×

प्रेम हटा देता दूरीको, प्रेम मिटा देता व्यवधान।
प्रेम भुला देता प्रपञ्च सब, प्रेम मिला देता भगवान्॥

[६९७]

(राग बागेश्री—ताल कहरवा)

शुद्ध प्रेम राधा-माधवका सहज मिटा देता सब चाह।
रहती नहीं मोक्ष-सुख-इच्छा, नहीं नरक-दुःखकी परवाह॥
भोगकामना, निज-इन्द्रिय-सुखकी न वासना रहती शेष।
हो जाते युग-युगके सारे दुःखप्रद अभाव निःशेष॥
मिट जाते मद-मान-गर्व-ममता-आसक्ति, ईरषा-डाह।
छा जाते मन त्याग-प्रेम-आनन्द, नहीं रहता उर-दाह॥
लाभ-हानि, सुख-दुःख, शुभाशुभका रह पाता नहीं विवेक।
एकमात्र प्रियतम-सुख ही जीवन-स्वभाव—जीवनकी टेक॥
सहज समर्पण हो जाता सब, रहता नहीं किंतु वह याद।
कहीं तनिक अभिमान न रहता, होता प्रकट दैन्य अविवाद॥
पाता वह अनन्त सुख अनुपम प्रियतमको लख सुखी अगाध।
बार-बार सुख देनेकी बढ़ती परंतु उसके मन साध॥
त्याग बिना न कभी हो पाता प्रेमराज्यमें तनिक प्रवेश।
भुक्ति-मुक्ति, निज सुख-इच्छाका रहता नहीं तनिक-सा लेश॥

****

तब भगवान् स्वयं बन जाते उसके प्रियतम प्राणाराम।
जग उठती उनके मन 'रस-आस्वादन' की लालसा ललाम॥
रसमय, रसिक, रससुधा-सागर स्वयं नित्य जो हैं रसराज।
वे अतृप्त नित करते उस रसका आस्वादन, तज सब लाज॥
इसीलिये वे राधा-गोपिजनके रहते नित्य अधीन।
ऋृणा न चुका सकते वे उनका, नित्य मानते निजको दीन॥
राधा इधर मानती निजको, नित्य प्रेमधनकी कंगाल।
सदा सकुचती रहती निज प्रति लख प्रियतमका भाव रसाल॥
इस पवित्रतम प्रेमराज्यका रख मनमें आदर्श महान्।
मानवमात्र त्यागपथपर चल भजें नित्य रसनिधि भगवान्॥
राधा-गोपी-प्रेम मधुर पावनका यह संदेश उदार।
दुर्लभ जो अति मधुर-सुधा-भगवद्रसका शुचि पारावार॥
मानव-जीवनका हो यह बस, एकमात्र शुभ लक्ष्य पवित्र।
शुद्ध प्रेम-रस-सागरमें निमग्न रहना संतत सर्वत्र॥
राधाष्टमी-महोत्सवका है केवल यही लाभ अति श्रेष्ठ।
एकमात्र श्रीराधामाधव बन जायें जीवनके प्रेष्ठ॥

[६९८]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

इन्द्रिय-सुख-इच्छासे विरहित, अतिशय मधुर कृष्ण-अनुराग।
प्रियतम-सुखमय सहज उदित, सर्वस्व त्याग मन भोग-विराग॥
नहीं कामना-लिप्सा कुछ भी, नहीं कहीं ममता-मद-मान।
केवल हृदय प्रेम-रस पूरित निर्मल निरुपम दिव्य महान॥
देना-ही-देना है जिसमें, लेनेका न कहीं कुछ काम।
उसी प्रेम-रस-आस्वादनके लोभी रहते हैं नित श्याम॥

[६९९]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

नित्य सर्वकारण कारण हरि सर्वशक्तिमत् सर्वाधार।
सर्वाकर्षक घनीभूत चिन्मय आनन्दरूप अविकार॥
अखिलरसामृतमूर्ति, रसिक, रसराज मधुर-रस-पारावार।
महाभावरूपा राधा ह्लादिनि प्रत्यक्ष प्रेम-अवतार॥
दिव्य नित्य सौन्दर्यसुधानिधि शुचि माधुर्यरसाब्धि अपार।
स्व-सुखवासनारहित परस्पर नित्य मधुर सुखके दातार॥
बनकर आस्वादक आस्वाद्याऽस्वादन करते रस-विस्तार।
स्थापित करते प्रेमराज्यका मङ्गलमय आदर्श उदार॥

[७००]

(राग पीलू—तीन ताल)

मिलौ न चाहें तुम कबौं, करौ भलें मति याद।
नित्य याद मोकूँ रहौ, छिन भर जाय न बाद॥
देउ दुःख मोकूँ अमित, करौं न कछु फरियाद।
बनी रहै मन में सदा तुम्हरी मीठी याद॥

[७०१]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

जहाँ पवित्र भाव हैं रसमय, जहाँ परस्पर निर्मल प्रेम।
वहाँ न चिन्ता-भय-विषाद कुछ, नित्य प्रकट नित्योगक्षेम॥
देना नहीं शेष है कुछ भी, नहीं प्राप्त करना कुछ शेष।
प्रिय-सुख-वाञ्छा एक, नहीं मन भुक्ति-मुक्ति-इच्छाका लेश॥
लाभ-हानि, सुख-दुःख, प्रशंसा-निन्दा, मान तथा अपमान।
रहा न कोई द्वन्द्व प्रियाप्रिय, रहती सबमें दृष्टि समान॥
करते नित्य ललित लीला प्रिय लीलामय, ले मुझको संग।
मैं भी पृथक् न कभी, नित्य हूँ उनकी ही अभिन्न निज अङ्ग॥

[७०२]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

'सर्व-त्याग' हो गया सहज ही, होने लगा 'भजन' अविराम।
एकमात्र 'प्रियतम-सुख' ही है 'भजन' सहज सुन्दर सुखधाम॥
'कृष्ण सुखी होंगे'—इससे मैं करूँ सर्वथा 'सर्वत्याग'।
जगी नहीं 'कर्तव्य-बुद्धि', यह केवल सहज रहा 'अनुराग'॥
मेरी अब प्रत्येक क्रियामें ही रहता यह 'सहज सुभाव'।
इसीलिये 'प्रियतम-सुख'के हित उठते नये-नये नित चाव॥
लोक-वेद, तन-धर्म-कर्म सब लज्जा-धैर्य-मान-सुख-भोग—
सहज हो गया त्याग सभीका, जबसे हुआ श्याम-सुख-योग॥
मिटे सभी—आसक्ति, वासना, ममता, आशा, काम, क्रोध।
केवल 'प्रियतम-सुख' ही प्रिय अति जीवनका रह गया सुबोध॥
मिटी सभी अनुकूल और प्रतिकूल वेदना, विस्मय-खेद।
'प्रियतम-सुख'में देश-कालका, बन्ध-मोक्षका रहा न भेद॥

[७०३]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

नहीं वासना, नहीं कामना, नहीं रागमय किंचित् भोग।
श्याम-सुधा-सागर पवित्रमें नित एकत्वपूर्ण संयोग॥
जीवन-मरण, मिलन-बिछुड़नकी कभी न कोई रहती बात।
किसी बाहरी स्थितिका होता कभी न प्रिय-अप्रिय आघात॥
देश-कालसे कभी न होता किंचित् भी कदापि व्यवधान।
मिले सदा रहते, अमिलनका होता कभी न किंचित् भान॥
होता कभी न प्रेमास्पद-प्रेमी स्वामी-सेवकका भेद।
रहता सदा अभिन्न भाव शुचि, रहता नित्य पवित्र अभेद॥

[७०४]

(दोहा)

प्रथम सीस अरपन करै, पाछे करे प्रबेस।
ऐसे प्रेमी सुजन को है प्रबेस यहि देस॥

[७०५]१

(राग सोहनी—ताल दादरा)

विषय-रस नीरस सदा है, विष भरा, संतापमय।
विषय-रतिसे नित्य बढ़ता है, इसीसे शोक-भय॥
कृष्ण-पद-रति है सुधामयि दिव्य अति माधुर्यमय।
तनिक-से अस्वादसे सब दूर होते शोक-भय॥

[७०६]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

प्रानसहित या देह कौ बिसरि जाय सब नेम।
ताही कौं जग कहत हैं पूरन प्रेमी प्रेम॥
अकथ कथा है प्रेम की, कही जात नहिं बैन।
रूप-सिंधु भरि लेत हैं, पल-प्यालनमें नैन॥
प्रेमपास में फँसि मरै, सोई जिऐ सदाहिं।
प्रेम-मरम जाने बिना, मरि कोउ जीवत नाहिं॥

[७०७]

(तर्ज वागेश्री—ताल कहरवा)

जिसने अपने तन-मन-जीवन सौंप दिये प्रियको सानन्द।
जिसने सब अधिकार दे दिया इन्हें बरतनेका स्वच्छन्द॥
जिसको गले लगाकर प्रभुने किया समर्पण सब स्वीकार।
जिसको कहा—'प्राण तुम मेरी', क्यों वह यों अब करे विचार?
कैसे वह दुखिया माने, क्यों समझे वह अपनेको दीन।
जिनके तन-मन, वे समझेंगे, भोगेंगे दुख-दैन्य मलीन॥
रखें शरीर, न रखें भले ही, रखें निकट अति, रखें सुदूर।
रखते वे अपनेमें नित ही, रहते स्वयं सदा भरपूर॥
जायें कहीं, मिलें, न मिलें वे, करें सदा सब कुछ विपरीत।
झंकृत होंगे, बस, उनमें ही कर्कश-मधुर सभी संगीत॥

[७०८]

(राग तोड़ी—तीन ताल)

जाकौं प्रभु अपनो करि लीन्हों।
जाकौ चरन-सरन दै सबसौं सहज अभय करि दीन्हों॥
जाकौ हृदय लगाय कह्यौ—'तू सबै भाँति जन मेरो'।
सो क्यों होय सोच-चिंता बस प्रभु चरननि को चेरो॥
जग के दुःख दोष नहिं कबहूँ, ताकौं भेंटन आवे।
दूरहि तैं तेहि देखि सुरच्छित, दौरि सबै दुरि जावे॥
सुर मुनि सिद्ध सुयोगी ताकौ भाग्य सराहत थाकै।
अखिल विस्वपति प्रभु सुख मानत, गले लगत अति जाकै॥

[७०९]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

पूर्ण समर्पण हो सदा स्व-सुख-कामना-हीन।
गुण अनन्त दीखे सदा, मन गुण-दर्शन-लीन॥
कहीं न दीखे तनिक भी प्रियतममें कुछ दोष।
कभी न मनमें हों तनिक क्षोभ, निराशा, रोष॥
देता मैं कुछ भी नहीं, कोई उन्हें पदार्थ।
देते रहते वे सतत, यह अनुभूति यथार्थ॥
प्रियतम जो देते मुझे अवहेला, अपमान।
संकट-क्लेश महान, यह है उनका रस-दान॥
है उनकी आत्मीयता, है प्रियतमका प्रेम।
ध्वंस न हो सकता कभी, यही प्रेमका नेम॥
पल-पल बढ़ता ही रहे, पल-पल नव आनन्द।
पल-पल नित नव रस-सुधा मधुर पान स्वच्छन्द॥

[७१०]

(राग वसन्त—ताल दादरा)

देह-प्राण-मन, वस्तु-परिस्थिति, ममता-राग-कामना-मोह—
सभी समर्पण हुए सहज, हैं वहीं प्रेम शुचि सुख-संदोह ॥
होता नहीं अनन्त प्रेम यह अन्तवानमें किसी प्रकार।
एक अनन्त पूर्ण प्रभुमें ही होता, बढ़ता नित्य अपार ॥
कभी न होता पूर्ण प्रेम यह, कभी न आता इसका अन्त।
नित नव शुचि रस बढ़ता, बढ़ता नित नव रस-माधुर्य अनन्त ॥
निज-सुख-वाञ्छा-लेश न रहता, रहता स्मृतिमें भी न विकार।
उमड़ा रहता एक नित्य सर्वत्र प्रेम-रस-पारावार ॥
मिट जाते सब द्वन्द्व, शेष रह जाते केवल प्रियतम एक।
प्रेम-सुधा-रस-आस्वादन-रत, आत्मलीन कर सभी अनेक ॥

[७११]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

निज सुख वांछा नैकु नहिं, नहिं मन भोगासक्ति।
प्रिय-पद-रति अति बढ़त नित, सुचि प्रिय-सुख-अनुरक्ति ॥
नित नव मधुमय मिलन-सुख, नित नव रस-उल्लास।
नित नव-नव प्रिय-सुख-करन, सरब-समरपन रास ॥
नित नव निरमल बिधु-बदन, नित नव कला-कलाप।
नित नव मुरली-धुनि मधुर, नित नव रस-आलाप ॥
नित अनन्य ममता नवल, नित नव रस-बिस्तार।
नित प्रियतम-सुख-लालसा, अनुदिन बढ़त अपार ॥

[७१२]

(राग परज—ताल कहरवा)

मिले नेत्र नेत्रोंमें जाकर, श्रवण मिले श्रवणोंमें सत्य।
मिलीं अन्य इन्द्रिय सारी प्रियके इन्द्रिय-समूहमें नित्य ॥

हृदय हृदयमें मिला, समाये प्राण सदा प्रियतमके प्राण ।
एकरूप हो गये, रहा रंचक भी नहीं भिन्नता-भान ।।
किसको कौन समर्पित, किसमें कौन हुआ कब कैसे लीन ।
प्रियतम है या प्यारी, कौन बताये यह सुधि-बुधिसे हीन ।।

[७१३]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

जिससे परम सुखी हों मेरे एकमात्र वे परम प्रेष्ठ ।
वही धर्म है, वही कर्म है, वही एक कर्तव्य श्रेष्ठ ।।
फिर चाहे वह चिर बन्धन हो, हो चाहे तुरंत ही मोक्ष ।।
हो चाहे अज्ञान तमोमय, हो फिर भले ज्ञान अपरोक्ष ।।
हो अनन्तकालीन स्वर्गसुख, चाहे नरक-यन्त्रणा घोर ।
हो अशान्तिके बादल छाये, चाहे नित्य शान्ति सब ओर ।।
हो अतिशय दारिद्र्य भले, हो चाहे अतिशय भोग-विलास ।
हो चाहे कर्मोंका जीवन, चाहे पूर्ण कर्म-संन्यास ।।
बन्ध-मोक्ष, अज्ञान-ज्ञानसे, स्वर्ग-नरकसे नहिं सम्बन्ध ।
रहा न भोगैश्वर्य, परम दारिद्र्य घोरका कुछ भी बन्ध ।।
नहीं किसीमें राग तनिक भी, नहीं किसीसे भी वैराग्य ।
प्रियतमका, बस, एकमात्र सुख ही मेरा जीवन, सौभाग्य ।।

[७१४]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

नहीं मिलनमें तृप्ति, कभी अमिलनमें है न अभाव कभी ।
हुए एकरस नित्य प्रेम-सरितामें भावाभाव सभी ।।
हर वियोगमें हर क्षणमें होता यह अतुलनीय अनुभव ।
कभी दो नहीं हुए आजतक, कभी न होने हैं सम्भव ।।
नित्य एक हैं, नित्य मिलन है, है रस-पारावार अनन्त ।
मिलन कहाँ कैसा, जब होता कभी न नित्य-मिलनका अन्त ।।

मिलनानन्द विलक्षण पैदा कर देता फिर मिलनोन्माद।
दो बन जाते तुरत, प्रतिक्षण बढ़ता मधुमय रस-आस्वाद॥
होती नहीं कदापि तृप्ति, बढ़ती रहती रस-प्यास अपार।
यही चाहते—बने रहें दो, बहती रहे सदा रस-धार॥
करते रहें पान रस मधुमय, दुर्लभ, दिव्य नित्य अविराम।
हो न कल्पना भी वियोगकी, रहे नित्य संयोग ललाम॥
यों बहती रसमयी मधुर अति संतत प्रेम-नदी पावन।
विप्रलम्भ संयोग मनोहर तट इसके दो मनभावन॥

[७१५]

(राग परज—ताल कहरवा)

लग जाती है होड़ परस्पर प्रेमी-प्रेमास्पदमें शुद्ध।
देते सुख-सम्मान परस्पर, करते हठ अविरुद्ध विरुद्ध॥
तुम आरोगो, मैं लूँ पीछे अधरामृतयुत महाप्रसाद।
आता उसमें मुझे विलक्षण परम मधुरतम दिव्य स्वाद॥
मुँहमें रख, रस ले, निज रस भर, दो तुम मुझे चबाया पान।
पाऊँ मैं अति मधुर, मनोहर रस उसमें विरहित उपमान॥
तुम बैठो, मैं करूँ तुम्हारा निज हाथों सुन्दर शृङ्गार।
निज कर चुन सुरभित सुमनोंका गूँथ तुम्हें पहनाऊँ हार॥
मान करो तुम, तुम्हें मनाऊँ मैं, कर अति विनीत मनुहार।
तुम पौढ़ो, मैं पग चाँपूँ, मैं करूँ सुशीतल सुखद बयार॥

[७१६]

(राग भूपाली—तीन ताल)

प्रेम-रस-सागर नागरि राधा।
चरन चारु नख-चंद्र-चंद्रिका हरत सकल तम-बाधा॥
सुमिरत तुरत जरत बहु जनमनि के अगनित अपराधा।
मिलत प्रेम-पीयूष सुदुरलभ, सफल सकल सुचि साधा॥

****

[७१७]

(राग सारंग—तीन ताल)

धन्य-धन्य ब्रजकी नर-नारी।
जिन्हके आँगन नाचत नित-प्रति मोहन करतल दै दै तारी॥
परम प्रिया मनमोहनजूकी प्रेमपगी रस-विषय गँवारी।
जिन्हके हाथ खात माखन दधि, लाड़ लड़ावत दै दै गारी॥
मुरली-धुनि सुनि भागति सगरी लोक-लाज गृह काज बिसारी।
चाहत चरन-धूलि नित तिन्हकी दीन अकिंचन प्रेम-भिखारी॥

[७१८]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

जितना-जितना मनसे आत्मसुखेच्छाका होता है त्याग।
उतना-उतना ही विशुद्ध बनता जाता मनका अनुराग॥
फिर केवल प्रियतम-सुखकी ही एक अभीप्सा उठती जाग।
फिर केवल वह प्रियसुखका ही साधन बन रहता बड़भाग॥
स्तुति-निन्दा, शुभ-अशुभ, प्रियाप्रिय, लाभ-अलाभ, मान-अपमान।
बन्धन-मोक्ष, नरक-सुरपतिगृह हो जाते सब द्वन्द्व समान॥
एकमात्र प्रियतम-सुख जीवन, एकमात्र प्रियतम भगवान।
राधा-गोपीजनका पावन दुर्लभ यही स्वरूप महान॥

[७१९]

(राग भैरव—तीन ताल)

'मेरे साथ बिहार करैं प्रिय, मुझको सुखी करें भगवान'—
गोपी मनमें कभी न होती, ऐसी चाह जान अनजान॥
'राधा सँग श्यामकी क्रीड़ा चलती रहे सदा अविरोध'—
निज क्रीड़ासे कोटि गुणा होता है गोपीको सुख-बोध॥

[७२०]

(राग बागेश्री—तीन ताल)

सकल साधनोंकी फलरूपा त्याग-प्रेमकी मूर्ति।
भुक्ति-मुक्ति-इच्छासे विरहित माधव-इच्छा-पूर्ति॥
परम शुद्ध सेवाका रखतीं ये आदर्श महान।
प्रिय-सुखैक-इच्छारूपा, इनके लोभी भगवान॥
प्रेम-रसाम्बुधि इनमें पावन उठती लहर अपार।
दिव्य रासलीला करते हरि इनके सङ्ग उदार॥

[७२१]

(राग मालव—तीन ताल)

गोपिन की उपमा, बस, गोपी।
गोपीरूप-ओप सुचि अनुपम अति केवल गोपिन ही ओपी॥
जो रस-रूप आप, जा के रस-सुर-रिषि-मुनि पावत रस सोपी।
गोपिन रस-आस्वादन हित प्रभु बिरच्यौ मन, मरजादा लोपी॥
जिन के लीला-चरित ललित लखि चकित नमत दुर्बासा कोपी।
जिन के पद-रज-कन-परसन हित ऊधौ बन्यौ चहत जड़ चोपी॥
सर्वातीत अमन नित मन रचिता महँ मधुर मनोरथ छोपी।
मिल्यौ चहत जिन सौं बिह्वल ह्वै, धन्य-धन्य, जय-जय सो गोपी॥

[७२२]

(राग धनाश्री—तीन ताल)

गोपीजन की महिमा अतुलित।
जिनके भाव लहन कौं तरसत बेद-रिचा नित रिषि-मुनि तप-रत॥
बिमल ब्रह्मबिद्या तप करि गोपिन सम चहत प्रीति अति पावन।
जासों मिलत ब्रह्म पर-सौं-पर, रसमय मधुर रूप मनभावन॥
सदा प्रेम-परबस जिनके हरि, राखत मन जिन कौं अति आदर।
सदा रहत जिनके ढिग बरबस, चहत न रहन छाड़ि तिन छिनभर॥
बस्यो रहत मन-प्रान नयन महँ बनि तिन के मन-प्रान-पुतरि दृग।
रास-बिलास करत नित रसमय, भूलि सकल भगवत्ता अग-जग॥

[७२३]

(राग खमाज—तीन ताल)

गोपिन पटतर नहिं सुरनारी।
सबहि नचावनहार स्वयं हरि नाचे जिन सँग दै करतारी॥
सफल भई जिनकी सब इंद्रिय, पाइ परस निज मन अनुहारी।
मन-मति भए धन्य अपने महँ, निरखि निरंतर बसे मुरारी॥
नयन-सरोज बसे नित बनि मधु मधुकर-रूप मदन-मद-हारी।
स्त्रवननि बसे नित्य मुरली-धुनि, स्वर लहरी निज जन सुखकारी॥
बसे नासिका गंध मधुर सुंदर सजि करत सबहि मतवारी।
रसना बसे अन्न बनि रुचिकर, मधुर, मनोहर, सुचि, मनहारी॥
सकल अंग सुख दैन, सबन्हि के अंग परस निज मादनकारी।
करि संस्परस, भोग्य बन सब के, तन-मन सफल किए नित झारी॥
गोपी-जन-मन-प्रेम-रसास्वादन हित प्रेमबिबस गिरधारी।
रहत नित्य ललचात मनहिं मन, लहत परम सुख सुख-आधारी॥

[७२४]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

जिसकी कहीं न कोई तुलना, जिसका कहीं न कुछ उपमेय।
सर्वरहित जो सदा सर्वमय सर्वातीत सर्वपर श्रेय॥
जिसकी सत्ता चेतनता आनन्दरूपता अमित अनन्त।
निज स्वरूप-महिमामें स्थित जो, जिसमें सबका उद्भव-अन्त॥
वही अचिन्त्यानन्त अनिर्वचनीय दिव्य माधुर्याधार।
नाच रहा व्रज-धूल-धूसरित प्रेम-सुधा-रस-पारावार॥

[७२५]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

कृष्ण-प्रियतमा राधा रानी हों लीला-सुखसे सम्पन्न।
होता इससे ही उनके मन अतुलानन्द अमित उत्पन्न॥

नहीं चाहती लीला-सुख वे सखि-मञ्जरी कृष्णके सङ्ग।
इसी त्यागमय परमभावसे पूर्ण नित्य उनके सब अङ्ग॥
कृष्ण-प्रेम-लतिका हैं राधा, सखि सब उसके पल्लव-फूल।
लीलामृतसे लता सींचते जब हो कृष्ण परम अनुकूल॥
राधा-लता प्राप्त करती तब जो आनन्द स्वयं स्वच्छन्द।
पातीं पत्र-पुष्प मंजरियाँ उससे कोटिगुना आनन्द॥

[७२६]

(राग बहार—ताल कहरवा)

पूर्ण त्यागमय सर्वसमर्पणका जिनके अनन्य अभिलाष।
निज-सुख-वाञ्छा-लेश-गन्धका त्याग, सहज मन परमोल्लास॥
प्रियतम-सुख ही एकमात्र हैं जिनके जीवनका आनन्द।
पूर्ण आनन्द ममत्व नित्य प्रियतम-पद-पंकज में स्वच्छन्द॥
प्रियतम मनसे जिनका मन है, प्रियतम प्राणोंसे हैं प्राण।
प्रियतम सेवारत नित श्रवणेन्द्रिय त्वग्-दृग-रसना-घ्राण॥
नित्य कृष्ण-सेवा-रसरूपा सर्वसद्गुणोंकी जो खान।
सर्वसुखोंके दाता को भी देती अहंरहित सुख-दान॥
ऐसी प्रियतम-सुख-स्वरूपिणी, कृष्ण गतात्मा निरहंकार।
गोपीजन, है भरा हृदय शुचि प्रेम-सुधारस पारावार॥
जिनके पावन प्रेमामृत-रस आस्वादन हित भगवान।
शरद-निशाओंमें मधु मन कर निर्मित रचते रस विधान॥
पुन्यमयी उन गोपीजनके पदरजमें सतकोटि प्रणाम।
जिसे चाहते उद्धव बनकर लता-गुल्म औषधि अभिराम॥

[७२७]

(लावनी पहली तर्ज—ताल कहरवा)

कामगन्धसे शून्य सर्वथा, निज सुखकी इच्छासे हीन।
कृष्णा-सुखेच्छा ही जीवन है नित्य कृष्ण-सुख-दर्शन-लीन॥

कृष्ण प्रेमरस-सार-विनिर्मित है उनका अति दिव्य शरीर।
नव-नव कृष्णसुखाभिलाषसे रहता उनका चित्त अधीर॥
यदि श्रीकृष्ण सुखी हों तो अति दुःख उन्हें हों अति सुखरूप।
दुःखोदधिमें रहकर भी वे सुखका अनुभव करें अनूप॥
निजसुख-वाञ्छा-लेश न उनके, मनमें तनिक न काम-विकार।
तो भी कृष्णसुखेच्छासे वे करतीं निज सुखको स्वीकार॥
सुख-उपभोग कालमें भी वे नहीं भूलतीं प्रिय-सुख-काम।
इसीलिये वे निज सुखमें नित रहतीं अनासक्त, निष्काम॥
गमन-आगमन, शयन-जागरण, वस्त्राभूषण, तन-शृङ्गार।
सभी कृष्णसुख-हेतु, प्रेम-रसपूर्ण नित्य आहार-विहार॥
यदि श्रीकृष्ण सुखी होते हों, उनमें देख क्रोध, मद, मान।
तो वे अति उल्लास सहित करती हैं क्रोध, महामद, मान॥
रूठ बैठतीं, परुष बोलतीं, करतीं तिरस्कार-अपमान।
लोक-वेदसे कभी न डरतीं, यदि सुख पाते प्रिय भगवान॥
है आसक्ति कृष्ण-सुखमें अति, है मन अमित कृष्ण-सुख-काम।
कृष्ण-सुखेच्छामय जीवन है, परम पवित्र दिव्य सुखधाम॥
भुक्ति-मुक्ति की नहीं पिशाची इच्छाका उनके मन बीज।
प्रेमानन्द-सुधा-रसमय दुर्लभ नित रस-समाधि निर्बीज॥
परम रम्य, शुचि, दिव्य, अहंकी चिन्तासे विरहित नित धन्य।
सुर-मुनि-दुर्लभ, कृष्ण-प्रेम-रसमय यह 'गोपीप्रेम' अनन्य॥

[७२८]

(राग बागेश्री—ताल कहरवा)

निज-सुख-काम-गन्धका जिनमें किंचित् भी न कल्पना-लेश।
प्रेम-दिनेश प्रकट रहता नित, मिटा काम-तम, रहा न शेष॥
जिनके कर्म, विचार—सभीसे सदा एक प्रियतम-सुख-भाव।
सुखमय प्रिय-मुख दर्शन का नित नया-नया उठता मन चाव॥
ऐसी कृष्ण-सुखैकस्वरूपा, कृष्ण-मानसा प्रेमागार।
चरण-कमलमें मुझे स्थान दें, करें कृपा-रस-वृष्टि अपार॥

[७२९]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

श्रीराधा श्रीकृष्ण नित्य ही परम तत्त्व हैं एक अनूप।
नित्य सच्चिदानन्द प्रेमघन-विग्रह उज्ज्वलतम रसरूप॥
बने हुए दो रूप सदा लीला-रस करते आस्वादन।
नित्य अनादि-अनन्त काल लीलारत रहते आनँदघन॥
कायव्यूहरूपा राधाकी हैं अनन्त गोपिका ललाम।
इनके द्वारा लीला-रस-आस्वादन करते श्यामा-श्याम॥
कृष्ण, राधिका, गोपी-जन—तीनोंका लीलामें संयोग।
एक तत्त्व ही, तीन रूप बन, करता लीला-रस-सम्भोग॥
परम तत्त्व श्रीकृष्ण नित्य हैं अनुपम सत्-चित्-आनँदघन।
सत् संधिनि, चित् चिति, आह्लादिनी है आनन्दशक्ति रसघन॥
ह्लादिनि स्वयं 'राधिका', संधिनि बनी नित्य 'श्रीवृन्दावन'।
बनी 'योगमाया', चिति करती रसलीलाका आयोजन॥
राधा स्वयं बनी हैं व्रजमें गोपरमणियाँ अति अभिराम।
लीला-रसके क्षेत्र-पात्र बन, यों लीलारत श्यामा-श्याम॥
व्रजसुन्दरी प्रेमकी प्रतिमा, कामगन्धसे मुक्त, महान।
केवल प्रियतमके सुख-कारण, करती सदा प्रेम-रस-दान॥
लोक-लाज, कुल-कान, निगम-आगम, धन, जाति, पाँति, यश, गेह।
भुक्ति-मुक्ति सब परित्याग कर करतीं प्रियसे सहज सनेह॥
इन्द्रिय-सुखकी मलिन कामना है अति निन्दित कलुषित काम।
मोक्षकाम-कामी ऊँचे साधक भी नहीं पूर्ण निष्काम॥
काम सदा तमरूप, अन्धतम नरकोंका कारण सविशेष।
प्रेम सुनिर्मल हरि-रस-पूरित परम ज्योतिमय शुभ्र दिनेश॥
जिसको नहीं मुक्तिकी इच्छा, जिसे नहीं बन्धनका भान।
केवल कृष्ण-सुखेच्छा-हित जिसके सब धर्म-कर्म, मति-ज्ञान॥
ऐसे गोपी-जन-मनमें लहराता प्रेम-सुधा-सागर।
इसीलिये रहते उसमें नित मग्न रसिकमणि नटनागर॥

[७३०]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

प्रथम साधना है इसकी—इन्द्रिय-भोगोंका मनसे त्याग।
हरिकी प्रीति बढ़ानेवाले सत्कर्मोंमें अति अनुराग॥
कठिन काम वासना-पापका करके पूरी तरह विनाश।
दम्भ-दर्प, अभिमान-लोभ-मद, क्रोध-मानका करके नाश॥
परचर्चाका परित्याग कर, विषयोंका तज सब अभिलाष।
मधुमय चिन्तन नाम-रूपका, मनमें प्रभुपर दृढ़ विश्वास॥
हरि-गुण-श्रवण, मनन लीलाका, लीला-रसमें रति निष्काम।
प्रियतम-भाव सदा मोहनमें, प्रेम-कामना शुचि, अभिराम॥
सर्व-समर्पण करके हरिको, भोग-मोक्षका करके त्याग।
हरिके सुखमें ही सुख सारा, हरिचरणोंमें ही अनुराग॥
भोग-मोक्ष-रुचि-रहित परम जो अन्तरङ्ग हरिप्रेमी संत।
उनका विमल सङ्ग, उनकी ही रुचिमें निज रुचिका कर अन्त॥
पावन प्रेमपंथके साधक करते फिर लीला-चिन्तन।
श्यामा-श्याम-कृपासे फिर वे कर पाते लीला-दर्शन॥
गोपी-भाव समझकर फिर वे होते हैं शुचि साधनसिद्ध।
रस-साधनमें सिद्धि प्राप्तकर पाते गोपीरूप विशुद्ध॥
तब लीलामें नित्य सम्मिलित हो बन जाते प्रेमस्वरूप।
परम सिद्धि यह प्रेम-पंथकी, यही प्रेमका निर्मल रूप॥

× × × ×

कर्म, योगपथ, ज्ञान-मार्गके सिद्ध नहीं आते इस ठौर।
वे अपने शुचि विहित मार्गसे जाते सदा साध्यकी ओर॥
राधा-कृष्ण-विहार ललितका यह रहस्यमय दिव्य विधान।
दास्य-सख्य-वात्सल्यभावमें भी इसका नहिं होता भान॥
व्रजरमणीके शुद्ध भावका ही केवल इसमें अधिकार।
वहीं फूलता-फलता, इस उज्ज्वल रसका होता विस्तार॥

[७३१]

(राग तिलंग—तीन ताल)

स्यामकी लीला सुखकी खान।
प्रकटत दुरत पलहि पल हम सँग खेलत करत गुमान॥
दीखत ही, नहिं दीखत कबहूँ, नहिं दीखत दरसात।
आवनमें जवान सो लागत छिन छिन आवत जात॥
हँसत हँसात, नचावत नाचत, गावत दै दै ताल।
मानत मान, मनावत कबहुँ, रूठि फुलावत गाल॥
छलत छलत मोद भरावत करत फरेबी बात।
नैनन नैन मिलावत कबहूँ, हिय सों हियो लगात॥
बिधुरस मिलत, मिलत ही बिछुरत रात दिना यह काम।
जाग्रत सुपन एक सो मानत लीला करत ललाम॥
तन मन धन मरजाद धरमकी, लोक लाज कुलकान।
भुक्ति मुक्ति सबकी सुधि बिसरी लखि मोहनि मुस्कान॥

[७३२]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

राधा नहीं चाहतीं निज सुख निज प्रियतमसे किसी प्रकार।
केवल प्रियतमके सुखसे वे होतीं परम सुखी अविकार॥
केवल यही चाहतीं—प्रतिपल प्रियतम सुखी रहें अविराम।
पल-पल उनको सुखी देखना-करना—यही एक, बस, काम॥
भक्त-पराधीनता उनका है निर्मल स्वभाव अभिराम।
राधा-पराधीन हो रहना लगता उन्हें अतुल सुखधाम॥
राधा नहीं चाहतीं लेकिन उनपर अपना ही अधिकार।
सभी प्राप्त हों प्रियतम-सुखको, करतीं यह अभिलाष उदार॥
मुक्तहस्त वे वितरण करतीं प्रियको, प्रिय-सुखको भर मोद।
सुखी करो सबको, नित प्रियसे कहतीं कर गम्भीर विनोद॥

मैं गुण-हीन, मलीन सर्वथा, क्यों मुझपर इतना व्यामोह।
मुझसे सभी अधिक सुन्दर, शुचि, मधुर, शील-सद्गुण-संदोह॥
प्रेम-रसास्वादन कर सबका, मुझे करो प्रिय! सुखका दान।
रससागर! नटनागर! प्रियतम! मेरे एकमात्र भगवान॥

[७३३]

(राग परज—ताल कहरवा)

सेवा करती नित प्रियतमकी, प्रियको सुख पहुँचाने हेतु।
करती सब मर्यादा रक्षा, देती तोड़ सहज श्रुति-सेतु॥
प्रियतमको सुख पहुँचे, उसका एकमात्र इतना ही धर्म!
नहीं समझती अपने भले-बुरेका अन्य दूसरा मर्म॥
उसकी सेवासे नित होता प्रियतमको शुचि सुख स्वच्छन्द।
इसे देखकर मिलता उसको लाखोंगुना अधिक आनन्द॥
पर निजसुख वह होता यदि प्रियतम-सुखमें बाधक क्षण एक।
तो वह उसे मानती पातक, घोर दुःख, तजती सविवेक॥
नरक-स्वर्गकी, दुःख-सुखोंकी करती नहीं कभी परवाह।
एकमात्र मन रहती बढ़ती नित प्रिय-सुखकी निर्मल चाह॥
सेवा-सुख-स्वरूप प्रियतमका बन जाता उसका शुचि रूप।
अहंरहित नित होती रहती उससे सेवा परम अनूप॥

[७३४]

(राग वसन्त—तीन ताल)

शुद्ध प्रेम श्रीराधाका है नित्य पूर्ण, विभु नित्य अपार।
किन्तु देखता कभी नित्य, बढ़ता रहता पल-पल सुखसार॥
अति गुरु, वह सर्वातिशायि, अति गौरवमय, अत्यन्त महान।
गौरव-अहंकारसे विरहित किंतु पवित्र दैन्यकी खान।
बढ़ी हुई वक्रिमा अनोखी आती उसमें बिना प्रयास।
किंतु सुनिर्मल, सरल, बढ़ाती नित शुचिता-सरलता-मिठास॥
नित्य विरुद्ध धर्म-गुण-आश्रययुक्त शुद्ध राधा-अनुराग।
धन्य-धन्य प्रियतम-स्वभाव-अनुगत, नित शुचि विरागमय राग॥

[७३५]

(दोहा)

मेरी उन राधाके शुचितम प्रेमराज्यमें नहीं प्रवेश—
काम-भोगका मलिन, कभी भी, किंचित्, कहीं कल्पना-लेश ॥
रागरहित शृङ्गार अनूठा, मोहरहित है पावन प्रेम।
सुख-वाञ्छा-विरहित ममता है, पूर्ण समर्पित योग-क्षेम ॥
स्वादरहित सब खान-पान हैं, है अभिमानरहित अतिमान।
भोगबहुलता भोगरहित नित, प्रियतम-सुखकी शुचितम खान ॥
इन्द्रिय-तन-मन-प्राण-अहं-मति हैं प्रियतम के लिये तमाम।
नहीं कार्य कुछ निजका उनसे, करते सब प्रियतमका काम ॥
संयमपूर्ण सहज ही होते जगमें, जगके सब व्यवहार।
नहीं किसीसे उनका मतलब, प्रियतम-सुख ही केवल सार ॥
मेरी ऐसी हैं वे राधा त्रिभुवन-पावनि जीवनसाध्य।
नित्य-तृप्त श्रीमाधवकी जो हैं पवित्रतम परमाराध्य ॥

[७३६]

(राग भैरव—तीन ताल)

राधारानी देतीं प्रियको पल-पल नया-नया आनन्द।
उस आनँदसे शत-शतगुण आनन्द प्राप्त करतीं स्वच्छन्द ॥
तन-मन-धन-जीवन-मति-गति, सब वस्तु, कर्म-आचार-विचार।
प्रियतमके सब सहज समर्पित, नित सुख-सेवा-रत, अविकार ॥
किंतु न रहता उन्हें कभी भी अपने देनेका कुछ भान।
कभी न आता उनके मनमें निज कृतिका किंचित् अभिमान ॥
रागरहित शृङ्गार विलक्षण, भोगरहित नित भोग महान।
प्रियतम-सुख हित दैन्ययुक्त सब हैं, अभिमान-रहित अतिमान ॥
निज सुख-वाञ्छा-विरहित ममता, नित विरागमय प्रिय-आसक्ति।
भोजन-पान स्वादविरहित निज, प्रिय-सुख-हेतु मुक्त अनुरक्ति ॥

मलिन काम-तमका न कभी हो पाता उनमें लेश प्रवेश।
रहता नित्य प्रकाशित शुचितम, दिव्य-ज्योतिमय प्रेम दिनेश॥
संयमपूर्ण सहज चलते नित देह-गेहके सब व्यवहार।
वे भी सब प्रिय-सुख-साधन ही होते, निजको सदा बिसार॥
अतुलनीय सौन्दर्य-शील, सद्गुण, स्वभाव, सद्भाव, सुरूप।
मेरी राधाके ये कृष्णाकर्षी पावन दिव्य अनूप॥
नित्य सेविका वे प्रियतमकी, विनय-विनम्र सहज मन दीन।
कहतीं सदा, मानतीं निजको दुर्लभ श्याम-प्रेम-धन-हीन॥
किंतु श्याम नित रीझे रहते, करते नित नूतन मनुहार।
परमाराध्य मानते निर्मल मनसे प्रियतम नन्दकुमार॥

[७३७]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

कृष्णमना, श्रीकृष्ण-मति, कृष्णजीवना शुद्ध।
कृष्णेन्द्रिया, सुचारु शुभ, कृष्णप्रिया विशुद्ध॥
कृष्ण-कथा मुखमें सदा, कृष्ण-नाम-गुणगान।
कृष्ण सुभूषण श्रवण शुचि, कृष्ण-गुण-निरत कान॥
कृष्ण-रूप मधु नेत्रमें, नासा कृष्ण-सुगन्ध।
कृष्ण-सुधा-रस-रसमयी रसना नित निर्बन्ध॥
कृष्ण-स्पर्श-संलग्न नित अङ्ग बिना व्यवधान।
कृष्ण मधुर रस कर रहा मन अतृप्त नित पान॥
नित्य कराती श्यामको मधुर अमिय-रस पान।
नित्य पूर्ण करती सभी श्याम-काम, रख ध्यान॥
श्याम-प्रेम शुचि रत्नकी अमित मनोहर खान।
श्याम-सुखकरण गुण अमित अनुपम नित्य निधान॥
भीतर-बाहर पूर्ण नित सुन्दर श्याम सुजान।
दीख रहा सब श्याममय, नित नव मधुर महान॥
विश्वविमोहन श्यामकी मनमोहिनि, रसधाम।
श्याम-चित-उन्मादिनी श्यामा दिव्य ललाम॥

[७३८]

(तर्ज रसिया—ताल कहरवा)

प्रेम जो प्रगट्यौ ब्रज के बीच,
सो तो दुरलभ है जग मायँ, सो तो अतुलनीय जग मायँ,
सो तो तीन लोक में नायँ, सो तो सप्त द्वीप में नायँ ॥
राधा महाभाव की मूरति, माधव रसिक-सिरोमनि रसपति,
इन की त्यागमयी उज्ज्वल रति, निगम न पायौ पार ॥
निजसुख-बांछाके सुचि त्यागी, एक दूसरे के अनुरागी,
भोग-मोच्छ के सहज बिरागी, महिमा अपरंपार ॥
एक दूसरे कौं सुख देवैं, निज सुख नहिं चाहैं, नहिं लेवैं,
प्रियसुख लागि त्याग कौं सेवैं, अहंकार करि छार ॥
प्रेम प्राप्त करिबौ जो चाहै, भर लै हिय में अमित उमाहैं,
सुख-दुखमैं न हँसै न कराहै, होय पूरौ तैयार ॥
गोपीजन के त्याग-भाव कौं, प्रियतम-सुख के एक चाव कौं,
सकल बासना के अभाव कौं करै समुद स्वीकार ॥
जीवै-मरै प्रेम के खातर, भोग-त्याग दोउन कौं तजकर,
प्रियतम के इच्छामय बनकर, रहै नित्य अविकार ॥

[७३९]

(राग हुजाज—ताल दीपचंदी)

अलौकिक राधा-माधव-प्रीति ।
अग-जग तें सब भाँति बिलच्छन रस, रुचि, रति, परतीति ॥
दोउ दोउन कौं नित्य रिझावत, दोउ दोउन के हेत ।
करत त्याग नित, नहीं लेस अभिमान, बिमल सुख देत ॥
निज आवस्यकता-सुख, निज गुन, तनिक न आवत याद ।
प्रिय सुख पहुँचावन अजोग्यता लखि नित करत बिषाद ॥

होत सँजोग नित्य बिछुरन में, होत सँजोग बियोग।
बिछुरन-मिलन न लोक-सरिस, अद्‌भुत बियोग-संजोग॥
राग अनंत नित्य रस में नित, भोग-बिराग अनंत।
राग-बिराग-रहित रसनिधि नित, राग-बिराग अनंत॥
भोगरहित वह भोग-सहित राधा-माधव-रति रूप।
लखि पावैं न कबहुँ लौकिक दृग-मन-मति, दिव्य अनूप॥

[७४०]

(राग भैरवी—तीन ताल)

अनोखी राधा-माधव-प्रीति।
नहीं बासना तनिक, एक-बस, प्रियतम-सुख-रस-रीति॥
नहिं भ्रम, नहीं मोह, नहि बंधन, नहीं मुक्ति की चाह।
नहीं पाप, नहिं पुन्य पुन्य-रस-सागर भर्‌यो अथाह॥
जीवन कौ नहिं हेतु अन्य कछु, नहिं मरजादा-सेतु।
फहरि रह्यौ नित अमित प्रेम को पावन मंगल-केतु॥
सुद्ध सुभाव अनन्य प्रीति-रस, नहिं बिभिचारी भाव।
नित्य मिलन में नित्य मिलन को सुचि सुख, सुचितम चाव॥
नित्य नवीन बिमल गुन-दरसन, निरगुन रति निष्काम।
नित नव चित्त-बित्तहर, बाढ़त सुचि लावन्य ललाम॥
नहीं भोग, नहिं त्याग, नहीं कछु राग, नहीं बैराग।
दोउन में दोउन के सुखहित छाय रह्यौ अनुराग॥
दोउ प्रबीन, दोउन के मन की जानत दोऊ बात।
दोउ सेवत नित, सेवा-हित नित दोऊ नित ललचात॥
नित्य एकरस, एकप्रान दोऊ, नित्य एक ही टेक।
नित्य मिलन कौं आतुर, नित मिलि रहे, न न्यारे नेक॥

[७४१]

(राग परज—ताल कहरवा)

है अति सुखकर मिलन मधुर, जिसमें होता प्रियका संयोग।
मृदुल मधुर मुसकान मनोहर, अनुपम, दिव्य सुधारस भोग॥
पर वह होता एक देशमें, एक कालमें, एक प्रकार।
अन्तर्दृष्टि न रहती, होती वृत्ति सर्वथा बाह्याकार॥
किंतु परम उत्कृष्ट नित्य सुख देता प्रियका विषम वियोग।
दिग्दिगन्तमें मिलता उनका निशि-दिन मधु दर्शन-संयोग॥
देश-कालका कभी न रहता कुछ भी वहाँ तनिक व्यवधान।
प्रति पदार्थमें मिलते प्रियतम, हरदम करते सुखका दान॥
नित्य स्पर्शसे पुलकित रहता रोम-रोम खिलते सब अङ्ग।
प्रिय-वियोग इससे अति उत्तम, खिलते जहाँ नित नये रंग॥

[७४२]

(राग पूर्वी—ताल कहरवा)

धन-जन-अभिजन-भवन सकल सुख-साधन, कलित कीर्ति, सम्मान।
इह पर-लोक भोग-वैभव लोकोत्तर सद्गति मुक्ति महान॥
कहीं, किसी भी वस्तु, परिस्थिति में न रहा सखि! रंचक राग।
छाया नित्य एक अनुपम आत्यन्तिक प्रियतम-पद अनुराग॥
लोक और परलोक-नाशके, नहीं नरकके भयका लेश।
प्रियतम पूर्ण सकल जीवनमें रही न कहीं अन्य स्मृति शेष॥
नित्य नवीन मधुरतम अनुभव, नित्य नवीन-त्याग-वैराग।
नित्य नवीन रसास्वादन रस-पूर्ण दिव्य नव-नव अनुराग॥
सत्ता नहीं किसीकी, कुछ भी, कहीं नहीं होती कुछ बोध।
अतः किसीमें नहीं बचा कुछ राग, नहीं कुछ वैर-विरोध॥
नहीं कल्पनाको भी खाली रहा न कोई मनमें स्थान।
मन भी नहीं रहा अब, उसको भी हरि हर ले गये सुजान॥

अपने मनसे अपने मनका, अपने तनसे तनका काम।
पूर्णकाम प्रिय करते रहते निज कामना-पूर्ति अविराम॥
क्या करते, क्यों करते, कैसे मरते?—उनसे पूछे कौन;
मनमें आता वही बोलते, मनमें आता रहते मौन॥
बिलग बोध कर तदपि स्वयं करते अनुभव संयोग-वियोग।
करते स्वयं कराते रहते नित नव मधुर दिव्य रस-भोग॥
परम रसिक वे रसमय रहते बने-बनाये दो प्रिय रूप।
रस लेते, रस-पान कराते, रस बरसाते अमित अनूप॥

[७४३]

(राग भैरव—तीन ताल)

लज्जा, शील, मोह गृह भारी, सिंहद्वार गुरुजनका मान।
धर्म-कपाट लगे थे अति दृढ़, ताला था कुलका अभिमान॥
वंशीरवके वज्रपातसे टूटा लज्जा-दुर्ग महान।
भूमिसात हो गया सभी कुछ, हुई भूमि सब एक-समान॥

[७४४]

(राग मल्हार—तीन ताल)

बरसत आनँद-रस कौ मेह।
स्यामा-स्याम दुहुन कौ बिगसित दिव्य मधुर रस नेह॥
सरस रहत सुचि दैन्य-भाव तैं कबहुँ न उपजत तेह।
निजसुख-त्याग परस्पर के हित, सब सुख साधन येह॥
भाव रहत नित बस्यौ रसालय, रस नित भाव-सुगेह।
नित नव-नव आनंद उदय, नहिं रहत नैक दुख-खेह॥

[७४५]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

नित्य नयी क्षमता है बढ़ती, नित्य नया उल्लास अथाह।
नित्य नयी आकाङ्क्षा अविरल, बढ़ता नित्य नया उत्साह॥

दोनों दोनोंके शुचि आत्मा, दोनों दोनोंके शृङ्गार।
दोनों दोनोंके नित प्रेमी, दोनों दोनोंके आधार॥
दोनों दोनोंके नित संगी, दोनों दोनोंके हिय-हार।
दोनों दोनोंसे मिल भूले भुक्ति-मुक्ति, अग-जग संसार॥

[७४६]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

देह-प्राण-मन-बुद्धि-इन्द्रियाँ, इनके स्वाभाविक सब कर्म।
अभिलाषा, आसक्ति, कामना, आशा-तृष्णाके सब मर्म॥
माया, मोह, अहंता, ममता, एवं उनके सब आचार।
इह-परके, परमार्थ-स्वार्थके ऊँचे-नीचे सब ब्यापार।
धन-जन, जीवन-स्वजन, सुयश-सत्कीर्ति, परम आदर-सम्मान।
सुगति-सिद्धि, सम्पत्ति-सफलता, प्रज्ञा अमल, विवेक महान॥
देहधर्म, परिवार-धर्म, सब लोकधर्म, वैदिक सब धर्म।
सर्वधर्म, धर्मी, धर्मात्मा, धर्मशरीर, धर्मका मर्म॥
देह-कुटुम्ब-स्वर्ग-सुख, अनुपम अतुल मुक्ति-सुख, ब्रह्मानन्द।
सभी समर्पण हुए सहज ही, रहा न कुछ भी उत्तम-मन्द॥
जाग्रत्-स्वप्न, सुषुप्ति-तुरीया, द्रष्टा-दर्शन-दृश्य-विचार।
भूत-भविष्यत्-वर्तमान सब हुए समर्पित निरहंकार॥
रहा न रंचक स्मृति-अर्पणकी, रहा कहीं न तनिक अभिमान—
करता पतन उच्चस्तरसे जो, हरते जिसे स्वयं भगवान॥
सर्वत्याग शुचितम होता यों—जहाँ एक प्रियतम-सुख हेतु।
होता उदय प्रेम-रवि उज्ज्वल, मरता काम-राहु तम-केतु॥
होता दैन्य प्रकट पावन तब, बढ़ता प्रियतम-सुखका चाव।
स्मरण 'अनन्य', 'सुखी तत्सुख' से—यही मधुरतम गोपीभाव॥
परम रत्न इस शुचि अमूल्य रतिकी जो विमल विलक्षण खान।
नित्य अगाध, सहज ही प्रतिपल वर्धमान जो अमित, अमान॥
स्नेह-मान-प्रणयादि अष्टविध रतिका जो सर्वोच्च सुरूप।
महाभाव-रूपा वे राधा सहज कृष्ण-कर्षिणी अनूप॥

[७४७]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

राधा-मानस-सिन्धु में उठहिं तरंग अपार।
प्रियतम सुख पहुँचावनी, मोहिनि कोटिन मार॥
करहिं बिबिध बृंदाबिपिन पिय सँग नित्य बिहार।
निभृत निकुंज नवीन में करि नव-नव सिंगार॥
निपुन परम रसकेलि में नित नबीनतम भाव।
प्रियतम-सुख हित करहिं नित, बढ़त नित नये चाव॥
पिय के हिय की जानहीं स्थूल-सूक्ष्म सब बात।
करहिं तैसोइ आचरन, छाया ज्यौं दिन-रात॥
पिय के नित अनुकूल अति करहिं सकल आचार।
करहिं कदापि नहीं तनिक पिय-प्रतिकूल बिचार॥
करि प्रतिकूलाचरन पुनि, बैठेहिं रूठि निकुंज।
रसिक मनावहिं जाइ तब दुखित-हृदय सुख-पुंज॥
परम चतुर ब्यवहार में, सब बिधि बिकसित ग्यान।
पै भोरी पिय निकट अति, सरल-हृदय निर्मान॥
सदा सुखमई सहज अति, नित आनंद-बिभोर।
पै पिय-सुख हित दुखित ह्वै, करहिं सु-चिंता घोर॥
रहहिं नित्य निर्भय सहज, कबहूँ होहिं न भीत।
एकाकी अभिसार में नीरव गावहिं गीत॥
कबहुँ अकारन मानि भय, सहज सुकंपित गात।
जाय छिपहिं पिय-भुजनि में बिह्वल अँग कसवात॥
पिय कौ पीतबसन निरखि, सम्मुझि आपनौ रूप।
मिलहिं जाय तामें तुरत, सोभा अमित अनूप॥
कबहुँ जो मलयानिल बसन अँग उड़ाय लै जाय।
पिय पीतांबर तैं तुरंत ढँकि अँग लेहिं दुराय॥

तरुन तमालनि तै लिपटि कनक-लतनि कौं देखि।
लिपटहिं स्याम तमाल सौं लता आपु ही लेखि॥
कबहूँ सुरभित कुसुम चुनि, रचि सुचि सुंदर हार।
पहिरावहिं आनंद भरि पिय-गल करि मनुहार॥
बिकसित लखि सुरभित सुमन, कहि अति बिनय समेत।
प्राननाथ! चुनि लाइयै हार रचन के हेत॥
पुष्प चयन करि प्रानधन देहिं जबहिं भरि मोद।
लेहिं अमित आनंद सौं करि रस-भरित बिनोद॥
कबहुँ मान करि मानिनी करहिं नहीं स्वीकार।
जब पिय रचि पहिरावहीं मधुर मनोहर हार॥
देखि प्रानबल्लभ बदन, पुनि छायौ संताप।
ह्वै ब्याकुल, तजि मान सब, जाइ मनावहिं आप॥
कबहूँ रचि निज कर रुचिर भोजन चारि प्रकार।
करवावहिं अति नेह तैं पिय कौं, करहिं बयार॥
कबहूँ पिय कर तैं स्वयं लेहिं ग्रास अति मोद।
जबै देहिं निजभुक्त सौं भरि हिय परम प्रमोद॥
या बिधि स्याम-अभिन्न तन स्यामा सँग नित स्याम।
आलंबन रस मधुर के, लीला करहिं ललाम॥

[७४८]

(राग परज—ताल कहरवा)

राधा-गोपी नहीं भोगकी नीच भूमिकापर रहतीं।
अतुल मोदसे सभी दुःख-कष्टों-विपत्तियोंको सहतीं॥
सहज स्व-सुख-वाञ्छाके तरुको समुद समूल छिन्न करतीं।
निजको भूल, सदा प्रिय-सुखके लिये स-सुख जीतीं-मरतीं॥
स्तुति-निन्दा, मानापमान, सुख-दुःख—द्वन्द्व सारे तजतीं।
योगक्षेम त्याग निज सब, प्रियतम-सुखको केवल भजतीं॥

नहीं स्वर्गकी तनिक कामना, नहीं नरकसे कुछ डरतीं।
प्रियतम-सुखकी अविचल स्मृतिसे भेद-विषमता सब हरतीं॥
सेवामें बाधक न मुक्ति कैवल्य उन्हें अच्छी लगती।
प्रिय-सेवा-तत्पर वे सुनकर 'मुक्ति' नाम डरतीं-भगतीं॥
सेवामयी नित्य, पर मन अभिमान नहीं किंचित् भरतीं।
प्रियतम-सुख-स्वरूप मनकी इच्छाको ही नित अनुसरतीं॥
यों भौतिक-आध्यात्मिक जगको उच्च त्याग-शिक्षा देतीं।
नीच अहं-इन्द्रिय-मनके सुख-संकल्पोंको हर लेतीं॥

[७४९]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

राधाराधन के परम हैं दो सुन्दर रूप।
दोऊ परम अमोघ सुभ, दोऊ श्रेष्ठ अनूप॥
प्रियतम प्रभु श्रीकृष्ण कौ सुख ही राधाभाव।
राधा-मनमें बढ़त नित प्रियतम सुख कौ चाव॥
तिन की सेवा में निरत रहें जो जन मतिमान।
राधा तासौं सदा ही पावै मोद महान॥
राधा-सुख कौ दूसरौ यह साधन बलवान।
मंजरि बनि सेवा करै समुद जुगल रसखान॥
निज सुख कौ रंचक नहीं, कितहुँ कल्पना-लेस।
सुख हित लाड़िलि-लाल के सहै समोद कलेस॥
सेवा सकल निकुंज की करै सदा अबिकार।
संयत इंद्रिय-मन सदा, बस, सेवा अधिकार॥
लखि निकुंज-लीला सुखी स्यामा-स्याम ललाम।
लहै परम सुख, बढ़ै सुचि सेवा-रुचि अभिराम॥
काउ मंजरी कौ रहै अनुगत, सदा सचेत।
मंजरि सम सेवा करै, ताकौ पाइ सँकेत॥

श्रीराधा-कृष्ण-जन्म-महोत्सव एवं जय-गान

[७५३]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

सर्वातीत, सर्वविरहित, जो सर्व, सर्वमय, सर्वाधार।
सर्वव्यापक, सर्वात्मा जो, स्वयं सृष्टि, स्रष्टा, संहार॥
मायापति, नित मायाविरहित, ब्रह्म, ब्रह्ममय, ब्रह्माधार।
निर्गुण, सगुण निराकृति, नित्य निरञ्जन, दिव्य सगुण साकार॥
प्रकृति-विकृतिमय, व्यक्त, प्रकृतिगत पुरुष, विश्वमय, विश्वाकार।
अपरीवर्तन रूप, एकरस, नित वैचित्र्यपूर्ण संसार॥
ब्रह्मा-विष्णु-महेशरूपसे करते जो लीला-विस्तार।
सरस्वती-लक्ष्मी-कालीके विविध अनन्त प्रकट आकार॥
देश-काल-बन्धन-विरहित, जो देश-कालमय, कालातीत।
कालरूप विकराल, सुनाते नित विनाशके भैरव गीत॥
नित्य-अनन्त-असीम-अलौकिक, परम स्वतन्त्र 'स्वयं भगवान'।
करते अन्तमयी-सी लीला, लौकिक, सीमित, कर्मप्रधान॥
'अवतारी' सब अवतारोंके, सबके 'अंशी' नित्य, अनादि।
सभी ईश्वरोंके ईश्वर, सब लोक-महेश्वर, सबके आदि॥
षोडशकलापूर्ण, सच्चित्-घन षडैश्वर्यसम्पन्न, उदार।
अज, अविनश्वर, चिन्मय भगवद्देहरूप, नित विगतविकार॥
लीलामय, लीला, लीलाके दर्शक, दिव्य सच्चिदानन्द।
अखिल प्रेम-रससिन्धु, प्रेमघनमूर्ति, प्रेम-वितरक स्वच्छन्द॥
विविध अचिन्त्यानन्त विरोधी गुणधर्माश्रयरूप महान।
प्रकट हुए प्रभु कारागृहमें कृष्ण अतुल ऐश्वर्य निधान॥

कहाँ कामनाग्रस्त नीच मैं, काम-मोहका क्रीत गुलाम।
कहाँ वेद-ऋषि-वाञ्छित पावन श्रीगोपी पद अति अभिराम ॥
कुत्सित काम-वासना मनमें लेकर गोपीपदका नाम।
अपने काले कर्मोंसे मैं करने चला उसे बदनाम ॥
आगे बढ़ता कहीं, झुलस मैं जाता, पाता दुःख अपार।
भीषण नरक-यन्त्रणा पाता, सहज पहुँचकर नरकागार ॥
बचा लिया पर प्रभुने अपनी सहज दयाका कर विस्तार।
सिद्ध कर दिया—कामी जनका नहीं प्रेम पथमें अधिकार ॥

—★—

श्रीराधा-कृष्ण-जन्म-महोत्सव एवं जय-गान

[७५३]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

सर्वातीत, सर्वविरहित, जो सर्व, सर्वमय, सर्वाधार।
सर्वब्यापक, सर्वात्मा जो, स्वयं सृष्टि, स्रष्टा, संहार॥
मायापति, नित मायाविरहित, ब्रह्म, ब्रह्ममय, ब्रह्माधार।
निर्गुण, सगुण निराकृति, नित्य निरञ्जन, दिव्य सगुण साकार॥
प्रकृति-विकृतिमय, व्यक्त, प्रकृतिगत पुरुष, विश्वमय, विश्वाकार।
अपरीवर्तन रूप, एकरस, नित वैचित्र्यपूर्ण संसार॥
ब्रह्मा-विष्णु-महेशरूपसे करते जो लीला-विस्तार।
सरस्वती-लक्ष्मी-कालीके विविध अनन्त प्रकट आकार॥
देश-काल-बन्धन-विरहित, जो देश-कालमय, कालातीत।
कालरूप विकराल, सुनाते नित विनाशके भैरव गीत॥
नित्य-अनन्त-असीम-अलौकिक, परम स्वतन्त्र 'स्वयं भगवान'।
करते अन्तमयी-सी लीला, लौकिक, सीमित, कर्मप्रधान॥
'अवतारी' सब अवतारोंके, सबके 'अंशी' नित्य, अनादि।
सभी ईश्वरोंके ईश्वर, सब लोक-महेश्वर, सबके आदि॥
षोडशकलापूर्ण, सच्चित्-घन षडैश्वर्यसम्पन्न, उदार।
अज, अविनश्वर, चिन्मय भगवद्देहरूप, नित विगतविकार॥
लीलामय, लीला, लीलाके दर्शक, दिव्य सच्चिदानन्द।
अखिल प्रेम-रससिन्धु, प्रेमघनमूर्ति, प्रेम-वितरक स्वच्छन्द॥
विविध अचिन्त्यानन्त विरोधी गुणधर्माश्रयरूप महान।
प्रकट हुए प्रभु कारागृहमें कृष्ण अतुल ऐश्वर्य निधान॥

साधुजनोंका परित्राण, अति दुष्टोंका करने निस्तार।
धर्मस्थापन-हेतु स्वयं प्रभुने यह लिया दिव्य अवतार॥
हरनेको निज प्रेमी विरही-जनका घोर विरह-संताप।
प्रेमधर्म-संस्थापनार्थ शुचि इच्छामय प्रगटे प्रभु आप॥
भाद्र, असित अष्टमी, अजनजन्मर्क्ष रोहिणी शुभ नक्षत्र।
मध्यरात्रि, बुधवार, छा गयी प्रभा सुखद अनुपम सर्वत्र॥
हुआ सुशोभन काल निरतिशय सर्व शुभगुणोंसे संयुक्त।
ग्रह-तारे-नक्षत्र हो उठे सभी तुरंत सौम्यतायुक्त॥
हुईं प्रसन्न दिशाएँ सारी, तारे नभ छाये चहुँ ओर।
नगर-ग्राम-व्रज हुए धरणिके आकर मङ्गलमय बेछोर॥
सरिता हुई सुनिर्मल-सलिला, निशि सर विकसे कंज अपार।
लदे वृक्ष पुष्पोंसे, पिक-अलि करने लगे चहक-गुँजार॥
शीतल-मन्द-सुगन्ध मधुर बह चला पवन सुख-स्पर्श पवित्र।
असुर-विरोधी साधुमनोंमें उदय हुआ सुख सहज विचित्र॥
सहसा सुर-दुन्दुभी बज उठीं, स्वर्गलोकमें अपने-आप।
सुनकर जन्म अजन्माका, सुर हर्षित हुए, मिटा संताप॥
किंनर, शुचि गन्धर्व गा उठे, करने लगीं अप्सरा नृत्य।
करने लगे सिद्ध-चारण स्तुति, मनमें मोद भरे सब सत्य॥
लगे देव-ऋषि-मुनि सराहने पृथ्वीका सौभाग्य अपार।
जलधर करने लगे सिन्धुतट जा, मृदु-मृदु गर्जन सुख-सार॥
लगा जगमगाने कारागृह, फैल गया शुचि सुखद प्रकाश।
कारका विषण्ण कण-कण मानो कर उठा मधुर-मृदु हास॥
खुली हथकड़ी-बेड़ी श्रीवसुदेव-देवकीकी तत्काल।
देख अलौकिक तेजपुंज अद्भुत बालक, हो गये निहाल॥
विष्णुरूप, भुज चार, शङ्ख शुभ, गदा-चक्र-अम्बुज अभिराम।
शोभित श्याम-नील सुन्दर तनपर पीताम्बर दिव्य ललाम॥

वक्षःस्थल श्रीवत्स, कण्ठ कौस्तुभमणि, नेत्र-कमल सुविशाल।
परम सुशोभित, रूप-राशि, सुर-ऋषि-मुनि-मन-हर परम रसाल॥
मणि-वैदूर्य-सुमंडित मनहर मुकुट, कर्ण कुण्डल द्युतिमान।
चमक रहे उनकी द्युतिसे काले घुँघराले केश अमान॥
कटि-किङ्किणी, कड़े-बाजूबँद, शोभित बाहु विलक्षण-रूप।
विस्मय-हर्ष-भरे नेत्रोंसे निरख रहे वसुदेव अनूप॥
करने लगे स्तवन, प्रभुको पहचान, भरे मन परमानन्द।
प्रभुने दिया पुरातन परिचय पिछले जन्मोंका, सुख-कंद॥
सुन देवकी कंस-भय-भीता माताका अति करुणालाप।
बन शिशु, 'पहुँचा दो मुझको गोकुल'—प्रभु बोले अपने-आप॥
स्वयं स्वरूपाशक्ति योगमाया, धर अनुजाका शुचि स्वाँग।
प्रगटी गोकुल नन्द-भवनमें, जननि यशोदाके, बड़भाग॥
इधर खुल गये सारे ताले, सोये सब प्रहरी, खो चेत।
प्रिय शिशुको ले गोद प्यारसे, चले पिता वसुदेव सचेत॥
यमुनाने, कर पद-स्पर्श, दे दिया मार्ग उनको सुखयोग।
पहुँचे नंद-भवन, देखे सब खुले द्वार, सोये सब लोग॥
सुला दिया शिशुको धीरेसे, तुरत यशोदाजीके पास।
खोये निधि ज्यों, ले कन्याको, चले उदास, भरे उल्लास॥
पहुँचे कारागृह तुरंत ही, हुए बंद अपने सब द्वार।
शिशु-रोदन सुन जागे प्रहरी, पहुँचा एक कंस-दरबार॥
सुनते ही दौड़ा पागल-सा कंस उसी क्षण, ले तलवार।
पहुँचा, छीन लिया कन्याको, भर मनमें आश्चर्य अपार॥
कन्या कैसे हुई, न समझा मर्म, पकड़ कन्याका हाथ।
दिया पछाड़ शिलापर पापीने अति निर्दयताके साथ॥
रोती रही देवकी, कन्या उड़ी, गयी नभ बिना प्रयास।
अष्ट भुजा आयुधयुत देवी बोली, देकर उसको त्रास॥

'मूर्ख ! हो चुका है पैदा वह, तुझे मारनेवाला वीर।
मुझे मारकर क्या होगा, मत मार बालकोंको, धर धीर' ॥
इधर बह चला नन्दालयमें परमानन्द-स्रोत निस्सीम।
करने लगे सभी अवगाहन मत्त, छोड़ मर्यादा-सीम ॥
फिर तो लीला चली रसमयी परम सुदुर्लभ, परम पुनीत।
मूर्तिमान हो चला सख्य-वात्सल्य-मधुर रसका संगीत ॥

× × × ×

व्रज-जीवन, गो-गोपी-सुख-धन, नन्द-यशोदाके प्रिय लाल।
सखा-परमधन, गो-वत्सोंके सुचि सेवक, रक्षक, गोपाल ॥
गोचारक, वन-वन पावनकर, वनचर-बन्धु विविध रुचि-रङ्ग।
क्रीड़ामत्त सतत प्राकृत बालक सम बाल-सखागण-सङ्ग ॥
असुरोद्धारक, कालिय-मर्दन, दुष्ट-निकन्दन, नित सुखरूप।
इन्द्र-दर्पहर, ब्रह्म-मोह-हर,स्वजन-दुःख-हर, रूप अनूप ॥
रसमय, नयन-हरण मुनिजन-मन, सिर घुँघराले काले केश।
मुरलीधर, शिखिपिच्छ-मुकुटधर, गिरिवरधर, नव नटवर-वेश ॥
रास-विहारी, कुञ्ज-विहारी, चित्त-वित्त-हारी व्रजराज।
रसिक, रसार्णव, रस-पिपासु, रस-लोलुप, रस-वितरक रसराज ॥
गोपीजन-मन-मोहन, गोपी-रञ्जन, गोपी-जीवन-प्राण।
राधाकान्त, राधिकावल्लभ, राधाप्रेम रहित परिमाण ॥
राधाराध्य, राधिकाराधक, नित्य अभिन्न राधिका-तत्त्व।
प्रेम-सुधा-रस-लीलास्वादन-हेतु भिन्न नित रखते स्वत्व ॥
नित नवीन सौन्दर्य-दिव्य-माधुर्य-रसामृत-सिन्धु अनन्त।
नित नवीन आनन्द-तरंगित नित्याकर्षक रूप अनन्त ॥
मधुर मधुरतम नव-नीरद-तनु नील-श्यामसुन्दर गौराभ।
लीला मधुर मधुरतम शुचितम रास, महत्तम जीवन लाभ ॥
मथुरागमन, मत्त मुष्टिक-चाणूर-कंस-कुवलय-उद्धार।
करके मुक्त पिता-माताको चरण-नमन कर बारंबार ॥

दे आश्वासन, उन्हें सुखी कर, उग्रसेनका कर अभिषेक।
स्वयं बने सेवक, रख अपनी शुचि निष्काम-भावकी टेक॥
गये द्वारका करके अपनी मथुरा-लीलाको सम्पन्न।
मुक्त किया वध कर अनेक असुरोंका, जो थे राज्यापन्न॥
इन्द्रप्रस्थ जा मिले बन्धु पाण्डवगणसे फिर अति मतिमान।
कुरुक्षेत्रके रण-प्राङ्गणमें दिव्य सुनाया गीता-ज्ञान॥
परम त्यागमय दिव्य प्रेमका महाभावमय राधारूप।
स्वयं दिखाया, मूर्तिमान हो, ऋषि-मुनि-दुर्लभ भाव अनूप॥
बिना त्यागके प्रेम न होता, प्रेम बिना न कभी आनन्द।
राधा-गोपी-प्रेम दिव्यसे यह शिक्षा दी आनँदकंद॥
गीतासे सिखलाया—'आशा-राग-कामना-द्वेष-ममत्व—
अहंकार-अभिमान-नाश, प्रभुकी शरणागति, भाव समत्व'॥
यह दिखलाया जीवनमें कर स्वयं आचरण अति आदर्श।
मानवरूप बने परतम प्रभुने, जो विरहित हर्षामर्ष॥
युगपत् रसिक-विरागी, भोगी-त्यागी, निष्ठुर-करुणागार।
मायावी-अति सरल, गृही-संन्यासी, अति संग्रही-उदार॥
कर्मी-ज्ञानी, अति प्रवृत्त-सुनिवृत्त नित्य, गुण-निर्गुणरूप।
ममतायुक्त-नित्य अति निर्मम, मोही-निर्मोही अपरूप॥
नित्य परम समता-स्वरूप-निज-रूप-प्रतिष्ठित, नित्य स्वभाव।
नहीं कहीं भी किसी भाँति उन सत्य तत्त्वका कभी अभाव॥
क्षर-अक्षर, अतीत दोनोंसे, पूर्ण पुरुष पुरुषोत्तम आप।
प्रकृति-अधीश्वर निज मायासे प्रकटे हरण शोक-संताप॥
गोपीप्रेम, ज्ञान गीताका दिव्य परम देकर उपदेश—
श्रद्धायुक्त हो करें सभी आचरण, दिया यह दिव्यादेश॥
जन्माष्टमी-महोत्सवका है परम लाभ यह, सबका सार।
शरणागत हो श्रद्धासे हम पा लें इसे साध्य-अनुसार॥

[७५४]

(राग काफी—ताल कहरवा)

नव-नीरद-नीलाभ कृष्ण तन परम मनोहर।
त्रिभुवन-मोहन रूप-राशि रमणीय सुभग वर॥
कस्तूरी-केसर-चन्दन-द्रव-चर्चित अनुपम।
अङ्ग सकल सच्चिन्मय सुषमामय सुन्दरतम॥
कीर-चञ्चु-निन्दक निरुपम नासा-मणि राजत।
कुञ्चित केश-कलाप कृष्ण लख अलि-कुल लाजत॥
सिर चूड़ा, शिखि-पिच्छ, मुकुट मणिमय अत्युज्ज्वल।
कर्ण-युगल कमनीय कर्णिका कुण्डल झलमल॥
कुटिल भ्रुकुटि, दृग-युगल विशद विकसित अम्बुज-सम।
रुचिर भङ्गिमा, ललित त्रिभङ्गी, मध्य सु-वङ्किम॥
पीत वसन तडिदाभ, दशन द्युतिमय, अरुणाधर।
मुख प्रसन्न, मुसकान मधुर, मुरलिका मधुर कर॥
भक्त-भक्त नित सेवक-भक्तानुग्रह-कातर।
प्रेम-रसिक रस-प्रेम-सुधा-आस्वादन-तत्पर॥
व्रज-प्रिय, व्रज-जन-सखा-स्वामि-सेवक तन-मन-धन।
नन्द-यशोदा-तनय, बाल-व्रज-रमणी-जीवन॥
भगवत्ता, सत्ता, ईश्वरता सारी तजकर।
व्रज-जन-सुख-हित-हेतु द्विभुज निज-इच्छा वपु धर॥
भाद्र-अष्टमी, कृष्ण पक्ष, बुधवार अनुत्तम।
शुभ रोहिणि नक्षत्र, मध्य-रजनी मङ्गलतम॥
हुए प्रकट श्रीनन्द-यशोदाके प्रिय सुत बन।
निज स्वरूप-वितरण करने, बन सबके निजजन॥

****

[७५५]

(राग वसन्त—ताल कहरवा)

जन्म अजन्मा, अविनाशीका हुआ आज अति मङ्गल-धाम।
कंस क्रूरके कारागृहमें, नँद-घरमें प्रकटे अभिराम॥
परम स्वतन्त्र, अखिल लोकोंके एकमात्र जो ईश महान।
भक्तोंके हो पराधीन, वे प्रकटे भक्तिवश्य भगवान॥
ग्वाल-बालकोंके सँग खेले विविध प्रकार गाँवके खेल।
वन-वनमें गो-वत्स चराये, किया वन्य जीवोंसे मेल॥
दधि लूटा, माखन-चोरी की, खूब मचाया शुचि हुड़दंग।
खूब छकाया, नयी-नयी रच लीला, सबको लेकर संग॥
दैत्य-दानवोंका वध करके, किया सहज उनका उद्धार।
लघु अँगुलीपर गोवर्धन धर इन्द्र-दर्पका किया सँहार॥
मुरली मधुर बजा, सबको कर मोहित, हरी चित्त-सम्पत्ति।
दावानल पी, कालिय वशकर, व्रजकी दारुण हरी विपत्ति॥
मिट्टी खा, फिर दिखलाया मुँहमें माताको विश्व अगाध।
हो आश्चर्य-चकित सुख पाया, उपजी नयी-नयी सुख-साध॥
गोपीजनके वसन-हरण कर किया आवरण-भङ्ग पवित्र।
महारास कर प्रेम-रसमयी भगवत्ताकी सिद्ध विचित्र॥
मथुरा पहुँच, किया धोबीका, कुब्जाका मङ्गल उद्धार।
मार कुवलयाको, मुष्टिक-चाणूर मल्लका कर संहार॥
पापी कंस क्रूरका वध कर, देकर उग्रसेनको राज—
करने लगे विविध लीला फिर ज्ञान-शक्ति-लीला-रसराज॥
कालयवनका सहज दमन कर, जरासंधका हर अभिमान।
बसे द्वारकामें जा माधव, किये विवाह अष्ट सविधान॥
भौमासुरका वध कर, सोलह सहस राजकन्या ले साथ।
आये, की कामना पूर्ण, उनको पकड़ा निज मङ्गल हाथ॥

पाण्डव-राज-सभामें वध कर, किया सहज शिशुपाल-निहाल।
कर स्वीकार अग्र-पूजनको, ऊँचा किया युधिष्ठिर-भाल॥
पाण्डव-कौरव समराङ्गणमें दे अर्जुनको गीता-ज्ञान।
अखिल लोक अघ-तम-हारी जो, मार्गदर्शिका ज्योति महान॥
दे अनन्य आश्रय, अर्जुनको किया नित्य निज-जन स्वीकार।
दिव्य लोकमें दिव्य देह धर, करता जो सेवा अविकार॥
ऐसे सर्वेश्वर जो सर्वातीत, सर्वमय, सर्वाधार।
प्राकृत-गुण-विरहित जो नित कल्याण-गुण-गणोंके आगार॥
अखिलरसामृतसिन्धु, नित्य सौन्दर्य परम माधुर्यनिधान।
परम स्वतन्त्र, प्रेमवश लेते प्रेमीको निज प्रियतम मान॥
पल-पल प्रेम बढ़ाते रहते, करते नित नव-नव रस-दान।
नित्य-तृप्त, नित नव रस-आस्वादन करते, करते रस-पान॥
राजनीतिविद कुशल, राज्य-निर्माता, नित्य पूर्ण निष्काम।
सबके दुखहर्ता, सुख-दाता, सबके नित्य सहज हित-धाम॥
परम सखा प्रिय, परम प्रियतम, परम पिता, गुरु, बन्धु ललाम।
सहज सुहृद्, शरणागत-वत्सल, परम वदान्य, आत्माराम॥
प्रकटे आज देव-मुनि-गो-द्विज-रक्षक सत्य-धर्म-आधार।
करो सभी मिल मुक्त-कण्ठसे उनका पुनः-पुनः जयकार॥
जय वसुदेव-देवकी-नन्दन, जय नँद-नंद, यशोदा-लाल।
जय प्रेमीजन-मुनि-मन-मोहन, जयति सुकोमल हृदय विशाल॥
जय नँदबाबा, जयति यशोदा, जय गोपी, जय गैया-ग्वाल।
जय वंशी, जय यमुना जय-जय, जय वृन्दावन, द्वापर काल॥
जय वसुदेव, देवकी जय-जय, जयति कंसका कारागार।
जय रोहिणि, बलराम जयति जय, जय उद्धव, अक्रूर उदार॥
जय मथुरा-द्वारका जयति जय, पटरानी हरि-उरकी माल।
जय षोडस सहस्र हरि-गृहिणी, जयति धनंजय कुन्ती-लाल॥

जय गीता, भारत महान जय, जयति भागवत लीला-सार।
जय प्रेमी-ज्ञानी-जन, करते जो प्रभुका महिमा-विस्तार॥

[७५६]

(राग भैरवी—तीन ताल)

प्रकट हुए थे धराधाममें पूर्ण परात्पर श्रीभगवान।
परम दिव्य ऐश्वर्य-निकेतन, सुन्दरता-मधुरता-निधान॥
दुष्टोंको निज धाम भेजकर, साधु-जनोंका कर उद्धार।
किया धर्मका संस्थापन था, लेकर स्वयं दिव्य अवतार॥
वही पुण्य तिथि भाद्र-अष्टमी, कृष्णपक्ष मङ्गलमय आज।
सुरभित श्रद्धा-सुमन-राशिसे सभी सजाकर मङ्गल साज॥
नन्दालयमें आज महोत्सव वही हो रहा मधुर विशाल।
शीघ्र बुझा देगा जो भव-दावानल सहसा अति विकराल॥
हम भी सब मिल आज मनायें वही महोत्सव मङ्गलरूप।
भोगासक्ति-विनाशक, भव-बाधा-हर, दायक प्रेम अनूप॥
प्रेम कृष्णका, प्रेम कृष्णामें, स्वयं कृष्ण ही निर्मल प्रेम।
हमें मिले, बस, एकमात्र वह, वही हमारा योग-क्षेम॥
कृष्ण-नाम-गुण गाओ अविरत प्रेमसहित नाचो तज लाज।
बनो कृष्णभक्तोंके भक्तोंके अनुगामी सहित समाज॥
मधुर मनोहर मङ्गलमय श्रीराधा-माधवका सब काल।
करते रहो स्मरण नित संतत, पल-पल होते रहो निहाल॥

[७५७]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

कंस तमोमयका था काला पापचिह्न वह कारागार।
काल-कोठरी थी, उसमें नियुक्त थे काले पहरेदार॥
भाद्रमासके कृष्णपक्षकी अँधियारी आठैं बुधवार।
काली अन्ध निशा थी, छाया अन्धकार था घोर अपार॥

अज-अविनाशी सर्वेश्वर प्रभु लेंगे अब मङ्गल अवतार।
अधिष्ठान कर प्रकृति निशामें, करके निज माया-विस्तार॥
उसी समय छा गया कक्षमें सहसा शीतल दिव्य प्रकाश।
बदल गया सब कुछ क्षणमें ही, करने लगी प्रकृति मृदु हास॥
काल हो गया परम सुशोभन, सभी शुभ गुणोंसे संयुक्त।
चन्द्र रोहिणी-स्थित थे, नभमें ग्रह-नक्षत्र शान्तिसे युक्त॥
निर्मल हुई दिशाएँ, तारे लगे जगमगाने आकाश।
नदियाँ हुईं स्वच्छ-सलिला, ह्रद हुआ रात्रिमें कमल-विकास॥
लदे वृक्ष कुसुमोंसे, पक्षी-भ्रमर कर उठे गान-गुँजार।
बहने लगी सर्व-सुखदा पवित्रतम सौरभमयी बयार॥
असुरद्रुह-सज्जन-मन सहसा हुए प्रसन्न सहज स्वच्छन्द।
स्वर्ग बज उठी सुर-दुन्दुभियाँ जन्म अजन्माके आनन्द॥
बिना बजाये हुईं निनादित मध्यनिशा वे अपने-आप।
किंनरगण-गन्धर्व मुदित हो करने लगे गान-आलाप॥
विद्याधरी-अप्सराएँ तब नाच उठीं अति सुमधुर ताल।
सुर-मुनि मुदित कर उठे श्लाघा, देख धराका भाग्य विशाल॥
जलनिधि-जलधर मन्द-मधुर स्वर गाने लगे स्वसुखका गान।
हुए प्रकट देवकी-उदरसे सुन्दर मधुर स्वयं भगवान॥
उदय हुए वैसे ही, जैसे षोडशकला-पूर्ण राकेश—
उगता प्राचीमें, न रह गया संतोंको तम-पीड़ा-लेश॥
कालेको जो उज्ज्वल करता, ले वह अद्भुत काला रंग।
देख सामने पुरुषोत्तमको स्वयं रह गये दम्पति दंग॥
कोमल, कमल-समान नेत्र हैं मुनि-मन-मोहन, दीर्घ, रसाल।
शङ्ख-गदा शुचि, पद्म-चक्रसे शोभित चारों भुजा विशाल॥
वक्षःस्थलपर शोभित है श्रीवत्स-चिह्न अतिशय अभिराम।
गले सुशोभित कौस्तुभमणिकी छिटक रही है विभा ललाम॥

नव-नीरद-घनश्याम कलेवर चमक रहा है शुचि रमणीय।
दमक रहा है सुन्दर तनपर दिव्य पीतपट अति कमनीय॥
मणिवैदूर्य अमूल्य विनिर्मित हैं कीरीट, कुण्डल द्युतिमान।
कुञ्चित कुन्तल चमक रहे हैं उनसे दिनकर-किरण-समान॥
कटिमें है करधनी सुशोभित दिव्य रत्नमय, सुषमागार।
बाँहोंमें अङ्गद शोभित हैं, हाथोंमें कंकण श्री-सार॥
अङ्ग-अङ्ग आभरण-विभूषित, दीप्ति छा रही चारों ओर।
देख रूप वसुदेव-देवकी हुए अतुल आनन्द विभोर॥

[७५८]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

शुद्ध सच्चिदानन्द परात्पर परब्रह्म परमेश्वर-रूप।
सर्वातीत-सर्वमय, निर्गुण-सगुण, व्यक्त-अव्यक्त अनूप॥
नित्य अजन्मा, दिव्य जन्मधर, नित्य स्वतन्त्र, बने परतन्त्र।
सबके स्वयं एक यन्त्री नित, बना प्रेमियोंको निज यन्त्र॥
सहज विरोधी-गुणधर्माश्रय, करते लीला विविध विचित्र।
करते प्रेम-धर्मका पालन-संरक्षण बनकर अरि-मित्र॥
रौद्र, वीर, वीभत्स, भयानक, करुण, हास्य, अद्भुत, शृङ्गार।
शान्त और अन्यान्य रसोंके बनकर स्वयं रूप साकार॥
प्रकट हुए, वसुदेव-देवकी-सुत हो खलके कारागार।
नन्द-यशोदाको सुख देने किया शिशुत्व सुखद स्वीकार॥
ग्वाल-बालकोंके सँग वन-वन किया समुद स्वछन्द विहार।
मधुर दिव्य रस गोपीजनका किया सभी विधि अङ्गीकार॥
सहज कृपावश किया कंसका मथुरामें जाकर संहार।
सादर किया पिता-माताका बन्धनसे तुरंत उद्धार॥
नन्द आदिको लौटाया फिर, कर उनका समुचित सत्कार।
भेजा गोप-गोपियोंके प्रति अपना परम मधुरतम प्यार॥

****

सुन कृष्णाकी करुण प्रार्थना, वसन-रूप बन रक्खी लाज।
थक बैठा दुःशासन लज्जित, चकित रह गया सभी समाज॥
मथुरा-द्वारवतीमें प्रभुने बरसाया आनन्द अपार—
मधुर परम ऐश्वर्यमयी शुचि लीलाओंका कर विस्तार॥
रणक्षेत्रमें सखा पार्थका मोह मिटाया, दे निज ज्ञान।
सहज शरण दे, किया धन्य फिर देकर दिव्य प्रेमका दान॥
अर्जुनके मिस अखिल विश्वको दिया दिव्य पावन उपदेश।
उद्धवको फिर दिया विशद कल्याणपूर्ण अपना संदेश॥
ज्ञान, योग, वैराग्य, प्रेम, रति, सकल कामनारहित सुकर्म।
सांख्य, त्याग, संन्यास, वर्ण-आश्रम, शुचि मानवके सब धर्म॥
इह-परलोक, पिता-सुत, पति-पत्नी, गुरु-शिष्य, धर्म-आचार।
गो-ब्राह्मण, अबला-अनाथ हित प्राणार्पण, मङ्गल व्यापार॥
सभी दिशाओंमें नित देता जन-जनको उज्ज्वलतम ज्ञान।
हरता दुःख-शोक-भय-तम सब, करता सुख-कल्याण-विधान॥
पात्रापात्र-भेद कर विस्मृत, करता सदा सभीका त्राण।
सभी देश, सब काल सभीका करता सदा परम कल्याण॥

[७५९]

(राग लावनी—ताल कहरवा)

काल हो गया अतिशय शोभन, सर्व शुभ गुणोंसे सम्पन्न।
बिधु रोहिणि गत हुए, ऋक्ष-ग्रह-तारे सभी सौम्यतापन्न॥
हुईं दिशाएँ अति प्रसन्न सब, तारे चमक उठे आकाश।
धरतीके सब नगर-ग्राम, व्रज, आकर हुए मङ्गलावास॥
नदियाँ थीं सब निर्मल-जल, निशि खिले ह्रदोंमें कमल अपार।
वृक्ष लदे सुमनोंसे, पिक-अलि करने लगे चहक-गुञ्जार॥
सुख-स्पर्श, शुचि, शीतल-मन्द-सुगन्ध बह चली मधुर बयार।
असुर-विरोधी साधु-मनोंमें हुआ तुरत सुखका संचार॥

सुर-दुन्दुभियाँ मधुर बज उठीं सहसा भर आनन्द अपार।
जन्म अजन्माका सुन, सुर सब बने स्वयं आनन्दाकार॥
शुचि गन्धर्व-सुकिंनर गाने लगे, छेड़ अति मधुमय तान।
करने लगे सिद्ध-चारण सब प्रमुदित मन पावन स्तुति-गान॥
नाच उठीं निशीथमें विद्याधरी-अप्सराएँ सब आज।
समुद सराह रहा धरतीका भाग्य परम देवर्षि-समाज॥
करने लगे सिन्धु मृदु गर्जन, मृदु-मृदु मेघ उठे सब गाज।
निशिमें प्रकट हुए जब अखिलेश्वर, राजाओंके सिरताज॥

[७६०]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

उदय हो गये जैसे घरमें कोटि-कोटि नीले शरदिन्दु।
देख नंदरानीके उरमें उमड़ा दिव्य सुखामृत-सिन्धु॥
कैसी अतुलनीय सुन्दरता! कैसा सुर-मुनि-मोहन रूप।
कैसी निकल रही सुषमा-आभा नख-सिखसे परम अनूप।

[७६१]

(राग देश—ताल दादरा)

कृष्णचंद्र उदय भए नंद-भवन सुँदर।
सब के मन-कुमुद खिले, हरखे हिय-मंदिर॥ टेक॥
उमड़्यौ आनंद-सिंधु ओर-छोर तज कर।
जन-मन के घाट-बाट डूबे सब सत्वर।
बाल-बृद्ध, जुवक-जुवति, सुध-बुध सब खोकर।
माते सब रंग-राग, लाज-सकुच धोकर॥ १॥
लखत नहीं कोउ कहाँ, कोउ नायँ बूझत।
आनँद-परिपूरन मन स्नेह-समर जूझत।
उछरत क्रमभंग सकल, अति उमंग कूदत।
मन-माने गावत सब, ताल-राग सूदत॥ २॥

नृत्य-गीत-कला-कुसल नाचत, गुन गावत।
सब के मन हरत अचिर, सब के मन भावत।
गावत सब बंदीजन-भाट सुर मिलाकर।
सब के मन मोद भरे जीवन-फल पाकर॥ ३॥
दूध-दधि-माखन की मटुकिया भरकर।
आईं ब्रजनागरि सब सुंदरि सज-धजकर।
माखन-दधि-दुग्ध-सरित बही चली पावन।
डूबत सिसु-गनहि मातु लगी सब उठावन॥ ४॥
आनँद-उन्मत्त सकल नाचि उठे जन-मन।
तरुन-तरुनि, बाल-बृद्ध खोए सब तन-मन।
नाचे बिधि-सिव-सुरेस सुर-मुनि सुधि तजकर।
नाचे उपनंद-नंद-भानु, नहीं लजकर॥ ५॥
हरदी-दधि-केसर-जुत पय-नदी नहाकर।
धन्य हुए स्नेह-सुधा-सरस रूप पाकर।
दुंदुभि नभ बजत बिपुल, देव सुमन बरसत।
गोकुल के भाग्य कौं सिहात सुर तरसत॥ ६॥

[७६२]

(राग देवगंधार—ताल रूपक)

हरि अवतरे कारागार॥
दिसि सकल भईं परम निरमल अभ्र सुषमा-सार।
लता बिटप सुपल्लवित पुष्पित नमत फल भार॥
सुखद मंद सुगंध सीतल बहत मलय बयार।
देवगन हरषत सुमन बरसत करत जयकार॥
बिनय करत बिरंचि नारद सिद्ध बिबिध प्रकार।
करत किंनर गान बहु गंधरब हरष अपार॥
संख-चक्र-गदा-नवांबुज लसत हैं भुज चार।

भृगुलता कौस्तुभ सुसोभित, कांति के आगार ।।
नौमि नीरद नील नव तनु, गले मुकताहार।
पीत पट राजत, अलक लखि अलिहु करत पुकार ।।
परम बिस्मित देखि दंपति छबिहिं अमित उदार।
निरखि सुंदरता अपरिमित लजत कोटिन मार ।।

[७६३]

(राग कालिंगड़ा—ताल कहरवा)

सुन्यौ नँद-घर लाला जायौ। सुनत ही आनँद मद छायौ ।।
सबै जन तन-मन-सुधि खोकर। छके मतवारे-से होकर ।।
तरुन-तरुनी, छोरा-छोरी। लगाए तन केसर-रोरी ।।
डोकरेऊ मन भर्‌यो उमंग। डुकरियन कौं लै अपने संग ।।
अनोखे नए-नए सिंगार। सजें सब चले नंद के द्वार ।।
दही-माखन के भरि-भरि माट। सिर धरें, अजब बनाएँ ठाट ।।
पहुँचि सब नाचन-गावन लगे। बावरे भए प्रेम-रस पगे ।।
प्रेम-रस-नदी बहाई है। बधाई—बड़ी बधाई है ।।
नंदबाबा की जै-जै-जै। मात जसुमति की जै-जै-जै ।।
कन्हैया छैया की जै-जै। सबै मिलि बोलो जै-जै-जै ।।

[७६४]

(राग झिंझोटी—ताल दादरा)

प्रगटे अभिराम स्याम रसिक ब्रज-बिहारी।
बृंदावन नंद-भवन जन-मन-सुखकारी।
हरन विषम भूमि-भार, करन दुष्ट-दल-उधार।
सरन संत-जन उबार, अखिल अघ-बिदारी ।। प्रगटे० ।।
मुदित भए प्रेमी जन, संत भए निर्भय मन।
डरे सकल खल-दुर्जन, अघी-अनाचारी ।। प्रगटे० ।।

आनँद अपार छयौ, दुःख-सोक-कुडर गयौ।
गोकुल अब अतुल भयौ, उदये अवतारी॥ प्रगटे०॥
बरस्यौ रस-मेह अमित, रस-सरिता बही अजित।
चली सकल प्लावन-हित, अग-जग-हितकारी॥ प्रगटे०॥
सब कें अति हिय हुलास, नंद-सुअन-दरस-आस।
दौरे तजि-तजि निवास, आतुरता भारी॥ प्रगटे०॥
पहुँचे नँद-महल हाल, दरसन करि अति निहाल—
भए सकल ग्वालि-ग्वाल, पुलक अंग झारी॥ प्रगटे०॥
पायौ सब सुख अपार, उतर्‌यौ सब मोह-भार।
तन-मन सब दिए वार, गोकुल-नर-नारी॥ प्रगटे०॥

[७६५]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

चकित-थकित अपलक नेत्रोंसे देख रहे गुरु गर्ग महान।
नँदरानीकी गोद मनोहर मधुर श्याम शिशु श्रीभगवान॥
सफल हो गया जीवन, जप-तप-विद्या-बुद्धि सफल सब आज।
कुल, यदुकुलका हुआ सफल शुभ आचार्यत्व सकल सुख-साज॥
मन आया—लुट पड़ूँ चरणमें, तुरत चढ़ा लूँ पद-रज शीश।
प्रकट परात्पर ब्रह्म स्वयं सब लोक-महेश्वर श्रीजगदीश॥
भूल सभी ऐश्वर्य, स्वयं जब शिशु बन रहे जननिकी गोद।
हृदय लगा लूँ तुरत उठाकर, बदन चूम लूँ क्यों न समोद?
पर यदि कुल-आचार्य वृद्ध मैं विप्र करूँगा चरण-स्पर्श।
कह उन्मत्त हँसेंगे सारे, होगा कुछके चित्त अमर्ष॥
यदि मैं हृदय लगा लूँगा शिशु सुंदरको, भर मन उल्लास।
समझ चपलता मेरा बूढ़े-बड़े करेंगे सब उपहास॥
छूट रहा पर धैर्य, जा रहा छूटा सारा सोच-विचार।
इसी बीच मुसका मोहनने किया तुरत माया-विस्तार॥
कुल-गौरव जग उठा, भूल सब, लगे कराने वे संस्कार।
पर छूटा न तनिकभर मनसे आकर्षण शिशुका अनिवार॥

[७६६]

(राग भैरवी—तीन ताल)

श्रीराधा माधव, श्रीमाधव राधा—दोनों एक स्वरूप।
एक तत्त्व सच्चिदानन्दमय एक भाव-रस परम अनूप॥
दुग्ध-धवलता, अग्नि-दाहिका, रवि-आभा सब नित्य अभिन्न।
करते तदपि भाव-रस-पूरित लीला ललित पृथक्-परिछिन्न॥
राधा प्रकृति-परा, निर्लिप्ता, कृष्णास्वरूपा, कृष्णाराम।
कृष्णात्मा, कृष्णानुरागरूपा, कृष्णप्राणा अभिराम॥
कृष्णसुखाकाङ्क्षारूपा केवल करतीं लीला अविराम।
प्रेमाधिष्ठात्री देवी, परमाद्या, रासेश्वरी ललाम॥
परमाह्लादरूपिणी, धन्या, मान्या, उच्चादर्श महान।
कृष्ण-नित्य-आनन्दोदधिको भी करतीं आनन्द-प्रदान॥
सकल रूप-गुण-गर्व-हारिणी, कृष्णचित्तहारिणि निष्काम।
नित्य-अतुल-निज-गौरवपूर्णा, नित गौरव-विस्मृता तमाम॥
कृष्णस्तुता, कृष्ण-आराध्या, कृष्ण-वक्ष-वासिनी उदार।
कृष्णाराधनपरा, कर रहीं तत्सुखार्थ ही नित्य विहार॥
नित्य स्वरूपाशक्ति चिन्मयी, नित्य अजन्मा सर्वाधार।
मूलप्रकृति अयोनिजा, लेतीं निज इच्छानुसार अवतार॥
नित्य दिव्य गोलोकविहारिणि निज-स्वरूप-सद्गुणसंयुक्त।
मधुर मनोहर बनीं आज 'वृषभानु-नन्दिनी' सुषमा-युक्त॥
अतुल रूप-सौन्दर्य अनुत्तम शुचि माधुर्य नित्य तन धार।
आकर्षित करतीं सर्वाकर्षक श्रीकृष्णचित्त अविकार॥
निज-सुख-वाञ्छा-लेश-कल्पना-गन्ध-शून्य सर्वत्र पवित्र।
सतीशिरोमणि सर्वत्याग-प्रतिमा सजीव, अत्यन्त विचित्र॥
आज हुई थीं प्रकट वही शुभ महाभावरूपा बड़भाग।
भू-का शुचि सौभाग्य उठा था दुर्लभ आज सहज ही जाग॥

अतः मनायें आज हर्षभर महामहोत्सव हम सब लोग।
अर्पित हो जायें उनके ही, दिया जिन्होंने यह संयोग॥
करें युगल सरकार हमें निज दास-रूपमें अङ्गीकार।
बोलो मनसे, मुक्त-कण्ठसे राधा-माधव-जय-जयकार॥

[७६७]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

कीर्ति-कुक्षिकी कीर्ति जगतमें अनुपमेय, नहिं तुलना और।
प्रकट हुईं जिससे माधवकी प्रिया नित्य, सबकी सिर-मौर॥
नहीं जगतमें कहीं किसीका यश वृषभानु नरेश-समान।
पिता बने राधाके, जिनके रति-परतन्त्र स्वयं भगवान॥
धरा हुई वह धन्य, हुआ महिमान्वित छोटा रावल ग्राम।
प्रकटी जहाँ राधिका रानी सच्चित्-सुखमयकी सुख-धाम॥
धन्य सूर्य-शशि, धन्य पुण्य वे अनल, अनिल, शुचि जल, आकाश।
देखा भाग्यवान जिन सबने राधाका प्राकट्य-विकास॥
धन्य मनुष्य, धन्य पशु-पक्षी, तिर्यक् सारे, कीट-पतङ्ग।
देखा श्याम-सुखद राधाका कभी जिन्होंने कोई अङ्ग॥
धन्य आज हम, जो कर पाये श्याम-स्वामिनीके गुण-गान।
धन्य सुन रहे, मिला रहे जो इन गीतोंमें अपनी तान॥

[७६८]

(राग झिंझोटी—ताल दादरा)

आजु वृषभान भवन आनँद अति छायौ।
राधा अवतार भयौ, सब कौ मन भायौ॥
दुंदुभि नभ लगीं बजन, सुमन लगे बरसन।
धाए पुरबासी सब, करन कुँअरि-दरसन॥
मंगल उत्साह मुदित नारि सकल गावत।
लै-लै कमनीय भेंट कीर्ति-महल आवत॥

नचत वृद्ध-तरुन-बाल, भए सब नचनियाँ।
तिन के मुख धन्य होन प्रगटी रागिनियाँ॥
राधा कौं जन्म जानि प्रेमी सब धाए।
प्रेम सुधा बरसन की आस मन लगाए॥
राधा बिनु हरै कौन मुनि-मन-हर-मन कौं।
प्रगटै बिनु पात्र को अनंद-रस-घन कौं॥
बरसैगो कृष्नघन पाय पात्र राधा।
रस-धारा पावन तब बहैगी बिनु बाधा॥
आए तहँ विविध बेष सुर-मुनि-रिषि भव-अज।
दरसन कौं, परसन कौं कुँवरि-चरन-पंकज॥
आए नंद-जसुमति अति चित में हरषाए।
बिबिध रत्न मुकता मनि भेंट संग लाए॥
प्रसव-घर पधारि महरि कुँवरि लेत कनियाँ।
चूमत अति लाड़-चाव जात बलि निछनियाँ॥
उभय मातु मिलीं अमित स्नेह तन-मन तें।
कहि न जाय मिलन-प्रीति-रीति लघु बचन तें॥
नंद वृषभानु मिले हिय सौं हिय लाए।
छायौ चहुँ ओर मोद, गोद, नँद भराए॥

[७६९]

(राग झिंझोटी—ताल दादरा)

प्रगटीं अनूप भूप, भानु-घर दुलारी।
राधा शुचि मधुर-मधुर, कीर्तिदा-कुमारी॥
चंद्र-बदन-कमल मधुर, उभय हस्त-कमल मधुर।
बिसद नयन-कमल मधुर, आनँद बिस्तारी॥
अरुन चरन-कमल मधुर, भौंह मधुर, भाल मधुर।
अधरनि मुसकान मधुर, मोहनी मुरारी॥

जन्म मधुर, कर्म मधुर, लीला अति ललित मधुर।
भाव मधुर, चाव मधुर, सरबस बलिहारी॥
त्याग की सुनीति मधुर, प्रेम की सुरीति मधुर।
'तत्सुख सुख' प्रीति मधुर, माधव-मनहारी॥

[७७०]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

प्रगटीं राधा रावलमें बृषभानू-कीर्ति-दुलारी।
राधा ब्रजकी ठकुराइन, अभिराम श्यामकी प्यारी॥
राधा आह्लादिनि देवी नित माधवपर बलिहारी।
राधा माधवकी आत्मा, माधवसे कभी न न्यारी॥
राधा नित रास-रसेश्वरि, माधव नित रासबिहारी।
राधा-माधवकी लीला शुचि, सत्य, नित्य अविकारी॥
राधा अर्पणकी मूरति, हैं श्याम समर्पण-कारी।
राधा आराधन-रत नित, प्रिय राधाऽऽराधनकारी॥
दोनों दोनोंके प्रेमी, प्रेमास्पद रस-भंडारी।
नित एक तत्त्व दो तन हैं, मधु लीला-रस-बिस्तारी॥

[७७१]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

प्रकट हुईं वृषभानु-राजगृह राधा परम प्रेमकी खान।
जिनके शुचि माधुर्य दिव्यपर मोहित नित स्वयं भगवान॥
जिनका बढ़ता रहता प्रतिपल नित नूतन सच्चिन्मय रूप।
रसवर्षिणि, रसराजाकर्षिणि, प्रियतम-मन-हर्षिणी अनूप॥
नित्य निकुञ्जेश्वरि, रासेश्वरि, हरि-हृदयेश्वरि अति पावन।
प्राणाधिका प्रियतमा प्रियकी प्राणेश्वरि नित मन-भावन॥
काम-कलुष-हारिणि, विस्तारिणि दिव्य त्यागमय प्रेम पुनीत।
अतुलनीय ऐश्वर्य-स्वामिनी, पर अति दीना, सहज विनीत॥

देतीं सदा सहज प्रियतमको अविरत वह अपार सुखदान।
पर देनेका स्मरण न रहता, कभी नहीं होता अभिमान॥
चतुर-चित्त-हारिणि, संचारिणि अहंरहित शुचि सेवा-भाव।
सहज सदा वर्धित होता है जिनमें प्रिय-सेवाका चाव॥
इसीलिये वे नित्य पूर्णतम, पूर्णकाम, श्रीकृष्ण अकाम।
राधाके रस-आस्वादनकी नित इच्छा करते अभिराम॥
क्योंकि पूर्ण उसमें है पावन राधाका आत्यन्तिक त्याग।
अतः स्व-सुख-कल्पना-शून्य वह रखतीं प्रियतममें अनुराग॥
वही प्रेमरूपा राधा हैं प्रकटी बरसानेमें आज।
इसीलिये सब प्रकृति कर रही स्वागत सजकर सुन्दर साज॥
सभी लोक-लोकान्तरमें है गूँज रहा जय-जय-जय-घोष।
परमानन्द छा रहा अनुपम, नहीं किंतु उसमें संतोष॥
किसी तरह वह व्यक्त नहीं हो सकता मनका परमानन्द।
नहीं शब्द-संकेत कि जिनसे प्रकट हो सके वह स्वच्छन्द॥

[७७२]

(राग झिंझोटी—ताल दादरा)

आए मुनि भानु-भौन नारद बरसाने।
गावत हरिनाम मधुर पावन रस-साने॥
मिले वृषभान आय बोले मृदु बानी।
हरिपुर तैं आए हम सुनि कै, सुखदानी॥
प्रकट भई कीरति-कूख कुँवरी श्रीराधा।
पूरन सब आस, हरन त्रास, सकल बाधा॥
दरसन करवाऔ हमैं कुँवरी के अबहीं।
दीने पठाय भानु भीतर महल तबहीं॥
देखत ही भए मगन, तन-मन सब भूले।
महा आनंद-रस छायौ, हिए फूले॥

भाँति-भाँति करत स्तवन, फेरी तब दीनी।
चरन-रेनु कुँवरी की सिर चढ़ाय लीनी॥
बाहिर आय बोले—'वृषभान बड़भागी!
तुम पै दुरलभ अपार कुँवरि-कृपा जागी॥
प्रकट भई आय घर तुम्हरे जो स्वामिनि।
सच्चिदानंदमई ह्लादिनि हरि-भामिनि॥'
मृदुल सुर बजाय बीन, मधुर-मधुर गावन।
लगे रस-भरे दृगन आँसू ढरकावन॥
सरस रस-प्रमत्त फेर नृत्य करन लागे।
बोले—'मैं धन्य आज, भाग्य भव्य जागे'॥

[७७३]

(राग देस—तीन ताल)

सुन्दर सुभग कुँवरि एक जाई।
कहा कहौं यह बात रूप गुन प्रेम कोटि भरि लाई॥
भूलि गये जित-जित सब ब्रजमें सुखकी लहरि बढ़ाई।
धनि लहनौ वृषभानु गोपकौ, भाग्य दसा चलि आई॥
धनि आनंद जसोदारानी अपने भवनहिं लाई।
बृन्दावनमें सखि यह प्यारी भाग अधिक सुख पाई॥

[७७४]

(राग देस—तीन ताल)

रानी कीरति कुँवरी जाई॥
सुंदर सुभग मनोहर मंगल परम सुलच्छनि सब मन भाई।
सबै अलौकिक रूप मधुर गुन अमित प्रेम-सागर लहराई॥
चिदानंद-रस हरि की ह्लादिनि-सक्ति सहज निज रूप छिपाई।
धनि-धनि भाग भानु नृप के जिन के घर यह कन्या बनि आई॥
धनि रावल, धनि-धनि बरसानौं, धनि गोपी, जिन गोद खिलाई॥
नंद-जसोदा धन्य, आइ जिन यहाँ सरित सुख-सुधा बहाई॥

****

[७७५]

(राग परज—ताल कहरवा)

जन्मोच्छव राधिका कुँवरि कौ कीरति गीत गवाए जू।
मंगलचार कराए बहु बिधि, घंटा-संख बजाए जू॥
भाँति-भाँतिके असन-बसन-भूषन बहुमोल मँगाए जू।
बिप्रन्हि न्यौति, जिमाय भली बिधि, तिन कौं दान कराए जू॥
नंद जसोदा-रोहिनि दाऊ-कान्हा सँग लै आए जू।
गोपी-गोप-सहित सब कै मन अति आनंद भराए जू॥
स्वागत करि, वृषभानु नृपति नैं सादर घर पधराए जू।
कीरति कान्हहि, जसुमति कुँवरिहि लै निज गोद खिलाए जू।
मोद भरी नारी दुहुँ दिसि की हँसि हँसि मंगल गाए जू॥

[७७६]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

हरि-प्रिय-भामिनि, अग-जग-स्वामिनि, तन-दुति-दामिनि श्रीराधा।
त्रिभुवन-पावनि, सोक-नसावनि, हरनि सकल बिधि भव-बाधा॥
प्रगटीं रससाने श्रीबरसानें, भानु-कीर्तिदा-घर सुघरी।
सब धन्य भए, सब भए प्रफुल्लित, मिटी बिथा सब की सगरी॥
श्रीरास-रसेस्वरि, सुंदरता-मधुरता-ईश्वरि, हरि-प्यारी।
आए दरसन हित सिव, मुनि नारद, सनक आदि रिषि व्रतधारी॥
सब भए कृतारथ करै दरसन-परसन मन सब के अनुरागे।
वृषभानु-कीर्तिदा की, बरसाने की जय-जयति करन लागे॥

[७७७]

(तर्ज गजल—ताल दादरा)

हृदय आनन्द भर बोलो—बधाई है! बधाई है!!
हमारे भाग्य हैं जागे, जो 'लाली' घरमें आई है!!

धन्य वृषभानुपुर सुन्दर, धन्य वृषभानु-नृप-मन्दिर,
धन्य वह कक्ष मङ्गलकर, अजन्मा जहाँ आई है ॥ हृदय आनन्द०
शुभ सित पक्ष भादौं मास, शुभ अति अष्टमी सुख रास,
शुभ नक्षत्र अभिजित खास, जिनमें राधा आई है ॥ हृदय आनन्द०
कामकी कालिमा हर कर, प्रेमकी छबि प्रकाशित कर,
रस-सुधासे विषय-विष हर, प्रेमकी बाढ़ छाई है ॥ हृदय आनन्द०
खोलकर नेहके झरने, सुखी निज श्यामको करने,
हृदय आनन्दसे भरने, स्वयं श्यामा जु आई है ॥ हृदय आनन्द०
हृदय है यह कन्हैयाकी, प्राण है यह कन्हैयाकी,
आत्मा यह कन्हैयाकी, सुधा बरसाती आई है ॥ हृदय आनन्द०
एक ही दो बने हैं जो, दो रहकर एक ही हैं सो;
रसास्वादन करानेको, रसकी सरिता आई है ॥ हृदय आनन्द०
पुकारो—भानु नृपकी जय, मैया कीर्तिकी जय-जय;
हुआ दम्पतिका भाग्योदय, जिनकी कन्या कहाई है ॥ हृदय आनन्द०

[७७८]

(राग सारंग—तीन ताल)

स्यामघन दामिनि प्रगट भई ॥
रस-नृप रसिक-रिझावनि पावनि रम्या सुरसमई ।
अंग-अंग अतुलित श्री-शोभा कोटिक रति लजई ॥
सकल-विस्व-आकर्षक-कर्षिनि छबि सौंदर्य छई ।
नित्य पराजित रहत सहज जो अखिल जगत बिजई ॥
परम सती प्रिय-सुख-कामिनि नित निज सुख बिसरि गई ।
रूप-रासि गुन-रासि अमित सुचि प्रगटत नई-नई ॥

[७७९]

(राग देस—ताल दादरा)

सुभ निसान बाजत बृषभान-भौन आज री ।
प्रगटी रूप-भरी कुँवरि साँवर-सुख-साज री ॥

सुंदरि सब गात चलीं, सरस मधुर गीत री।
सजे सब मँगल-कलस, हिएँ भरी प्रीति री॥
कहत एक—'ह्वै हैं बस याके नँद-लाल री।
दैहैं निज प्रियतम कौं परम सुख विसाल री'॥
'धन्य भाग्य हमरौ' एक कहत हँसी बाम री।
'हमहू सुख दरस-परस पैहैं अभिराम री'॥
दधि-माखन भरे माट सीसन धरि गोप री।
आवत सब गो-रस बरसावत अति ओप री॥
सिव, बिधि, सुरराज, सनक, नारदादि संत री।
आए सब गुप्त, करत कीरति हियवंत री॥

[७८०]

(राग देस—ताल दादरा)

द्वार वृषभानु के आजु भई भीर री।
उमगि चल्यौ रस-निधि छाँडि निज तीर री॥
गोप-गोपि बाल-बृद्ध तजि धन-धाम री।
खिंचे-से आए सब खोय घर-काम री॥
दधि-अच्छत-दूब-हरद-कुंकुम भरि थारि री।
आय जुरे अगनित जन सजि-सजि सिंगार री॥
नाचत सब नारि-नर छाँडि सकल लाज री।
छिरकत दधि-हरद करत आनँद-धुनि गाज री॥
गुनीजन गावत सब नाचत दै ताल री।
आनँद-मद-माते गीत गावत रसाल री॥
भई आज सब की मनभाई सुखद बात री।
नाचि उठे अंग-अंग पुलकित भए गात री॥
आए अज, ईस, इंद्र बरुन अरु कुबेर री।
लच्छी, सुरसती, सती, सची, देवि ढेर री॥

****

धरि कै ग्वाल-गोपी-तन करत कीर्ति-गान री।
किंनर-गंधर्ब बने गोप भरत तान री॥
जय-जय बृषभानु, जयति भानु-कीर्ति-रानि री।
सब के हित भए आजु परम सुख-दानि री॥
बरसि रह्यौ रस अनूप भूप भानु-द्वार री।
भए सब सब के आनंद-आगार री॥

[७८१]

(राग गजल—ताल कहरवा)

बज रही गाँव रावलमें आज मंगल बधाई है।
कीर्तिदा-रानिके घर सुघर राधा कुँवरि जाई है॥
मोद मनमें अतुल भरकर,
जेवरों-जरोंसे सजकर,
सोच घर-बारका तजकर,
गोपियाँ घरसे आई हैं॥बज रही० ॥
नाचते, गान सब करते,
वेणुमें सुर मधुर भरते,
गोप डगमग चरण धरते,
मोद-मदता जु छाई है॥बज रही० ॥
बड़े-छोटे हजारों घट,
दही-माखनसे भर झटपट,
गोपिका-गोप सब चटपट
पहुँच हुड़दँग मचाई है॥बज रही० ॥
दही-नवनीत-पय लेकर,
डोलियाँ छोड़ते भर-भर,
दधिकाँदौ ही नहीं रहकर,
नदी गो-रस बहाई है॥बज रही० ॥

वृद्ध-बालक-तरुण अड़ते,
सभी गोरस-समर लड़ते,
कूदते—उछलते—पड़ते,
लोक-लज्जा गवाँई है ।।बज रही० ।।

[७८२]

(राग आसावरी—तीन ताल)

भानु घर उत्सव आज महान ।
परमानँद-आनँद-दायिनी प्रगट भई सुख-खान ।।
रूप अनूप, स्वरूप अलौकिक, आनँद-सुधा-समुद्र ।
मिट्यौ मोह-तम, दुरित दह्यौ, देखतहीं दुख-दारिद्र ।।
उमग्यौ प्रेम-समुद्र सुद्ध मधु, नस्यौ स्वार्थ कौ बीज ।
उखर्‌यौ बिबिध अनर्थ-मूल, माया कौ बिटप सबीज ।।
हरषित इत-उत धावत, गावत-नाचत सब पुर-लोग ।
प्रगटीं धन्य करन जग कौं श्रीराधा सुभ-संजोग ।।

[७८३]

(राग कालिंगड़ा—ताल कहरवा)

वह धन्य घड़ी है आई । कीरति ने राधा जाई ।
तब सब दिसि बजी बधाई । सब के मन मुदिता छाई ।।
लछमी बन दाई आई । ग्वालिनि सब मिलि-मिलि धाई ।
परसा-धरसाकी माई । बनि-ठनि कै सबै लुगाई ।।
सब चलीं हिएँ हरषाई । सब ही सबके मन भाई ।
कीरति-मंदिर प्रबिसाई । जिनि रोकौ, देत दुहाई ।।
जब खबर नंद ने पाई । जसुमति कौं संग लेवाई ।
लाली-मुख निरखन ताँई । पहुँचे बरसाने आई ।।

****

[७८४]

(राग सारंग—तीन ताल)

भानुपुर बाजत बिपुल बधाई।
आनँद-घन आनंदिनि कन्या कीरति रानी जाई॥
अति कमनीय रूप अतुलित सुचि प्रेम-सुधा-रस-वर्षी॥
अखिल जगत-जित बिस्व-बिमोहन मोहन-मन आकर्षी॥
उदये भानु भानु-घर कोटिन दुति उज्ज्वल छिति छाई।
बिनस्यौ काम-कलुष तम कोटिन ससि सीतलता आई।
जाके दरसन कौं सुर-मुनि नित सकल लोक ललचावैं।
सोइ हरिप्रिया कीर्ति क्रोड़हि ले हरषित हिय हलरावैं।
धन्य भए बृषभान सराहत भाग्य भुवन मुनि-ग्यानी।
जिन के घर प्रगटीं हरि की हृदयेस्वरि राधारानी॥

[७८५]

(तर्ज गजल—ताल कहरवा)

जग उठे भाग्य अग-जगके, परम आनन्द है छाया।
श्यामकी ह्लादिनी राधा-प्रकटका काल शुभ आया॥
बज उठीं देव-दुन्दुभियाँ, गान करने लगे किंनर,
सुर लगे पुष्प बरसाने अमित आनन्द उरमें भर,
ग्वालिनी वेष धारणकर सुन्दरी चलीं सुर-जाया॥ १॥
चले सब ग्वाल नर-नारी वृद्ध-बालक सुसज्जित हो;
देख शोभा परम, सहमे देव-दम्पति सुलज्जित हो,
प्रेमके राज्य पावनमें हुआ जो आज मनभाया॥ २॥
यशोदा-नन्द परमानन्द पा अति हो उठे विह्वल,
चले ले भेंट अति अनुपम, खिल उठे हृदय-पङ्कज-दल,
लला थे गोद जननीके, प्रफुल्लित थी कलित काया॥ ३॥
ऋषी-मुनि हुए हर्षित, जो बने थे व्रज-मधुर गोपी,
फलित होता मनोरथ जान उनकी देह है ओपी,
हुआ सब ओर जयकारा, मिट गयी सब मलिन माया॥ ४॥

[७८६]

(तर्ज गजल—ताल कहरवा)

अतुल आनन्द भर मनमें पुकारो—भानु-नृपकी जय।
मोदमें मस्त हो बोलो—मातु श्रीकीर्तिदाकी जय॥
भाद्रपद मासकी जय-जय, पक्ष शुभ शुक्लकी जय-जय।
रुचिर तिथि अष्टमीकी जय, काल मध्याह्नकी जय-जय॥
सरस वृषभानुपुरकी जय, भानुके महलकी जय-जय।
कीर्तिके प्रसव-गृहकी जय, चमारिन दाई-माकी जय॥
चूर आनन्द-मदमें, आज बोलो—राधिकाकी जय।
सलोने साँवरे गोविन्द राधा-प्राणकी जय-जय॥
परस्पर चावकी जय-जय, प्रेमके भावकी जय-जय।
'तत्सुखी प्रेम' की जय-जय, प्रेमके नेमकी जय-जय॥
अनोखे त्यागकी जय-जय, विलक्षण रागकी जय-जय।
मधुर अनुरागकी जय-जय, हमारे भागकी जय-जय॥
परम आह्लादसे बोलो—ह्लादिनी राधिकाकी जय।
ह्लादिनीके परम प्रियतम मनोहर श्यामकी जय-जय॥

[७८७]

(तर्ज रसिया—ताल कहरवा)

(अब तो) जागे भाग हमारे, हम पै तूठि गए भगवान।
तूठि गए भगवान हम पै रीझि गए भगवान॥
कुँवरि-जनम सुनत रति बाढ़ी, सजि सुठि साज, सँवारत दाढ़ी,
नाचत-गावत आयौ ढाढ़ी, करतौ जै-जैकार॥(अब तो॰)
भाग्य हमारे कुँवरी जाई, भई आज हमरी मनभाई।
बहुत दिनन की आस पुराई (जीवन की सब आस पुराई)
कहत पुकार-पुकार॥(अब तो॰)

****

बेटा, बेटी, बहू, लुगाई, रुके न घर, आए हरषाई।
देत असीसें करत बड़ाई, जी भर बारंबार ॥ (अब तो॰)
जुग-जुग जीवौ कुँवरी प्यारी, अचल सुहाग मिलै सुख-झारी।
हौ दोउन कुल की उजियारी, कीरति बढ़ै अपार ॥ (अब तो॰)
स्वामी मिलै नंद कौ लाला, रूप-गुननि में सब तें आला।
पहिरैं गुंजा-मोती माला, सोभा कौ सिंगार ॥ (अब तो॰)
अग-जग सब ही कौं सुख देवै, काऊ तें न कबहुँ कछु लेवै।
तन-मन सों भरतारहि सेवै, जानि-सार-कौ-सार (अब तो॰)
बिनय भरी सुनि ढाढ़ी बानी, कीर्ति कृपामयि हिय हुलसानी।
दिखरायौ लाली-मुख रानी, काजर-रेख सँवार ॥ (अब तो॰)
देखि कुँवरि, सो अति हरषायौ, बोल्यौ—मैं सब ही कछु पायौ ॥
(बोल्यौ—मैं जीवन-फल पायो)।
(अब तो केवल) लाली कौ दरसन नित भायौ, (सो)
मिलै भीख सरकार ॥ (अब तो॰)
बाँधि मँढ़ैया रहूँ यहीं पर, होऊँ नित निहाल दरसन कर।
लाली कौ मुख मधुर मनोहर, मिलै मोय अधिकार ॥ (अब तो॰)

[७८८]

(तर्ज रसिया—तीन ताल)

अब जो हरष भयौ रावल में याकी तुलना कितहूँ नाहिं।
तुलना कितहूँ नाहिं, याकी समता कितहूँ नाहिं ॥
बहुत पुरानौ घर कौ ढाढ़ी, पके केस यह लंबी दाढ़ी।
कुँअरि-जनम सुनि मुदिता बाढ़ी, धायौ लै परिवार ॥
संग डोकरी आई चलिकै हरख भरी हिय नाचै-मुलकै।
बूढ़ी देह जवानी छलकै, छायौ मोद अपार ॥
छोरा-छोरी, बहू-बहुरिया, गायँ असीसैं मधुर सुरैया।
लाख-लाख जुग जिओ कुँअरिया, मिलै स्याम भरतार ॥

***

आज मिलैंगे साल-दुसाला, हीरा-पन्ना, मुक्ता-माला।
सोनेके जेवर झलकाला, हाथ-पाँव पुरवार॥
भई आज सब की मनभाई, छोटे-मोटे लोग-लुगाई।
बगदैंगे तन खूब सजाई, लै रतनन के भार॥
जय-जय नृप बृषभानू दानी, जय उदार-मति कीरति रानी।
जय-जय अखिल बिस्व सुख-दानी ! मिलै मान सरकार॥

[७८९]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

नन्द-यशोदाके घर प्रकट हुए थे जब राधा-प्रिय श्याम।
हुई प्रवाहित थी तब रस-आनन्द-सुधा-सरिता अभिराम॥
आज श्यामकी हृदय-वल्लभा प्रकट हुई जब रावल ग्राम।
उमड़ चला वह रस-सागर बन, प्लावित कर सब दिशा ललाम॥

[७९०]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

मंगल बधाइयाँ हो, बँट रही भानूके दरबार।
राधिका प्रेम-मूरति हो, छबीलीने लीनौ अवतार॥
सुहासिनि नारियाँ हो, कर रहीं सब कुलके आचार।
गा रहीं गीत-मङ्गल हो, लौन-राई कर अति मनुहार॥
सुहासिनि सब बड़भागिनि। जय-जय। कर रहीं नेग सुहागिनि॥
जय-जय॥
पहन केसरिया जामा। जय-जय। बजाते ढोल-दमामा॥
जय-जय॥
नचनिया नाच दिखाते। जय-जय। मस्त हो तान लगाते॥
जय-जय॥

****

गा रहे मधुर गुनीजन। जय-जय। हर रहे हैं सबके मन ॥
जय-जय ॥मंगल॰
ज्योतिषी भट्टजी हो, आये माथे तिलक सँवार।
पोथियाँ सँगमें हो, लाये पूरन करन विचार ॥
शोध शुभ लग्न का हो, देखते सभी ग्रहों के स्थान।
सभी ग्रह उच्च के हो, दुर्लभ देखे अचरज मान ॥
ज्योतिषी सब चकराये। जय-जय। मनहिं-मन अति हरषाये ॥
जय-जय ॥
भानु नृप बोलि लिये तब। जय-जय। सुनाई गुन-गाथा सब ॥
जय-जय ॥
मानवी नहीं कुँवरि यह। जय-जय। प्रेम-रस-सुधा-गन्धवह ॥
जय-जय ॥
नित्य यह हरिकी प्यारी। जय-जय। नहीं तिन तें यह न्यारी ॥
जय-जय ॥मंगल॰
मोद भर कर हृदय में हो, भानुने खोल दिये भंडार।
रत्न, धन, धाम, कंचन हो, लुटाये हाथों खुले, उदार ॥
दूध की तरुण गायें हो, करीं लाखों द्विजों को दान।
किया सम्मान-पूजन हो, नम्र हो, छोड़कर अभिमान ॥
लुटी संपत्ति अनूठी। जय-जय। हीरों के हार अँगूठी ॥
जय-जय ॥
भानु-मन तृप्ति न आई। जय-जय। वृत्ति दे-दे न अघाई ॥
जय-जय ॥
रहा अब भिक्षु न कोई। जय-जय। दरिद्रता सबकी खोई ॥
जय-जय ॥
मिटा सब का मँगतापन। जय-जय। हुए दाता उदार-मन ॥
जय-जय ॥मंगल१

सुनत मङ्गल संदेश हो, बाबा नन्द उठे हरषाय।
खबर दी जाय अंदर हो, जसोदा-उर-आनँद न समाय॥
सँजोये रत्न-भूषण हो, भरे शुभ वस्तुओं से थाल।
स्वर्ण के, संग अपने हो, ले चलीं, सखी-दल सुविशाल॥
नन्द-बाबा भी आये। जय-जय। संग जसुमति को लाये॥
जय-जय॥
माट माखन के सिर धर। जय-जय। चले सँग अगणित चाकर॥
जय-जय॥
देखने लाली आई। जय-जय। मात जसुमति मन-भाई॥
जय-जय॥
महलके अंदर जाकर। जय-जय। मिली कीरति से सादर॥
जय-जय।।मंगल०
देख-कर जसुमति रानी हो, कीर्तिदा मन अति मोद भराय।
उठा निज कर लाली को हो, दई जसुमति की गोद सुलाय॥
निरख मुख-चंद्र प्रभामय हो, यशोदा आनँद-रस फूली।
रह गई अपलक निरखत हो, देह की सुधि सहसा भूली॥
हुआ जब चेत, लजाई। जय-जय। कुँवरि तब हिये लगाई॥
जय-जय॥
रतन-धन किये निछावर। जय-जय। भई नहिं तृप्ति तनिक भर॥
जय-जय॥
भामती मन की चीन्हीं। जय-जय। असीसें लाखों दीन्हीं॥
जय-जय॥
कीर्तिदाने सनमानी। जय-जय। यशोदा अति सुख मानी॥
जय-जय।।मंगल०
नन्द सँग-गोप-ग्वाले हो, नाचते आये करते रंग।
छेड़ते तान टेढ़ी हो, मचाते रस्ते भर हुड़दंग॥

भङ्गिमा करते अद्भुत हो, सभी रस-आनँद-मद-माते।
छोड़ सँकोच-संभ्रम हो, गीत सब हँसी—भरे गाते॥
आय पहुँचे बरसाने। जय-जय। लगे माखन बरसाने॥
जय-जय॥
लिये दधि-माखन-मटके। जय-जय। कर रहे सुन्दर लटके॥
जय-जय॥
बहा दी माखन-धारा। जय-जय। भरा बरसाना सारा॥
जय-जय॥
मिले सब ही आ-आकार। जय-जय। भये आनँदके आकर॥
जय-जय॥मंगल०
मनसुखा, धनसुखा, बल हो, तोक, मधुमङ्गल, दाम, मदार॥
चपलता सहज सबमें हो, कर रही थी पूरा विस्तार॥
नन्द बाबाके ही सँग हो, आ गये थे ये बाल अनेक।
यहाँ बरसानेवाले हो मिले, हो गये तुरत ही एक॥
हृदयमें अमित मोद भरि। जय-जय। लगे नाचन माखन-सरि॥
जय-जय॥
नन्द वृषभानु-हाथ धर। जय-जय। नाचते लज्जा तजकर॥
जय-जय॥
श्वेत दाढ़ी है हिलती। जय-जय। भानु—दाढ़ी से मिलती॥
जय-जय॥
मचा आनँद-कोलाहल। जय-जय। सिहाता देख देव-दल॥
जय-जय॥मंगल०॥
देव-देवियाँ आ गयीं नभमें बैठि विमान।
बरसाये सुरभित सुमन आनँद-मग्न महान॥

[७९१]

(राग देस—तीन ताल)

सुदंर सुभग कुँवरि एक जाई ॥
मंजुल मृदुल मनोहर मंगल परम सुलच्छनि सब मन-भाई ।
सबै अलौकिक रूप मधुर गुन अमित प्रेम-सागर लहराई ॥
चिदानंद-रस हरि की ह्लादिनि सक्ति सहज निज रूप छिपाई ।
धनि-धनि भाग भानु-नृप के, जिन के घर यह कन्या बनि आई ॥
धनि रावल, धनि-धनि बरसानों, धनि गोपी, जिन गोद खिलाई ।
नंद-जसोदा धन्य, आइ जिन यहाँ सुख-सुधा-सरित बहाई ॥

[७९२]

(राग परज—तीन ताल)

धन्य-धन्य द्वापर जुग, धनि यह भादौं की आठैं अति पावनि ।
प्रगटे पहली में मोहन, या दूजी में राधा मन-भावनि ॥
उजियारौ पखवारौ पावन, भाग्य-सील सुभ समय दुपहरी ।
प्रगट भईं राधा मन-मोहन आनँद-घनकी आनँद लहरी ॥
पुन्य-थली बरसानौ नगरी, भाग्यवान बृषभान सु-नरपति ।
कीरति रानी अती सुभागिनी, जिनमें प्रगटी स्वयं स्याम-रति ॥
भाग्यवान वे स्याम सलोने, जिन पाई यह दुरलभ संपति ।
हम सब भाग्यवान नर-नारी भए धन्य, कर तिन की सुस्मृति ॥

[७९३]

(राग देस—तीन ताल)

धन्य घरी, धनि भादौं मास ।
धनि आठैं तिथि, पख उजियारौ, धनि अभिजित नच्छत्र प्रकास ॥
प्रगटीं जा में जग की स्वामिनि, नित हरि-भामिनि सब सुख-मूल ।
भयौ प्रकास अखिल जन-मन-नभ मिटी ताप तीनहुँ की सूल ॥
घर-घर में छायौ सुख सुचि अति, घर-घर भए मंगलाचार ।
अति उछाह सब मान नारि-नर नाचत-गावत सजि सिंगार ॥

भानु नृपति अति मगन परम सुख करत अमित मनि-हेम सुदान ।
अति उदार, धन-धान्य लुटावत, ललित लली सुख-हित मतिमान ।।
खग, मृग, भृंग, भुजंग-जीव सब आनँद-मगन भूलि निज बात ।
मन अनुभवत परम सुख, बिनु रितु, जड़ तरु लता प्रफुल्लित गात ।।
मारुत मंद-सुगंध बहत नभ, निरमल सीतल तेज अपार ।
बिकसी प्रकृति आज चहुँ दिसि लखि आद्य प्रकृति कौ नव अवतार ।।
आई जग के पावन कारन, सुख-निधि कौं अतिसय सुख-देन ।
परिनत भयौ कलुष तजि रतिमय पावन परम अपावन मैन ।।
परब मनावहु, गावहु, नाचहु आज समुद सब तजि मद-गान ।
बाँटहु सबै बधाई मिलि कह—जय कीरति, जय-जय बृषभान ।।

[७९४]

(राग सारंग—ताल कहरवा)

राधा जाई, आनँद लाई, नाचौ रे, नाचौ, सब ग्वाल !
दधि माखनकी नदी बहावौ, आज सबै हो गये निहाल ।।
अगनित भरे माट माखन-दधि केसर-घोले लाये लोग ।
मतवाले-से लगे छिड़कने खूब परस्पर शुभ-संयोग ।।
आय गई इतनेमें नँदकी सेना लै माखन-दधि हाट ।
दधिकाँदौंमें भई हरष-धुनि ढुरकन लगे माट-पर-माट ।।
माखन-दधिकी सरिता उमड़ी, बही सुधा-आनँद की धार ।
नाचन लगै भानु नृप, बाबा नंद समुद सब लाज बिसार ।।
आय मिले बरसाना-रावलके लरिकनि सँग तोक-सुदाम ।
रैंदा-पैंदा, ग्वाल-बाल सब, मधुमंगल, मनसुख, सुखराम ।।
कूद-कूद सब लगै नाचने माखन-दधि-सरिताके बीच ।
लगे मारने माखन-लौंदे हर्षोन्मत्त उलीच-उलीच ।।
मोदभरे बरसानेवाले बोले—'नँद बाबाकी जय' ।
बोल उठे नन्दीश्वरवाले—'जय, वृषभानुराजकी जय' ।।

[७९५]

(राग आसावरी—तीन ताल)

प्रेम की मूरति नागर नट की।
पुन्य थली बरसानें प्रगटी, माया की छाया सब सटकी॥
राधा-प्रेम-सुधा-रस-सरिता अटकत नायँ काहु की हटकी।
चली अबाध अमी-रस-धारा हरि की ओर, कितहुँ नहिं भटकी॥
रागी हरि-पद, बिषय-बिरागी जन, जे अवगाही रस गटकी।
ते सजि गोप-गोपिका आए, लै-लै सिर दधि-माखन-मटकी॥
निरखन लगे, करन न्योछावर, रासि-रासि आभूषन-पट की।
सोहत बंदनवार-पाँति सुभ, कदली खंभ, सुमंगल घट की॥
'अचल सुहाग' असीसत बृद्धा, जुबती हँसत-हँसावत मटकी।
नाचत-गावत सुधि बिसारि सब, सहजहिं लाज-सरम सब झटकी॥

[७९६]

(राग झिंझोटी—ताल दादरा)

जसुमति लै संग नंद, छायौ मन अति अनंद,
नंदीसुर तें सुछंद बरसानें आए॥
लाली-मुख-इंदु बिमल, निरखन-हित चित्त बिकल,
ग्वार-गोपि साथ सकल, मन अति हरषाए॥
मधुमंगल, नूनखार, रैंदा, पैंदा, भँगार,
मनसुख, मुनवा, मदार, कर सिंगार धाए॥
दधि-माखन भरे माट, गोपन सिर धरे ठाट,
माखन की मनौं हाट चली सगबगाए॥
नाचत-गावत सलौन, बूझत नहिं कहाँ कौन,
पहुँचे बृषभान-भौन, सादर समुहाए॥
जसुमति लै नारि-बृंद, भीतर के महल-बंद,
लाली बदनारबिंद, निरखन मन भाए॥

****

अंदर कीन्हौ प्रवेस, गोपी सब सुघर बेस,
कीरति कौं सुख बिसेस, नंद-घरनि आएँ ॥
लाली कौं उठाय करनि, दई अंक नंद-घरनि,
स्नेह-सुधा हिएँ भरनि, प्रेम-अश्रु आए ॥
बार-बार चूमत मुख, उभय मातु पूरित सुख,
मिटे सकल द्वंद-दुःख, निरखि सुर सिहाए ॥

[७९७]

(राग परज—तीन ताल)

त्यागमूर्ति श्रीराधा आयीं जगको त्याग सिखाने आज।
दिव्य प्रेमका मर्म बताने प्रकट हुईं लेकर सब साज ॥
कायव्यूह गोपी सब प्रकटीं, प्रकट हुए व्रजपति युवराज।
प्रकटे वन-सुषमा मलयानिल उद्दीपनके सभी समाज ॥
रावल ग्राम भूमि, गृह, दिन, नक्षत्र हो गये सब ही धन्य।
मिली परम निधि आज अलौकिक दुर्लभ अद्भुत मधुर अनन्य ॥
नहीं रह गया रोग-शोक-भय-तम-भ्रम विषम अविद्या-जन्य।
परानन्द-रवि उदित देख हट गये मोह-माया-पर्जन्य ॥
नाचो, गाओ, मोद मनाओ, आज जगत्के सारे लोग।
पाकर दिव्य 'भाव' रसका अब मूर्तिमान मङ्गल-संयोग ॥
हटे सभी, मिट जायेंगे सब भवके अमित भयानक रोग।
कर पायेंगे यदि इस मूर्त-युगलमें हम निज मनका योग ॥
सुन्दरतम सौन्दर्य, मधुरतम शुचि माधुर्य नित्य साकार।
देख-निरख इनको भर लो नेत्रोंमें, मनमें कर सत्कार ॥
देखो फिर भीतर-बाहर—सर्वत्र सदा इनको भर प्यार।
करते रहो सदा हर्षित मन राधा-माधव-जय-जयकार ॥

****

[७९८]

(राग परज—ताल कहरवा)

बरसगाँठि बृषभानु-कुँवरि की कीरति गीत गवाए जू।
मंगलचार कराए बहु बिधि, घंटा-संख बजाए जू॥
भाँति-भाँति के असन-बसन-भूषन बहुमोल मँगाए जू।
बिप्रन्हि न्यौति, जिमाय भली बिधि, तिन कौं दान कराए जू॥
नंद-जसोदा-रोहिनि दाऊ-कान्हा सँग लै आए जू।
गोपी-गोप-सहित सब के मन अति आनंद भराए जू॥
स्वागत करि, बृषभानु-नृपति नैं सादर घर पधराए जू।
कीरति-जसुमति मिलीं प्रेम सौं, आनँद उर न समाए जू॥
कीरति कान्हहि, जसुमति, कुँवरिहि लै निज गोद खिलाए जू।
मोदभरी नारी दुहुँ दिसि की हँसि-हँसि मंगल गाए जू॥

[७९९]

(राग मालव—ताल कहरवा)

बरसगाँठि बृषभानु-कुँवरि की कीरति गीत गवाए जू।
चंदन-अगर लिपाइ अरगजा, मोतिन चौक पुराए जू॥
नंदीसुर ते नंद जसोदा सहसुत न्यौति बुलाए जू।
गोपी-गोप, गाय-गोसुत लै चलि बरसाने आए जू॥
तब वृषभान बड़े आदर सौं निज मंदिर पधराए जू।
भीतर भवन जसोदा-कीरति मिलत परम सुख पाए जू॥
जसुमति-कनिया तैं लालन लै कीरति गोद खिलाए जू।
ब्रजरानी लइ कुँवरि गोद ब्रजनारिन मंगल गाए जू॥

[८००]

(राग तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

राधाने दे दर्शन सुर-ऋषिको कृपया कर दिया निहाल।
करने लगे स्तवन गद्‌गद हो प्रेमपूर्ण-दृग मुनि तत्काल॥

महायोगमयि मायाधीश्वरि तेजपुञ्ज जननी जय-जय।
माधुर्यामृतवर्षिणि कृष्णाकर्षिणि कृष्णात्मा जय-जय॥
परमेश्वरि रासेश्वरि नित्य-निकुञ्जेश्वरि ह्लादिनि जय-जय।
नित्याचिन्त्य अनन्त अनिर्वचनीय रूप-गुण-निधि जय-जय॥

[८०१]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

जय राधे, जय जय राधे। जय राधे, जय जय राधे॥
रावल में छायौ आनंद। प्रगटी राधा आनँद-कंद॥ जय०
नंदीसुर तें आये नंद। लीन्हे सँग उपनंद, सनंद॥ जय०
जसुदा मैया रोहिनि संग। दाऊ-कान्हा लिये उछंग॥ जय०
रैंदा-पैंदा, तोक-सुदाम। मधुमंगल, मनसुख, सुखराम॥ जय०
दधि-माखन कौ लै उपहार। पहुँचे सब सज-सज सिंगार॥ जय०
नृप बृषभानु मुदित भए देख। स्वागत क़र मन हरष बिसेष॥ जय०
जसुदा-रोहिनि भीतर जाय। मिली कीर्तिदा अति हरषाय॥ जय०
लाली कौं अति लाड़ लड़ात। जसुदा-मन नहिं मोद समात॥ जय०
लाला के मुख मोद अपार। निरख करत सब जै-जैकार॥ जय०

[८०२]

(राग विहाग—ताल कहरवा)

जय राधे जय श्रीराधे। जय राधे जय श्रीराधे॥
रूप-रँगीली, गुण-गरबीली, मन-मटकीली जय राधे।
चित-चटकीली, छैल-छबीली, रस-सरसीली श्रीराधे॥ जय०
श्याम-हठीली, सदा रसीली, शुचि शरमीली जय राधे।
द्युति-चमकीली, रस-गटकीली, पिय-धमकीली श्रीराधे॥ जय०
श्याम-बिहारिणि, हरि-हिय-हारिणि, शोभा-धारिणि जय राधे।
प्रिय-सुखकारिणि, मुग्धाचारिणि, मदन-विहारिणि श्रीराधे॥ जय०

रस-विस्तारिणि, तम-घन-तारिणि, अघ-संहारिणि जय राधे।
विपदा-जारिणि, मोह-निवारिणि, माया-मारिणि श्रीराधे॥ जय०
निजसुख-त्यागिनि, श्याम-सुहागिनि अति बड़भागिनि जय राधे।
विषय-विरागिनि, रसमय-रागिनि, बिमल विभागिनि श्रीराधे॥ जय०
सदा सँयोगिनि, नित्य वियोगिनि, अद्भुत योगिनि जय राधे।
कुटुँब-कुयोगिनि, हरि-रस-भोगिनि, बिछुरत रोगिनि श्रीराधे॥ जय०
मधुर सुहासिनि, मृदु-मधु-भाषिणि, ललित सुलासिनि जय राधे।
रास विलासिनि, प्रेम-प्रकाशिनि, पिय-हिय-वासिनि श्रीराधे॥ जय०

[८०३]

(तर्ज रसिया—ताल कहरवा)

बोलो जय राधे, राधे। बोलो जय राधे, राधे।
राधा-माधव की प्रान। बोलो जय राधे, राधे।
राधा मधुमयी महान। बोलो जय राधे, राधे।

राधा वृषभानु-दुलारी राधा श्रीकीर्त्ति-कुमारी,
दोनोंके प्रान समान। बोलो जय राधे०॥
राधाकी मतिमें सो है, माधवकी मतिमें जो है,
दोनों हि एक मतिमान। बोलो जय राधे०॥
राधा अति भोली-भाली, माधव मोहन-मधुशाली,
दोनोंकी न्यारी बान। बोलो जय राधे०॥
राधा जब निपट सयानी, माधव सजते अज्ञानी,
दोनोंकी दो पहचान। बोलो जय राधे०॥
राधा-माधव इकरूपा, लीलामें भिन्न-स्वरूपा,
दोनों ही एक भगवान। बोलो जय राधे०॥
राधा माधवकी माया, माधव राधाकी छाया,
हैं छाया-मायावान। बोलो जय राधे०॥
राधा माधवकी प्यारी, माधव राधा-मन-हारी,
दोनों दोनोंके प्रान। बोलो जय राधे०॥

राधा-मनमें जो आती, माधवको वही सुहाती,
दोनोंकी राय समान। बोलो जय राधे॰ ॥
राधाको सोइ सुहावै, माधव-मनमें जो आवै,
दोनोंका एक मन जान। बोलो जय राधे॰ ॥
राधा-माधवकी जोड़ी, जीओ जुग लाख-करोड़ी,
दोनों हों सुखी महान। बोलो जय राधे॰ ॥

[८०४]

(तर्ज रसिया—ताल कहरवा)

रटे जा राधे-राधे, जपे जा राधे-राधे।
प्यारे ब्रजराज-कुमार, भजे जा राधे-राधे ॥ टेक ॥
या ब्रज की महिमा भारी, नहिं जानैं अज-त्रिपुरारी,
जहँ प्रकटे नंद-कुमार, रटे जा राधे-राधे ॥ १ ॥
जहँ रोहिनि-जसुमति मैया दाऊ-से नेही भैया,
नँद-बाबा करैं दुलार, भजे जा राधे-राधे ॥ २ ॥
जहँ अगनित सखा पियारे, खेलैं रँग न्यारे-न्यारे
गैंयन के झुंड अपार, जपे जा राधे-राधे ॥ ३ ॥
अति नगर सुघर बरसानौ, माँ कीरति, पितु वृषभानौ,
प्रगटी राधा सुख-सार, रटे जा राधे-राधे ॥ ४ ॥
आनँद-घन-रासी राधे, राधे बिन मोहन आधे,
राधा ही जीवन-सार, भजे जा राधे-राधे ॥ ५ ॥
है राधा माधव-आत्मा, राधा-बल हरि सर्वात्मा,
है महासक्ति अनिवार, जपे जा राधे-राधे ॥ ६ ॥
है महाभावमयि राधा, प्रेमानँद-उदधि अगाधा,
राधा-सँग नित्य बिहार, रटे जा राधे-राधे ॥ ७ ॥
जग-राग-रहित, अति रागी, गोपीजन अति बड़भागी,
जिन पायौ प्रभु कौ प्यार, भजे जा राधे-राधे ॥ ८ ॥

गोपिन महँ सब सिरमौर, मुनि-मन-हरकी चित-चोर,
राधा की हूँ बलिहार, जपे जा राधे-राधे ॥ ९ ॥
राधा की रसमयि लीला, कोउ समुझै रसिक हठीला,
जाकौ वेद न पायौ पार, रटे जा राधे-राधे ॥ १० ॥

[८०५]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

जय राधे ! जय राधे ! जय राधे ! जय जय राधे ! ।
अग-जग-स्वामिनी जय राधे । भगवत-भामिनि जय राधे ।
केशव-कामिनी जय राधे । सुघर, सुठामिनी जय राधे ॥ जय० ॥
हरि-आह्लादिनि जय राधे । मधुमय-वादिनि जय राधे ।
प्रेम-विवादिनि जय राधे । मोहन-मादिनी जय राधे ॥ जय० ॥
निर-अभिमानिनि जय राधे । अतिशय मानिनि जय राधे ।
आनँदकानिनि जय राधे । नेह-सुदानिनि जय राधे ॥ जय० ॥
हरि-मन-हरनी जय राधे । अति सुख-करनी जय राधे ।
सुषमा-सरनी जय राधे । मोद-प्रसरनी जय राधे ॥ जय० ॥
शोभाधारा जय राधे । गुण-आगारा जय राधे ।
रूप-अपारा जय राधे । रस-आधारा जय राधे ॥ जय० ॥
रसिक-रसीली जय राधे । गुण-गरबीली जय राधे ।
रूप-रँगीली जय राधे । श्याम-हठीली जय राधे ॥ जय० ॥
सरबस-त्यागिनी जय राधे । श्याम-सुहागिनी जय राधे ।
बिमल बिरागिनी जय राधे । रसमय रागिनि जय राधे ॥ जय० ॥
पिय-सुख-मूली जय राधे । निज सुख भूली जय राधे ।
हरि-हिय झूली जय राधे । रहती फूली जय राधे ॥ जय० ॥
अति गंभीरा जय राधे । परम सुधीरा जय राधे ।
हरि-गल-हीरा जय राधे । हरती पीरा जय राधे ॥ जय० ॥

चंचल भारी जय राधे। सब सौं न्यारी जय राधे।
पिय अति प्यारी जय राधे। नीली सारी जय राधे ॥ जय० ॥
रूठी बैठी जय राधे। पिय-मन-पैठी जय राधे।
बाहर ऐंठी जय राधे। मन में सैंठी जय राधे ॥ जय० ॥
गोरी-भोरी जय राधे। पिय-हिय-चोरी जय राधे।
माथै रोरी जय राधे। सुघर-सुठौरी जय राधे ॥ जय० ॥
भोली-भाली जय राधे। छल सौं खाली जय राधे।
रसकी प्याली जय राधे। सदा रसीली जय राधे ॥ जय० ॥
परम सयानी जय राधे। हरि-मन-मानी जय राधे।
सुषमा-खानी जय राधे। पिय-हिय-रानी जय राधे ॥ जय० ॥
नख-सिख-सुश्री जय राधे। घोली मिश्री जय राधे।
नस-नस पसरी जय राधे। सुद-बुध बिसरी जय राधे ॥ जय० ॥
मीठी बोली जय राधे। अम्रित घोली जय राधे।
मन की भोली जय राधे। करत ठठोली जय राधे ॥ जय० ॥
इत उत धावै जय राधे। पिय गुन गावै जय राधे।
पियहि रिझावै जय राधे। मोद भरावै जय राधे ॥ जय० ॥
रास रसेश्वरि जय राधे। नवकुञ्जेश्वरि जय राधे।
हरि-हृदयेश्वरि जय राधे। ऐश्वर्येश्वरि जय राधे ॥ जय० ॥
योगिकुलेश्वरि जय राधे। लोक-महेश्वरि जय राधे।
मायाधीश्वरि जय राधे। सर्वजनेश्वरि जय राधे ॥ जय० ॥
भानु-दुलारी जय राधे। कीर्ति-कुमारी जय राधे।
सखियन प्यारी जय राधे। तन-सुकुमारी जय राधे ॥ जय० ॥
कृष्णाकर्षिणि जय राधे। नित मधुवर्षिणि जय राधे।
अघ-अपकर्षिणि जय राधे। अद्भुत-दर्शिनि जय राधे ॥ जय० ॥
अग-जग-जननी जय राधे। हरि-गुण-मननी जय राधे।
माया-खननी जय राधे। इच्छा-हननी जय राधे ॥ जय० ॥

****

गुरुजन-प्रीता जय राधे। हरि-परिणीता जय राधे।
सदा विनीता जय राधे। परम पुनीता जय राधे॥ जय० ॥
रति परकीया जय राधे। नित्य स्वकीया जय राधे।
सदा तदीया जय राधे। अति कमनीया जय राधे॥ जय० ॥
शिवा भवानी जय राधे। अति कल्याणी जय राधे।
हरि सुखदानी जय राधे। राधा रानी जय राधे॥ जय० ॥
गूढ़-रहस्या जय राधे। हरि-कृति वश्या जय राधे।
सदा अवश्या जय राधे। रस-फल-शस्या जय राधे॥ जय० ॥
पंकज-नैनी जय राधे। मृगज-सुनैनी जय राधे।
कोकिल-बैनी जय राधे। प्रिय-सुख-दैनी जय राधे॥ जय० ॥
मोहन-बामा जय राधे। नित्या रामा जय राधे।
पूरन-कामा जय राधे। पिय-सुख-कामा जय राधे॥ जय० ॥
मीठे बैना जय राधे। तिरछे नैना जय राधे।
शोभित सैना जय राधे। मारे मैना जय राधे॥ जय० ॥
नित निर्भ्रान्ता जय राधे। रति-विश्रान्ता जय राधे।
सदा सुशान्ता जय राधे। केशव-कान्ता जय राधे॥ जय० ॥
इन्द्रिय-दमनी जय राधे। मन-संयमनी जय राधे।
षड़रिपु-शमनी जय राधे। गज-गति-गमनी जय राधे॥ जय० ॥
हरि-रस-भरिणी जय राधे। दिव्याभरणी जय राधे।
कलि-मल-हरिणी जय राधे। भव-निधि-तरणी जय राधे॥ जय० ॥
समता-मूरति जय राधे। ममता-मूरति जय राधे।
विगत-विषय-रति जय राधे। नित प्रभु-पद-रति जय राधे॥ जय० ॥
वैभव-शालिनि जय राधे। उन्नत-भालिनि जय राधे।
दुर्जन-कालिनि जय राधे। निज-जन-पालिनि जय राधे॥ जय० ॥
गुंजा-मालिनि जय राधे। मुक्ता-मालिनि जय राधे।
शुचि वनमालिनि जय राधे। पिय-भज मालिनि जय राधे॥ जय० ॥

****

बिधुवर-वदनी जय राधे। शोभा-सदनी जय राधे।
सुन्दर-रदनी जय राधे। संकट-कदनी जय राधे ॥ जय० ॥
मधुरालापिनि जय राधे। विरह-विलापिनि जय राधे।
प्रिय-जप-जापिनि जय राधे। प्रणय-स्थापिनि जय राधे ॥ जय० ॥
अष्टविकारा जय राधे। बिमल-विचारा जय राधे।
गत-संसारा जय राधे। रति-सत्कारा जय राधे ॥ जय० ॥
मुक्ति-विरागिणि जय राधे। प्रिय-सुख-रागिणि जय-राधे।
तृष्णा-त्यागिनि जय राधे। हरि-रस-भागिनि जय राधे ॥ जय० ॥
भुक्ति-प्रदायिनि जय राधे। शक्ति-प्रदायिनि जय राधे।
मुक्ति-प्रदायिनि जय राधे। भक्ति-सुदायिनि जय राधे ॥ जय० ॥
शक्तिस्वरूपा जय राधे। भक्तिस्वरूपा जय राधे।
मुक्ति-स्वरूपा जय राधे। रूप-अनूपा जय राधे ॥ जय० ॥

[८०६]

(राग भीमपलासी—तालकहरवा)

बृंदावन-रानी श्रीराधा। मोहन-मन-मानी श्रीराधा ॥ १ ॥
जय नित्य-बिहारिनि श्रीराधा। ब्रज-सुख-बिस्तारिनि श्रीराधा ॥ २ ॥
कीरति की कन्या श्रीराधा। सब ही बिधि धन्या श्रीराधा ॥ ३ ॥
जय-रास-बिलासिनि श्रीराधा। नित कुंज-निवासिनि श्रीराधा ॥ ४ ॥
हरि-उर-वनमाला श्रीराधा। गुन-रूप रसाला श्रीराधा ॥ ५ ॥
श्रीदामा-अनुजा श्रीराधा। बृष-दिनमनि-तनुजा श्रीराधा ॥ ६ ॥
रसिकन की स्वामिनि श्रीराधा। करुनानिधि-नामिनि श्रीराधा ॥ ७ ॥
बंसीबट बासिनि श्रीराधा। संगीत-प्रकासिनि श्रीराधा ॥ ८ ॥
श्रीकृष्न-सिरोमनि श्रीराधा। जय स्याम-संजीवनि श्रीराधा ॥ ९ ॥
आनंद-रसायिनि श्रीराधा। प्रीतम-सुखदायिनि श्रीराधा ॥ १० ॥

अनुराग-सुबेली श्रीराधा । सौभाग्य-नवेली श्रीराधा ॥ ११ ॥
सरसीरुह-लोचनि श्रीराधा । हरि-बिरह-बिमोचनि श्रीराधा ॥ १२ ॥
गोपाल-उपासिनि श्रीराधा । बृंदावन-बासिनि श्रीराधा ॥ १३ ॥
श्रीगान-सुधानिधि श्रीराधा । प्रेमावधि सब बिधि श्रीराधा ॥ १४ ॥
जय नख-चंद्रावलि श्रीराधा । प्रीतम-प्रेमावलि श्रीराधा ॥ १५ ॥
ललितादिक-प्यारी श्रीराधा । अति रूप-उज्यारी श्रीराधा ॥ १६ ॥
मंगल की मूरति श्रीराधा । ब्रज-बन सुख-मूरति श्रीराधा ॥ १७ ॥
ब्रज-चंद-कुमोदिनि श्रीराधा । भांडीर-बिनोदिनि श्रीराधा ॥ १८ ॥
लीला-रस-रंगिनि श्रीराधा । अनुराग-अनंगिनि श्रीराधा ॥ १९ ॥
त्रिभुवन-ठकुरायनि श्रीराधा । गोबिंद-गुसाँयनि श्रीराधा ॥ २० ॥
गोपी-जन-मंडिनि श्रीराधा । रस-रासि अखंडिनि श्रीराधा ॥ २१ ॥
नटनागर-भामा श्रीराधा । परिपूरन-कामा श्रीराधा ॥ २२ ॥
तरुनी-मनि दच्छनि श्रीराधा । सब भाँति सुलच्छनि श्रीराधा ॥ २३ ॥
कल केलि तरंगिनि श्रीराधा । लावन्य बिभंगिनि श्रीराधा ॥ २४ ॥
कात्यायनि-बंदनि श्रीराधा । अभिलाष अमंदिनि श्रीराधा ॥ २५ ॥
गोपी-चूड़ामनि श्रीराधा । सुषमा-महिमा-मनि श्रीराधा ॥ २६ ॥
रामा-अभिरामा श्रीराधा । स्यामा सुख-धामा श्रीराधा ॥ २७ ॥
रस-रास-रचावनि श्रीराधा । नटराज-नचावनि श्रीराधा ॥ २८ ॥
ब्रज-जीवन-जीवनि श्रीराधा । निरवधि रस-पीवनि श्रीराधा ॥ २९ ॥
जमुना-जल-बिहरिनि श्रीराधा । लीलामृत-लहरिनि श्रीराधा ॥ ३० ॥
निगमादि-अगम्या श्रीराधा । प्रेमावधि रम्या श्रीराधा ॥ ३१ ॥
जग-बंदन-बंदित श्रीराधा । नंद-नंदन-नंदित श्रीराधा ॥ ३२ ॥
निस-जागर-साजित श्रीराधा । सुख-सेज-बिराजित श्रीराधा ॥ ३३ ॥
ब्रज-चंद-चकोरी श्रीराधा । वृषभान-किसोरी श्रीराधा ॥ ३४ ॥
ब्रज-मोहन-मोहिनि श्रीराधा । अभिलाषनि-दोहिनि श्रीराधा ॥ ३५ ॥
वृंदाबन-सोभा श्रीराधा । क्रीड़ा-तरु-गोभा श्रीराधा ॥ ३६ ॥

अतिसय रतिरूपिनि श्रीराधा। माधुर्य अनूपिनि श्रीराधा ॥ ३७ ॥
कमनीय कुमारी श्रीराधा। ब्रज-बल्लभ-प्यारी श्रीराधा ॥ ३८ ॥
श्रीकृष्णाकर्षिनि श्रीराधा। आनँदघन-बर्षिनि श्रीराधा ॥ ३९ ॥
दिब्यांसुक-बेसी श्रीराधा। अतिमंजुल-केसी श्रीराधा ॥ ४० ॥
अभिसार-प्रपन्ना श्रीराधा। अत्यन्त प्रसन्ना श्रीराधा ॥ ४१ ॥
कल-केलि-परावधि श्रीराधा। रस-रीति-रहःसिधि श्रीराधा ॥ ४२ ॥

[८०७]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

वृषभानु-दुलारी जय राधे। श्रीकीर्ति-कुमारी जय राधे ॥
ललिता-सखि-प्यारी जय राधे। सर्वोत्तम नारी जय राधे ॥
श्रीमाधव-भामिनि जय राधे। निष्कामा कामिनि जय राधे ॥
पद गज-गति-गामिनि जय राधे। पावन रस-धामिनि जय राधे ॥
मृदु-ईषत्-हासिनि जय राधे। नवकुञ्ज-निवासिनि जय राधे ॥
शुचि प्रेम-प्रकाशिनि जय राधे। रति दिब्य-विकासिनि जय राधे ॥
प्रिय-हृदय-विहारिणि जय राधे। मोहन-मन-हारिणि जय राधे ॥
प्रिय-ताप-निवारिणि जय राधे। प्रिय-सुख-विस्तारिणि जय राधे ॥
नित शुद्धाचारिणि जय राधे। प्रियतम उर धारिणि जय राधे ॥
प्रिय-पद-अनुरागिणि जय राधे। सब बिधि बड़भागिनि जय राधे ॥
निज भोग-बिरागिनि जय राधे। प्रिय-भोग-सुरागिनि जय राधे ॥
नित मङ्गल-वादिनि जय राधे। शुचि रस-आस्वादिनि जय राधे ॥
वैराग्य-स्वरूपा जय राधे। विज्ञान अनूपा जय राधे ॥
प्रिय-मोहन-रूपा जय राधे। सेवित सुर-भूपा जय राधे ॥
अभिमान-विहीना जय राधे। प्रिय-सेवा-लीना जय राधे ॥
शुचि सद्गुण पीना जय राधे। सब दोष-विहीना जय राधे ॥
चतुरा, अति भोली जय राधे। मृदु मीठी बोली जय राधे ॥

शुचिताकी झोली जय राधे। पावन रस-घोली जय राधे ॥
प्रियतम-गल-हारा जय राधे। गुण रूप अपारा जय राधे ॥
ब्रज-चन्द-चकोरी जय राधे। प्रिय-बन्धन-डोरी जय राधे ॥
प्रियतम-सुख-सुखिया जय राधे। कान्ता-गण-मुखिया जय राधे ॥
सुन्दर सुकुमारी जय राधे। प्रिय-हिय-उजियारी जय राधे ॥
लीला-रस-सरिता जय राधे। प्रिय-मन सुख-भरिता जय राधे ॥
आनन्द-सुधा-निधि जय राधे। माधुर्य-महोदधि जय राधे ॥
प्रिय-विरह-कातरा जय राधे। प्रिय-मिलन-आतुरा जय राधे ॥
प्रिय-मिलनमयी नित जय राधे। नित संग अबाधित जय राधे ॥
वर्धन रति-बेली जय राधे। नित नयी नवेली जय राधे ॥
रसमयि रासेश्वरि जय राधे। माधव-हृदयेश्वरि जय राधे ॥
नित कृष्णाकर्षिणि जय राधे। रस-सुधा-सुवर्षिणि जय राधे ॥
नित प्रिय-अनुकूला जय राधे। प्रिय-जीवन-मूला जय राधे ॥
हिय सद्गुण छाये जय राधे। नित श्याम लुभाये जय राधे ॥
त्रिभुवन-जन-पावनि जय राधे। शुचि प्रेम-सिखावनि जय राधे ॥
जग-मंगल-कारिणि जय राधे। अघ-मूल-विदारिणि जय राधे ॥

[८०८]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

कृष्णप्रेयसी कान्तागणमें सर्वशिरोमणि श्रीराधा।
लक्ष्मी-महिषी-गोपीजनकी मूल, मुकुटमणि श्रीराधा ॥
कृष्ण-प्रेम-भावित-चित्तेन्द्रिय-बुद्धि-अहं-सारा राधा ॥
निर्मल प्रेमपूर्ण पावनकी मधुर सुधा-धारा राधा ॥
लीलामयी, कृष्णलीलाकी शुचि सहायिका श्रीराधा।
कृष्ण-सुखैक-जीवना, प्रियतम-स्नेह-दायिका श्रीराधा ॥
प्रियतम शुचि माधुर्य-सुधाकी केवल आस्वादिनि राधा।
रूप-छटासे रूप-सदन-मनकी नित उन्मादिनि राधा ॥

मृदुता-शीतलता-सुशीलता-गुण-गण-आधारा राधा।
चतुरा-सरला, मौना-मुखरा, मधु-मधुराकारा राधा॥
सदा प्रेममें कमी देखती, सदा प्रेम-भूखी राधा।
सदा रसमयी, सदा देखती अपनेको सूखी राधा॥
सर्वगुणमयी, गुण-गौरव-अभिमान-विरहिता श्रीराधा॥
महामानिनी, बिमल, वियोगिनि, नित प्रियतमसहिता राधा॥
उज्ज्वल दिव्य त्याग अनुपमकी परमादर्श मूर्ति राधा।
दुर्लभ कृष्ण-प्रेमकी नव-नव सहज विचित्र स्फूर्ति राधा॥

[८०९]

(राग काफी—ताल कहरवा)

जय परमेश्वरि, जयति परम उज्ज्वल रसरूपा।
जय श्रीकृष्णसुखैकपरा, जय कृष्ण-स्वरूपा॥
जय आह्लादिनि शक्ति, जयति जय रस-उल्लासिनि।
जय रासेश्वरि, नित्य निकुञ्जेश्वरि मधुहासिनि॥
जय श्रीकृष्णानन्दस्वरूपिणि, जय हरिभामिनि।
जयति कृष्णसर्वेश्वरि कृष्णात्मा-सुखधामिनि॥
जयति कृष्णाराधिका, कृष्ण-आराध्या जय जय।
जय कृष्णधारा रम्या, राधिका जयति जय॥

[८१०]

(राग परज—ताल कहरवा)

जय जय राधा, रासेश्वरि जय, रासवासिनी जय जय जय।
रसिकेश्वरी जयति जय, कृष्णप्राणाधिका नित्य जय जय॥
कृष्णास्वरूपिणि, कृष्णप्रिया जय, परमानन्दरूपिणी जय।
कृष्णा-वाम-अँग-सम्भूता जय, कृष्णा, वृन्दा जय जय जय॥

बृन्दावनी जयति जय, बृन्दावनविनोदिनी जय जय जय।
चन्द्रावति, शतचन्द्रनिभ-मुखी, चन्द्रकान्ता जय जय जय॥

[८११]

(राग बिहाग—ताल कहरवा)

जय जय जय राधा अभिराम। जय जय जय माधव गुणधाम॥
जय जय पावन नन्दग्राम। जय बरसाना पूरणकाम॥
जय नँदबाबा, नृप वृषभान। जय मनमुख, मधु सखा सुजान॥
जय कीर्तिदा मूर्ति अनुराग। जयति यशोदा माँ बड़भाग॥
जय गोपीजन कायब्यूह। जय सखिगण-मञ्जरी-समूह॥
जय रासेश्वरि रूप ललाम। जय रसिकेन्द्रशिरोमणि श्याम॥
जय जय निभृत निकुञ्ज सुरम्य। जय लीला मन-बुद्धि-अगम्य॥

[८१२]

(राग आसावरी—तीन ताल)

जयति जय श्रीबृषभानु-दुलारी॥
जयति कीर्तिदा जननी, जाई जिन गुण-खानि राधिका प्यारी।
जय बृषभानु महीप-मुकुट-मनि, जिन घर जनमी जग-उजियारी॥
कृष्णा कृष्ण-जीवना, कृष्णाकर्षिनि कृष्ण-प्रान-आधारी।
परम प्रेम प्रतिमा, परिपूरन प्रिय-सुख अति सुख माननिहारी॥
प्रिय-सुख-समैं परम चतुरा नित, निज सुख समैं सुभोरी-भारी।
प्रिय-सुख लागि बिसरि सब अग-जग, सहित समोद प्रसंसा-गारी॥
टेक-बिबेक एक प्रियतम सौं, सब के सब संबंध निवारी।
भजत-भजत भजनीय भई अब, तुम्हरौ भजन करत, कंसारी॥

[८१३]

(राग आसावरी—ताल कहरवा)

जय नँद-नन्दन, जय गोपाल। जय मुरलीधर नयन-विशाल॥
राधा-मानस मञ्जु मराल। जय वसुदेव देवकी लाल॥

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

पद-रत्नाकर

हनुमानप्रसाद पोद्दार

[८१४]

(राग बागेश्री—ताल कहरवा)

जय वसुदेव-देवकी-नन्दन, ब्रजपति नन्द-यशोदा-लाल।
जय मुष्टिक-चाणूर-विमर्दक, जय कुवलया-कंसके काल॥
जय नरकासुर-केशि-निषूदन, जरासंध-उद्धारक श्याम।
जयति जगद्गुरु, गीता-गायक, अर्जुन-सारथि-सखा, ललाम॥
जय अनुपम योद्धा, लीलामय, योगेश्वर, ज्ञानी, निष्काम।
जय धर्मज्ञ, धर्म, वरदायक, शुचि सुखदायक शोभाधाम॥
जय सर्वज्ञ, सर्वमय शाश्वत, सर्वातीत, सर्वविश्राम।
जयति परात्पर, लोक-महेश्वर, गुणातीत, चिन्मय गुण-धाम॥

[८१५]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

जय नँद-नंदन प्रेम-बिवर्धन सुषमा-सागर नागर स्याम।
जय कांता-पट-कांति-कलेवर मन्मथ-मन्मथ रूप ललाम॥
जय गोपीजन-मन-हर मोहन राधा-बल्लभ नव-घनरूप।
जय रस-सुधा-सिंधु सुचि उछलित रास-रसेस्वर रसिक अनूप॥
जय मुरली-धर अधर गान-रत, जय गिरिवर-धर, जय गोपाल।
मग जोहत बीतत पल जुग सम, दै दरसन अब करौ निहाल॥

[८१६]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

देवकी-नन्दनकी जय, यशोदा-नन्दनकी जय।
बोलो असुर-निकन्दनकी जय जय जय॥ १॥
नन्द-छैयाकी जय नाग-नथैयाकी जय।
बोलो माखन-चुरैयाकी जय जय जय॥ २॥
दाऊ-भैयाकी जय, रास-रचैयाकी जय।
बोलो नृत्य-करैयाकी जय जय जय॥ ३॥

मुरलीधारीकी जय, ब्रज-विहारीकी जय।
बोलो कृष्ण-मुरारीकी जय जय जय॥ ४॥
गोपी-वल्लभकी जय, राधा-वल्लभकी जय।
बोलो रुक्मिणि-वल्लभकी जय जय जय॥ ५॥
विश्व-पावनकी जय, भक्त-भावनकी जय।
बोलो सर्व-भुलावनकी जय जय जय॥ ६॥
गीता-गायककी जय, लोक-नायककी जय।
बोलो सर्वसुखदायककी जय जय जय॥ ७॥
अखिलेश्वरकी जय, लोकमहेश्वरकी जय।
बोलो भक्तजनेश्वरकी जय जय जय॥ ८॥

[८१७]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

एक लकड़िया चन्दन की। जै बोलो जसुदानन्दन की॥ १॥
एक लकड़िया आम की। जै बोलो श्रीघनश्याम की॥ २॥
एक लकड़िया बोर की। जै बोलो नन्द-किशोर की॥ ३॥
एक लकड़िया नीम की। जै बोलो रूप असीम की॥ ४॥
एक लकड़िया कीकर की। जै बोलो श्रीमुरलीधर की॥ ५॥
एक लकड़िया साल की। जै बोलो जसुमति-लाल की॥ ६॥
एक लकड़िया पीपल की। जै बोलो नेत्र कमल-दल की॥ ७॥
एक लकड़िया सेमर की। जै बोलो श्रीराधावर की॥ ८॥
एक लकड़िया पाकर की। जै बोलो प्रेम-सुधाकर की॥ ९॥
एक लकड़िया तूत की। जै बोलो जसुदा-पूत की॥ १०॥
एक लकड़िया बाँस की। जै बोलो प्रेम-निवास की॥ ११॥
एक लकड़िया कटहल की। जै बोलो नाशक अघ-दल की॥ १२॥
एक लकड़िया जामुन की। जै बोलो मुनि-मन-हर-गुन की॥ १३॥
एक लकड़िया ताल की। जै बोलो रसिक रसाल की॥ १४॥

एक लकड़िया श्रीफल की। जै बोलो नित्य सुमङ्गल की॥ १५॥
एक लकडिया वर वट की। जै बोलो श्रीनागर-नट की॥ १६॥
लकड़ी एक बकायन की। जै बोलो प्रेम-रसायन की॥ १७॥
लकड़ी एक मदार की। जै बोलो परम उदार की॥ १८॥
लकड़ी एक अनार की। जै बोलो गोप-कुमार की॥ १९॥
लकड़ी एक प्रियाल की। जै बोलो नँद के लाल की॥ २०॥
लकड़ी एक पलास की। जै बोलो जगन्निवास की॥ २१॥
लकड़ी एक खजूर की। जै बोलो रस-भरपूर की॥ २२॥
लकड़ी एक बदाम की। जै बोलो रूप ललाम की॥ २३॥
लकड़ी एक बबूल की। जै बोलो जग के मूल की॥ २४॥
लकड़ी एक सुपारी की। जै बोलो बिपिन-बिहारी की॥ २५॥
लकड़ी एक अँजीर की। जय बोलो प्रेम-अधीर की॥ २६॥

आरतियाँ

[८१८]

(राग देश—ताल कहरवा)

आरति कीजै श्रीनटवर की।
गोवर्धन-धर वंशीधर की॥ टेक॥
नन्द-सुवन यसुमतिके लाला,
गोधन-गोपी-प्रिय गोपाला,
देवप्रिय असुरनके काला,
मोहन विश्वविमोहन वर की॥
जय वसुदेव-देवकी-नन्दन,
कालयवन-कंसादि-निकन्दन,
जगदाधार अजय जगबन्दन
नित्य नवीन परम सुन्दर की॥

अकल कलाधर सकल विश्वधर,
विश्वम्भर कामद करुणाकर,
अजर, अमर, मायिक-मायाहर,
निर्गुण चिन्मय गुण-मन्दिर की ॥
पाण्डव-पूत परीक्षित-रक्षक,
अतुलित अहि अघ-मूषक-भक्षक,
जगमय जगत निरीह निरीक्षक,
ब्रह्म परात्पर परमेश्वर की ॥
नित्य सत्य गोलोक-विहारी,
अजाव्यक्त लीला-वपुधारी,
लीलामय लीला-विस्तारी,
मधुर मनोहर राधावर की ॥

[८११]

(राग देश—ताल कहरवा)

आरति श्रीवसुदेव-तनय की ।
नन्दकुमार कृष्ण रसमय की ॥
षडैश्वर्यमय पुरुष परात्पर,
मायापति महान्, मायापर,
विश्वातीत विश्व, विश्वम्भर,
चिदानन्द-बपु इच्छामय की ।
आरति श्रीवसुदेव-तनय की ॥
अविनाशी, अज, अखिल भुवनपति,
आदि-अन्त-विरहित अविगत-गति,
सेवत सतत संत निर्मल-मति,
दीन-शरण्य विशद-आशय की ।
आरति श्रीवसुदेव-तनय की ॥

असुरोद्धारक दुष्कृतिनाशक,
स्थापक धर्म, अधर्म-विनाशक,
सदाचार सद्भाव विकाशक
गो-द्विज-रक्षक महिमामय की।
आरति श्रीवसुदेव-तनय की॥

पार्थ-सारथी गीता-गायक,
ज्ञान भक्ति सत्कर्म विधायक,
लोक-संग्रहो, लोक-सुनायक,
स्रष्टा, पालक स्वयं प्रलय की।
आरति श्रीवसुदेव-तनय की॥

मथुरा कारागार धन्य कर,
प्रकटे चार भुजा आयुध-धर,
देवकि श्रीवसुदेव सुखाकर,
सहज सुहृद, अनुकम्पामय की।
आरति श्रीवसुदेव-तनय की॥

व्रज पधार, कर लीला मञ्जुल,
नन्द-यशोदा-सुखकर सुविमल,
व्रज-संरक्षक अमित शौर्य-बल,
शुचि सुषमा श्रीनन्दालय की।
आरति श्रीवसुदेव-तनय की॥

परम मधुर रसराज रसिकवर,
ललित त्रिभङ्ग-मधुर मुरलीधर,
गोपी-गो-गोपाल-सुहृदवर,
अमल असीम प्रेम आलय की।
आरति श्रीवसुदेव-तनय की॥

[८२०]

(राग कान्हरा—तीन ताल)

आरति श्रीवृषभानुलली की।
सत-चित-आनँद-कंद-कली की ॥ टेक ॥
भय-भंजिनि भव-सागर-तारिनि,
पाप-ताप-कलि-कल्मष-हारिनि,
दिव्य-धाम गोलोक-बिहारिनि,
जन-पालिनि जग-जननि भली की ॥ १ ॥
अखिल विश्व आनन्द-विधायिनि,
मंगलमयी सुमंगलदायिनि,
नंद-नँदन-पद-प्रेम-प्रदायिनि,
अमिय-राग-रस रंग-रली की ॥ २ ॥
नित्यानन्दमयी आह्लादिनि,
आनँद-घन-आनंद-प्रसाधिनि,
रसमयि, रसमय-मन-उन्मादिनि,
सरस कमलिनी कृष्ण-अली की ॥ ३ ॥
नित्य निकुंजेश्वरि रासेश्वरि,
परम-प्रेमरूपा परमेश्वरि,
गोपिगणाश्रयि गोपिजनेश्वरि,
विमल बिचित्र-भाव-अवली की ॥ ४ ॥

[८२१]

(राग सारंग—तीन ताल)

आरति श्रीवृषभानुसुता की।
मंजु मूर्ति मोहन-ममता की ॥ टेक ॥
त्रिबिध तापजुत संसृति-नासिनि,
बिमल बिबेक-बिराग-बिकासिनि,
पावन प्रभु-पद-प्रीति-प्रकासिनि
सुन्दर-तम छबि सुन्दरता की ॥ १ ॥

मुनि-मन-मोहन मोहन-मोहिनि,
मधुर मनोहर मूरति-सोहनि,
अबिरल प्रेम-अमिय-रस-दोहनि,
प्रिय अति सदा सखी ललिता की ॥ २ ॥
संतत सेव्य संत-मुनि-जन की,
आकर अमित दिब्य गुन-गन की,
आकर्षिणी कृष्ण-तन-मन की,
अति अमूल्य सम्पति समता की ॥ ३ ॥
कृष्णात्मिका, कृष्ण-सहचारिनि,
चिन्मय बृन्दा-बिपिन-बिहारिनि,
जगज्जननि जग-दुःख-निवारिनि,
आदि अनादि सक्ति बिभुता की ॥ ४ ॥

[८२२]

(राग कान्हरा—ताल कहरवा)

आरति राधा-राधाबर की।
महाभाव रसराज-प्रबर की ॥
स्याम बरन पीतांबर-धारी।
हेम बरन तन नीली सारी ॥
सदा परस्पर सुख-संचारी।
नील कमल कर मुरलीधर की।
आरति राधा-राधाबर की ॥ १ ॥
चारु चन्द्रिका मन-धन-हारी।
मोर-पिच्छ सुंदर सिरधारी ॥
कुंजेश्वरि नित कुंज-बिहारी।
अधरनि मृदु मुसुकान मधुर की।
आरति राधा-राधाबर की ॥ २ ॥

प्रेम-दिनेस काम-तम-हारी।
रहित सुखेच्छा निज, अविकारी॥
आश्रय-विषय परस्पर-चारी।
पावन परम मधुर रसधर की।
आरति राधा-राधाबर की॥ ३॥
निज-जन नेह अमित बिस्तारी।
उर पावन रस-संग्रहकारी॥
दिव्य सुखद, दुख-दैन्य-बिदारी।
भक्त-कमल-हित हिय-सरबर की।
आरति राधा-राधाबर की॥ ४॥

[८२३]

(राग—ईमन)

समुद सुगन्धित सुमन लै सुमन सु-भक्ति सु-धार।
पुष्पाञ्जलि अर्पण करूँ देव! करो स्वीकार॥

—— ★ ——

श्रीराम-गुण-गान

[८२४]

(राग मालकोश—त्रिताल)

चित्र-विचित्र मण्डपोंसे है शोभित अवधपुरी रमणीय।
सर्वकाम सब सिद्धिप्रदायक उसमें कल्पवृक्ष कमनीय॥
उसके मूलभागमें शोभित परम मनोहर सिंहासन।
अति अमूल्य मरकत, सुवर्ण, नीलमसे निर्मित अतिशोभन॥
दिव्य कान्तिसे करता वह अति गहरे अन्धकारका नाश।
होता रहता उससे दुर्लभ विमल ज्ञानका सहज प्रकाश॥
उसपर समासीन जन-मनके मोहन राघवेन्द्र भगवान।
श्रीविग्रहका रंग हरित-द्युति-श्यामल दूर्वापत्र समान॥
उज्ज्वल आभासे आलोकित दिव्य सच्चिदानन्द-शरीर।
देवराज-पूजित हरता जो सत्वर जन-मनकी सब पीर॥
प्रभुके सुन्दर मुखमण्डलकी सुषमाका अतिशय विस्तार।
देता रहता जो राकाके पूर्ण सुधाधरको धिक्कार॥
उसकी अति कमनीय कान्ति भी लगती अति अपार फीकी।
राघवके वदनारविन्दकी अनुपम छबि विचित्र नीकी॥
लसित अष्टमीके शशाङ्ककी सुषमा तेजपुञ्ज शुभ भाल।
काली घुँघराली अलकावलिकी सुन्दरता विशद विशाल॥
दिव्य मुकुटके मणि-रत्नोंकी रश्मि कर रही द्युति-विस्तार।
मकराकार कुण्डलोंका सौन्दर्य वर्णनातीत अपार॥
सुन्दर अरुण ओष्ठ विद्रुम-सम, दन्तपंक्ति शशि-किरण-समान।
अति शोभित जिह्वा ललाम अति जपापुष्प सम रंग सुभान॥

कम्बु-कंठ, जिसमें ऋक् आदिक वेद-शास्त्र करते नित वास।
श्रीविग्रहकी शोभा वर्धित करते ये सब अङ्ग-विलास॥
केहरि-कंधर-पुष्ट समुन्नत कंधे प्रभुके शोभाधाम।
भुज विशाल, जिनपर अति शोभित कङ्कण-केयूरादि ललाम॥
हीरा-जटित मुद्रिकाकी शोभा देदीप्यमान सब काल।
घुटनोंतक लंबे अति सुन्दर राघवेन्द्रके बाहु विशाल॥
विस्तृत वक्षःस्थल लक्ष्मी-निवाससे अतिशय शोभासार।
श्रीवत्सादि चिह्नसे अङ्कित परम मनोहर नित्य उदार॥
उदर रुचिर गम्भीर नाभि, अति सुन्दर सुषमामय कटिदेश।
मणिमय काञ्चीसे सुषमा श्रीअङ्गोंकी बढ़ रही विशेष॥
जङ्घा विमल, जानु अति सुन्दर, चरण-कमलकी कान्ति अपार।
अङ्कुश-यव-वज्रादि चिह्नसे अङ्कित तलुवे शोभागार॥
योगिध्येय श्रीराघवके श्रीविग्रहका जो करते ध्यान।
प्रतिदिन शुभ्र उपचारोंसे जो पूजन करते हैं मतिमान॥
वे प्रिय जन प्रभुके होते, नित उन्हें पूजते सब सुर-भूप।
दुर्लभ भक्ति प्राप्त करते वे राघवेन्द्रकी परम अनूप॥

[८२५]

(राग बिहाग—तीन ताल)

शौर्य-वीर्य-ऐश्वर्य अतुल माधुर्य दिव्य सौन्दर्य-निधान।
नित्य सच्चिदानन्द दिव्य शुचितम गुणगण-सागर भगवान॥
धैर्य परम, गाम्भीर्य सरस, सौशील्य सहज, औदार्य महान।
शरणागत-वात्सल्य, साम्य, कारुण्य, स्थैर्य, चातुर्य, अमान॥
सत्य, अहिंसा, मृदुता, आर्जव, ज्ञान, तेज, बल, बुद्धि ललाम।
नमस्कार पद-पद्मोंमें जो गुणनिधि अतुल राम-से राम॥

[८२६]

(राग भूपाल तोड़ी—तीन ताल)

रामचंद्र मुख-मंजु मनोहर भक्त-भ्रमर मन-हारक।
मंगल मूल मधुर मंजुल मृदु दिव्य सहज सुख-कारक॥

****

नित्य निरामय निर्मल अबिरल ललित कलित सुभ सोभित।
पाप-ताप-मद-मोह-हरन, मुनि-मन-सुचि-करन सुलोभित॥
नील-स्याम-तनु, धनु कर सोहत, बरद हस्त भय नासत।
सुमन-माल-सुरभित, मुक्ता-मनि-हार लसत दुति भासत॥
पीत बसन सौंदर्य-सौर्य-निधि, भाल तिलक अति भ्राजत।
अखिल भुवनपति, सुषमा-श्री लखि, काम कोटि-सत लाजत॥

[८२७]

(राग खट—तीन ताल)

अतुल अनन्त अचिन्त्य सद्गुणोंके शुचितम शुभ आकर।
असुर-दैत्य-तम-निशा-विनाशक रवि-कुल-कमल-दिवाकर॥
साधु-धर्म-संरक्षण-संबर्धन-हित नित्य धनुर्धर।
अखिल विश्वगत प्राणिमात्रके सहज समर्थ सुहृदवर॥
मात-पिता-गुरुभक्ति अनुत्तम भ्रातृ-स्नेह-रत्नाकर।
राम स्वयं भगवान अकारण-करुण भक्त-भव-भयहर॥

[८२८]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

मात-पिता-गुरु-भक्ति, एकपत्नीव्रत पावन।
भ्रातृप्रेम, शरणागतवत्सलता मनभावन॥
परम मधुर सौन्दर्य काम-शतकोटि-लजावन।
त्याग, शान्ति, वैराग्य, ज्ञान मुनि-चित्त लुभावन॥
शौर्य-नीति-बल-तेज शुचि उपजावत मन हर्ष है।
दुष्ट-दलन, सेवक-सुहृद राम परम आदर्श है॥

[८२९]

(राग बहार—ताल कहरवा)

जय श्रीराम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, जयति, जय कपि हनुमान।
जय जानकी, माण्डवी, जय उर्मिला सती, श्रुतिकीर्ति महान॥
जयति आदिकवि वाल्मीकि, जय शंकर, जय कवि तुलसीदास।
रामायण-रचयिता धन्य, जय उमा कर रहीं बुद्धि-विकास॥

****

[८३०]

(राग नट—ताल मूल)

सीता-राम, उर्मिला-लक्ष्मण, माण्डवि-भरत मङ्गलाधार।
शुचि, श्रुतिकीर्ति-शत्रुहन्, गौरी-हर, भुशुण्डि, हनुमान उदार॥
आदि महाकवि बाल्मीकि मुनि, तुलसीदास भक्त सुखधाम।
अष्ट अष्टदल-मध्य सुशोभित, केन्द्र राम-सीता अभिराम॥
मङ्गलमय इनका जो करता श्रद्धायुत नित पूजन-ध्यान।
पाकर सीताराम-प्रेम वह बनता परम भक्त मतिमान॥

[८३१]

(राग ईमन)

मज्जन करि सुभ सरजु-तट ठाढ़े श्रीरघुबीर।
संग अनुज मुनि अमल मन, प्रभु भंजन भवभीर॥
बपु नव-नीरद-नील सुचि, भुवनाभरन रसाल।
सुन्दर पीताम्बर बिसद भ्राजत उर मनि-माल॥
पुष्पहार मुनि-मन-हरन सुंदर सुषमा-ऐन।
बिकट भ्रुकुटि, चितवनि कुटिल, रस-मद-माते नैन॥
रूप जलधि माधुर्यनिधि उपमा-बिरहित अंग।
रोम-रोम पर बारियै अगनित अजित अनंग॥

[८३२]

(राग माढ़)

राम-लखन नृप-सुअन दोउ राजत कौसिक्क संग।
रूप-सुधा-सौंदर्य-निधि उमगत अंग सुअंग॥
दामिनि-बारिद-बर-बरन, तेज-पुंज रस-रंग।
नख-सिख सुंदर निरखि छबि मोहे अमित अनंग॥
धनु-सर कर, केहरि-ठवनि, कटि पटपीत-निषंग।
मुनि मख-राखन, भय-हरन, बिरमत सदा असंग।
बिकट कुटिल मारीच मति नीच सुबाहु भुअंग॥
उभय जीति, मुनि जग्य कौं सफल कर्‌यो सब अंग॥

[८३३]

(राग पूर्वी—ताल त्रिताल)

अति प्रसन्न-मन जनकराजने विधिवत कर सारे आचार।
चारों कन्याएँ कीं अर्पण, चारोंको शुचि सालङ्कार॥
रामभद्रको सीता दी, दी लक्ष्मणको उर्मिला अमन्द।
दी माण्डवी भरतको, दी श्रुतिकीर्ति शत्रुहन्को सानन्द॥
ऋषियोंने सविधान कराया चारोंका विवाह-संस्कार।
जनकपुरीमें सारे जगमें ही छाया आनन्द अपार॥

[८३४]

(राग पूरिया—तीन ताल)

प्रभु! मैं नहिं नाव चलावौं।
तव पद रज नर-करनि मूरि प्रभु!
महिमा अमित कहाँ लगि गावौं।
पाहन छुअत नारि भइ पावनि,
काठ पुरान की यह नावौं।
परसत रज मुनि-नारि बनै यह,
मैं पुनि असि नौका कहँ पावौं॥
मैं अति दीन-दरिद्र कुटुँब बहु,
यहि नौका तें सबहिं निभावौं।
जो यह उड़ै, जीविका बिनसै,
केहि बिधि पुनि परिवार चलावौं॥
अनुमति होइ तो लेइ कठौता,
सुरसरि-जल भरि प्रभु पहँ लावौं।
पद पखारि, रज धोइ भली बिधि,
करि चरनामृत पाप नसावौं॥
प्रभु-चरनन की सपथ नाथ! मैं,
अन्य भाँति नहिं नाव चढ़ावौं।

लखन रिसाइ तीर जो मारैं,
निबल, पकरि पद प्रान गवावौं ॥
प्रेम भरे, अति सरल सुहावन,
अटपट बचन सुने रघुरावौं।
करुना-निधि हँसि अनुमति दीन्ही,
केवट कह्यो पार लै जावौं ॥

[८३५]

(राग हमीर—तीन ताल)

प्रभु बोले मुसुकाई।
जातें तोरि नाव रहि जावै, सोइ जतन करु भाई ॥
पाँव पखारु, लाइ गंगाजल, अब मत बिलँब लगाई।
सुनत बचन तेहि छिन सो दौर्‌यौ, मन मँह अति हरषाई ॥
भर्‌यौ कठौता गंगा-जल सों सब परिवार बुलाई।
प्रभु-पद आइ पखारन लाग्यौ, उर आनँद न समाई ॥
सुरन बिलोकि प्रेम-करुना अति, नभ दुंदुभी बजाई।
केवट भाग्य सराहि अमित बिधि, सुमन-बृष्टि झरि लाई ॥
पद पखारि, सब लै चरनामृत, पुरुखन पार लँघाई।
सीता-लखन सहित रघुनंदन, हरषित नाव चलाई ॥

[८३६]

(राग प्रदीप—तीन ताल)

मधुर मृदु सुंदर राजकुमार ॥
स्यामल-गौर किसोर बंधु दोउ सुचि सुषमा-आगार।
कटि तूनीर, तीर-धनु कर महँ धीर बीर सुकुमार ॥
जटा-जूट-मंडित, मुनि पट, उर-बाहु बिसाल उदार।
चले जात पथ, पग बिनु पनही रूप-सील-भंडार ॥

उभय मध्य राजति श्रीजानकि सोभामई अपार।
अति निर्मल देखत मन उमगत श्रद्धा-सरिता-धार॥
बूझति पिय सौं चकित, कथा बन की करि, हृदय बिचार।
हेरि-हेरि सिय-तनु समुझावत प्रिया, भरे हिय प्यार॥
लखन सकुचि सोचत सिय-हिय की बात, न पावत पार।
धन्य ते, जिन निरखे इनहीं, भरि नैन सकल सुख-सार॥

[८३७]

(राग गौड़ सारंग—तीन ताल)

लक्ष्मण अनुज सती सीता सह मर्यादा-पुरुषोत्तम राम।
पिता-वचनका पालन करते वन-वन विचर रहे अभिराम॥
कभी पर्वतारोहण करते, कभी उतर करते विश्राम।
शुभ मर्यादा-लीला करते लीलामय आदर्श ललाम॥

[८३८]

(राग देश)

चरन-पादुका नेह सों पूजत नित अभिराम।
राम-प्रेम-मूरति भरत निवसत नंदीग्राम॥
मन अखंड स्मृति राम की, जीभ राम कौ नाम।
राजत कर जप-माल सुचि, तजे भोग सब काम॥

[८३९]

(राग मधुवती—तीन ताल)

सहित सहस्त्र चतुर्दश राक्षसगणके, जो थे पापाचार।
धर्मद्वेषी खर-दूषणका महासमरमें कर संहार॥
बैठे रामभद्र, मुनियोंने आकर किया समुद सत्कार।
परम प्रशंसा कर सब करने लगे चतुर्दिक जय-जयकार॥
लगे बजाने देव दुन्दुभी अन्तरिक्षमें बारम्बार।
रामचन्द्रका अद्भुत अत्याश्चर्यपूर्ण यह कर्म निहार॥

[८४०]

(राग पीलू—ताल दीपचंदी)

विप्रवेशधारी वैश्वानर आये प्रभुके पास।
विनय-विनम्र बचन बोले मुखपर छाया मृदु हास॥
''नाथ! आपकी लीला अब लायेगी नूतन रंग।
सीता-हरण करेगा रावण खूब मचेगा जंग॥
अतः जगज्जननी सीताकी सेवाका सब भार।
मुझे सौंप इन छाया-सीताको करिये स्वीकार॥
लीला-बध जब कर रावणका कर देंगे उद्धार।
तब मैं इन्हें सौंप दूँगा सादर लाकर सरकार''॥
दुःख हुआ यद्यपि प्रभुको ली बात किंतु यह मान।
हुआ नहीं लक्ष्मणको भी इस गुप्त भेदका ज्ञान॥

[८४१]

(राग हमीर—तीन ताल)

मधुर सु-सेवासे प्रसन्न हो शबरीसे बोले श्रीराम।
भद्रे! शुचि शुश्रूषा की, अब जाओ निज अभीष्ट हरि-धाम॥
आज्ञा पा, शबरीने जलते पावकमें जब किया प्रवेश।
दिव्य अग्नि-सम देह प्राप्तकर तेजस्वी धर पावन वेश॥
बसन, हार, आभूषण, अनुलेपन सब दिव्य परम तन धार।
विद्युत्-द्युति दमकाती पहुँची दिव्य धाम, तमके उस पार॥

[८४२]

(राग कलावती—ताल धुमाली)

'ओजस्वी सौमित्रि करो तुम क्षमा हमारे सारे दोष'।
मदको त्याग, तोड़ मालाको, बोले कपिपति—'छोड़ो रोष॥
रामकृपासे ही पाया मैंने श्री, कीर्ति, राज्य सर्वस्व।
राघवके उपकार अमितका क्या मैं बदला दूँ निस्सत्त्व॥

होगा प्रभुकी महिमासे ही रावण-वध, सीता-उद्धार।
मैं नगण्य भी पाऊँगा सेवाका शुचि सौभाग्य अपार'॥
ताराने भी मधुर नम्र वचनोंसे स्थितिका किया बखान।
मृदु-स्वभाव लक्ष्मणने हो संतुष्ट किया तत्क्षण प्रस्थान॥

[८४३]

(राग देश)

सीता अति कृस गात, सुमिरत मन रघुबंस-मनि।
आयहु मन इतरात, दसमुख मंदोदरि सहित॥
अधम निलज्ज अपार, कहे बचन निंदित अमित।
सीता दै फटकार, बोली—'चुप रहु नीच! खल'॥
रावन कर अति क्रोध, कर अति कठिन कृपान से।
धायहु असुर अबोध, सीतहि मारन मंद-मति॥
मयतनया धरि हाथ, अति बिनीत कहि नीति सुचि।
गई लेइ निज साथ, कोह-मोह-रत रावनहिं॥

[८४४]

(राग हंसध्वनि—तीन ताल)

सीताका कर हरण दुष्ट रावण जब लङ्कामें लाया।
दिये प्रलोभन अमित, विविध विधिसे फुसलाया समझाया॥
क्रोधातुर हो सती जानकीने जब उसको फटकारा।
रखकर सीताको अशोक-वन, लौट गया वह मन-मारा॥
जगजननि जानकिको जब सुरपतिने देखा दुःख-अधीर।
अति दुःखित हो, चरु लेकर जब आये, शुचि शचिपति सुर-वीर॥
आश्वासन दे, कहा—'जननि! रावणका कर सवंश संहार।
विजयी हो रघुवर, तुमको ले जायेंगे निज संग उदार॥
कुछ दिन धीरज धरो, करो अनुचरकी यह सेवा स्वीकार।
दिव्य देव-हवि-अन्न ग्रहणकर क्षुधा-तृषासे पावो पार॥

****

भूख-प्यासकी बाधा मैया! कभी न होगी तुमको अब।
सीताने सुरपतिको जब पहचाना, लिया दिव्य चरु तब॥
माताकी शुभ आशिष पाकर सुखसे लौट गये सुरराज।
धन्य वही, जिसका तन-मन-धन लगता सदा रामके काज॥

[८४५]

(राग हंसनारायणी—तीन ताल)

'पता लगाकर सीताका खुद मिलकर हैं आये हनुमान।
मेरे, लक्ष्मणके, रघुकुलके रक्षक परम महाबलवान॥
वस्तु न मेरे पास योग्य दूँ जिसको इन्हें आज उपहार।
ऋणसे मुक्त हो नहीं सकता मैं कदापि, कर चुका विचार॥
आज इस समय मैं देता हूँ इनको बस, आलिङ्गन-दान।
मेरा यह सर्वस्व, महात्मा इससे हों प्रसन्न हनुमान॥
(यों कह—) पुलकित हुए अङ्ग सब, उमड़ा राघवके मन प्रेम अनन्य।
किया कृतात्मा सेवकको दे गाढ़ालिङ्गन प्रभुने धन्य॥

[८४६]

(राग तैलंग—तीन ताल)

रिपु रन जीति राम घर आए।
लषन-सीय-कपि-रीछ-सहित प्रभु कुसल, अवध आनंद बधाए॥
नगर छयो आनंद-कुलाहल, हाटबाट-घर सबनि सजाए।
लगे बाजने बजन चहूँ दिसि, मुदित नारि-नर देखन धाए॥
उतरि बिमान भए सब ठाढ़े, अमित रूप निज राम बनाए।
जथाजोग मिलि राम सबनि तें सबके मन अति मोद बढ़ाए॥

[८४७]

(राग नायकी—ताल मूल)

नील कमल, नव-नील-नीरधर, नील मनोहर मरकत स्याम।
राज-राजमनि-मुकुट कोटि-कंदर्प-दर्प-हर सोभा-धाम॥

राजत रत्न-रचित सिंहासन, भ्राजत सिर मनि-मुकुट ललाम।
अंग-अंग सुचि सुषमा-सागर मुनि-मन-हर लोचन अभिराम॥
बरद हस्त-मुद्रा महिमामय भक्त-कल्पतरु पूरन काम।
जनकनंदिनी सहित सुसोभित सुख-दायक रघुनायक राम॥

[८४८]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

गो-द्विज-रक्षा-हेतु रामने लिया दिव्य मानव-अवतार।
गो-द्विज-रक्षा-हेतु यज्ञकी रक्षा की बन पहरेदार॥
गो-द्विज-रक्षा-हेतु किया उस शिला-अहल्याका उद्धार।
गो-द्विज-रक्षा-हेतु प्रफुल्लित-मन, वन-गमन किया स्वीकार॥
गो-द्विज-रक्षा-हेतु लिया श्रीसीता-लक्ष्मणको निज साथ।
गो-द्विज-रक्षा-हेतु तपस्वी बन वन-वन बिचरे रघुनाथ॥
गो-द्विज-रक्षा-हेतु कराया सीता-हरण असुरके हाथ।
गो-द्विज-रक्षा-हेतु बँधाया पत्थर-पुल रोका निधि-पाथ॥
गो-द्विज-रक्षा-हेतु किया रघुबरने लङ्का-दुर्ग-प्रवेश।
गो-द्विज-रक्षा-हेतु किया दुर्धर्ष असुर-दलको निःशेष॥
गो-द्विज-रक्षा-हेतु इन्द्रजित-रावनका कर जीवन शेष।
गो-द्विज-रक्षा-हेतु बनाया भक्त विभीषणको लङ्केश॥
गो-द्विज-रक्षा-हेतु मिटाकर अनाचार सब अत्याचार।
गो-द्विज-रक्षा-हेतु विविध शुचि मर्यादाका कर विस्तार॥
गो-द्विज-रक्षा-हेतु किया प्रस्थापित राम-राज्य शुभ-सार।
गो-द्विज-रक्षा-हेतु पुण्यमय फैलाया सुख विविध प्रकार॥

[८४९]

(राग ईमनकल्याण—ताल त्रिताल)

पूर्णब्रह्म परात्पर राम। दिव्य रसामृत सागर राम॥
आनँद अवतारी श्रीराम। स्वेच्छा-लीलाकारी राम॥

अज-अव्यय सर्वेश्वर राम। चिदानन्द सत् वपु वर राम॥
धृत कर वर धनु सायक राम। हतवैरी-गतिदायक राम॥
सुर-पूजित सुर-नायक राम। विश्व अनन्त विधायक राम॥
सर्वातीत सर्वमय राम। गुणविरहित सद्गुणमय राम॥
नित शरणागतरक्षक राम। दुरित दोष-दुःख-भक्षक राम॥
गो-ब्राह्मणप्रतिपालक राम। असुर-दैत्यकुल-घालक राम॥

[८५०]

(राग रागेश्वरी—तीन ताल)

ध्यानमग्न हनुमान नाचते गाते राम-नाम अविराम।
जय सियाराम, जय सियाराम, जय सियाराम, जय सियाराम॥
जय रघुनायक, जय सुखदायक, जय वरदायक, जय सियाराम।
जय सियाराम, जय सियाराम, जय सियाराम, जय सियाराम॥

[८५१]

(राग कामोद—तीन ताल)

काञ्चनाद्रि-कमनीय कलेवर कदली-बन राजत अभिराम।
हेम-मुकुट सिर, भूषण भूषित, अर्ध-निमीलित नेत्र ललाम॥
वरद पाणि वपु, ध्यानमग्न मन, भक्त-कल्पतरु, नित्य निकाम।
राघवेन्द्र-सीता-प्रिय-सेवक मन-मुख सदा जपत सियाराम॥

[८५२]

आरती भगवान् मर्यादापुरुषोत्तम

आरति कीजै श्रीरघुबर की।
सत चित आनँद शिव सुन्दर की॥ टेक॥
दशरथ-तनय कौसिला-नन्दन,
सुर-मुनि-रक्षक दैत्य-निकन्दन,
अनुगत-भक्त भक्त-उर-चन्दन,
मर्यादा-पुरुषोत्तम-वर की॥

निर्गुण-सगुण, अरूप-रूपनिधि,
सकल लोक-वन्दित विभिन्न विधि,
हरण शोक-भय, दायक सब सिधि,
मायारहित दिव्य नर-वर की ॥
जानकिपति सुराधिपति जगपति,
अखिल लोक पालक त्रिलोक-गति,
विश्ववन्द्य अनवद्य अमित-मति,
एकमात्र गति सचराचर की ॥
शरणागत-वत्सल-व्रतधारी,
भक्त-कल्पतरु-वर असुरारी,
नाम लेत जग-पावनकारी,
वानर-सखा-दीन-दुख-हर की ॥

[८५३]

आरती श्रीजानकीजी

आरति श्रीजनक-दुलारी की ।
सीताजी रघुवर-प्यारी की ॥ टेक ॥
जगत-जननि जगकी विस्तारिणि,
नित्य सत्य साकेत-बिहारिणि,
परम दयामयि दीनोद्धारिणि,
मैया भक्तन-हितकारी की ॥ सीताजी० ॥
सती-शिरोमणि, पति-हितकारिणि,
पति-सेवा हित वन-वन-चारिणि,
पति-हित पति-वियोग-स्वीकारिणि,
त्याग-धर्म-मूरति-धारी की ॥ सीताजी० ॥

****

बिमल-कीर्ति सब लोकन छायी,
नाम लेत पावन मति आयी,
सुमिरत कटत कष्ट दुखदायी,
शरणागत-जन-भय-हारी की ॥ सीताजी॰ ॥

[८५४]

आरती श्रीअञ्जनीकुमारजी

आरति श्रीअञ्जनिकुमारकी ।
शिवस्वरूप मारुतनन्दन, केसरी-सुअन कलियुग-कुठार की ॥
हियमें राम-सीय नित राखत, मुखसों राम-नाम-गुण भाखत,
सुमधुर भक्ति-प्रेम-रस चाखत, मङ्गलकर मङ्गलाकार की
॥ आरति॰ ॥
विस्मृत-बल-पौरुष, अतुलित बल, दहन दनुज-वन-हित, दावानल,
ज्ञानि-मुकुट-मणि, पूर्ण गण सकल, मञ्जु भूमि शुभसदाचार की
॥ आरति॰ ॥
मन-इन्द्रिय-विजयी, विशाल मति, कलानिधान, निपुण गायक अति,
छन्द-व्याकरण-शास्त्र अमित गति, रामभक्त अतिशय उदार की
॥ आरति॰ ॥
पावन परम सुभक्ति-प्रदायक, शरणागतको सब सुख-दायक,
विजयी वानर-सेना-नायक, सुगति-पोतके कर्णधार की
॥ आरति॰ ॥

—— ★ ——

भगवान्‌के विविध स्वरूपोंका गुण-गान

[८५५]

सब नामरूपोंमें एक ही सत्यकी उपासना

(राग भैरव—ताल त्रिताल)

एक सत्य जो परम तत्त्व परमात्मा ब्रह्म ईश भगवान्।
निर्गुण-गुणसह-निराकार, साकार-सगुण, सब भाँति महान्॥
नित्य, सच्चिदानन्द, सर्वमय, सर्वातीत, सर्व-आधार।
विष्णु, सूर्य, दुर्गा, शिव, गणपति, राम-कृष्ण अवतार-उदार॥
अर्हत्, बुद्ध, पिता ईसाके, अहुरमज्द, अल्लाह, प्रधान।
प्रकृति, नियम, अणु, महत्, कर्म, कर्त्ता, अव्यक्त, स्वरूप-ज्ञान॥
सभी प्राणियोंमें विभक्त-से जो प्रतीत होते 'अविभक्त'।
वही उपास्य, उपासित होते विविध रूपमें हो अभिव्यक्त॥

[८५६]

एक ही परम प्रभु पाँच उपास्यरूपोंमें

(राग गुनकली—ताल मूल)

एक परम प्रभु चिदानन्दघन परम तत्त्व हैं सर्वाधार।
सर्वातीत, सर्वगत वे ही अखिल विश्वमय रूप अपार॥
हरि, हर, भानु, शक्ति, गणपति हैं इनके पाँच स्वरूप उदार।
मान उपास्य उन्हें भजते जन भक्त स्वरुचि-श्रद्धा-अनुसार॥

[८५७]

श्रीमहाविष्णु

(राग जोग—ताल धमार)

नीरद श्यामवर्ण अति शोभित, कण्ठ कमल-मुक्ता-मणि हार।
कौस्तुभ-मणि, भृगुलता वक्ष, श्रीवत्स दिव्य कर रहे विहार॥

पद्म-गदा-असि-चर्म-चक्र-धनु-बाण-शङ्ख, भुज अष्ट विशाल।
कुण्डल कर्ण, कटक बाजूबँद, रत्न-मुकुट सिर, तिलक सुभाल॥
कटि-पीताम्बर, रत्न मेखला, रुचिर रूप अति मङ्गलमय।
भक्त-कल्पतरु दीन-दयामय महाविष्णु जय-जय-जय-जय॥

[८५८]

भगवान् श्रीविष्णुका मनोहर ध्यान

(राग देस—त्रिताल)

वज्र-ध्वजा-अङ्कुश-सरसिजके मङ्गलमय चिह्नोंसे युक्त।
उभरे हुए अरुण शोभामय नख-शशि-किरणोंसे संयुक्त॥
चिन्तन-कर्त्ताओंके हृदयोंका जो हरते तम अज्ञान।
श्रीहरिके उन चरण-सरोजोंका मनसे नित करिये ध्यान॥
जिनकी धोवनसे निकली अति पावन भागीरथी उदार।
शिव हो गये परमशिव जिसके शुचि जलको निज मस्तक धार॥
ध्याताओंके पाप-पर्वतोंपर निपतित जो वज्र-समान।
श्रीहरिके उन चरण-सरोजोंका मनसे करिये चिर ध्यान॥
विधि-जननी श्रीलक्ष्मीजी जिनको अपनी गोदीपर धार।
जलज-लोचना, देव-वन्दिता करती जिन्हें हृदयसे प्यार॥
कान्तिमान निज कर-कमलोंसे लालित करती अति सुख मान।
अज भव-भय-हर हरिके दोनों घुटने पिंडली शोभा-खान॥
जङ्घा बलनिधि, नीलवर्ण अलसीके कुसुम-सदृश सुन्दर।
परम सुशोभित होती हैं जो ज्ञान-धाम खगपति ऊपर॥
रुचिर नितम्ब-बिम्ब युग पावन पीताम्बरसे परिवेष्टित।
स्वर्णमयी काञ्चीकी लड़ियोंसे जो रहते आलिङ्गित॥
भुवन कोश-गृह उदर-देशमें नाभि-कूप सौन्दर्य-निधान।
ब्राह्मके आधार विश्वमय वारिजका उत्पत्तिस्थान॥
मरकत-मणि-समान दोनों स्तन वक्षःस्थलपर चमक रहे।
शुभ्र हारकी किरणावलिसे गौरवर्ण हो दमक रहे॥

****

पुरुषोत्तम हरिका मुनि-जन-मोहन विशाल अति उर उन्नत।
नयन-हृदयको सुखदायक लक्ष्मीका जहाँ निवास सतत॥
अखिल लोक-वन्दित श्रीहरिका कम्बुकण्ठ शोभा आगार।
परम सुशोभित करता कौस्तुभ-मणिको भी अपनेमें धार॥
राजहंस-सम शङ्ख सुशोभित कर-पङ्कजमें दिव्य ललाम।
शत्रुवीर-रुधिराक्त गदा हरिकी प्रिय कौमोदकी सुनाम॥
वनमाला शोभित सुकण्ठमें मधुप कर रहे मधु गुञ्जार।
जीवोंके मलरहित तत्त्वसम कौस्तुभमणि अति शोभा-सार॥
भक्तानुग्रहरूपी श्रीविग्रहका मुख-सरोज मनहर।
सुघड़-नासिका, कानोंमें मकराकृत कुण्डल अति सुन्दर॥
स्वच्छ कपोलोंपर कुण्डल-किरणोंका पड़ता शुभ्र प्रकाश।
इससे मुख-सरोजकी सुन्दरताका होता और विकास॥
कुञ्चित केश-राशिसे मण्डित मुख सब दिक् मधुमय करता।
निज छविद्वारा मधुकर-सेवित कमल-कोशकी छवि हरता॥
नयन-कमल चञ्चल विशाल हरते उन मीनद्वयका मान।
कमल-कोशपर सदा उछलते बनते जो शोभाकी खान॥
उन्नत भ्रकुटि सुशोभित हरिके मुख-सरोजपर मन-हरणी।
नेत्रोंकी चितवन अति मोहिनी सर्वसुखोंकी निर्झरणी॥
बढ़ती रहती सदा प्राप्तकर प्रेम प्रसाद-भरी मुसकान।
विपुल कृपाकी वर्षा करती हरती त्रय तापोंके प्रान॥
श्रीहरिका मृदु-हास मनोहर अति उदार शरणागत-पाल।
तीव्र शोकके अश्रु-उदधिको पूर्ण सुखा देता तत्काल॥
भूमण्डलकी रचना की मायासे प्रभुने मुनि-हित-हेतु।
कामदेवको मोहित करने, जो तोड़ा करते श्रुति-सेतु॥
तदनन्तर हरिके मन-मोहक हँसनेका करिये शुभ ध्यान॥
जिससे अधर ओष्ठकी विकसित होती अरुण छटा सुख खान॥
कुन्द-कली-से शुभ्र दाँत उससे कुछ अरुणिम हो जाते।
हरिकी इस शोभासे जगके संस्कार सब खो जाते॥

[८५९]

(राग खमाज—ताल कहरवा)

है जो त्रिगुणातीत, नित्य, अज, अव्यय, नाम-रूप गति हीन।
हिममें नीर-सदृश जो व्यापक सबमें, सबसे परे, अलीन॥
अद्वय कारण, अद्वय, जिसमें है सबका अत्यन्ताभाव।
शुद्ध बोधघन, सत्य स्वस्थ, सनातन, रहित भावमय भाव॥
रवि-शशि-अनल प्रकाशित होते जिसका तेज-अंश पाकर।
व्योम, वायु, रस भूमि, अग्निका एकमात्र जो है आकर॥
अधिष्ठान सब जगका, निज मायामें रचता नाना वेश।
परद्रष्टा, अनुमन्ता, जो भर्ता, भोक्ता, ईश्वर, परमेश॥
सुधा-सने सौन्दर्य-राशिका है जो अति अनुपम सागर।
त्रिभुवनकी सब रूपछटा है जिसकी नन्हीं-सी गागर॥
कर अधीन निज-प्रकृति, योगमायासे अघटन घटना कर।
है नित नूतन वेष धारता विश्वविमोहन बाजीगर॥
सबका जो सर्वस्व, आत्मवित्, भक्तोंका जो जीवन-धन।
जिसके परमानन्द रूपसे नित्यानन्दित हैं निज-जन॥
प्राणाधिक आराध्यदेव जो, नित नव-नव आनँद-निर्झर।
भक्तवश्य साकार, सगुण, जन-मन-पङ्कजका जो दिनकर॥
जीवन-मन-तन-सुधि-हर होती जिसकी मधुर मन्द मुसकान।
जिसकी सुन्दर छटा निरखकर छुटती लोक-वेद-कुल-कान॥
देव, दनुज, मुनि, ऋषि जिसके दर्शनको संतत ललचाते।
विविध भाँति तप-साधन करते, नहीं सहजमें हैं पाते॥
जन्म जन्मसे लगी हुई थी जिनके दर्शनकी आशा।
रूप-सुधा वारिधि-अवगाहनकी जिसके थी अभिलाषा॥
जिसने अपने मिलनेकी व्याकुलता भर दी थी मनमें।
विरहानल था धधक उठा जिससे उसके सारे तनमें॥
वही ब्रह्म साकार प्रकट हो, अद्भुत दर्शन है देता॥
सत्वर अगणित जन्मोंकी अघराशि पूर्ण है हर लेता॥

यह साधन-विहीन था, कारण किंतु एक बलवान अपार ।
निश्चित ब्रह्मरूप गुरुवरकी थी अनुकम्पा-पारावार ॥
उनकी प्रेम-रज्जुसे हरिको बँधना पड़ा स्वयं तत्काल ।
रखनी पड़ी अभय करनेको नत मस्तकपर भुजा विशाल ॥
कोमल कर-स्पर्शसे जनको निर्भय नित्य पड़ा करना ।
चरण-स्पर्श अभयवाणी, मधुर प्रसादसे दुख हरना ॥
उस छवि-राशि अमितका वर्णन करनेमें वाणी लाचार ।
मापा कभी न जा सकता है हाथोंसे आकाश अपार ॥
भाग्यवती जिन आँखोंने वह देखी रूप-छटा अनुपम ।
तृप्त हो गयीं, नहीं बता सकती हैं, वर्णनमें अक्षम ॥
वाणी कुछ प्रयास करती है, नेत्रोंका सहाय लेकर ।
मनमोहनके अतल रूपकी मधुर स्मृतिमें मन देकर ॥
उस स्मृतिमें जाते ही तत्क्षण रूपमग्न मन हो जाता ।
मनके रुकते ही वाणीका काम नहीं कुछ हो पाता ॥
रुकी लेखनी बंद हो गयी, चलता नहीं हाथ आगे ।
क्षमा कीजिये प्रेमी पाठक, सरल पाठिका सद्भागे ॥
पूर्ण प्रेमसे मिल करके सब, करिये उनका प्रेमाह्वान ।
जिससे सत्वर पुनः प्रकट हों सबके सम्मुख श्रीभगवान् ॥

[८६०]

भगवान् विष्णु

(राग सारंग—ताल त्रिताल)

दिव्य ज्योति-मण्डल उद्भासित किरणें छिटक रहीं सब ओर ।
द्वादश दल शुभ कमल उसीमें शोभित श्री-सुषमा, सिरमौर ॥
कमल मध्य सुविराजित सुर-ऋषि-मुनि-आराध्य विष्णु भगवान् ।
चिदानन्दमय नीलमेघ-तन पीताम्बरधर वर द्युतिमान ॥
दिव्य मुकुट, कुण्डल, कौस्तुभमणि, मुक्ता-रत्न सुशोभित हार ।
चक्र सुदर्शन, गदा, शङ्ख, सरसिज-भूषित विशाल भुज चार ॥

भगवान् विष्णु

मधुर हास, मुख-कमल मनोहर, नेत्र सुधावर्षी सुविशाल।
जयति-जयति जय अखिल भुवनपति, तिलक तिमिर-हर भ्राजत भाल॥

[८६१]

संयुक्त लक्ष्मी-नारायण

(राग ईमन)

लक्ष्मी नारायण स्वयं, नारायण श्री रूप।
एक तत्त्व दो बन रहें, जैसे छाया-धूप॥
मिलित एक ही देहमें दोनों बन अर्धाङ्ग।
परम सुशोभित हो रहे, श्याम-स्वर्ण-दिव्याङ्ग॥
गदा-चक्र हरि-हाथमें, श्रीकर शङ्ख सुकञ्ज।
पीत-नील पट रुचिर अति भूषण आभा-पुञ्ज॥
कमलासन, माला विमल, तिलक बिंदु शुचि भाल।
हेम-मुकुट सुषमा मधुर अमित महत्त्व विशाल॥

[८६२]

अद्भुत बालक

(राग जोगिया—ताल कहरवा)

नील-स्याम अद्भुत तेजोमय बालक कमल-नयन भुज चार।
चक्र-गदा दक्षिण-कर शोभित, बाम शङ्ख-पङ्कजकी धार॥
कौस्तुभमणि, श्रीवत्स वक्षपर उरमें रत्न, कुसुमके हार।
अति सुन्दर पीताम्बर कटिमें, करधनि मणिमय शोभा-सार॥
मणिवैदूर्य-महार्घ-विनिर्मित मुकुट शीश घुँघराले केश।
चमक रहे अति सूर्य-रश्मिसे पाकर कुण्डल-कान्ति विशेष॥
भुज अङ्गद राजत, कर कङ्कण, रत्नाभरण सुशोभित वेश।
परम मनोहर रूप-माधुरी सुन्दरताकी सीमा-शेष॥

[८६३]

सर्वप्रकाशक ज्योतिर्मय भगवान्

(राग मालकोश—ताल त्रिताल)

देते सूर्य-सोम-मण्डलको, अग्निदेवको उज्ज्वल भास।
अष्ट-कमलदलपर वे नित्य स्थित हैं नारायण श्रीवास॥
जिनके रोम-रोममें अगणित हैं ब्रह्माण्ड नित्य अव्यक्त।
जो हैं कोटि-कोटि ब्रह्माण्डोंके अनन्त रूपोंमें व्यक्त॥
लीलामय वे लीला-कारण धरे विचित्र विविध बहु रूप।
दर्शन हैं दे रहे चतुर्भुज विष्णु वही सब भाँति अनूप॥

[८६४]

वरदायिनी श्रीलक्ष्मीमाता

(राग देश—ताल मूल)

जय अनन्त वैभवमयि, जय दारिद्र्य-बिदारिणि।
जय अनन्त ऐश्वर्यखानि, हरि-हृदय-विहारिणि॥
जयति देव-दानव-मानव सब दुःख-निवारिणि।
जय वरदायिनि माता लक्ष्मी मङ्गलकारिणि॥
अरुणाभा अरुणाम्बरा दिव्यभूषणा जयति जय।
कमलकरा कमलासना द्युतमति कमला जयति जय॥

[८६५]

भगवती श्री (महालक्ष्मी) की झाँकी

(राग बिहाग—ताल त्रिताल)

कमलासन-आसीन देवि 'श्री' अद्भुत श्री-सुषमासे युक्त।
पद्म-चक्र-वर-अभय चतुर्भुज दिव्य भूषणोंसे संयुक्त॥
सुमन-माल गल, रत्न-मुकुट सिर, सकल विभूति विश्वकी टेक।
चारु स्वर्णकलशोंसे करिवर चार कर रहे शुभ अभिषेक॥

भगवान् श्रीकृष्ण

****

[८६६]

लक्ष्मीनारायण, लक्ष्मी, सरस्वती

(राग भैरव—ताल धमार)

शक्ति-शक्तिधर श्रीलक्ष्मी-नारायण दें मङ्गल वरदान।
मिटें अशान्ति-दुःख सबहीके, प्राप्त करें सुख-शान्ति महान॥
माँ लक्ष्मी कर कृपा हरें दारिद्र्य, करें सौभाग्य-प्रदान।
माँ सरस्वती दें शुचि विद्या-बुद्धि हरें सारा अज्ञान॥

[८६७]

एकार्णवमें वटवृक्षपर बाल भगवान्

(राग श्याम कल्याण—ताल झूमरा)

एकार्णवकी उस अगाध जलराशि-बीच वटबृक्ष विशाल,
दीख पड़ा उसकी शाखापर बिछा पलंग एक तत्काल।
उसपर रहा विराज एक था कमलनेत्र अति सुन्दर बाल,
देख प्रफुल्ल कमल-मुख मुनि मार्कण्डेय हो गये चकित, निहाल॥

[८६८]

भगवान् नृसिंहकी प्रह्लादसे क्षमा-प्रार्थना

(राग पूर्बा—ताल कहरवा)

कहाँ वयस सुकुमार वत्स ! तव, कहाँ अहो, यह मृदुल शरीर !
और कहाँ उन्मत्त दैत्यकृत यह दारुण यातना गँभीर॥
देखी अद्भुत बात—पितासे पीड़ित पुत्र बिना अवलम्ब।
क्षमा करो हे वत्स ! मुझे आनेमें यदि हो गया विलम्ब॥

[८६९]

पुरीधाममें श्रीजगन्नाथ, सुभद्रा और बलभद्रजीके मङ्गल-विग्रह

(राग जैत—ताल धमार)

जगन्नाथ, बलभद्र, सुभद्रा—भक्तानुग्रह-कातर ईश।
बने दारुमय रूप अनोखे देते नित मंगल आशीष॥

सागर-तटपर पुरी-धाममें रहे दयामय नित्य विराज।
करते सबका सहज परम हित, सजे विलक्षण मङ्गल-साज॥

[८७०]

धनुष-टङ्कारसे ज्वाला भड़की

(राग नारायणी—तीन ताल)

असुरोंने आ किया आक्रमण देवोंपर सहसा उद्दण्ड।
सुर-पुकार सुन, उठे रोषभर हरि, ताना कठोर कोदण्ड॥
धर प्रत्यञ्चा खींचा धनुको, हुआ भयानक धनु-टंकार।
भड़क उठी ज्वाला भीषण, उमड़ा कालानल कर हुंकार॥
होगा अब बिनष्ट जल-भुनकर असुरोंका सारा समुदाय।
यों फिर साधु बनेंगे सब वे तजकर अघ-अनीति-अन्याय॥

[८७१]

लक्ष्मीद्वारा श्रीहरिका वरण

(राग ईमन)

देव-दानवोंने मथा मिलकर उदधि अपार।
निकला विष, जलने लगा उससे सब संसार॥
विकल देख जग, पी गये शंकर करुणागार।
मन्थन करने लगे फिर, कर सब जय-जयकार॥
निकले रत्न विविध, हुआ श्रीका आविर्भाव।
दिव्य वसन-भूषण सजे, मनमें अतिशय चाव॥
जा पहुँचीं हरिके निकट, हाथ लिये वरमाल।
वरा नित्य पतिको पुनः लक्ष्मी हुई निहाल॥

[८७२]

हरि-हर-युद्ध

(राग पूरिया—ताल रूपक)

हरि सँग समर रत बृषकेतु।
भक्त-बत्सल भक्त बानासुर बचावन हेतु॥

भुजग-भूषन, सूल भीषन कोप करि कर धार।
चक्रधर हरि संग जूझत, हृदय अतिसय प्यार॥
अस्त्र अमित निवारि हरि छाँड्यो जँभाई बान।
हर जँभाई लैन लागे भूलि समर महान॥
कुपित बानासुर कियो तब अति भयानक जुद्ध।
हारि अंतहिं, बान ब्याही उषा सँग अनिरुद्ध॥

[८७३]

गोलोकाधीश्वर

(राग पूरिया—ताल मूल)

परम परात्पर देव-देव गोलोकाधीश्वर।
अवतारी सर्वावतार-मूलक परमेश्वर॥
कोटि-कोटि मन्मथ-मन्मथ सौन्दर्य-सुधाकर।
परमाकर्षक नेत्र तपस्वी-ऋषि-मुनि-मनहर॥
नव-नीरद-नीलाभ श्यामघन दिव्य कलेवर।
दिव्यायुध-सज्जित मस्तक शिखि-पिच्छ मुकुटधर॥
साधु-त्राण-परायण नित दुष्कृत-विनाशकर।
धर्मस्थापन-हेतु सुदर्शन चक्र लिये कर॥

[८७४]

कंसकी धनुषशालामें श्रीकृष्णके द्वारा धनुषभङ्ग

(राग दुर्गा—तीन ताल)

मथुरामें सानन्द पधारे श्रीबलराम और घनश्याम।
परम मनोहर, परम शक्तिधर, तेज-पुञ्ज दोनों अभिराम॥
पहुँचे कंस-धनुषशालामें नेत्र-चित्तहर सहज अकाम।
अनायास हैं तोड़ रहे अति विकट धनुष हरि शोभा-धाम॥

****

[८७५]

प्रभास क्षेत्रमें श्रीकृष्णार्जुन मिलन

(राग बिहागरा—तीन ताल)

ब्राह्मणके गो-धनकी रक्षा की अर्जुनने धर्म-विचार।
राज्य त्याग बारह वर्षोंके लिये किया समोद स्वीकार॥
तीर्थाटन करते पहुँचे वे सागर-तटपर तीर्थ प्रभास।
समाचार पा दूतोंसे आये श्रीकृष्ण सखाके पास॥
हृदय लगाकर मिले परस्पर नर-नारायण मित्र पवित्र।
प्रेम-सुधा-रस-सागर उमड़ा मधुर दशा शुचि हुई विचित्र॥

[८७६]

(राग ईमन—तीन ताल)

अज अव्यय अखिलेश प्रभु नित्य अचिन्त्यस्वरूप।
परम-स्वतन्त्र हुए प्रकट चिन्मय रूप अनूप॥
व्रजमें लीला ललित कर, हुए द्वारकाधीश।
पार्थ-सखा सारथि बने भक्तवश्य जगदीश॥
वरदहस्त होकर रहे अक्षय अभय प्रदान।
शरणागत-वत्सल सहज सुहृद कृष्ण भगवान॥

[८७७]

श्रीकृष्णार्जुनका दिव्य प्रेम

(राग तिलक कामोद—तीन ताल)

संजय बोले—'नृपति ! आपका उन्हें सुनानेको संदेश।
बड़े विनयसे मैंने उसके अन्तःपुरमें किया प्रवेश॥
चकित दृष्टिसे श्रीकृष्णार्जुनका देखा जो प्रेम अनन्त।
मैंने समझ लिया, निश्चय ही होगा अब कुरुकुलका अन्त॥
जिन अर्जुनपर अखिल-शक्तिधर प्रभु रखते हैं इतना प्रेम।
उनको कौन जीत सकता है, कौन बचा सकता निज क्षेम॥

अर्जुनने प्रभुके दोनों चरणोंको रखकर अपनी गोद।
उनको नित्य बनाकर अपने, बने धन्य जीवन अति मोद॥
एक चरण अर्जुनका राज रहा रानी कृष्णाकी क्रोड।
रक्खा गोद सत्यभामाने चरण दूसरा कर प्रिय होड॥
उभय महापुरुषोंको ऐसे एक दिव्य आसनपर देख।
सोच लिया अति दारुण है दुर्योधनके ललाटके लेख॥

[८७८]

संधि-दूत-श्रीकृष्ण

(राग आभोगी—ताल दीपचंदी)

शुद्ध सच्चिदानन्द दिव्य वपु मधुर अखिल जगके स्वामी।
सबके परमेश्वर, सबके ही साक्षी सर्वान्तर्यामी॥
धर्मस्थापक, दुष्टदलन-कर्ता, सत्-संरक्षणकारी।
संधि-दूत बन चले स्वयं श्रीकृष्ण भक्त-संकट-हारी॥

[८७९]

विदुर-घर स्याम पाहुने आये

(राग हमीर—तीन ताल)

बिदुर-घर स्याम पाहुने आये !
नख-सिख रुचिर-रूप मनमोहन, कोटि मदन-छबि-छाये॥
बिदुर न हुते घरहि में तेहि छिन, स्याम पुकारन लागे।
बिदुर-घरनि नहाति उठि धाई नैन प्रेम-रस पागे॥
भूली बसन न्हात रहि जेहि थल, तनु सुधि सकल भुलाई।
बोलति अटपट बचन प्रेमबस, कदरी-फल ले आई॥
छीलत डारत गूदो इत-उत छिलका स्याम खवावै।
बारहिं-बार स्वाद कहि-कहि हरि, प्रमुदित भोग लगावै॥
तनिक बेर महँ हरि गुन गावत, बिदुर घरहिं जब आये।
देखि दरस सो कहत, 'अहह ! तैं छिलका स्याम खवाये'॥

कर तें केरा झटकि बिदुर घरनी घर माँहि पठाई।
तनु सुधि पाइ सलाज ससंकित, बसन पहिरि चलि आई॥
बिदुर प्रेमजुत छीलि छीलिकै केरा हरिहिं खवावै।
कहत स्याम—वह सरस मनोहर स्वाद न इन महँ आवै॥
भूखौ सदा प्रेम कौ डोलूँ भगत-जनन गृह जाऊँ।
पाइ प्रेमयुत अमिय पदारथ, खात न कबहुँ अघाऊँ॥

[८८०]

भक्तवत्सल भगवान्‌के द्वारा अश्वोंकी परिचर्या

(राग अडाणा—ताल झूमरा)

बढ़ते चले, शूल-मद-मर्दन करते पार्थ जयद्रथ-ओर।
कुरु-दल-दर्प-दलन द्रुत करते समराङ्गण रण दारुण घोर॥
उतर पड़े रथसे, जब देखा अश्वोंको घायल अति श्रान्त।
रोक लिये एकाकी सहसा सभी शूर भूपति दुर्दान्त॥
किया प्रकट जलपूर्ण सरोबर कर पृथ्वीवर अस्त्राघात।
रचा रुचिर परिचर्यागृह अश्वोंका वाणोंसे विख्यात॥
करने लगे चिकित्सा-सेवा स्वयं भक्तवत्सल भगवान।
अश्व हुए अक्षत, उत्साहित, पुनः पूर्ववत् शक्ति-निधान॥

[८८१]

कुरुक्षेत्रकी समर-भूमिमें वरदहस्त श्रीकृष्ण

(राग वागेश्वरी—ताल झूमरा)

अज अविनाशी अखिल भुवनपति मायापति स्वतन्त्र भगवान।
प्रकट हुए निज लीलासे ही चिदानन्द-विग्रह द्युतिमान॥
लीला ललित दिव्य व्रजमें कर भक्तोंको कर शुचि रस-दान।
पहुँचे द्वारावती, रचे लीलाके अद्भुत अमित विधान॥
कुरुक्षेत्रकी समर-भूमिमें बने पार्थ-सारथि तज मान।
शरणागतको वरद-हस्त हो करते अक्षय अभय-प्रदान॥

[८८२]

सत्यभामाजीके द्वारा नारदजीको श्रीकृष्णका दान

(राग जोग—तीन ताल)

चिन्तन किया श्यामने, मुनिवर नारद आ पहुँचे तत्काल।
पूजा विधिवत् कर पहनायी मुनि-सुकण्ठमें सुरभित माल॥
भोजन रुचि-अनुकूल कराया, सत्याने पति-आज्ञा जान।
धेनु सहस्र स्वर्णमणि-पर्वत सह कर दिया कृष्णको दान॥
मुनिने हँसकर कहा—'हो गये अब हरि! तुम मेरे आधीन।
आज्ञा पालन करो'—किया स्वीकार कृष्णने समुद अदीन॥
तब मुनिने सवत्स कपिला गौको निष्क्रयका मान विधान।
मुक्त किया हरिको, फिर पाया उनसे मनचाहा वरदान॥

[८८३]

व्याधकी विनय

(राग विहाग—तीन ताल)

व्याध बिनवत दोऊ कर जोरे।
'मोतें देव! दयानिधि!! भारी दोष भयो भोरे।
मैं जान्यौ ठाढ़ौ मृग मगमें ताते तेहि मार्‌यो।
बेध्यौ पाद-पदुम प्रभु केरौ क्रूर कुमति हार्‌यौ॥
दीजै दंड पतित पापी कौं सकुच न करि सपने'।
प्रभु कह—'तेरौ दोष नहीं कछु हौं प्रेरक अपने'॥

[८८४]

भगवान् श्रीशिवका मनोहर ध्यान

(राग शङ्करा—ताल कहरवा)

श्रीमहेशकी अङ्गकान्ति अति सुन्दर चम्पक-वर्ण-समान।
श्रीमुख एक, त्रिलोचन शोभित, मुखपर खेल रही मुसकान॥
रत्न-स्वर्ण-आभूषण-भूषित शोभित गले मालती हार।
मुकुट मनोहर सद्‌रत्नोंका करता उज्ज्वलता विस्तार॥

कम्बुकण्ठमें वक्षःस्थलपर रहे आभरण विविध विराज।
जो अपनी उज्ज्वल आभासे बढ़ा रहे आनन्द-समाज॥
घुटनोंतक लंबी अति सुंदर शोभन शिवकी भुजा विशाल।
सुन्दर वलय मनोहर अङ्गद आदिकसे शोभित सब काल॥
अग्नितप्त, अतिशुद्ध, सूक्ष्म अति, अनुपम, अति विचित्र मनहर।
वस्त्र और उपवस्त्र सुशोभित शुचि, अमूल्य श्रीशिव-तनपर॥
चन्दन-अगरु चारु कुङ्कुम-कस्तूरी-भूषित अङ्ग सकल।
दर्पणरत्न सुमण्डित करमें, आँखें कजरारी उज्ज्वल॥
अपनी दिव्य प्रभासे सबका आच्छादित कर रहे प्रकाश।
अति सुमनोहर रूप, तरुण अति सुन्दर वयका किये विकास॥
सभी विभूषित अङ्गोंसे भूषित भव नित्य परम रमणीय।
सती-शिरोमणि गिरिवर-नन्दिनिके प्रियतम सुकान्त कमनीय॥
सदा शान्त अव्यग्र मुखाम्बुज कोटि शशिधरोंसे सुन्दर।
सर्व अङ्ग सुन्दर तनुकी छबि कोटि मनोजोंसे बढ़कर॥
इस प्रकार एकान्त चित्तसे जो करते श्रीशिवका ध्यान।
उनको निज स्वरूप दे देते आशुतोष शंकर भगवान्॥

[८८५]

ध्यानमय भगवान् शिव

(राग भैरव—तीन ताल)

नित्य सच्चिदानन्द सदाशिव भालचन्द्र शुचि सौम्य सुरूप।
सर्प-रत्न-मणि कुसुम माल मण्डित गल, पिङ्गल जटा अनूप॥
नेत्रत्रय, त्रिपुण्ड्र शोभित, कटि भुजंग, हरण मन्मथ मद-गर्व।
ऋक्ष-चर्म-परिधान ध्यानमय वन-तरु तले सुशोभित शर्व॥

[८८६]

ध्यानस्थ शिव सच्चिदानन्द

(राग जोगिया—ताल मूल)

अचल सरल उन्नत सुदिव्य वपु, कपिश-केश-चूड़ा नागेश।
नीलकण्ठ, नासाग्र दृष्टि स्थिर, मुक्ता-नाग हार गल देश॥

क्रोडस्थित कर-कमल, समुज्ज्वल ज्योति, प्राण-तन मन निस्पन्द।
व्याघ्रचर्म-आसन शुचि शोभित शिव योगेश सच्चिदानन्द॥

[८८७]

पञ्चमुख परमेश्वर

(राग गुनकली—ताल मूल)

वर्ण गौर कर्पूर-सदृश आभामय मनहर।
अहिभूषण सब अङ्ग सुसोभित कटि बाघम्बर॥
अक्षमाल-डमरू-त्रिशूल-खट्वाङ्ग-मुण्ड कर।
राजत भाल त्रिपुण्ड्र, अर्धशशि, जटाजूट वर॥
सिंह-चर्म-आसन शुचि षोडशदल पङ्कजपर—।
बैठे त्रिनयन, पञ्चवदन शंकर परमेश्वर॥

[८८८]

जय मृत्युञ्जय

(राग मेघरञ्जनी—ताल धमार)

शुभ कर्पूरगौर तन, त्रिनयन, शशिशेखर त्रिपुण्ड्र वर भाल।
जटाजूट सिर, छत्र नागफण, सुर-सरिता राजत सब काल॥
अक्ष-रत्न-हारावलि-मण्डित, नीलकण्ठ, भूषित तन व्याल।
जय मृत्युंजय बाघम्बर अभयद चतुर्बाहु सुविशाल॥

[८८९]

जय महेश

(राग ललितपञ्चम—तीन ताल)

शङ्ख-गौर पट रीछ-छाल, शंकर सुखकारी।
तीन नयन, भुज चार, शूल-डमरू बर धारी॥
पिंगल जटा पबित्र सुर-धुनी-धारा राजत।
अर्धचन्द्र शुचि श्रवन-सुमन धत्तूर बिराजत॥
जय त्रिपुण्ड्रधर भय-हरण जय भुजङ्ग-भूषण परम।
जय महेश जय भूतपति आशुतोष मङ्गल मरम॥

[८९०]

भगवान् चन्द्रमौलिसे प्रार्थना

(राग देश—तीन ताल)

ध्यानमग्न शुचि शान्त शिव जटा-मुकुट सुविशाल।
चन्द्रमौलि अहि-अक्ष-गल-माल त्रिपुण्ड्र सुभाल॥
शंकर शुभ कल्याणमय सकल सुमङ्गल-मूल।
भक्ति विमल दो दयामय! रहो सदा अनुकूल॥

[८९१]

हिमालयमें छिपे भगवान् शंकर

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

हिमगिरिमें हिमसे आच्छादित हिमाकार शंकर अविकार।
अमल धवल निज रूप समाहित त्रिगुणातीत विविध आकार॥
जटाजूट युत, भुजङ्ग-भूषित, सिरसे बहती सुरसरि धार।
शायित लुक्कायित हिममें हर कर वर हिमातिथ्य स्वीकार॥

[८९२]

शिव-शिव हर-हर जप

(राग भैरव—तीन ताल)

शिव शिव हर हर जपत जग मन-वाणी सौं नित्य।
लहत नित्य आनन्द सो भव दुख मिटत अनित्य॥
दुर्लभ हर-पद-रति परम शिव-स्वरूपको ज्ञान।
पावत सो नर सहज ही शुद्ध हृदय मतिमान॥

[८९३]

हर हर भज

(राग मारू—ताल धमार)

अचल अमल अज अनघ अचर-चर अजगव-धर हर।
अकल सकल खल-दमन शमन-यम-भय शशधर-धर॥
अक्षय अटल तन विमल अतन गणधर अजगर-धर।
भव-भय-हर अघ-हरण अभय-कर भज भव हर-हर॥

[८९४]

शिव-गौरी

(राग पीलू—ताल कहरवा)

कालीसे गौरी हुई तजकर काली-चाम।
त्वक्से प्रकटी कौशिकी शक्ति-शौर्य-बल धाम॥
आ पहुँची देवी तुरत गौरी शिवके पास।
छायी परम प्रसन्नता शिव-मन परमोल्लास॥
गौरीका शिवने किया निज कर शुचि शृङ्गार।
लगा रहे अब भालपर वेंदी भव-भर्तार॥

[८९५]

श्रीगौरी-शंकर

(राग शंकरा—तीन ताल)

हिमगिरि छाइ रह श्रीसंकर॥
गौरी-सहित गौर-तनु उज्ज्वल, आभूषन भूषित भुजंगवर।
पंच बदन, सुभ नयन पंचदस, जटा-मुकुट सिर, ससि-सुर-धुनि धर॥
परसु त्रिसूल ग्यान-वर-मुद्रा शोभित, चारु चार भुज सुंदर।
भालुचर्म कटि, कंठ कलित अहि अच्छमाल-अहि, मुंडमाल उर॥
अलंकार मुकुता-मनि मंडित, गौरी महिमामयी बरद कर।
धवल बरन, वाहन सुविराजित धरम स्वयं सुचि बरद-रूपधर॥

[८९६]

रुद्रका तीसरा नेत्र खुला

(राग कौशिक कानड़ा—तीन ताल)

खुलता नेत्र तीसरा भीषण उठता विषम रौद्र-रस जाग।
करता दहन दुष्ट दुर्दान्तोंका बरसा प्रलयंकर आग॥
शीतल ज्योति-सुधा-धारासे हरता सब जनके संताप।
मङ्गल धर्मस्थापन होता, मिटते सारे जगके पाप॥

नटराजका ताण्डव नृत्य

[८९७]

(राग शंकरा—ताल दादरा)

नाचत नटराज रुचिर बाजत डमरू कर।
जटाजूट सोहत सिर भूषन भुजंगधर॥
आसुतोष सदासिव भव रुद्र प्रलयंकर।
देवपति महादेव अखिल विस्वदुःखहर॥
भूतनाथ अंग अंग राजत बिभूति बर।
कामरिपु कामरूप काम-सकल-सिद्धिकर॥

[८९८]

जय शंकर-गौरी-गणपति

(राग मालकोस—ताल शूल)

जय जय शंकर शूल-डमरुधर, जटा-जूटधर व्याली।
जय कैलास-निवासी त्रिनयन, जय रुद्राक्ष-सुमाली॥
जय गौरी जगजननि पार्वती, जयति दुरित-दुखहारी।
जय गणपति मूषकवाहन, जय विघ्नहरण सुखकारी।

[८९९]

रुद्रमूर्तिकृत शिवस्तुति-चालीसा

(राग पीलू—ताल कहरवा)

शीश जटा सुरसरि छटा, भूषण भूति भुजंग।
मुण्ड माल शशि भालवर, जय शिव गिरिजा संग॥

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

जय जय जय दाता शिव शंकर। आशुतोष सुखकर अभयंकर॥
माथ सुधाकर सुरधुनि-धारे। हाथ त्रिशूल त्रिशूल निवारे॥
पाप-ताप सब शापसँहारक। भुवन-भक्त-भव-भीति-विदारक॥
जयति त्रिलोचन! जय त्रिपुरारी। कुमति-काम-हर मङ्गलकारी॥
जय हिमाङ्ग हिमगिरिके वासी। हिमगिरिसुता-सहित सुखरासी॥
कालकूट कर घूँट उतारा। नील-कंठ हर हर ओंकारा॥

****

मौलि चन्द्र-चिह्नित विशाल वर। जटा-जूट सिर जटिल जाल धर ॥
गर्वित गङ्ग तरंग तापहर। भाल त्रिपुण्डित मुण्डमाल गर ॥
भस्म विभूति भुजग आभूषण। विजया आक धतूर समर्पण ॥
कटि कराल व्यालित बाघंबर। कर डमरू डिमडिम प्रलयंकर ॥
नमः शिवाय जपउँ बहु बारा। शम्भु ! काज सब करहु हमारा ॥
जय गजतुंड-जनक त्रिपुरारी। विघन-विदारक भव-भय-हारी ॥
समरथ सतत समाधि लगाये। योग-निरत माया बिलगाये ॥
आगम निगम पन्थ सब हारे। अन्त गहे शिव ! चरण तुम्हारे ॥
शिव सुमिरत नासत तन-पीरा। शिव सुमिरत भाजत भव-भीरा ॥
शिव सुमिरत अघ ओघ अपारा। काम-चाप सम जरत न बारा ॥
शिव सुमिरत रिन-रोग नसाई। शिव सुमिरत बल-बुधि विकसाई ॥
शिव सुमिरत रिधि-सिधि नियराई। शिव सुमिरत रिपु करत मिताई ॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा। शिव सुमिरत सपनेहुँ नहि व्यापा ॥
बेल पत्र, अक्षत, पय-धारा। धूप-धतूर तुमहिं अति प्यारा ॥
नन्दी गण शिव सम्मुख राजे। जेहि पद परसि सकल दुख भाजे ॥
कर त्रिशूल नन्दी असवारी। तुम त्रिभुवन-त्राता त्रिपुरारी ॥
मेटत पाप-तापकी ज्वाला। कालकूट कर कण्ठ कराला ॥
आदि शक्ति अर्धाङ्ग भवानी। जेहि जपि जगत लहत सुख-खानी ॥
हर हर कहत हरत सब पीरा। शंभु कहत सुख लहत शरीरा ॥
शङ्कर कहत सकल कल्याना। रुद्र कहत मेटत भय नाना ॥
तुम देवन महँ सब विधि पूरे। आशुतोष, दानी अति रूरे ॥
अर्चन सुगम, सुगम अति पूजा। महादेव सम देव न दूजा ॥
मन-क्रम-वचन ध्यान जो लावै। तुरतहिं मनवाञ्छित फल पावै ॥
स्नान ध्यान-अभिषेक तुम्हारा। सब फलप्रद जानत संसारा ॥
जो विधि रची भीति-भव-बाधा। शंभु सुमिरि सब मिटत विषादा ॥
रंक लहत निधि, सिधि लह जोगी। पावत विभव विगत रुज रोगी ॥
'शंभु' नाम पतवार बनाई। भव-सागर-तरनी तर जाई ॥
सुनु शिव विनत विनय अब मोरी। करहु विमल मति, जग-रति थोरी ॥

काटहु संकट-कटक विशाला। करि ऋण-रुण्ड धरहु गल माला ॥
पाप-ताप बेधहु तिरसूला। स्रवहु सकल सिधि मङ्गल-मूला ॥
जे जग-जाल विकलता-रासी। ते छन छारि करहु सुखरासी ॥
ईति भीति ऋण रुज विनसाई। होहु दास हित शंभु सहाई ॥
अन्तर अमल विवेक विचारा। सोचहु उर सुर-सरिता धारा ॥
रचेउँ सकल हित शिव चालीसा। करिहहिं कृपा सुनत शिव ईसा ॥

[९००]

श्रीशिवचालीसा

दोहा

(राग माँड—ताल कहरवा)

अज अनादि अविगत अलख, अकल अतुल अविकार।
बंदौं शिव-पद-युग-कमल अमल अतीव उदार ॥ १ ॥
आर्तिहरण सुखकरण शुभ भक्ति-मुक्ति-दातार।
करो अनुग्रह दीन लखि अपनो विरद विचार ॥ २ ॥
पर्‌यो पतित भवकूप महँ सहज नरक-आगार।
सहज सुहृद पावन-पतित, सहजहि लेहु उबारा ॥ ३ ॥
पलक-पलक आशा भर्‌यो, रह्यो सुबाट निहार।
ढरो तुरंत स्वभाववश, नेक न करो अबार ॥ ४ ॥

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

जय शिवशंकर औढरदानी। जय गिरितनया मातु भवानी ॥ १ ॥
सर्वोत्तम योगी योगेश्वर। सर्वलोक-ईश्वर-परमेश्वर ॥ २ ॥
सब उर-प्रेरक सर्वनियन्ता। उपद्रष्टा भर्ता अनुमन्ता ॥ ३ ॥
पराशक्ति-पति अखिल विश्वपति। परब्रह्म परधाम परमगति ॥ ४ ॥
सर्वातीत अनन्य सर्वगत। निज स्वरूप महिमामें स्थित रत ॥ ५ ॥
अङ्ग भूति-भूषित श्मशानचर। भुजंगभूषण चन्द्रमुकुटधर ॥ ६ ॥
वृषवाहन नन्दीगणनायक। अखिल विश्वके भाग्य-विधायक ॥ ७ ॥
व्याघ्र-चर्म परिधान मनोहर। रीछचर्म ओढे गिरिजावर ॥ ८ ॥

****

कर त्रिशूल डमरूवर राजत। अभय वरद मुद्रा शुभ साजत॥ ९॥
तनु कर्पूर-गौर उज्ज्वलतम। पिंगल जटाजूट सिर उत्तम॥ १०॥
भाल त्रिपुण्ड्र मुण्डमालाधर। गल रुद्राक्ष माल शोभाकर॥ ११॥
विधि-हरि-रुद्र त्रिविध वपुधारी। बने सृजन-पालन-लयकारी॥ १२॥
तुम हो नित्य दयाके सागर। आशुतोष आनन्द-उजागर॥ १३॥
अति दयालु भोले भण्डारी। अग-जग सबके मंगलकारी॥ १४॥
सती पार्वतीके प्राणेश्वर। स्कन्द गणेश-जनक शिव सुखकर॥ १५॥
हरि-हर एक रूप गुण-शीला। करत स्वामि-सेवककी लीला॥ १६॥
रहते दोउ पूजत पुजवावत। पूजा पद्धति सबन्हि सिखावत॥ १७॥
मारुति बन हरि सेवा कीन्ही। रामेश्वर बन सेवा लीन्ही॥ १८॥
जग-हित घोर हलाहल पीकर। बने सदाशिव नीलकण्ठ वर॥ १९॥
असुरासुर शुचि वरद शुभंकर। असुरनिहन्ता प्रभु प्रलयंकर॥ २०॥
'नमः शिवाय' मन्त्र पञ्चाक्षर। जपत मिटत सब क्लेश भयंकर॥ २१॥
जो नर-नारि रटत शिव-शिव नित। तिनको शिव अति करत परम हित॥
श्रीकृष्ण तप कीन्हों भारी। ह्वै प्रसन्न वर दियो पुरारी॥ २३॥
अर्जुन संग लड़े किरात बन। दियो पाशुपत अस्त्र मुदित मन॥ २४॥
भक्तनके सब कष्ट निवारे। दे निज भक्ति सबन्हि उद्धारे॥ २५॥
शङ्खचूड़-जालन्धर मारे। दैत्य असंख्य प्राण हर तारे॥ २६॥
अन्धकको गणपति पद दीन्हों। शुक्र शुक्रपथ बाहर कीन्हों॥ २७॥
तेहि संजीवनि विद्या दीन्हीं। बाणासुर गणपति-गति कीन्हीं॥ २८॥
अष्टमूर्ति पञ्चानन चिन्मय। द्वादश ज्योतिर्लिङ्ग ज्योतिर्मय॥ २९॥
भुवन चतुर्दश व्यापक रूपा। अकथ अचिन्त्य असीम अनूपा॥ ३०॥
काशी मरत जन्तु अवलोकी। देत मुक्ति-पद करत अशोकी॥ ३१॥
भक्त भगीरथकी रुचि राखी। जटा बसी गङ्गा सुर साखी॥ ३२॥
रुरु अगस्त्य उपमन्यू ज्ञानी। ऋषि दधीचि आदिक विज्ञानी॥ ३३॥
शिवरहस्य शिवज्ञान-प्रचारक। शिवहिं परम प्रिय लोकोद्धारक॥ ३४॥

इनके शुभ सुमिरनतें शंकर। देत मुदित ह्वै अति दुर्लभ वर ॥ ३५ ॥
अति उदार करूणावरुणालय। हरण दैन्य दारिद्र्य-दुःख-भय ॥ ३६ ॥
तुम्हरो भजन परम हितकारी। विप्र शूद्र सब ही अधिकारी ॥ ३७ ॥
बालक-वृद्ध नारि-नर ध्यावहिं। ते अलभ्य शिवपदको पावहिं ॥ ३८ ॥
भेदशून्य तुम सबके स्वामी। सहज सुहृद सेवक-अनुगामी ॥ ३९ ॥
जो जन शरण तुम्हारी आवत। सकल दुरित तत्काल नशावत ॥ ४० ॥

(दोहा)

बहन करो तुम शीलवश, निज जनको सब भार।
गनौ न अघ, अघ-जाति कछु, सब विधि करौ सँभार ॥ १ ॥
तुम्हरो शील-स्वभाव लखि, जो न शरण तव होय।
तेहि सम कुटिल-कुबुद्धि जन, नहिं कुभाग्य जन कोय ॥ २ ॥
दीन-हीन अति मलिन मति, मैं अघ ओघ अपार।
कृपा-अनल प्रकटौ तुरत, करौ पाप सब छार ॥ ३ ॥
कृपा-सुधा बरसाय पुनि, शीतल करौ पवित्र।
राखौ पदकमलनि सदा, हे कुपात्रके मित्र ! ॥ ४ ॥

[९०१]

श्रीशिवाष्टक

(राग भैरव—ताल कहरवा)

आदि अनादि अनंत अखंड अभेद अखेद सुबेद बतावैं।
अलख अगोचर रूप महेस कौ जोगि जती-मुनि ध्यान न पावैं ॥
आगम-निगम-पुरान सबै इतिहास सदा जिनके गुन गावैं।
बड़भागी नर-नारि सोई जो सांब-सदासिव कौं नित ध्यावैं ॥ १ ॥
सृजन-सुपालन लय-लीला हित जो विधि-हरि-हर रूप बनावैं।
एकहि आप विचित्र अनेक सुबेष बनाइ कैं लीला रचावैं ॥
सुंदर सृष्टि सुपालन करि जग पुनि बन काल जु खाय पचावैं।
बड़भागी नर-नारि सोई जो सांब-सदासिव कौं नित ध्यावैं ॥ २ ॥

अगुन अनीह अनामय अज अविकार सहज निज रूप धरावैं।
परम सुरम्य बसन-आभूषन सजि मुनि-मोहन रूप करावैं॥
ललित ललाट बाल-बिधु विलसै रतन-हार उर पै लहरावैं।
बड़भागी नर-नारि सोई जो सांब-सदासिव कौं नित ध्यावैं॥ ३॥

अंग विभूति रमाय मसान की विषमय भुजगनि कौं लपटावैं।
नर-कपाल कर, मुंडमाल, गल, भालु-चरम सब अंग उढ़ावैं॥
घोर दिगंबर, लोचन तीन भयानक देखि कैं सब थर्रावैं।
बड़भागी नर-नारि सोई जो सांब-सदासिव कौं नित ध्यावैं॥ ४॥

सुनतहि दीन की दीन पुकार दयानिधि आप उबारन धावैं।
पहुँच तहाँ अबिलंब सुदारून मृत्यु को मर्म विदारि भगावैं॥
मुनि मृकंडु-सुत की गाथा सुचि अजहुँ बिग्यजन गाइ सुनावैं।
बड़भागी नर-नारि सोई जो सांब-सदासिव कौं नित ध्यावैं॥ ५॥

चाउर चारि जो फूल धतूर के, बेल के पात औ पानि चढ़ावैं।
गाल बजाय कै बोल जो 'हरहर महादेव' धुनि जोर लगावैं॥
तिनहिं महाफल देय सदासिव सहजहि भुक्ति-मुक्ति सो पावैं।
बड़भागी नर-नारि सोई जो सांब-सदासिव कौं नित ध्यावैं॥ ६॥

बिनसि दोष दुख दुरित दैन्य दारिद्र्य नित्य सुख-सांति मिलावैं।
आसुतोष हर पाप-ताप सब निरमल बुद्धि-चित्त बकसावैं॥
असरन-सरन काटि भव-बंधन भव निज भवन भव्य बुलवावैं।
बड़भागी नर-नारि सोई जो सांब-सदासिव कौं नित ध्यावैं॥ ७॥

औढरदानि, उदार अपार जु नैकु-सी सेवा तें ढुरि जावैं।
दमन असांति, समन सब संकट, विरद बिचार जनहि अपनावैं॥
ऐसे कृपालु कृपामय देब के क्यों न सरन अबहीं चलि जावैं।
बड़भागी नर-नारि सोई जो सांब-सदासिव कौं नित ध्यावैं॥ ८॥

[९०२]

नागरीवर्णानुक्रम जययुक्त अष्टोत्तरशिवसहस्रनाम

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

जय जय, अव्यय, अमित शक्ति जय।
जय अनियम, अध्रुव, अनादि जय॥
जय अमृताश, अमृत-वपु जय जय।
अमृतप, अमृतरूप, अक्षय जय॥
अप्राकृतिक दिव्य-तनु जय जय।
जय अनादि मध्यान्त जयति जय॥
अर्थिगम्य, जय अष्टमूर्ति जय।
अपरिच्छेद्य, अध्यात्म-निलय जय॥
जय अचलेश्वर, अजितप्रिय जय।
जय असाध्य, अनिवृत्तात्मा जय॥
जय अभिवाद्य, अकल्मष जय जय।
जय अनन्तदृक् अन्नरूप जय॥
जयति अजातशत्रु, अघरिपुजय।
जय अन्तर्हित-आत्मा जय जय॥
अनृणी, अक्रिय, अकथनीय जय।
अभिजन, अकुतोभय, अकुण्ठ जय॥
अतिप्राकृत, अतिदैव, अजर जय।
अतिमानुष, अतिवेल, अचर जय॥
जयति अखण्ड, अग्रय, अक्षर जय।
अतिबल, अतनु-प्राण-हर जय जय॥
जय अधिराज, अधृष्य जयति जय।
असंदिग्ध, असुरारि जयति जय॥
जय अद्र्यालय, अद्रि, अतिथि जय।
जय अविशिष्ट अपांनिधि जय जय॥

जय अराग, अभिराम, अमृत जय।
जय अगस्त्य, अङ्गिरा, अत्रि जय॥
जय अनन्त, अरिदमन, अचल जय।
जय अभेद, अज्ञेय, अमल जय॥
जय अनर्थनाशन, अमोघ जय।
जयति अनर्थ, अर्थ, अभिनव जय॥
जयति अचञ्चल, असंसृष्ट जय।
जय अधर्मरिपु, अन्धकारि जय॥
जय अघोर, अनिरुद्ध, अभव जय।
जयति अरिंदम, अमरेश्वर जय॥
जय अलोभ, अपराजित, अणु जय।
जय अक्रूर, अकिञ्चन जय जय॥
जय अक्षुण्ण, अनघ, अग्रह जय।
जयति अगुण, अनन्त गुणनिधि जय॥
जय अक्षयगुण, अधिष्ठान जय।
जयति अपूर्व, अनुत्तर जय जय॥
जय अप्रतिम, अकम्प अधृत जय।
जयति अकाल, अकल, अमृत्यु जय॥
जयति असुर-सुरपति, अहपति जय।
जयति अमाय, अनामय जय जय॥
जयति अकर्ता अखिलकर्तृ जय।
जयति अतीन्द्रिय, अखिलेन्द्रिय जय॥
जय अनपायोक्षर, अदम्य जय।
जय आनन्द, आत्मचेतन जय॥
आत्मयोनि, आश्रितवत्सल जय।
आशुतोष, आलोक जयति जय॥

जयति इष्ट, ईशान, ईश जय।
जय उन्नध्र, उग्र, उत्तर जय॥
जयति उष्णा, उन्मत्तवेष जय।
जयति उपप्लव, उत्तारण जय॥
जय उद्योगी, उद्यमप्रिय जय।
जय ऋषि, ऋक्षचर्मधर जय जय॥
एकरुद्र जय, एकबन्धु जय।
जय एकात्मा, एकनेत्र जय॥
जय ऐश्वर्याचिन्त्य जयति जय।
जयति ओज, ओंकारेश्वर जय॥
अंबुजाक्ष, अंतर्यामी जय।
अंतरहित, अंतरप्रिय निधि जय॥
जय कमलाक्ष, कमण्डलुधर जय।
जयति कल्प, कर्ता, कवि जय जय॥
कर्णिकारप्रिय, कर-कपाल जय।
जय कमनीय कलेवर, क्रतु जय॥
जय कनकाभा, कपिलश्मश्रु जय।
जय कल्याण-नाम-गुणधर जय॥
जय कल्याण-विधायक जय जय।
जयति कलाधर, कल्पवृक्ष जय॥
जय कल्यादि, कपर्दि करण जय।
जयति कपाली, कारण जय जय॥
जयति कामशासन, कामी जय।
काम, कामरिपु, कामपाल जय॥
जयति काल, जय कालरात्रि जय।
कालाधार, कालभूषण जय॥

****

कालकाल जय, कालरहित जय।
जय कान्ताप्रिय, कान्त जयति जय॥
जय किंनरसेवित, किरात जय।
किंकरवश्य कितव-अरि जय जय॥
कीर्तिविभूषण, जय किरीटि जय।
जय कृतज्ञ, जय कृतानन्द जय॥
जयति कृष्ण, जय कृष्ण-वरद जय।
जय कुमार, कुशलागम जय जय॥
जय केवल, केदारनाथ जय।
जय कैवल्यप्रदाता जय जय॥
जय कैलासशिखरवासी जय।
जय कंकणि-कृत-वासुकि जय जय॥
जय खग, खगवाहनप्रिय जय जय।
जय खट्वाङ्गि, खण्ड-परशु जय॥
जय खलकण्टक, खलदलारि जय।
जय गणेश, गणकाय, गहन जय॥
गगनकुन्द-प्रभ, गणनायक जय।
जय गायत्रीवल्लभ जय जय॥
जय गिरीश, गिरिजापति जय जय।
जय गिरि-जामाता, गिरिरत जय॥
जय गुह, गुरु, गुणसत्तम जय जय।
जय गुणराशि, गुणाकर जय जय॥
जय गुणग्राहक, ग्रीष्म जयति जय।
जय गोपति, गोप्ता, गोप्रिय जय॥
जय गोविन्द गोशाखा जय जय।
गौरी भर्ता गंगाधर जय॥

जय घुष्मेश्वर, घनानन्द जय।
जयति चतुर, जय चन्द्रचूड़ जय॥
चतुर्वेद जय, चन्द्रमौलि जय।
चतुर्भाव, चतुरप्रिय जय जय॥
जयति चतुष्पद, चतुर्बाहु जय।
जयति चतुर्मुख, चिदानन्द जय॥
जयति चिरन्तन, चित्रवेश जय।
चन्द्रापीड़ छिन्न-संशय जय॥
जय जगदीश, जगद्‌गुरु जय जय।
जय जन्मारि, जनार्दन जय जय॥
जय जगदादिज, जनक, जनन जय।
जयति जप्य जमदग्नि जयति जय॥
जटिल, जलेश्वर, जगद्बन्धु जय।
जनाध्यक्ष, जन-मन-रञ्जन जय॥
जयति जरादिशमन, जगपति जय।
जगजीवन, जय जातुकर्ण्य जय॥
जय जितकाम, जितेन्द्रिय जय जय।
जीवितान्तकर, जीवनेश जय॥
जयति ज्योति, ज्योतिर्मय जय जय।
जयति तत्त्व, तत्त्वज्ञ जयति जय॥
जय तापस, तमिस्रहा जय जय।
जय तमरूप, तमोहर जय जय॥
जय तत्पुरुष, ताक्ष्र्य, तारक जय।
जय तिग्मांशु, तीर्थधामा जय॥
तीर्थ, तीर्थमय, तीर्थदृश्य जय।
तुम्बवीण, जय तुष्ट, तेज जय॥

****

तेजद्युतिधर, तेजराशि जय।
जयति त्रिवर्ग-स्वर्ग-साधन जय॥
जय त्रैविद्य, त्रयीतनु जय जय।
जयति त्रिलोचन, त्रिदशाधिप जय॥
जय त्रिलोकपति, त्र्यम्बक जय जय।
जय त्रिशूलधर, त्र्यक्ष जयति जय॥
जय दुर्जय, दुस्सह, दम जय जय।
जय दुर्धर्ष, दुरतिक्रम जय जय॥
जय दक्षारि, दक्षत्राता जय।
जयति दक्ष-जामाता जय जय॥
जय दर्पद, दर्पहा जयति जय।
दनुज-दमन, दमयिता जयति जय॥
दान्त, दयानिधि, दाता जय जय।
जयति दिवाकर, दिव्यायुध जय॥
जयति दिवस्पति, दीर्घतपा जय।
जय दुर्जय, दुःसह, दुर्लभ जय॥
जय दुर्ज्ञेय, दुर्ग, दुर्गति जय।
जय दुर्वासा, दुराधर्ष जय॥
जय दुर्गतिनाशन, दुरन्त जय।
दुरावास, दुष्कृतिहा जय जय॥
जय दुःस्वप्नविनाशक, द्रुत जय।
दूरश्रवा, दुरासद जय जय॥
देवदेव, देवाधिप जय जय।
देवासुर-गुरुदेव जयति जय॥
देवासुर-पूजित ईश्वर जय।
देवासुर-सर्वाश्रय जय जय॥

देवसिंह, देवात्मरूप जय।
देवनाथ जय, देवप्रिय जय॥
जय दृढ़, दृढ़प्रतिज्ञ, दृढ़मति जय।
जय द्युतिधर, जय द्युमणि-तरणि जय॥
जयति द्रुहिण, द्रोहान्तक जय जय।
जयति धर्म, जय धर्मधाम जय॥
जय धर्माङ्ग धर्म-साधन जय।
धर्मधेनु जय, धर्मचारि जय॥
जय धन्वी, धव, धनद-स्वामि जय।
जयति धनागम, धनाधीश जय॥
जयति धनुर्धर, धनुर्वेद जय।
जय धात्रीस, धातृधामा जय॥
जय धीमान् धुर्य, धूर्जटि जय।
ध्यानाधार, ध्येय, ध्याता जय॥
धृतव्रत, धृतियुत, धृत जन-कर जय।
जय प्रिय नर-नारायण जय जय॥
जय नरसिंह-रूपधर जय जय।
जय नरसिंहतपन, नन्दी जय॥
नन्दीश्वर, नग्नव्रत जय जय।
नन्दिस्कन्धधर, नभोयोनि जय॥
जय नक्षत्रमालि, नवरस जय।
नयनाध्यक्ष, नदीधर जय जय॥
नागेश्वर, नागेश, नाक जय।
जय नागेन्द्रहार-भूषण जय॥
जय निर्वार, निशाकर जय जय।
निरावरण, निधि, नियताश्रय जय॥

****

नित्य, निरञ्जन, नियतात्मा जय।
नि:श्रेयस्कर, निराकार जय॥
जय निष्कण्टक, निष्कलङ्क जय।
जय निरुपद्रव, निरातङ्क जय॥
जय निर्व्याज, नित्यसुखमय जय।
जयति निरङ्कुश, निष्प्रपञ्च जय॥
जय निर्व्यङ्ग नित्यसुन्दर जय।
नित्य शान्तिमय, नित्यनृत्य जय॥
नित्यनियतकल्याण, नीति जय।
नीतिमान जय, नीलकण्ठ जय॥
जय नीलाभ, नीललोहित जय।
नैककर्मकृत्, नैकात्मा जय॥
न्यायगम्य, जय न्यायी जय जय।
न्यायनियामक, न्यायप्रिय जय॥
जयति परात्पर, परब्रह्म जय।
जय परमात्मा, परमेष्ठी जय॥
जयति परावर, परं ज्योति जय।
जय पशुपति, जय पद्मगर्भ जय॥
जय परश्वधी, पटु, परिवृढ जय।
जयति परंतप, पञ्चानन जय॥
परावरज्ञ, परार्थवृत्ति जय।
परकायैक-सुपण्डित जय जय॥
जयति प्रणव, प्रणवात्मक जय जय।
जय प्रधान, प्रभु, प्रमाणज्ञ जय॥
जयति प्रभाकर, प्रमथनाथ जय।
जय प्रच्छन्न, प्रशान्तबुद्धि जय॥

जयति प्रतप्त प्रकाशक जय जय।
जय प्रतापमय, प्रभव जयति जय॥
जय प्रलम्बभुज, प्रलयंकर जय।
जयति प्रगल्भ, प्रकीर्ण, प्राण जय॥
जय पावन, पारासर-मुनि जय।
पारिजात जय, पाञ्चजन्य जय॥
पिङ्गल-जटी, पिनाकी जय जय।
पिङ्गलाक्ष शुचि नयन जयति जय॥
पुण्यश्लोक, पुरंदर जय जय।
पुलह, पुलस्त्य, पुरंजय जय जय॥
पुष्कर, पुष्प-विलोचन जय जय।
पूषदन्तभित् पूर्ण, पूत जय॥
प्रमथाधिप, प्रबुद्ध, प्रणप्रिय जय।
प्रभावान्, प्रभु विष्णु जयति जय॥
प्रेताधीश, प्रेतचारी जय।
जय पौराण-पुरुष, फणिधर जय॥
जय बहुश्रुत, बहुरूप, बली जय।
वाणहस्त, वाणाधिप जय जय॥
जयति ब्रह्म ब्रह्मा, ब्राह्मण जय।
जय ब्राह्मणप्रिय, ब्रह्मगर्भ जय॥
ब्रह्मवर्चसी, ब्रह्मज्योति जय।
ब्रह्मवेदनिधि, ब्रह्मचारि जय॥
बीजविधाता बिन्दुरूप जय।
बीजाधार, बीजवाहन जय॥
बृहद्‌गर्भ, बृहदश्व जयति जय।
बृहदीश्वर-मङ्गलमय जय जय॥

जय भव, भव्य, भस्मप्रिय जय जय।
जय भगवान्, भस्मशायी जय॥
भस्मोद्धूलित-विग्रह जय जय।
भस्म-शुद्धिकर, भक्तिकाय जय॥
भक्तिवश्य जय, भक्तभक्त जय।
भालनेत्र जय, भानुदेव जय॥
भावात्मात्मनि-संस्थित जय जय।
भीमपराक्रम, भीम जयति जय॥
जय भुवनेश, भुवनजीवन जय।
भूति, भूतिनाशन, भूशय जय॥
जयति भूतवाहन, भूपति जय।
जयति भूतकृत, भूतभव्य जय॥
जयति भूतभावन, भूषण जय।
जयति भोग्य, भोक्ता, भोजन जय॥
जयति महेश्वर, महादेव जय।
जयति महाद्युति, महातपा जय॥
जयति महानिधि, महामाय जय।
महागर्त जय, महागर्भ जय॥
महानाद जय, महातेज जय।
महावीर्य जय, महाशक्ति जय॥
महाबुद्धि जय, महाकल्प जय।
महाकाल जय, महाकोश जय॥
महायशा जय, महामना जय।
महाभूत जय, महापूत जय॥
जयति महौषधि मङ्गलमय जय।
जय महदाश्रय, महत् जयति जय॥

महामहिम, मत्सरविहीन जय।
जयति महाह्रद, महाबली जय ॥
जयति मन्त्र, मन्त्राधिपमय जय।
जयति मन्त्र-प्रत्यय, मन्त्री जय ॥
महोत्साह जय, महिभर्ता जय।
मधुरप्रियदर्शन, महर्षि जय ॥
जयति महारेता, मधुप्रिय जय।
जयति महाकवि, महाप्राण जय ॥
जय मघवान् महाघन जय जय।
जयति मानधन, महापुरुष जय ॥
जय मध्यस्थ, महास्वन जय जय।
महेष्वास जय, मृदु, मृड जय जय ॥
जयति मल्लिकार्जुन, मृगपति जय।
मारुतिरूप, मोह-विरहित जय ॥
मृग-बाणार्पण, मेरु, मेघ जय।
जयति यज्ञ, जय यज्ञश्रेष्ठ जय ॥
जयति यज्ञभोक्ता, जय यश जय।
जयति यशोधन, युगपति जय जय ॥
जयति युगावह, योगपार जय।
जय योगेश्वर, योगीश्वर जय ॥
योगाध्यक्ष, योगविद् जय जय।
जय रवि, रविलोचन, रसप्रिय जय ॥
जयति रसज्ञ, रसद, रसनिधि जय।
रजनीजनक, रमापति जय जय ॥
रामचन्द्र, राघव जय, रुचि जय।
रुचिराङ्गद जय, जयति रुद्र जय ॥

रिपुमर्दन, रोचिष्णु जयति जय।
जयति ललित, जय ललाटाक्ष जय॥
लिङ्गाध्यक्ष, लिङ्गप्रतिमा जय।
जयति लोककर, लोकबन्धु जय॥
लोकनाथ जय, लोकपाल जय।
लोकगूढ़ जय, लोकवीर जय॥
लोकोत्तर-सुख-आलय जय जय।
लोकनामग्रणी जयति जय॥
जयति लोक-सारंग जयति जय।
लोक-शल्य-धृक् लोकोत्तम जय॥
जयति लोकवर्णोत्तम जय जय।
लोक-लवणताकर्ता जय जय॥
लोक-रचयिता, लोकचारि जय।
लोहितात्मा लोकोत्तर जय॥
जय वरेण्य, जय वरवाहन जय।
वरद, वशिष्ठ, वसुप्रद जय जय॥
वसु, वसुमना, वराङ्ग जयति जय।
जय वसुधामा, वसुश्रवा जय॥
जय वसन्त-माधव, वत्सल जय।
जय वर्णी, वर्णाश्रमगुरु जय॥
जय वसुरेता, वज्रहस्त जय।
जय वरशील, जयति वर-गुण जय॥
जय वागीश, वायुवाहन जय।
वालखिल्य जय, वाचस्पति जय॥
वामदेव, वामाङ्क-उमा जय।
वासुदेव, वासव-सेवित जय॥

जय वाराहशृङ्गारधृक् जय जय ।
जय वाणीपति, वाणीवर जय ॥
जय वृषाङ्क, वृषवाहन जय जय ।
जयति वृषाकपि, वृषवर्धन जय ॥
जयति विश्व, विश्वम्भर जय जय ।
विश्वमूर्ति जय, विश्वदीप्ति जय ॥
जयति विश्वसृक् विश्ववास जय ।
विश्वनाथ जय, विश्वेश्वर जय ॥
जयति विश्वकर्ता-हर्ता जय ।
विश्वरूप जय, विश्वधर्म जय ॥
विश्वोत्पत्ति, विश्वगालव जय ।
जयति विश्ववाहन, विशोक जय ॥
जयति विश्वगोप्ता, विराट् जय ।
जयति विरञ्चि, विमोचन जय जय ॥
विश्वदेह, विद्येश जयति जय ।
जय विशाख, विजितात्मा जय जय ॥
जयति विश्वसह, विद्वत्तम जय ।
जयति विनीतात्मा, विराम जय ॥
जयति विरोचन, विरूपाक्ष जय ।
जय विगतज्वर, विमलोदय जय ॥
जय विषमाक्ष, विशाल-अक्ष जय ।
जय विरूप, विक्रान्त, विमल जय ॥
विद्याराशि, वियोगात्मा जय ।
जयति विधेयात्मा, विशाल जय ॥
जयति विधाता, विष्णु विरत जय ।
जयति विशारद, विशृङ्खल जय ॥

जय वीरेश्वर, वीरभद्र जय।
वीर्यवान्, वीरासन, विधि जय॥
वीरशिरोमणि, वीराग्रणि जय।
बीतराग, जय वीतभीति जय॥
वेदरूप जय, वेदवेद्य जय।
जय वेदाङ्ग, वेदविद् मुनि जय॥
जयति वेदकर, वेत्ता जय जय।
वेदशास्त्र-तत्त्वज्ञ जयति जय॥
जय वेदान्त-सार-निधि जय जय।
वैद्यनाथ, वैयाघ्र्यधुर्य जय॥
जयति वैद्य, वैरिञ्च्य जयति जय।
जयति सर्व, जय शक्र जयति जय॥
जयति श्मशाननिलय, शरण्य जय।
जय श्मशानप्रिय, शमनशोक जय॥
जय शत्रुघ्न, शत्रु-तापन जय।
शबल, शक्त, शम, शरभ जयति जय॥
जय शनि, शरण, शत्रुजित् जय जय।
जयति शवासन, शक्तिधाम जय॥
शब्दब्रह्म जय, जयति शम्भु जय।
शबर-बन्धु जय, शमनदमन जय॥
शंकर, शंबर, शर्वरीश जय।
शाश्वत, शान्त, शाख, शास्ता जय॥
शान्तभद्र, शाकल्य जयति जय।
जय शिव, जय शिपिविष्ट जयति जय॥
शिशु, शिखि-सारथी जयति जय।
जय शिवज्ञाननिरत, शिखण्डि जय॥

जय शिष्टेष्ट, शिवालय जय जय।
श्रीकण्ठ, श्रीमान् जयति जय॥
श्रीशैल श्रीवास जयति जय।
शुचि, शुचिसत्तम, शुचिस्मित जय जय॥
जय शुभ, शुभद, शुभाङ्ग जयति जय।
शुद्धमूर्ति, शुद्धात्मा जय जय॥
शुभ्र, शुभंकर, शुभ-स्वभाव जय।
जय शुभकर्ता, शुभनामा जय॥
शूली, शूर, शूलनाशन जय।
शोभाधाम, शोकनाशन जय॥
शङ्का-विरहित, शंखवर्ण जय।
श्रीशरूप, श्रीवृद्धिकरण जय॥
श्रुतिप्रकाश, श्रुतिमान जयति जय।
सम, समान जय, अमाम्नाय जय॥
सदाचार जय, समावर्त्त जय।
सगण, स्थपित, सनातन जय जय॥
सद्योजात, सदाशिव जय जय।
सत्य, सत्यव्रत, सत्यसंध जय॥
सत्यपरायण, सत्यकीर्ति जय।
सत्यपराक्रम, सत्यमूर्ति जय॥
सफल, सकल-निष्कल, समाधि जय।
सती-देहधर, सत्तम जय जय॥
सदय, सदाशय, समतामय जय।
सकलाधार, सकल-आश्रय जय॥
सकलागम-पारग-स्वभाव जय।
सच्चरित्र, सच्चिदानन्द जय॥

****

सत्पुरुषाधिप सदानन्द जय।
सर्व, सर्वस्त्रष्टा-पालक जय॥
सर्वेश्वर, सर्वादि जयति जय।
जयति सर्वसंहारमूर्ति जय॥
सर्वाचार्य-मनोगति जय जय।
सर्वावास, सर्वशासन जय॥
सर्वरूप-चर-अचर जयति जय।
सर्वलोक, सर्वेश जयति जय॥
सर्वलोक-ईश्वर महान् जय।
सर्वभूत-ईश्वर महान् जय॥
सर्व-शास्त्र-रक्षक महान् जय।
सर्वशास्त्र-भञ्जन महान् जय॥
सर्वधर्मरक्षक महान् जय।
सर्वधर्मभक्षक महान् जय॥
सर्वसाध्य-साधन महान् जय।
सर्वदेवसत्तम महान् जय॥
सर्वशास्त्र-सत्सार जयति जय।
सर्वबन्धमोचन-स्वभाव जय॥
सर्वलोकधृक्, सर्वशुद्धि जय।
जयति सर्वदृक् सर्वयोनि जय॥
सर्वप्रजापति, सर्वसत्य जय।
जय सर्वज्ञ, सर्वगोचर जय॥
जयति सर्वसाक्षी, सर्वग जय।
सर्व दिव्य-आयुध-ज्ञाता जय॥
सर्वपापहर-त्राता जय जय।
जय सर्वर्तु-विधायक जय जय॥

जयति सर्वसुर-नायक जय जय।
सर्वशक्तिमत्, सर्ववीर्य जय॥
सर्वोत्तर, सर्वेसर्वा जय।
सर्वाणी-स्वामी, ससज्ज जय॥
सद्गति, सत्कृति, सद्योगी जय।
जय सज्जाति, सदागति जय जय॥
जय सम्राट्, स्वधर्मा जय जय।
जयति स्कन्द, जय स्कन्दजनक जय॥
जयति स्तव्य, स्तवप्रिय, स्तोता जय।
स्वच्छ, स्वधृत, स्वर्बंधु जयति जय॥
जय स्वच्छन्द, स्ववश, स्वराट् जय।
जयति स्वभाव-भद्र, स्वर्गत जय॥
स्वतः प्रमाण, स्वमहिमामय जय।
स्ववश, स्वयम्भू, स्वच्छ जयति जय॥
स्वर्ग, स्वर्गस्वर, स्वरमयस्वन जय।
जयति स्थविष्ठ, स्थविर ध्रुव जय जय॥
सहसपाद जय, सहस-बाहु जय।
सहसनेत्र जय, सहसकर्ण जय॥
सहसशीश जय सहस-कण्ठ जय।
सहसगिरा जय, सहस-अर्चि जय॥
साधुसाध्य जय, साधुसार जय।
सार-सुशोधन, साधन जय जय॥
जयति साध्य सात्त्विकप्रिय जय जय।
साम-गानप्रिय, सानुराग जय॥
साम्ब-सदासिव जयति जयति जय।
सिद्ध, सिद्धि जय, सिद्धिद जय जय॥

सिद्धिकरण जय, सिद्धखड्ग जय।
सिद्धवृन्द-वन्दित पूजित जय॥
स्थिर, स्थिरमति जय, स्थिर समाधि जय।
जय सुरेश, सुरपतिसेवित जय॥
जयति सुभग, सुव्रत, सुपर्ण जय।
जयति सुतन्तु, सुनीति, सुलभ जय॥
जयति सुधी, सुशरण, सुकीर्ति जय।
सुहृद, सुधीर, सुचरित जयति जय॥
जय सुकुमार, सुलोचन जय जय।
जयति सुखानिल, सुप्रतीक जय॥
जयति सुप्रीत, सुमुख, सुन्दर जय।
जय सुधांशुशेखर, सुवीर जय॥
जय सुकीर्तिशोभन, सु-स्तुत्य जय।
सुमति, सुकर सुरनायक जय जय॥
सुनिष्पन्न जय सुषमामय जय।
सुखी परम जय, सूक्ष्मतत्त्व जय॥
सूर्य, सूर्य-उष्मा-प्रकाश जय।
सूत्ररूप जय, सूत्रकार जय॥
सोम, सोमरत, सोमनाथ जय।
सोमप, सौम्य, सौम्यप्रिय जय जय॥
संकर्षण, संकल्प-रहित जय।
संगरहित, संगीत-निपुण जय॥
संग्रहरहित, संग्रही जय जय।
जय संवृत, सम्भाव्य जयति जय॥
जय संसार-चक्रभित् जय जय।
जय संसरण-निवारण जय जय।

जय षट्चक्र-विकासन जय जय ॥
जय षट्शत्रु-विनाशन जय जय ॥
जय षट्कर्म-विधायक जय जय ।
जय षड्दर्शन-नायक जय जय ॥
जय षड्ऋतु, षड्-रसमय जय जय ।
जयति षडाननजनक जयति जय ॥
जय हर, हरि, हिरण्यरेता जय ।
हंस, हंसगति, हव्यवाह जय ॥
जयति हिरण्यवर्ण, हिमप्रिय जय ।
जयति हिरण्यगर्भ, हितकर जय ॥
जयति हिरण्यकवच, हिरण्य जय ।
हिंसारहित, हितैषी जय जय ॥
हृषीकेश जय, हृष्ट, हृद्य जय ।
जय हृत्पद्मविराजित जय जय ॥
क्षमाशील जय, क्षाम, क्षपण जय ।
जय क्षेत्रज्ञ, क्षेत्रपालक जय ॥
ज्ञानगम्य जय, ज्ञानमूर्ति जय ।
ज्ञानवान् जय, ज्ञानरूप जय ॥

[९०३]

भगवान् गणेश और शंकरकी जय-जय

(राग रामकली—तीन ताल)

एकदन्त, गजवदन, चतुर्भुज, गणनायक विघ्नेश ।
जय-जय भव-भय-हर लम्बोदर, मङ्गलमय देवेश ॥
अहि-शशि-जटा-मुकुटधर शंकर गङ्गाधर भगवान् ।
जय-जय बाघ-भालुचर्माम्बरधर विश्वेश महान् ॥

[९०४]

सिद्धिदायक गणनाथ

(राग ईमन—ताल कहरवा)

करता तुम्हें प्रणाम भक्तिसे ऋद्धि-सिद्धिदायक गणनाथ।
रहे तुम्हारी कृपा विघ्नहारिणि सुख-कारिणि मेरे साथ॥
रहे सदा मेरे मस्तकपर वरद तुम्हारा गणपति हाथ।
पाऊँ भक्ति राधिकाजीकी,गाऊँ उनकी नित गुण-गाथ॥

[९०५]

श्रीसिद्धि-गणराज

(राग गौरी—तीन ताल)

रक्तवर्ण शुभ, एकदन्त, शुचिध्वज,मूषक, शोभित शशि भाल।
कम्बु कमल, भुज अष्ट, पाश-पुस्तक-त्रिशूल, करचक्र, सुमाल॥
गज-मुख धान्य-मञ्जरी राजत, विपद-विघ्नवारण शुभधाम।
अखिल अमङ्गलहर, हर-सुत, श्रीसिद्धिसहित गणराज प्रणाम॥

[९०६]

जय अष्टादशभुजा दुर्गा

(राग सोरठ—ताल त्रिताल)

जय अष्टादशभुजाधारिणी प्रति कर प्रहरणधारिणि जय।
जय सर्वाङ्ग-आभरणधारिणि सुन्दर त्रिनयनधारिणि जय॥
जय सुविशाल सिंह-आरोहिणि राक्षसदल-संहारिणि जय।
जय भीषण भवभीति-निवारिणि निज-जन-संकटहारिणि जय॥
जय दुर्गे मोहार्णवतारिणि परम सुमङ्गलकारिणि जय॥

[९०७]

महिषमर्दिनी दशभुजा दुर्गा

(राग देश—ताल मूल)

लिएँ हाथ असि, चक्र, गदा घन, परसु, धनुषबर।
सूल, बज्र, दृढ़ पास, कमंडलु, घंटा रवकर॥

ज्योतिर्मय अतिसय उज्ज्वल सुभ नेत्रत्रय-धर।
कुंडल सोभित स्त्रवन, सुकंकन सज्जित सब कर॥
कंठ हार-मनि-सुमन, सिंहपर रहीं विराजित।
महिषमर्दिनी दुर्गा माँ दसभुजा सु-राजत॥

[९०८]

दुर्गाकी कृपा

(राग पीलू—ताल कहरवा)

दुर्गा दुर्गा रटत ही सब संकट कटि जाय।
दुर्गा जननी सुत सदृश संतत करै सहाय॥

[९०९]

माता सारिका देवी

(राग आसावरी—ताल कहरवा)

खड्ग परशु, खट्वांग, गदा, अंकुश, त्रिशूल वर।
डमरु, पाश, पुस्तक, तोमर, मूसल, शुभ मुग्दर॥
चक्र, वाण, शुचि धनुष, अभय-वर-मुद्रा धारण।
नर-कपाल अष्टादशभुज शशि-शिर शुभ कारण॥
शोभित आभूषण-वसन अङ्ग-अङ्ग अति द्युति बिमल।
सकल सुमङ्गल-मूल मृदु मातु सारिका-पद-कमल॥

[९१०]

संतान-सुंदरी माताकी जय

(राग पीलू—ताल कहरवा)

भानु-सहस्त्र-सदृश अति आभा, शशिशेखर, त्रिनेत्र संयुक्त!
रक्तवसनयुत, रत्नविभूषण, अमित इन्दुज्योत्स्नासे युक्त॥
धारण कर स्वपाणिसे सादर पिला रही स्तन-सुधा अपार।
जय वर-अभयदायिनी जय संतान-सुन्दरी स्नेहागार॥

[९११]

श्रीहंसवाहिनी

(राग आनन्द—ताल त्रिताल)

कान्ति धवल कर्पूरकुन्द-सम पूर्ण-चन्द्र-उज्ज्वल आनन।
वीणा पुस्तक-माला-धारिणि, परम सुशोभित दिव्य वसन॥
षोडशदल-कमलासन सुन्दर हंसवाहिनी कल्याणी।
तम-नाशिनि सद्बुद्धि-प्रदायिनि जय-जय जयति देवि वाणी॥

[९१२]

प्रसिद्ध छः देवी माताओंकी जय।

(राग तोड़ी—ताल त्रिताल)

विद्यादायिनी 'सरस्वती' जय, श्री-विभूतिदा 'लक्ष्मी' जय।
'ललिताम्बा' कल्याणकरी जय, 'दुर्गा' दुर्गतिनाशिनि जय॥
मुक्तिदायिनी 'गायत्री' जय, 'काली' कलुषनिकन्दिनि जय।
जय प्रसिद्ध षड्रूपा माता, दुःख-शोक-भयहारिणि जय॥

[९१३]

जय श्रीललिताम्बा

(राग भैरवी—ताल त्रिताल)

रक्त वर्ण, रक्ताम्बर राजत, रम्य कण्ठ मुक्ता-मणि हार।
अङ्कुश-पाश-बाण-धनु शोभित चारु भुजा भूषणयुत चार॥
हेम मुकुट रत्नावलि मण्डित, तिलक भाल मारण मद मार।
कुण्डल कर्ण, कमल-दल-लोचन ललिताम्बा जय जय सुखसार॥

[९१४]

भगवती गौरी देवी

(राग काफी—ताल मूल)

गौरारुण शुभ वर्ण मुकुट सिर रत्न विराजित।
नील वसन, गल रत्न-कुसुम हारावलि राजित॥

शूल-बाण-धनु-परशु हस्त, भुजबन्ध सुराजित।
कटि काञ्ची, सुकणित रणित पग नूपुर भ्राजित॥
तेज-पुंज तन, तीन नेत्र उज्ज्वल सुषमा मय।
हर-प्रिया हिम-गिरि-वासिनी मा गौरी! जय जय॥

[९१५]

जगज्जननी अन्नपूर्णा

(राग ईमन-ध्वनि कीर्तन—ताल कहरवा)

जय भव-भामिनी जय भव-तोषिणि जय जग पोषिणि जननी जय।
जय मधुमालिनी जय जग-पालिनि वैभवशालिनि जननी जय॥
जय सुख-दायिनि वाञ्छित-दायिनि, मङ्गलदायिनि जननी जय।
जय अघ-नाशिनि विघ्न-विनाशिनि अन्नपूर्णा जननी जय॥

[९१६]

जययुक्त श्रीदेवी-अष्टोत्तर-सहस्रनाम
[श्रीदेवीजीके १००८ नाम]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

जय दुर्गे दुर्गतिनाशिनि जय।
जय मा कालविनाशिनि जय जय॥
जयति शैल पुत्री मा जय जय।
ब्रह्मचारिणी माता जय जय॥
जयति चन्द्रघण्टा मा जय जय।
जय कूष्माण्डा, स्कन्दजननि जय॥
जय मा कात्यायिनी जयति जय।
जयति कालरात्री मा जय जय॥
जयति महागौरी देवी जय।
जयति सिद्धदात्री मा जय जय॥
जय काली, जय तारा जय जय।
जय जगजननि षोडशी जय जय॥

जय भुवनेश्वरि माता जय जय।
जयति छिन्नमस्ता मा जय जय॥
जयति भैरवी देवी जय जय।
जय जय धूमावती जयति जय॥
जय बगला मातंगी जय जय।
जयति जयति मा कमला जय जय॥
जयति महाकाली मा जय जय।
जयति महालक्ष्मी मा जय जय॥
जय मा महासरस्वति जय जय।
उमा, रमा ब्रह्माणी जय जय॥
कौबेरी, वारुणी जयति जय।
जय कच्छपी, नारसिंही जय॥
जय मत्स्या, कौमारी जय जय।
जय वैष्णवी वासवी जय जय॥
जय माधव-मनवासिनि जय जय।
कीर्ति, अकीर्ति, क्षमा, करुणा जय॥
छाया, माया, तुष्टि, पुष्टि जय।
जयति कान्ति, जय भ्रान्ति, क्षान्ति जय॥
जयति बुद्धि, धृति-वृत्ति जयति जय।
जयति क्षुधा, तृष्णा, विद्या जय॥
जय निद्रा, तन्द्रा, अशान्ति जय।
जय लज्जा, सज्जा, श्रुति जय जय॥
जय स्मृति, परा-साधना जय जय।
जय श्रद्धा, मेधा, माला जय॥
जय श्री, भूमि, दया मोदा जय।
मज्जा, वसा, त्वचा, नाडी जय॥

इच्छा, शक्ति, अशक्ति, शान्ति, जय।
परा, वैखरी, पश्यन्ती जय॥
मध्य, सत्यासत्या जय जय।
वाणी मधुरा परुषा जय जय॥
अष्टभुजा, दशभुजा जयति जय।
अष्टादश शुभ भुजा जयति जय॥
दुष्टदलनि बहुभुजा जयति जय।
चतुर्मुखा बहुमुखा जयति जय॥
जय दशवक्त्रा, दशपादा जय।
जय त्रिंशल्लोचना जयति जय॥
द्विभुजा चतुर्भुजा मा जय जय।
जय कदम्बमाला, चन्द्रा जय॥
जय प्रद्युम्नजननि देवी जय।
जय श्रीरार्णवसुते जयति जय॥
दारिद्र्यार्णव-शोषिणि जय जय।
सम्पति-वैभव-पोषिणि जय जय॥
दयामयी सुतहितकारिणि जय।
पद्मावती, मालती जय जय॥
भीष्मकराजसुता, धनदा जय।
विरजा, रजा, सुशीला जय जय॥
सकल सम्पदारूपा जय जय।
सदाप्रसन्ना, शान्तिमयी जय॥
श्रीपतिप्रिये, पद्मलोचनि जय।
हरिहियराजिनि, कान्तिमयी जय॥
जयति गिरिसुता, हैमवती जय।
परमेशानि महेशानी जय॥

जय शंकर-मनमोदिनि जय जय।
जय हरचित्तविनोदिनि जय जय॥
दक्ष-यज्ञ-नाशिनि, नित्या जय।
दक्षसुता, शुचि सती जयति जय॥
पर्णा, नित्य अपर्णा जय जय।
पार्वती, परमोदारा जय॥
भव-भामिनि जय भाविनि जय जय।
भवमोचनी, भवानी जय जय॥
जय श्वेताक्षसूत्रहस्ता जय।
वीणा-वादिनि; सुधा-स्रवा जय॥
शब्दब्रह्मस्वरूपिणि जय जय।
श्वेतपुष्पशोभिता जयति जय॥
श्वेताम्बरधारिणि, शुभ्रा जय।
जय कैकेयी, सुमित्रा जय जय॥
जय कौसल्या रामजननि जय।
जयति देवकी कृष्णजननि जय॥
जयति यशोदा नन्दगृहिणि जय।
अवनिसुता अघहारिणि जय जय॥
अग्निपरीक्षोत्तीर्णा जय जय।
रामविरह-अति-शीर्णा जय जय॥
रामभद्रप्रियभामिनि जय जय।
केवलपतिहित-सुखकामिनि जय॥
जनकराजनन्दिनी जयति जय।
मिथिला-अवधानन्दिनि जय जय॥
संसारार्णवतारिणि जय जय।
त्यागमयी जगतारिणि जय जय॥

****

रावणकुलविध्वंस-रता जय।
सतीशिरोमणि पतिव्रता जय॥
लव-कुश-जननि महाभागिनि जय।
राघवेन्द्रपद-अनुरागिनि जय॥
जयति रुक्मिणीदेवी जय जय।
जयति मित्रवृन्दा, भद्रा जय॥
जयति सत्यभामा, सत्या जय।
जाम्बवती, कालिन्दी जय जय॥
नाग्नजिती, लक्ष्मणा जयति जय।
अखिल विश्ववासिनि, विश्वा जय॥
अघ-गंजनि, भव-भंजिनि जय जय।
अजरा, जरा, स्पृहा, वाञ्छा जय॥
अजरामरा महासुखदा जय।
अजिता, जिता, जयन्ती जय जय॥
अतितन्द्रा, घोरा तन्द्रा जय।
अतिभयङ्करा, मनोहरा जय॥
अतिसुन्दरी घोररूपा जय।
अतुलनीय सौन्दर्या जय जय॥
अतुलपराक्रमशालिनि जय जय।
अदिती, दिती, किराततिनि जय जय॥
अन्ता, नित्य अनन्ता जय जय।
अबला, बला, अमूल्या जय जय॥
अभयवरद-मुद्रा-धारिणि जय।
अभ्यन्तरा, बहिःस्था जय जय॥
अमला, जयति अनुपमा जय जय।
अमित विक्रमा अपरा जय जय॥

अमृता, अतिशांकरी जयति जय।
आकर्षिणि आवेशिनि जय जय॥
आदिस्वरूपा, अभया जय जय।
आन्वीक्षिकी, त्रयीवार्ता जय॥
इन्द्र-अग्नि-सुर-धारिणि जय जय।
ईज्या, पूज्या, पूजा जय जय॥
उग्रकान्ति, दीप्ताभा जय जय।
उग्रा, उग्रप्रभावति जय जय॥
उन्मत्ता, अतिज्ञानमयी जय।
ऋद्धि, वृद्धि जय, विमला जय जय॥
एका, नित्य सर्वरूपा जय।
ओज-तेजपुञ्जा, तीक्ष्णा जय॥
ओजस्विनी, मनस्विनी, जय जय।
कदली, केलिप्रिया, क्रीडा जय॥
कलमञ्जीर-रञ्जिनी जय जय।
कल्याणी कल्याणमयी जय॥
कव्यरूपिणी, कुलिशाङ्गी जय।
कव्यस्था कव्यहा जयति जय॥
केशवनुता, केतकी जय जय।
कस्तूरी-तिलका, कुमुदा जय॥
कस्तूरी-रसविलिप्ता जय जय।
कामचारिणी, कीर्तिमती जय॥
कामधेनु-नन्दिनि आर्या जय।
कामाख्या, कुलकामिनि जय जय॥
कामेश्वरी, कामरूपा जय।
कालदायिनी कलसंस्था जय॥

****

काली, भद्रकालिका जय जय।
कुलध्येया, कौलिनी जयति जय ॥
कूटस्था, व्याकृतरूपा जय।
क्रूरा, शूरा, शर्वा जय जय ॥
कृपा, कृपामयि, कमनीया जय।
कैशोरी, कुलवती जयति जय ॥
क्षमा, शान्ति-संयुक्ता जय जय।
खर्परधारिणि, दिगम्बरा जय ॥
गदिनि, शूलिनी, अरिनाशिनि जय।
गन्धेश्वरी, गोपिका जय जय ॥
गीता, त्रिपथा, सीमा जय जय।
गुणरहिता, निजगुणान्विता जय ॥
घोरतमा, तमहारिणि जय जय।
चञ्चलाक्षिणी, परमा जय जय ॥
चक्ररूपिणी, चक्रा जय जय।
चटुला, चारुहासिनी जय जय ॥
चण्ड-मुण्ड-नाशिनि मा जय जय।
चण्डी जय प्रचण्डिका जय जय ॥
चतुर्वर्गदायिनि मा जय जय।
चन्द्रबाहुका, चन्द्रवती जय ॥
चन्द्ररूपिणी, चर्वा जय जय।
चन्द्रा, चारुवेणि, चतुरा जय ॥
चन्द्रानना, चन्द्रकान्ता जय।
चपला, चला, चञ्चला जय जय ॥
चराचरेश्वरि, चरमा जय जय।
चित्ता, चिति, चिन्मयि, चित्रा जय ॥

चिद्‌रूपा, चिरप्रज्ञा जय जय।
जगदम्बा जय, शक्तिमयी जय ॥
जगद्धिता, जगपूज्या जय जय।
जगन्मयी, जितक्रोधा जय जय ॥
जगविस्तारिणि, पञ्चप्रकृति जय।
जय झिंझिका, डामरी जय जय ॥
जन-जन क्लेशनिवारिणि जय जय।
जन-मन-रञ्जिनि जयति जना जय ॥
जयरूपा, जगपालिनि जय जय।
जयंकरी, जयदा, जाया जय ॥
जय अखिलेश्वरि, आनन्दा जय।
जय अणिमा, गरिमा, लघिमा जय ॥
जय उत्पला, उत्पलाक्षी जय।
जय जय एकाक्षरा जयति जय ॥
जय ऐंकारी, ॐकारी जय।
जय ऋतुमती, कुण्डनिलया जय ॥
जय कमनीय गुणाकक्षा जय।
जय कल्याणी, काम्या जय जय ॥
जय कुमारि, सधवा, विधवा जय।
जय कूटस्था, पराऽपरा जय ॥
जय कौशिकी, अम्बिका जय जय।
जय खट्वाङ्गधारिणी जय जय ॥
जय गर्वापहारिणी जय जय।
जय गायत्री, सवित्री जय ॥
जय गीर्वाणी, गौराङ्गी जय।
जय गुह्यातिगुह्य-गोप्त्री जय ॥

जय गोदा, कुलतारिणि जय जय।
जय गोपालसुन्दरी जय जय ॥
जय गोलोक-सुरभि, सुरमयि जय।
जय चम्पकवर्णा, चतुरा जय ॥
जय चातका, चन्द्र-चूड़ा जय।
जय चेतना, अचेतनता जय ॥
जय जय विन्ध्यनिवासिनि जय जय।
जय ज्येष्ठा, श्रेष्ठा, प्रेष्ठा जय ॥
जय ज्वाला, जागृती जयति जय।
जय डाकिनि, शाकिनि, शोषिणि जय ॥
जय तामसी, आसुरी जय जय।
जयति अनङ्गा, औषधि जय जय ॥
जयति असिद्धसाधिनी जय जय।
जयति इडा, पिंगला जयति जय ॥
जयति सुषुम्णा गान्धारी जय।
जयति उग्रतारा, तारिणि जय ॥
जयति एकवीरा, एका जय।
जयति कपालिनि, करालिनी जय ॥
जयति कामरहिता, कामिनि जय।
जय तुरीयपद-गामिनि जय जय ॥
जयति ज्ञानबल-क्रियाशक्ति जय।
जयति तप्तकाञ्चनवर्णा जय ॥
जयति दिव्य आभरणा जय जय।
जयति दुर्गतोद्धारिणि जय जय ॥
जयति दुर्गमालोका जय जय।
जयति नन्दजा, नन्दा जय जय ॥

****

जयति पाटलावती, प्रिया जय।
जयति भ्रामरी, भ्रमरी जय जय॥
जयति माधवी, मन्दा जय जय।
जयति मृगावति, महोत्पला जय॥
जयति विश्वकामा, विपुला जय।
जयति बृत्रनाशिनि, वरदे जय॥
जयति व्याप्ति अव्याप्ति आप्ति जय।
जयति शाम्भवी, जयति शिवा जय॥
जयति सर्गरहिता, सुमना जय।
जयति हेमवर्णा, स्फटिका जय॥
जय दुरत्यया, दुर्गमगा जय।
दुर्गम आत्मस्वरूपिणि जय जय॥
जय दुर्गमिती, दुर्गमता जय।
जय दुर्गापद्विनिवारिणि जय॥
जय धारणा, धारिणी जय जय।
जय धीश्वरी, वेदगर्भा जय॥
जय नन्दिता, वन्दिता जय जय।
जय निर्गुणा, निरञ्जिनि जय जय॥
जय प्रत्यक्षा जय गुप्ता जय।
जय प्रवाल शोभा, फलिनी जय॥
जय पातालवासिनी जय जय।
जय प्रीता, प्रियवादिनि जय जय॥
जय बहुला, विपुला, विषया जय।
जय वायसी बिराली जय जय॥
जय भीषण-भयवारिणि जय जय।
जय भुजंग-उरभाविनि जय जय॥

जय मोदिनि, मधुमालिनि जय जय।
जय भुजंग-वरशालिनि जय जय॥
जय भेरूण्डा, भिषम्बरा जय।
जय मणिद्वीपनिवासिनि जय जय॥
जय मधुमयि, मुकुन्दमोहिनि जय।
जय मधुरता मेदिनी जय जय॥
जय मन्मथा, महाभागा जय।
जयति महामारी, महिमा जय॥
जय माण्डवी महादेवी जय।
जय मृगनयनि, मञ्जुला जय जय॥
जय योगिनी, योगसिद्धा जय।
जय राक्षसी, दानवी जय जय॥
जय वत्सला, बालपोषिणि जय।
जय विश्वार्तिहारिणी जय जय॥
जय विश्वेश-वन्दनीया जय।
जयति शताक्षी, शाकम्भरि जय॥
जय शुभचण्डी, शिवचण्डी जय।
जय शोभना लोकपावनि जय॥
जय षष्ठी, मङ्गलचण्डी जय।
जय संगीतकला-कुशला जय॥
जय संध्या, अघनाशिनि जय जय।
जय सच्चिदानन्दरूपा जय॥
जय सर्वाङ्गसुन्दरी जय जय।
जय सिंहिका, सत्यवादिनि जय॥
जय सौभाग्यशालिनी जय जय।
जय श्रींकारी, ह्रींकारी जय॥

****

जय हरप्रिया, हिमसुता जय जय।
जय हरिभक्तिप्रदायिनि जय जय॥
जय हरिप्रिया, जयति तुलसी जय।
जय हिरण्यवर्णा, हरिणी जय॥
जय कक्षा क्लींकारी जय जय।
जरावर्जिता, जरा, जयति जय॥
जितेन्द्रिया इन्द्रियरूपा जय।
जिह्वा, कुटिला, जम्भिनि जय जय॥
ज्योत्स्ना, ज्योति, जया, विजया जय।
ज्वलनि, ज्वालिनी, ज्वालाङ्गी जय॥
ज्वालामालिनि, धामनि जय जय।
ज्ञानानन्द-भैरवी जय जय॥
तपनि, तापनी, महारात्रि जय।
त्राटङ्किनी तुषारा जय जय॥
तीव्रा, तीव्रवेगिनी जय जय।
त्रिगुणमयी, त्रिगुणातीता जय॥
त्रिपुरसुन्दरी, ललिता जय जय।
दण्डनीति जय, समरनीति जय॥
दानवदलनि, दुष्टमर्दिनि जय।
दिव्य वसनभूषणधारिणि जय॥
दीनवत्सला दुखहारिणि जय।
दीना, हीनदरिद्रा जय जय॥
दुराशया दुर्जया जयति जय।
दुर्गति, सुगति, सुरेश्वरि जय जय॥
दुर्गम-ध्यान-भासिनी जय जय।
दुर्गमेश्वरी, दुर्गमाङ्गि जय॥

दुर्लभ मोक्षप्रदात्री जय जय।
दुर्लभ सिद्धिदायिनी जय जय॥
देवदेव-हरि-मनभावनि जय।
देवमयी, देवेशी जय जय॥
देवयानि, दमयन्ती जय जय।
देवहूति, द्रौपदी जयति जय॥
धनजन्मा, धनदात्रि जयति जय।
धनमयि, द्रविणा, द्रवा जयति जय॥
धर्ममूर्ति जय ज्योतिमूर्ति जय।
धर्म-साधु-दुख-भीति-हरा जय॥
धूम्राक्षी, क्षीणा, पीना जय।
नवनीरदघनश्यामा जय जय॥
नवरत्नाढ्या, निरवद्या जय।
नव-षट्‌रस-आधारा जय जय॥
नाना-ऋतुमयि, ऋतुजननी जय।
नानाभोगविलासिनि जय जय॥
नारायणी, दिव्यनारी जय।
नित्यकिशोरवयस्का जय जय॥
निर्गन्धा, बहुगन्धा जय जय।
अगुणा, सर्वगुणाधारा जय॥
निर्दोषा, सबदोषयुता जय।
निर्वर्णा, अनेकवर्णा जय॥
निर्बीजा जय बीजकरी जय।
निष्कल-बिन्दु-नादरहिता जय॥
नीलाघना, सुकुल्या जय जय।
नीलाञ्जना, प्रभामयि जय जय॥

****

नीलाम्बरा नीलकमला जय।
नृत्य-वाद्यरसिका, भूमा जय॥
पञ्चशिखा, पञ्चाङ्गी जय जय।
पद्मप्रिया पद्मस्था जय जय॥
पयस्विनी, पृथुजंघा जय जय।
परंज्योति, पर-प्रीति नित्य जय॥
परम तपस्विनि, प्रमिला जय जय।
परमाह्लादकारिणी जय जय॥
परमेश्वरी, पाडला जय जय।
पर शृङ्गारवती शोभा जय॥
पल्लवोदरी, प्रणवा जय जय।
प्राणवाहिनी अलम्बुषा जय॥
पालिनि, जगसंवाहिनि जय जय।
पिङ्गलेश्वरी, प्रमदा जय जय॥
प्रियभाषिणी, पुरन्ध्रा जय जय।
पीताम्बरा, पीतकमला जय॥
पुण्यप्रजा पुण्यदात्री जय।
पुण्यालया सुपुण्या जय जय॥
पुरवासिनी, पुष्कला जय जय।
पुष्पगन्धिनी पूषा जय जय॥
पुष्पभूषणा, पुष्पप्रिया जय।
प्रेमसुगम्या, विश्वजिता जय॥
प्रौढ़ा अप्रौढ़ा, कन्या जय।
बला, बलाका, बेला जय जय॥
बालाकिनी, बिलाहारा जय।
बाला, तरुणि, वृद्धमाता जय॥

****

बुद्धिमयी, अति सरला जय जय ।
ब्रह्मकला, विन्ध्येश्वरि जय जय ॥
ब्रह्मस्वरूपा, विद्या जय जय ।
ब्रह्मभेदस्वरूपिणि जय जय ॥
भक्त-हृदय-तम-घन-हारिणि जय ।
भक्तात्मा, भुवनानन्दा जय ॥
भक्तानन्दकरी, वीरा जय ।
भगात्मिका, भगमालिनि जय जय ॥
भगरूपका भूतधात्री जय ।
भगनीया, भवनस्था जय जय ॥
भद्रकर्णिका, भद्रा जय जय ।
भयप्रदा, भयहारिणि जय जय ॥
भवक्लेशनाशिनि, धीरा जय ।
भवभयहारिणि, सुखकारिणि जय ॥
भवमोचनी, भवानी जय जय ।
भव्या, भाव्या, भविता जय जय ॥
भस्मावृता, भाविता जय जय ।
भाग्यवती, भूतेशी जय जय ॥
भानुभाषिणी, मधुजिह्वा जय ।
भास्करकोटि, किरणमुक्ता जय ॥
भीतिहरा, जय, भयंकरी जय ।
भीषणशब्दोच्चारिणि जय जय ॥
भूति, विभूति, विभवरूपिणि जय ।
भूरिदक्षिणा, भाषा जय जय ॥
भोगमयी, अति त्यागमयी जय ।
भोगशक्ति जय, भोक्तृशक्ति जय ॥

****

मत्तानना, मादिनी जय जय।
मदनोन्मादिनि संशोषिणि जय॥
मदोत्कटा मुकुटेश्वरि जय जय।
मधुपा, मात्रा, मित्रा जय जय॥
मधुमालिनि, बलशालिनि जय जय।
मधुरभाषिणी, घोररवा जय॥
मधुर-रसमयी, मुद्रा जय जय।
मनरूपा जय, मनोरमा जय॥
मनहर-मधुर-निनादिनि जय जय।
मन्दस्मिता, अट्टहासिनि जय॥
महासिद्धि जय, सत्यवाक जय।
महिषासुरमर्दिनि मा जय जय॥
मुग्धा, मधुरालापिनि जय जय।
मुण्डमालिनी, चामुण्डा जय॥
मूलप्रकृति, अनादि जयति जय।
मूलाधारा, प्रकृतिमयी जय॥
मृदु-अङ्गी, वज्राङ्गी जय जय।
मृदुमञ्जीरपदा रुचिरा जय॥
मृदुला, महामानवी जय जय।
मेघमालिनी, मैथिलि जय जय॥
युद्धनिवारिणि, निःशस्त्रा जय।
योगक्षेमसुवाहिनि जय जय॥
योगशक्ति जय, भोगशक्ति जय।
रक्तबीजनाशिनि मा जय जय॥
रक्ताम्बरा, रक्तदन्ता जय।
रक्ताम्बुजासना, रक्ता जय॥

रक्ताशना, रक्तवर्णा जय।
रजनी, अमा, पूर्णिमा जय जय ॥
रतिप्रिया, रतिकरी, रीति जय।
रत्नवती, नरमुण्डप्रिया जय ॥
रमाप्रकटकारिणि, राधा जय।
रमास्वरूपिणि रमाप्रिया जय ॥
रत्नोल्लसतकुण्डला जय जय।
रुद्रचन्द्रिका, घोरचण्डि जय ॥
रुद्रसुन्दरी रतिप्रिया जय।
रुद्राणी, रम्भा, रमणा जय ॥
रौद्रमुखी, विधुमुखी जयति जय।
लक्ष्यालक्ष्यस्वरूपा जय जय ॥
ललिताम्बा, लीला, लतिका जय।
लीलावती, प्रेमललिता जय ॥
विकटाक्षा, कपाटिका जय जय।
विकटानना, सुधाननि जय जय ॥
विद्यापरा, महावाणी जय।
विद्युल्लता, कनकलतिका जय ॥
विध्वंसिनि, जगपालिनि जय जय।
विन्दु-नादरूपिणी, कला जय ॥
विन्दुमालिनी, पराशक्ति जय।
विमला, उत्कर्षिणि, वामा जय ॥
विमुखा, सुमुखा, कुमुखा जय जय।
विश्वमूर्ति विश्वेश्वरि जय जय ॥
विश्व-प्राज्ञ-तैजसरूपा जय।
विश्वेश्वरि, विश्वजननी जय ॥

****

विष्णुस्वरूपा, वसुन्धरा जय।
वेदमूर्ति जय, ज्ञानमूर्ति जय॥
शङ्खिनि, चक्रिणि, वज्रिणि जय जय।
शबल-ब्रह्मरूपिणि, अमरा जय॥
शब्दमयी, शब्दातीता जय।
शर्वाणी, व्रजरानी जय जय॥
शशिशेखरा, शशाङ्कमुखी जय।
शस्त्रधारिणी, रणाङ्गिणी जय॥
शालग्रामप्रिया शान्ता जय।
शास्त्रमयी, सर्वास्त्रमयी जय॥
शुम्भ-निशुम्भ-विघातिनि जय जय।
शुद्धसत्त्वरूपा माता जय॥
शोभावती, शुभाचारा जय।
षट्चक्रा, कुण्डलिनी जय जय॥
संवित, चिति, नित्यानन्दा जय।
सकल-कलुष-कलिकालहरा जय॥
सत्-चित्-सुख-स्वरूपिणी जय जय।
सत्यवादिनी, सन्मार्गा जय॥
सत्या, सत्याधारा जय जय।
सत्ता, सत्यानन्दमयी जय॥
सर्गस्थिता सर्गरूपा जय।
सर्वज्ञा, सर्वातीता जय॥
सर्वतापहारिणि जय मा जय।
सर्वमङ्गला, मनसा जय जय॥
सर्वबीजस्वरूपिणि जय जय।
सर्वसुमङ्गलरूपिणि जय जय॥

****

सर्वासुरनाशिनि, सत्या जय ।
सर्वाह्लादनकारिणि जय जय ॥
सर्वेश्वरी, सर्वजननी जय ।
सर्वैश्वर्यप्रिया, शरभा जय ॥
सामनीति जय, दामनीति जय ।
साम्यावस्थात्मिका जयति जय ॥
हंसवाहिनी, ह्रींरूपा जय ।
हस्तिजिह्विका, प्राणवहा जय ॥
हिंसा-क्रोधवर्जिता जय जय ।
अति-विशुद्ध-अनुरागमना जय ॥
कल्पद्रुमा, कुरङ्गाक्षी जय ।
कारूण्यामृत-अम्बुधि जय जय ॥
कुञ्जविहारिणि देवी जय जय ।
कुन्दकुसुमदन्ता गोपी जय ॥
कृष्णउरस्थलवासिनि जय जय ।
कृष्ण-जीवनाधारा जय जय ॥
कृष्णप्रिया, कृष्णकान्ता जय ।
कृष्णप्रेमकलङ्किनि जय जय ॥
कृष्णप्रेमतरंगिणि जय जय ।
कृष्णप्रेमप्रदायिनि जय जय ॥
कृष्णप्रेमरूपिणि मत्ता जय ।
कृष्णप्रेमसागर-सफरी जय ॥
कृष्णवन्दिता, कृष्णमयी जय ।
कृष्णवक्षनितशायिनि जय जय ॥
कृष्णानन्दप्रकाशिनि जय जय ।
कृष्णाराध्या, कृष्णमुखी जय ॥

कृष्णह्लादिनि, कृष्णप्रिया जय।
कृष्णोन्मादिनि देवी जय जय॥
गुणसागरी, नागरी जय जय।
गोपी-उत्पादनि मादिनि जय॥
गोपीकायव्यूहरूपा जय।
जय आह्लादिनि, संधिनि जय जय॥
जय कलिकलुषविनाशिनि जय जय।
जय कीर्तिदा-भानुनन्दिनि जय॥
जय गोकुलानन्ददायिनि जय।
जय गोपालवल्लभा जय जय॥
जय चन्द्रावलि, ललिनी जय जय।
जयति कामरहिता, रामा जय॥
जयति विशाखा, शीला जय जय।
जयति श्याम-मोहिनि, श्यामा जय॥
जय ललिता, नलिनाक्षी जय जय।
जय रससुधा, सुशीला जय जय॥
जय कृष्णाङ्गरता देवी जय।
दिव्यरूपसम्पन्ना जय जय॥
दुर्लभ महाभावरूपा जय।
नागर, मनोमोहिनी जय जय॥
नित्य कृष्णसंजीवनि जय जय।
नित्य निकुञ्जेश्वरि, पूर्णा जय॥
प्रणय-राग-अनुरागमयी जय।
फुल्लपङ्कजानना जयति जय॥
प्रियवियोग-मनभग्ना जय जय।
श्यामसुधारसमग्ना जय जय॥

भुक्ति-मुक्ति-भ्रम-भङ्गिनि जय जय।
भुक्ति-मुक्ति-सम्पादिनि जय जय॥
भुजमृणालिका, शुभा जयति जय।
मदनमोहिनी, मुख्या जय जय॥
मन्मथ-मन्मथ-मनमोहनि जय।
जय मुकुन्द-मधुमाधुर्या जय॥
मुकुररङ्गिनी मानिनि जय जय।
मुखरा, मौना, मानवती जय॥
जय रङ्गिणि, रसवृन्दा जय जय।
रसदायिनी, रसमयी जय जय॥
रसमञ्जरी, रसज्ञा जय जय।
रासमण्डलाध्यक्षा जय जय॥
रासरसोन्मादी, रसिका जय।
रासविलासिनि, रासेश्वरि जय॥
रासोल्लासप्रमत्ता जय जय।
लावण्यामृत-रसनिधि जय जय॥
लीलामयि, लीलारङ्गी जय।
लोलाक्षी, ललिताङ्गी जय जय॥
वंशीवाद्यप्रिया देवी जय।
विश्वविमोहिनि, मुनिमोहनि जय॥
व्रजरस-भाव-राज्य-भूपा जय।
व्रजलक्ष्मी-वल्लवी जयति जय॥
व्रजेन्दिरा, विद्युद्-गौरी जय।
श्रीव्रजेन्द्रसुत-प्रिया जयति जय॥
श्यामप्रीतिसंलग्ना जय जय।
श्यामामृत-रसमग्ना जय जय॥

हरि-उल्लासिनि, हरि-स्मृतिमयि जय।
हरि-हिय-हारिणि, हरि-रतिमयि जय॥
गङ्गा, यमुना, सरस्वती जय।
कृष्णा, सरयु, देविका जय जय॥
अलकनन्दिनी, अमला जय जय।
जय कौशिकी, चन्द्रभागा जय॥
जय गण्डकी, तापिनी जय जय।
जयति गोमती, गोदावरि जय॥
जयति वितस्ता, साभ्रमती जय।
जयति विपाशा, तोया जय जय॥
जय शतद्रु, कावेरी जय जय।
वेत्रवती, नर्मदा जयति जय॥
स्नेहमयी सौम्या मैया जय।
जय जननी जय जयति-जयति जय॥

[९१७]

बटुक भैरव

(राग गोरख कल्याण—तीन ताल)

कालमेघ-श्यामल-तनु शोभित, मुद्रा वरद-अभय सुन्दर।
सुधा-कलश, पाशाङ्कुश, फणि, माला, डमरूसे संयुत कर॥
पीत वस्त्र, रत्नोज्ज्वल भूषण, स्वर्णरत्न करधनि मनहर।
भाल त्रिपुण्ड्र सुशोभित, भैरव-बटुक सदा सेवक-हितकर॥

[९१८]

भगवान् सूर्य नारायणकी जय

(राग सिंदूरा—ताल मूल)

आदिदेव, आदित्य, दिवाकर, विभु, तमिस्रहर।
तपन, भानु, भास्कर, ज्योतिर्मय, विष्णु, विभाकर॥

शंख-चक्रधर, रत्नहार-केयूर-मुकुटधर।
लोकचक्षु, लोकेश, दुःख-दारिद्र्य-कष्टहर॥
सविता देव अनादि सृष्टि जीवन पालनपर।
पाप-तापहर, मङ्गलकर, मङ्गल-विग्रह-वर॥
महातेज, मार्तण्ड, मनोहर, महारोगहर।
जयति सूर्य नारायण, जय जय सर्व सुखाकर॥

[९१९]

आरती—श्रीजगदीश्वर हरि

(शनि आरती—ताल कहरवा)

जय जगदीश हरे, प्रभु! जय जगदीश हरे।
मायातीत, महेश्वर, मन-बच-बुद्धि परे॥ टेक॥
आदि, अनादि, अगोचर, अविचल, अविनाशी।
अतुल, अनन्त, अनामय, अमित शक्ति-राशी॥ १॥ जय०
अमल, अकल, अज, अक्षय, अव्यय, अविकारी।
सत-चित-सुखमय, सुन्दर, शिव, सत्ताधारी॥ २॥ जय०
विधि, हरि, शंकर, गणपति, सूर्य, शक्तिरूपा।
विश्व-चराचर तुमहीं, तुमहीं जग भूपा॥ ३॥ जय०
माता-पिता-पितामह-स्वामि-सुहृद भर्ता।
विश्वोत्पादक-पालक रक्षक संहर्ता॥ ४॥ जय०
साक्षी, शरण, सखा, प्रिय, प्रियतम, पूर्ण प्रभो।
केवल, काल कलानिधि, कालातीत बिभो॥ ५॥ जय०
राम-कृष्ण, करुणामय, प्रेमामृत-सागर।
मनमोहन, मुरलीधर, नित-नव नटनागर॥ ६॥ जय०
सब बिधि हीन, मलिन मति, हम अति पातकिजन।
प्रभु-पद-विमुख अभागी, कलि-कलुषित-तन-मन॥ ७॥ जय०
आश्रय-दान दयार्णव! हम सबको दीजे।
पाप-ताप हर हरि! सब, निज-जन कर लीजे॥ ८॥ जय०

****

[९२०]

आरती—श्रीनृसिंहभगवान्

(राग कान्हरा—ताल कहरवा)

आरति भक्तकल्पतरु हरि की।
दनुज-दर्पहर नर-केसरि की॥
रूप भयानक स्तम्भविदारी,
असुर हिरण्यकशिपु-संहारी,
भक्त-हेतु अद्भुत तनुधारी,
सुरवन्दित प्रभु सर्वोपरि की॥
मङ्गलमय सब मङ्गलकारी,
शरणागत-वत्सल भयहारी,
सौम्यरूप जन-हृदय-विहारी,
अघतरु-मूलोत्पाटक करि की॥
अखिल विश्व-शोधक मलहारी,
जनप्रहलाद सुहृद सुखकारी,
जयति जयति जय जय दैत्यारी।
चिदानन्दमय तमहर-हरि की॥

[९२१]

आरती—भगवान् शंकर

(राग देश—ताल कहरवा)

आरति परम साम्ब-शंकर की।
सत्य सनातन शिव शुभकर की॥
आदि, अनादि, अनन्त, अनामय।
अज, अविनाशी, अकल, कलामय।
सर्वरहित नित सर्व-उरालय।

मस्तक सुरसरिधर शशिधर की।
आरति परम साम्ब-शंकर की॥
कर्ता, भर्ता, जगसंहारी।
ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तनुधारी।
सर्वविकाररूप अविकारी।
अग-जग-पालक प्रलयंकर की।
आरति परम साम्ब-शंकर की॥
विश्वातीत विश्वगत स्वामी।
द्रष्टा साक्षी अन्तर्यामी।
काम-काल सब-जग-हित कामी।
अनघ-स्वरूप सकल अघहर की।
आरति परम साम्ब-शंकर की॥
मुनि-मन-हरण मधुर शुचि सुंदर।
अति कमनीय रूप सुषमावर।
दिव्याम्बर रत्नाभूषणधर।
सर्व-नयन-मन-हर सुखकर की।
आरति परम साम्ब-शंकर की॥
विकट कराल पञ्चमुखधारी।
मुण्डमाल विषधर भयकारी।
हाथ कपाल श्मशान-विहारी।
वेष अमङ्गल मङ्गलकर की।
आरति परम साम्ब-शंकर की॥
भोगी, योगी, ध्यानी, ज्ञानी।
जग-अभिमानाधार अमानी।
आशुतोष अति औढरदानी।
दैन्य-दुरित-दुर्गतिहर हर की!
आरति परम साम्ब-शंकर की॥

****

[९२२]

आरती—भगवान् महादेव

(ध्वनि आरती—ताल कहरवा)

हर हर हर महादेव !
सत्य, सनातन, सुन्दर, शिव ! सबके स्वामी।
अविकारी, अविनाशी, अज, अन्तर्यामी ॥ १ ॥ हर हर० ॥
आदि, अनन्त, अनामय, अकल, कलाधारी।
अमल, अरूप, अगोचर, अविचल, अघहारी ॥ २ ॥ हर हर० ॥
ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, तुम त्रिमूर्तिधारी।
कर्ता, भर्ता, धर्ता, तुम ही संहारी ॥ ३ ॥ हर हर० ॥
रक्षक, भक्षक, प्रेरक, प्रिय औढरदानी।
साक्षी, परम अकर्ता, कर्ता, अभिमानी ॥ ४ ॥ हर हर० ॥
मणिमय-भवन-निवासी, अति भोगी, रागी।
सदा श्मशानविहारी, योगी, वैरागी ॥ ५ ॥ हर हर० ॥
छाल-कपाल, गरल-गल, मुण्डमाल, व्याली।
चिताभस्मतन, त्रिनयन, अयनमहाकाली ॥ ६ ॥ हर हर० ॥
प्रेत-पिशाच-सुसेवित, पीत जटाधारी।
चिवसन विकट रूपधर रुद्र प्रलयकारी ॥ ७ ॥ हर हर० ॥
शुभ्र, सौम्य, सुरसरिधर, शशिधर, सुखकारी।
अति कमनीय, शान्तिकर, शिव-मुनि-मन-हारी ॥ ८ ॥ हर हर० ॥
निर्गुण, सगुण, निरञ्जन, जगमय, नित्य प्रभो।
कालरूप केवल हर ! कालातीत विभो ॥ ९ ॥ हर हर० ॥
सत्, चित्, आनँद, रसमय, करुणामय धाता।
प्रेम-सुधा-निधि, प्रियतम, अखिल विश्व-त्राता ॥ १० ॥ हर हर० ॥
हम अतिदीन, दयामय ! चरण-शरण दीजै।
सब बिधि निर्मल मति कर अपना करि लीजै ॥ ११ ॥ हर हर० ॥

[९२३]

आरती—भगवान् श्रीगणेशजी

(ध्वनि आरती)

आरति गजवदन विनायक की।
सुर-मुनि-पूजित गणनायक की॥ टेक॥
एकदन्त शशिभाल गजानन,
विघ्नविनाशक शुभगुण-कानन,
शिवसुत वन्द्यमान-चतुरानन,
दुःख-विनाशक सुखदायक की॥ सुर०॥
ऋद्धि-सिद्धि-स्वामी समर्थ अति,
विमल बुद्धि दाता सुविमल-मति,
अघ-वन-दहन, अमल अबिगत-गति,
विद्या-विनय-विभव-दायक की॥ सुर०॥
पिङ्गल नयन, विशाल शुण्डधर,
धूम्रवर्ण शुचि वज्राङ्कुश-कर,
लम्बोदर बाधा-विपत्ति-हर,
सुर-वन्दित सब बिधि लायक की॥ सुर०॥

[९२४]

आरती श्रीदुर्गाजी

(ध्वनि आरती)

जगजननी जय ! जय ! ! मा ! जगजननी जय ! जय !!
भयहारिणि, भवतारिणि, भवभामिनि जय जय॥ टेक॥
तू ही सत-चित-सुखमय शुद्ध ब्रह्मरूपा।
सत्य सनातन सुन्दर पर-शिव सुर-भूपा॥ १॥ जग०
आदि अनादि अनामय अविचल अविनाशी।
अमल अनन्त अगोचर अज आनँदराशी॥ २॥ जग०

अविकारी, अघहारी, अकल, कलाधारी।
कर्ता विधि, भर्ता हरि, हर सँहारकारी ॥ ३ ॥ जग०
तू विधि वधू, रमा, तू उमा, महामाया।
मूल प्रकृति, विद्या तू, तू जननी, जाया ॥ ४ ॥ जग०
राम, कृष्ण तू, सीता, व्रजरानी राधा।
तू वाञ्छाकल्पद्रुम, हारिणि सब बाधा ॥ ५ ॥ जग०
दश विद्या, नव दुर्गा, नाना शस्त्रकरा।
अष्टमातृका, योगिनि, नव-नव-रूप-धरा ॥ ६ ॥ जग०
तू परधामनिवासिनि, महाविलासिनि तू।
तू ही श्मशानविहारिणि, ताण्डव-लासिनि तू ॥ ७ ॥ जग०
सुर-मुनि-मोहिनि सौम्या तू शोभाधारा।
विवसन विकट-सरूपा, प्रलयमयी धारा ॥ ८ ॥ जग०
तू ही स्नेहसुधामयि, तू अति गरलमना।
रत्नविभूषित तू ही, तू ही अस्थि-तना ॥ ९ ॥ जग०
मूलाधारनिवासिनि, इह-पर-सिद्धिप्रदे।
कालातीता काली, कमला तू वरदे ॥ १० ॥ जग०
शक्ति शक्तिधर तू ही, नित्य अभेदमयी।
भेदप्रदर्शिनि वाणी विमले ! वेदत्रयी ॥ ११ ॥ जग०
हम अति दीन दुखी माँ ! विपत-जाल घेरे।
हैं कपूत अति कपटी, पर बालक तेरे ॥ १२ ॥ जग०
निज स्वभाववश जननी ! दयादृष्टि कीजै।
करुणा कर करुणामयि ! चरण-शरण दीजै ॥ १३ ॥ जग०

[९२५]

आरती श्रीगायत्रीजी

(तर्ज आरती—ताल कहरवा)

आरति श्री गायत्रीजी की।
स्मितवदना सावित्रीजी की ॥

यज्ञप्रिया यज्ञमयि वाणी।
लक्ष्मी वेदजननि ब्रह्माणी।
वृषभासना रुचिर रुद्राणी।
मङ्गलमयी परम सुश्री की।
आरति श्री गायत्रीजी की॥
सकल वेदमन्त्रोंकी स्वामिनि।
सुर-सेविता सुमङ्गल-धामिनि।
शीतल नित्य दीप्तिमयि दामिनि।
तम हारिणि विशुद्धतम धी की।
आरति श्री गायत्रीजी की॥
दुःख-दुरित-दारिद्र्य-विनाशिनि।
सुख-शुभ-सुकृति-विभूति-विकासिनि।
सतत सच्चिदानन्द-विलासिनि।
नाशिनि महामोह-रजनी की।
आरति श्री गायत्रीजी की॥
विश्व-जननि मा विश्वाधारा।
पावन स्नेह-सुधा की धारा।
तुरत बहाकर करुणागारा।
दूर करो सब ज्वाला जी की।
आरति श्री गायत्रीजी की॥

[९२६]

आरती श्रीगायत्रीजी—२

(तर्ज आरती—ताल कहरवा)

गायत्री माता, जय गायत्री माता।
वेदजननि, वेदात्मा, विद्या विख्याता॥

रक्तवर्ण शुभ प्रातः ब्रह्मा रूपधरा ।
हंसारूढ़ा भुज-मुख-चार चारु अपरा ॥
मध्याह्ने हरि-रूपा नीलवर्ण शुभदा ।
गरुड़वाहिनी चतुरा चतुर्बाहु सुखदा ॥
सार्थं बृषभारूढ़ा शिवरूपा श्वेता ।
सूर्यकोटिसम आभा चतुर्भुजोपेता ॥
पञ्चमुखा दशहस्ता शुचि रस-रस-नयना ।
स्फटिक समुज्ज्वलवर्णा कल करुणा-अयना ॥
अघहारिणि, भवतारिणि-सुखकारिणि परमा ।
ब्रह्माणी, रुद्राणी, शुभलक्षणा रमा ॥
दुरित दुःख-दुर्गति सब दुर्मति दूर करो ।
शुचितम मम उरमें मा विमला भक्ति भरो ॥

[९२७]

श्रीमद्भागवतकी आरती

(आरती ध्वनि)

आरति अतिपावन पुरान की ।
धर्म, भक्ति, विज्ञान-खान की ॥
महापुरान भागवत निरमल ।
शुक-मुख-विगलित निगम-कल्प-फल ॥
परमानन्द-सुधा-रसमय कल ।
लीला-रति-रस रसनिधान की ॥ आरति०
कलि-मल-मथनि त्रिताप-निवारिनि ।
जन्म-मृत्युमय भव-भय-हारिनि ॥
सेवत सतत सकल सुखकारिनि ।
सुमहौषधि हरि-चरित-गान की ॥ आरति०

विषय-विलास-विमोह-विनासिनि ।
विमल विराग विवेक-विकाशिनि ॥
भगवत्तत्त्व-रहस्य-प्रकाशिनि ।
परम ज्योति परमात्म-ज्ञान की ॥ १ ॥ आरती०
परमहंस-मुनि-मन-उल्लासिनि ।
रसिक-हृदय रस-रास-विलासिनि ॥
भुक्ति, मुक्ति, रति प्रेम-सुदासिनि ।
कथा अकिञ्चनप्रिय सुजान की ॥ १ ॥ आरती०

[९२८]

श्रीदेवीभागवतकी आरती

(आरती ध्वनि)

आरति जग पावन पुरान की ।
मातृ-चरित विचित्र-खान की ॥
देवि-भागवत अतिशय सुन्दर ।
परमहंस मुनि-जन-मन-सुखकर ॥
विमल ज्ञान-रवि मोह-तिमिर-हर ।
परम मधुर सुषमा-वितान की ॥ १ ॥ आरती०
कलि-कल्मष-विष-विषम-निवारिणि ।
युगपत् भोग-सुयोग-प्रसारिणि ॥
परमानन्द-सुधा-विस्तारिणि ।
सुमहौषध अज्ञान-हान की ॥ २ ॥ आरति०
संतत सकल सुमङ्गलदायिनि ।
सम्मति सद्गति मुक्ति-प्रदायिनि ॥
नूतन नित्य विभूति-विधायिनि ।
परमप्रभा परतत्त्व-ज्ञान की ॥ ३ ॥ आरति०

आर्ति-अशान्ति-भ्रान्ति-भय-भञ्जनि ।
पाप-ताप-माया-मद-गञ्जनि ॥
शुचि सेवक-मन-मानस-रञ्जनि ।
लीला-रस मधुमय निधान की ॥ ४ ॥ आरति०

[९२९]

श्रीगोमाताकी आरती

(आरती ध्वनि)

आरति श्रीगैया-मैया की ।
आरति-हरनि विश्व-धैया की ॥ टेक ॥
अर्थ-काम-सद्धर्म-प्रदायिनि ।
अविचल अमल मुक्तिपददायिनि
सुर-मानव सौभाग्यविधायिनि,
प्यारी पूज्य नन्द-छैयाकी ॥ आरति० ॥
अखिल विश्व प्रतिपालिनि माता,
मधुर अमिय दुग्धान्न प्रदाता ।
रोग-शोक-संकट परित्राता,
भव-सागर हित दृढ़ नैया की ॥ आरति० ॥
आयु-ओज-आरोग्य-विकाशिनि,
दुःख-दैन्य-दारिद्र्य-विनाशिनि ।
सुखमा-सौख्य-समृद्धि-प्रकाशिनि,
विमल विवेक-बुद्धि-दैया की ॥ आरति० ॥
सेवक हो, चाहे दुखदाई,
सम पय-सुधा पियावति माई ।
शत्रु-मित्र सबको सुखदाई,
स्नेह-स्वभाव-विश्व-जैया की ॥ आरति० ॥

——★——

भगवान्‌का स्वभाव

[१३०]

(राग भूपाली—ताल त्रिताल)

मेरे प्रभु हैं कितने सहज सुहृद, हैं कितने परम उदार।
कितने वे वदान्य हैं, भृत्याधीन, अमित करुणा-आगार॥
दीन उन्हें क्या दे सकता है, अपना 'दैन्य' छोड़कर और।
'सर्वार्पण' वे मान उसे, देते हैं निज उछङ्गमें ठौर॥
हो जाते कृतज्ञ हैं, उसके नहीं देखते कुछ गुण-दोष।
भूल पूर्वके सब पापोंको, हृदय लगा, देते संतोष॥
कर लेते विशुद्ध वे उसको तुरत बना लेते निज यन्त्र।
खूब कराते उससे निज प्रिय कार्य फूँककर नव-नव मन्त्र॥

[१३१]

(राग पीलू—तीन ताल)

हरि सम हरि ही हितू हमारौ।
आश्रय एक दीन-पतितन कौ, सहज सहाय, सहारौ॥
अवगुन-दोष गिनत नहिं एकहु सरनागत के भारी।
निज अवलंबन देय, मिटावत जन की पीड़ा सारी॥
अभय करत निज दया-दान दै, भय-विषाद हर सारे।
पठवत अंत दिव्य निज धामहिं, निज सुभाव सौं हारे॥

[१३२]

(राग सारंग—तीन ताल)

हरिको हरि-जन अतिहि पियारे।
हरि हरि-जन तें भेद न राखैं, अपने सम करि डारैं॥

जाति-पाँति, कुल-धाम, धरम-धन, नहिं कछु बात बिचारैं।
जेहि मन हरि-पद-प्रेम अहैतुक, तेहि ढिग नेम बिसारैं॥
ब्याध, निषाद, अजामिल, गनिका, केते अधम उधारे।
करि-खग-बानर-भालु-निसाचर प्रेम-बिबस सब तारे॥
परखि प्रेम, हिय हरषि राम भिलनीके भवन पधारे।
बारहिं बार खात जूठे फल, रहे सराहत हारे॥
बिदुर-घरनि सुधि बिसरी तनकी, स्याम जबहिं पगु धारे।
कदली-फलके छिलका खाये, प्रेममगन मन भारे॥
रे मन! ऐसे परम प्रेममय हरिको मत बिसरा रे।
प्रभुके पद-सरोज-रस चाखन, तू मधुकर बनि जा रे॥

[९३३]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

जिसका कोई नहीं जगतमें, उसका प्रियतम होता मैं।
वह मेरे हियमें नित बसता, उसके हिय सुख सोता मैं॥
नहीं छोड़ता कभी उसे मैं, रहता नित्य उसीके पास।
मैं ही उसका हृदय-स्वामी, वह मेरा निश्चय प्रिय दास॥

[९३४]

(राग बिहाग—ताल मूल)

कैसे अति विचित्र करुणामय, कैसे साधु-शील भगवान्।
परम उच्चतम, अति नगण्य बन, वितरण करते प्रेम महान्॥
प्रेमसिंधु तुम दौड़े आते इसीलिये प्रभु! मेरे पास।
स्वयं डूबने प्रेम-बिंदु-निज मुझमें, यह कैसा उपहास?॥
तुम राजाधिराज भिक्षुक बनकर आते प्रभु मेरे द्वार।
धक्के दे, कर तिरस्कार मैं लौटा देता हूँ हर बार॥
पर न रूठते, नहीं खीझते, नहीं मानते तुम अपमान।
फिर आते स्वभाववश, देने दुर्लभ प्रेमामृतका दान॥

मुरली मधुर बजाते, विविध स्वरोंमें छेड़े रहते तान।
मधुर ध्वनि पड़ती कानोंमें, पर मैं नीच न देता ध्यान॥
सुनकर भी सुनता न अधम मैं, कभी न पूरे होते काम॥
पर रुकता न तुम्हारा झरना, रस बरसाना हे रसधाम॥
कर पाओगे कभी न स्वामी ! तुम अपने स्वभावका त्याग।
बरबस मुझे स्वयं अपनाकर कर दोगे निहाल, बड़भाग॥

[९३५]

(राग भीमपलासी—तीन ताल)

जो अनन्त ब्रह्माण्डोंके हैं एकमात्र ईश्वर आधार।
जो सम्पत्ति-विभूति-शक्तिके एकमात्र हैं पारावार॥
नित अनन्त, असमोर्ध्व, अनिर्वचनीय परम, जो सर्वश्रेय।
उनके साथ कहीं भी, कुछ भी, नहीं कभी भी है उपमेय॥
हैं विशुद्ध प्रेमैकलभ्य वे, प्रेम-रत्न-पारखी महान।
बिक जाते वे शुद्ध प्रेमके एक-एक कणपर भगवान॥

[९३६]

(राग भूपाली—तीन ताल)

साँवरे सदा प्रेमाधीन।
प्रेम-रसमय, रसिक—बर, नित प्रेम-मधु-रस-लीन॥
जपत प्रेमी-नाम संतत, करत प्रेमी ध्यान।
रहत मोहित लखि मधुर तिनकी अधर-मुसुकान॥
सुखी करिबे हित तिनहि, तजि सकल ईश्वर-भाव।
भूलि भगवत्ता सहज, सेवत तिनहि अति चाव॥
सहज करि सर्वस्व-अर्पन, इष्ट तिनकौं मान।
चरन-रज-कन लेत तिनके, धन्य जीवन जान॥

****

[९३७]

(राग पूर्वी—तीन ताल)

मैं नित भगतन हाथ बिकाऊँ।

आठौं जाम हृदयमें राखूँ पलक नहीं बिसराऊँ॥
कल न परत बैकुंठ बसत मोहि, जोगिन मन न समाऊँ।
जहँ मम भगत प्रेम-जुत गावहिं तहाँ बसत सुख पाऊँ॥
भगतन की जैसी रुचि देखूँ तैसो बेष बनाऊँ।
टारूँ अपने बचन भगत लगि, तिन के बचन निभाऊँ॥
ऊँच-नीच सब काज भगतके निज कर सकल बनाऊँ!
पग धोऊँ, रथ हाँकूँ, माँजूँ बासन, छानि छवाऊँ॥
माँगू नाहिं दाम कछु तिन तें, नहिं कछु तिनहिं सताऊँ।
प्रेमसहित जल, पत्र, पुष्प, फल—जो देवै सो खाऊँ॥
निज 'सरबस' भगतनको सौंपूँ, अपनो स्वत्व भुलाऊँ।
भगत कहैं सोइ करूँ निरन्तर, बेचैं तो बिक जाऊँ॥

[९३८]

(राग ईमन—ताल त्रिताल)

जिसने उनको चाहा, उसकी करते हैं प्रियतम खुद चाह।
जो आहें भरता है, उसके लिये स्वयं वे भरते आह॥
जिसको क्षणभर भी प्रिय-वियोगमें कभी नहीं पड़ता है चैन।
उसके लिये बहाते रहते स्नेह-सलिल नित प्रियतम-नैन॥
रखते हृदय बसाये उसको, लोभीके धनकी ज्यों श्याम।
उसे देखनेको ललचाते उनके लोचन नित्य ललाम॥
रहते उसके पास निरन्तर जाकर स्वयं सच्चिदानन्द।
सुख देते, सुख लेते उससे, स्वयं बने अतृप्त सुख-कंद॥

[९३९]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

प्रेम-रस-मधुर भावयुक्त जो करता अन्तस्तलसे याद।
उसके मधुर स्मरणसे क्षणभर भी मेरा नहिं जाता बाद॥
प्राण-सदृश मैं उसको अपने जीवनमें रखता भरकर।
अति प्रियतम, वह मुझको पान कराता नित अति सुधा मधुर॥

[९४०]

(राग तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

प्रियतमकी मधुर स्मृति जिसके मनको कर रखती पागल।
उसको गले लगानेको आतुर अति रहते प्रिय प्रतिपल॥
भूल न पाते उसे कभी, नित नव-नव भावोंसे भरते।
प्रेम-सुधा-निधि उमड़ा करता अति, नित नया चाव करते॥

[९४१]

(राग कालिंगड़ा—ताल कहरवा)

प्रेमी-जनके प्रेमास्पद, अति मधुर, प्राण-प्रियतम हैं श्याम।
वे ही प्राणनाथ प्राणेश्वर, एक प्राण-वल्लभ अभिराम॥
उनके प्रेमीजन अनन्य सुमधुर-जीवन अति धन्य ललाम।
जिनके चरण-धूलि-कणको वे प्रियतम करते स्वयं प्रणाम॥

[९४२]

(राग बागेश्री—ताल कहरवा)

गोपोंके आँगन-कीचड़में तुम प्रमुदित लोटा करते।
विप्रोंके शुचि यज्ञस्थलमें जाते सदा लाज मरते॥
गो-गोपी-वत्सोंकी बोली सुनते ही उत्तर देते।
सत्पुरुषोंकी शत-शत स्तुतियोंपर भी सहज मौन लेते॥
करते ब्रज-दाराओंका दासत्व, नहीं तुम हो थकते।
इन्द्रिय-जयी योगियोंका स्वामित्व नहीं तुम कर सकते॥
किसी मूल्यमें भी तो वे तब मिलते चरण-सरोज नहीं।
एक प्रेमसे ही उनकी, बस होती रसमय प्राप्ति सही॥

[९४३]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

बरस रही है सबपर भगवत्कृपा सहज ही, नित्य-निरन्तर ।
जीवमात्रके सहज स्वजन हरि, भरे सभीके बाहर-भीतर ॥
सदा सभीके लिये वेगसे झरता कृपा-सुधाका निर्झर ।
परमाश्रय वे प्राणिमात्रके, भेदरहित वे परम सुहृद्-बर ॥

[९४४]

(राग देश—ताल कहरवा)

कृपा कृपामयकी सदा करती है कल्यान ।
निज निश्चय अनुसार ही मिलते हैं भगवान् ॥

[९४५]

(राग परज—ताल कहरवा)

भय मत करो, न साहस छोड़ो, रक्खो प्रभुपर दृढ़ विश्वास ।
प्रभुकी कृपा सहज कर देगी सब बाधा-बिघ्नोंका नाश ॥
करते रहो सदा श्रद्धासे प्रभुके ही प्रीत्यर्थ प्रयास ।
जा पहुँचोगे सुखपूर्वक तुम परम लक्ष्य—भगवत्‌के पास ॥

× × × ×

भगवत्कृपा दीनका धन है, है उसपर उसका अधिकार ।
नहीं योग्यताकी आवश्यकता, नहीं देश-कुल-धर्म-विचार ॥
नहीं प्रश्न 'अधिकारी' का कुछ, नहीं शर्त कुछ, नहीं करार ।
हो विश्वास परम दृढ़ केवल दीनबन्धुपर बिना बिचार ॥

[९४६]

(राग परजा—ताल कहरवा)

नित्य-निरन्तर सहज रूपमें हैं प्रभु मङ्गल-कृपा-निधान ।
मङ्गलमय होता है उनका इसीलिये प्रत्येक विधान ॥
देख न पाते हम अदूरदर्शी उनकी यह कृपा महान ।
भय-विषादमें डूबे रहते व्यर्थ इसीसे दुर्मतिमान ॥

बरस रही प्रभु-कृपा सभीपर बिना भेद अनवरत अपार।
किंतु न कर पाते अनुभव विश्वासहीन हम मोहागार॥
पर प्रभु-कृपा न वञ्चित रखती कभी किसीको परम उदार।
समुचित मधुर-तिक्त औषध दे, हरती रहती रोग-विकार॥

[९४७]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

जिसने प्रभुसे कहा हृदयसे—'मुझे बना लो तुम अपना'।
सहज उदार परम हरिने स्वीकार किया उसको अपना॥
उसने मुँह मोड़ा, पर हरिने तजा न कभी विरद अपना।
उसके अपने बने, बनाये रक्खा उसे सदा अपना॥

[९४८]

(राग भैरव)

एक बार शरणागत होकर जो कहता—'प्रभु ! मैं तेरा'।
कर देता मैं अभय उसे सब भूतोंसे—यह व्रत मेरा॥

[९४९]

(राग बागेश्री—तीन ताल)

जो अनन्त ऐश्वर्य-धर्म-यश, जो अनन्त श्री, ज्ञान अनन्त।
जो अनन्त वैराग्य, प्रेम-रस, जो अनुपम आनन्द अनन्त॥
सकल ईश्वरोंके ईश्वर जो, सर्वनियन्ता, शक्ति अनन्त।
दिव्य सत्य सौन्दर्य नित्य, निरवधि, निरुपम माधुर्य अनन्त॥
सर्वातीत, सर्वगत, सर्वाधीश, सर्व, जो सर्वाधार।
निर्गुण नित्य अनन्त दिव्य गुण, निराकार नित जो साकार॥
ऐसे महामहिम परमेश्वर सहज शीलवश सुहृद उदार।
जीवमात्रको शरण दान कर, कर लेते वे अङ्गीकार॥

[९५०]

(राग काफी—ताल कहरवा)

सब प्रकारसे मलिन, दीन अति, हीन, निराश्रय।
दुराचार-दुर्गुण-रत, जड, पूरित विषाद-भय॥
ऐसा भी यदि मान मुझे ही अनन्य आश्रय।
हो मेरे शरणागत, कर दूँ सबसे निर्भय॥
यह मेरा व्रत है, मेरा स्वभाव यह निश्चय।
मुझे न कोई शरणागत सेवक सम अति प्रिय॥

[९५१]

(राग जंगला—तीन ताल)

जिसको पतित समझकर जगमें करते सब जिसका अपमान।
उसे उठाकर गले लगाते परम स्नेहसे खुद भगवान॥
जो दुतकारा जाता सबसे, जिसको सब देते धिक्कार।
प्रभु उसको दुलराने लगते, सुनकर उसकी करुण पुकार॥
जगमें जो पद-दलित, उपेक्षित, विस्मृत, अति नगण्य, बिन मोद।
सिर रखकर वह सुखसे सोता प्रियतम प्रभुकी सुखमय गोद॥
जिसको कोई नहीं मानता, कोई नहीं पूछता बात।
अखिल विश्वपति दीनबन्धु हरि खुद उसके सहलाते गात॥
जिसको 'मेरा' कहते जगमें जन-जन करता लज्जा-बोध।
उससे ममता करते खुद हरि, उर प्रवेश कर करते बोध॥
जिसके मनकी सुननेवाला नहीं जगतमें रहता एक।
उसकी सुनते नहीं ऊबते, युग-युग रखते अपनी टेक॥
जिसको कहीं न आदर मिलता, कहीं नहीं मिलता कुछ प्यार।
पाता वही परम प्रियतमका सीमा-विरहित प्यार दुलार॥
जिसको मूर्ख मानकर जगमें करते सब जिसका उपहास।
उसे स्वयं अपनाकर प्रभु नित करते उससे हास-विलास॥

जिसको दीन-दरिद्र जानकर करते घृणा जगतके, लोग।
प्रेमी उसे बना प्रियतम नित देते दुर्लभ निज संयोग॥
नहीं देखते देश-जाति-कुल, नहीं देखते धन-जन-मान।
नहीं देखते पाप-कलुष कुछ, नहीं देखते विद्या-ज्ञान॥
नहीं देखते वर्णाश्रम-वय-बुद्धि, देखते नहीं विचार।
नहीं देखते नारी या नर, कौन, कहाँ, कैसा आचार॥
सरल हृदयसे जो उनका हो जाता कर अर्पण तन-मन।
प्रभु निज कृपा अहैतुकसे कर लेते उसे तुरत निज जन॥
हर लेते उसके तुरंत सब पाप-कलुष, सारे संताप।
उसे बना लेते अपना वे, उसके खुद बन जाते आप॥
जगके प्राणि-पदार्थ-परिस्थितिकी सब आशाका कर त्याग।
जो प्रियतम प्रभुका बन जाता, वही धन्य-जीवन, बड़भाग॥
वह प्रभुका प्रभु उसके, उसका होता प्रियतमपर अधिकार।
सुर-मुनि सभी हृदयसे करते उसके पद-रजका सत्कार॥

[९५२]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

दैन्य-मूर्ति जो प्रभुकी कृपा अहैतुक पर कर दृढ़ विश्वास।
सहज शरण्य चरण-दर्शनका मनमें भर उमंग-उल्लास॥
जिसने डाल दिया अपनेको, आ, चरणोंमें बिना प्रयास।
सहज, सत्य, बेशर्त लुट पड़ा बनकर पद-रज-कणका दास॥
शरणागत-वत्सल प्रभुने पूछा न जरा भी पिछला हाल।
धर्म-जाति-दुष्कर्म आदिका किया न सहज कृपावश ख्याल॥
विमल बनाकर, उठा वरद कर रख मस्तक, कर दिया निहाल।
मुनि वाञ्छित दे दिया नित्य दुर्लभ सेवाधिकार तत्काल॥

[९५३]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

भरा हुआ दुस्तर दोषोंसे, अगणित अवगुणका भंडार।
नहीं देखते तुम किंचित भी, नहीं कभी देते दुतकार॥
जो अनन्य शरणागत होता, करते उसे तुरत स्वीकार।
दे निज आश्रय, पाप-रहित कर, उसे बनाते पुण्याधार॥
तुम-से-तुम्हीं एक हो, अनुपम, करुणामृतके पारावार।
मेरे-जैसे महा अधमको किया सहज ही अङ्गीकार॥

[९५४]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

सारे यज्ञ-तपोंके भोक्ता, सब लोकोंके ईश महान।
सहज सुहृद जो प्राणिमात्रके नित्य, अहैतुक कृपानिधान॥
कैसा भी हो, कोई भी हो—पाप-आयु हो, पुण्य-निवास।
शरणागतको आश्रय देकर नित्य बना लेते निज दास॥
सेवाका फल एक चाहता जो सेवा-समृद्धि सब काल।
करके दान स्वयं प्रभु अपना, करते उसको नित्य निहाल॥

[९५५]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

घोर असाधु, मलिन-मन, ठगता जगको सजकर साधु-सुवेश।
करता प्रेम-भक्तिका अभिनय, नहीं प्रेम-कणका लवलेश॥
रोता अश्रु बहाता, हँसता, करता नृत्य मधुर, उद्दण्ड।
करता लीला-रसकी बातें, बनता त्यागी मिथ्या भंड॥
दुष्ट-हृदय, सज शिष्ट, सिखाता शुद्धाचार, बताता धर्म।
असदाचार-निरत नित, छाया तन-मन केवल कपट-अधर्म॥

उत्सव-पर्व मनाता मैं, दिखलाता नित्य अमित उत्साह।
रहता सदा पुजानेपर मन, रहती भरी मानकी चाह॥
पूजा कभी न करता प्रभुकी, करता मैं प्रभुका उपहास।
इन्द्रिय-सुख ही सदा खोजता, अधम बना भोगोंका दास॥
नहीं क्षमाके योग्य कभी ये मेरे अति उत्कट अपराध।
सर्वदृष्टि अन्तर्यामीको भी रखता छलनेकी साध॥
नरकोंसे भी नीची गतिके योग्य, पापका पारावार।
तदापि दयामय नहीं भूलते निज स्वभाववश परमोदार॥
कहते—'सभी छोड़ आश्रय तू, आ जा मेरी शरण अनन्य।
धो डालूँगा पाप-ताप सब, तुरंत बना दूँगा मैं धन्य!'॥

[९५६]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

मृत्युरूप बन तुम ही आते मेरे नित्य परम प्रिय नाथ!
वेश बदल देते बाहरका, पर न छोड़ते पलभर साथ॥
दूर-समीप कहीं ले जाते, नरक-स्वर्ग इच्छा-अनुसार।
सुखी बनाते रहते, देते निज आलिङ्गन बारंबार॥
मृत्यु-साजमें भी देखूँगा मैं प्रिय मधुर रूप अभिराम।
निर्भय, सुखमय आलिङ्गन पा, बन जाऊँगा मैं सुखधाम॥
डरते-रोते हैं वे ही, जो सकते नहीं तुम्हें पहचान।
भीषण मरण-साज सज, तुम ही आते मधुर मञ्जु भगवान॥
जीवन-मरण—सभी नित, प्रियतम! मधुर तुम्हारे ही हैं खेल।
सबमें ही है नित्य तुम्हारा परमानन्द-सुधामय मेल॥
जगत, जगत्‌के परिवर्त्तन सब हैं अभिव्यक्ति तुम्हारी, नाथ!
तुमसे बने, बने तुमही हो सब, तुम ही हो रहते साथ॥
जगमें दो ही वस्तु सत्य हैं—लीलामय, लीला निर्मान।
लीला-लीलामय अभिन्न हैं नित सच्चिदानन्द भगवान॥

[९५७]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

शब्दोंके मिथ्याडम्बरसे नहीं रीझते हैं भगवान।
कला-कुशलता, नाम-वेषसे भी न कभी मिलते भगवान॥
सत्य अनन्य तीव्रतम इच्छासे ही मिलते हैं भगवान।
जाति-पाँति, इतिवृत्त, धर्म-कुल—नहीं देखते कुछ भगवान॥

[९५८]

(राग नट—ताल मूल)

भोग रहे हैं सुख-दुख सारा सदा हमारे प्रिय भगवान।
बैठे अंदर काल-कोठरीमें उसको निज मन्दिर मान॥
कभी नहीं वे जरा ऊबते, नहीं जताते कुछ अहसान।
व्यर्थ छेड़ते रहते हैं हम मूढ़-बुद्धिकी मिथ्या तान॥

[९५९]

(धुन लावणी—ताल कहरवा)

प्रियतम प्रभु ऐसे स्नेही हैं रहते सदा तुम्हारे पास।
हर स्थितिमें हर समय तुम्हारे निकट निरन्तर करते वास॥
तुम्हें छोड़कर जाना उनको नहीं सुहाता है पल एक।
'सकृत किया स्वीकार जिसे उसको न छोड़ना'—उनकी टेक॥
भले भूल वह जाये उनको, वे न कभी पाते हैं भूल।
रहते सदा हृदयमें, रखते उसे, छोड़ मर्यादा-कूल॥
देखो पास उन्हें नित अपने करते सदा मधुर मृदु हास।
नित्य निहाल रहो, नित उनके देखो अनुपम दिव्य विलास॥

[९६०]

(राग मालकोश—ताल तीन ताल)

तू भाइ म्हारो रे म्हारो।
तूँ म्हारो, तेरो सब म्हारो, जग सारो ही म्हारो॥

मनमैं सदा दूसरो समझै ऊपरसैं कह थाँरो।
म्हारो होता साँता भी सो रहै—म्हारैसैं न्यारो॥
एक बार जो कपट छोड़कर कहै 'नाथ मैं थारो।'
सो म्हारे सगलाँ पुतराँमें अधिक लाडलो म्हारो॥
सदा पातकी, सदा कुकरमी विषयाँमें मतवारो।
'मैं थारो' यूँ साचैं मनसें, कहताँ ही हो म्हारो॥
झटपट पुन्यवान सो होवै, पापाँसे छुटकारो।
म्हारो म्हारी गोद बिराजै, कदे न म्हाँसू न्यारो॥
तन-मन-वाणीसैं जो म्हारो, सो निस्चै ही म्हारो।
कदे न लाज्यों, कदे न लाजै नाँव-बिडद-जस म्हारो॥

——★——

श्रीमद्भगवद्गीताके विविध प्रसङ्ग

[९६१]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

[श्रीमद्भगवद्गीताके प्रथम अध्यायका पद्यानुवाद]

धर्मभूमि शुचि कुरूक्षेत्रमें युद्ध-कामनासे एकत्र।
संजय! कहो, किया क्या मेरे और पाण्डुपुत्रोंने तत्र॥ १॥
देख पाण्डवी सेनाको तब वहाँ सुसज्जित व्यूहाकार।
गुरू द्रोणके जा समीप बोले दुर्योधन निम्न प्रकार॥ २॥
'श्रीमन्! शिष्य धृष्टद्युम्नद्वारा सज्जित तव, व्यूहाकार।
गुरुवर! आप देखिये पांण्डव-सेनाको अब भली प्रकार॥ ३॥
इसमें भीमार्जुन-सम महाधनुर्धर युद्ध-कुशल अति शूर।
हैं युयुधान, विराट, महारथ द्रुपद अवनिपति बल भरपूर॥ ४॥
धृष्टकेतु, नृप चेकितान हैं, काशिराज बल-वीर्य-निधान।
पुरुजित्, कुन्तिभोज हैं, मानव-पुङ्गव शैब्य महा बलवान्॥ ५॥
युधामन्यु, विक्रान्त, उत्तमौजा हैं अतिशय बलकी खान।
द्रौपदिसुत, अभिमन्यु सुभद्रातनय—महारथ सभी महान्॥ ६॥
द्विजवर! अब मेरी सेनाके प्रमुख नायकोंके भी नाम।
परिचयके हित बता रहा हूँ, जान लीजिये आप तमाम॥ ७॥
आप, पितामह भीष्म, कर्ण, रण-विजयी कृपाचार्य मतिमान।
अश्वत्थामा, सोमदत्त-सुत भूरिश्रवा, विकर्ण सुजान॥ ८॥
मेरे लिये त्यक्त-जीवन हैं, अन्य बहुत-से वीर महान।
नाना-शस्त्र-सुसज्जित सारे युद्ध-विशारद नीति-निधान॥ ९॥
भीष्मपितामह-रक्षित अपना बल है अपर्याप्त, हो आप्त।
भीमसेनद्वारा अभिरक्षित भी है बल उनका पर्याप्त॥ १०॥

रणक्षेत्रमें अपने-अपने स्थानोंपर सुस्थित सब ओर।
रक्षा करें पितामहकी सब आप लगाकर पूरा जोर'॥ ११॥
तभी भीष्म कुरुवृद्ध प्रतापीने नृपको उपजाते हर्ष।
सिंहनाद कर उच्च स्वरसे फूँका शङ्ख परम दुर्धर्ष॥ १२॥
तब तो बजने लगे शङ्ख-भेरी-पणवानक-गोमुख घोर।
सहसा एक साथ छाया उनका अति तुमुल शब्द सब ओर॥ १३॥
श्वेत अश्वयुत रथ विचित्रमें स्थित माधव-अर्जुन अभिराम।
लगे बजाने दोनों अपने-अपने दिव्य शङ्ख अविराम॥ १४॥
हरिने पाञ्चजन्यको, ले अर्जुनने देवदत्त रण-धीर।
फूँका भीम भीमकर्माने शङ्ख महान् पौण्ड्र गम्भीर॥ १५॥
नृपति युधिष्ठिर कुन्तिपुत्रने फूँका शङ्ख अनन्तबिजय।
फूँके सहदेव-नकुलने मणिपुष्पक-सुघोष निर्भय॥ १६॥
श्रेष्ठ धनुर्धर काशिराज नृप, सु-महारथी शिखंडी वीर।
धृष्टद्युम्न, विराट नृपति, नित अपराजित सात्यकी सुधीर॥ १७॥
द्रुपद, द्रौपदीके पाँचों सुत, महारथी अभिमन्यु सुजान।
पृथ्वीपते! सभीने फूँके पृथक्-पृथक् निज शङ्ख महान॥ १८॥
शङ्खघोष वह कौरवदलके करके हृदय विदीर्ण सुघोर।
छाया लगा गुँजाने वह नभ-भूको तुमुल शब्द सब ओर॥ १९॥
देख व्यवस्थित कौरवदलको वीर कपिध्वजने, महिपाल!
शस्त्रपातके ठीक समयपर उठा लियां निज धनुष विशाल॥ २०॥
हृषीकेशसे कहे वचन यों—'अच्युत! मेरा रथ तत्काल।
ले जा खड़ा कीजिये दोनों दलके बीच अभी नँदलाल॥ २१॥
यहाँ उपस्थित युद्धार्थी जो योद्धा सज सब रणके साज।
हरि! उन सबको देखूँगा मैं, रणमें जिनसे लड़ना आज॥ २२॥
आये हैं जो दुर्मति दुर्योधनके हितकामी बलवान।
रणमें लड़नेको उद्यत, उनको मैं देखूँगा भगवान'॥ २३॥

अर्जुनके यों कहनेपर वे इन्द्रिय-स्वामी श्रीभगवन्त।
दोनों दलों बीच ले पहुँचे उत्तम रथको स्वयं तुरन्त॥ २४॥
जहाँ भीष्म-द्रोणादि वीर थे, जहाँ अन्य थे भूप अपार।
बोले प्रभु—'देखो अब इनको भली-भाँति तुम कुन्ति-कुमार'॥ २५॥
देखे वहाँ पार्थने पिता-पितामह स्थित आचार्य महान।
मामा, भाई, पुत्र-पौत्र, सब स्वजन तथा मित्रादि सुजान॥ २६॥
श्वशुर और सब सुहृदजनोंको देख उभय सेनामें पार्थ।
समझे, युद्धस्थित जितने हैं, सब अपने ही बन्धु यथार्थ॥ २७॥
हो आविष्ट परम करुणासे बोले वचन पार्थ सविषाद।
'कृष्ण! देख इन सब स्वजनोंको युद्धोत्सुक करते रणनाद॥ २८॥
शिथिल हुए जाते अँग मेरे, सूख रहा मुख हो अति-म्लान।
काँप रहा सारा शरीर, हो रहा तथा रोमाञ्च महान॥ २९॥
धनु गाण्डीव गिर रहा करसे, जलने लगी त्वचा अविराम।
खड़ा न रह सकता, मन मेरा हुआ भ्रमित-सा है घनश्याम॥ ३०॥
लक्षण भी विपरीत दीखते अब हे केशव! सभी प्रकार।
नहीं देखता मैं कुछ भी कल्याण, यहाँ स्वजनोंको मार॥ ३१॥
नहीं चाहता विजय, राज्य मैं, नहीं चाहता सुखसम्भार।
हमको राज्य, भोग, जीवनसे क्या मतलब गोविन्द उदार॥ ३२॥
जिनके लिये राज्य-भोगोंकी होती हृदय सुखोंकी चाह।
वे ही रणमें खड़े, छोड़कर प्राणोंकी धनकी परवाह॥ ३३॥
ताऊ, चाचे, पुत्र, पितामह—छोटे-बड़े, पूज्य आचार्य।
मामा, साले, श्वशुर, पौत्र, सम्बन्धी अन्य सभी, हे आर्य॥ ३४॥
मधुसूदन ये मारें मुझको, मैं न करूँगा इनपर घात।
राज्य मिले या त्रिभुवनका, फिर तुच्छ महीकी कैसी बात॥ ३५॥
अहो जनार्दन! होगा क्या हित इन सब बन्धु-जनोंको मार।
बध इन आततायियोंका भी देगा हमें पाप ही सार॥ ३६॥

अतः बन्धु, धृतराष्ट्र-सुतोंका वध करना न हमें उपयुक्त।
माधव! स्वजनोंके वधसे हम कैसे होंगे सुख-संयुक्त॥ ३७॥
लोभविवश ये भ्रष्टचित्त हो यद्यपि देख न पाते आप।
कुल-विनाश-कृत दोष और यह मित्र-द्रोह-जनित अति पाप॥ ३८॥
हमें जनार्दन! है पर इस कुलनाश-जनित पातकका ज्ञान।
तब फिर इससे बचनेका हम क्यों न विचार करें? भगवान्॥ ३९॥
कुलके क्षयसे सत्य-सनातन कुलधर्मोंका होता नाश।
धर्मनाशसे सारे कुलमें होता सहज अधर्म-विकास॥ ४०॥
हो जातीं अधर्मयुक्त कुलकी स्त्रियाँ सुदूषित कृष्ण महान।
वार्ष्णेय! वे जनतीं दूषित स्त्रियाँ वर्णसंकर सन्तान॥ ४१॥
कुलका कुलघातकका संकर करवाता नरकोंमें वास।
होता पतन पितृगणका भी पिण्ड-उदक होनेपर नाश॥ ४२॥
कुलघातकके वर्णसंकरी इन दोषोंके ही परिणाम।
जातिधर्म कुलधर्म सनातन हो जाते विनष्ट हे श्याम॥ ४३॥
सुनते हैं हम हो जाता है जिनके कुलधर्मोंका नाश।
होता अनियत दीर्घकालतक उनका निश्चय नरक-निवास॥ ४४॥
अहो! शोक! हम आज जा रहे निश्चय करने पाप महान।
स्वजनोंके वधको उद्यत, हो विवश राज्यसुख लोग अमान॥ ४५॥
मुझ अशस्त्र प्रतिकार-रहितको यदि वे रणमें डालें मार।
शस्त्र हाथ ले कौरव, तो होगा मेरा कल्याण अपार॥ ४६॥
यों कहकर अर्जुन रणमें हो शोकाकुल मन तज शर-चाप।
बैठ गये हटकर वे रथके पिछले भाग मध्य चुपचाप॥ ४७॥

[९६२]

(राग अडाणा—ताल त्रिताल)

उठो! कायरता छोड़ो बीर।
हृदय हिला दो शत्रु-पक्षका जूझो, रण रणधीर!॥

कूद पड़ो, बस धर्मयुद्धमें, लड़ो धर्मके काज।
मर जाओगे स्वर्ग मिलेगा, जयसे भूतल-राज॥
यही समय है—शौर्य-वीर्यका पूरा करो प्रकाश।
पापी-दलको मार भगा दो, करो पापका नाश॥

[९६३]

(राग जोगिया—ताल त्रिताल)

अपना धर्म देखकर भी तू इस अधीरताको मत धार।
धर्मयुद्ध सम और नहीं कुछ क्षत्रियका है जगमें सार॥
स्वयं-प्राप्त यह खुला हुआ है युद्ध-सुरूप स्वर्गका द्वार।
भाग्यवान क्षत्रिय ही इसको पाते हैं, हे पाण्डुकुमार॥
मर जानेसे स्वर्ग मिलेगा, जय होनेसे भूतल राज।
इससे निश्चय ही भारत! तू हो जा खड़ा युद्धको आज॥
विजय-पराजय, हानि-लाभ, सुख-दुःख सभीको जान समान।
फिर प्रवृत्त हो जा तू रणमें, पाप नहीं होगा मतिमान॥

[९६४]

(तर्ज लावनी दूसरी—ताल कहरवा)

जो तुम रणसे मुख मोड़ोगे, जो विषाद उर लाओगे।
तो क्षत्रियके परम धर्मसे, निश्चय ही गिर जाओगे॥
सुन-सुनकर कुवाच्य अरिदलके तुम अतिशय पछताओगे।
पुनः प्रकृतिवश शस्त्र उठाकर रणस्थलीमें आओगे॥
पर होगा अति दुःख और सहना होगा दुस्सह अपमान।
इससे, उठो इसी क्षण सत्वर धनुष-बाण लेकर मतिमान॥

[९६५]

(राग परज—ताल कहरवा)

विषमस्थलमें उपजा कैसे तुममें अर्जुन! यह व्यामोह।
जो अनार्य-सेवित, अस्वर्गद, है अकीर्तिकारी संदोह॥

नहीं तुम्हारे योग्य नपुंसकता यह, करो न तुम स्वीकार।
तुच्छ हृदयकी दुर्बलता तज, उठो, युद्ध कर अङ्गीकार॥

(गीता २।२-३)

× × × ×

अप्रमेय अविनाशी है यह हे भारत! जीवात्मा नित्य।
युद्ध करो, तुम जान सभी उसके देहोंको अथिर अनित्य॥
मरने और मारनेवाला आत्माको जो लेता मान।
नहीं मारता, मारा जाता यह, वे इससे हैं अनजान॥

(गीता २।१८-१९)

× × × ×

अपना धर्म देखकर भी मत होओ तुम कम्पित, हे पार्थ!
नहीं श्रेय कुछ भी क्षत्रियके लिये युद्धके सिवा यथार्थ॥
खुला तुम्हारे लिये वीरवर! स्वर्गद्वार यह अपने-आप।
सुख सौभाग्यवान् क्षत्रिय ही पाते ऐसा युद्ध अपाप॥
अगर करोगे नहीं कदाचित् तुम यह परम धर्म-संग्राम।
खो करके निज धर्म, सुयश, तुम लोगे पाप बटोर तमाम॥
तब फिर गायेंगे जगमें सब सदा तुम्हारी अमिट अकीर्ति।
सम्मानितके लिये मरणसे भी बढ़कर होती अपकीर्ति॥
महारथी मानेंगे तुमको भयवश हुए समर उपराम।
जिनमें हो बहुमान्य, उन्हींमें होगा तुच्छ तुम्हारा नाम॥
निन्दा शत्रु करेंगे तव सामर्थ्य शक्तिकी कुवचन बोल।
उससे बढ़कर होगा क्या फिर दुःख तुम्हारे लिये अतोल॥
मर जानेपर स्वर्ग मिलेगा, जीतोगे पाओगे राज।
उठो अतः कौन्तेय! युद्धका मनमें करके निश्चय आज॥
विजय-पराजय, लाभ-हानि, सुख-दुःख मानकर एक समान।
फिर रणमें प्रवृत्त होनेपर पाप न होगा रंचक मान॥

(गीता २।३१—३८)

× × × ×

तज असक्ति, योगस्थित होकर करो धनंजय कर्म विनीत।
हो समबुद्धि असिद्धि-सिद्धिमें फल समत्त्व ही योग पुनीत॥

(गीता २।४८)

[९६६]

(राग ईमन—ताल त्रिताल)

भारत ! अब ज्ञानखड्ग लो धार !
हृदय-स्थित अज्ञान-जनित संशयका करो सँहार॥
हो स्थित नित्य समत्व-योगमें, छोड़ो अन्य विचार।
उठो, उठो रणमें तत्पर हो, करो वीर व्यवहार॥

[९६७]

(राग लावनी—ताल कहरवा)

कर्मेन्द्रियाँ रोक जो तजता बाहर भोगोंका व्यवहार।
मनसे करता भोग मूढ़ सो कहलाता है मिथ्याचार॥

(गीता ३।६)

[९६८]

(राग परज—ताल कहरवा)

मुझमें चित्त जोड़ सब कर्मोंका कर मुझमें ही संन्यास।
युद्ध करो तुम, तजकर ममता, कामज्वर, भोगोंकी आस॥

(गीता ३।३०)

[९६९]

(राग तोड़ी—ताल मूल)

सुर-ऋषि-पितर-मनुज सब जीवोंको उनका हिस्सा देकर।
बचा हुआ जो खाता, वह हो पापमुक्त पाता ईश्वर॥
पर जो निजके लिये कमाता, बिना दिये ही है खाता।
वह अघ भोजी निश्चय ही यमदूतोंसे पीड़ा पाता॥

[९७०]

(राग विहाग—ताल त्रिताल)

पार्थ ! यह काम पापका खान ।
रागात्मक रजसे पैदा हो हर लेता सब ज्ञान ॥
यही मूल है सब पापोंका, इसको बैरी जान ।
प्रतिहत होकर यही क्रोध बन जाता अति बलवान ॥
कभी न भरता पेट भोगसे, इसकी भूख महान ।
आत्मपतनमें प्रबल-हेतु—इन दोनोंको पहचान ॥

[९७१]

(राग केदारा—ताल त्रिताल)

जाते वहीं कर्मयोगी हैं, सांख्य प्राप्त करते जो स्थान ।
वही देखता, देख रहा जो सांख्य, योगको एक समान ॥

(गीता ५ । ५)

[९७२]

(राग भिन्नषडज—ताल दीपचंदी)

ध्यानमें मन इस भाँति लगावे ।
शनैः-शनैः अभ्यास बढ़ाकर चितमें उपरति लावे ॥
धृति-गृहीत मतिके द्वारा फिर मन आत्मस्थ बनावे ।
करे नहीं किंचित् भी चिन्तन, आत्माको, बस ध्यावे ॥
निकल-निकल, यह, जहाँ-जहाँ, अस्थिर चञ्चल मन जावे ।
वहाँ-वहाँसे लौटा, फिर आत्मामें ही ले आवे ॥
निष्कल्मष प्रशान्तचित योगी शान्त-रजस् हो जावे ।
पारब्रह्म सच्चिदानन्दघनमें सो जाय समावे ॥

(गीता ६ । २५—२८)

[९७३]

(राग खमाज—ताल त्रिताल)

सब भूतोंमें स्थित आत्मा है, आत्मामें है भूत अशेष।
योगयुक्त सबमें समदर्शी योगीकी यह दृष्टि विशेष॥
जो मुझको सर्वत्र देखता, मुझमें देखे सारा दृश्य।
उसके लिये अदृश्य नहीं मैं, वह भी मुझसे नहीं अदृश्य॥
सब भूतोंमें स्थित मुझको जो भजता है रख एकीभाव।
वह योगी रह सब प्रकारसे मेरे हित करता बर्ताव॥
जो अपनी ही भाँति देखता है सबमें सुख-दुःख समान।
अर्जुन! वह माना जाता है योगी सबसे श्रेष्ठ महान्॥

(६।२९—३२)

[९७४]

(राग विहागरा—ताल कहरवा)

योगभ्रष्ट पुण्यलोकोंमें जाकर, रह चिर-सुख-सम्पन्न।
शुचि सन्मार्गारूढ़ धनीके घरमें फिर होता उत्पन्न॥
भक्त जनक-जननीकी शैशवसे ही शुभ संगति पाता।
शुद्ध वायुमण्डलमें पलकर साधनमय बनता जाता॥
ईश-कृपा औ साधन-बलसे जाग्रत् होता पूर्वाभ्यास।
ब्रह्मरूप बन जाता, फिर मिट जाता सब मिथ्या अध्यास॥

(६।४१-४२)

[९७५]

(राग नट—ताल त्रिताल)

जो संलग्न श्रेष्ठ साधनमें छोड़ जगत्के सारे स्वार्थ।
आठों पहर सावधानीसे साध रहा जो शुचि परमार्थ॥
साध्य-तत्त्वतक नहीं पहुँचकर पहले ही यदि मर जाता।
तो धीमान् योगियोंके घर जन्म सुदुर्लभ वह पाता॥

(गीता ६।४२)

[९७६]

(राग हमीर—ताल कहरवा)

मायाने है जिन लोगोंका हरण कर लिया सारा ज्ञान।
आश्रय ले वे आसुरपनका करते नित दुष्कर्म महान॥
कुत्सित-विषयभोग-रत रहनेमें ही बड़ी मानते शान।
ऐसे मूढ़ नराधम भजते नहीं कभी भी श्रीभगवान॥

(गीता ७। १५)

[९७७]

(राग ईमन—ताल कहरवा)

बहु-जन्मोंके अन्त जन्ममें जो मुझको भजता सज्ञान।
'सब कुछ वासुदेव है'—यों वह महापुरुष दुर्लभ मतिमान॥

(गीता ७। १९)

[९७८]

(राग पटदीप—ताल त्रिताल)

करता जो भूतोंकी पूजा वह भूतोंको ही पाता।
पितरोंका पूजक निश्चय ही पितृ-लोकमें है जाता॥
विधिपूर्वक देवोंका पूजक देवलोकको ही पाता।
भगवत्पूजक पुण्यवान भगवच्चरणोंमें ही जाता॥

(गीता ७। २१)

[९७९]

(राग मधुवंती—ताल त्रिताल)

मानव जिसका सदा स्मरण करता जीवनमें।
अन्तकालमें वही वस्तु रहती है मनमें॥
वही दीखती ऊपर-नीचे बाहर-भीतर।
उसी वस्तुको पाता निश्चय मानव मरकर॥
भरत अन्तमें दर्शन पाते हैं शिशु-मृगका।
इसीलिये पायेंगे ये शरीर फिर मृगका॥

इससे जो नर सर्वकाल भजता नर-हरिको।
अर्पितकर मन-मति निश्चय वह पाता हरिको॥

(गीता८। ६-७)

[९८०]

(राग खम्भावती—ताल त्रिताल)

जीवनभर जिन भाव-विचारोंमें—कर्मोंमें रहता व्यस्त।
मरण-कालमें वही भाव आते हैं मनमें चिर अभ्यस्त॥
अगला लोक-जन्म मिलता है, अन्तिम भावोंके अनुसार।
अतः करो जीवनभर प्रभुका चिन्तन, सेवन, कर्म, विचार॥

(गीता८। ६-७)

[९८१]

(राग परज—ताल कहरवा)

इससे स्मरण करो तुम मेरा सभी समय, फिर करो, सुयुद्ध।
अर्पित कर मन-बुद्धि, मुझे निश्चय ही पाओगे हो शुद्ध॥

(गीता ८। ७)

[९८२]

(राग गौड़सारंग—ताल त्रिताल)

मन निरुद्धकर हृदय-देशमें, रोक सभी इन्द्रियके द्वार।
प्राण मूर्ध्न्यमें स्थापन करके, योग-धारणाको जो धार॥
मम स्मृतियुत एकाक्षर ओऽम् ब्रह्मका जो करता उच्चार।
देह त्यागकर जानेपर वह पाता परमा गती उदार॥

(गीता ८। १२-१३)

[९८३]

(राग वसंत—ताल त्रिताल)

नरकोंमें जा पापी सहते नरक-यन्त्रणा आठों याम।
पितृ-याणसे जा, पाते जो भोग स्वर्गके दिव्य ललाम॥

करके भोग समाप्त, लौटते, भर मनमें वासना तमाम।
नहीं लौटते, देवयानसे जा पहुँचे जो प्रभुके धाम॥

(गीता ८।१६)

[९८४]

(राग सोहनी—ताल रूपक)

शुभ्र ज्योतिर्मय सुपथसे ब्रह्मविद् है जा रहा।
मार्गके सब देवगणसे वह समादर पा रहा॥
अग्नि, दिन, शुभ पक्ष उज्ज्वल, उत्तरायणके अमर।
साथ ले जाते उसे निज क्षेत्रकी शुचि अवधिपर॥
सौंपकर अगले अमरको वे वहाँ अति मानसे।
लौटते उस क्षेत्रमें रहते जहाँ अभिमानसे॥
इस तरह क्रमसे अतिक्रम कर प्रकृति-विस्तारका।
तोड़कर सम्बन्ध सब मायिक अनित संसारका॥
पहुँच प्रभुके नित्य दिव्य स्वधाममें योगी वही।
प्राप्त करके ब्रह्मको फिर लौटता जगमें नहीं॥

(गीता ८।२४, २६-२७)

[९८५]

(राग हिंदोल—ताल रूपक)

पुण्यवान सकाम योगी स्वर्गपथपर जा रहा।
मार्गके सब देवताओंसे समादर पा रहा॥
धूम-रजनी पक्ष श्यामल, अयन दक्षिणके अगर।
क्षेत्र-अभिमानी उसे ले साथ जाते सीमपर॥
सौंप देते अमर अगलेको उसे क्रमसे सही।
चान्द्रमस सुज्योतितक यों पहुँचता योगी वही॥

स्वर्गमें निज शुभ क्रियाओंके फलोंको भोगकर।
लौटता मरलोकमें फिर मर्त्य-जीवन लाभ कर॥

(गीता ८। २५)

[९८६]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

मैं ही गति, भर्ता, प्रभु, साक्षी शरण, निवास, सुहृद मैं ही।
मैं उत्पत्ति, प्रलय, स्थान, निधान नित्य बीज मैं ही॥
मैं ही मेघ रोकता, तपता, मैं ही बरसाता हूँ वृष्टि।
मैं ही अमृत, मृत्यु भी मैं ही, सदसत् मैं ही सारी सृष्टि॥

(गीता ९। १८-१९)

[९८७]

(राग शंकरा—ताल मूल)

वैदिक यज्ञकर्म करते जो पुण्य-पुरुष मनमें रख काम।
वे उस पुण्य कर्मके फलसे जाते हैं सुरेन्द्रके धाम॥
वहाँ स्वर्गके भोग भोगते जबतक पुण्य न होते शेष।
पुण्य क्षीण होते ही गिरकर आते पुनः मृत्युके देश॥

(गीता ९। २०-२१)

[९८८]

(राग आसावरी—ताल त्रिताल)

कुन्तिपुत्र! जो अन्य देवताओंको भजते श्रद्धायुक्त।
वे भी विधिसे विरहित पूजा मेरी ही करते हैं भक्त॥
मैं ही सब यज्ञोंका भोक्ता, मैं ही एकमात्र स्वामी।
मुझे तत्त्वसे नहीं जानते, होते वही अधोगामी॥

(गीता ९। २३-२४)

****

[९८९]

(राग काफी—ताल त्रिताल)

कर दैवी प्रकृतिका आश्रय जो जन मुझको लेते जान,
सबके आदि सनातन कारण अक्षरको लेते पहचान।
वे महान् आत्मा मुझको ही नित्य-निरन्तर भजते पार्थ !
अनन्य मनसे शुद्ध सरल शुचि निश्छल, हो करके निःस्वार्थ ॥

(गीता १०।७-८)

[९९०]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

जिनसे सब प्रकारसे रक्षा-दीक्षा पाते हैं यजमान।
उनमें मुख्य बृहस्पति मैं हूँ, सुरगुरु लोकोत्तर-विद्वान ॥
जितने सेनापति हैं जगमें, नीति-निपुण, रण-रीति-निधान।
उनमें शंकर-नन्दन मैं हूँ, स्कन्द महामति शूर-प्रधान ॥
जितने सरस नदी-नद-सर-निर्झर हैं जगमें जलके स्थान।
उनमें मैं जलनिधि गभीर हूँ सागर निरुपम अतुल महान ॥

(गीता १०।२४)

[९९१]

(राग विलास—ताल त्रिताल)

हूँ महर्षियोंमें भृगु मैं ही,
वाणीमें हूँ मैं ओंकार।
यज्ञोंमें जप-यज्ञ, स्थावरों—
में हूँ मैं हिमवान सुठार ॥

(गीता १०।२५)

[९९२]

(राग बिलावल—ताल त्रिताल)

हरिकी दिव्य विभूति अमित हैं, है अनन्त उनका विस्तार।
बता रहे हैं उनमेंसे कुछ जो प्रधान हैं सबमें सार॥
हूँ नारद देवर्षिवर्गमें, वृक्षोंमें मैं हूँ पीपल।
हूँ गन्धर्व चित्ररथ मैं ही, सिद्धोंमें मुनि सिद्ध कपिल॥

(गीता १० । २६)

[९९३]

(राग भैरव—ताल त्रिताल)

नागोंमें मैं शेषनाग हूँ, जलचरगणमें वरुण महान।
पितरोंमें अर्यमा, नियन्ताओंमें मैं हूँ यम बलवान॥
सबका तेज, शक्ति, जीवन मैं, मैं ही हूँ सबका आधार।
सबमें ओतप्रोत सदा मैं, अखिल विश्व मेरा विस्तार॥

(गीता १० । २९,३९)

[९९४]

(राग देशकार—ताल त्रिताल)

ऐसी कोई वस्तु नहीं है, ऐसा कोई स्थान नहीं।
ऐसा कोई भाव नहीं है, जिसमें श्रीभगवान नहीं॥
सबमें सदा पूर्ण रहते वे, उनसे कुछ भी भिन्न नहीं।
जानकार-जन इस रहस्यका कभी न होता खिन्न कहीं॥
जो विशेष श्रीयुत, विभूतियुत, बलयुत होते हैं सद्भाव।
हरिके तेज अंशसे सम्भव उनमें हरिका खास प्रभाव॥
वर्णन कर विभूतियोंका फिर, कहने लगे स्वयं भगवान।
नक्षत्रोंमें शशि मैं ही हूँ, ज्योतिपुञ्जमें सूर्य महान॥

(१० । ४१,४२,२१)

[९९५]

(राग परज—ताल कहरवा)

विश्व चराचर निकला मुझसे, मुझसे व्याप्त सकल संसार।
मेरे सिवा नहीं कुछ भी, सब है मेरा लीला-विस्तार॥
मैं हूँ सूत्रधार, तुम हो मेरे हाथोंकी कठपुतली।
नाचो नाच, नचावे जैसे मेरे करकी यह सुतली॥
इसी बुद्धिसे, करके सब कर्मोंका मुझमें ही संन्यास।
छोड़ो राज-विभवकी ममता, तजो असत्‌की मिथ्या आस॥
तजो कामना भोगोंकी कर फलासक्तिका पूरा त्याग।
विगतज्वर हो, स्व-कर्तव्यका पालन करो सहित अनुराग॥
अहंकार मत आने दो, लो धनुष, करो अरिदल-संहार।
समराङ्गणमें रक्त-दानकर पूजो मुझको, पाण्डुकुमार !॥

[९९६]

(राग परज—ताल कहरवा)

जिससे जीव सकल निकले हैं, जो सबमें रहता है व्याप्त।
मनुज पूज उसको स्वकर्मसे होता परम सिद्धिको प्राप्त॥

(गीता।१८।४६)

हो मच्चित्त, तार देगी सब दुर्गोंसे मम कृपा अनन्त।
नहीं सुनोगे अहंकारवश, तो होओगे नष्ट तुरन्त॥
'नहीं करूँगा युद्ध'—अगर तुम अहंकारवश लोगे मान।
मिथ्या यह मान्यता, तुम्हें रणमें जोड़ेगी प्रकृति महान॥

(गीता १८।५८-५९)

जहाँ कृष्ण योगेश्वर प्रभु हों, जहाँ धनुर्धारी हों पार्थ।
मेरे मतसे, वहाँ सदा श्री, विजय, भूति, ध्रुव नीति यथार्थ॥

(गीता १८।७८)

[११७]

श्रीमद्भगवद्गीताकी आरती

जय भगवद्गीते, जय भगवद्गीते।
हरि-हिय-कमल-विहारिणि सुन्दर सुपुनीते ॥
कर्म-सुमर्म-प्रकाशिनि कामासक्तिहरा।
तत्त्वज्ञान-विकाशिनि विद्या ब्रह्म परा ॥ जय०
निश्चल-भक्ति-विधायिनि निर्मल मलहारी।
शरण-रहस्य-प्रदायिनि सब बिधि सुखकारी ॥ जय०
राग-द्वेष-विदारिणि कारिणि मोद सदा।
भव-भय-हारिणि तारिणि परमानन्दप्रदा ॥ जय०
आसुर-भाव-विनाशिनि नाशिनि तम-रजनी।
दैवी सद्गुणदायिनि हरि-रसिका सजनी ॥ जय०
समता त्याग सिखावनि, हरि-मुखकी बानी।
सकल शास्त्रकी स्वामिनि, श्रुतियोंकी रानी ॥ जय०
दया-सुधा बरसावनि मातु! कृपा कीजै।
हरि-पद-प्रेम दान कर अपनो कर लीजै ॥ जय०

═══ ★ ═══

श्रीभगवन्नाम-महिमा

[११८]

(राग जोगिया—ताल मूल)

वन्दन नित्य हृदयसे 'भगवन्नाम' मोह-नाशक सुख-धाम।
परमहंस-ऋषि-मुनि-तापसजन सिद्ध-योगियोंका विश्राम॥
भक्तोंके—प्रेमीजन-मनके जीवनका शुचि परमाधार।
पाप-ताप-नाशक जन-जनका परम पुण्यमय शान्ताकार॥
सभी साधनोंका परमाश्रय सर्व-सिद्धिदायक शुभ-मूल।
स्पर्शमात्रसे जल जाते सब अघ जैसे पावकसे तूल॥
पिता-पितामह-माता-धाता, भर्ता, त्राता, गुरु, आचार्य।
जो जैसे भजता, उसका बन वैसे ही करता सब कार्य॥
करता सिद्ध सहज ही सत्वर जनके धर्म, काम, शुचि अर्थ।
देता मोक्ष, सिद्ध करता फिर प्रेम दिव्य पञ्चम पुरुषार्थ॥

[११९]

(राग वृन्दावनी सारंग—ताल मूल)

जय आनन्द, अमृत, अज, अव्यय, आदि, अनादि अतुल अभिराम।
जय अशोक, अघ-हर, अखिलेश्वर, योगी-मुनि-मानस-विश्राम॥
जय कलिमल-मर्दन, करुणामय, कोसलपति, गुण-रूप-निधान।
जय माधव, मधुसूदन, मोहन, मुरलीधर, मृदु-हृदय, महान॥
जय गोविन्द, गोपिका-वल्लभ, गो-पति, गो-सेवक गो-पाल।
जय गरुड़ध्वज, विष्णु चतुर्भुज, श्री-लक्ष्मीपति वक्ष विशाल॥
जय भय-भयदायक, भव-सागर-तारक, भक्त-भक्त श्रीमान।
जय मुकुन्द, मन्मथ-मन-मथ, मुर-रिपु, मंजुल-वपु, मङ्गल-खान॥

जय पुरुषोत्तम, प्रकृतिरमण, प्रभु, पावन-पावन परमानन्द।
जय फणि-फण-फण-नृत्य करण, फणि-भूषण, फणि-शय्या, सुख-कन्द॥
जय रघुनाथ, रमापति, रघुवर, रावणारि राघव, श्रीराम।
जय कंसारि, कमल-दल-लोचन केशि-निषूदन, कृष्ण, ललाम॥
जय राधा, राधामाधव रस, रसनिधि, रसास्वाद-संलग्न।
जय नटवर, नागर, नँद-नन्दन, नव-नव-नृत्यानन्द-निमग्न॥
जय शंकर, शिव, आशुतोष, हर, महादेव, सब मङ्गल-भूप।
जय संहारक, रुद्र, भयानक, मुण्डमालधारी, तम-रूप॥
जय मृड, गंगाधर गौरीपति, गणपति-पिता, शर्व रिपु-काम।
जय भुजङ्ग-भूषण, शशिशेखर, नीलकण्ठ, भव, शोभाधाम॥
जय काली, लक्ष्मी, सरस्वती, राधा, सीता, श्री, ईशानि।
जय दुर्गा, तारा, परमेश्वरि, विद्या, प्रज्ञा परमेशानि॥
जय आदित्य, भुवन-भास्कर, घृणि, तमहर, पातकहर, द्युतिमान।
जय विघ्नेश, विघ्ननाशक, गण-ईश, सिद्धिदायक, भगवान॥
जय प्रकाशमय अग्नि, इन्द्र, नर, नारायण, पर आत्माराम।
जय सर्वेश, सर्व-गुणनिधि, विधि, सर्वातीत, सर्वमय श्याम॥
लीला-गुण-रस-तत्त्व प्रकाशक प्रभुके मंगल-नाम अनन्त।
जयति जयति जय नाम नित्य नव मधुर नित्य निर्गुण-गुणवन्त॥

[१०००]

(श्रीभगवन्नामाष्टक)

मधुरन महँ सब तें मधुर, सुभ महँ अति सुभ धाम।
पावन महँ पावन परम, केवल हरि को नाम॥
ब्रह्म तें तृणतक सकल जग माया को काम।
सत्य सत्य पुनि सत्य जग, केवल हरि को नाम॥
मात-पिता, गुरु-बन्धु सो, सब बिधि प्रानाराम।
जो सिखवै सुमिरन सदा, केवल हरि को नाम॥

स्वासनको विश्वास नहिं कब ह्वै जायँ बिराम।
प्रथमहिं ते कीर्तन करो, केवल हरि को नाम॥
बसहिं सदा तेहि स्थान महँ श्रीहरि पूरन-काम।
हरि-जन नित जहँ गावहीं, केवल हरि को नाम॥
अहो दुःख अति दुःख यहि परम दुःख दुःख-ठाम।
काँच-हेतु भूल्यो रतन, केवल हरि को नाम॥
भरो श्रवन महँ, जपो नित, श्रीहरि-नाम ललाम।
गावो गावो नित्य प्रति, केवल हरि को नाम॥
तृन-सम कर सब विश्व कहँ, राजत सब को स्याम।
चिदानंदमय, शुद्ध-घन, केवल हरि को नाम॥

[१००१]

(राग जंगला)

राम राम राम राम राम राम राम।
भज मन प्यारे सीताराम॥

संतोंके जीवन ध्रुव-तारे, भक्तोंके प्राणोंसे प्यारे।
विश्वम्भर, सब जग रखवारे, सब बिधि पूरनकाम॥
राम राम० ॥

अजामील-दुःख टारनहारे, गज-गनिका के तारनहारे।
द्रुपद-सुता भय-बारन-हारे, सुखमय मंगलधाम॥
राम राम० ॥

अनिल-अनल-जल-रबि-ससि-तारे, पृथ्वी-गगन, गंध-रस-सारे।
तुझ सरिता के सब फौवारे, तुम सबके विश्राम॥
राम-राम० ॥

तुम पर धन-जन, तन-मन बारे, तुझ प्रेमामृतमद-मतवारे।
धन्य धन्य! ते जग-उजियारे, जिनके मुख यह नाम॥
राम राम० ॥

[१००२]

(राग बिहाग)

राम राम राम राम राम राम राम
राम राम राम राम राम राम राम।
जगविश्राम! मंगलधाम! पूरणकाम! सुन्दर नाम॥
योग-जप-तप-व्रत नियम-यम, यज्ञ-दान अपार।
राम-सम नहिं एक साधन, राम सब आधार॥
सब मिल कहो जय जय राम॥ राम०॥
राम गुरु, पितु-मातु रामहि, राम सुहृद उदार।
राम स्वामी सखा रामहि, राम प्रिय परिवार॥
सब मिल कहो जय जय राम॥ राम०॥
राम जीवन, राम तन-मन, राम धन-जन दार।
राम सुत, सुख-साज रामहिं, राम प्राणाधार।
सब मिल कहो जय जय राम॥ राम०॥
राम राग, बिराग रामहि, राम स्नेहागार।
राम प्रेमद, राम प्रेमिक, प्रेम-पारावार॥
सब मिल कहो जय जय राम॥ राम०॥
राम बिधि, शिव राम, पालक विष्णु विश्वाधार।
राममय जग, राम जगमय, रामही विस्तार॥
सब मिल कहो जय जय राम॥ राम०॥

[१००३]

(राग ईमन—ताल त्रिताल)

नारायण शुभ नाम दिव्य है मङ्गलमय कल्याणाऽऽधार।
आर्ति-विपत्ति-ताप-अघ-तम-हर दिव्य सुख-सुधा-पारावार॥
हो यदि कहीं, किसी भी कारण, शुभ नारायण नामोच्चार।
हरि-पार्षद आयें, हो भीत भगें यम-दूत भीषणाकार॥

नारायण शुभ नाम दीन-जन-आश्रय मधुमय मोक्ष-द्वार।
भुक्ति-मुक्ति-शुचि-शान्ति नित्य पर-धाम-सुखदायक सहज उदार॥
भाव-कुभाव-अनख, आतुरता-भय-संकेत-हास-मनुहार।
किसी हेतु 'नारायण' कहनेपर हो संकटसे उद्धार॥

[१००४]

(राग तिलककामोद ताल कहरवा)

करतलसों ताली देत, राम मुख बोली।
बस जली तुरत पातक-पुञ्जोंकी होली॥

[१००५]

(राग गारा)

मुखसों कहत राम-नाम पंथ चलत जोई।
पग-पग पर पावत नर जग्य फलहि सोई॥

[१००६]

(राग आसावरी—ताल रूपक)

साधन नाम-सम नहिं आन।
जपत सिव-सनकादि, सारद-नारदादि सुजान॥
नाम के बल मिटत भीषन असुभ भाग्य-बिधान।
नाम-बल मानव लहत सुख सहज मन-अनुमान॥
नाम टेरत टरत दारुन बिपति, सोक महान।
आर्त करि, नर-नारि, ध्रुव सब रहे सुचि सहिदान॥
नाम के परताप तें जल पर तरे पाषान।
नाम-बल सागर उलाँघ्यो सहज ही हनुमान॥
नाम-बल संभव सकल जे कछु असंभव जान।
धन्य ते नर, रहत जिनके नाम-रट की बान॥
पाप-पुंज प्रजारिबे-हित प्रबल पावक-खान।
होत छिन महँ छार, निकसत नाम जान-अजान॥

नाम-सुरसरि में निरंतर करत जे जन न्हान।
मिटत तीनों ताप मुख नहिं होत कबहुँ मलान॥
नाम-आश्रित जनन के मन बसत नित भगवान।
जरत खरत कु-वासना सब तुरत लज्जा-मान॥
नाम जीवन, नाम अमरित, नाम सुख को थान।
नाम-रत जे नाम-पर ते पुरुष अति मतिमान॥
नाम नित आनंद-निरझर, अति पुनीत पुरान।
मुक्त सत्वर होत जे जन करत सादर पान॥
नाम जपत सुसिद्ध जोगी बनत समरथवान।
नाम तें उपजत सु-भगति, बिराग सुभ बलवान॥
नाम के परताप दीखत प्रकृति-दीप बुझान।
नाम-बल ऊगत प्रभामय भानु तत्त्व-ज्ञान॥
नाम की महिमा अमित, को सकै करि गुन-गान।
राम तें बड़ नाम, जेहि बल बिकत श्रीभगवान॥

[१००७]

(राग आसावरी)

भली है राम-नाम की ओट।
जिन्ह लीन्हीं तिनके मस्तक तें पड़ी पाप की पोट॥
राम-नाम सुमिरन जिन्ह कीन्हो लगी न जम की चोट।
अन्तःकरन भयो अति निरमल, रही तनिक नहिं खोट॥
राम-नाम लीन्हें तें जर गइ माया-ममता-मोट।
राम-नाम तें मिले राम, जग रह गयो फोकट-फोट॥

[१००८]

(होरी काफी—ताल दीपचन्दी)

भूल जग के विषयन कों, जप मन हरि को नाम॥
दीनबंधु हरि करुना-सागर, पतितन के विश्राम।

आपद-अंधकार महँ श्रीहरि पूरन-चंद्र ललाम ॥
पाप-ताप सब मिटैं नाम तें, नास होहिं सब काम।
जम के दूत भयातुर भागैं, सुनत नाम सुख-धाम ॥
भाग्यवान जे जपत निरंतर नाम सदा निष्काम।
निरख सुखी सत्वर हों मूरति हरि की जग-अभिराम ॥
भाग्यहीन जिन्ह के मन-मुख महँ बसत न हरिको नाम।
नरक-रूप जग जीवन तिन्ह को भूमि-भार अघ-धाम ॥

[१००९]

(राग भैरवी—ताल झपताल)

कर मन हरि को ध्यान, राम-गुन गाइये।
प्रेम-मगन सब देह सुरति बिसराइये ॥
हरि-संकीर्तन करत अश्रुधारा बहै।
गदगद होवे कंठ, परम सुख सो लहै ॥
पुलकित तनु हरि-प्रेम हृदय जो नाचहीं।
सुर-मुनि ताकी अनुपम गति नित जाचहीं ॥
नाम लेत मुख हँसत कबहुँ कर रुदनहीं।
ताको हिय नित करहिं दयामय सदनहीं ॥

[१०१०]

(राग पीलू बरवा—ताल धुमाली)

बन्धुगणो ! मिल कहो प्रेमसे
'यदुपति व्रजपति श्यामा-श्याम।'
मुदित चित्तसे घोष करो पुनि—
'पतीतपावन राधेश्याम ॥'
जिह्वा-जीवन सफल करो कह—
जय यदु-नन्दन, जय घनश्याम।'

हृदय खोल बोलो, मत चूको—
'रुक्मिणि-वल्लभ श्यामा-श्याम ॥'
नव-नीरद-तनु, गौर मनोहर,
'जय श्रीमाधव, जय बलराम।'
उभय सखा मोहनके प्यारे—
'जय श्रीदामा, जयति सुदाम ॥'
परमभक्त निष्काम-शिरोमणि—
'उद्धव-अर्जुन शोभा-धाम।'
प्रेम-भक्ति-रस-लीन निरन्तर
'विदुर, विदुर-गृहिणी अभिराम ॥'
अति उमंगसे बोलो संतत—
'यदुपति व्रजपति श्यामा-श्याम।'
मुक्तकंठसे सदा पुकारो—
'पतीतपावन राधेश्याम ॥'

[१०११]

(राग पीलू बरवा)

बन्धुगणो! मिल कहो प्रेमसे—
'रघुपति राघव राजाराम।'
मुदित चित्तसे घोष करो पुनि—
'पतीतपावन सीताराम ॥'
जिह्वा-जीवन सफल करो कह—
'जय रघुनन्दन, जय सियाराम।'
हृदय खोल बोलो, मत चूको—
'जानकिवल्लभ सीताराम ॥'
गौर रुचिर, नव घनश्याम छबि,
'जय लक्ष्मण, जय जय श्रीराम।'

अनुगत परम अनुज रघुबरके—
'भरत-सत्रुहन शोभा-धाम ।।'
उभय सखा राघवके प्यारे—
'कपिपति, लंकापति अभिराम ।'
परम भक्त निष्काम-शिरोमणि
'जय श्रीमारुति पूरण-काम ।।'
अति उमंगसे बोलो संतत—
'रघुपति राघव राजाराम ।'
मुक्तकंठ हो सदा पुकारो—
'पतीतपावन सीताराम ।।'

[१०१२]

(राग भैरवी—ताल दादरा)

राम राम गाओ संतो, राम राम गाओ ।
राम-नाम गाइ-गाइ रामको रिझाओ ।।
रामहिको नाम जपो, रामहिको ध्याओ ।
राम राम राम कहत प्रमुदित ह्वै जाओ ।।
राम राम सुनि-सुनाइ हिय अति हुलसाओ ।
राम राम राम रटत सब बिधि सुख पाओ ।।
राम-नाम-मद्य पिओ, विषय-मद भुलाओ ।
राम-सु-रस पीय-पीय तन-सुधि बिसराओ ।।
राम आदि, मध्य राम, राम अंत पाओ ।
राम अखिल जगतरूप राममें समाओ ।।

[१०१३]

(राग भैरवी—ताल दादरा)

राम राम राम भजो, राम भजो, भाई ।
राम-भजन-हीन जनम सदा दुखदाई ।।

अति दुरलभ मनुज-देह सहजहीमें पाई।
मूरख रह्यो राम भूल बिषयन मन लाई॥
बालकपन दुख अनेक भोगत ही बिताई।
स्त्री-सुत-धनकी अपार चिंता तरुनाई॥
रात-दिवस पसु की ज्यों इत-रह्यो धाई।
तृसना की बेलि बढ़ी पाप-बारि पाई॥
बात-पित्त-कफहु बढ्यो, दुखद जरा आई।
इंद्रिन की शक्ति घटी, सिर धुनि पछिताई॥
इतनेहि में कठिन काल घेरि लियो आई।
मृत्यु निकट देखि-देखि अति ही भय पाई॥
सोच करत मन-ही-मन अतिसै पछिताई।
हाय मैं न भज्यो राम, कहा कर्‌यो माई॥
मृत्यु प्रान-हरन करत कुटुँब तें छुड़ाई।
महादुःख रह्यो छाय, बिफल सब उपाई॥
पापन के फल-स्वरूप बुरी जोनि पाई।
दुःख-भोग करत पुनि नरकन महँ जाई॥
बार-बार जनम-मृत्यु, ब्याधि अरु बुढ़ाई।
झेलत अति कठिन कष्ट, शांति नाँहि पाई॥
यहि विधि भव-दुख अपार बरने नहिं जाई।
भव-भेषज राम-नाम, श्रुति-पुरान गाई॥
राम-नाम जपत त्रिबिध ताप जग-नसाई।
राम-नाम मँगल-करन सब बिधि सुखदाई॥
प्रेम-मगन मन तें सकल कामना बिहाई।
जोइ जपत राम-नाम सोइ मुकति पाई॥

[१०१४]

(राग बिहाग—ताल दादरा)

प्रेम-मुदित मन से कहो राम राम राम।
श्री राम राम राम, श्री राम राम राम॥
पाप कटैं, दुःख मिटैं, लेत राम-नाम।
भव-समुद्र सुखद नाव एक राम-नाम॥
परम सांति-सुख-निधान नित्य राम-नाम।
निराधार को अधार एक राम-नाम॥
परम गोप्य, परम इष्ट मंत्र राम-नाम।
संत-हृदय सदा बसत एक राम-नाम॥
महादेव सतत जपत दिव्य राम-नाम।
कासि मरत मुक्त करत कहत राम-नाम॥
माता-पिता, बंधु-सखा, सबहि राम-नाम।
भक्त-जनन-जीवन-धन एक राम-नाम॥

[१०१५]

(राग आसावरी—तीन ताल)

भजौ नित राधा नाम उदार।
जाहि श्याम नित रटत रहत हिय भरि उल्लास अपार॥
चौदह भुवन-लोकत्रय-स्वामी अखिल जगत-आधार।
सोइ नित जाके हाथ बिकानो, करत रहत मनुहार॥
जाके दरस हेतु मुनि तरसत जानि सार-कौ-सार।
सुमिरौ सोइ राधा-पद-पंकज निसि-दिन बारंबार॥

[१०१६]

(होरी काफी—ताल दीपचन्दी)

और सब भूल भले ही, श्रीहरिनाम न भूल॥
श्रीहरिनाम सुधामय सब के हित, सब के अनुकूल।
श्रीहरिनाम-भजन तें पहुँचत भव-सागर पर-कूल॥

रोग, सोक, संताप, पाप सब, जैसे सूखी तूल।
भगवन्नाम प्रबल पावक तें जरैं सकल जड़-मूल॥
जिन्ह हरिनाम-भजन नहिं कीन्हों जीवन तिन को धूल।
भक्ति रसाल मिलै नहिं कबहूँ, बोये विषय-बबूल॥
श्रीहरिनाम भयो जिनके मन जग-जीवन को मूल;
तिन्ह को धन्य जगत महँ जीवन पातक-पथ-प्रतिकूल॥

[१०१७]

(राग सोहनी)

चाहता जो परम सुख तू, जाप कर हरिनामका।
परम पावन, परम सुन्दर, परम मङ्गलधामका॥
लिया जिसने है कभी हरि-नाम भय-भ्रम-भूलसे।
तर गया वह भी तुरत, बन्धन कटे जड़-मूलसे॥
हैं सभी पातक पुराने घास सूखेके समान।
भस्म करनेको उन्हें हरिनाम है पावक महान॥
सूर्य उगते ही अँधेरा नाश होता है यथा।
सभी अघ हैं नष्ट होते नामकी स्मृतिसे तथा॥
जाप करते जो चतुर नर सावधानीसे सदा।
वे न बँधते भूलकर यम-पाश दारुणमें कदा॥
बात करते, काम करते, बैठते-उठते समय।
राह चलते नाम लेते बिचरते हैं वे अभय॥
साथ मिलकर प्रेमसे हरिनाम करते गान जो।
मुक्त होते मोहसे कर प्रेम-अमृत पान सो॥

[१०१८]

(राग श्रीराग विलम्बित (मारवाड़ी)—ताल—तीन ताल)

बिनती सुण म्हाँरी, सुखकारी हरिके नामनैं॥
भटकत फिर्‌यो जूण चौरासी लाख महादुखदाई।
बिन कारण कर दया नाथ फिर मिनख-देह बकसाई॥

गरभ-मायँ माताके आकर पाया दुःख अनेक।
अरजी करी प्रभूसे—बाहर काढो, राखो टेक॥
करी प्रतिग्या गरभ मायँ मैं सुमरण करस्यूँ थारो।
नहीं लगाऊँ मन विषयाँमैं प्रभुजी मनै उबारो॥
जनम लेय जगमायँ चित्तनै विषयाँ मायँ लगायो।
जनम-मरण-दुःख-हरण रामको पावन नाम भुलायो॥
खोई उमर व्रथा भोगाँकै सुख-सुपने कै माई।
सुख नहिं मिल्यौ, बढ्यौ दुख दिन-दिन, रह्यो सोग मन छाई॥
मृग-तृस्नाकी धरतीमैं जो समझैं भ्रमसैं पाणी।
उसकी प्यास नहीं मिटणैकी, निश्चै लीज्यो जाणी॥
यूँ इण संसारी भोगाँमैं नहीं कदे सुख पायो।
दुःखरूप सुख देवै किस बिध मूरख मन भरमायो॥
कर बिचार, मन हटा विषयसैं प्रभु चरणाँमैं ल्याओ।
करो कामना-त्याग, हरीको नाम प्रेमसैं गाओ॥
सुख-दुखमें संतोष करो अब, सगली इच्छा छोड़ो।
'मैं' और 'मेरो' त्याग हरीके रूप मायँ चित जोड़ो॥
मिलै सांति, दुख कदे न व्यापै, आवै आनँद भारी।
प्रेम-मगन हो नाम हरीको जपो सदा सुख-कारी॥

[१०१९]

(राग आसावरी—ताल धुमाली)

नाचत गौर प्रेम अधीर।
भूलि सुधि हरिनाम टेरत, बहत नैननि नीर॥
पान करि सुचि प्रेम-अमृत, मत्त पुलकित अंग।
भगत गन नाचत सकल मिलि बजत ताल मृदंग॥
परम पावन नामकी धुनि, गूँजती आकास।
विपुल अघ संसार के पल माहिं होत विनास॥

[१०२०]

(राग आसावरी—ताल धुमाली)

मेरे एक राम-नाम आधार।
ढूँढ थक्यो पर मिल्यो न दूजो, भीर परेको यार॥
देखे-सुने अनेक महीपति, पंडित, साहूकार।
जद्यपि नीति-धरम-धन-संयुत, नहिं अस परम उदार॥
मात-पिता, भ्राता, नारी, सुत, सेवक बंधु अपार।
बिपद-काल महँ कोउ न संगी, स्वारथमय संसार॥
करि करुना दयालु गुरु दीन्हों, राम-नाम सुख-सार।
दुस्तर भव-सागर महँ अटक्यो बेरो उतर्‌यो पार॥

[१०२१]

(राग काफी—ताल दीपचंदी)

जीभलड़ीने चोखी बाण पड़ी।
रटती रहै नाम निसदिन अब भूलै न पलक-घड़ी॥
कनै न आवै थोथी चरचा देखै परै खड़ी।
बरस रही इमरत-रस-धारा लागी सरस झड़ी॥
जनम-जनमको जहर उतर गयो पाई अमर जड़ी।
हरि किरपा, टूटै न नामकी कदे या रतन-लड़ी॥

——★——

प्रबोध-चेतावनी

[१०२२]

(राग काफी—तीन ताल)

अरे मन-मधुप ! छोड़ अज्ञान ।
पीता रह पवित्र प्रभु-पद-पङ्कज-मकरन्द महान ॥
जगके विविध विषय, जिनमें रत रहता तू सुख मान ।
क्षणभङ्गुर, अपूर्ण हैं सारे, अतिशय दुःख-निधान ॥
भ्रमवश ही लगते प्रिय तुझको धन-यश, पूजन-मान ।
हैं विषमय मीठे मोदक ये, हरें ज्ञान-विज्ञान ॥
भोगोंकी सुन्दरता और मधुरता कृत्रिम जान ।
भजता रह करुणा-वरुणालय नित निरुपम भगवान ॥

[१०२३]

(राग मल्हार—तीन ताल)

अरे मन ! भज व्रजराजकुमार ।
तज अति मलिन विषय-विष, पी नित रूप-सुधा-रस-सार ॥
प्रेमानन्द-सुधा-रस-रसमय रसिकराज रस-रूप ।
अमित मार-मद-मार सुभग सौन्दर्य विचित्र अनूप ॥
अरुण चरण-तल-चिह्न रुचिर शोभित, मृदु चरण-सरोज ।
जानु-ऊरु-कटि सुन्दर मनहर, मुरली कर-अम्भोज ॥
विद्युत्-द्युति पट पीत, अलौकिक तनु छवि श्याम तमाल ।
कण्ठ रत्न-मणिहार, सौरभित तुलसि-सुमन वनमाल ॥
अरुण अधर अति मधुर मनोरम, चित्त-वित्तहर हास ।
दशन-कपोल-नासिका नन्दन, नयन निरत नित रास ॥
कुटिल भ्रुकुटि, गोरोचन-केसर तिलक सुशोभित भाल ।

कुञ्चित कच, शिखि-शिखा-मुकुट, श्रुति कुण्डल लोल-रसाल ॥
वत्सल परम नन्द-यशुमतिके ललित-लड़ैते लाल।
सखा-प्राणधन, व्रज-गोकुलके रक्षक श्रीगोपाल ॥
व्रज-युवती-जीवन, जीवन-धन, तन-मन-सब सुख-सार।
लावण्यामृत-सार, नित्य नूतन, नित नव सुकुमार ॥

[१०२४]

(राग विहाग—तीन ताल)

अरे मन ! भज नित नन्दकिशोर।
ललित त्रिभङ्ग मनोहर छविमय ऋषि-मुनि-मानस-चोर ॥
अतुलित परम प्रेम-रस-निधि, नित नव माधुर्य-निधान।
अति उदार सौन्दर्य-सुधार्णव सच्चित्-सुखकी खान ॥
सहज विरक्त ज्ञानि-मुनि-मन आकर्षक अँग-प्रत्यङ्ग।
उदित रूप-रवि जहाँ, वहाँ मर चुका तमिस्र अनङ्ग ॥
भोग-रोग कर त्याग, सदा जो दुःखद और अनित्य।
श्याम-रूप-वर-सुधा-तरंगिणिमें कर मज्जन नित्य ॥

[१०२५]

(राग केदारा—तीन ताल)

अरे मन ! भज नव नन्दकुमार।
आत्मारामगणाकर्षी[१] हरि कोटि-मदन-मद-मार[२] ॥
नित्य नवीन सच्चिदानँद-सान्द्राङ्ग[३] ललित-लावण्य।
असमानोर्ध्व-रूपसुषमा-विस्मापित[४]-जड-चैतन्य ॥

---

१. आत्मामें रमण करनेवाले परमहंस योगियोंका आकर्षण करनेवाले।
२. करोड़ों कामदेवोंके मदको चूर्ण करनेवाले।
३. सत्, चित् और आनन्दसे ही जिनके सारे अङ्ग परिपूर्ण हैं।
४. जिनके असाधारण एवं निरतिशय रूपकी शोभाको देखकर जड़-चेतन सभी जीव आश्चर्यचकित रह जाते हैं।

अतुल-मधुरतम-प्रेम-समन्वित-प्रियमण्डल[1] भगवान।
त्रिभुवन-मन-आकर्षक-मुरली-कल-कूजित[2] श्रीमान॥
चमत्कारमय-सर्वाद्भुत-लीला-कल्लोल-समुद्र[3]।
अवतारावलि-बीज[4], नमस्कृत देवराज-विधि-रुद्र[5]॥
प्रेमानन्द-सुधा-रस-वारिधि[6] प्रेमीजन-मन-प्राण[7]।
नित्य प्रेम-रस-आस्वादन-रत[8] रसमय, परम सुजान॥
सर्व-सुहृद, निज-भक्त-भक्तियुत[9], लीलामय रसराज।
रसिकशिरोमणि, मणिगणभूषित-विग्रह[10] श्रीव्रजराज॥
गोपी-मण्डल-मण्डित, राधाराधन, राधा-कान्त।
रासोल्लास-कलानिधि[11], रासक्रीडारत सुश्रान्त॥
कोमलहृदय असीम, नित्य करुणामय, दयानिधान।
अन्याश्रय सब त्याग, निरन्तर भज हरि, मन धीमान॥

[१०२६]

(राग झिंझोटी—ताल कहरवा)

दुरलभ नरदेह पाइ, भूल्यौ क्यों, बावरे।
राधा-सुधा छाँड़ि, करत विषय-विष-चाव रे॥

---

१. जिनके प्रियजनोंका अतुलनीय मधुरतम प्रेमसे विभूषित मण्डल है।
२. जिनकी मधुर मुरली-ध्वनिसे त्रिभुवनका मन आकर्षित होता है।
३. समस्त अद्भुत चमत्कारमयी लीला-लहरियोंके समुद्र।
४. जिनसे सम्पूर्ण अवतारोंका प्राकट्य होता है।
५. इन्द्र, ब्रह्मा, रुद्र भी जिनको नमस्कार करते हैं।
६. प्रेम-आनन्दरूपी अमृतरसके समुद्र।
७. प्रेमीजनोंके मन और प्राणस्वरूप।
८. नित्य-निरन्तर प्रेमरसका आस्वादन करनेमें लगे हुए।
९. अपने भक्तोंके भक्त।
१०. जिनका श्रीविग्रह दिव्य मणि-रत्नोंसे सुशोभित है।
११. जो रासलीलाकी कलाके समुद्र हैं।

एक-एक साँस जात बृथा अनमोल रे।
संतत, मन ! राम सुमिरु, जीभ ! राम बोल रे॥
मिथ्या सब भोग-सुख, दुःखकी खान रे।
त्यागि राग-ममता सब, सुमिरु भगवान रे॥
है न कछु तेरौ ह्याँ—तन-धन-धाम रे।
मिथ्या अभिमान-मोह त्यागि, भजु राम रे॥
राम पितु, मातु राम, राम सर्बस्व रे।
राम सब भाँति एक तेरौ निजस्व रे॥

[१०२७]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

जिस शरीरका, मूर्ख ! कर रहा तू इतना अभिमान।
गहराईसे उसकी दशा विचार, छोड़ अज्ञान॥
संधि सैकड़ोंसे जर्जर यह, त्रिविध व्याधिसे ग्रस्त।
पता नहीं, कब हो जायेगा देह-सूर्य यह अस्त॥
यह 'मैं', यह 'मेरा'—यों जीवनभर करता बकवाद।
जिस दिन यह सब छूट जायगा, उस दिनकी कर याद॥
धोता, मलता, जिसे सजाता रहता है तू नित्य।
वह मुर्दा हो पड़ जायेगी तेरी देह अनित्य॥
जिसके बल-बूतेपर मनमें करता सदा गुमान।
भस्म, कीट या मल बन जायेगा, वह देह महान॥
विषय-मोहरत, पाप-निरत, रहता तू सदा विभोर।
हँसते तेरी वज्रमूर्खतापर यम-किंकर घोर॥
गर्व कर रहा नाम-रूपका, भूल रहा भगवान।
मिट जायेंगे ये, बिगड़ेगी तेरी सारी शान॥
अब भी चेत, मोहको तज दे, भज ले तू नँद-नन्द।
जन्म सफल हो जायेगा, पाकर विशुद्ध आनन्द॥

[१०२८]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

कहाँ, कहाँ ? किस तरफ जा रहा ? पथिक ! पंथकी ओर निहार ।
शीघ्र सँभल जा, लक्ष्य ठीक कर, सावधान हो, चाल सुधार ॥
भूला मार्ग, सदन निज भूला, भूला बोधरूप अविकार ।
भूल गया सर्वस्व सदाशिवरूप नित्य सत्, सुख-आगार ॥
ठहर, दौड़ना छोड़, देख टुक पलभरको निज गृहकी ओर ।
मोह त्याग, मुड़, पकड़ पंथ शुचि, सरल, सुखद, तज झूठा शोर ॥
सत्वर चल चुपचाप, राम जप, देख सभीमें नन्दकिशोर ।
सभी, सभीमें, सभी समय मुसकाता प्यारा मुनि-मन-चोर ॥

[१०२९]

(लावनी दूसरी तर्ज—ताल कहरवा)

जो सुख-रूपी जल हेतु विषय-मग जाते ।
वे मृग-जल-जलधि-तरंग-सदृश जल पाते ॥
जैसे मृग-तृष्णा-जलसे प्यास न मिटती ।
वैसे विषयोंसे सुखकी चाह न मिटती ॥
ज्यों बालूके पेरेसे तेल न पावै ।
ज्यों जल-मन्थनसे घृत-सीकर नहिं आवै ॥
कारण, न धूलमें तेल, न जलमें घी है ।
वैसे ही विषयोंमें सुख-लेश नहीं है ॥
जो सुख चहिये तो हरिको हरदम भजिये ।
हरिके पवित्र भावोंसे तन-मन सजिये ॥

[१०३०]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

रक्त-मांस-मल-मूत्र-मेद-मज्जा-कफ-अस्थि—वस्तु अपवित्र ।
भरी इन्हींसे देह, ढकी चमड़ेसे ये चीजें सर्वत्र ॥

भूले फिरते, इस अति घृणित देहको भ्रमसे सुन्दर जान।
धोते, मलते, इसे सजाते, आलिङ्गन करते सुख मान॥
जन्म-मरण-वृद्धत्व-रोग-दुखसे पीड़ित, अनित्य यह देह।
बन जायेगी मरनेपर यह कृमि, विष्ठा, श्मशानकी खेह॥
भोग सभी हैं सदा अनित्य-अपूर्ण, बह रहा मृत्यु-प्रवाह।
इनमें सुखकी खोज भ्रान्ति भारी, उपजाती नित उर-दाह॥
कुछ भी नहीं यहाँ अविनाशी, कुछ भी नहीं पूर्ण-रस-एक।
किंचित् भी न कभी सुख इनमें, समझो, देखो, करो विवेक॥
आत्यन्तिक सुख, शान्ति शाश्वतीके हरि एकमात्र भंडार।
चाहो जो सुख-शान्ति, भजो हरि, तजो मोहमय यह संसार॥

[१०३१]

(राग बागेश्री—ताल कहरवा)

प्रभुसे रहित, विषय-विष-पूरित महा भयानक यह संसार।
अमित दुःख-संकट-भय विपदा, आधि-व्याधिसे भरा अपार॥
उठतीं इस भव-सागर में नित पाप-तापकी अमित तरंग।
जन्म-मरण, आसुरी योनि, अति नरक-यन्त्रणा, कठिन कुढंग॥
विषय-विलास-निरत, मोहावृत मनुज विषयोंमें ही सुख मान।
नित्य पड़ा रहता भवमें ही, भूल भविष्यत्का सब भान॥
ममता-राग, विषय-अभिलाषा-वश हो करता रहता पाप।
अहंकार-अभिमान भरा वह रचता निज दुःखोंको आप॥
भोग-कामना, ममता ही है सब पापोंका निश्चय मूल।
इनमें फँसा न जा पाता वह कभी भवोदधिके उस कूल॥
सब ममता जो प्रभुसे कर, करता प्रभुमें विशुद्ध अनुराग।
सेवक बन, करता प्रभुकी जो सेवा, अहंकार कर त्याग॥
पाता वह मानव-जीवनकी परम सफलता अति बड़भाग।
'भगवत्प्रेम' सुदुर्लभ, सभी मिटाकर भुक्ति-मुक्तिकी माँग॥

[१०३२]

(राग मालकोस—तीन ताल)

भोग विषभरे मधुर पकवान।
भोग-काल महँ लगैं अमृत-सम फल में जहर समान॥
बाहर रँग-रोगन मोहन भीतर विष भर्‌यो महान।
चमक दमक जो देखि फँसै नहिं, सो नर अति मतिमान॥
भरी गंदगी अंदर भारी, बाहर सोभा मान।
भीतर घुसत घोर दुख उपजत, समुझत नहिं अग्यान॥
समुझि भोग कौ रूप जथारथ, पाप-दुःख की खान।
भोग-राग तजि, तुरत भजहि तू हित-सुखमय भगवान॥

[१०३३]

(राग परज—ताल कहरवा)

क्षणभङ्गुर प्रत्यक्ष जगत्‌के सारे जीवन, धन, अधिकार।
इनके लिये कामना करना, पाना इन्हें—सभी बेकार॥
सुख न कभी होगा इनसे, ये दुःखोंके हैं पारावार।
बड़ी मूर्खता है, जो इनमें कुछ भी रखता ममता-प्यार॥
इन सबका आना-जाना है सब प्रभुका माया-विस्तार।
इनमें रहो असङ्ग, भजो नित मायापतिको सभी प्रकार॥

[१०३४]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

नित्य नयी आसक्ति, कामना, ममता नित नव पाप।
नित्य अशान्ति, नित्य ही चिन्ता, नित्य शोक संताप॥
बीत रहा अनर्थमय जीवन यों सारा बेकाम।
चेत करो, छोड़ो प्रमाद सब, भजो निरन्तर राम॥

[१०३५]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

जगमें तेरा कुछ नहीं, मिथ्या ममता-मोह।
एक कृष्ण तेरे सदा चिदानन्द-संदोह॥

[१०३६]

(राग आसावरी—तीन ताल)

बृथा क्यौं मानव-जनम गँवावै ?
क्यौं इंद्रिय-भोगनि में फँसि नित दुःख-अगिनि में तावै ?
यह भव-तरन सरीर सुदुरलभ, हरि-सुमिरनके हेतु।
मिल्यौ परम प्रभु-कृपा, सहज अति भव-सागर कौ सेतु॥
भजन छाड़ि बिषयनि सेवन सौं होत सेतु यह भंग।
खात चपेटै बीतत फिर भव-निधि की बिषम तरंग॥
बिफल होय नर-देह, मिलत नहिं प्रेम, नहीं भगवान।
सोक-असांति, नरक की पीड़ा मिलत महादुख-खान॥
भोग त्यागि करि बिष-समान, तजि ममता-राग-गुमान।
छिन-छिन तन-मन-धन सौं केवल करौ भजन निर्मान॥
मानव-जनम सफल या बिधि-सौं करि, जो जनम बितावै।
भगवत्-भगवत्प्रेम पाइ, सोई असली सुख पावै॥

[१०३७]

(राग तैलङ्ग—ताल त्रिताल)

अरे, तू क्यों अमूल्य तन खोवै ?
क्यों अनित्य सुखरहित जगत्की ममता-निशिमें सोवै ?
क्यों अघ-मूल भोग-सुख-कारण मानव-जन्म बिगोवै ?
शब्द-रूप-रस-गन्ध-स्पर्श-हित क्यों अतृप्त हो रोवै ?
श्रीहरिका अति सरस भजन कर क्यों न पाप-मल धोवै ?
हरिपद-पंकजका मधुकर बन क्यों न धन्य तू होवै ?

[१०३८]

(राग भैरवी—ताल रूपक)

चेत कर नर, चेत कर, गफलतमें सोना छोड़ दे।
जाग उठ तत्काल, हरि-चरणोंमें चितको जोड़ दे॥
मनुज-तन संसारमें मिलता नहीं है बार-बार।
हो सजग ले लाभ इसका, नाम प्रभुका मत बिसार॥
विषय-मदमें चूर होकर क्यों दिवाना हो रहा।
श्वास ये अनमोल तेरे, क्यों बृथा तू खो रहा॥
त्याग दे आशा विषयकी, काट ममता-पाशको।
ध्यान कर हरिका सदा, कर सफल हर-एक श्वासको॥
विषय-मदको छोड़ हरि-पद-प्रेम-मद तू पान कर।
हो दिवाना प्रेममें श्रीरामका गुणगान कर॥
परम प्रियतम हृदय-धनके प्रेम मदमें चूर हो।
छका रह दिन-रात तू आनन्दमें भरपूर हो॥

[१०३९]

(राग धुन लावनी—ताल कहरवा)

पल-भर पहले जो कहता था, यह धन मेरा यह घर मेरा।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥
जिस चटक-मटक औ फैसनपर तू है इतना भूला फिरता।
जिस पद-गौरवके रौरवमें दिन-रात शौकसे है गिरता॥
जिस तड़क-भड़क औ मौज-मजोंमें फुरसत नहीं तुझे मिलती।
जिस गान-तान औ गप्प-शप्पमें सदा जीभ तेरी हिलती॥
इन सभी साज-सामानोंसे छुट जायेगा रिश्ता तेरा।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥ १॥
जिस धन-दौलतके पानेको तू आठों पहर भटकता है।
जिन भोगोंका अभाव तेरे अंतरमें सदा खटकता है॥

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

पद-रत्नाकर

हनुमानप्रसाद पोद्दार

जिस सबल देह सुन्दर आकृतिपर तू इतना अकड़ा जाता।
जिन विषयोंमें सुख देख रहा, पर कभी नहीं पकड़े पाता॥
इन धन, जौवन, बल, रूप सभीसे टूटेगा नाता तेरा।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥ २॥
जिस तनको सुख पहुँचानेको तू ऊँचे महल बनाता है।
जिसके विलासके लिये निरन्तर चुन-चुन साज सजाता है॥
जिसको सुन्दर दिखलानेको है साबुन-तेल लगाता तू।
जिसकी रक्षाके लिये सदा है देवी-देव मनाता तू॥
वह धूलि-धूसरित हो जायेगा सोने-सा शरीर तेरा।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥ ३॥
जिस नश्वर तनके लिये किसीसे लड़नेमें नहिं सकुचाता।
जिस तनके लिये हाथ फैलाते जरा नहीं तू शरमाता॥
जो चोर-डाकुओंके डरसे नित पहरोंके अंदर सोता।
जो छायाको भी भूत समझकर डरता है व्याकुल होता॥
वह देह खाक हो पड़ा अकेला सूने मरघटमें तेरा।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥ ४॥
जिन माता-पिता, पुत्र-स्वामीको अपना मान रहा है तू।
जिन मित्र-बन्धुओंको, वैभवको अपना जान रहा है तू॥
है जिनसे यह सम्बन्ध टूटना कभी नहीं तैंने जाना।
है जिनके कारण अहंकारसे नहीं बड़ा किसको माना॥
यह छूटेगा सम्बन्ध सभीसे, होगा जंगलमें डेरा।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥ ५॥
है जिनके लिये भूल बैठा उस जगदीश्वरका पावन नाम।
तू जिनके लिये छोड़ सब सुकृत पापोंका है बना गुलाम॥
रे भूले हुए जीव! यह सब कुछ पड़े यहीं रह जायेंगे।
जिनको तैंने अपना समझा, वे सभी दूर हट जायेंगे।
हो जा सचेत! अब व्यर्थ गवाँ मत जीवन यह अमूल्य तेरा।
प्राणोंके तनसे जाते ही उसको लाकर बाहर गेरा॥ ६॥

[१०४०]

(राग भूपाल—ताल तीन ताल)

तजो रे मन झूठे सुखकी आसा ।
हरि-पद भजो, तजो सब ममता, छोड़ विषय-अभिलासा ।
बिषयन में सुख सपनेहुँ नाहीं केवल मात्र दुरासा ॥
कामिनि-सुत, पितु-मातु बंधु, जस कीरति सकल सुपासा ।
छिन महँ होत बियोग सबन्ह ते कठिन काल जग नासा ॥
छनभंगुर सब विषय, निरंतर बनत कालके ग्रासा ।
इनमें जो कोउ फिर सुख चाहत सो नित मरत पियासा ॥
प्रभु-पद-पदुम सदा अविनासी सेवत परम हुलासा ।
मिलै परम सुख, घटै न कबहूँ, जिनके मन-बिस्वासा ॥

[१०४१]

(राग पूर्वी—ताल तीन ताल)

जगतमें स्वारथके सब मीत ।
जब लगि जासौं रहत स्वार्थ कछु, तब लगि तासौं प्रीत ॥
मात-पिता जेहि सुतहित निस-दिन सहत कष्ट-समुदाई ।
वृद्ध भये स्वारथ जब नास्यो, सोइ सुत मृत्यु मनाई ॥
भोग-जोग जब लौं जुवती स्त्री, तब लौं अतिहि पियारी ।
बिधि-बस-सोइ जदि भई व्याधि-बस, तुरत चहत तेहि मारी ॥
प्रियतम, 'प्राननाथ' कहि-कहि जो अतुलित प्रीति दिखावत ।
सोइ नारी रचि आन पुरुष सँग, पति की मृत्यु मनावत ॥
कल नहिं परत मित्र बिनु छिन भर, संग रहे, सँग खाये ।
बिनस्यो धन, स्वारथ जब छूट्यौ, मुख बतरात लजाये ॥
साँचो सुहृद, अकारन प्रेमी राम एक जग माहीं ।
तेहि सँग जोरहु प्रीति निरंतर, जग कोउ अपनो नाहीं ॥

[१०४२]

(राग केदार—ताल तीन ताल)

मन, कछु वा दिनकी सुधि राख।
जा दिन तेरे तनु-दुकानकी उठि जैहें सब साख॥
इंद्रिय सकल न मानहिं अनुमति छोड़ चलैं सब साथ।
सुत, परिवार, नारि नहिं कोऊ पूछैं दुख की गाथ॥
वारँट लै जम-दूत आइ तोहि पकरि बाँधि लै जाय।
कोउ न बनै सहाय काल तिहि देखत ही रहि जाय॥
जम के कारागार नरक महँ अतिसय संकट पाय।
बार-बार करनी सुमिरन करि सिर धुनि-धुनि पछिताय॥
जो यहि दुख तें उबरो चाहै तो हरि-नाम पुकार।
राम-नाम ते मिटै सकल दुख, मिलै परम सुख-सार॥

[१०४३]

(राग कौसिया—ताल कहरवा)

अरे मन, तू कछु सोच-विचार।
झूठौ जग साँचौ करि मान्यौ, भूल्यो फिरत गँवार॥
मृग-जिमि भूल्यो देखि असत जल, मरु धरनी बिस्तार।
सून्याकास तिरवरा दीखत, मिथ्या नेत्र-विकार॥
रसरी देखि सरप जिमि मान्यो, भय-बस रह्यो पुकार।
सीप माहिं ज्यों भयो रौप्य-भ्रम, तिमि मिथ्या संसार॥
स्वप्न-दृस्य साँचे करि मानत, नहिं कछु तिन महँ सार।
तिमि यह जग मिथ्या ही भासत, प्रकृति-जनित खिलवार॥
जो यातें उद्धार चहै तो, हरिमय जगत निहार।
मायापति की सरन गहे तें, होवै तब निस्तार॥

[१०४४]

(राग कलिंगड़ा—ताल तीन ताल)

अरे मन, कर प्रभुपर बिस्वास।
क्यों इत-उत तू भटक्यौ डोलै, झूठे सुख की आस॥
सुन्दर देह, सुहावनि नारी, सब बिधि भोग-बिलास।
कहा भयौ धन-पुत्र भये तें, मिटी न जम की त्रास॥
नौकर-चाकर, बंधु घनेरे, ऊँचौ पदबी खास।
डरत लोग देखन भौं टेढ़ी करत मृत्यु उपहास॥
मिथ्या मद-उन्मत्त गँवाये व्यर्थ अमोलक स्वास।
पछितायें पुनि कछु न बसाये, बनै काल को ग्रास॥

[१०४५]

(राग जोगिया—ताल दीपचन्दी)

मूढ़ ! केहि बलपर तू इतरात॥
करत न सीधी बात काहु सौं, सदा रहत इठलात।
जा दिन प्रान देह तजि जैहैं, कोउ न पूछिहैं बात॥
जेहि तनु के सुख-साज-सँवारन संतत सबहिं सतात।
सो तनु सहज धूरि मिलि जैहै छार होहिं सब गात॥
जेहि धन-संचै-हेतु भूलि हरि, डोलत सब दिन-रात।
धरम-करम तजि सदा गीध ज्यों मांस हेतु ललचात॥
सब सों रारि करत, नहिं मानत बंधु-पूज्य, पितु-मात।
सो धन-सरबस एहि थल रहिहैं, संग न दमरी जात॥
माल-मिलकियत सब रहि जैहैं, सबै टूटिहैं नात!
सगे-सहोदर, पुत्र पाहुने, तजिहैं जननी-तात॥
राम-नाम को जाप करत खल, पंचन माँहि लजात।
'राम-नाम सत'—सबै बोलिहैं तोहि मसानु लै जात॥
रात-दिवस भटकत केहि कारन, नहिं कछु भेद लखात।
भूलि भगत-वत्सल भगवानहिं नर-तनु बृथा-गँवात॥

[१०४६]

(राग बहार—ताल तीन ताल)

(मारवाड़ी बोली)

छोड मन तू मेरा-मेरा, अंतमें कोई नहीं तेरा ।।
धन कारण भटक्यो-फिर्‌यो, रच्या नित नया ढंग ।
ढूँढ-ढूढकर पाप कमाया, चली न कौड़ी संग ।
होय गया मालक बहुतेरा ।। छोड॰ ।।
टेढी बाँधी पागड़ी, बण्यो छबीलो छैल ।
धरतीपर गिणकर पग मेल्या, मौत निमाणी गैल ।
बखेर्‌या हाड-हाड तेरा ।। छोड॰ ।।
नित साबुनसैं न्हाइयो, अतर-फुलेल लगाय ।
सजी-सजायी पूतली तेरी पडी मसाणाँ जाय ।
जलाकर करी भसम-ढेरा ।। छोड॰ ।।
मदमातो, करड़ो रह्यो, राख्या राता नैन ।
आयानें आदर नहिं दीन्यो, मुख नहिं मीठा बैन ।
अंत जम-दूत आय घेरा ।। छोड॰ ।।
पर-धन, पर-नारी तकी, परचरचास्यूँ हेत ।
पाप-पोट माथेपर मेली, मूरख रह्यो अचेत ।
हुआ फिर नरकाँमें डेरा ।। छोड॰ ।।
राम-नाम लीन्यो नहीं सतसँगस्यूँ नहिं नेह ।
जहर पियो, छोड्यो इमरतनै, अंत पड़ी मुख खेह ।
साँस सब बृथा गया तेरा ।। छोड॰ ।।
दुरलभ देही खो दई, करम कर्‌या बदकार ।
हूँ हूँ करतो मर्‌यो तूँ गयो जमारो हार ।
पड्यो फिर जनम-मरण फेरा ।। छोड॰ ।।
काम-क्रोध मद-लोभ तज, कर अंतरमें चेत ।
'मैं' 'मेरे' ने छोड़ हदैसें कर श्रीहरिस्यूँ हेत ।
जनम यूँ सफल होय तेरा ।। छोड॰ ।।

[१०४७]

(राग कान्हरा—तीन ताल)

जगतमें कोइ नहिं तेरा रे।
छोड़ बृथा अभिमान त्याग दे मेरा-मेरा रे॥
काल-करम बस जग-सराय बिच कीन्हा डेरा रे।
इस सरायमें सभी मुसाफर, रैन-बसेरा रे॥
जिस तनको तू सदा सँवारै, साँझ-सबेरा रे।
एक दिन मरघट पड़े भसमका होकर ढेरा रे॥
मात-पिता, भ्राता, सुत-बांधव, नारी चेरा रे।
अंत न होय सहाय, काल जब दैवै घेरा रे॥
जगका सारा भोग सदा कारन दुख केरा रे।
भज मन हरिका नाम, पार हो भव-जल बेरा रे॥
दीनदयालु भक्तवत्सल हरि मालिक तेरा रे।
दीन होय उनके चरनोंमें कर ले डेरा रे॥

[१०४८]

(लावनी, धुन लावनी—ताल कहरवा)

इधर उधर क्यों भटक रहा मन-भ्रमर, भ्रान्त उद्देश्य विहीन।
क्यों अमूल्य अवसर जीवनका व्यर्थ खो रहा तू, मतिहीन॥
क्यों कुबास-कंटकयुत विषमय विषय-बेलिपर ललचाता।
क्यों सहता आघात सतत, क्यों दुख निरन्तर है पाता॥
विश्व-बाटिकाके प्रति-पदपर भटक भले ही, हो अति दीन।
खाकर ठोकर द्वार-द्वारपर हो अपमानित, हीन-मलीन॥
सह ले कुछ संताप और यदि तुझको ध्यान नहीं होता।
हो निराश, निर्लज्ज भ्रमण कर फिर चाहे खाते गोता॥
बिसमय बिषय-बेलिको चाहे कमल समझकर हो रह लीन।
चाहे जहर-भरे भोगोंको सलिल समझकर बन जा मीन॥

पर न जहाँतक तुझे मिलेगा पावन प्रभु-पद-पद्म-पराग।
होगा नहीं जहाँतक उसमें अनुपम तव अनन्य अनुराग॥
कर न चुकेगा तू जबतक अपनेको, बस, उसके आधीन।
होगा नहीं जहाँतक तू स्वर्गीय सरस सरसिज-आसीन॥
नहीं मिटेगा ताप वहाँतक, नहीं दूर होगी यह भ्रांति।
नहीं मिलेगी शांति सुखप्रद, नहीं मिटेगी भीषण श्रांति॥
इससे हो सत्वर, सुन्दर हरि-चरण-सरोरुहमें तल्लीन।
कर मकरंद मधुर आस्वादन, पापरहित हो पावन पीन॥
भय-भ्रम-भेद त्यागकर, सुखमय सतत सुधारस कर तू पान।
शान्त-अमर हो, शरणद चरण-युगलका कर नित गुण-गण-गान॥

[१०४९]

(राग नूरसारंग—ताल त्रिताल)

भोग अति दुःख नरकके मूल।
भजो न इन्हहिं कबहुँ इंद्रिय-मन सुख-निमित्त करि भूल॥
उपजत अघ अति, बिबिध दुःख, भव-ब्याधि भोग के संग।
मानव-जीवन कौ सुचि-सुन्दर बिगरत सगरौ रंग॥
नित कुत्सित धन-मान, कीर्ति-पद की इच्छा अनिवार।
नित बिस्वास-हनन, छल, मिथ्या, कपट, असद् व्यवहार॥
राग-द्वेष, द्रोह-निर्दयता, नित्य बिषम उर दाह।
नित्य अधर्मपरायनता, नित असन्मार्ग-उत्साह॥
नित्य बैर, हिंसा-प्रतिहिंसा, नित्य बितंडाबाद।
नित दुख, नित असांति-चिंता-भय, नित ही सोक-बिषाद॥
फलसरूप अति मरन दुःखमय, मरनोत्तर दुख-भोग।
नीच जोनि, दारिद्र्य, रोग-दुख, नरकजोनि-संजोग॥
या तैं जे तजि भोग दुःखमय, सेवत हरि सुखरूप।
ते मानव पावत भगवत्सुख दिव्य, अनन्य, अनूप॥

[१०५०]

(राग केदारा—ताल तीन ताल)

देख निज नित्य निकेतन द्वार ॥
भूला निज निर्मल स्वरूपको, भूला कुल-व्यवहार।
फूला, फँसा फिर रहा संतत, सहता जग फटकार ॥
पर-पुर, पर-घरमें प्रवेश कर, पाला पर-परिवार।
पड़ा पाँच चोरोंके पल्ले, लुटा, हुआ लाचार ॥
अब भी चेत, ग्रहण कर सत्पथ, तज माया-आगार।
उज्ज्वल प्रेम-प्रकाश साथ ले, चल निज गृह सुख-सार ॥
शम-दमादिसे तुरत निधनकर काम-क्रोध-बटमार।
सेवन कर पुनीत सत-संगति पथशाला श्रमहार ॥
श्रीहरिनाम शमन भय-नाशक निर्भय नित्य पुकार।
पातक-पुञ्ज नाश हों सुनकर 'हरि हरि हरि' हुंकार ॥
आश्रयकर, शरणागत-वत्सल प्रभु-पद-कमल उदार।
निज घर पहुँच, नित्य चिन्मय बन, भूमानन्द अपार ॥

——★——

अभिलाषा

[१०५१]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

नंद-नँदन श्रीकृष्ण एक ही हैं सब रूपोंके आधार।
वे ही सकल रसोंके, वे ही सकल सुखोंके भी आधार॥
चिन्तन उनका सुखमय, सुखमय हैं उनके मङ्गल-दर्शन।
अङ्ग-स्पर्श परम सुखमय है, उनका सब कुछ ही कर्षन॥
आत्मरूपमें तन-मनमें नित मिले हुए हैं वे प्रियतम।
वे ही नित्य अनुभवमें आते, छटा दिखाते शुचि अनुपम॥
भरे रहें रस-रूप-सौख्यमय प्रिय वे मम बाह्याभ्यंतर।
उनकी रतिमें हँसता-रोता, रहे नाचता नित अन्तर॥

[१०५२]

(राग आसावरी)

एक लालसा मन महँ धारौं।
बंसी-बट कालिंदी-तट नट-नागर नित्य निहारौं॥
मुरली-तान मनोहर सुनि-सुनि तन-सुधि सकल बिसारौं।
पल-पल निरखि झलक अँग-अंगनि पुलकित तन-मन वारौं॥
रिझऊँ स्याम मनाइ गाइ गुन गुंज-माल गर डारौं।
परमानंद भूलि जग सगरौ स्यामहिं स्याम पुकारौं॥

[१०५३]

(राग आसावरी—तीन ताल)

मौन ग्रहणकर रटूँ निरन्तर, जिह्वासे श्रीराधेश्याम।
नेत्रोंसे देखूँ न कभी कुछ, रहें दीखते राधेश्याम॥
कानोंसे सब शब्द त्यागकर, सुनूँ सर्वदा राधेश्याम।
मनसे सभी प्रपञ्च दूर कर, रहूँ निरखता राधेश्याम॥

भोग-मोक्षकी चाह मिटे सब, चाहूँ केवल राधेश्याम।
एकमात्र, बस लगें परम प्रिय मुझको केवल राधेश्याम॥
मिले उच्च या नीच जन्म, पर रहें सङ्ग नित राधेश्याम।
अतुल अमल सौन्दर्य-सुधा-निधि परम मधुर श्रीराधेश्याम॥

[१०५४]

(राग भूपाली—तीन ताल)

मेरे एक राधा नाम अधार॥
कोउ देखत निज रूप ब्रह्म पर निराकार अबिकार।
कोउ करि निज तादात्म्य आत्म महँ, जो सम, सर्वाधार॥
कोउ द्रष्टा देखत प्रपंच जिमि मिथ्या स्वप्न-बिकार।
कोउ निरखत नित दिव्य ज्योति हिय, परम तत्व साकार॥
कोउ कुंडलिनी कौं जागृत करि, षट चक्रनि करि पार।
पहुँचत सिखर सहस-दल ऊपर, जोग-सिद्धि कौ सार॥
कोउ अनहद धुनि सुनत दिवस-निसि, अजपा-जाप सँभार।
कोउ निष्काम कर्म-रत जोगी, कोउ नित करत बिचार॥
कोउ कमलापति, कोउ गिरिजापति नाम-रूप उर-धार।
भक्त-कल्पतरु राम-कृष्ण कोउ सेवत अति सत्कार॥
हौं जड़-मति, अति मूढ़ हठीलौ, नटखट, निपट गँवार।
राधे-राधे रटौं निरंतर, मानि सार कौ सार॥

[१०५५]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

काननि सुनौं स्याम की मुरली, नैननि निरखौं रूप ललाम।
घ्राननि सूँघौं अंग-गंध सुचि, परसौं त्वचा अंग अभिराम॥
रसना चखौं प्रसाद मधुर अति, बानी नित्य करै गुन-गान।
मन में बस्यौ रहै नित मेरे आठौं जाम मधुर रस-खान॥
करत संग अनवरत अनूपम मन-इंद्रिय सब भए निहाल।
पाय मधुर-रस ब्रह्म-परस, रति बढ़त निरंतर निरवधि काल॥

[१०५६]

(राग शिवरञ्जना—ताल कहरवा)

देखा करूँ तुम्हारी लीला, गाया करूँ तुम्हारा नाम।
सुना करूँ नित मुरलीकी धुन, वचन तुम्हारे परम ललाम॥
नेत्र-मधुप नित करें तुम्हारे वदन-कमल-मधु-रसका पान।
पूर्ण समर्पित हो जायें इन्द्रिय-तन, मन-मति, जीवन-प्रान॥

[१०५७]

(राग बागेश्री—ताल कहरवा)

लाखों बार तपाये उज्ज्वल शुद्ध स्वर्ण-सम जिनका प्रेम।
चन्द्र-चकोर, मेघ-चातक-सम नित्य परस्पर जिनके नेम॥
परमानन्द-धाम जो दोनों, महाभाव-रसराज अनूप।
शुचि सौन्दर्य असीम सिन्धु माधुर्य नित्य चिन्मय सद्रूप॥
उन राधा-माधवकी छवि मैं निरखूँ दिव्य मधुर सब ओर।
उनकी चरण-धूलि-रति तजकर, चाहूँ नहीं कभी कुछ और॥
सुनूँ न कुछ भी कहीं और कुछ, नहीं उचारूँ मुखसे अन्य।
राधेश्याम-नाम-गुणमें ही लगा रहे मन सदा अनन्य॥
युगल-चरण-रज-प्रीति निरन्तर पल-पल हो वर्द्धित अभिराम।
मिले युगल-सेवाका मुझको छोटा-सा कोई कुछ काम॥
राग-द्वेष, कामना-ममता छोड़ रखूँ मैं अन्तर-शुद्धि।
सखी-मञ्जरीके अनुगत रह, कर संयम मन-इन्द्रिय-बुद्धि॥
करूँ सदा सेवा जो मुझको मिलै वही, मञ्जरी-प्रसाद।
धन्य सदा समझूँ जीवन मैं, भरा रहे मन शुचि आह्लाद॥

[१०५८]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

नहीं चाहता राज्य चक्रवर्ती, मैं नहीं चाहता स्वर्ग।
नहीं चाहता विधि-सुरपति-पद, नहीं चाहता मैं अपवर्ग॥

नहीं चाहता योग-सिद्धि मैं, नहीं चाहता पद पाताल।
नहीं चाहता मुक्ति चतुर्विध, दुर्लभ सालोक्यादि विशाल॥
जन्म-जन्ममें बनी रहे मन प्रियतमकी स्मृति मधुर अबाध।
रहे छलकता श्याम-रूप-रस-सुधा-उदधि उर मध्य अगाध॥
डूबा रहूँ उसीमें संतत, रहे न अन्य राग-रति-काम।
दिखता रहे सदा मुसकाता, प्रियतम-मुख सुखभरा ललाम॥

[१०५९]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

प्रियतम ! तुमने सहज सभी सुविधा दी मुझको, कर अति प्यार।
इन्द्रिय, इन्द्रिय-विषय—सभी कुछ दिये सहज ही विविध प्रकार॥
आगे-से-आगे तुम देते रहते, सच्चा देख अभाव—
माँगे, बिन माँगे, तुम कुछ भी नहीं देखते मेरा भाव॥
अस्वीकार करूँ मैं तुमको, चाहे करूँ नित्य अपमान।
देख-रेख करते कुपूतकी स्नेहमयी माँ-सदृश अमान॥
नहीं चाहता, अतः जगत्‌की वस्तु-परिस्थिति क्षुद्र-महान।
बढ़ती रहे परम श्रद्धा-विश्वास अटल तुममें, भगवान !॥
रहे न मनमें स्व-सुख-वासनाका, प्रभु ! कहीं जरा भी लेश।
बढ़ते रहे चरण-रति निर्मल, 'प्रतिपल-वर्धमान' सविशेष॥
सर्व-समर्पण पूर्ण सहज हो, रहे नहीं ममता-अभिमान।
बना रहूँ लीलोपकरण मैं अविरत लीलामय भगवान॥

[१०६०]

(राग इमन—ताल कहरवा)

भरे रहो तुम मधुर मनोहर मनके कण-कणमें वसुयाम।
नेत्र निरखते रहें निरन्तर बाहर छबिमय प्रियतम श्याम॥
बहती रहे प्रेम शुचितम की नित्य सुधा-धारा अविराम।
बना रहे जीवन, बस, एक तुम्हारा सुख-साधन अभिराम॥
जगे न मन में इच्छा कोई, एक तुम्हारे सुखको छोड़।
लगी रहे प्रत्येक वृत्तिमें, सुख पहुँचानेकी शुचि होड़॥

[१०६१]

(राग माड़)

तन-मन-धन अर्पन कियौ सब तुम पै ब्रजराज।
मन भावै सोई करौ हाथ तुम्हारे लाज॥

[१०६२]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

जाहि देखि, चाहत नहीं कछु देखन मन मोर।
बसै सदा मोरे दृगनि सोई नंद-किसोर॥
तन-मन—सब लिपटे रहैं, नित प्रियतम के अंग।
भुक्ति-मुक्ति की कल्पना करै न यह सुख-भंग॥
भूलि जाय सुधि जगत की, भूलै घर की बात।
हिय-सौं-हिय लागौ रहै, बिनु बाधा दिन-रात॥
इंद्रिय, मन, बुधि, आतमा बनैं स्याम के धाम।
सब में सदा बसौ रहै प्रियतम मधुर ललाम॥

[१०६३]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

भरे रहो तुम सदा हृदयमें, बाहरका हर लो सारा।
नित्य तुम्हें पाकर अन्तरमें बहती रहे सुधा-धारा॥
देकर अपना प्रेम-परमधन, चाहे फिर दरिद्र कर दो।
देकर शाश्वत शान्ति, नित्य सब दिक् दारुण ज्वाला भर दो॥
खेलो खेल सदा मनमाना, छोड़ो नहीं कभी, प्यारे!
अपने हाथों सुख दो चाहे हर लो सुख-साधन सारे॥
निज करसे इच्छानुसार तुम मुझको दुलराओ-मारो।
मिले रहो पर सदा, भले तुम मुझे डुबा दो या तारो॥

[१०६४]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

प्रियतम ! भरते रहो नित्य तुम मुझमें अपना मीठा सुर ।
कभी नहीं बज उठे मोह-ममताका तिक्त बेसुरा सुर ॥
प्रियतम ! भरते रहो सदा जीवनमें अपना दिव्य प्रकाश ।
कभी नहीं कर पाये उसमें भोग-तिमिर-धन तनिक निवास ॥
प्रियतम ! देते रहो नित्य मुझको तुम अपना पावन प्रेम ।
जिससे निभे नहीं क्षण वैरी काम अन्धका योग-क्षेम ॥
प्रियतम ! भरते रहो सदा मुझमें पद-पङ्कज-सेवा-भाव ।
जिससे बढ़ता रहे निरन्तर सेवाका अनन्य शुचि चाव ॥
प्रियतम ! दे दो दुर्लभ निज चरणोंका ही, बस मुझे ममत्व ।
जिससे जगमें रहें न राग-द्वेष कहीं, हो जाय समत्व ॥
प्रियतम ! ले लो मुझे सदाके लिये दानकर निज दासत्व ।
पड़ा रहूँ चरणोंमें मैं, पा जाऊँ पद-रज-कणपर स्वत्व ॥

[१०६५]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

जगमें मरकर, तुममें जीवन
पाऊँ मैं, प्यारे जीवनधन !
लीला ललित चले अति शोभन ।
बनूँ मैं सुन्दर लीलागार ।
तुम्हारा हो पूरा अधिकार ॥
रोना तजकर सदा हँसूँ मैं,
प्रेम-रज्जुसे तुम्हें कसूँ मैं,
तुममें ही, बस, नित्य बसूँ मैं,
सुखी हो मुझसे सब संसार ।
तुम्हारे यशका हो विस्तार ॥

[१०६६]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

करें कभी कोई मेरा अति मान-समादर-स्तुति-सत्कार।
अथवा परुष वचन कह, दारुण पदत्राणोंसे करे प्रहार॥
दोनोंमें ही देखूँ मैं, प्रिय श्याम! तुम्हारा सुन्दर रूप।
हँसकर स्वागत करूँ हृदयसे, प्राप्त करूँ सुख परम अनूप॥
कभी न भूलूँ, भरे तुम्हीं हो प्यारे! सबमें सदा विचित्र।
लीलामय दिखलाते लीला, बनकर घोर शत्रु, शुचि मित्र॥
जो कुछ है, सब तुम हो केवल, होता जो, सब लीला-लास्य।
घोर भयानक, परम मधुर तुम करते लीला-क्रन्दन-हास्य॥
देख तुम्हें मैं सदा सर्वगत, सत्-चित्-आँनदमय, स्वच्छन्द।
करूँ सदा अभिनन्दन सबका, अति विनम्र मन भर आनन्द॥

[१०६७]

(राग बसन्त—ताल कहरवा)

हर्षित होता देख परम जो जगमें अपना बढ़ता मान।
घिरा देख जो जन-समूहसे अपनी बढ़ी मानता शान॥
जो पिछलग्गू प्रशंसकोंकी अपने पीछे सेना जान।
हर्षोन्मत्त हुआ, दिखलाता निज ऊँचेपनका अभिमान॥
तो वह भूला है, इसमें कुछ भी है नहीं मानकी बात।
जगके हो-हल्लेका कोई मूल्य नहीं, यह जग-विख्यात॥
पर तथापि यदि मान किसीका बढ़ता, बिना किसी अनुपात।
मिलता उसे अमित सुख इससे, हो उठता यदि पुलकित-गात॥
मिले सदा सुख उसे अपरिमित, बढ़े सदा उसका सम्मान।
कोटि-कोटि जन मानें उसको, प्रभु ऐसा ही करें विधान॥
हो असीम आह्लाद देखकर उसका मुख प्रसन्न अम्लान।
यही प्रार्थना, प्रभुसे सविनय, पूरी करें सत्य भगवान॥

काम हमारा पर न जगतसे, बनें लोकमें हम अनजान।
भूल जायँ सब जगके प्राणी, हम भी भूलें नाम-निशान॥
हो अनन्य अति शुद्ध प्रेममय पल-पल वर्धनशील अमान।
मधुर नित्य-सम्बन्ध उन्हींसे, वे नित पास रहें भगवान॥
हम-वे दो ही रहें, नित्य नव बढ़ता रहे अतुल उत्साह।
दोनोंके जीवनमें अविरत प्रेम-सुधाका बहे प्रवाह॥
एक-दूसरेको ही जानें, अन्य किसीकी रहे न चाह।
जगके मान-अमान, स्तवन-निन्दाकी रहे न कुछ परवाह॥
यही एक है परम साधना, यही एक है मनकी साध।
पूरी यह हो रही रहेगी होती सदा अनन्य अबाध॥
मिले सदा रहते दोनों हम रम्य निकुञ्ज निभृत निर्बाध।
उछल रहा एकाकी यह प्रेमार्णव अमित, अपार, अगाध॥

[१०६८]

(राग वागेश्री—ताल कहरवा)

मेरे अखिल विश्व-जीवनके तुम ही एकमात्र हो अर्थ।
बिना तुम्हारे मेरा अखिल विश्वका सारा जीवन व्यर्थ॥
अर्थ-हीन मैं होता हूँ यदि अर्थ-हीन जगमें आसक्त।
वह है होना प्राण-हीनका प्राणहीनमें ही अनुरक्त॥
केवल तुम्हें साथ लेकर मैं, जो तुम हो मेरे 'पर-अर्थ'।
मिलूँ अर्थवाला मैं तुमसे, करूँ रसास्वादन अव्यर्थ॥
दो तुम मुझे सत्य यह, दो तुम मुझे रसास्वादन-संयोग।
नित्य तृप्त मैं, नित अतृप्त रह करता रहूँ दिव्य-रस-भोग॥

[१०६९]

(राग मालकोश—ताल दीपचन्दी)

बनूँ तुम्हारे शयन-कक्षका पलँग, बिछौना मैं कोमल।
बनूँ तुम्हारे सुख-स्पर्शका मन्द-सुगन्ध पवन शीतल॥

बनूँ तुम्हारे स्नान-जलाशयका मैं शीतल जल निर्मल।
बनूँ तुम्हारे धारण करनेका मैं पीत-वस्त्र उज्ज्वल॥
बनूँ तुम्हारी मालाका मैं, सुन्दर सुरभित सुमन परम।
बनूँ तुम्हारा कण्ठहार मैं, रहूँ झूलता सुन्दरतम॥
बनूँ तुम्हारे भोजनका मैं रुचिकर मधुर स्वाद रसमय।
बनूँ तुम्हारी लीलाका मैं नित्य उपकरण लीलामय॥

[१०७०]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

मेरी ममता सारी केवल तुममें प्रिय ! हो जाय अनन्य।
राग-रङ्गका कोई प्राणि-पदार्थ-परिस्थिति रहे न अन्य॥
धन-जन, जीवन-प्राण तुम्हीं सब, भुक्ति-मुक्ति सब तुम हो एक।
सब तज भजूँ तुम्हें ही केवल, यही बने जीवनकी टेक॥
मिटें सभी संकल्प, कटे सारा तुरंत मायाका जाल।
रहे छलकता सदा हृदयमें प्रेम तुम्हारा मधुर रसाल॥
सहज समर्पण हो जीवन प्रियतम पद-पङ्कजमें, सब त्याग।
लहरायें अति ललित तरंगें सुधा-समुद्र शुद्ध अनुराग॥

[१०७१]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

चाह तुम्हारी ही हो प्यारे ! नित्य-निरन्तर मेरी चाह।
चाह न रहे अलग कुछ मेरी, नहीं किसीकी हो परवाह॥
चलता रहूँ निरन्तर, प्यारे ! केवल एक तुम्हारी राह।
बिगड़े-बने जगत्‌का कुछ भी, कहूँ निरन्तर 'प्यारे ! वाह'॥

[१०७२]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

अणु-महान् तुम ! अणु-महान्‌में भरे पूर्ण रहते भगवान।
अमित विभिन्न नाम-रूपोंमें व्यक्त तुम्हीं अव्यक्त समान॥

देखूँ सदा तुम्हींको सबमें, करूँ सभीका मैं सम्मान।
विनय-विनम्र हृदयसे सबको करूँ प्रणाम बिना अभिमान॥
स्वसुख-दुःखमें सम देखूँ मैं तुम्हें, तुम्हारा पा बरदान।
सुखमय, नित निर्द्वन्द्व बनूँ मैं, रहे न मन कुछ भी अरमान॥
पर पर-दुःख दुखी हो पर-सुख-हेतु करूँ निज सुखका दान।
हरण करूँ पर-दुःख, वरण मैं करूँ उसे मन मोद महान॥
सबके हित-सुखमें ही समझूँ अपना हित-सुख परम अमान।
समझूँ अति सौभाग्य, करूँ मैं नहीं कभी भी कुछ अहसान॥

[१०७३]

(राग जंगला—तीन ताल)

प्रभो! तुम्हारी सहज कृपापर मुझको सदा रहे विश्वास।
कभी न हो संदेह, हृदय तुमसे हो नहीं कदापि निराश॥
तुम ही एक त्राणकर्ता हो, तुम अनन्य शरणद भगवान।
योग-क्षेम तुम्हीं हो मेरे, भूले कभी न मन यह भान॥
रहूँ तुम्हारे चरण-देशमें, नहीं कभी जाऊँ अन्यत्र।
सदा तुम्हारी रक्षकताकी हो अनुभूति मुझे सर्वत्र॥
रहूँ तुम्हारे बलसे, हे प्रभु! सदा, सभी विधि मैं बलवान।
पाप-ताप छू सकें न मुझको, कभी न मनमें हो अभिमान॥
सदा विनम्र रहूँ चरणोंमें, सदा तुम्हारा लूँ शुचि नाम।
सदा सभीमें नाथ!, तुम्हारे दर्शन कर पाऊँ अभिराम॥

[१०७४]

(राग बागेश्री—ताल कहरवा)

स्वामीके शुचि चरण-कमलमें सादर शीश झुकाऊँ मैं।
दुखियोंके संताप-हरणकी शक्ति विलक्षण पाऊँ मैं॥
दो ऐसा वरदान, दयामय! दीनोंको अपनाऊँ मैं।
सारा सुख दुखियोंको देकर, उनका सुख बन जाऊँ मैं॥

छाता बनकर, मेह-घामसे उनकी देह बचाऊँ मैं।
कंकड़-काँटे लगें नहीं, उनकी जूती बन जाऊँ मैं॥
अंधोंकी लकड़ी बन करके, सीधे मार्ग चलाऊँ मैं।
भटक रहे जो लक्ष्य-भुलाकर, उनको पथ दिखलाऊँ मैं॥
गुण-समूहको प्रकट करूँ, अवगुणको सदा दुराऊँ मैं।
धागा बनूँ, अङ्ग निज देकर, सबके छिद्र छिपाऊँ मैं॥
पुत्रहीनका सुपूत बनकर, उसको सुख पहुँचाऊँ मैं।
जिसके कोई नहीं, उसीका निज जन ही बन जाऊँ मैं॥
जीवनहीन प्राणियोंको, निज जीवन सौंप, जिलाऊँ मैं।
निष्प्राणोंमें प्राण फूँककर, दे अवलम्ब उठाऊँ मैं॥
मूर्छित, तमसाच्छन्न जनोंको देकर बोध जगाऊँ मैं।
ज्ञान-दिवाकरकी किरणोंसे, तमको तुरत मिटाऊँ मैं॥
प्रभुके निर्मल लीला-रसकी सरस रागिनी गाऊँ मैं।
मुरझी हृदय-कुसुम-कलिकाको पूर्णतया विकसाऊँ मैं॥
सूखे नीरस प्राणोंमें रस-सुधा सदा बरसाऊँ मैं।
श्रद्धाकी शुचि सुधा पिलाकर, नित उनको सरसाऊँ मैं॥
गत-विश्वास संशयी पुरुषोंका विश्वास बढ़ाऊँ मैं।
प्रभुकी महिमा सुना-सुनाकर चरण-शरण दिलवाऊँ मैं॥
भयभीतोंको अभय चरणका आश्रय अचिर कराऊँ मैं।
चिदानन्दमय सत्य सनातन निर्भय पद पहुँचाऊँ मैं॥
प्रभुके करुण हृदयके दर्शन दीनोंको करवाऊँ मैं।
अशरण-शरण पतित-पावन प्रभुका संधान बताऊँ मैं॥
प्रभुकी प्रेम-अमिय-रस-धारा उज्ज्वल अमल बहाऊँ मैं।
काम-स्वार्थका मल धो, माँ धरतीको सफल बनाऊँ मैं॥

[१०७५]

(राग परज—ताल कहरवा)

सुख-सम्पतिमें तब प्रसाद-अमृतका मैं नित करता पान।
दुख-संकटमें पाता हूँ तव कोमल करका स्पर्श महान॥

प्रेम-सुधा-रसका अनन्त सागर लहरा दो जीवनमें।
सदा-सर्वदा लगा रहूँ बस, तव पद-पङ्कज-सेवनमें॥
ले लो सब सम्मान-सम्पदा; हर लो सारी माया, नाथ!
नित्य छत्रछायामें रक्खो, बना रहूँ मैं सदा सनाथ॥

[१०७६]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

हर लो प्रभु! मेरी भोग-दासता भारी।
कर लो मुझको 'निज दास' नाथ अघहारी॥
मैं रटूँ तुम्हारा नाम नित्य भयहारी!
मैं सेवा नित तन-मनसे करूँ तुम्हारी॥
मिट जायँ काम-आसक्ति समस्त मुरारी!
हट जाय मोह-ममताकी माया सारी॥
रह जाय न मद-अभिमान, मान-मदहारी!
हों उदय सहज शुचि दैन्य-विनय बनवारी॥
खुल जायँ ज्ञानके नेत्र दिव्य तमहारी।
दीखे लीला सर्वत्र सदा सुखकारी॥
मैं देखूँ सबमें सदा तुम्हें, मनहारी।
मैं सबका सुख-हित करूँ, सर्वहितकारी!॥
बन जाऊँ लीलाभूमि तुम्हारी प्यारी।
तुम खेलो फिर मनमाने लीलाकारी!॥
रह जाय न कुछ भी सत्ता मेरी न्यारी।
तुम ही लीला, लीलामय—सभी बिहारी!॥

[१०७७]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

जड-चेतन—सबमें देखूँ नित बाहर-भीतर श्रीभगवान।
करूँ प्रणाम नित्य नत-मस्तक-मन, तजकर सारा अभिमान॥

करूँ सभीकी यथायोग्य शुचि सेवा, उनमें प्रभु पहचान।
करूँ समर्पण उन्हें उन्हींकी वस्तु विनम्र-सहित सम्मान॥
राग, कामना, ममता सारी प्रभु-चरणोंमें पाकर स्थान।
नित्य कराती रहे मधुरतम प्रेम-सुधा-रसका ही पान॥

[१०७८]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

पूरी हो सर्वत्र सर्वथा, स्वामी! सदा तुम्हारी चाह।
मेरे मनमें उठे न कोई, इसके सिवा दूसरी चाह॥
उठे कदाचित् तो मालिक! तुम मत पूरी करना वह चाह।
अपने मनकी ही करना, मत मेरी करना कुछ परवाह॥
तुम हो सुहृद् अकारण प्रेमी, तुम सर्वज्ञ, सदा अभ्रान्त।
तुम सब लोक-महेश्वर हो, भगवान! तुम्हारे आदि न अन्त॥
करते और करोगे जो कुछ तुम, प्रभु! मेरे लिये विधान।
पूर्णरूपसे निश्चय ही उसमें होगा मेरा कल्यान॥

[१०७९]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

डरें नहीं कोई भी मुझसे, कभी न कोई हों संत्रस्त।
कभी न कोई हों अपमानित, हों न तिरस्कृत दुःखग्रस्त॥
सुख सबको हो, हित हो सबका, मुझसे सब पायें सम्मान।
सब आदर-सत्कार प्राप्त हों, पायें सब शुचि सेवा-दान॥
पायें सभी सरल मनका सौहार्द, सभी निश्छल व्यवहार।
सत्य मधुरतामय, हितमय हो जीवनका विशुद्ध आचार॥
पायें सभी शान्ति-आश्वासन, पायें धैर्य-धर्म-कल्याण।
हों सबके ही विकसित जीवन, प्राप्त करें सब नूतन प्राण॥

[१०८०]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

नहीं मान-धन, कीर्ति-भोगकी, नहीं मोक्षकी किंचित चाह।
नहीं अयश-अपमान, दुःखकी, तनिक नरककी भी परवाह॥
सदा-सर्वदा एकमात्र तुम करो हृदयमें ही अधिवास।
रहो दीखते बाहर भी सर्वत्र सदा करते मृदु हास॥
पाते रहें चित्त-दृग दोनों एक तुम्हारा ही संस्पर्श।
इह-परकी फिर लाभ-हानिसे कभी न होगा हर्ष-अमर्ष॥
आयें-जायँ यथेच्छ कहीं भी, कुछ भी, कभी—मुक्ति या बन्ध।
एक तुम्हारे सिवा न मेरा रहा कहीं भी कुछ सम्बन्ध॥

[१०८१]

(राग परज—ताल कहरवा)

नहीं चाहता क्षणभर भी हो किसी जीवका भी अपमान।
क्योंकि सभीमें बसते हैं नित मेरे ही प्यारे भगवान॥
सुख पहुँचाना सदा चाहता, रखना सदा चाहता मान।
कर पाता पर सबसे मैं व्यवहार नहीं नित एक समान॥
दोष किसीका नहीं तनिक, मेरी भी है नीयत निर्दोष।
पर अशक्त मैं हूँ, पाता अपनेको 'दुर्बलताका कोश'॥
इसी हेतुसे होती रहती मुझसे भूलें हलकी-ठोस।
इससे आ जाता है मुझपर उनको अपनेपनका रोष॥
फिर, जो केवल ही है अपना, अपनेसे जो सदा अभिन्न।
जिसे देखना नहीं चाहता, क्षणभर भी मैं रञ्चक खिन्न॥
मुखपर कभी देख पाता मैं उसके लहरी सुखसे भिन्न।
होने लगता तब मेरा अति सबल हृदय भी मानो छिन्न॥
करता कातर स्तुति ईश्वरसे—'हे करुणासागर भगवान्!
सुखी करो इस मेरे प्रियको, कर दो इसे तुरत अम्लान॥

इसके अधरोंपर छा जाये भीतरसे निकली मुसकान।
हो जाऊँ मैं सुखी देखकर विकसित प्रिय विधु-वदन समान ।।
कभी न हो मुझसे कुछ ऐसी भूल, भूलकर भी पल एक।
सदा बताता रहे मुझे प्रियका सुख, जाग्रत रहे विवेक ।।
करूँ सदा प्रिय कार्य, रखूँ मैं उसकी प्यारी सारी टेक।
होता रहे सदा शुचि उसपर आनन्दामृतका अभिषेक ।।
तुम भी यही चाहते हो, करते हो तुम भी यही प्रयास।
भली तुम्हारी विमल भावना, शुद्ध तुम्हारा अति अभिलाष ।।
पर मनकी रुचि, स्थिति होती सब पृथक्-पृथक् होता विश्वास।
इससे मेल न खाता सबमें होता पृथक्-पृथक्-सा भास ।।
पर जो नित्य देख पाता सर्वत्र सदा लीला-विस्तार।
होता उसे, देख लीलामयकी लीला, अति, हर्ष अपार ।।
सभी अवस्थाओं, स्थितियोंमें वही खेलता नित अविकार।
देख उसे, नत-जीवन, करता रहूँ नित्य उसका सत्कार ।।

[१०८२]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

मुझसे कभी किसी प्राणीका हो जाये न अहित-अपमान।
सबमें तुम्हीं दिखायी दो, हो सबका मुझसे हित-सम्मान ।।
दुःख मिटानेमें औरोंके, अपना सुख कर दूँ बलिदान।
बढ़ते देख दूसरोंके सुख, मैं पाऊँ आनन्द महान ।।
अपने छोटे-से अघको मैं मानूँ बहुत बड़ा अपराध।
कभी न देखूँ दोष पराया, गुण सबके देखूँ निर्बाध ।।
घृणा करूँ मैं नहीं किसीसे, रहूँ सदा दुष्कृतसे दूर।
आने दूँ कुविचार न मनमें, रक्खूँ सद्विचार भरपूर ।।
बुरे सङ्गसे बचा रहूँ, नित करूँ प्रेमियोंका सत्सङ्ग।
रँगा रहे जीवन मेरा मधु पावन प्रेम-भक्तिके रङ्ग ।।

[१०८३]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

दुःख-मृत्युमें देखूँ मैं नित बहती सुखद सुधा-धारा।
अति दारिद्र्य-दैन्यमें पाऊँ मैं तव कर-स्पर्श प्यारा॥
पीड़ा-व्यथा भयानकमें दीखे मुझको तव मङ्गल-दान।
रूक्ष-परुष वाणीमें मैं सुन पाऊँ मधु मुरलीकी तान॥

[१०८४]

(राग बागेश्री—ताल कहरवा)

शान्ति, दया, स्वाभाविक करुणा, क्षमा, सुहृदता, निर्मल प्रीति।
नित्य अनन्त रूपमें रहतीं, अविचल सर्वभूत-हित नीति॥
तुम इनके अनन्त आकर, तुम सदा सहज सत्-चित्-आनन्द।
अमित नित्य ऐश्वर्य-पूर्ण तुम, स्वस्थ नित्य, प्रेमिक स्वच्छन्द॥
ऐसे तुममें रहता मैं नित, मुझमें भरे नित्य तुम पूर्ण।
समझ रहा मैं देह मानकर नश्वर निजको नित्य अपूर्ण॥
हर लो प्रभु अज्ञान, बताते रहो सदा अपना संधान।
नित्य तुम्हें पा, देखूँ निजको सुखी, शान्त, नीरोग महान॥
छू पाये न कभी, कोई भी, कैसा भी, सुख-दुःखामर्ष।
हर हालतमें प्राप्त करूँ मैं नित्य तुम्हारा ही संस्पर्श॥

[१०८५]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

सबको मिले सुबुद्धि, रहें सब सबके नित्य सुबन्धु सहर्ष।
पर-सुख-सुखी सभी हों, हर्षित नित्य देखकर पर-उत्कर्ष॥
दुखी-जनोंके दुःख-हरणका बढ़ता रहे नित्य उत्साह।
सहज समर्पित हों तन-मन-धन, बढ़ती रहे त्यागकी चाह॥
बुझे कलहकी आग जगत्में, हो शीतल सुप्रीति-विस्तार।
अनाचार अविचार मिटें सब, भ्रष्टाचार-असद् व्यवहार॥

'राजनीति' हो धर्मनियन्त्रित, हो 'धन'-'काम' धर्मसंयुक्त।
प्रभु-पद-पङ्कज-प्रीति लक्ष्य हो, हो जीवन वासना-विमुक्त॥
जीवमात्रमें आत्मभाव हो, मिटें क्रूरता, हिंसा-पाप।
सबमें मैत्री-करुणा हो, कोई न किसीको दे संताप॥
सभी सदा ही मङ्गलमय हों, त्रिविध तापका हो परिहार।
अखिल विश्वमें बरसे पावन परम मधुर प्रेमामृतधार॥
रहे सभीकी रति स्वधर्ममें, रहे सदा सबमें शुचि त्याग।
रहें सदा सत्सङ्ग-भजनमें, लीलामें शुचि रुचि-अनुराग॥
रहे प्रकृति संयत, हो सारी ऋतुओंका उपयुक्त विकास।
कभी क्षुधा-पीड़ित प्राणीके हो न स्वास्थ्य-जीवनका नाश॥
धरती प्रचुर अन्न-प्रसविनि हो, वृक्ष करें फल-दान अपार।
गायें मनों दूध दें, घृत दें, यज्ञ-यागका बढ़े प्रसार॥
चोर-डाकुओं, ठगों-उचक्कोंका न कहीं भी हो अस्तित्व।
सभी सत्यवादी हों, छीनें कभी न भूल पराया स्वत्व॥
नारी पतिव्रता हों सारी, हों न कभी विधवा, अति दीन।
पुत्र पिता-माता, गुरुजनकी सेवामें सहर्ष हों लीन॥
नित अनाथ-असहाय जनोंकी सेवामें मति रहे अमान।
हो अपमान न कभी किसीका, पाते रहें सभी सम्मान॥
कभी न उपजे मनमें किंचित् सेवाका कदापि अभिमान।
'हुई समर्पित प्रभुको प्रभुकी वस्तु'—रहे इतना ही भान॥
गो-ब्राह्मण-रक्षाके हित नित रहें सहज न्योछावर प्राण।
करते रहें सभी निज सुख दे, सबका ही अविरत कल्याण॥
रहे एक परमार्थवाद, सब मिटें दूसरे वाद-विवाद।
अग-जग अखिल शान्ति-सुख पायें, मिटें शोक-भ्रम-भीति-विषाद॥
मिटे आशु तम अशुचि, शीघ्र हो शुद्ध ज्योतिका उदय महान्।
सबमें सदा दिखायी दो सर्वत्र तुम्हीं मुझको भगवान्॥

सबका हित, सबकी सेवा नित बने, तुम्हारे ही प्रीत्यर्थ।
तुम्हीं सभी कुछ रहो, राम ! बस, मेरे एक अर्थ-परमार्थ॥
इन्द्रिय सभी त्याग भोगोंको, करें तुम्हारा ही सम्भोग।
स्मरण करे मन नित्य तुम्हारा, रहे बुद्धिका तुममें योग॥
रहे विराग सदा भोगोंसे रहे सदा ही सजग विवेक।
रहे सदा प्रभु-कृपा बरसती, टले न कभी प्रीतिकी टेक॥
रहे सदा रति प्रभु-चरणोंमें, रहे भक्तिगत चित्त अनन्य।
शान्ति-सुधा-सागर-निमग्न अति मधुर साधु-जीवन हो धन्य॥

[१०८६]

(राग सोहनी—ताल दादरा)

अव्यवस्थित व्यस्त घोर अशान्त इस जगमें प्रभो !
मैं व्यवस्थित, शान्त नित अव्यस्त हो विचरूँ विभो॥
जिन विदाही व्यसन-कार्य-विचारमें फँसकर सभी।
हो रहे संतप्त, मैं न फँसूँ, प्रभो ! उनमें कभी॥
काम-मद-विद्वेष-ईर्ष्या-रागमें अनुराग कर।
हो रहे उद्विग्न सब, वे हों न मुझमें तनिक भर॥
फँस 'अहं-मम'में निरन्तर नाचते बेताल सब।
मैं नहीं उनमें रहूँ, नाचूँ मिलाकर ताल अब॥
पर नहीं हो तनिक भी अभिमान इसका भूलकर।
भूल जाऊँ मैं नहीं तव कृपा, मदसे फूलकर॥
देख पाऊँ मैं अहेतुक कृपा मुझपर छा रही।
उसीके बल परमसे यह बुद्धि मुझमें आ रही॥
देखकर सबमें तुम्हींको, हो विनम्र रहूँ सदा।
'बड़ा' बनकर किसीका अपमान मैं न करूँ कदा॥
गुन तुम्हारे दिये जो मुझमें बसें आकर परम।
दुःखसे जलते जगत्‌को मिले उनसे सुख चरम॥
बन रहूँ नित दास मैं, शुचि सहज ही सेवा करूँ।
परम सेवक रूपमें तव मैं, प्रभो ! जीऊँ-मरूँ॥

[१०८७]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

प्रभुकी याद दिलानेवाले दुःख रहें नित मेरे पास।
प्रभुकी याद भुलानेवाले सुख-समूह हो जायें नाश॥
वह विपत्ति सम्पत्ति परम है, जिसमें प्रभुके हों दर्शन।
वह सम्पत्ति विपत्तिरूप है, हटवा दे जो प्रभुसे मन॥
वह अपमान मान सच्चा है, जिसमें हो शुभ प्रभुका भान।
जो प्रभुसे सम्पर्क छुड़ा दे, वह है जलनेलायक मान॥

[१०८८]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

सद्विचार हों उदित सर्वदा, प्रभुमें रहे सुदृढ़ विश्वास।
होता रहे नित्य जीवनमें सदाचारका विमल विकास॥
शुचि सत्कर्मोंमें प्रवृत्ति हो, बढ़े सदा दैवी सम्पत्ति।
धर्म सुरक्षित रहे, पड़े चाहे कितनी ही घोर विपत्ति॥
बनता रहे सहज ही तन-मन-वाणीसे सबका हित नित्य।
नित्य-सत्य-प्रिय प्रभुमें रति हो, मिटे जगत्-कल्पना अनित्य॥

[१०८९]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

रहै न रंचक राग-रति, माया-ममता-मोह।
हो निमग्न मन सुधानिधि-पदानन्द-संदोह॥
मन-मिलिन्द रह पान-रत पद-पङ्कज मकरन्द।
नित्य निरङ्कुश निशि-दिवस निरवधि निति निर्द्वन्द॥
रहै न मन ही मन बन्यौ, बनै तुम्हारौ यन्त्र।
तुम यन्त्री फूँको सदा निज मनमाने मन्त्र॥

[१०९०]

(राग बसन्त—ताल कहरवा)

बनूँ सदा रोगीकी औषध, निपुण वैद्य मैं नाशक रोग।
बनूँ सदा आतुरका आश्रय, दुख-भोगीके सुखका भोग॥
बनूँ सदा निर्बलका बल मैं, बनूँ नित्य भूखेका अन्न।
बनूँ पिपासितका पानी मैं, हों मुझसे उल्लसित विपन्न॥
बनूँ अमित धन-निधि, दरिद्रका हर लूँ सभी अभाव अपार।
बनूँ मान अपमानितका मैं, बनूँ तिरस्कृतका सत्कार॥
बनूँ सुखद मैं यान पङ्गुका, पुल बनकर कर दूँ मैं पार।
बनूँ नाव मैं जल-निमग्नकी, करूँ सहज उसका उद्धार॥
बनूँ मित्र मैं मित्रहीनका, पितृ-बिहीनका पालक बाप।
बनूँ पुत्र मैं पुत्रहीनका, मातृहीनकी माता आप॥
बनूँ बन्धु मैं बन्धुहीनका, थकित पथिकका आश्रय-धाम।
बनूँ पड़ोसीका हितकारक, बनूँ श्रमितका मैं विश्राम॥
बनूँ सभीका निकट कुटुम्बी, करूँ सभीकी सेवा नित्य।
बनूँ कष्टमें साथी सबका, झेलूँ उनके कष्ट अनित्य॥
बनूँ नाथ मैं लघु अनाथका, असहायोंका बनूँ सहाय।
बनूँ मार्ग मैं मार्गभ्रष्टका, निरुपायोंका बनूँ उपाय॥
बनूँ सेज सोनेवालोंकी, नग्न पदोंका पाद-त्राण।
बनूँ दास दासार्थीका मैं, बनूँ अकल्याणोंका कल्याण॥
बनूँ दीप दीपक-इच्छुकका, घाम-प्रपीड़ितकी छाया।
बनूँ ज्ञान अज्ञानीका मैं, हरण करूँ उसकी माया॥
बनूँ सभीका सभी तरहका सुख-सुहाग, कर दुःख-हरण।
सबको सुखी बना दूँ, कर लूँ समुद सभीका दुःख-वरण॥

[१०९१]

(राग काफी—ताल कहरवा)

प्रभुका लीला-मञ्च बने मेरा यह जीवन।
खेलें इसमें खुलकर वे मेरे जीवन-धन॥
चलें-फिरें, नाचें-कूदें, बैठें या सोयें।
रस बिखेरकर रसिक रुलायें या खुद रोयें॥
समता, त्याग, विराग, प्रेम-रसका आस्वादन।
करे दिव्य अविराम देखकर लीला जन-जन॥

[१०९२]

(राग परज—ताल कहरवा)

चित्त करे प्रभुका चिन्तन नित, करे सदा मन प्रभु-संकल्प।
बुद्धि विचार करे नित प्रभुका, करे न किंचित अन्य विकल्प॥
रहे सदा जीवन प्रभुका ही, प्रभुकी सेवामें नित लीन।
प्रभुकी शुद्ध प्रपत्ति रहे नित, भय-चिन्ता-ममत्व-मद-हीन॥
प्रति प्राणी—प्रत्येक स्थलमें प्रतिपल दीखें श्रीभगवान।
रहे सभीके हित-सुखका ही सहज सदा ही अनुसंधान॥
जगके प्रति परिवर्तनमें हो प्रभुकी लीलाका शुभ भान।
सब ही भले-बुरे शब्दोंमें सदा सुन पड़े प्रभु-गुण-गान॥
सुख-दुःखादि सभी द्वन्द्वोंमें हो प्रभुका पावन संस्पर्श।
मिटें हर्ष-उद्वेग सभी, हो प्रभु-संनिधिका नित्य प्रहर्ष॥
यन्त्री प्रभुके कर-कमलोंका बना रहूँ मैं यन्त्र अनन्य।
प्रभु-लीलाका सहज क्षेत्र बन, हो जाये यह जीवन धन्य॥

[१०९३]

(राग खमाच—ताल दादरा)

करूँ कुछ भी, कहूँ कुछ भी, चाहता पर मैं तुम्हें ही।
जनक-जननी, हित-स्वजनमें, चाहता हूँ मैं तुम्हें ही॥

पुत्र-मित्र, कलत्रगणमें, चाहता हूँ मैं तुम्हें ही।
विषय-इन्द्रिय-बुद्धि-मनमें, चाहता हूँ मैं तुम्हें ही॥
शक्ति-सुख-सम्पन्न तनमें, चाहता हूँ मैं तुम्हें ही।
अतुल-वैभव, विपुल धनमें, चाहता हूँ मैं तुम्हें ही॥
सुखद शुभ्र सुन्दर सदनमें, चाहता हूँ मैं तुम्हें ही।
कीर्ति-यश-कमनीय घनमें, चाहता हूँ मैं तुम्हें ही॥
भूमि-जल-पावक-पवनमें, चाहता हूँ मैं तुम्हें ही।
सब जगह व्यापक गगनमें, चाहता हूँ मैं तुम्हें ही॥
तुम्हें जानूँ, या न जानूँ, चाहता पर मैं तुम्हें ही।
चाहता मैं पूर्ण सुख हूँ, चाहता इससे तुम्हें ही।
चाहता मैं नित्य सुख हूँ, चाहता इससे तुम्हें ही॥
चाहता मैं अमर-जीवन, चाहता इससे तुम्हें ही।
चाहता स्वाधीन-जीवन, चाहता इससे तुम्हें ही॥

[१०९४]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

सब अच्छा खायें, सब अच्छा पहनें,सब ही रहें नीरोग।
सबके घर हों, सब शिक्षित हों, भोगें यथायोग्य सब भोग॥
करें परस्पर प्रेम सभी, सब करें परस्पर सुख-हित त्याग।
पर-सुखमें ही निज सुख मानें, पर-दुखमें अवश्य लें भाग॥
गिरे हुएको तुरत उठावें, दे अपना बल—अपना हाथ।
दुःख-रोग, भय-शोक मिटावें, हर विपत्तिमें देकर साथ॥
सबका भला सदा ही चाहें, करें भला अपना ही जान।
बदला चाहें नहीं, नहीं अभिमान करें, न करें अहसान॥
क्षमा-दान दे दोष मिटावें, प्रेम-दान दे खो दें बैर।
समझें सबको निज आत्मा ही, नहीं किसीको समझें गैर॥
कपट न करें, न ठगें किसीको, सबसे सत्य सरल व्यवहार।
करें नहीं अपमान किसीका, सबका करें सदा सत्कार॥

मान न चाहें स्वयं किसीसे, सबको दें सादर-सम्मान।
बोलें मधुर सरल हितकर सच्चे शुचि वचन सदा रसखान॥
सबकी सेवा करें, सभीको दें अति मधुर शान्तिका दान।
सबमें प्रभुको देख सदा ही करें सभीका पूजन-मान॥

[१०९५]

(राग सोहनी—तीन ताल)

तुमहि तजि जाऊँ कहाँ अब प्यारे।
दीखत नायँ कतहुँ कोउ मेरौ, सब ही मो तैं न्यारे॥
ममता सहित रहत सब निज घर लिए साथ भय-सोक।
प्रभु-पद-पद्म एक घर मेरो आनँद-धाम असोक॥
सब के धन, जस, बस्तु, पुत्र-पितु, पति-पतिनी, परिवार।
तुम्हीं एक मेरे सब प्रानि-पदार्थ सगे संसार॥
काम अनेक महत् तिन के तिन को गुरुत्तर दायित्व।
एक काम मम दरसन-सुमिरन सेवक अमित महत्त्व॥
चलत सबहि अपने-अपने पथ, पथ रिजु-कुटिल अनेक।
मेरो पथ-पाथेय परम प्राप्तव्य तुमहि बस एक॥
जग में वेई पूज्य परम प्रिय वेई आदर-जोग।
जो सब कौं सुख-हित साधैं नित जो सेवैं सब लोग॥
अकर्मन्य आलसी नहीं सेवा की मन कछु बात।
एक तुम्हारे चरननि में मैं पर्‌यौ रहूँ दिन-रात॥
ऐसे करतब-रहित प्रमादी कौं नहिं जगमें ठौर।
तुमहि एक आश्रय पतितनके नहिं अग-जग कोउ और॥

[१०९६]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

बिछुरन-मिलन सरीर कौ नित प्रारब्धाधीन।
मन कौं रखियै नित्य निज प्रियतम-स्मृतिमें लीन॥

मन कौ मिलन सदा सुखद, सहज, नित्य निर्बाध।
देश-काल के भेद बिनु पूरत मन की साध॥
भीड़-छीड़ होय, नगर-बन, घर या होय बाजार।
अंतर हिय उछरत रहत नित रस-पारावार॥
बूड़ौ चाहे अतल-तल, नाचौ होय तरंग।
एकमेक ह्वै रहौ सब, बाहर-भीतर अंग॥

[१०९७]

(राग देशी खमाच—ताल कहरवा)

स्वागत ! स्वागत ! आओ प्यारे !
दर्शन दो नयनोंके तारे॥
बालककी मधुरी हाँसीमें। मोहनकी मीठी बाँसीमें।
मित्रोंकी निःस्वार्थ प्रीतिमें। प्रेमीगणकी मिलन-रीतिमें॥
नारीके कोमल अन्तरमें। योगीके हृदयाभ्यन्तरमें॥
वीरोंके रणभूमि-मरणमें। दीनोंके संताप-हरणमें॥
कर्मठके कर्म-प्रवाहमें। साधकके सात्त्विक उछाहमें।
भक्तोंके भगवान-शरणमें। ज्ञानवानके आत्म-रमणमें॥
संतोंकी शुचि सरल भक्तिमें। अग्निदेवकी दाह-शक्तिमें॥
गङ्गाकी पुनीत धारामें। पृथ्वी-पवन, व्योम-तारामें॥
भास्करके प्रखर प्रकाशमें। शशधरके शीतल विकासमें॥
कोकिलके कोमल सुस्वरमें। मत्त मयूरी केका-रवमें॥
विकसित पुष्पोंकी कलियोंमें। काले नखराले अलियोंमें॥
सबमें तुम्हें देखते सारे। पर न पकड़ पाते मतवारे॥
निज पहचान बता दो प्यारे। छिपना छोड़ो, जग उजियारे॥
स्वागत ! स्वागत ! आओ प्यारे !
मेरे जीवनके 'ध्रुवतारे'॥

[१०९८]

(राग मलार—ताल रूपक)

सुन्यो तेरो पतित-पावन नाम !
अजामिल-से पतितको तैं दियो अपनो धाम ॥
ब्याध-खग-मृग जे रहे नित धरम तें उपराम।
किये पावन अति पतित ते भये पूरन-काम ॥
कठिन कलि के काल अपि तारे अनेक कुठाम।
धरमहीन, मलीन, पातक निरत आठों जाम ॥
पाप करत उछाह-जुत, मम मन न लीन्ह बिराम।
तदपि अजहुँ न मोहि तार्‌यौ, किमि बिसार्‌यौ नाम ॥

[१०९९]

(राग आसावरी)

मो कों कछु न चहिये राम।
तुम बिन सबही फीके लागैं, नाना सुख धन-धाम ॥
सुंदरि, संतति, सेवक, सब गुन, बुधि बिद्या भरपूर।
कीरति, कला-निपुनता, नीती, इन कौं रखिये दूर ॥
आठ सिद्धि, नौ निद्धि आपनी और जनन कौं दीजै।
मै तौ चेरौ जनम-जनम-कौ, कर धरि अपनौ कीजै ॥

[११००]

(राग केदारा—ताल तीन ताल)

चहौं बस एक यही श्रीराम।
अबिरल अमल अचल अनपाइनि प्रेम-भगति निष्काम ॥
चहौं न सुत-परिवार, बंधु-धन, धरनी, जुवति ललाम।
सुख-वैभव उपभोग जगतके चहौं न सुचि सुर-धाम ॥
हरि-गुन सुनत-सुनावत कबहूँ, मन न होइ उपराम।
जीवन-सहचर साधु-संग सुभ, हो संतत अभिराम ॥
नीरद-नील-नवीन-बदन अति सोभामय सुखधाम।
निरखत रहौं बिस्वमय निसि-दिन, छिन न लहौं बिस्राम ॥

[११०१]

(राग बहार)

सनातन-सत-चित-आनँद-रूप । अगुण, अज, अव्यय, अलख, अनूप ॥
अगोचर, आदि, अनादि, अपार । विश्व-व्यापक, विभु, विश्वाधार ॥
न पाता जिनकी कोई थाह । बुद्धि-बल हो जाते गुमराह ॥
संत श्रद्धालु, तर्क कर त्याग । सदा भजते मनके अनुराग ॥
समझकर विषवत् सारे भोग । त्याग, हो जाते स्वस्थ-निरोग ॥
एक, बस, करते प्रियकी चाह । विचरते जगमें बेपरवाह ! ॥
धरा, धन, धाम, नाम, आराम । सभी कुछ राम विश्व-विश्राम ॥
प्रेम-सागरकी तुङ्ग तरंग । बाँध मर्यादाका कर भङ्ग ॥
बहा ले जाती जब श्रुतिधार । संत तब करते प्रेम-पुकार ॥
प्रेमबश विह्वल हो श्रीराम । भक्त-मन-रञ्जन अति अभिराम ॥
दिव्य मानव-शरीरवर धार । अनोखा, लेते जग अवतार ॥
मदन-मन-मोहन, मुनि-मन-हरण । सुरासुर सकल विश्व सुख-करण ॥
मधुर मञ्जुल मूरति द्युतिमान । विविध क्रीड़ा करते भगवान ॥
दयावश करते जग-उद्धार । प्रेमसे, तथा किसीको मार ॥
विविध लीला विशाल शुचि चित्र । अलौकिक सुखकर सभी विचित्र ॥
जिन्हें गा-सुनकर मोहागार । सहज होते भव बारिधि पार ॥
तोड़ माया-बन्धन जग-जाल । देखते 'सीय-राम' सब काल ॥
यही सुन्दर मृदु युगल-स्वरूप । दिखाते रहो राम रघु-भूप ! ॥
'सकल जग सीय-राममय' जान । करूँ सबको प्रणाम, तज मान ॥

[११०२]

(राग भैरवी)

सकुच भरे अधखिले सुमनमें छिपकर रहता प्रेम-पराग ।
नव-दर्शनमें मुग्ध प्राणका होगा मूक मधुर अनुराग ॥
भय-लज्जा, संकोच-सहम, सहसा वाणीका निपट निरोध ।
वाचा-रहित, नेत्र-मुख अवनत, हास्य-हीन, बालकवत् क्रोध ॥

****

जो उसने था किया, इसी स्वाभाविक रसका ही व्यवहार।
तो देना था तुम्हें चाहिये उसे हर्षसे अपना प्यार॥
हृदयंगम करना आवश्यक था वह सरल प्रणयका भाव।
नहीं तिरस्कृत करना था नवप्रेमिकका वह गूँगा चाव॥

प्रथम मिलनमें ही क्या समुचित है समस्त संकोच-विनाश।
क्या उससे वस्तुतः नहीं होता नवीन मधु-रसका नाश॥
नव कलिकाके लिये चाहना असमयमें ही पूर्ण विकास।
क्या है नहिं अप्राकृत और असंगत उससे ऐसी आस?

क्या नव-वधू कभी मुखरा बन कर सकती प्रियसे परिहास।
क्या वह मूर्खा या संदिग्धा बन सह सकती मिथ्या त्रास?
क्या वह प्रौढ़ा-सदृश खोल अवगुण्ठन कर सकती रस-भङ्ग?
क्या बहने देती, मर्यादा तजकर, सहसा हास्य-तरंग?

क्या 'मूकास्वादनवत्' होता नहीं प्रेमका असली रूप?।
क्या उसमें है नहीं झलकता प्रेम-पयोधि गँभीर अनूप?॥
क्या है नहीं प्रसन्न इष्टको मानस पूजा ही करती?
क्या वह नहीं बाह्य पूजासे बढ़कर इष्ट हृदय हरती॥

यदि नव प्रेमिकने तुमको पूजा केवल मनसे ही नाथ?
स्तम्भित, कम्पित, मुग्ध हर्षसे कह-सुन कुछ भी सका न नाथ॥
क्या इससे हे प्रेमिकबर प्रभु! हुआ तुम्हारा कुछ अपमान!
क्या इसमें अपराध मानते सरल भक्तका हे भगवान!॥

यदि ऐसा है नहीं देव! तो क्यों फिर होते अन्तर्द्धान?
क्यों दर्शनसे वञ्चित करते, क्यों दिखलाते इतना मान॥
क्यों आँखोंसे ओझल होते, पता नहीं क्यों बतलाते?
क्यों भक्तोंको सुख पहुँचाने नहीं शीघ्र सम्मुख आते?

[११०३]

(धुन लावनी—ताल कहरवा)

शुद्ध, सच्चिदानंद, सनातन, अज, अक्षर, आनँद-सागर।
अखिल चराचरमें नित व्यापक अखिल जगत्‌के उजियागर॥
विश्व-मोहिनी मायाके मोहन मनमोहन! नटनागर!
रसिक श्याम! मानव-बपु-धारी! दिब्य भरे गागर सागर॥
भक्त-भीति-भंजन, जन-रंजन नाथ निरंजन एक अपार।
नव-नीरद-श्यामल सुन्दर शुचि, सर्वगुणाकर, सुषमा-सार॥
भक्तराज वसुदेव-देवकीके सुख-साधन, प्राणाधार।
निज लीलासे प्रकट हुए अत्याचारीके कारागार॥
पावन दिव्य प्रेम पूरित ब्रजलीला प्रेमीजन-सुख-मूल।
तन-मन-हारिणि बजी बंसरी रसमयकी कालिंदी-कूल॥
गिरिधर, बिबिध रूप धर हरिने हर ली बिधि-सुरेन्द्रकी भूल।
कंस-केसि वध, साधु-त्राण कर यादव-कुलके हर हृच्छूल॥
समराङ्गणमें सखा भक्तके अश्वोंकी कर पकड़ लगाम।
बने मार्गदर्शक लीलामय प्रेम-सुधोदधि, जग-सुखधाम॥
प्रेमी पार्थ-ब्याजसे सबको करूणाकर लोचन अभिराम।
शरणागतिका मधुर मनोहर तत्त्व सुनाया सार्थ ललाम॥
'मन्मना भव, भव मद्भक्तः, मद्याजी, कर मुझे प्रणाम।
सत्य शपथयुत कहता हूँ प्रिय सखे! मुझीमें ले विश्राम॥
छोड़ सभी धर्मोंको मेरी एक शरण हो जा निष्काम।
चिंता मत कर, सभी पापसे तुझे छुड़ा दूँगा प्रिय काम!,॥
श्रीहरिके सुखमय मंगलमय प्रण-वाक्योंकी स्मृति कर दीन।
चित्त! सभी चंचलता तजकर चारु चरणमें हो जा लीन॥
रसिकविहारी मुरलीधर, गीता-गायकके हो आधीन।
त्रिभुवन-मोहनके अतुलित सौंदर्याम्बुधिका बन जा मीन॥

[११०४]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

प्रभु अनन्त आनन्द-सुधा-निधि—है यह दृढ़ विश्वास।
वे प्रियतम प्रभु नित्य तुम्हारे ही रहते हैं पास॥
डूबी रहो उन्हीं रस-आनन्दाम्बुधिमें दिन-रात।
मनमें क्यों आने देती हो व्यर्थ दूसरी बात॥
वे लीलामय करते रहते लीला नित्य विचित्र।
लीलाके स्वाँगोंको क्यों तुम मान रही अरि-मित्र॥
देखो उनके विविध रस-भरे लीला-खेल अनेक।
तनिक न उगने दो भ्रम-अङ्कुर रक्खो पूर्ण विवेक॥
देखो नित्य उन्हींके मृदु मुसकाते मुखकी ओर।
रहो सदा रसमत्त, रहो नित ही आनन्द-विभोर॥
पाती रहो सदा तुम उनका मधुरालिङ्गन-स्वाद।
बाहर-भीतर भरे रखो नित प्रभुका प्रीति-प्रसाद॥

[११०५]

(राग मालगुञ्जी—ताल एकताल)

मन बन मधुप हरिपद-सरोरुह लीन हो।
निश्चिन्त कर रस-पान भय-भ्रम हीन हो॥ टेक॥
तू भूलकर सारे जगतकी भावना,।
रह मस्त आठों पहर, मत यों दीन हो॥ मन०॥
तू गुनगुनाहट छोड़ बाहरकी सभी,।
बस रामगुन गुंजार कर मधु पीन हो॥ मन०॥
तू छोड़ दे अब जहँ-तहाँका भटकना,।
तू हरि चरण आश्रित यथा जल-मीन हो॥ मन०॥

[११०६]

(राग खमाच)

रे मन हरि-सुमिरन करि लीजै ॥ टेक ॥
हरि को नाम प्रेम सों जपिये, हरि-रस रसना पीजै ।
हरिगुन गाइय, सुनिय निरंतर, हरि-चरननि चित दीजै ॥
हरि-भगतन की सरन ग्रहन करि, हरिसँग प्रीति करीजै ।
हरि-सम हरि-जन समुझि मनहिं मन तिन कौ सेवन कीजै ॥
हरि केहि विधि सौं हम सों रीझैं, सो ही प्रश्न करीजै ।
हरि-जन हरि-मारग पहिचानै, अनुमति देहिं सो कीजै ॥
हरि-हित खाइय, पहिरिय हरि-हित, हरि-हित करम करीजै ।
हरि-हित हरि-सम सब जग सेइय, हरि-हित मरिये-जीजै ॥

[११०७]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

मनमें चाह जगी थी प्रियतम ! हो प्रभुका महिमा-विस्तार ।
सबके दुःख-दाह मिट जायें, पा प्रभुके पद-कमल उदार ॥
पता नहीं, क्यों जगी चाह यह, क्यों बदला जीवनका ढंग ।
क्यों तुमने नित नये दिखाये फिर निज विविध रूप-रस-रंग ॥
चमकी परम दिव्य बिजली-सी, बही सरस शुचि साधन-धार ।
उमड़ी, बढ़ी चली हो टेढ़ी, रंग बदलती बारम्बार ॥
क्यों तुमने छीना सब, क्यों फिर दिया अनोखा प्यार-दुलार ।
क्यों विरोधिनी दी तुमने प्रख्याति निम्नगामिनि, निस्सार ॥
यह तो निश्चित है, तुम जो करते, उससे होता कल्याण ।
पर क्यों बार-बार करते परिवर्तन, लीलामय ! भगवान ?
बचे-खुचे जीवनको कर लो अब, बस अपनेमें ही लीन ।
निर्मल, शान्त बना लो, रक्खो कभी न रञ्चक हीन-मलीन ॥
मेरी सारी चाह, चाहकी वस्तु, सभीके तुम आधार ।
मुझको भी निज वस्तु जानकर, कर लो प्रभु सत्वर स्वीकार ॥

[११०८]

(राग वसन्त—ताल कहरवा)

उनके होकर हम दुःखी हों तो उनको दुख पहुँचाते हम।
उनके सुखमें यों बाधक बन उनपर कालिमा लगाते हम॥
उनपर यदि है विश्वास हमें तो क्यों इतना सकुचाते हम?
यों भय-विषादके अति वश होनेमें क्यों नहीं लजाते हम?
हमको दुःखी देखकर प्यारे तनिक दुःख यदि हैं पाते।
अति अपराधी, क्यों न हमारे सभी मनोरथ मर जाते?
क्यों न सदा हम सुखी परम हों, उन्हें, खूब सुख पहुँचाते?
क्यों न सदा प्रसन्न-मुख हँस-हँसकर हम उन्हें हँसा पाते?
प्यारे! हँसो, रहो ही हँसते, तुमको खूब हँसायें हम।
प्यारे! सदा प्रसन्न रहो, तुमको अति सुखी बनायें हम॥
तन-मन-बुद्धि तुम्हारे सारे, इनको नहीं रुलायें हम।
वस्तु तुम्हारीको सुख देते संतत शुचि सुख पायें हम॥

[११०९]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

कर लो आत्मसात् तुम मुझको अपनेमें, मेरे सर्वस्व!
मेरे अहंकार-ममताका रह न जाय कुछ भी अस्तित्व॥
तुममय हो जाऊँ मैं, कुछ भी रहे न मेरा तुमसे भिन्न।
तुममें एकमेकता मेरी रहे नित्य अक्षय अच्छिन्न॥
तुम ही मुझमें बोलो, देखो, सुनो, करो सारे ही काम।
तुम ही स्पर्श करो, सूँघो सब, चक्खो रस विभिन्न अभिराम॥
हो जायें सब धन्य तुम्हें पा, हो जायें सब ही कृतकृत्य।
चलता रहे तुम्हारा केवल इसमें लीलामय! रस-नृत्य॥

[११११०]

(राग वागेश्री—ताल कहरवा)

बिना प्रीति नहिं मिलते प्रियतम, बिना त्याग मिलती नहिं प्रीति।
सर्वत्याग इसीसे प्रियतम-प्रीति-प्राप्तिकी सुन्दर रीति॥
धन-सम्पत्ति, मान-पद-गौरव, इन्द्रिय-सुखकर भोग अनन्त।
सबको सहज त्याग जो करता मुक्ति-वासनाका भी अन्त॥
स्व-सुख-वासना लेशमात्र भी कभी न रहती किसी प्रकार।
मिलती उज्ज्वल प्रीति परम उस भाग्यवान जनको अविकार॥
लहराता इस दिव्य सुधा-रसका है पारावार अगाध।
सफल करो जीवन, उन राधाका कर आराधन निर्बाध॥

[११११]

(राग जंगला—तीन ताल)

जान गया जो भरी हुई हैं दुर्बलता मेरे अंदर।
दूर करूँगा उन्हें तुरत अब मैं, प्रभुके बलको पाकर॥
मैं प्रमाद-आलस्य न आने दूँगा कभी, तनिक अभिमान।
शक्ति-प्रेरणा-स्फूर्ति सभी, सत्ता केवल प्रभुकी ही जान॥
देखूँगा प्रत्येक कर्म शुभमें मैं प्रभुका ही, बस, हाथ।
पल-पलमें नव बल पाऊँगा, पाकर प्रभु-चरणोंका साथ॥
करते हैं सब जगमें जैसे बाह्य वस्तुओंका नित दान।
मुक्त हस्तसे वैसे ही मैं दूँगा प्रभुका प्रेम महान॥
पाकर प्रेम परम प्रभुका, फिर होगा सारा जग पावन।
सबमें फिर निर्बाध चलेगी लीला उनकी मन-भावन॥

[११११२]

(राग मालगुञ्ज—ताल कहरवा)

दर-दर भटक, नीच मैं, पटक-पटककर सिर, हो निपट निराश।
धक्कोंसे घबराकर, अब आया चरणोंमें करने वास॥

कितनी चोटें सहीं, गड़े कितने पग कंकड़-काँटे-शूल।
मूर्ख कष्ट क्लेशोंमें खोया जीवन, तुम्हें भुला सुखमूल॥
होकर विमुख दया सागरसे, दुर्गन्धित जालोंके बीच।
पड़ा सड़ रहा भाग्यहीन मैं फिर-अपराधी पामर नीच॥
रहा अभीतक वञ्चित मैं इन पावन चरणोंसे मति हीन।
वञ्चित हो अब सब अग-जगसे हो असहाय अन्तमें दीन।
आ पहुँचा मैं दुखी आर्त अति दीनबन्धुके निर्भय द्वार।
चरण-शरण दो निज स्वभाववश सहज मुझे, हे करुणागार॥

[१११३]

(राग जैतश्री—ताल धमार)

तव अनन्त आशाका दीपक अमर जला दो जीवनमें।
मरण-अनन्तर सुप्रभात हो तव पद-पङ्कज सेवनमें॥
ले लो सब आनन्द, और यह प्रीति गीति सब ले लो नाथ!।
भीतर-बाहर एकमात्र हो तुम ही मेरे जीवन-नाथ!॥

[१११४]

(राग पटदीप—ताल त्रिताल)

ईश-विरोधी धर्म-विरोधी भाव जायँ सब भाग।
माँ सुलगा दो हृदय देशमें श्याम-विरहकी आग॥
सबकी सेवामें हो, सबकी उन्नतिमें अनुराग।
पर अवनति-अपकार अशुभका जीवनमें हो त्याग॥
ईश-विरोधी वस्तुमात्रमें मनमें रहे विराग।
सदा रहे आनन्द-शान्ति शाश्वत, हो शुचि बड़भाग॥
ज्योतिर्मय हो जीवन सारा, मिट जाये जग-राग।
प्रभु-पद-प्रेम पुनीत शीघ्र हो उठे मधुरतम जाग॥

[१११५]

(राग शिवरञ्जनी—तीन ताल)

नहीं करूँगा कभी किसीका अब तन-मन-धनसे अपमान ।
सबमें सदा देख प्रभुको, मैं सदा करूँगा शुचि सम्मान ॥
परुष-व्यंग्य-निन्दा वचनोंका नहीं करूँगा मैं व्यवहार ।
सदा करूँगा सबका सुधामयी हित-वाणीसे सत्कार ॥
सबमें प्रभुके मैं अनुपम गुण-गण ही देखूँगा सब ओर ।
नमन करूँगा मैं सबके पद-कमलोंमें, हो भाव-विभोर ॥
प्राणि-पदार्थ सभी देंगे फिर मुझको नित्य परम आनन्द ।
क्योंकि सभीमें दीख पड़ेंगे मुझे नित्य सत्-चित् आनन्द ॥

[१११६]

(राग मालकोस—तीन ताल)

माधव ! मन नहिं मानत बोध ।
हौं समुझाइ थक्यौ, दौरत नित प्रतिपल तजि अवरोध ॥
रूप-अमिय-रस-पान करन कौं अतिसय हिय उल्लास ।
होत न कबहुँ निरास, सतत संलग्न परम बिसवास ॥
तुम्हरी सुनत, सुनावत अपनी, तज मरजादा-लाज ।
रहत सदा अनुराग्यौ संतत तुम सन नागर राज ॥
भूल्यौ अग-जग कौ प्रपंच सब, भूल्यौ तन-धन-मान ।
एक तुम्हारे चरन-कमल में अरपन कीन्हें प्रान ॥
भुक्ति-भक्ति, अनुरक्ति-मुक्ति—सब बिसरी, रही न एक ।
गति-मति-रति नित पद-पदमनि महँ—रही यहै बस टेक ॥

[१११७]

(राग बागेश्री—ताल त्रिताल)

दीन बन्धु हे करुणाकर प्रभु ! दे दो मुझे प्रपत्ति अनन्य ।
शरणागतवत्सल हे मुझको दे निज आश्रय कर दो धन्य ॥

देखूँ सदा सभीमें तुमको, करूँ सभीको नमन-प्रणाम।
हो स्वाभाविक हित सबहीका करूँ सदा सेवा निष्काम॥
कभी न व्यापे क्रोध-काम-मद-लोभ-मान-भय-शोक-विषाद।
सदा तुम्हारी बनी रहे प्रिय मुझको एक मधुरतम याद॥
भोगोंमें न खिंचे मन निशिदिन करता रहे तुम्हारा ध्यान।
तुम ही बनो मान-मर्यादा-धन-ऐश्वर्य पवित्र महान॥
एक तुम्हीं बस जीवनमें रह जाओ मेरे जीवन-प्राण।
मरनेपर भी मिलूँ तुम्हींसे तुम्हीं बनो मेरे निर्वाण॥

[११९८]

(राग बसन्त—तीन ताल)

सुनावौ कबि ! (तुम) रचना ऐसी आज।
(जातें) होय समरपित पूरन मति-मन प्रिय-पद, सजि सुचि सुंदर साज॥
अनिमिष निरखत रहैं नैन नित प्रियतम-मुख-विधु-रूप ललाम।
बानी नित नव-नव उछाह सौं करती रहै गान गुन-नाम॥
पीवत रहैं अतृप्त मधुर मुरली-धुनि-सुधा, नाम-गुन कान।
प्रियतम-अंग-सुगंध मधुरतम सूँघत रहै निरंतर घ्रान॥
प्रिय-प्रसाद-रस रसमय रसना चाखत रहै परम अबिराम।
प्रिय के अँग-परसन कौ सुख नित त्वक लेत रहै रस-धाम॥

[११९९]

(राग देश—तीन ताल)

धन-जन-कविता सुंदरी, चहौं न मैं जगदीस।
बनी रहै प्रति जन्म में भक्ति अहैतुकि, ईस॥

—★—

अनुभूति

[११२०]

(राग पीलू—तीन ताल)

मेरे परम सुखके धाम।

बसत मेरे उर निरंतर प्रान-धन घनस्याम॥

नित्य नव सुंदर मनोहर नित्य परमानंद।

नित्य नूतन मधुरतम लीला करत स्वच्छंद॥

रह्यौ नहिं कछु और हिय में लोक अरु परलोक।

मिटे सारे द्वन्द्व जग के, हटे भय अरु सोक॥

रहे होय स्वरूप मेरे, खिली प्रभु की कांति।

नित्य आत्यंतिक परम सुख, नित्य सास्वत सांति॥

[११२१]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

क्षणभर नहीं छोड़ते मोहन, नित्य बने रहते हैं सङ्ग।

देश-कालका भेद नहीं कुछ, पल-पल उठती अमित उमङ्ग॥

घरमें-वनमें, बाहर-भीतर बहुत काममें, या बेकाम।

शयन-जागरण, खान-पानमें-संग सदा ही रहते श्याम॥

भोग-वासना मिटी सभी, मिट गया मोक्षका भी व्यामोह।

रहे एक वे नागर नटवर नित्य निरंतर बिना बिछोह॥

नहीं लोक-परलोक किसीका रहा कहीं कोई भी अर्थ।

सभी समय सर्वत्र स्वयं वे नाच रहे बिशुद्ध परमार्थ॥

इन्द्रिय-मन-मति—सभी हो गये श्यामरूप बनकर अति धन्य।

रहा न प्राणि-पदार्थ दूसरा, श्याम एक रह गये अनन्य॥

[११२२]

(राग पीलू—तीन ताल)

जब ते हिये बिराजे स्याम।
तब ते बन्यौ मंजु रस-मंदिर पावन परम ललाम॥
जग के राग-कामना-ममता-मोह-मान-मद-रोष।
लोभ, दंभ, भय, सोक, ईरिषा, मत्सर, हिंसा, दोष॥
मंदिर में न रहन कोउ पावत छिनहूँ करि परबेस।
भानु उदै जिमि तनिक अँधेरौ रहन न पावत सेस॥
प्रगट भए सब लीला-परिकर, उद्दीपन-संभार।
उमग्यौ रस-बारिधि तजि तट-भुवि, बही रस-सुधा-धार॥
चल्यौ प्रिया-प्रीतम कौ चिन्मय रसमय रास-बिलास।
सेवा-सुख-संलग्न सखीं सब उर अति भर्‌यौ हुलास॥
छायौ प्रखर प्रकास सकल दिसि, आत्यंतिक आनंद।
नित नव-नव निरुपम रस-लीला प्रगटत सुचि सुच्छंद॥

[११२३]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

राधा-माधव बसि रहे हिय महँ नित्य ललाम।
मुख निरतत नित नव मधुर राधा-माधव-नाम॥
राधा-माधव-प्रेम-रस-सुधा दिव्य सुमहान।
स्वसुख-बासना-रहित चित करत निरंतर पान॥

[११२४]

(राग परज—ताल कहरवा)

मेरे द्वारा बोल रहे हैं केवल मेरे वे भगवान।
मेरे द्वारा छेड़ रहे हैं वे निज मधु मुरलीकी तान॥
मेरे जीवनमें है अब तो एकमात्र उनका ही स्थान।
अतः उन्हींकी होती मुझमें क्रिया नित्य सब क्षुद्र-महान॥

[११२५]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

हटते नहीं एक पल भी वे मुझे छोड़कर प्रियतम श्याम।
सोते-जगते, खाते-पीते, हरदम रहते पास ललाम॥
नित्य दिखाते रहते अपनी अति पवित्र लीला सुख-धाम।
बाहर-भीतर, तनमें-मनमें देते रहते सुख अविराम॥

[११२६]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

कर दिया प्रभुने मुझे निहाल। हटा आवरण, कटा जंजाल॥
दीखते अनावरण नँदलाल। बजाते मुरली मधुर रसाल॥
सदा-सर्वत्र सभीमें श्याम। विविध लीला करते अभिराम॥
खेलते अपनेमें अविराम। भरे होठों मुसकान ललाम॥
बनाकर विविध वेष औ साज। साथ ले तत्-अनुकूल समाज॥
गान गाते ही उठते गाज। रचाते कभी मिटाते राज॥
नित्य रसरूप रसिक-सिरमौर। एक ही तत्त्व, न कोई और॥
बहाते रस-धारा सब ठौर। युगल मनमोहन श्यामल-गौर॥
सर्वपर, सर्व सर्व-अधिराज। एक ही, दो बन, रहे विराज॥
देख मैं महाभाव-रसराज। हो गया सफल, मिटे सब काज॥

[११२७]

(राग गजल—ताल कहरवा)

सची सुहागिन, मैं दुहागिन, हूँ मेरे भर्तारकी।
भूखी हूँ अपनत्वकी, भूखी नहीं सत्कारकी॥
मुझको अपनी मानते हैं, याद रखते नित मुझे।
इसीसे डरते नहीं हैं दुःख देनेमें मुझे॥
हैं सताते वे मेरे प्यारे मुझे दिल खोलकर।
हूँ सदा उनकी, हिचकते हैं नहीं यों बोलकर॥

दुःख देनेमें मुझे यदि, उनको मिलता तनिक सुख।
यही तो सौभाग्य मेरा, यही मेरा परम सुख॥
चाहती हूँ मैं नहीं उनसे निजेन्द्रिय-सुख कभी।
इसीसे सुखदायिनी हैं हरकतें उनकी सभी॥
उनकी अपनी वस्तुपर उनका सदा अधिकार है।
मारें, ठुकरायें, सतायें, चूँकि वे भर्तार हैं॥
अपने मनसे बर्तते, कर भोगसे वञ्चित मुझे।
यही तो आत्मीयता है, इसीका गौरव मुझे॥

[११२८]

(राग काफी—ताल कहरवा)

अन्तरमें हो रहा खेल अति मधुर विलक्षण।
बाहर कैसे दीखे वह निश्शब्द, अलक्षण॥
कौन बताये? किसे? वहाँके कैसे अनुभव।
आ न सके पल एक छोड़कर वह रस नित नव॥
बाहर आते समय रोक देती वह लीला।
भीतर ही है रमा रही वह चारु सुशीला॥
उस लीलाका त्याग बड़ा ही कठिन, असम्भव।
इसीलिये बन रहा नहीं बाहर कुछ सम्भव॥
चलती लीला ललित अपरिमित नित नव नूतन।
कुसुम-सरोवर ही क्यों, अगणित सर-निकुञ्ज-वन॥
मधुर, मनोहर, सुधामयी लीला नित होती।
जगी उसीमें वृत्ति, बाह्य जगमें वह सोती॥
मन-इन्द्रिय, सब अङ्ग, बुद्धि उसमें ही तन्मय।
हुए इसीसे बाह्य बुद्धिके कार्य सभी लय॥

[११२९]

(राग सोहनी—ताल दादरा]

हर वस्तुका आधार जो, हर वस्तु जिसकी मूर्ति है।
जिसके सिवाय न कहीं कुछ भी, जो सभीकी पूर्ति है॥
जो स्वयं सबमें सदा सम, जो सर्वथा निर्लेप है।
करता विविध लीला विषम, लगता न जिसको चेप है॥
जो नित्य निर्गुण-सगुण, बिन-आकार नित साकार है।
जो सब विकारोंसे भरा, जो सर्वथा अविकार है॥
जो सर्वमय, जो सर्व, सर्वातीत, जो सविशेष है।
जो निर्विशेष सदा, बना शेषी स्वयं जो शेष है॥
है नित्य ही अनुस्यूत सबमें, सभीमें भरपूर है।
सबसे निराला, नित्य एकाकी, सभीसे दूर है॥
शुचि एक जिसका रूप शाश्वत सत्य-चित्-आनन्द है।
जो अचल, नित कूटस्थ, केवल ज्ञानमय स्वच्छन्द है॥
जिसमें सदा रहते विरोधी गुण परस्पर एक साथ।
है परम भगवत्ता सभीको संग रख करती सनाथ॥
जो दिव्य मधु-रसपूर्ण सागर शान्त अति गम्भीर है।
जो नित्य बन लहरें उछलता, लाँघ जाता तीर है॥
अति अमित ये उत्ताल मृदुल तरंग जिसका रूप है।
जो सर्व-सुलभ, सुचिन्त्य अति, जो नित अचिन्त्य-स्वरूप है॥
जो उछलता-कूदता आनन्दका आनन्द है।
जो ब्रह्म, शाश्वतधर्म, सुखका भी प्रतिष्ठानन्द है॥
मुनि-परमहंसोंके मरे मनको तुरत देता जिला।
देता परम आनन्द निज गुण-रूपका मधुरस पिला॥
हरता सहज मन सिद्ध-मुनियोंके, रमणियोंके सदा।
जो प्रेम-बन्धनमें बँधा खुद, छूट नहिं पाता कदा॥

नटवर वही नित नृत्यरत, सौन्दर्य-निधि घनश्याम है।
प्रति अङ्गपर जिसके निछावर नित करोड़ों 'काम' हैं॥
ये सुनी बातें हैं सभी, है वस्तुत: वह क्या बला ?
देखा वह कहते खो गया, फिर कौन बतलाता, भला॥
कुछ जानता मैं हूँ नहीं, वह कहाँ, कैसा, कौन है।
पर मन उसीमें रत सदा, यह बुद्धि उसमें मौन है॥
मैं किसलिये, कैसे उसे भजता, नहीं कुछ जानता।
पर भूल पाता हूँ नहीं, मन ही नहीं है मानता॥
जो हो, जैसा हो, मुझे, बस एक उससे काम है।
वही प्रियतम एक मेरा, वही प्राणाराम है॥
ज्ञात यह अज्ञातका, परिचय अपरिचितका विमल।
प्रेम यह अनजानका है गूढ़ अति उज्जवल धवल॥
वह हो प्रकट प्रियतम अभी, प्रत्यक्ष हो न भले कभी।
बेशर्त मेरी हो चुकी सत्ता समर्पित है सभी॥
सम्बन्ध सारे मिट गये, बस, एक प्रियतम रह गया।
रस-सुधा-सुरसरिता बना 'मैं' रस-जलधिमें बह गया॥

[११३०]

(राग देस—तीन ताल)

रात-दिवस मन में रहै, रहै सदा तन साथ।
कैसे देखूँ और कौं, कैसे जोड़ूँ हाथ॥
नित नवीन लीला करै कभी न दे अवकास।
कैसे सोचूँ अन्य कुछ, कैसे रक्खूँ पास॥
रात-दिवस बातें करै रचै नित नये खेल।
कैसे बोलूँ और से, कैसे रक्खूँ मेल॥
तन-मन-वाणी में सदा बस्यौ रहै स्वच्छन्द।
धन-जन सब मेरौ वही एक मात्र आनन्द॥
कहीं वक्त हो तो मिलूँ, बात करूँ किसी गैर से।
रात दिन की गुफ्तगू में मुझे फुरसत है नहीं॥

[११३१]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

मेरी 'मति-गति' के, मेरे 'मन-तन' के तुम ही हो उल्लास।
मेरे 'जीवन-धन' तुम ही, 'जीवन' के मेरे श्वासोच्छ्वास॥
मेरी सारी 'ममता' के हो, एक तुम्हीं आस्पद भगवान।
मेरी 'सुखासक्ति' के तुम ही एकमात्र हो 'विषय' महान॥
मेरे परम 'काम्य' हो केवल, 'वस्तु' एक तुम ही अभिराम।
जनक-जननि-सुत, सखा-बन्धु, गुरु-स्वामी, बल-विद्या, सुख-धाम॥

[११३२]

(राग सोहनी—ताल दादरा)

बस गया उनके हृदयमें, हो गया जो उनका प्यारा।
सब अमङ्गल मिट गये उसके, हुआ वह सबसे न्यारा॥
दीखती जो तनिक उसमें दुःख-संकटकी-सी छाया।
है वह प्रियतमकी अनोखी प्रीतिकी शुचि मधुर माया॥
मलिन माया हरणकर वह नित्य निर्मल कर रही है।
दिव्य कर सब भाँति सब, चिन्मय मधुर रस भर रही है॥
बना रहा है प्राणधन श्रीश्यामका एकान्त-सेवी।
कर रहे हैं सभी अभिवादन समुद छिप देव-देवी॥
नहीं चिन्ताका तनिक भी कार्य-कारण-कल्पना है।
नहीं रोग-विषाद-भयकी तनिक-सी भी जल्पना है॥
स्वयंमें ही प्रेमधनकी प्रेमलीला चल रही है।
सभी तम-जडता सुद्युतिमय दिव्यतामें ढल रही है॥
नहीं चिन्ता, नहीं भय है, नहीं कहीं विषाद-कण है।
खेलते स्वच्छन्द निज गृहमें मधुर राधा-रमण हैं॥
देख पाता दिव्य नेत्रोंसे जो यह लीला परम है।
मुग्ध होता वह समझकर छिपा इसका मधु मरम है॥

[११३३]

(दोहा)

नहीं भूलती है कभी मीठी-मीठी याद।
स्मृतिमें ही मिलता अतुल नित नव-नव आस्वाद॥
रहता है नित ही मुझे सरस गुणोंका ध्यान।
नित्य बसा रहता हृदय बिधु-मुख रूप-निधान॥
रहता सदा प्रफुल्ल मन, पा संनिधि सुख-खान।
कभी नहीं होता तनिक पल वियोग-व्यवधान॥
मिले सदा रहते, सदा करते रस-आलाप।
मिटे जगतके अघ सभी, मिटे सभी संताप॥

[११३४]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

प्रियके अमिलन-जनित दुःख-चिन्तनमें रात-दिवस कटते।
प्रियकी मोहन मूर्ति, मधुर वे भाव नहीं मनसे हटते॥
जान रहा ही नहीं, देख मैं सदा तव मनके चित्र।
अष्टयाम मैं बसा निरखता, उठते जो मधु भाव पवित्र॥
नित्य मिलनमें अमिलनकी यह पावन प्रेममयी अनुभूति।
प्रेम-राज्यकी परम मधुर आदर्श विलक्षण विमल विभूति॥
इससे होनेवाले दुख-सुखका मैं ही अनुभव करता।
एक पलक भी कभी तुम्हारे बिना नहीं मुझको सरता॥
दूर रहे या पास देह यह, रहे नहीं या रहे कदापि।
होगा नहीं वियोग कभी भी हो सकता भी नहीं तथापि॥
अचल, अटल सम्बन्ध तुम्हारा—प्रेम यह अनवद्य, अमोल।
एक, बने दो सदा, बिक रहे स्वयं परस्परके सुख-मोल॥
रोते कभी, हृदयमें जलती विषम विरहकी अति ज्वाला।
कभी मिलनमें हँसते बनते तुरत परस्पर गल-माला॥
बने परस्पर प्रेमास्पद-प्रेमी हम करते नित नव खेल।
छिपते, कभी प्रकट होते, पर रहता नित स्वरूपगत मेल॥

[११३५]

(राग देस)

मेरे तुम प्रियतम परम, मेरे तुम सुख-रूप।
मेरे तुम सुन्दर परम, मेरे मधुर अनूप॥
मेरे तुम स्वामी-सखा, मेरे सर्वाधार।
मेरे तुम सर्वस्व नित, आत्मरूप अविकार॥

[११३६]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

तन-मन-धन-जीवन सब प्यारे! हुआ तुम्हारे अर्पण।
तुमही देखो निज मुख इसमें, बना तुम्हारा दर्पण॥
मेरी चीज न रही कहीं कुछ, बनी तुम्हारी छाया।
वैसे ही, हो जहाँ तुम्हारी जैसी सु-कलित काया॥
रहा न कुछ भी मनमें, तुम ही रहे स्व-चिन्तन प्रिय बन।
तुम ही बने विरह अपना ही करते नित आक्रन्दन॥
तुम ही बन मधु मिलन स्वयं करते अपना आलिङ्गन।
ढाँचा रहा देखनेको भर पृथक् परम आनन्दन॥

[११३७]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

मिलनेपर भी नहीं मिटेगी सदा मिले रहनेकी चाह।
मिलनेपर भी बनी रहेगी अमिलनकी शङ्का-परवाह॥
मिलना हो या न हो—जानता कौन इसे, कह सकता कौन।
पर सच्चा जो नित्य-मिलन है, इसे मिटा सकता है कौन॥
एक पलक भी नहीं छूटता, छूट नहीं सकता वह मेल।
नित्य-निरन्तर चलता, सदा रहेगा चलता मीठा खेल॥
तुम मैं, मैं तुम, सदा एक हैं, सदा रहेंगे पूर्ण अभिन्न।
होते सदा रहेंगे मधुमय मधुर मनोहर खेल विभिन्न॥

[११३८]

(राग परज—ताल कहरवा)

सभी वस्तुओंमें तुम देते नित्य दिव्य दर्शन अनुपम।
सभी वस्तुएँ दिखतीं तुममें, तुम सबके परमाश्रय सम॥
पर न वस्तु भी हैं वे तुमसे कभी पृथक्, मेरे प्रियतम!
तुम उनमें, वे तुममें, या हो वस्तुमात्र तुम ही प्रियतम!
नहीं किसी सौन्दर्यराशिमें सीमित हो तुम, सुन्दरतम!
तुम असीम हो, तुम अनन्त हो, तुम अशेष हो, रहित नियम॥
भरे अमित ब्रह्माण्ड तुम्हारे रोम-रोममें, अन्तरतम!
फिर भी तुम नँदनंदन हो गोपीजनवल्लभ हो सत्तम॥

(दोहा)

(राग पीलू—ताल कहरवा)

तुम ही सब, सब ही तुम्हीं हो, तुम मेरे नाथ!
मोरपिच्छधर मुरलिधर, पर रहते नित साथ॥

[११३९]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

रहते सदा पास वे मोहन, कभी न होते न्यारे।
जब चाहो, तब मिलो हृदय भर मिलनोत्सुक वे प्यारे॥
हर हालतमें, हर मुकाममें आठों पहर निरन्तर।
जब चाहो तब मिलो, मिटे सब मनके मिथ्या अन्तर॥

[११४०]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

मैं देखूँ नित श्यामको, मुझको नित घनश्याम।
उनमें मैं नित ही रहूँ, वे मुझमें सुखधाम॥
विलग-अलगकी कल्पना रही न किंचित शेष।
नित्य मिलन सुखमय, नहीं लव वियोग-संलेश॥

[११४१]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

जाग्रत्-स्वप्न-सुषुप्तिका मिटा विचार-विवेक।
रहें सभीमें मधु-मधुर छाये प्रियतम एक॥
खेलें मर्यादा-रहित, हो निर्भय, निश्शङ्क।
प्रेम अलौकिक दें मुझे, लगा-लगा निज अङ्क॥
प्राप्त करें प्रतिपल नवल मन-इन्द्रिय संस्पर्श।
दिव्य सुखार्णव-मग्न हो, भरे हृदय नव हर्ष॥
नहीं भेद, लज्जा, सकुच, भय, विषाद, मद, मान।
आलिङ्गन-एकत्वमें, दोका रहा न ज्ञान॥
नित्य एक, नित बने दो, रचते लीला-रङ्ग।
ललित, अलौकिक, पर, रुचिर, कर श्रुति-सीमा-भङ्ग॥
आस्वादक-आस्वाद्यमें नहीं तत्वत: भेद।
दोष-कल्पना अतः कुछ नहिं उपजाती खेद॥
नित्य मधुरतम, नित स-रस, नित नूतन आस्वाद।
सहज तृप्त अवितृप्त नित, पाते परमाह्लाद॥
सुखमयको सुखदायिनी यह शुचि रसकी रीति।
भुक्ति-मुक्तिसे विरत कर, देती पावन प्रीति॥

[११४२]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

अति आश्चर्य, बदल दी तुमने मेरी दृग-पुतली, प्राणेश!
दीख रहे अब मुझको तुम सर्वत्र सभीमें, हे हृदयेश!
मानवकी क्या बात, सुरासुर, पशु-पक्षी सब, कीट-पतग।
जल-थल-अनल-अनिल-नभ सब ही एक तुम्हारे ही श्रीअङ्ग॥
वृक्ष-लता-गिरि-कूट, नद-नदी, दिशा-सूर्य-शशधर-नक्षत्र।
मुझे दीखते तुम प्रियतम! जीवनके जीवन! नित सर्वत्र॥
सबका स्पर्शित पवन, सभीका पद-रज अमल परम पावन।
सदा समादरणीय, सदा शुचि सेवनीय, मम मनभावन॥

[११४३]

(राग परज—ताल कहरवा)

मनकी बात जानता मन है, सदा अप्रकट रहते भाव।
मनमें मनका खुला रूप नित, नहीं कहीं कुछ भेद-दुराव॥
मन नित रहता पास उसीके, जिसका है अनन्य अधिकार।
सोचे, कौन बताये कैसे—क्या होता उसमें व्यापार॥
अपनी वस्तु सँभाले रखता वह, जिसकी वह है अनिवार।
कहना-सुनना और सोचना सभी सदा ही है बेकार॥
करता और कराता सब कुछ वही निजेच्छाके अनुसार।
व्यर्थ दूसरे हैं सब ही मेरे अपने आचार-विचार॥

[११४४]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

तुम छाये आ उरमें जबसे, कर उसपर निज पूर्णाधिकार।
तबसे सब भय-भ्रम भाग गये, मर गये मान-मद-अहंकार॥
मिट गये भोग-सुख-काम, सूख सब गये विषय-आराम वाम।
हो गये ध्वंस सब दुरित दोष, जल गयीं ईषणा दुःखधाम॥
फैला प्रकाश अतिशय उज्ज्वल, प्रकटे सब सद्‌गुण दिव्य साज।
लीला नित होने लगी ललित, लावण्यसार प्रकटा समाज॥
हो गया दिव्य जीवन, मधुमय वह चली अमित रस-सुधा-धार।
प्लावितकर सारे देश-काल, हो गया मग्न सब आर-पार॥
छा गया नित्य बढ़ता सुन्दर चिन्मय, सुषमामय लता-पुञ्ज।
बन गया श्याम-श्यामाका यह अन्तस्‌ उदार निर्जन निकुञ्ज॥

[११४५]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

तेरा मधुर प्रेम, शुचितम सौन्दर्य और चिन्मय आनन्द।
छाया मेरी सारी सत्तामें, है भरा पूर्ण स्वच्छन्द॥

त्रिविध रूपकी सरिता होकर एक, बढ़ी अति, ओर न छोर।
बही बेगसे, प्लावित हो मैं, विवश बढ़ चला तेरी ओर॥
ओत-प्रोत हुआ, न रहा अस्तित्व स्वतन्त्र कहीं मेरा।
तेरी ही चेतना, शक्ति, द्युति, भाव-अभाव सभी तेरा॥
है अनन्त आनन्द, प्रेम सीमा-बिरहित, सौन्दर्य अपार।
पूर्ण ज्ञानयुत, परम शान्ति-माधुर्य-पूर्ण सारा आधार॥
पूर्ण प्रकाशित ज्योति बना यह मूर्तिमान तेरा शुचि धाम।
तुझमें ही तेरी लीलाका बना विलक्षण रूप ललाम॥

[११४६]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

तुमने जो कहलाया मुझसे, वही कहा मैंने अविकल।
तुमने जो करवाया मुझसे, वही किया मैंने निश्छल॥
तुमने जो सिखलाया मुझको, सीखा मैंने वही सकल।
तुमने जो दिखलाया मुझको, देखा मैंने वही अकल॥
यह जो कुछ भी कहा, किया, सीखा, देखा मैंने प्रियतम !
सो सब तुमने ही अपनेमें अपनी की लीला उत्तम॥
मन-मति कैसे होते मुझमें, जब मैं ही हूँ नहीं स्वयम्।
बना तुम्हारा ही सुख-सदन, तुम्हीं इसमें रहते हरदम॥

[११४७]

(राग देस—ताल दादरा)

नाथ ! तू सर्वस्व मेरा।
भरा अन्तरमें सदा है एक, बस, आनन्द तेरा॥
हो गया सब कुछ समर्पण, बिना ही आयासके अब।
रह गया कुछ भी न, छूटा त्यागका अभिमान भी सब॥
पूर्ण निर्भरता हुई है, मिला संरक्षण अनोखा।
हृदयका सूखा हलाहल, सुधा-सरवर भरा चोखा॥
हट गया अबरोध सारा, मिट गयी बाधा सकल है।
हो गया निज घर हृदय तव, आ बसा तू सदल-बल है॥

[११४८]

(राग ईमन—ताल दादरा)

कौन तुम जो साथ रहते ?
नित्य, पलभर भी न हटते, देखते सब, कुछ न कहते ।।
मैं मुखर करता अवज्ञा, घोर अवहेला सदा ही ।
मूढ़तापर मुसकरा देते, सभी चुपचाप सहते ।।
कभी जो गिरने लगा मैं अन्ध अपनी मूर्खतासे ।
तुरत दे करका सहारा तुम बचा लेते, सहमते ।।
नहीं आते सामने, पर सदा सब सँभाल रखते ।
हो अनोखे सत्य-स्नेही, जो कभी बदला न चाहते ।।

[११४९]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

दिया अचल सुख मुझे अनूठा, दिया अनोखा आत्मप्रसाद ।
खोला शक्ति-स्रोत जीवनमें, चखा दिया निज रसका स्वाद ।।
अब कोई न परिस्थिति मुझको कदापि विचलित कर सकती ।
हर्ष और उद्वेगरहित, शुचि शान्ति कदापि न टल सकती ।।
काम-लोभ-मद-क्रोध आदि हैं कभी न आ पाते मनमें ।
सदा तुम्हारा तेज, तुम्हारा सत्त्व भरा रहता तनमें ।।
बल अमोघसे डरकर भागे पापी पाप-ताप सारे ।
मिटा दुःख-संताप, हुआ कृत्कृत्य तुम्हें पाकर, प्यारे !
अतुल तुम्हारे शक्ति-शान्ति-सुख फैलें सबमें शुभ्र महान ।
सुखी-शान्त हों जगके प्राणी, दुर्लभ यह पाकर वरदान ।।

[११५०]

(राग काफी—ताल कहरवा)

नहीं कामका रहा, छोड़ दो इसकी आशा ।
रक्खोगे, तो तुम्हें मिलेगी नित्य निराशा ।।

भस्म हो गयी बुद्धि जागतिक जल-भुनकर सब।
रही न कोई इसमें भोग-विचार-भूमि अब॥
क्या करना, क्या नहीं—सोच सकता न तनिक यह।
सदा सहज ही उदासीन रहता, सब कुछ सह॥
होता, जो होना है, उसके ही करनेसे।
नहीं इसे कोई मतलब जीने-मरनेसे॥
नहीं रहा अब किसी द्वन्द्वसे भी परिचय है।
हुआ करे कुछ भी, यह तो अब नित निर्भय है॥
लिखता-लिखवाता वही, करता-करवाता वही।
पता नहीं क्या गलत है, पता नहीं क्या है सही॥

[११५१]

(राग सोहनी—ताल दादरा)

हुआ जबसे मैं तुम्हारा, भूलकर सम्बन्ध सारे।
तभीसे आने लगे क्रमशः सभी सद्गुण तुम्हारे॥
वस्तु जो विपरीत थी, या थी विरोधी भाव-धारा।
मिटी अपने-आप सारी, रह गया कोई न चारा॥
सूर्यके शुभ उदयसे ज्यों नष्ट होता सब अँधेरा।
मिटा त्यों संचित युगोंसे था तिमिर उरमें घनेरा॥
हुआ ज्यों खाली हृदय, त्यों ही जला कूड़ा-कबाड़ा।
आ विराजे तुम सदल-बल, जम गया पूरा अखाड़ा॥
अब तुम्हारे इस भवनमें अन्य कोई आ न पाता।
छा रहे सर्वत्र तुम, कोई यहाँ कैसे समाता?
चल रही लीला तुम्हारी, बना लीला-धाम जीवन।
दे रहा आनन्द सबको बना सबका सहज निज जन॥

****

[११५२]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

जीवनमें मेरे शक्ति तुम्हारी आई।
जीवनमें मेरे शान्ति तुम्हारी छाई॥
मिल गया मुझे जीवनमें तेज तुम्हारा।
मेरे मस्तकपर हस्त-सरोज तुम्हारा॥
है दिव्य प्रेमको मैंने तुमसे पाया।
है हृदय तुम्हारा रूप अनूप समाया॥
तुम बसे हृदय निज गृहमें प्राण-पियारे।
आनन्द-सूर्यमें मिटे द्वन्द्व-तम सारे॥

[११५३]

(राग परज—ताल कहरवा)

मनमें, तनमें, बुद्धि-प्राणमें सदा तुम्हारा सङ्ग।
रहता बना निरन्तर, नव-नव नित्य दिखाता रंग॥
होता नहीं वियोग पलकभर, रहता नित संयोग।
देता विविध विलक्षण, विस्मयकारक सुख-संयोग॥
होती नहीं तृप्ति पर मनमें, पल-पल बढ़ता चाव।
होते उदय रुचिर, शुचि, सुन्दर, मधुर, मनोहर भाव॥
हृदय-कली खिल उठती, होता मधुमय सुमन विकास।
मँडराते मधु-लोभी दृग-मधुकर पा मधुर सुवास॥

[११५४]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

'मेरा' कुछ भी है नहीं, कोई प्राणि-पदार्थ।
'मैं' भी जब कुछ नहीं, तब कैसा मेरा स्वार्थ॥
एक तुम्हीं हो सभीमें, सभी जगह, सब काल।
लीलामय कर रहे नित लीला विविध रसाल॥
जन्म-मरण, सुख-दुःख—सब मधुर-भयानक रूप।
खेल-खिलौने—सब तुम्हीं, खेलनहार अनूप॥

[११५५]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

मेरी जीवन-सरिता-धारा बहती तुम समुद्रकी ओर।
नित्य-निरन्तर सदा सजग, पर अपनी धुनमें बनी विभोर॥
रखती तनिक न जगत्-जहरको, रहती सदा सुधा-भरपूर।
बढ़ती नित्य तुम्हारे, सम्मुख करती सब विघ्नोंको चूर॥
इसीलिये इसके दोनों ही तट बन रहे परम मनहर।
लहराती सुख-शान्ति-सुधाकी उनपर सदा सुरम्य लहर॥
पाते सभी जीव नित इस जीवनसे शुचि मधुमय आनन्द।
सुखी देख उनको सेवासे बढ़ता मेरा परमानन्द॥
यों सुख देते-पाते मैं जा पहुँचूँगा प्रियतमके पास।
हो निमग्न चरणाम्बुधिमें मैं मिल जाऊँगा बिना प्रयास॥

[११५६]

(राग वागेश्री—ताल कहरवा)

मधुर हुआ जीवन सारा माधुर्य प्राप्त करके तेरा।
पा तेरा सौन्दर्य, हुआ सुन्दर बाह्याभ्यन्तर मेरा॥
तेरी निर्मल अतुल शान्तिने यहाँ जमाया आ डेरा।
तेरी उज्ज्वलतम आभाने सभी ओर मुझको घेरा॥
तेरे विमल ज्ञानने कर दी दूर हृदयकी सब भ्रम-भ्रान्ति।
मिली अनिर्वचनीय, सकल श्रमहारिणि, सुखकारिणि विश्रान्ति॥
हुआ हृदय सारे पर तेरा एकमात्र मङ्गल अधिकार।
धन्य हुआ बन वह सब जग-मङ्गलका मङ्गलमय आधार॥

[११५७]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

तुम ही सब दुख-हर, सब सुखकर, मेरे तुम ही जीवन-प्राण।
तुम ही एकमात्र आशा, ध्रुवतारा, तुम्हीं परम कल्याण॥

पाकर तुमसे अमित शक्ति-सुख, मैं भी बना शक्ति-सुख-धाम।
निर्बलता, भय, पाप-तापका हुआ सर्वथा काम तमाम॥
निर्भय मैं, निश्चिन्त हो गया, उदित तुम्हारा मुझमें ज्ञान!
देख रहा मैं अखिल विश्वमें एक तुम्हींको, हे भगवान॥
त्रिभुवन-मङ्गलकर, मङ्गलमय त्याग-प्रेमके अमितागार।
त्याग-प्रेमका बना आज मैं भी हूँ शुभ विग्रह साकार॥

[११५८]

(राग रामकली—ताल कहरवा)

इस चर-अचर जगतके सब जीवोंमें किससे छोटा कौन?
सबमें सदा छिपा रहता तू, सभी मुखर, तू रहता मौन॥
सबमें छायी सत्ता तेरी तुझसे ही सबका जीवन।
सबमें भरी महत्ता तेरी तेरा ही प्रकाश तन-मन॥
हाथ-पैर-सिर-उदर-कमर ज्यों एक देहके सब अवयव।
त्यों ही तेरे अङ्ग सभी हैं जीव देव-दानव-मानव॥
हैं विभिन्न अति सबके शील-सुभाव-कर्म-गुण-रुचि-आकार।
तेरी ही अभिव्यक्ति सभी हैं, तेरी दिव्य मूर्ति साकार॥
सभी प्रणम्य, सुसेव्य सभी हैं सभी सदा मेरे स्वामी।
मैं सबका अनन्य लघु अनुचर अति नगण्य पद-अनुगामी॥

[११५९]

(राग वागेश्री—ताल कहरवा)

अवनि, अनिल, जल, अनल, सकल आकाश भरे तुम पूर्णानन्द।
जिधर दृष्टि जाती, दिखते सर्वत्र हँस रहे तुम स्वच्छन्द॥
वृक्षोंके पत्ते-पत्तेसे बहा रहे तुम आनँद-स्रोत।
रूप-सुगन्ध बने रहते तुम पुष्प-पुष्पमें ओत-प्रोत॥
तुम ही मधुर नृत्य करते हो, बने विचित्र-पक्षधर मोर।
शशि बन, ज्योति-सुधा बरसाते नित तुम ही आनन्द-विभोर॥
नित्य सत्य आनन्द पूर्ण, नित निर्मल तमहर दिव्य प्रकाश।
तुम सर्वत्र कर रहे लीला, नित्य चल रहा आत्म-विलास॥

[११६०]

(राग परज—तीनताल)

तुच्छ नगण्य सलिल-सीकर मैं, तुम रस-सुधा-समुद्र अगाध।
पर चाहते डूबना मुझमें, पता नहीं, यह कैसी साध ?
क्षुद्र जन्तु मैं परम संकुचित, तुम अनन्त हो विश्वाधार।
चाह रहे छिपना पर मुझमें, पता नहीं क्या किया विचार ?
मैं अति दीन-दरिद्र, दिव्य तुम मूर्त्तिमान ऐश्वर्य अपार।
पता नहीं, तुम बार-बार क्या लेने आते मेरे द्वार ?
मैं अति पामर, पापी, तुम शुचि, पुण्यश्लोक, सच्चिदानन्द।
गले लगाकर मुझसे मिलते, तुम क्या पाते हो आनन्द ?
सभी तुम्हारी बात अनोखी, सभी अनोखी चोखी चाल।
स्वयं अनोखे हो, प्रियतम ! तुम, दिया अनोखा मुझको ढाल॥

[११६१]

(राग बहार—तीनताल)

देख एक तू ही तू, तू ही तू। सर्वव्यापक जग, तू ही तू॥
सत, चित, घन, आनन्द नित, अज, अव्यक्त, अपार।
अलख, अनादि, अनन्त, अगोचर, पूर्ण विश्व-आधार।
एकरस, अव्यय, तू ही तू॥ सर्वव्यापक०॥
सत्यरूपसे जगत सब तेरा ही विस्तार।
जग माया-कल्पित है सारा तव संकल्पाधार।
रचयिता-रचना तू ही तू॥ सर्वव्यापक०॥
तुझ बिन दूजी वस्तु नहिं किंचित् भी संसार।
सूत सूत-मणियोंमें गूँथा, जल तरङ्गवत् सार।
भरा एक तू ही, तू ही तू॥ सर्वव्यापक०॥
माता-पिता-धाता तू ही, वेदवेद्य ओंकार।

पावन परम, पितामह तू ही, सुहृद, शरणदातार।
सृजत, पालत, संहारत तू॥ सर्वव्यापक०॥
क्षर अक्षर, कूटस्थ तू, प्रकृति-पुरुष तव रूप।
मायातीत, वेदवर्णित पुरुषोत्तम, अतुल, अरूप।
रूपमय, सकल रूप ही तू॥ सर्वव्यापक०॥
मोह-स्वप्नको भङ्ग कर, निज रूपहि पहिचान।
नित्य, सत्य, आनन्द, बोध-घन निजमें निजको जान।
सदा आनन्दरूप एक तू॥ सर्वव्यापक०॥

[११६२]

(राग पहाड़ी—ताल कहरवा)

इस अखिल विश्वमें भरा एक तू ही तू।
तुझमें-मुझमें 'तू', मैं 'तू' तू 'तू' ही तू॥
नभमें तू जल-थल-वायु-अनलमें भी तू।
मेघ-ध्वनि, दामिनी, वृष्टि प्रबलमें भी तू॥
सागर अथाह, सरिता-प्रवाहमें भी तू।
शशि-शीतलता दिनकर-प्रवाहमें भी तू॥
वन सघन, पुष्प-उद्यान मनोहरमें तू।
प्रस्फुटित कुसुम-रस-लीन भ्रमरमें भी तू॥
है सत्य-असत, विष-अमृत, विनय-मदमें तू।
शुभ क्षमा-तेज, अति विपद-सुसंपदमें तू॥
मृदु हास्य सरल, अति तीव्र रुदन-रवमें तू।
चिर-शान्ति, क्रान्ति, अति भीषण विप्लवमें तू॥
है प्रकृति-पुरुष, पुरुषोत्तम-मायामें तू।
अति असह धूप, सुखदायक छायामें तू॥
नारी-अन्तर, शिशु सुखद बदनमें भी तू।
कामारि, कुसुम-सरपाणि मदनमें भी तू॥

घन अन्धकार, उज्ज्वल प्रकाशमें भी तू।
जड़ मूढ़ प्रकृति, अतिमति-विकासमें भी तू॥
है साध्वी घरनी, कुलटा-गणिकामें भी तू।
है गुँथा सूत, माला, मणिकामें भी तू॥
तू पाप-पुण्यमें, नरक-स्वर्गमें भी तू।
पशु-पक्षी, सुरासुर, मनुजवर्गमें भी तू॥
है मिट्टी-लोह, पाषाण-स्वर्णमें भी तू।
चतुराश्रममें तू, चतुर्वर्णमें भी तू॥
है धनी-रंक, ज्ञानी-अज्ञानीमें तू।
है निरभिमानमें, अति अभिमानीमें तू॥
है बाल-बृद्ध नर-नारी, नपुंसकमें तू।
अति करुण-हृदयमें, निर्दय हिंसकमें तू॥
है शत्रु-मित्रमें, बाहरमें, घरमें तू।
है ऊपर, नीचे, मध्य, चराचरमें तू॥
'हाँ' में, 'ना' में तू, 'तू' में, 'मैं' में, 'तू' तू।
हूँ तू, तू तू, तू तू तू, बस तू ही तू॥

[११६३]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

प्रकृति-पुरुष-परमात्मा तुम ही, माया, शुद्ध ब्रह्म तुम हो।
जगदीश्वर भगवान तुम्हीं हो, सर्वान्तर्यामी तुम हो॥
दिव्यलोक बैकुण्ठ तुम्हीं हो, हो कैवल्य मोक्ष तुम ही।
देव तुम्हीं हो, दानव तुम ही, हो सुरलोक-नरक तुम ही॥
आश्रय तुम्हीं, अनाश्रय तुम ही, कीर्ति तुम्हीं, अकीर्ति तुम ही।
वैभव तुम्हीं, गरीबी तुम ही, कीर्ति तुम्हीं, अकीर्ति तुम ही॥
मान तुम्हीं, अपमान तुम्हीं हो, स्तुति तुम ही, निन्दा तुम ही।
जन्म तुम्हीं, बीमारी तुम ही, तुम ही जरा, मृत्यु तुम ही॥
किसी रूपमें मिलो, मिलोगे मुझको सदा एक तुम ही।
रक्खो कहीं मुझे, नित भरे रहोगे वहाँ एक तुम ही॥

[११६४]

(राग बागेश्री—ताल मूल)

बाहर-भीतर तुम ही मेरे, ऊपर-नीचे तुम सब ओर।
कण-कणमें तुम भरे हुए हो नित्य-निरन्तर सब ही ठौर॥
श्वासोंके तुम श्वास, हृदय हृदयोंके, चित्तोंके तुम चित्त।
बुद्धि बुद्धियोंके, प्राणोंके प्राण, सर्व वित्तोंके वित्त॥
जीवनके जीवन हो तुम ही, सत्ताओंकी सत्ता एक।
सर्वरूपसे छाये सबमें, एक बने तुम नित्य अनेक॥
सभी दिशाओंके, देशोंके, सभी काल-गुणके आधार।
प्राणिमात्र जड-चेतन, अग-जग, सभी तुम्हारे ही आकार॥
जबतक तुम्हें देखना इच्छित, इस निजांशका पृथक् विकास।
तबतक दीखो देखो अपनेमें ही अपना विमल विलास॥

[११६५]

(राग भैरवी)

सूर्य-सोममें, वायु-व्योममें, सलिल-धार, धरणीमें तुम।
सुत-कलत्रमें, पुष्प-पत्रमें, स्वर्ण-अश्म-अरणीमें तुम॥
शत्रु-मित्रमें, सुख-अमर्षमें, अनल अतल सागरमें तुम।
सबमें, सभी दिशाओंमें छाये केवल हे नटनागर! तुम॥

[११६६]

(राग तोड़ी—ताल त्रिताल)

किसे कैसे कब हो सकता है मेरा सचमुच कल्याण।
नहीं जानता उसे अज्ञ मैं, पूर्ण जानते हैं भगवान॥
सर्वशक्तियुत, सबके ज्ञाता, सब लोकोंके ईश महान।
सहज सुहृद मेरे वे जो कुछ करते मेरे लिये विधान॥
निश्चय ही वह है मङ्गलमय, सब कल्याणोंका आधान।
हिम-आतप, वर्षा-सूखा—कब किससे कैसा लाभ अमान॥

रोग-निरोग, मरण-जीवनके सब रहस्यका उनको ज्ञान।
इससे वे जब भी, जो कुछ भी, करते हैं रखकर अवधान॥
भरा उसीमें है हित सबका, परम चरम शुभ अभ्युत्थान।
निर्भय मैं रहता हूँ इससे प्रभु-अनुकम्पाका कर ध्यान॥

[११६७]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

सबमें मैं ही रम रहा, सब ही मेरे अङ्ग।
सब ही 'मैं', फिर कौन-सा करूँ अङ्ग मैं भङ्ग?
किसी अङ्गपर लगेगी चोट—बड़ी या अल्प।
निश्चय ही वह लगेगी मुझको, बिना बिकल्प॥
तब फिर कैसे करूँ मैं किस परका अपकार?
कैसे किसको दुःख दूँ, कैसे करूँ प्रहार?
नाम-रूप हैं देहके कल्पित असत् विभिन्न।
सबमें अन्तर्निहित हैं ईश्वर एक अभिन्न।

[११६८]

(राग बागेश्री—ताल कहरवा)

मेरा जो कुछ था, सब ही पर हुआ एक उनका अधिकार।
वे ही अब सब कुछ हैं मेरे—प्राण, हृदय, मन, प्राणाधार॥
ममता सब छूटी अग-जगकी, मिटा सभी जगका अभिमान।
रहा न कोई, कुछ भी 'मेरा', रहा न 'मैं' का भी संधान॥
एकमात्र है उनसे ही, बस, सभी भाँति मेरा सम्बन्ध।
टूट गये सब कठिन दुर्ग अति, टूट गये सब मिथ्या बन्ध॥
रहा न किसी दुःख-सुखसे अब मेरा कोई भी सम्पर्क।
रहा न कोई, कैसा भी संदेह, मिट गये सारे तर्क॥
रहे कहीं भी, कैसा भी, यह देह पाञ्चभौतिक, सविकार।
मैं उनमें, वे मुझमें, वे-मैं नित्य-निरन्तर एकाकार॥

[११६९]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

मेरी परम शान्ति, जीवनकी कान्ति, परम आनन्द महान।
मेरी शक्ति-सुमति, गति-सम्पति एकमात्र हैं श्रीभगवान॥
नहीं भूलता पथ, रक्षा पाता, नित मैं रहता हूँ स्वस्थ।
मेरे पथदर्शक, संरक्षक, निपुण चिकित्सक वे अन्तःस्थ॥
रहते नित सर्वत्र निकटतम मेरे, वे प्रभु सभी प्रकार।
हृदय हृदयके, प्राण प्राणके मेरे, वे सर्वस्व उदार॥
प्रभु मेरे सौन्दर्य सत्य, शुचि प्रेम परम, उज्ज्वलतम ज्ञान।
प्रभुसे हुआ पूर्णतम जीवन, सफल सदा, सब गत-उपमान॥
पाप-कलुष, दुख-दैन्य, रोग-भय, शोक-अशान्ति, वैर-विद्वेष।
कभी न रह सकता मेरे शुभ जीवनमें इनका कुछ लेश॥
क्योंकि बना जीवन मेरा केवल प्रभुका ही नित्य निवास।
लीलारत प्रभु सदा कर रहे मधुमय इसमें रास-विलास॥

[११७०]

(राग परज—ताल कहरवा)

मैं हूँ दृढ़, मैं सदा साहसी, हूँ बिजयी, मैं हूँ बलवान।
क्योंकि सुदृढ़ता-साहस, जय-बल मुझे दे रहे नित भगवान॥
उनके बिना कहीं कुछ भी मैं नहीं, सर्वथा शून्य-समान।
पर वे मुझमें नित्य विराजित सर्वेश्वर, बल-बुद्धि-निधान॥
दुर्गुण-दुर्विचार-दुख मुझको कर पाते न कभी हैरान।
क्योंकि सदा निज संरक्षणमें रखते प्रभु, रख अति अवधान॥
सर्वसमर्थ दे रहे प्रभु मुझको गुण-बल निज नित्य महान।
रखते विनय-विनम्र सदा, हो पाता नहीं उदय अभिमान॥
जीवन्मुक्त नित्य रहता, करता प्रभुके गुण ग्रहण अमान।
प्रभु-इङ्गितसे होता रहता फिर उनका दुनियामें दान॥
करते और कराते प्रभु यह सभी स्वयं आदान-प्रदान।
मैं तो बना यन्त्र हूँ केवल, यन्त्री वे स्वतन्त्र मतिमान॥

[११७१]

(राग बिहाग—ताल कहरवा)

प्रभु मेरे रहते नित पास। प्रभु देते नित दिव्य प्रकाश ॥
प्रभुसे होता प्रेम-विकास। प्रभुसे बढ़ता मन उल्लास ॥
प्रभु पूरी करते मम आस। प्रभुमें मेरा दृढ़ बिस्वास ॥

[११७२]

(राग भैरवी—तीन ताल)

प्रभुसे प्यारा है न्यारा है जैसा जो कुछ भी सम्बन्ध।
काट दिये हैं उसने मेरे, यहाँ-वहाँके सारे बन्ध ॥
रहते मेरे साथ निरन्तर, प्रभु क्षण दूर नहीं होते।
अनुभव सदा कराते अपना हर स्थितिमें जगते-सोते ॥
रहूँ कहीं भी, कैसे भी, वे रहते नित्य पास मेरे।
रहते नित भीतर-बाहरसे चारों ओर मुझे घेरे ॥
वे मेरे कैसे अपने हैं, इसे बताऊँ मैं कैसे।
अनुभव होता है, पर नहीं बता सकता गूँगा जैसे ॥

[११७३]

(राग खट—ताल दादरा)

प्रभु मुझसे जरा भी दूर कभी नहीं हैं।
प्रभु मेरे समीप हैं, प्रभु अभी यहीं हैं ॥
दे रहे वे प्रेम ज्ञान-शक्ति अजित हैं।
भर रहे वे मधुर सुधा मुझमें अमित हैं ॥
मिट गया है घोर दाह मोह-भ्रान्तिका।
बह रहा प्रवाह सतत परम शान्तिका ॥
निर्मल\ शीतल प्रकाश मुझमें छा गया।
प्रभुका सुप्रभाव मेरे मनमें आ गया ॥

[११७४]

(राग भैरव—तीन ताल)

हुआ सच्चिदानन्द एकमें ही अब मेरा नित्य निवास।
हटी सभी मायाकी छाया, हुआ ज्योतिका विमल विकास॥
मिटी अहंता-ममता सारी, रहा न निज-परका सम्बन्ध।
मुक्ति-कामना मिटी, खुल गये यहाँ-वहाँके सारे बन्ध॥
मेरा-तेरा हटा, मिट गया देश-कालका सब व्यवधान।
एक तत्त्व परिपूर्ण सत्य, अब रहा न कुछ भी क्षुद्र-महान॥
मिटा सभी भिन्नत्व, एकमें एक हो गया सबका रूप।
द्वन्द्वरहित आनन्द छा रहा नित्य एकरस दिव्य अनूप॥

[११७५]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

ईश्वरकी शुभ दृष्टिका मुझमें हुआ पसार।
मैं भी अब शुभ बन गया, करता शुभ व्यवहार॥

[११७६]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

देते हैं भगवान सदा ही सहज मुझे निज दिव्य प्रकाश।
करते हैं नित मङ्गल मेरा, है यह मेरा दृढ़ विश्वास॥
संकटकी प्रत्येक घड़ीमें रहते हैं वे मेरे पास।
हर लेते संकट तत्क्षण ही, जैसे रवि करता तम-नाश॥
नये-नये पथसे आ-आकर करते घोर विपद्से त्राण।
विविध अनन्त साधनोंसे प्रभु करते हैं मेरा कल्याण॥
बरसाते इतनी अनुकम्पा—गणना नहीं, नहीं परिमाण।
अनुभव मुझे कराते अपना, भर देते प्रकाशसे प्राण॥

[११७७]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

देख रहा प्रत्यक्ष पूर्ण मैं, उतर रहे मुझमें भगवान।
भरे दे रहे अपने दिव्य गुणोंको परम उदार महान॥
हँसकर बोल रहे यों—'बच्चे! देख इधर, देकर कुछ ध्यान।
चारों ओर छा रहा कैसा है शीतल प्रकाश निर्मान॥
स्नेह-शील-सौन्दर्य-सत्य शुभ, शोभा-श्री, समता सुखसार।
शान्ति, क्षान्ति सब गुण मेरे तुझमें ही प्रकट रहे अनिवार॥'
अनुभव यह हो रहा मुझे भी भगवदीय शुचि गुण-आचार।
छाये आ मेरे जीवनमें, बढ़ा रहे अपना परिवार॥
जबसे किया स्वयं प्रभुने आ मेरे अंदर नित्य निवास।
तबसे गुण भी प्रकटे, ज्यों रवि रहता, होता वहीं प्रकाश॥
रह न सके इससे अब कोई मुझमें दुर्गुण-दुष्टाचार।
भगे सभी भय-शोक, शत्रु कामादि, मिटे मानसिक विकार॥

[११७८]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

हर स्थितिमें, हर जगह, हमेशा रहते हैं प्रभु मेरे साथ।
रहता मस्तकपर मेरे नित उन मेरे प्रिय प्रभुका हाथ॥
सुखमय बीते हुए समयकी कभी न आती मुझको याद।
वर्तमानके विषम समयमें पाकर प्रभुका आशीर्वाद॥
स्थितियाँ सदा बदलतीं, आते नये-नये जीवनमें मोड़।
किंतु मोद-पूरित रहता मन; क्योंकि न जाते प्रभु पल छोड़॥
मेरे परम सुहृद पावन प्रभु करते पलक न मेरा त्याग।
हर स्थितिमें बरसाते रहते मुझपर सदा सुधा-अनुराग॥
इससे मैं पा रहा सुनिश्चित घोर पाप-तापोंसे त्राण।
कोई भी स्थिति रहे, हो रहा मेरा नित्य परम कल्याण॥

[११७९]

(राग परज—ताल कहरवा)

मेरे चारों ओर विराजित भीतर-बाहर हैं भगवान।
अतः नहीं रह सकते मुझमें भय-भ्रम-चिन्ता-मद-अभिमान॥
कहीं भी रहूँ, चाहूँ, सोचूँ, करूँ सदा मैं कुछ भी काम।
संरक्षण करते मेरा प्रभु शक्ति-प्रेममय आठों याम॥
सदा साथ हैं, सदा एक हैं, स्वयं कराते अनुभव नाथ।
स्नेहभरे अन्तस्‌से मेरे सिरपर रक्खे रहते हाथ॥
प्रतिपल, मैं प्रत्येक श्वासमें उनका पावन पाता सङ्ग।
रहती मैं निश्चिन्त, नम्र, निर्भ्रम, निर्भय नित प्रभुके रंग॥

[११८०]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

मेरे द्वारा होता जो कुछ, करते वह सारा भगवान।
'मैं' न रहा, 'मेरा' न रहा कुछ, कर्त्ता कौन, कहाँ अभिमान॥
ढाँचा एक बना रक्खा है अपनेसे ही अपने काम।
नियमित सब चलते कल-पुर्जे, होती दिखती क्रिया तमाम॥
भोग-त्याग, ममता-निर्ममता, अकुशल-कुशल सभी व्यापार।
लीलामय कर रहे स्वयं ही लीला निज-इच्छा अनुसार॥
नहीं बच रहा करनेवाला, करना, करने योग्य पदार्थ।
मिटा-स्व-पर, हो गये एक, अविभक्त स्वार्थ, सारे परमार्थ॥

[११८१]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

मेरे मनमें नित प्रविष्ट रह, ईश्वरका मन करता काम।
ईश्वरके मनके ही होते उदय दिव्य संकल्प ललाम॥
रहा न मेरे मनमें कुछ भी, ईश्वरके मनके अतिरिक्त।
रहता सदा इसीसे वह मधुरमय भगवद्-रससे अभिषिक्त॥

मेरे मनको नित्य बनाये रखते प्रभु निज मनका यन्त्र।
करते उससे अपने मनकी मनमोहन वे परम स्वतन्त्र॥
रहा न कोई मुझमें करनेवाला अब शुचि-अशुचि विचार।
अन्तर्द्वन्द्व मिट गये सारे, मिटे मोहके सभी विकार॥
प्रभुके मनमें निजको खोकर, मन हो गया अमन मेरा।
उठा असत् आशा-तृष्णाका, ममताका सारा डेरा॥
क्रीड़ा करते अब उसमें, उससे प्रियतम इच्छा-अनुसार।
करते रहते नित उसमें, उससे वे अब स्वच्छन्द विहार॥

[११८२]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

मैं अपने प्यारे ईश्वरका हूँ प्यारा अतिशय बालक।
ईश्वर हैं मेरे संरक्षक, संवर्धक, सच्चे पालक॥
यही चाहता हूँ, ईश्वर वे मुझे बना रक्खें निज यन्त्र।
यन्त्री बन वे सदा चलायें मुझे स्वयं अपने ही तन्त्र॥
दुस्सह विकट परिस्थितिमें भी रहता मैं निर्भय-निश्चिन्त।
रखते सदा सुरक्षित मुझको, अनुकम्पा कर प्रकट अनन्त॥
कहाँ नगण्य, तुच्छ मैं, पामर, कहाँ परात्पर प्रभु भगवान।
अमित स्नेहसे मुझे पालते परमेश्वर कर कृपा महान॥
पाकर मैं चरणाश्रय दुर्लभ जगमें आज हो गया धन्य।
उपजी मेरे मन अति पावन, पद-कमलोंमें प्रीति अनन्य॥

[११८३]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

मैं कैसा भी हूँ, पर मेरे प्रभु रहते नित मेरे पास।
हैं अनन्त वे प्रेममूर्ति प्रभु, हैं अनन्त वे स्नेह-निवास॥
मुझपर स्वाभाविक ही उनका है अनन्त अतिशय अपनत्व।
अविरत मुझे देखते रहते, रखते सहज पवित्र ममत्व॥

काम-क्रोध-लोभ-भय-चिन्ता-मोह-मान-मद-शोक-विषाद।
सभी समूल मिटे, जब प्रभुका लगा बरसने कृपा-प्रसाद॥
मैं हूँ नित निर्भय, उनका कर-कञ्ज देख सिरपर पावन।
मुझपर सदा स्नेह बरसाते रहते वे प्रभु मनभावन॥

[११८४]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

मैं प्रभुका, प्रभु मेरे, भरा उन्हींका बल मेरे अंदर।
सहज सुनिर्मल स्नेह अमित है खेल रहा विशुद्ध सुन्दर॥
उनकी अतुल शक्तिसे मैं नित शक्तिमान निजको पाता।
उनका अतुल प्रेम-रस-सागर मेरे अंदर लहराता॥
जीवनमें भर गया उन्हींका मेरे आत्यन्तिक आनन्द।
मिटे दुःख, सब दुखके कारण, मिटे सभी अति दारुण द्वन्द॥
जाग उठा मुझमें उनका अब पूरा आत्यन्तिक अनुराग।
मिटा लोक-परलोक—सभीका ममता-मोह, कामना-राग॥
छायी प्रभुकी सहज अभयता, मिथ्या भयका भागा भूत।
निर्भय-निर्विवाद हो, मैं निःशङ्क हो गया निश्चित पूत॥
उदय हो गयी मेरे अंदर उनकी परम क्षमा सुपुनीत।
हुआ क्रोध निर्मूल, नहीं अब होता कोई मुझसे भीत॥
सबका ही हित, सबका ही सुख, मेरा अपना हित-सुख सत्य।
मुझे दिखायी दिया स्पष्ट, सब विषय-वासना मिटी अनित्य॥
काम-क्रोध, भय-मोह-लोभका, हुआ शोकका पूर्ण विनाश।
परमानन्द-पूर्ण नित प्रभु-अनुकम्पाका हो रहा बिकास॥

[११८५]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

हम उनके हैं सदा सर्वथा, वही हमारे हैं सर्वस्व।
पता नहीं, हम कौन, कहाँ हैं, कैसे करें कभी कुछ गर्व॥

बल-दुर्बलता, गुण-अवगुण—सब हैं उनकी इच्छा-अनुसार।
चाहे जैसे करें-करायें, कौन करे फिर सोच-विचार॥

[११८६]

(राग बागेश्री—ताल कहरवा)

मैं प्रभुका, वे प्रभु हैं मेरे, मेरा-उनका नित सम्बन्ध।
जान गया मैं इसको, इससे सब कट गये जगतके बन्ध॥
भोगोंका जो राग-काम-तम छाया था मन मध्य अनन्त।
प्रभुके परमोज्ज्वल प्रकाशसे आज हो गया उसका अन्त॥
हटा सभी अज्ञान-तिमिर, अब मिटी सभी ममताकी भ्रान्ति।
प्रकट हो गयी जीवनमें मम प्रभुकी सुधा-मधुर शुभ शान्ति॥

[११८७]

(राग भैरव—तीन ताल)

मैं रहता हूँ प्रभुमें ही नित, प्रभुका मुझमें नित्य निवास।
प्रभुके सिवा अन्य कोई भी सत्ता नहीं, नहीं अवकाश॥
जब जो भी मिलता, उसमें ही दिखता प्रभुका मोहन रूप।
भले बना हो वह अति सुन्दर, अथवा हो बीभत्स-कुरूप॥
सबमें है प्रभुकी गुण-गरिमा, सबमें हैं मङ्गलमय भाव।
सबके द्वारा अपने ही प्रभु करते प्रकट विचित्र विभाव॥
कहते प्रभु—'खेलो तुम, मेरे अपने विविध स्वाँग-अनुसार।
किंतु देखते रहो निरन्तर मुझे, न भूलो किसी प्रकार'॥
सदा कराते रहते अनुभव, कर अनन्त लीला-विस्तार।
कभी न सोते, सोने देते जग-प्रपञ्चमें, प्रभु बेकार॥
देख-देख मैं प्रभुको, प्रभुकी लीलाको पाता आह्लाद।
नित्य-नवीन मधुरतम रसका लेता मैं दुर्लभ आस्वाद॥

[११८८]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

आज मिल गया मुझे सहज ही प्रभुका मधु-मङ्गल वरदान।
शब्द-शब्दमें सुन पाता मैं अतः तुम्हारा ही गुण-गान॥
देख पा रहा अखिल विश्वमें रूप तुम्हारा ही अभिराम।
स्पर्श पा रहा स्पर्शमात्रमें एक तुम्हारा ही सुखधाम॥
गन्धमात्रमें पाता मैं नित अङ्ग-गन्ध तव परम मधुर।
प्रति रसमें पा रहा तुम्हारा नित्य दिव्य रस सुधा-अधर॥
एक तुम्हारे सिवा कहीं भी कुछ भी नहीं बचा अवशेष।
इससे होता कभी न प्रभुके दर्शनका अभाव लवलेश॥

[११८९]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

रहूँ कहीं कैसे भी, रहते नित्य साथ मेरे भगवान।
जाऊँ कहीं, वहीं दिखती मुझको उनकी मधु मूर्ति महान॥
बसे सदा मेरे अंदर, वे बाहर भी नित रहते पास।
ममता-मोह मरे सब जगके, प्रभुमें हुआ पूर्ण विश्वास॥
पाप-ताप, भय-शोक मिटे सब, नष्ट हो गया मोह समूल।
मिटे मोहके कार्य भयानक, सभी जातिके सारे शूल॥
मधुर-भयानक जगका कुछ भी, कैसा भी परिवर्तन आज।
दिखता मुझे मधुर लीलामय प्रभुका ही सब लीला-साज॥
प्रभुके दर्शन-स्पर्श-मिलनसे नित्य मिटे जगके सब द्वन्द।
परम शान्तिसे पूर्ण विलक्षण छाया नित्य परम आनन्द॥

[११९०]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

भगवत्कृपा अलौकिकने कैसे कर चमत्कार-व्यापार।
नरक-कीटसे बदल बनाया मुझको श्रेष्ठ, विशुद्ध, उदार॥

उतरे स्वयं मलिन जीवनमें मेरे परम सुहृद भगवान।
लेकर प्रेम-ज्ञान-रसकी अति उज्ज्वल सम्पद अमित महान॥
मिटे जगतके दुःखद सारे द्वन्द्व, छा गया परमानन्द।
भुक्ति-मुक्तिकी मिटी वासना, लगे खेलने प्रभु स्वच्छन्द॥
अब तो सतत चल रहा केवल प्रभुका मधुर-मनोहर नृत्य।
यों कर दिया कृपाने मुझको अपनी करुणासे कृतकृत्य॥

[११९१]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

नित्य प्रकाशरूप प्रभु रहते सदा-सर्वदा मेरे साथ।
सुखद मार्ग दिखलाते, रक्खे वरद अभय मस्तकपर हाथ॥
प्रभु ही मेरे जीवन बनकर रहते नित शरीरमें सङ्ग।
रहता स्वस्थ, नित्य मिलता बल, रहते सत्त्वपूर्ण सब अङ्ग॥
प्रेम-रूपसे करते मुझमें परम सुहृद प्रभु नित्य निवास।
काम-राग-कटुता-विरहित जीवनमें छाया पूर्ण मिठास॥
परम शान्ति बन बसे हृदयमें, मिटे भ्रान्ति-चिन्ता-भय-शूल।
रहता शान्त-समुज्ज्वल जीवन, होते सभी कार्य अनुकूल॥
दिव्य शक्ति बन रहते मुझमें, करते नित नव शक्ति-विकास।
शुचितम जीवन मधुर बना सत्-चिदानन्दका नित्य विलास॥

[११९२]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

करुणामयने कर लिया मुझे समुद स्वीकार।
पाप-ताप सब मिट गये, मिटे समस्त विकार॥
रहा न रञ्चक मोह, भय, भ्रम, प्रमाद अवसाद।
हुआ पुण्य-जीवन सफल प्रभुके कृपा-प्रसाद॥
निर्मल मनमें आ बसे परम सुहृद भगवान।
दीख रहे आठों पहर लिये मधुर मुसकान॥

[११९३]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

जड शरीर मैं नहीं, दिव्य हूँ ईश्वरांश—सत-चित-आनन्द।
कुछ भी मेरा बिलग न उनसे कभी, सर्वगत वे स्वच्छन्द॥
मन-मतिमें प्रकाश उनका, अन्तसमें है उनका शुचि प्रेम।
जीवनमें सर्वत्र-सर्वथा छाया उनका योग-क्षेम॥
मेरी प्रति इच्छामें रहती केवल उनके मनकी बात।
उनका शुभ संकल्प व्याप्त नस-नसमें मेरे है दिन-रात॥
मेरी सभी क्रियाओंमें नित होता उनका भाव-प्रकाश।
उनके ही सौन्दर्य-शीलका रहता मुझमें नित्य विकास॥
अमर, निरामय, स्व-स्थ नित्य वे मुझमें करते सहज निवास।
मृत्यु-रुग्णता-दोषरहित यह दिव्य रूप कर रहा विलास॥

[११९४]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

आया, छाया मेरे अंदर प्रभुका निर्मल पूर्ण प्रकाश।
असद्विचार-तमोऽन्धकारका हुआ तुरंत समूल विनाश॥
मेरे कण-कणमें प्रभुकी वह दिव्य ज्योति अब है छायी।
प्रति विचार, प्रत्येक कार्यमें इसमें उज्ज्वलता आयी॥
बाहर-भीतर, सभी समय, सब ओर छा गया उजियाला।
मिटा सर्वथा मोहजनित जो लगा हुआ धब्बा काला॥
उमड़ा अति आनन्द हृदयमें दिव्य ज्योति-धाराके साथ।
मिटे शोक-भय-दुःख, लगे सर्वत्र दीखने मेरे नाथ॥

[११९५]

(राग बागेश्री—ताल कहरवा)

घेरे हुए मुझे है प्रभुका सभी ओर सब समय प्रकाश।
बाँधे हुए मुझे है प्रतिपल प्रभुके दिव्य प्रेमका पाश॥

रक्षा करती है मेरी नित प्रभुकी शक्ति अमोघ विशाल।
प्रभुकी नित्य कृपा अब मेरी करती सारी सार-सँभाल॥
सहज सुहृद प्रभुका वह पावन मिला मुझे सौहार्द अपार।
हुआ सरस-जीवन, उमड़ा शुचि स्नेह-सुधाका पारावार॥
अपना लिया मुझे अब प्रभुने, रक्खा मेरे सिरपर हाथ।
रखने लगे निरन्तर मुझको करुणामय प्रभु अपने साथ॥
प्रभुकी शाश्वत शान्ति आ बसी मेरे जीवनमें सब ओर।
करती रहती मुझे सर्वदा आत्यन्तिक आनन्द-विभोर॥

[११९६]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

प्रभु मेरे, मैं केवल प्रभुका—नित्य-निरन्तर यह सम्बन्ध।
टूट गये अब तो अग-जगके सारे ममताके चिर-बन्ध॥
रही न कुछ आसक्ति कहीं भी, नहीं कामना-भय-अभिमान।
नहीं कहीं कुछ लेना-देना; नहीं मोह, मद, मिथ्या ज्ञान॥
मिटे द्वन्द्व सब, रहे एक तुम मेरे अपने प्रभु स्वच्छन्द।
मुझे बनाकर केवल अपना, देते सदा अतुल आनन्द॥
बुझी जगतकी ज्वाला सारी, छाया शीतल शान्ति अपार।
बहने लगी अजस्र, अनवरत दिव्य मधुर रसकी शुचि धार॥

[११९७]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

प्रभुकी परम कृपासे मैं अब देख पा रहा हूँ सर्वत्र—
प्राणि-पदार्थ-परिस्थिति—सब हैं रूप उन्हींके अत्र-परत्र॥
सृष्टि-प्रलय, अव्यक्त-व्यक्त—सब देशकाल उनके ही रूप।
खेल रहे अपनेमें अपने अपनेसे ही खेल अनूप॥
प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख, शुभाशुभ, जीवन-मरण, मान-अपमान।
छिपे सभीमें सदा, बने वे ही अणु-विभु, अति क्षुद्र, महान॥

बुद्धि-प्राण-मन-इन्द्रिय—सब वे, वही भोग्य-भोक्ता भगवान।
विविध विचित्र अनन्त वस्तु चिज्जडमें छाये एक-समान॥
प्रभुकी सर्वरूपताने कर लिया मुझे भी अङ्गीकार।
फटा मोह-ममताका पर्दा, मिटा सभी मिथ्याहंकार॥

[११९८]

(राग परज—ताल कहरवा)

बसे निरन्तर मेरे अन्तर सदा-सर्वदा श्रीभगवान।
सहज परम कल्याणरूप प्रभु पूर्ण सच्चिदानन्द महान॥
नित्य समुद सेवन करते जो, रहते नित प्रभुहीके पास।
हुआ सहज उन दैवी गुणों-विचारोंका मम मनमें बास॥
इससे काम-अमर्ष, लोभ-मद, भय-चिन्ता, विषाद-अभिमान।
ईर्ष्या-द्रोह, वैर-हिंसाको नहीं रह गया रञ्चक स्थान॥
ममता रही एक प्रभुमें ही, 'अहं, बसा प्रभु-पद स्वच्छन्द।
छाये नित्य-निरन्तर रहते समता-शान्ति, परम आनन्द॥
अब न कदापि किसीका होता तनिक अकल्याण-अपमान।
क्योंकि सर्वहित सर्वसुखाकर यहाँ बसे रहते भगवान॥

[११९९]

(राग वागेश्री—तीन ताल)

दिनकर उगता, रजनी आती, कालचक्र चलता अविराम।
जीवमात्र सब निज-निज रुचिके करते भले-बुरे सब काम॥
पर जाती न वृत्ति अन्तरकी काल-कर्म-कर्त्ताकी ओर।
रहती नित्य एक ही रसके आस्वादनमें मत्त—विभोर॥
सोते-जगते होते रहते सहज प्रकृतिवश सारे काम।
किंतु बसा रहता मनमें कुछ 'अन्य-विलक्षण' आठों याम॥
नहीं हटाया हटता पलभर, नहीं छूटता किसी प्रकार।
दुःख परम शुचि नित्य परम सुख देता रहता वह अविकार॥

[१२००]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

प्रेमरूप हरि बस गये हियमें नित्य सुबोध।
रह न सकेंगे अब वहाँ द्वेष-ईर्ष्या-क्रोध॥
हरिका सुन्दर विनय-वपु रहा हृदयमें छाय।
गर्व-दर्प-अभिमान-मद पलमें गये बिलाय॥
सत्यरूप, आनन्दमय प्रभु हिय रहे विराज।
शोक-दुःख-भय-दम्भका नष्ट हो गया राज॥
प्रभुका शीतल विमल अति छाया हृदय प्रकाश।
राग-कामना-अहं-मम-तमका हुआ विनाश॥
क्षमा-मूर्ति प्रभु कर रहे हियमें नित्य निवास।
हुआ असूया अघमयी हिंसाका अति नाश॥
हियमें जबसे आ बसे नित्य निरामय राम।
त्रिविध व्याधि सब मिट गयीं, मिला मधुर विश्राम॥
मेरे ही प्रभु बस रहे जब सबके हिय आप।
तब किससे कैसे रहे द्वेष-वैरका पाप॥
निज-पर-भेद मिटा सभी, सबमें प्रभु पहचान।
प्राणिमात्र-प्रति प्रेमकी धारा बही महान॥
सबमें प्रभु, सब ही प्रभु, सब लीला-विस्तार।
लीला-लीलामय सदा करते मधुर विहार॥

[१२०१]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

सारी ममता सदाको हटी जगतसे पूर्ण।
लगी जाय प्रभु-पद-कमल-रज पवित्रके चूर्ण॥
एकमात्र प्रभु-पद-कमल-रज ही मेरी वस्तु।
ममता क्या, सत्ता मिटी, हुआ समस्त अवस्तु॥
मैं, मेरे प्रियतम परम केवल रहे ललाम।
मोह मिटा, माया मरी, रहा प्रेम अभिराम॥

[१२०२]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

हम उनके, वे सदा हमारे परमानन्द-सुधा-सागर।
सदा हृदयमें रखते हमको परम मधुर वे नटनागर॥
रहते सदा हमारे उरमें, करते विविध स्वयं नित खेल।
हो कुछ भी, कैसे भी जगमें, उनका 'हमसे रहता मेल॥
देते रहते वे हमको निज सहज अमित आनन्द उदार।
आ सकती विषादकी छाया कभी न कुछ भी किसी प्रकार॥
दुःखयोनि भोगोंका कुछ भी रहा न जीवनमें संश्लेष।
भगवत्-रससे रहित तनिक भी बचा न देश-काल अवशेष॥

[१२०३]

(राग देस—ताल दादरा)

सफल जीवन हो गया, वैराग्यका आनन्द आया।
मिटा सबमें राग अब, वैराग्यमें सब राग छाया॥
भय हटा, सब शोक भागे, हो गया निश्चिन्त जीवन।
आयें या जायें जगतके दुःख-सुख, सम्मान, जन, धन॥
मोहका पर्दा फटा, दीवार ममताकी गिरी सब।
हुआ समुदय ज्ञान-रविका, मर गया अज्ञान-तम अब॥
रह गयी सब ओर सबमें एक प्रभुकी नित्य सत्ता।
उसीकी अभिव्यक्ति सब है, उसीकी लीला-महत्ता॥
है भरा जल-थल-अनलमें अनिल-नभमें वही चेतन।
खेलता जीवन-मरण, सुख-दुःखमें लीला-निकेतन॥
हुआ भोग-विरागसे अब पूर्ण उसमें राग अनुपम।
जो प्रकाशित हो रहा हर विषम लीलामें सदा सम॥

[१२०४]

(राग माँड़—तीनताल)

काहू कौ नहिं दास मैं, कोउ न मेरौ दास।
नित्य दास मैं राम कौ, एक टेक-बिस्वास॥
रह्यौ न कबहूँ कतहुँ कछु मेरौ अपनौ काम।
प्रभु-सेवामें ही सने तन-मन-बुद्धि—तमाम॥
सेवाऊ जो कछु बनै, वामें नहिं कछु मोर।
प्रभु मनमानी करन कौं, रहैं हलावत डोर॥
फुरना, मति, बल, पुरुषता, करन-करावनहार।
सब कछु तिन में, तिनहि कौं, तिनही सौं व्यवहार॥
रह्यौ न रंचक मैं-पनौ भयौ एक ही भाव।
हर्ष-सोक-भय-मान-मद—सबकौ भयौ अभाव॥
रही न सत्ता भिन्न कछु, एक मात्र भगवान।
लीलामय लीला करैं नित अति मधुर महान॥

[१२०५]

(राग बागेश्री—ताल कहरवा)

जीवन-मरण निरोग-रोगकी मिटीं कल्पनाएँ सारी।
नहीं कहीं अस्तित्व किसीका रहा तनिक सुख-दुखधारी॥
लीला-सुधा-तरंगिणिकी अगणित लहरें अति मनहारी।
उठतीं, ललित लास्य करतीं लावण्यमयी, जगसे न्यारी॥

[१२०६]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

मेरे अंदर भरी नित्य है प्रभुकी सत्ता-शक्ति-विभूति।
होती सदा उन्हींकी मुझको है सर्वत्र सत्य अनुभूति॥
बजता मेरे जीवनमें अति मधुर नित्य प्रभुका संगीत।
कर सकती न इसीसे मुझको कोई भी स्थिति कुछ भयभीत॥

जीयें-मरें बनें-बिगड़ें ये 'मैं-मेरे' के सभी पदार्थ।
मेरा नहीं बिगड़ता-बनता रहा न कुछ भी इनमें स्वार्थ॥
प्रभु हैं, प्रभुकी लीला है सब, लीला-लीलामय हैं एक।
वे, बस, बसे हुए रहते नित मेरे अन्तरमें सविवेक॥
बाहर-भीतर उन्हें देखता, उनमें ही करता नित वास।
वे ही हैं सर्वत्र-सर्वथा-सदा, दूर अति, अतिशय पास॥
शोक-मोह-भय मिटे, रह गया केवल उनका ही अस्तित्व।
उनका ही गुण-गौरव सारा, उनका ही सर्वत्र महत्त्व॥

[१२०७]

(राग परज—ताल कहरवा)

जान गया मैं, परम सुहृद प्रभु करते मेरा नित कल्याण।
जान गया, वे सर्वशक्तिमय हैं मेरे शुचि बन्धु महान॥
रहते सदा सजग वे, करते नहीं भूलकर भी कुछ भूल।
शूलरूपमें भी देते वे प्रभु मुझको मृदु, सुरभित फूल॥
उन प्रभुका मुझपर अतिशय है सदा हृदयका निर्मल प्यार।
मैं इससे अब पहुँच गया हूँ भय-चिन्ता-भ्रमके उस पार॥
निर्भय, नित्य शान्त, निर्मम, निश्चिन्त हुआ अब मैं, मलहीन।
रहता सदा प्रफुल्ल-उल्लसित, प्रभु-सेवामें ही तल्लीन॥
मैं प्रभुका हूँ नित्य दास प्रिय, वे मेरे स्वामी, बस, एक।
योग-क्षेम-वहन करते सब, रखते नित्य सुरक्षित टेक॥

[१२०८]

(राग देस—ताल दादरा)

राम मेरा बल, न मैं असहाय हूँ। राम मेरा धन, न मैं निरुपाय हूँ॥
राम मेरी बुद्धि, मैं मतिमान हूँ। राम मेरी ज्योति, मैं द्युतिमान हूँ॥
राम मेरा ज्ञान, मैं अभ्रान्त हूँ। राम मेरी शान्ति, मैं नित शान्त हूँ॥
राम मेरा रूप, मैं अभिराम हूँ। राम मेरा सुख, सदा सुखधाम हूँ॥

× × ×

****

हूँ नहीं अस्वस्थ, मैं नित स्वस्थ हूँ। राममें स्थित हूँ, नहीं प्रकृतिस्थ हूँ ॥
देह भौतिक हूँ नहीं, अमृतत्व हूँ। हीन ह्रास-विनाशसे, सत्-तत्त्व हूँ ॥

[१२०९]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

किसमें पाप-दोष देखूँ मैं, किसमें अब देखूँ शैतान।
कैसे किसे पराया समझूँ, जब कि भरे सबमें भगवान ॥
भू-जल-अनल-अनिल-नभ हैं, नक्षत्र सभी उनके ही नाम।
मनुज-दनुज-सुर-पितर, चराचर-उनकी ही अभिव्यक्ति तमाम ॥
कर्म-अकर्म-विकर्म, सत्-असत्—सब केवल उनके ही रूप।
वे ही प्रलय-सृष्टि-पालन-लीलामय, लीला-निरत अनूप ॥
नहीं मोह-मायाकी सत्ता, वे ही सब कुछ बनते आप।
देश-काल सब ही उनमें, वे नित्य सनातन अमित, अमाप ॥
मेरे लिये कभी, कुछ भी अब रही न कहीं अन्य सत्ता।
हैं सर्वत्र एक मेरे वे श्याम, उन्हींकी भगवत्ता ॥
एक बच्चा, मैं उनकी सेवा करने, करने नित्य प्रणाम।
सदा सर्वथा उनकी पूजा—एकमात्र मेरा यह काम ॥
अपने प्रति संकल्प-कार्यसे मैं उनकी पूजा करता।
देख विचित्र रूप अगणित अति, मैं नित नये मोद भरता ॥
देख-देख उनको, उनकी अपनी स्वरूपभूता लीला।
सच्चिन्मय आनन्द-सुधा-सरिता बहती वर्धनशीला ॥

[१२१०]

(राग जंगला—तीन ताल)

प्रभु-प्रसादसे प्रकट हो गया मुझमें प्रभुका परमानन्द।
मिटे सभी चिन्ता-विषाद-भय-शोक, रहे जो नित स्वच्छन्द ॥
प्रभुकी अति पवित्र सम्पदका मुझमें निश्चय हुआ विकास।
मिटी सभी आसुरी सम्पदा, जिसका था मुझमें नित वास ॥

प्रभुकी समता आयी, जागा सबमें प्रभुमयताका ज्ञान।
मिटी विषमता, भेद मिटा सब, मिटा सभी निज-पर—अज्ञान॥
सब रूपोंमें सदा दीखते अब सर्वत्र मुझे भगवान।
सबको मैं प्रणाम करता नित, सबकी सेवा, अति सम्मान॥

[१२११]

(राग भैरव—तीन ताल)

किया कृपा कर प्रभुने मुझको अपना चिर सेवक स्वीकार।
रहा न प्राणि-पदार्थ किसीका मुझपर अब कुछ भी अधिकार॥
मेरा भी उठ गया सहज अधिकार सभी परसे अनिवार।
एकमात्र मैं सेवक प्रभुका, केवल प्रभु मेरे भर्तार॥

[१२१२]

(राग पूर्वी—ताल कहरवा)

ममता एकमात्र प्रभु-पदमें, मन प्रभुकी स्मृतिमें ही लीन।
प्रभुकी इच्छामें सब निज इच्छा अर्पित, मन इच्छा-हीन॥
प्रभुमें राग अनन्य, चित्त अन्यत्र नित्य आसक्ति-विहीन।
प्रभु-प्रेमामृत-रस-सागरका जीवन बना निवासी मीन॥
रहता सदा समाया उनमें, करता नाना भाँति विहार।
छाये नित रहते प्रभु सभी दिशामें, करते अनुपम प्यार॥
होते उनमें ही सब मेरे अच्छे-बुरे शुभा-शुभ कर्म।
उनका रखना, मेरा रहना, यही सहज दोनोंका धर्म॥

[१२१३]

(राग काफी—ताल कहरवा)

हम उनके ही, केवल वे हैं नित्य हमारे।
एक उन्हींसे सदा सभी सम्बन्ध हमारे॥
एकमात्र आत्मीय, परम धन वही हमारे।
प्रीति अनन्य, विशुद्ध परमके पात्र हमारे॥

उन-से वे ही हैं परम जीवनके शुचि सार।
सभी स्वार्थ-परमार्थके एकमात्र आधार॥

[१२१४]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

छाये मधुर-मधुर वे रहते मुझमें सर्व देश, सब काल।
घुले-मिले नित रहते मुझमें, करते रहते नित्य निहाल॥
आधि-व्याधि, दुख-दैन्य, शोक-भय, मान-मोह-मद काल-व्याल।
पास न आ पाते मेरे, वे क्योंकि साथ रहते हर हाल॥

[१२१५]

(राग देस)

प्रभुकी अनुकम्पा परम छायी चारों ओर।
आत्यन्तिक सुख-शान्तिका मिलता ओर-न-छोर॥
कोई कैसी भी विषम हो स्थिति, अति प्रतिकूल।
चुभा नहीं सकती तनिक मेरे उरमें शूल॥
सभी परिस्थितिमें सदा रहती शाश्वत शान्ति।
हटती कभी न हृदयसे मोहनकी मुख-कान्ति॥

[१२१६]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

कभी विलग होते न पलकभर वे मेरे प्यारे भगवान।
रखते सदा पास मुझको, वे रहते स्वयं पास मतिमान॥
सदा देखते रहते मेरी सारी छोटी-मोटी बात।
रखते सदा सँभाल, निभाते योग-क्षेम बिना व्यवधान॥
मुझको सुखी देखने-करनेको रहते तत्पर वे श्याम।
ममता-भरे हृदयसे नित नव मुझसे करते प्यार ललाम॥
थकते नहीं कभी वे, देते देते मुझे परम आनन्द।
मुझ नगण्यको नहीं भूलते पलभर एक सच्चिदानन्द॥

मैं प्रियतमका, प्रियतम मेरे—यही नित्य निर्मल सम्बन्ध।
सदा अटूट, सदा ही सुस्थिर, बढ़ता पल-पल प्रेम-निबन्ध॥

[१२१८]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

मिले मधुर मुझको, मेरे हो, मेरे वे प्रियतम भगवान।
पूरी हुई साध जीवनकी, पूरे हुए सभी अरमान॥
बुझी सभी विषकी ज्वाला, कर रूप-सुधा-रसका मधु-पान।
हुई विकीर्ण किरण शुचि तनकी दिव्याभामय परम महान॥
छाया अति शीतल प्रकाश सर्वत्र, मिटा सब तम-अज्ञान।
दिखने लगे श्यामसुन्दर मन-मोहन अब सर्वत्र समान।

[१२१७]

(राग वसन्त—ताल दादरा)

करना, न करना, न कराना, कराना।
कैसे क्या कब क्यों करना-कराना॥
करो तुम वही, जो मन तुम्हें भाता।
मुझे न कुछ भी है पाना, न पाना॥
हो कुछ, न मेरा कुछ आता-जाता।
मैं तो कठपुतली, तुम्हें है नचाना॥
केवल हो छाये तुम ही सभीमें।
यह सब तुम्हारा ही है ताना-बाना॥
रस भी तुम्हीं हो, रसिक भी तुम्हीं हो।
तुम्हींको, बस, रस है चखना-चखाना॥
लीला तुम्हीं, लीलामय भी तुम्हीं हो।
दर्शक तुम्हीं हो, धरे रूप नाना॥

****

[१२१९]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

इस जगकी कोई वस्तु न हमें सुहाती।
पल-पलमें श्यामल मूर्ति स्मरण है आती॥

[१२२०]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

मेरे मङ्गलमय रसमय प्रभु रहते नित ही मेरे पास।
देते नव-नव नित्य मधुर आनन्द, विविध कर दिव्य विलास॥
डूबे रहते स्वयं, डुबाये रखते मुझको पारावार—
परम दिव्य रसके, स्वाभाविक करते विशद विशुद्ध विहार॥
नहीं अन्यको मुझे देखने देते, नहीं देखते आप।
करते रहते सदा मधुरतम दिव्य मुझीसे रस-आलाप॥
रखा नहीं मुझमें-अपनेमें किंचित् भेद-भिन्नता-भाव।
हुआ पूर्ण ऐकात्म्य, मिट गया मिथ्या सब अलगाव-दुराव॥

[१२२१]

(राग खमाज—ताल कहरवा)

जायें कहीं, मिलें, न मिलें वे, करें सदा सब कुछ विपरीत।
झंकृत होंगे, बस, उनमें ही कर्कश-मधुर सभी संगीत॥

× × ×

जबतक अपनी मौज मौज थी, तबतक कभी न थी कुछ मौज।
मौज बने जबसे वे मेरे तबसे सदा मौज-ही-मौज॥

[१२२२]

(राग भैरव—तीन ताल)

मिटे सभी संकल्प, हो गया तुममें ही सबका अवसान।
कौन, कहाँ, कैसे, क्या करता रहा न इसका भी कुछ भान॥

[१२२३]

(राग लावनी—ताल कहरवा)

बँधा, बँधा, मैं सदा बँधा हूँ, अद्भुत एक किसीके पाश।
बँधा रहूँ मैं सदा और भी दृढ़तासे मनमें अभिलाष॥
पद-पदपर पल-पलमें देता यह बन्धन नित नव उल्लास।
मेरी 'परतन्त्रता' मधुर यह करती रहे सदा सुविकास॥

[१२२४]

(तर्ज गजल—ताल कहरवा)

बड़भागी है वही, जिसे हरिने अपनाया।
हरकर धन-जन-मान, मोह-तम दूर हटाया॥
भोग-लाभकी क्रिया सभीकी असफल चोखी।
घर-समाजसे मिली सहज दुत्कार अनोखी॥
सात्त्विक हुआ प्रकाश, असत् आशा निशि टूटी।
प्रभुकी स्मृति अनमोल मिली संजीवन-बूटी॥
जाग्रत हुआ विवेक, मिटी चिन्ता अब सारी।
बढ़ी परम प्रभु-चरण-प्रीतिकी आशा भारी॥

[१२२५]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

क्रोध, कपट, भय, चपलता, दुःख असीम, अशान्ति।
दूर हुआ अरि-दल सकल, मिटी निराशा, भ्रान्ति॥
शान्ति, सरलता, अभयता, स्थिरता, सुख-विश्राम।
जीवनके लक्षण हुए आशामय, अभिराम॥
उमड़ा मेरे हृदयमें आनँद-सुधा-समुद्र।
नष्ट हो गये सर्वथा शोक-विषाद अभद्र॥
निकल रहा मुझसे सदा स्वर अति मधुर उदार।
दुःख-कष्टकी मिट गयी सारी आर्त-पुकार॥

मेरे जीवनमें भरा अतुल, अमित आनन्द।
रहते नित मुझमें भरे पूर्ण सच्चिदानन्द॥
सुखमय, शान्ति-प्रसादमय, सुधापूर्ण, गुण-धाम।
प्रभु-प्रसादसे हो गया पावन परम ललाम॥
हँसता अब मेरा सदा जीवन आठों याम।
फैलाता सबमें सदा सात्त्विक हँसी तमाम॥
बरस रहा अब सर्वदा सुखद सुधाका मेह।
जो समीप आता, वही पाता पावन नेह॥
बुझ जाती उसकी सभी विष-ज्वाला दुख-रूप।
पा जाता वह तुरत ही शीतल शान्ति अनूप॥
निशा-निराशा नष्ट कर उगता आशा-भानु।
हँस उठता जीवन, सभी मरते दुख-परमाणु॥
छूट गया सब द्वन्द्वसे, हटा तापका भार।
अन्योंका दुख-द्वन्द्व भी हुआ मिटावनहार॥

[१२२६]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

बीत रहा है मेरा पल-पल उनकी सेवामें दिन-रात।
लगे हुए मन-मति-इन्द्रिय, आती अब अन्य न मनमें बात॥
छूट गये जब जप-तप, सेवा-पूजा आदि भले सब काम।
तब फिर कर पाते कुछ कैसे मोहामर्ष-लोभ-मद-काम॥

[१२२७]

(राग भीमपलासी—तीन ताल)

रहूँ भले यात्रामें, चाहे करूँ कहीं भी—घर-वन वास।
नहीं अकेला मैं हूँ रहता, प्रभु नित रहते मेरे पास॥
प्रभु मेरे अंशी हैं, मैं हूँ अंश सनातन उनका नित्य।
पृथक् न रह सकते मुझसे प्रभु कभी, कहीं भी—निश्चित सत्य॥

बदल जाय यह देह-परिस्थिति, बदल जाय चाहे यह लोक।
नहीं बदलता प्रभुका फैला नित सर्वत्र सत्य आलोक॥
मेरी देख-रेख नित रखते, नित्य निभाते योग-क्षेम।
पग-पगपर मैं अनुभव करता धन्य-धन्य प्रभुका शुचि प्रेम॥

[१२२८]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

हटा मोहका पर्दा गहरा, मिटी सभी मनकी भ्रम-भ्रान्ति।
नहीं सताती अब मनकी कल्पित वह घोर अपार अशान्ति॥
क्रियाशीलता अति विशालमें भी रहती सुखदायिनि शान्ति।
क्योंकि दीख पड़ती मुझको सर्वत्र श्यामकी ही मुख-कान्ति॥
आकर भरा इसीसे जीवनमें अब आत्यन्तिक आनन्द।
नहीं देख पाते इसको, जो भोग-वासना-रत, मति-मन्द॥
तुलता नहीं कभी हीरा पत्थरके काँटेपर अनमोल।
होते विफल 'स्वमति-काँटे', जो इसे चाहते लेंगे तौल॥
मेरी अन्तःस्थितिका पूरा है अन्तर्यामीको ज्ञान।
बसे विशेषरूपसे नित उसमें रहते मेरे भगवान॥

[१२२९]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

टूट गये जगके सभी ममताके दृढ़ बन्ध।
भय-विषाद-मद मिट गये पा उनका सम्बन्ध॥
हुआ सभी चिरकालका मोह-अन्धतम नाश।
छाया प्रभुकी प्रीतिका निर्मल नित्य प्रकाश॥
वे प्रभु प्रिय रहते सदा पास मधुर दिन-रात।
करते रहते हृदयकी मधुर मनोहर बात॥
करते वे मधु पूर्ण रस सुख-विहार स्वच्छन्द।
उनकी संनिधिमें सदा छाया परमानन्द॥

[१२३०]

(राग विहाग—ताल कहरवा)

मिट गये भ्रम-भय, दुख-विषाद। मिट गये सब संदेह-विवाद॥
जग गया निश्चल प्रभु-विश्वास। छा गया मनमें अति उल्लास॥
प्रकट हो गये हृदय भगवान। परम ज्योतिर्मय, ज्ञान-निधान॥
मिट गया विषम मोह-तम घोर। छा रही दिव्य द्युति सब ओर।
सहज जो चिदानन्दमय रूप। अनिर्वचनीय अचिन्त्य अनूप॥
रह गया वही एक एकान्त। हो गया सब द्वन्द्वोंका अन्त॥

[१२३१]

(राग जंगला—तीन ताल)

तुम्हीं सदा सुखरूप, दुःखमें भी नित भरे एक तुम ही।
तुम्हीं मधुर आनन्द-गानमें, करुणाक्रन्दनमें तुम ही॥
तुम ही दिव्य स्वर्ग-भोगोंमें, नरक-यन्त्रणामें तुम ही।
तुम ही मधुर सृजनमें, स्वामी! महाप्रलयमें भी तुम ही॥
तुम ही हो प्रकाश उज्ज्वलमें, नित्य घोर तममें तुम ही।
तुम ही प्रिय-शुभ-मङ्गल, अप्रिय-अशुभ-अमङ्गल भी तुम ही॥
तुम्हीं विशद जन-कोलाहलमें, निर्जन वनमें भी तुम ही।
तुम्हीं अस्तिमें भरे, नास्तिमें भी हो नित्य एक तुम ही॥
तुम्हीं सभीमें सदा पूर्ण हो, जड-चेतन—सब हो तुम ही।
मुझे दिखायी देते केवल नित सर्वत्र एक तुम ही॥

[१२३२]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

जीवन-मरण, दुःख-सुख जगके सभी तुम्हारे अङ्ग।
नाच रही है सबमें मूर्ति तुम्हारी ललित त्रिभङ्ग॥

सभी अवस्थाओंमें सबमें मिलता स्पर्श तुम्हारा।
तुम्हीं दिखायी देते सबमें, बदल गया दृग-तारा॥
लीलामय! लीला करते तुम सकल विश्वमें छाये।
अपनेमें ही आप खेलते, वेष विभिन्न बनाये॥
तुम अनादि हो, अन्तहीन तुम, तुम-ही-तुम हो, प्यारे।
निज स्वरूप-महिमामें सुस्थित, जगमें, जगसे न्यारे॥

[१२३३]

(तर्ज गजल—ताल कहरवा)

कभी तुम बन सुखमय सम्मान। कभी बन आत्यन्तिक अपमान॥
कभी बन सुख-सौभाग्य अनूप। कभी बन दुख-दुर्भाग्य कुरूप॥
कभी बन सुहृद-स्वजन-परिवार। कभी अरि घोर अहित-आगार॥
कभी बन धन-ऐश्वर्य अपार। कभी दारुण दारिद्र्‌य-सँभार॥
कभी बन भीषण झंझावात। कभी बन विषम वज्र, हिमपात॥
कभी बन शीतल सुखद बयार। कभी बन मधुर वसन्त बहार॥
सभी रूपोंमें तुम ही नित्य। दे रहे दर्शन सबको सत्य॥
छा रहा था जबतक अज्ञान। हुई थी प्राप्त नहीं पहचान॥
दुःखमय हर्ष-शोकके यान। चढ़ा फिरता था मैं बेभान॥
हर्ष-मदका होता उन्माद। काँपता कभी, भरा अवसाद॥
बता दी तुमने जब पहचान। हट गया पर्दा, उपजा ज्ञान॥
भाव, गुण हैं अनन्त, आकार। सभी हो तुम्हीं सगुण-साकार॥
विश्वके कण-कणमें भगवान। भरे तुम हो सर्वत्र महान॥
अतः होता न कदापि वियोग। बना रहता है नित संयोग॥
दीखते रहते तुम नित साथ। मधुर मुसकाते छिप-छिप नाथ॥
कर दिया तुमने मुझे निहाल। मिटाकर सारा जग-जंजाल॥
करो अब नित प्रणाम स्वीकार। दीन पामरके करुणागार॥

[१२३४]

(राग भैरवी गजल—ताल कव्वाली)

प्रियतम ! न छिप सकोगे, चाहे जो वेष धर लो।
अब हो चुकी है मुझको पहचान वह तुम्हारी॥
ढूँढ़ा तुम्हें अभीतक मन्दिर या मस्जिदोंमें।
पर देख तो न पाया वह माधुरी पियारी॥
जिसने बताया जैसे, वैसे ही ढूँढ़ा मैंने।
भटका, कहीं न दीखे, चैतन्य ! चित्तहारी॥
बस, बेतरह हराया, आया जो पास मेरे।
तुमको बता-बताकर, शब्दोंकी मार मारी॥
पर देखकर न तुमको, था सोचता यों मनमें।
है वा नहीं है जगमें सत्ता कहीं तुम्हारी॥
संदेह जब यों होता, झाँकी-सी मार जाते।
तिरछी नजरसे हँसकर, छिपते तुरत विहारी॥
बिजली-सी दौड़ जाती, सन्-सन् शरीर करता।
होती थीं इन्द्रियाँ सब प्रखर प्रकाशकारी॥
तब दीखता था मुझको फैला प्रकाश सबमें।
प्राणेश ! बस, तुम्हारा वह दिव्य मोदकारी॥
आँधी-सी एक आती, धन-कीर्ति-कामिनीकी।
सारा प्रकाश ढकता, उस तमसे अन्धकारी॥
आ-आके इस तरह तुम, यों बार-बार जाते।
मुझको न थी तुम्हारी पहचान पुण्यकारी॥
आँखोंमें बैठ करके, तुम देखते हो सबको।
कानोंमें बैठ सुनते तुम शब्द सौख्यकारी॥
नाकोंसे गन्ध लेते, रसनासे चाखते तुम।
हो स्पर्श तुम ही करते, लीला विचित्र-कारी॥

प्राणोंमें, चित्त-मनमें, मतिमें, अहंमें, तूँमें।
सबमें पसार करके तुम खेलते खिलारी॥
बेढब नकाबपोशी रक्खी है सीख तुमने।
अंदर समाके सबके छिपते, अजीब यारी॥
जिसको दिखाया तुमने परदा हटाके अपना।
वह रूप-रँग अनोखा, प्रेमोन्मत्त-कारी॥
फिर भूलता नहीं वह, औ भूल भी न सकता।
पहचान नित्य होती पारस्परिक तुम्हारी॥
आँधी कभी न आती आँखें न चौंधियातीं।
वह दिव्य दृष्टि पाकर, होता सदा सुखारी॥
सुख-दुःख, जय-पराजय, तम-तेज, यश-अयशमें।
दिखतीं उसे सभीमें छबि मोहिनी तुम्हारी॥
फिर देखता वह तुमसे सारा जगत भरा है।
अपनी जरा-सी सत्ता वह देखता न न्यारी॥
तुम हो समाये सबमें, वह है समाया तुममें।
भय-भेद-भ्रान्ति मिटती उस एक छनमें सारी॥

[१२३५]

(धुन लावनी—ताल कहरवा)

ज्यों-ज्यों मैं पीछे हटता हूँ त्यों-त्यों तुम आगे आते।
छिपे हुए परदोंमें अपना मोहन मुखड़ा दिखलाते॥
पर मैं अन्धा नहीं देखता परदोंके अंदरकी चीज।
मोह-मुग्ध मैं देखा करता परदे बहुरंगे नाचीज॥
परदोंके अंदरसे तुम हँसते प्यारी मधुरी हाँसी।
चित्त खींचनेको तुम तुरत बजा देते मीठी बाँसी॥
सुनता हूँ, मोहित होता, दर्शनकी भी इच्छा करता।
पाता नहीं देख, पर जडमति इधर-उधर मारा फिरता॥

तरह-तरहसे ध्यान खींचते करते विविध भाँति संकेत।
चौकन्ना-सा रह जाता हूँ, नहीं समझता मूर्ख अचेत॥
तो भी नहीं ऊबते हो तुम, परदा जरा उठाते हो।
धीरेसे सम्बोधन करके अपने निकट बुलाते हो॥
इतनेपर भी नहीं देखता, सिंह-गर्जना तब करते।
तन-मन-प्राण काँप उठते हैं, नहीं धीर कोई धरते॥
डरता, भाग छूटता, तब आश्वासन देकर समझाते।
ज्यों-ज्यों मैं पीछे हटता हूँ, त्यों-त्यों तुम आगे आते॥

[१२३६]

(राग भूपाली—ताल त्रिताल)

भला किया प्रभु ! तुमने मुझको देकर कटु औषधका दान।
भला किया तन चीर निकाला अंदरका मवाद भगवान॥
भला किया जो छीना तुमने मीठा जहर भोगका घोर।
भला किया जो दिया अभावोंका पूरा समूह सब ओर॥
भला किया जो छीन मान-विष, दिया सुधा-सुन्दर अपमान॥
भला किया जो छुड़ा दिया दुस्संग भोगियोंका अघ-खान॥
मिटा मोह, मद हटा, घटा सब विषयोंका दुःखद व्यामोह।
बड़ी कृपा की कृपासिन्धु ! तुमने हरि ! चिदानन्द-संदोह॥
करुणा कर निकाल नरकोंसे दिया पदाश्रय शुचि सुख-मूल।
सहज अहैतुक सुहृद ! मिटा दी मेरी मोहजनित सब भूल॥
भोग-वासना कभी न उपजे, कभी न जागे ममता-राग।
छूटे नहीं चरण-आश्रय अब, बढ़ता रहे शुद्ध अनुराग॥

[१२३७]

(राग वागेश्री—तीन ताल)

(१)

परम प्रिय मेरे प्राणाधार !
स्वजनोंसे सम्बन्ध छूटते मैं निराश हो घबराया।
पर निरुपाय, विवश हो तत्क्षण गृह नवीनमें मैं आया॥

लगा पुरातन चिर नूतन सब, 'मेरापन' सबमें पाया।
विस्मृत हुआ पुरातन, नूतनको ही मैंने अपनाया॥
सबल, सुन्दर, सुसंगठित देह।
जनक-जननीका अविरल स्नेह॥
प्रियाका मधुर वचन, मृदु हास।
सरल संततिका रम्य विकास॥
कर रहा नित सुखका संचार। परम प्रिय मेरे प्राणाधार !

(२)

पिता चले, जननी भी बिछुड़ी, शक्ति और सौन्दर्य गया !
पत्नी भी चल बसी, शेष वयमें उसने भी न की दया॥
धीरे-धीरे पुत्रोंसे भी सारा नाता टूट गया।
पूर्वजन्मकी भाँति पुनः यम-दूतोंके आधीन भया॥
हुआ परवश, अधीर, बेहाल।
चल सकी एक न मेरी चाल॥
भटकते बीता अगणित काल।
विविध देहोंमें क्षुद्र-विशाल॥
अनोखा यह कैसा ब्यवहार। परम प्रिय मेरे प्राणाधार !

(३)

बाल, युवा, वृद्धावस्था हैं तीनों पूरी हो जाती।
मरण अनन्तर पुनर्जन्मकी संतत है बारी आती॥
घूम रही मायाचक्री, यह कभी नहीं रुकने पाती।
पर 'मैं-मैं, की एक भावना कभी नहीं मेरी जाती॥
भले हो कोई कैसा स्वाँग।
पड़ गयी सब कूँओंमें भाँग॥
इसीसे यह 'मैं-मैं, की राग।
गा रहा, कभी न सकता त्याग॥

कौन यह 'मैं', कैसा आकार ? परम प्रिय मेरे प्राणाधार !

(४)

'मैं-मैं' कहता भटक रहा, भव-सागरकी चोटें सहता।
नहीं परंतु जानता 'मैं' है कौन तथा कैसे कहता ?
यदि सरीर ही 'मैं' होता, तो सबमें 'मैं' कैसे रहता ?
होता 'मैं' मन-इन्द्रिय, तो इनको मेरे कैसे कहता ?
सुन रहा छिपकर सारी बात।
देखता सभी घात-प्रतिघात॥
हो गयी उससे अब पहचान।
वही मैं, भेद गया हूँ जान॥
उसीमें समा रहा तू यार ! परम प्रिय मेरे प्राणाधार !

(५)

समझा, इस 'मैं' में औ तुझमें किसी तरहका भेद नहीं।
इस विशाल 'मैं' की व्यापकतामें कोई विच्छेद नहीं॥
तुझसे भरे हुए इस 'मैं' में हुआ कभी भी खेद नहीं।
सदानन्द-परिपूर्ण एकरस, कोई भेदाभेद नहीं॥
बिगड़ता, बनता यह संसार।
किंतु 'तू' चिर-नूतन, सुकुमार॥
'मैं, तथा 'तू' का यह उपचार।
सभी कुछ है तेरा विस्तार॥
धन्य तू और तेरा व्यापार ! परम प्रिय मेरे प्राणाधार !

[१२३८]

(राग देस—ताल कहरवा)

दारुण अशान्तिकी आग बुझी, आ गयी तुम्हारी परम शान्ति।
हो गया सबल जीवन, नीरुज, मिट गयी रुग्णता, असह श्रान्ति॥
शङ्का-विषाद-भय-भ्रान्ति मिटे, अब रहा न कोई प्रश्न शेष।
मति-मन-इन्द्रिय—सब नित्य युक्त हो रहे तुम्हींमें, हृषीकेश !

****

दुर्लभ दैवी सम्पदा जगी, वह चली अमिय-धारा अन्त।
मिल गया अमर आनन्दरूप, हो गया मरणका पूर्ण अन्त॥

[१२३९]

(धुन लावनी—ताल कहरवा)

सौंप दिये मन-प्राण उसीको, मुखसे गाते उसका नाम।
कर्माकर्म चुकाकर सारे चलते हैं अब उसके धाम॥
इन्द्रियगण लेकर विषयोंको मरा करें इच्छा-अनुसार।
हम तो हैं अनुगत उसके ही, वही हमारा प्राणाधार॥
प्रेम उसीके-से प्रेमिक बन, गाते सब उसका गुण-गान।
उसकी नासा पुष्प उसीके-से लेती नित उसकी घ्राण॥
उसके प्राणोंकी व्याकुलता सब प्राणोंमें जाग रही।
इसी हेतु बैठे योगासन, वृत्ति उसीमें लाग रही॥
उसके ही रससे रसिका बन रसना हो गइ दीवानी।
विषयोंके रस विरस हुए सब, नहीं कर सकें मनमानी॥
आँख उसीकी देख रहीं नित उसका रूप परम सुन्दर।
कान उसीके सुनते उसका सदा सुरीला कण्ठ-स्वर॥
देह उसीकी करती नित आवेग-भरा परसन उससे।
मन-प्राण भर उठे, दीखता सारा जगत भरा उससे॥
सभी भुलाकर सोच रहा, वह कहाँ ? कौन ? मेरा मनचोर।
हृदय-सलिलके अगाध तलमें खोजूँगा, यदि पाऊँ छोर॥
जब वह अपने प्राणोंको मेरे प्रणोंमें दिखलाता।
दोनों कूल डूब जाते हैं, कुछ भी नजर नहीं आता॥
माता-पिता वही हम सबका, भाई-बन्धु, पुत्र-दारा।
है सर्वस्व वही सबका, बस, उससे भरा विश्व सारा॥
है वह जीवन-सखा हमारा, है वह परम हमारा धन।
अन्तस्तलमें बैठे हैं टुक करनेको उसके दर्शन॥

जब वह दोनों भुजा उठाकर, अपनी ओर बुलाता है।
सब सुख तजकर मन उसके ही पीछे दौड़ा जाता है॥
सब कुछ भूल नाच उठते हैं, हँसना औ रोना तजकर।
चरण-कूलकी तरफ दौड़ते, भग्न-जीर्ण नौका लेकर॥
आशा सकल बहाकर, उस प्यारेके अरुण चरण-तलमें।
कूद पड़ेंगे, डूबें चाहे तर निकलें कूलस्थलमें॥
इस जगके जो कुछ भी सुख हैं, सो सब रहें उसीके पास।
अरुण चरणके स्पर्शमात्रसे मिटी हमारी सारी आस॥
किसी वस्तुकी चाह नहीं है, मिटा चाहना, पाना सब।
बैठे हैं भव-तीर भरोसा किये युगल चरणोंका अब॥
अब तो बन्ध-मोक्षकी इच्छा व्याकुल कभी न करती है।
मुखड़ा ही नित नव बन्धन है, मुक्ति चरणसे झरती है॥
चाहे अपने पास बिठा लें, चाहे दूर फेंक देवें।
दूर रहें या पास रहें, हम संतत चरण-मूल सेवें॥

[१२४०]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

छीनकर सहज सभी संसार, कर दिया मुझे अवस्तु-असार।
पकड़ पाता न, हुआ लाचार, प्रकृतिका रहा न एक विकार॥
रहे तुम केवल एक अनन्य, दृश्य-द्रष्टा न रह गया अन्य।
बोध यह नहीं किसीका जन्य तुम्हीं अपनेसे अपने धन्य॥
इन्द्रियाँ रहीं न इन्द्रिय-भोग, मिट गया सभी अविद्या-रोग।
समझ पाते न मर्म वे लोग, देखते प्रकृतिज जो संयोग॥
हो गये भोग्य-भोक्ता एक, मुक्ति-बन्धनका मिटा विवेक।
हो गये एक तमाम अनेक, कौन अब रक्खे किसकी टेक॥
रहा कुछ भी न मान-अपमान, हो गये जीवन-मरण समान।
मित्र-अरिका न रहा कुछ ज्ञान, भेदका रहा न नाम-निशान॥

कर रहे मधुमय नित्य विहार, आप अपनेमें ही अविकार ।
स्वयं बन निराकार-साकार, रहित-इच्छा-इच्छा अनुसार ॥
शून्य-संकल्प समाधि विभोर, नहीं संध्या-विभावरी-भोर ।
कहीं भी कोई ओर-न-छोर, बने रहते जड़वत् सब ओर ॥
कभी करते मधुमय आलाप, हरण कर लेते सब संताप ।
न कोई तौल न कोई माप, नित्य स्वच्छन्द आपमें आप ॥
तुम्हारे ये समाधि-व्युत्थान, सृष्टि सुन्दर, भयकर अवसान ।
तुम्हारे सभी रूप निर्मान, निरतिशय, निरुपम, नित्य समान ॥
कभी करते अनुभव बन भिन्न, कभी दिखलाते भाव विभिन्न ।
पर न पल होने देते खिन्न, कभी होते न स्वयं विच्छिन्न ॥
रहा अब कहीं न अहं-ममत्व, तुम्हारी छाया सहज समत्व ।
तुम्हीं, बस, हो 'मैं', तुम्हीं ममत्व, तुम्हीं तत्त्वज्ञ, तुम्हीं पर-तत्त्व ॥

[१२४१]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

दुःख-सुख सारे, हर्ष-विषाद। मान-अपमान, शोक-आह्लाद ॥
अमरता-मरण, ज्ञान-अज्ञान। नरक अति घोर, परम कल्याण ॥
सभीमें भरे तुम्हीं भगवान। सभी करते तव लीला-गान ॥
दृश्य, द्रष्टा, दर्शनके भेद। सभी तुममें, तुम सदा अभेद ॥
इसीसे नित्य शान्त, आनन्द। हृदयमें बसे नित्य स्वच्छन्द ॥
दीखता मधुर तुम्हारा रूप। सदा सर्वत्र पवित्र अनूप ॥
मिट गया सारा ममता-मोह। छा रहे चिदानन्द-संदोह ॥
हुआ संकल्प-तमोंका नाश। छा गया चारों ओर प्रकाश ॥

[१२४२]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

प्राणि-पदार्थ किसीपर भी अब मेरा रहा न कुछ अधिकार ।
मुझपर भी अब रहा किसीका किंचित् भी न कहीं अधिकार ॥

कर्म, अकर्म, विकर्म—सभी मिट गये, रहा न कहीं कुछ शेष।
भोक्ताके अभावमें अब कुछ रहा न फल-गतिका निर्देश॥
मिटे सभी संकल्प, हो गया सबका तुममें ही अवसान।
कौन, कहाँ, कैसे, क्या करता—रहा न इसका भी कुछ भान॥
हो जाता, होता दिखता सब, सबमें भरे पूर्ण तुम एक।
मुझे सोचने-कहनेका भी रहा न कुछ अभिमान, विवेक॥
जीवन-मृत्यु मिटे सारे मिट गये सभी अब इह-परलोक।
देश-कालकी मिटी कल्पना, रहा न किंचित् हर्ष न शोक॥
नहीं मत्तता, न बुद्धिमत्ता, नहीं शून्यता, नहीं प्रकाश।
तुम परिपूर्ण एक, बस, छाये, रहा न तनिक कहीं अवकाश॥

[१२४३]

प्राणनाथ! तुम्हारे बिना जगमें है कौन मेरा।
तुम्हारे ही स्नेहने मुझको है सब ओर घेरा॥
किसीमें, कहीं भी कैसे भी न लगता चित्त मेरा।
पा लिया मैंने, बस, तुम्हारे चरणोंमें ही डेरा॥
तुम्हीं मेरे हो सर्वस्व, और कोई नहिं मेरा।
न भोग, न लोक, न परलोक, न घर, न रैन-बसेरा॥
तुम्हारा रूप, नाम व गुण ही है परम धन मेरा।
तुम-सा न पाया कहीं, कोई भी, खोजा घनेरा॥
बसे रहो सुखसे नित्य, तुम्हारा घर है मन मेरा।
बसूँ मैं भी सदा तुममें, न कुछ रहे मेरा-तेरा॥

[१२४४]

(राग सोहनी—ताल दादरा)

भर गया मेरे हृदयमें नित्य दिव्य प्रकाश तेरा।
मिट गया अगणित युगोंसे छा रहा था जो अँधेरा॥
ज्योति तेरीसे समुज्ज्वल अब क्रिया सम्पूर्ण मेरी।
कामना-आसक्ति भोगोंकी कहीं मिलती न हेरी॥

हो रही तव अर्चना हर कर्मसे प्रत्येक पल है।
है चढ़ा शिव-चरण यह जीवन बना शुचि बिल्वदल है॥

[१२४५]

(राग शिवरञ्जनी—तीन ताल)

नाथ ! तुम्हारी कृपा अहैतुक मुझपर सदा अनन्त, अपार।
दूर हुए सब विघ्न विकट, मैं पहुँच गया भव-सागर-पार॥
चिन्मय परम धाममें पहुँचा, छूटा मायामय संसार।
हुआ तुम्हारे अमल अकल परतत्व रूपका साक्षात्कार॥
बना यन्त्र उस यन्त्रीका मैं, मिटा मोह, सब मिटे विकार।
प्रभुने स्वयं बनाया मुझको शुचि सेवा-विग्रह साकार॥

[१२४६]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

नाथ ! तुम्हारी कितनी करुणा, कैसा अतुल तुम्हारा दान।
हटा असत् मायाका पर्दा, दिया स्वयं ही दर्शन-ज्ञान॥
नहीं रह गया अब तो कुछ भी अन्य, छोड़कर तुमको एक।
मिथ्या जगमें रमनेवाले रहे न मिथ्या बुद्धि-विवेक॥
आते लोग, सुनाते अपनी विषम समस्याओंकी बात।
सुलझानेको उन्हें, पूछते साधन सविनय, कर प्रणिपात॥
कहूँ उन्हें, समझाऊँ क्या मैं, जब न दीखता कुछ सत्, सार।
सुलझानेवाले उस मनको गया सर्वथा लकवा मार॥

[१२४७]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

होता नहीं कभी चञ्चल मैं, होता नहीं निराश-उदास।
होता नहीं दुखी, रहता मेरा तुममें नित दृढ़ विश्वास॥
सदा प्रसन्न, सदा ही आशा-पूर्ण, सदा शुचि बुद्धि-विकास।
सदा तुम्हारे चरणोंमें ही करता मैं आनन्द-निवास॥

जो कुछ तुम देते अपने गुण—अभय, शान्ति, आह्लाद, प्रकास।
सत्वर उन्हें ग्रहणकर, जीवनमें भर लेता मैं सोल्लास॥
जो करते संकेत, दिखाते पथ जो, तुम करके मृदु हास।
चलता मैं निश्चिन्त उसी पथ, कर सब तर्कोंका संन्यास॥
जाना कहाँ, कहाँ ले जाते तुम अपने इच्छा-अनुसार।
इसे जानना नहीं चाहता, मैं करता कुछ नहीं विचार॥
परम सुहृद तुम, सदा प्रेम-रस-पूर्ण, अमित मङ्गल-दातार।
जो देते, जो करते, सबमें सदा तुम्हीं रहते, सरकार!॥

[१२४८]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

जगमें सुख-दुख, लाभ-हानि, चिरजीवन-मृत्यु, मान-अपमान।
सभी तुम्हारे खेल, सभीमें भरे तुम्हीं, मेरे भगवान॥
इससे मिलता मुझे सर्वदा सबमें सुखद तुम्हारा स्पर्श।
अतः नहीं हो पाते मनमें कभी शोच, उद्वेग, अमर्ष॥
किसी अवस्थामें भी नहीं अशान्ति, नहीं उर-दाह।
हँसमुख सदा दीखता, प्रभुका नित्य नवीन पूर्ण उत्साह॥
दुःख-मरण दारुणमें भी तुम मधुर दिखाते मोहन रूप।
होता सब विस्मरण, एक बच रहता चिन्मय मोद अनूप॥
छाये रहते सतत नित्य प्रति-दिक्‌में परम शान्ति-आनन्द।
हो चाहे कैसा भी कहीं मनोहर-घोर काण्ड स्वच्छन्द॥
सभी दृश्य हैं, सभी तुम्हीं लीलामयके अभिनय सुन्दर।
सबमें तुम्हीं नृत्य करते नित नटनागर ऋषि-मुनि-मन-हर॥

[१२४९]

(राग वागेश्री—ताल कहरवा)

आओ सब मिल, कर दो हमला, सबसे मैं कह रहा पुकार।
खुलकर खूब चला लो मुझपर सब अपने-अपने हथियार॥

किंतु न लग पायेगी मुझको इन हथियारोंकी कुछ चोट।
छूते ही मुझसे, सब होकर नष्ट, जायँगे भूपर लोट॥
क्योंकि, नहीं अब कहीं रह गया, जगसे मेरा कुछ सम्बन्ध।
प्रकृति-राज्यके गिरे टूट सब, चिरकालीन अविद्या-बन्ध॥
रहे शरीर, जाय या अब ही, आये धन या जाय तमाम।
मिले मान या कीर्ति, भले अपमान-अकीर्ति मिले बेकाम॥
नहीं स्पर्श कर सकते मुझको चिन्ता-भय-विषाद-मद-मान।
निज-स्वरूपसे बसे एक, बस, बाहर-भीतर हैं भगवान॥
घुले-मिले प्रभुसे मुझको अब नहीं सकेगा कोई मार।
कर दें भले रुद्र प्रलयंकर सकल विश्वका अब संहार॥
जबतक था प्रकृतिस्थ, लगे थे लगातार सब पीछे चोर।
प्रभु-पदस्थ होते ही वे सब भगे, प्राण ले, चारों ओर॥
नाम-रूपके परिवर्तनसे मेरा कुछ न लाभ-नुकसान।
मैं तो हूँ, बस प्रियतम प्रभुकी निज-स्वरूपगत वस्तु महान॥
प्रियतमका आनन्द दिव्य है मेरा सहज नित्य आनन्द।
परम शान्ति प्रियतमकी है, बस मेरी सहज शान्ति स्वच्छन्द॥

[१२५०]

(राग भैरव—तीन ताल)

तुम्हारा नाथ ! अनोखा प्यार।
नहीं छोड़ते कभी, देखकर भी पापोंका भार॥
बँधा विषय-बन्धनमें मैं नित, फँसा मोहके जाल।
विमुख तुम्हारे पद-कमलोंसे, व्यर्थ गँवाता काल॥
पर तुम मुझको नहीं भूलते, सदा भेजते दूत।
सम्पद-विपदरूपमें, करने मुझे निरामय, पूत॥
मीठी-कड़वी औषध होती, जैसा जिसका रोग।
यथायोग्य वैसे ही करते कृपा-सुधा-संयोग॥
करुण अकारण, सुहृद सहज शुचि तुम-सा कहीं न और।
देते बरबस खींच मुझे तुम मृदुल गोदमें ठौर॥

[१२५१]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

नीच नराधम होनेपर भी, मुझको कम न दिया तुमने।
समझ अयोग्य नहीं फिर कुछ भी मुझसे छीन लिया तुमने॥ १॥
नहीं शरणमें गया तुम्हारी, नहीं दयाका बना भिखारी,
रहा सदा प्रतिकूल, भुलाया मुझको किंतु नहीं तुमने।
दिया दयाका दान, न मुझसे बदला कुछ चाहा तुमने॥ २॥
भटक रहा भव-अटवी में, नित, किंतु न सोचा क्या होगा हित,
सुधा त्याग विष-पान रहा रत, तदपि नहीं छोड़ा तुमने।
करते रहे सँभाल, वहन सब योग-क्षेम किया तुमने॥ ३॥
मुझे बनाकर तुम नित अपना, अपने पास चाहते रखना,
मैं मायाको नहीं छोड़ता, नहीं तजी परवा तुमने।
करते रहे सदा प्रयत्न तुम, मुझसे क्या पाया तुमने॥ ४॥
कभी हँसाया, कभी रुलाया, कभी नचाया, कभी सुलाया,
मीठी-कड़वी औषध दे-दे किया निरोग मुझे तुमने।
आखिर निज स्वभाववश मुझको बना लिया अपना तुमने॥ ५॥

[१२५२]

(राग पलास)

पुत्र-शोक-संतप्त कभी कर, दारुण दुख है देती।
कभी अयश, अपमान दानकर, मान सभी हर लेती॥
कभी जगतके सुन्दर सुख सब छीन, दीन मन करती।
पथभ्रान्त कर कभी कठिन व्यवहार विषम आचरती॥
दारुण दुख-दारिद्र्य-दीनता क्षणभरमें हर लेती।
पल-पलमें, प्रत्येक दिशामें सतत कार्य है करती।
कड़वी-मीठी औषध देकर व्यथा हृदयकी हरती॥
पर वह नहीं कदापि सहज ही परिचय अपना देती।
चमक तुरत चञ्चल चपला-सी दृग-अञ्चल ढक लेती॥

जबतक इस घूँघटवालीका मुख नहिं देखा जाता।
नाना भाँति जीव तबतक अकुलाता, कष्ट उठाता॥
जिस दिन यह आवरण दूर कर दिव्य द्युति दिखलाती।
परिचय दे, पहचान बताकर शीतल करती छाती॥
उस दिनसे फिर सभी वस्तु परिपूर्ण दीखती उससे।
संसृति-हारिणि सुधा-दृष्टि हो रही निरन्तर ज़िससे॥
सहज दयाकी मूरति देवीने जबसे अपनाया।
महिमामय मुखमण्डल अपनेकी दिखला दी छाया॥
तबसे अभय हुआ, आकुलता मिटी, प्रेम-रस छलका।
मनका उतरा भार सभी, अब हृदय हो गया हलका॥
जिन बिभीषिकाओंसे डरकर पहले था थर्राता।
उनमें भव्य दिव्य दर्शन कर अब प्रमुदित मुसकाता॥
भगवत्कृपा! 'अकिंचन' तेरे ज्यों-ज्यों दर्शन पाता।
त्यों-ही-त्यों आनन्द-सिन्धुमें गहरा डूबा जाता॥

[१२५३]

(धुन लावनी—ताल कहरवा)

भीषण तम-परिपूर्ण निशीथिनि, निविड़ निरर्गल झंझावात।
नभ घनघोर महारव-पूरित, विकट, विघाती विद्युत्पात॥
सागर-वक्ष क्षुब्ध-उल्लोलित, क्षिति क्षितिधर क्षत, कम्पित-गात।
प्रलय-शिखा-पावक अप्रतिहत त्रिभुवन त्रस्त, सहत अभिघात॥
कैसा यह भीषण वेष! काँपता जगत्, न कोई शेष।
बचा, हुआ निर्भय, जिसने उस 'प्रियतमको पहचान लिया'॥
धन्य वेशधारिन्! बस, मैंने 'छिपे हुएको जान लिया'।
बिस्तृत अति दारिद्र्य, रोग-पीड़ित, अपमानित दुःसहनीय॥
त्यक्त-बन्धु, जग-हसित, श्रमित-तनु, भ्रमित, वेदना दुर्दमनीय।
एकमात्र सुत-शव निपतित सम्मुख प्राणोपम अति कमनीय॥

हा ! हा ! रव-रत, विगत-शान्ति-सुख, शोक-सरितगत, नहिं कथनीय ।
नहिं सुख-स्वप्नका लेश ! निदारुण महाभ्यानक क्लेश !
आवृत वदन निरखकर जिसने 'प्रियतमको पहचान लिया' ।
धन्य वेशधारिन् ! बस, मैंने 'छिपे हुएको जान लिया' ॥
अन्नहीन तन, मृतप्राय जन, वस्त्राभाव-अनावृत देह ।
अबला अवलम्बन-विहीन, नित घृणा, दोष-दर्शन, संदेह ॥
स्वजन-हीन, अति दीन-छीन जग वैरभावयुत विगत-स्नेह ।
दलित, स्खलित, पतित, निष्कासित, देश-जाति-धन-जन-सुत-गेह ॥
रह गया निपट अकेला शेष दिगम्बर शुष्क अस्थि अवशेष ।
रुद्ररूप दर्शनकर जिसने 'प्रियतमको पहचान लिया' ।
धन्य वेशधारिन् ! बस, मैंने 'छिपे हुएको जान लिया' ॥

[१२५४]

(राग भैरवी—ताल धुमाली)

देख दुःखका वेष धरे मैं नहीं डरूँगा तुमसे, नाथ !
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें मैं पकड़ूँगा जोरोंके साथ ॥
नाथ ! छिपा लो तुम मुँह अपना, चाहे अति अँधियारेमें ।
मैं लूँगा पहचान तुम्हें इक कोनेमें, जग सारेमें ॥
रोग-शोक, धन-हानि, दुःख, अपमान घोर, अति दारुण क्लेश ।
सबमें तुम, सब ही है तुममें, अथवा सब तुम्हरे ही वेश ॥
तुम्हरे बिना नहीं कुछ भी जब, फिर मैं किस लिये डरूँ ।
मृत्यु-साज सज यदि आओ, तो चरण पकड़ सानन्द मरूँ ॥
दो दर्शन चाहे जैसा भी दुःख-वेष धारणकर, नाथ !
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें, मैं पकड़ूँगा जोरोंके साथ ।

[१२५५]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

मृत्यु ! भयानक आयी तुम, ले प्रियतम प्रभुका मधु संदेश ॥
तोड़ सभी मायाके बन्धनकी मिथ्या ममता निःशेष ॥

रहने कहीं न दिया तनिक भी मिथ्या अहंकारका लेश।
चला दिया तुरंत उस पथपर, जो जाता प्रियतमके देश॥
जन्म-मरणके क्लेश, भविष्यत्के कर सभी नष्ट सविकार।
अमर बनाया, दिला दिया प्रभु-पदमें नित निवास-अधिकार॥
मुक्तिदायिनी, प्रभु-पद-प्रेम-प्रदायिनि मृत्यु परम सुखरूप!
करो कृतार्थ मुझे तुम लेकर निज प्रभावमें अमल अनूप॥
स्वागत-अर्घ्य कृतज्ञ हृदयका करो कृपा करके स्वीकार।
करता मैं शुचि सुरभित मन-सुमनोंसे पूजन बारंबार॥

× × × ×

भूला मैं, पहचान न पाया मृत्यु-वेशमें तुमको, नाथ!
तुम्हीं रूप धर घोर मृत्युका, आये करने मुझे सनाथ॥
लीलामय-लीला विचित्र अति, कोई भी न पा सका पार।
तुम्हीं पिलाते स्वयं कृपा कर रूप-सुधा निज मधुर अपार॥
कर आवरण-भङ्ग तुमने ही मायाका कर पर्दा छिन्न।
देकर मुझे गाढ़ आलिङ्गन, किया सदाके लिये अभिन्न॥

[१२५६]

(राग सोहनी—ताल दादरा)

हैं भरे भगवान मुझमें, नित्य भगवत्ता लिये।
हैं भरे भगवान मुझमें, शाश्वती सत्ता लिये॥
हैं भरे भगवान मुझमें, चेतना चिन्मय लिये।
हैं भरे भगवान मुझमें, ज्ञान शुचि अक्षय लिये॥
मैं सदा हूँ शोक-भयसे रहित अतिशय इसलिये।
मैं सदा हूँ सहज सुखके सहित अतिशय इसलिये॥
मैं सदा हूँ शान्त नित, निर्भ्रान्त अतिशय इसलिये।
मैं सदा हूँ पूर्ण, कोमल, कान्त अतिशय इसलिये॥

—★—

व्यवहार-परमार्थ

[१२५७]

(धुन लावनी—ताल कहरवा)

अनोखा अभिनय यह संसार !
रङ्गमञ्चपर होता नित नटवर-इच्छित व्यापार ॥
कोई है सुत सजा, किसीने धरा पिताका साज।
कोई स्नेहमयी जननी बन करता नटका काज ॥
कोई सज पत्नी, पति कोई करें प्रेमकी बात।
कोई सुहृद बना, बैरी बन कोई करता घात ॥
कोई राजा रङ्क बना, कोई कायर, अति शूर।
कोई अति दयालु बनता, कोई हिंसक अति क्रूर ॥
कोई ब्राह्मण, शूद्र, श्वपच है, कोई बनता मूढ़।
पण्डित परम स्वाँग धर कोई करता बातें गूढ़ ॥
कोई रोता, हँसता कोई, कोई है गम्भीर।
कोई कातर बन कराहता, कोई धरता धीर ॥
रहते सभी स्वाँग अपनेके सभी भाँति अनुकूल।
होती नाश पात्रता, जो किंचित् करता प्रतिकूल ॥
मनमें सभी समझते हैं अपना सच्चा सम्बन्ध।
इसीलिये आसक्ति नहीं कर सकती उनको अन्ध ॥
किसी वस्तुमें नहीं मानते कुछ भी अपना भाव।
रङ्गमञ्चपर किंतु दिखाते तत्परतासे दाव ॥
इसी तरह जगमें सब खेलें खेल सभी अविकार।
मायापति नटवर नायकके शुभ इङ्गित-अनुसार ॥

[१२५८]

(राग गोड-मल्हार—तीन ताल)

सकल जग हरि कौ रूप निहार।
हरि बिनु बिस्व कतहुँ कोउ नाहीं, मिथ्या भ्रम-संसार ॥
अलख-निरंजन, सब जग ब्यापक, सब जग कौ आधार।
नहिं आधार, नाहिं कोउ हरि महँ, केवल हरि-बिस्तार ॥
अति समीप, अति दूर, अनोखे,जग महँ, जग तें पार।
पय-घृत, पावक-काष्ठ, बीज महँ तरु-फल-पल्लव-डार ॥
तिमि हरि ब्यापक अखिल बिस्व महँ, आनँद पूर्न अपार।
एहि बिधि एक बार निरखत ही भव-बारिधि हो पार ॥

[१२५९]

(धुन लावनी—ताल कहरवा)

विश्व-वाटिकाकी प्रति क्यारीमें क्यों नित फिरता माली !
किसके लिये सुमन चुन-चुनकर सजा रहा सुन्दर डाली ॥
क्या तू नहीं देखता इन सुमनोंमें उसका प्यारा रूप।
जिसके लिये विविध विधिसे है हार गूँथता तू अपरूप ॥
बीजाङ्कुर शाखा-उपशाखा, क्यारी-कुञ्ज, लता-पत्ता।
कण-कणमें है भरी हुई उस मोहनकी मधुरी सत्ता ॥
कमलोंका कोमल पराग विकसित गुलाबकी यह लाली।
सनी हुई है उससे सारे विश्व-बागकी हरियाली !'
मधुर हास्य उसका ही पाकर खिलतीं नित नव-नव कलियाँ।
उसकी मञ्जु मत्तता पाकर भ्रमर कर रहे रँगरलियाँ ॥
पाकर सुस्वर कण्ठ उसीका विहग कूजते चारों ओर।
देख उसीको मेघरूपमें हर्षित होते चातक-मोर ॥
हार गूँथकर कहाँ जायगा उसे ढूँढ़ने तू माली ?
देख, इन्हीं सुमनोंके अंदर उसकी मूरति मतवाली ॥

रूप-रङ्ग, सौरभ-परागमें भरा उसीका प्यारा रूप।
जिसके लिये इन्हें चुन-चुनकर हार गूँथता तू अपरूप॥

[१२६०]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

वे हरि सब में बसि रहे, सब ही तिन के रूप।
सब में तिन की छबि छिपी मोहन, परम अनूप॥
सुन्दर रस, बीभत्स अति, रौद्र, भले हो सांत।
जनम-मरन, सुख-दुःख, सुभ-असुभ, भयानक-कांत॥
वस्तु-परिस्थिति-प्रानि सब, बिबिध बिचित्र बिधान।
लीला-वपु तिन के सकल—चिदचित्, छुद्र-महान॥
निरखि-निरखि मन मुदित है, कीजै सबन्हि प्रनाम।
सब कौं दीजै सुख सदा, कीजै हित के काम॥

[१२६१]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

ब्राह्मण-श्वपच, देवता-दानव, मानव-पशु, खग-कीट-पतङ्ग।
धनी-दरिद्र, सुशिक्षित-अपठित, नर-नारी, शुभ अङ्ग-अनङ्ग॥
बृक्ष-लता-गिरि-सरिता-सागर, अनल-अनिल-जल-भू-आकाश।
सबमें सदा पूर्ण हरि हैं, सबमें है उनका एक प्रकाश॥
नाम-रूप-व्यवहार-भिन्नता, पर तात्त्विक न तनिक भी भेद।
है सबमें सुव्याप्त वही सच्चिदानन्द परतत्त्व अभेद॥
प्रभुको सबमें, सबको प्रभुमें नित्य देखता जो विद्वान।
वह देखा करता नित प्रभुको, उसे देखते नित भगवान॥

[१२६२]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

मानव-दानव-गाय-सिंह-करि-काक-मोर बन सुमन-सुगन्ध।
माता-पिता-पुत्र-पति-पत्नी, निज-पर-जोड़ विविध सम्बन्ध॥

कितने रूपोंमें वे प्रियतम आते नित्य हमारे पास।
देते कभी स्नेह-वत्सलता, देते कभी भयानक त्रास॥
प्रियतमको पहचान सभीमें, करें सभीका नित सत्कार।
उनके सुख-प्रीत्यर्थ करें हम यथायोग्य सारे व्यवहार॥

[१२६३]

(राग भैरव—तीन ताल)

ईश्वरमें हैं नहीं कभी भी जन्म-मृत्यु, उत्पत्ति-बिनाश।
है विचित्र यह जग सारा ही प्रभुका लीलारूप विलास॥
जगके द्वन्द्व सर्वथा हैं सब प्रभुकी लीलाका विस्तार।
प्रभुसे ही उत्पन्न सभी हैं, प्रभु ही हैं सबके आधार॥
विविध रसमयी लीलासे है लीलामयका नित्य अभेद।
देख-देख उनका लीला-नैपुण्य हँसो, मत मानो खेद॥
प्रति लीलामें लीलामयको लो तुरंत ही तुम पहचान।
'कभी न यह पहचान मिटे'—तुम माँगो यह प्रभुसे वरदान॥

[१२६४]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

सकल विश्वमें रम रहे लीलामय श्रीराम।
विविध रसमयी हो रही लीला सदा ललाम॥

[१२६५]

(राग देस—ताल मूल)

जगतीमें यह जो कुछ भी जड़-चेतन जग है।
सब ईश्वरसे व्याप्त, उसीसे यह जगमग है॥
ईश्वरको रख साथ त्यागपूर्वक भोगो सब।
धन किसका है? होओ मत आसक्त कभी अब॥

****

[१२६६]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

सर्वसमर्थ, सर्वके प्रेरक, सर्वशक्ति-निधि, सर्वाधार।
सर्वलोकपरमेश्वर, सर्वज्ञाता, सबके सुहृद उदार॥
ऐसे प्रभु करुणा-सागर हैं, रहते सदा तुम्हारे साथ।
योग-क्षेम-बहन करते, सिरपर रख अभय-वरद निज हाथ॥
देखो, अनुभव करो, सदा समझो अपनेको पूर्ण सनाथ।
सहज सुहृद प्रभुके, कृतज्ञ हो, गाते रहो नित्य गुण-गाथ॥
करो सदा तन-मन-वाणीसे प्रभु-अनुकूल सभी व्यवहार।
प्रभु-पूजा-प्रीत्यर्थ समर्पित रहे सभी आचार-विचार।
एकमात्र प्रभु ही पल-पलमें, पद-पदपर हों शुचि आराध्य॥
प्रभु-उपासनामय जीवन हो, प्रभु ही हों सब साधन-साध्य।

[१२६७]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

हर पदार्थमें देखो हरिको, नमन करो मनसे, सुख मान।
हर हालतमें देखो हरिका हितकर मङ्गलभरा विधान॥
अखिल विश्वमें सजा सब जगह देखो मृदु हँसते भगवान।
अतुल मधुरता-सुन्दरताका करते रहो दिव्य रस-पान॥
आने दो न पास तुम अपने शोक-विषाद-राग-भय-मान।
चिपटे रहो सदा पावन प्रभु-चरणोंमें, न रखो व्यवधान॥

[१२६८]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

रहो सदा पर-हित-निरत, करो न पर-अपकार।
सबके सुख-हितमें सदा समझो निज उपकार॥
सबमें हैं श्रीहरि बसे, यह मन निश्चय जान।
यथाशक्ति सेवा करो सबकी, तज अभिमान॥

हरिकी ही सब वस्तु हैं, हरिके ही मन-बुद्धि।
हरिकी सेवामें लगा, करो सभीकी शुद्धि॥

[१२६९]

(राग हमीर—ताल त्रिताल)

माता-पिता सुसेवकके घर, पतिव्रता नारीके घर।
इन्द्रिय-विजय नरवरके घर, अतिथि-परायणाके शुचि घर॥
हक इमानकी खानेवाले सच्चे व्यापारीके घर।
करते सदा निवास आप प्रभु, समझ उन्हें अपने ही घर॥

[१२७०]

(राग देस)

जो नित सबमें देखता, चिन्मय श्रीभगवान।
होता कभी न वह परे हरि-दृगसे विद्वान्॥
ले जाते हरि स्वयं आ, उसको निज परधाम।
देते नित्य स्वरूप निज चिदानन्द अभिराम॥

[१२७१]

(तर्ज लावनी दूसरी—ताल कहरवा)

नभ, अनिल, अनल, जल, पृथ्वी, रवि-शशि-तारे।
सब जीव चराचर दिशा-द्रुमादिक सारे॥
सर-सरिता-सागर सब कुछ श्रीहरिका तन।
यह जान करे सबका अनन्य अभिवन्दन॥

[१२७२]

(राग खमाच—ताल त्रिताल)

एक 'उपास्य' देव ही करते लीला विविध अनन्त प्रकार।
पूजे जाते वे विभिन्न रूपोंमें निज-निज रुचि-अनुसार॥
सर्वोपरि—कर्तव्य—धर्म है यही एक, जीवनका सार।
करें स्वकर्मोंसे उपासना उनकी ही, रख शुद्ध विचार॥

[१२७३]

(राग तोड़ी—ताल त्रिताल)

निर्गुण-निराकार हैं वे ही, निर्विशेष वे ही पर-तत्त्व।
वही सगुण हैं निराकार सविशेष सृष्टि-संचालक तत्त्व॥
वही सगुण-साकार दिव्य लीलामय शुद्ध-सत्त्व भगवान।
अगुण-सगुण-साकार सभी हैं एक अभिन्न रूप सुमहान॥

[१२७४]

(राग भीमपलासी—ताल दीपचन्दी)

विश्वचराचरमें जो छाये, अखिल विश्वके जो आधार।
सदा सर्वगत, चलता जिनमें अखिल विश्वका सब व्यापार॥
कण-कणमें जो व्याप्त नित्य, हैं अणु-महान जिनका विस्तार।
जिनसे कभी न खाली कुछ भी, सर्वरूप जो, सर्वाकार॥
व्यक्ताव्यक्त सभी कुछ वे ही, वे ही निराकार-साकार।
लेते काष्ठ-धातु-पाषाण प्रतीकोंमें अर्चा-अवतार।
उन प्रभुको भज सकते सब ही निज-निज-भाव-सुरुचि-अनुसार॥

[१२७५]

(राग मालकोश)

ब्रह्म सगुण-निर्गुण तथा निराकार-साकार।
परमात्मा, परमेश, विभु, विश्व, विश्व-आधार॥
प्रणव, यज्ञ, यज्ञेश, सब प्रकृति, पुरुष, पर, वेद।
भेदरहित, नित भेदमय, संयुत भेदाभेद॥
सर्वरूप, शुचि, सर्वमय, शाश्वत, सर्वातीत।
शुद्ध सत्व, पुनि त्रिगुणमय, यद्यपि त्रिगुणातीत॥
नारायण, नरसिंह, श्रीकृष्ण, राम, गोपाल।
सूर्य, शक्ति, गणनाथ, शिव, रुद्र, स्वयम्भू, काल॥
नाम-रूप-लीला विविध तत्त्व एक वेदान्त।
वाणी-मन-मतिसे परे औपनिषद सिद्धान्त॥

[१२७६]

(राग वागेश्वरी—ताल कहरवा)

दुःखालय अनित्य दारुण इस मर्त्यलोकके सब सुख-भोग।
लगते मधुर, भरे विष भारी नरक-दुःख-परिणामी रोग॥
मनसे तुरत निकालो इनको, भजो हृदयसे श्रीभगवान।
विश्व-चराचरमें नित देखो मधुर उन्हींका रूप महान॥
सेवारूप करो केवल तन-मनसे सब उनके ही काम।
प्राप्त करो बैकुण्ठ, परम दुर्लभ हरिका मङ्गलमय धाम॥

[१२७७]

(धुन चम्पक—ताल कहरवा)

तनकी रक्षा करने, करने मनका पूरा शान्ति-विधान।
करने नित्य परमहित बनकर अन्न तुम्हीं आते भगवान्॥
करके ग्रहण इन्द्रियोंद्वारा ले जाते तुम अपने पास।
यों तुम 'यज्ञ' बना देते मेरे भोजनको बिना प्रयास॥
तुम्हें निवेदित होकर वह बन जाता अन्न पुनीत प्रसाद।
तीनों लोक तृप्त हो जाते उससे मिटते ताप-विषाद॥
अन्न तुम्हीं, अर्पण तुम्हीं हो, अर्पक तुम्हीं, तुम्हीं अन्तःस्थ।
तुम्हीं गृहीता, तुम्हीं प्रकृति, पुरुषोत्तम, तुम्हीं पुरुष प्रकृतिस्थ॥
तुम ही हो सब कुछ, सब कुछमें तुमही मेरे हो नित साथ।
नित्य सतत मैं सब कार्योंसे पूजा करूँ तुम्हारी नाथ!॥

[१२७८]

(राग कल्याण—ताल त्रिताल)

जाग रहे तुम कौन सदा मम निभृत हृदयमें हे प्यारे।
कौन अधीर विरह-व्याकुल प्राणोंसे टेर रहे प्यारे॥
विविध कार्य, नाना साजोंमें, फँसा जगत्‌में हूँ प्यारे।
इसमें, मेरा संग चाहते, हो तुम कौन कहो प्यारे॥

[१२७९]

(राग भूपाली—ताल त्रिताल)

कितने तुम अनुपम अति सुन्दर सकल विश्वमें हो सारे।
तुम अनन्त अमृतमय मधुमय जाके जीवन-धन प्यारे।
तुम्हीं विश्वमय, सभी विश्व है एक तुम्हींसे सना हुआ।
एक-एक अणु अखिल विश्वका तुम्हारे अणुसे बना हुआ॥

[१२८०]

(राग—विहाग)

स्तुति निन्दा, पूजा-घृणा, मधुर मान-अपमान।
रोग और नीरोगता, जीवन-मरण समान॥
सब ही प्रभु हैं, भरे हैं सबमें नित भगवान।
खेल विविध विधि कर रहे, रच बहु भाव-विधान॥

[१२८१]

(राग वागेश्री—ताल कहरवा)

है प्रत्येक अभाव-दशामें, मेरा पूर्ण सहारा ईश्वर।
है मेरी प्रत्येक भूखमें भोजन देता प्यारा ईश्वर॥
चलता मेरे साथ निरन्तर मार्गदर्शक मेरा बनकर।
रहता मेरे संग सदा वह दिनभर प्रतिपल मेरा ईश्वर॥
मैं अब प्रज्ञावान् हो गया, छायी जीवनमें सचाई।
धीरज, दया प्रेमकी मुझमें ललित त्रिवेणी है लहराई॥
सब कुछ हूँ मैं, सब कुछ कर सकता, बन सकता हूँ मैं निश्चय।
क्योंकि बस रहा मेरे अंदर सत्यरूप वह ईश कृपामय॥
रोग न मुझको छू सकता है, मेरा स्वास्थ्य वही ईश्वर है।
मेरे लिये सतत तत्पर वह अमित अचूक शक्तिका घर है॥
ईश्वर ही मेरा सब कुछ है नहीं जानता मैं कोई डर।
क्योंकि यहाँपर सुविराजित हैं पावन प्रेम, सत्य, परमेश्वर॥

[१२८२]

(राग जैजैवंती—ताल त्रिताल)

लाभ-हानि, सुख-दुःख, प्रतिष्ठा-निन्दा और मान-अपमान।
हैं अनित्य ये सभी द्वन्द्व, या हैं प्रभुके ही रचित विधान॥
मिलता जाता कभी न कुछ इनसे, या करते सब कल्याण।
प्रभुकी सहज कृपा अनन्तसे होता इन सबका निर्माण॥
प्रभुके मङ्गलमय विधानपर मनमें रक्खो दृढ़ विश्वास।
कैसी भी स्थितिमें मत होओ कभी क्षुब्ध या तनिक उदास॥
है जगका सब कुछ अनित्य, है दुःखपूर्ण सारा व्यापार।
बरस रही है सहज सुहृदतम प्रिय प्रभुकी नित कृपा अपार॥

[१२८३]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

मत निराश हो, मत घबरा रे ! मत कर मनमें जरा विषाद।
जा चरणोंमें सहज सुहृदके, पा ले उनका कृपा-प्रसाद॥
दीनोंको अपनाना—सुखी बनाना उनका सहज स्वभाव।
पतितोंको पावन करनेका उनके मन रहता नित चाव॥
रो-रोकर कह दयासिन्धुसे—'करो नाथ ! मेरा उद्धार।
हरो दुःख-दुर्भाग्य-दोष-दुष्कर्म, दुष्ट-आग्रह, कुविचार'॥
त्रिबिध-ताप-हर हर लेंगे हरि, सुनते ही तेरा चीत्कार।
तुझे स्थान देंगे निज दासोंमें वे करुणा-पारावार॥

[१२८४]

(राग भीमपलासी—तीन ताल)

अमावास्या घोर तममयी देख, न होओ तनिक निराश।
होगा निश्चय ही ज्योतिर्मय सूर्योदय, कर तमका नाश॥

मत घबराओ, देख घोर घन वर्षा-झंझा-विद्युत्पात।
होगा नभ निर्मल-उज्ज्वल, सुरभित-मृदु-मन्द बहेगा बात॥
मत भय करो, देख क्षुब्धोदधिके भीषण उत्ताल तरंग।
ललित लहरियाँ शान्त पुनः दीखेंगी, बदलेगा यह रंग॥
मत होओ उद्विग्न, देखकर घोर ग्रीष्मका भीषण ताप।
बरसेगी शीतल जल-धारा, हर लेगी सारा संताप॥
प्रलय भयंकर है, बस नव मधुमय सर्जनका गोपन रूप।
छिपे हँस रहे इसमें नित नव लीलामय रसराज अनूप॥
भीषण-सुन्दर प्रलय-सृजनमें एक पूर्ण वे ही हैं नित्य।
सबमें मञ्जुल दर्शन उनका, यही देखना-पाना सत्य॥

[१२८५]

नित्य जो भगवानकी अति मधुरतम स्मृतिमें सना।
रहता सदा आनन्द-रत, आनन्दमय खुद ही बना॥
जगत की ज्वाला नहीं सकती जला उसको कभी।
शान्त-शीतल हो चुके संताप बुझ करके सभी॥
जगतके जो लोग आते कभी उसके पास हैं।
वे सभी होते सुखी सत्वर बिना आयास हैं॥
क्योंकि संतत झर रहा झरना सुधाका है वहाँ।
दुःख-संकट-मृत्युका विष रह नहीं सकता वहाँ॥
सुधा-सरिता बह रही नित भागवत सुखकी विमल।
उठ रहीं आनन्दकी लहरें मधुरतम नित प्रबल॥

[१२८६]

(राग बागेश्री—ताल कहरवा)

मायाके प्रवाहमें पड़कर, बहा जा रहा खोकर ज्ञान।
इधर-उधर गोते खाता चलता, होता नाहक हैरान॥

निकल तुरत प्रवाहसे, मत डर, लपक पकड़ ले प्रभुका हाथ ।
रहे पुकार हाथ फैलाये, तुझे बचाने, चलते साथ ॥
एक बार तू देख इधर, प्रभुका रक्षक कर वरद, विशाल ।
कैसे तुझे निकाल उठानेको है तत्पर, बस तत्काल ॥
ताका जहाँ, उठा, आ बैठेगा तू दिव्य सुखद प्रभु-गोद ।
छा जायेगा जीवनमें अनुपम शुचि भगवदीय आमोद ॥

[१२८७]

(राग परज—ताल कहरवा)

मानव-जीवनमें कटुता-कठिनाई विविध भाँति आतीं ।
कभी-कभी वे अति भीषण बन तन-मनपर हैं छा जातीं ॥
जो निराश हो रोने लगता, उसपर वे बढ़तीं भारी ।
विविध प्रकारोंसे बहुसंख्यक बन, अति दुख देतीं सारी ॥
हो भयभीत, छोड़कर साहस, जो कापुरुष भाग जाता ।
भाग न पाता, गिर पड़ता वह, बुरी तरह कुचला जाता ॥
पर जो कर विश्वास ईश्वरी बलपर, सम्मुख डट जाता ।
उससे डर वे भाग छूटतीं, नहीं दुखी वह हो पाता ॥

[१२८८]

(राग सोहनी—ताल दादरा)

जानता हूँ पाप है, पर पाप-रत रहता सदा ।
पापसे मैं पृथक् अपनेको न कर पाता कदा ॥
दीन मैं असमर्थ, अब तो शरण प्रभुकी आ पड़ा ।
अब दयामय एक प्रभुका ही भरोसा है बड़ा ॥

***

[१२८९]

(राग तोड़ी—तीन ताल)

तुम ही मेरी हो धन-दौलत, तब मैं निर्धन क्यों होऊँगा।
तुम हो मेरे सहृदय साजन, तब मैं निर्जन क्यों होऊँगा॥
तुम हो मेरे जब पूर्ण स्वास्थ्य, तब मैं रोगी क्यों होऊँगा।
तुम हो मेरे भर्तार आप, तब मैं भोगी क्यों होऊँगा॥
तुम हो मेरी निश्चित आशा, तब मैं निराश क्यों होऊँगा।
तुम हो मेरी जब ऋद्धि-सिद्धि, तब मैं हताश क्यों होऊँगा॥
तुम हो मेरे जब निर्भय पद, तब मैं भयवश क्यों होऊँगा।
तुम हो मेरे स्नेही स्वामी, तब मैं परवश क्यों होऊँगा॥
तुम हो मेरे जब मनके मन, तब मैं बे-मन क्यों होऊँगा।
तुम हो मेरे आनन्द नित्य, तब मैं अनमन क्यों होऊँगा॥
तुम हो मेरे जब नाथ साथ, तब मैं अनाथ क्यों होऊँगा।
तुम हो मेरे जब सबल हाथ, तब मैं निहाथ क्यों होऊँगा॥
तुम हो मेरे शुभ शुचि सद्गुण, तब मैं दुर्गुण क्यों होऊँगा।
तुम हो मेरे निर्गुण आत्मा, तब मैं सह-गुण क्यों होऊँगा॥

[१२९०]

(राग वागेश्री—ताल कहरवा)

सहज सुहृद, अतिशय हितकारी ईश्वर रहते हैं नित साथ।
दिव्य सुखद आश्रय देनेको सदा बढ़ाये रखते हाथ॥
बरसाते रहते नित वे प्रभु शान्ति-सुधा-रसका शुचि मेह।
नित्य दान करते रहते वे अति उदार निज शुचितम स्नेह॥
देखो उनकी ओर, हटा लो उनसे विमुख जगतसे दृष्टि।
उनके बिना यहाँ है केवल दुःख-ताप, तम-भयकी सृष्टि॥

सम्मुख हो जाओ तुरंत, लो चरणोंका अनन्य आश्रय।
कर लो सफल जन्म-जीवन, हो जाओ अभी नित्य निर्भय॥

[१२९१]

(राग तोड़ी—तीन ताल)

नित्य दयामय, मङ्गलमय प्रभुमें रक्खो अविचल विश्वास।
भजो नित्य प्रभुको, तज जगके प्राणि-पदार्थोंकी सब आश॥
अष्टग्रही आदिसे डरकर कभी न होओ तनिक निराश।
प्रभु-इच्छासे होने दो अघ-असुरभावका सहज विनाश॥
मनमें सदा रखो आदरसे पावन प्रभु-पद-कमल ललाम।
प्रभुकी परम कृपासे होगा सब मङ्गल, यथार्थ अभिराम॥
सबमें सदा देखकर प्रभुको, कर्म करो सबके हित-काम।
तुम्हें नित्य अपनाकर, सदा सुरक्षित रक्खेंगे श्रीराम॥

[१२९२]

(राग भैरवी—तीन ताल)

सदा प्रसन्न रहो, तुम देखो सदा श्याम-घन अपने पास।
सदा उन्हींमें रहो विराजित, सदा रखो मनमें उल्लास॥
नित्य रासका महानन्द लो, देखा करो नित्य नव रास।
नित्य पवित्र दिव्य चिन्मयका अनुभव करो विचित्र विलास॥

[१२९३]

(लावनी तर्ज दूसरी—ताल कहरवा)

तुम सुखी रहो, संतृप्त रहो, संतुष्ट रहो, नित निर्विकार।
उमड़े उरमें निर्मल पावन रस-सुधा-सिन्धु अविरत अपार॥
तुम डूबे रहो नित्य उसमें बन स्वयं रसामृत-सुखागार।
देखो प्रभुका ही नित नूतन अति मधुर रूप सौन्दर्य-सार॥

रह जाय न कुछ भी अन्य भाव, प्राणी-पदार्थ जगके असार ।
घुल-मिल जाओ प्रभुमें अनन्त, कर देश-कालकी अवधि पार ।।

[१२९४]

(राग जंगला—तीन ताल)

सुखी रहो, नित शान्त रहो तुम, रहो नित्य आनन्द-विभोर ।
बसे रहें तव हृदयदेशमें केवल प्यारे नन्द-किशोर ।।
नेत्रोंके सम्मुख भी वे ही रहें सदा सर्वत्र अबाध ।
डूबे रहो उन्हींके रसमें सदा न रहे अन्य कुछ साध ।।

[१२९५]

(राग पीलू—तीन ताल)

बसें तुम्हारे हृदय में श्रीराधा-नँदलाल ।
जिस मनमाने रूपमें उर भर नेह बिसाल ।।
बसे रहें नित उसी में, करते रहें निहाल ।
बढ़ती नित्य रहे परम रुचि उन में सब काल ।।
बाहर भी दीखें वही सब दिसि दिव्य रसाल ।
स्मृति-मुक्ता चुगतो रहै तव मन मधुर मराल ।।
मन-तन यों लागे रहैं भूल सकल जंजाल ।
परम सुखद होती रहै उन की सार-सँभाल ।

[१२९६]

(तर्ज गजल—ताल रूपक)

हो रहो उसके, निरन्तर चरणमें चिपटे रहो ।
दूर मत होओ कभी, नित हृदयसे लिपटे रहो ।।

[१२९७]

(राग देश)

भजहिं भावजुत जे सदा भक्त और भगवंत ।
प्रभु-पद-सेवा बिमल ते पावहिं दुर्लभ संत ।।

[१२९८]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

अर्पण कर दो रामको बचे हुए सब श्वास।
स्मरण करो प्रभुका सदा, मनमें भर उल्लास॥
मौत मरेगी सदाको, फिर न आयगी पास।
राम-धाममें पहुँच तुम बन जाओगे दास॥

[१२९९]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

मनसे नित चिन्तन करो प्रभु-लीला रस-धाम।
जिह्वासे जप करो नित परम मधुर हरि-नाम॥
तनसे जो कुछ भी करो कर्म वैध दिन-रात।
प्रभु-पूजनके भावसे पल-पल पुलकित गात॥

[१३००]

बरस रही प्रभु-कृपा सभी पर बिना भेद अनवरत अपार।
किंतु न कर पाते अनुभव विश्वास-हीन हम मोहागार॥
पर प्रभु-कृपा न वञ्चित रखती कभी किसीको परम उदार।
समुचित मधुर-तिक्त औषध दे हरती रहती रोग-विकार॥

[१३०१]

(राग प्रदीप—ताल कहरवा)

जो कुछ खाओ, यज्ञ हवन जो करो, करो जो कुछ तुम दान।
जो तप करो, करो या कुछ भी, अर्पण करो मुझे सह-मान॥
मैं स्वीकार करूँगा सभी तुम्हारा समुद स्वयं भगवान।
मुक्त शुभाशुभ कर्म-बन्धसे हो, तुम पाओगे कल्यान॥

[१३०२]

(राग भैरव—ताल त्रिताल)

जिसने देखा कभी हृदय-दृगसे प्रभुके अन्तस्‌की ओर।
उसके द्वन्द्व मिटे सारे, वह हुआ अमल आनन्द-विभोर॥

तमके सभी कारणोंका, तमका हो गया समूल विनाश।
मिला उसे आत्यन्तिक निर्मल शीतल सुखद अनन्त प्रकाश॥

[१३०३]

(राग कालिंगड़ा—तीन ताल)

करत नहिं क्यों प्रभु पर बिस्वास।
विस्वंभर सब जग के पालक पूरैं तेरी आस॥
सुख लगि ठोकर खात इतहिं उत, डोलत सदा उदास।
मिलत न कबहूँ सुख विषयन में, दुखमय यह अभिलास॥
प्रभु-पद-पदम सदा चिंतन कर, छूटै जग की त्रास।
मन अनंत आनंद-मगन नित प्रमुदित परम हुलास॥

[१३०४]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

जन्म-मरणके दुःख भयानकसे यदि चाहो होना मुक्त।
मनको रखो निरन्तर श्रीहरिकी पावन स्मृतिसे संयुक्त॥
भोगोंमें न राग रख रञ्चक, बने रहो प्रभु-पद-अनुरक्त।
सेवा करो सदा सबकी, बन प्रभु-भक्तोंके सेवक भक्त॥

[१३०५]

(राग परज—ताल कहरवा)

अगर चाहते परम शान्ति, तो अहंकारका कर दो त्याग।
ममता और कामना छोड़ो, तनिक न रखो भोगमें राग॥
अथवा प्रभु जो सर्वशक्तिधर, सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, सुजान।
उनकी सहज सुहृदतापर रक्खो अखण्ड विश्वास महान॥

[१३०६]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

सेवा करो जगतकी तनसे, मनसे हरिके हो जाओ।
शुद्ध बुद्धिसे तत्त्वनिष्ठ हो, मुक्त-अवस्थाको पाओ॥

[१३०७]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

अपने भले-बुरेका पूरा दे दो प्रभुको ही अधिकार।
जीवनमें होने दो सब स्वच्छन्द उन्हींके मन-अनुसार॥
करते रहो सचेत कर्म शुभ उनकी ही रुचिके अनुकूल।
कर्म-कर्मफलमें न रखो आसक्ति तनिक भी मनमें भूल॥
प्रभुकी सेवारूप करो प्रत्येक कार्य, रखकर विश्वास।
भय-विषाद सब छोड़, रखो नित मनमें निर्भयता-उल्लास॥

[१३०८]

(राग बागेश्री—ताल कहरवा)

प्रकृति-जगतके भोग सभी हैं अशुचि अपूर्ण, अनित्य, असार।
दुःखयोनि, सब भाँति शान्ति-सुख-हर, अघ-आकर, दोषागार॥
इनमें सुखकी आस्था-आकाङ्क्षा-आशा करना बेकार।
किंतु इन्हींके मोह-जालमें फँसा कराह रहा संसार॥
जबतक नहीं हटेगा पूरा मोह-जालका विष-विस्तार।
बढ़ती नित्य रहेगी ज्वाला, मचा रहेगा हाहाकार॥
प्रभुकी प्रेम-सुधा ही कर सकती इस ज्वालासे उद्धार।
प्रेम-दिवाकरके उगते ही हो जाता तमका, संहार॥
अतः खोल दो तुरत प्रेमकी सरस सुधाका उर भंडार।
पल-पल उसे बढ़ाओ, होगा दिव्य भागवत-सुख साकार॥

[१३०९]

(राग जंगला—तीन ताल)

प्राकृत जगत्, प्रकृति, मायाके खोलो, छिन्न करो सब बन्ध।
अनुभव करो नित्य केवल परमात्मासे अभिन्न सम्बन्ध॥
पुनर्जन्म-परलोक गमन, सद्गति-दुर्गतिका कर दो त्याग।
प्राप्त करो सच्चिदानन्दमय प्रभुका दिव्य मधुर अनुराग॥

****

[१३१०]

(राग देश)

जग की छोड़े आस, प्रभुमें कर विश्वास।
ले वह सुख की साँस, कभी न रहे उदास॥

[१३११]

(राग ईमन)

सकल चराचर विश्वमें भरे एक भगवान।
सभी उन्हींके रूप हैं अग-जग तुच्छ महान॥
सबका जो आदर-सहित करता नित सम्मान।
नित स्वकर्मसे पूजता, करता सुख-हित दान॥
पूजा यों करता सदा जो मानव मतिमान।
अति प्रसन्न हो प्रभु उसे देते प्रेम अमान॥
एक आत्मा सभीमें, सबका आत्मा स्थान।
करता हिंदू धर्म इस परम सत्यका गान॥
सब व्यवहारिक भेदमें रखता भाव समान।
सबका वह करता सदा स्वाभाविक कल्याण॥

[१३१२]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

धर्म करता है चित्त पवित्र। धर्म देता है उच्च चरित्र॥
धर्म है सदा सभीका मित्र। धर्म देता है फल सुविचित्र॥
धर्म करता विपत्तिका नाश। धर्म करता सब पाप-विनाश॥
धर्म करता विज्ञान-प्रकाश। धर्म भरता जीवन-उल्लास॥
धर्म ही है सबका आधार। धर्म ही है जीवनका सार॥
धर्म करता सबका उद्धार। धर्म ही है विशुद्ध आचार॥
धर्म हरता माया-तम घोर। धर्म फैलाता द्युति सब ओर॥
धर्म रखता नित पुण्य-विभोर। धर्म देता सुख दिव्य अछोर॥

धर्म हर लेता कलह-क्लेश। धर्म हर लेता राग-द्वेष ॥
धर्म हरता हिंसा निःशेष। धर्म उपजाता दया विशेष ॥
धर्म हर लेता सारी भ्रान्ति। धर्म हर लेता मोह-अशान्ति ॥
धर्म हर लेता सारी श्रान्ति। धर्मसे मिलती शाश्वत शान्ति ॥
धर्म करता न कभी गुमराह। धर्मसे बढ़ती सात्त्विक चाह ॥
धर्म हर दुःखोंकी परवाह। धर्म करवाता त्याग अथाह ॥
धर्मसे मिलते इच्छित काम। धर्मसे मिलते अर्थ तमाम ॥
धर्मसे मिलता पद निष्काम। धर्मसे मुक्ति-लाभ सुख-धाम ॥
धर्ममें सहज अहिंसा-सत्य। धर्ममें सदाचार सब नित्य ॥
धर्ममें रहते गुण संचिन्त्य। धर्ममें मिटते भाव अनित्य ॥
धर्ममें नहीं नीचतम स्वार्थ। धर्मका लक्ष्य एक परमार्थ ॥
धर्ममें सफल सभी पुरुषार्थ। धर्ममें पूर्ण ब्रह्म एकार्थ ॥
धर्ममें नहीं कुमतिको स्थान। धर्म है विमल बुद्धिकी खान ॥
धर्मसे होता नित्योत्थान। धर्मसे मिलते श्रीभगवान ॥
धर्म कर अघका सहज अभाव। धर्म उपजाता पावन भाव ॥
धर्मसे बढ़ता सेवा-भाव। धर्मसे बढ़ता भगवद्भाव ॥
धर्म कर दिव्य विवेक-विकास। धर्म करता त्रितापका नाश ॥
धर्म उपजा प्रभु-पद-विश्वास। धर्म कर देता प्रभुका दास ॥
धर्मसे मिलता अचल सुहाग। धर्म कर देता शुचि बड़भाग ॥
धर्म उपजाता विषय-विराग। धर्म देता प्रभु-पद-अनुराग ॥

[१३१३]

(राग गौड़-मलार—ताल कहरवा)

काम-क्रोध, लोभ-मद-मत्सर-ईर्ष्या, असत्-विषय-अभिलाष।
द्वेष-दम्भ-हिंसा-असत्य—दोषोंका जिससे होता नाश ॥
खान-पान-व्यवहार-आचरण—सबमें रहती पूरी शुद्धि।
जीवन-लक्ष्य 'मोक्ष' में रहती नित्य अविचलित निश्चय बुद्धि ॥

अभिनेताकी तरह निपुणता-सहित नियत निज धर्माचार।
पालन होता श्रेय समझ, होता न ग्रहण पर-धर्म-विचार॥
त्याग-अहिंसा-सेवा-परहित गुण-प्रसून खिलते अभिराम।
ईशाराधन-भजन नित्य होता अनुराग-सहित निष्काम॥
होता शुभ स्व-कर्मसे भगवत्पूजन सहज सदा अविराम।
शान्ति-सुधा-सरिता लहराती प्लावित कर तटभूमि तमाम॥
आत्मामें सब जीव चराचर, सबमें नित्य आत्मा एक।
दिखता, होता नहीं दूर यह तनिक सुदृढ़ अनुभूत विवेक॥
सबमें दिखते ईश, दीखता ईश्वरमें सारा संसार।
उदय न हो पाता, रह पाता नहीं प्राकृतिक दोष-विकार॥
शुचि अनन्य ममता प्रभु-पदमें, बढ़ती सेवाकी रुचि, चाव।
'हिंदू-धर्म-सनातन' का यह पावन रूप शुद्धतम भाव॥

[१३१४]

(राग देस—ताल मूल)

एकमात्र प्रभुकी सेवा कर्तव्य कर्म है।
नित्य निरंतर प्रेमपूर्ण, बस, परम धर्म है॥
सकल इन्द्रियोंसे, तन-मनसे मतिसे नित ही।
बनती रहे सदा सेवा यह चिर-वाञ्छित ही॥
रहे न कभी तनिक इच्छा आराम-भोगकी।
रहे न वाञ्छा तनिक मोक्ष, निज सुख-सँयोगकी॥
रहे एक, बस, प्रेम-सुधा-रस-आस्वादन ही।
सर्व-धर्म-मस्तक-मणि यह, हरि-आराधन ही॥

[१३१५]

(राग मलार—ताल कहरवा)

सबमें समझो एक आत्मा नित्य अभिन्न अमृत सत अद्वय।
सबमें है वह सहज आत्मा पूर्ण ज्ञान-चिन्मयानन्दमय॥

जीवनकी सुविधा हो सबको, मिले सभीको ज्ञानानन्द।
कोई दुखी न रहें, सभी पायें सुख यथायोग्य स्वच्छन्द॥
यथाशक्ति यों सब जीवोंका करना सुख-सम्पादन नित्य।
यही धर्म है, है अधर्म नित क्षुद्र अहं-गत स्वार्थ अनित्य॥

[१३१६]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

धन-ऐश्वर्य, सफलता भौतिक, पद-अधिकार, मान-सम्मान।
प्रचुर भोग-साधन, निरोग तन, राग-युक्त इन्द्रिय बलवान॥
सभी अपूर्ण, अनित्य, क्षणिक हैं; सभी मृत्युमय, दुःखागार।
भूलो नहीं इन्हें पा, क्षणभर प्रभु-पद-रति-रस-सिन्धु अपार॥
मानव-जीवनका न कभी है लक्ष्य अशुचितम भौतिक भोग।
लक्ष्य एक ही, रहे सुदृढ़ नित प्रभुसे भेद-शून्य संयोग॥
हों मन-बुद्धि-इन्द्रियोंके सब इसी हेतु सुविचार सुकर्म।
है पुनीत कर्तव्य यही मानवका, यही एक शुचि धर्म॥

[१३१७]

(राग ईमन)

हरि-पद-पदुम-पराग में सदा जु प्रीति अनन्य।
यही धर्म सब सों बड़ो, जा में यह सो धन्य॥

[१३१८]

(राग देस)

धर्म मूल पावन परम बंदौं पद-अरबिंद।
बस्यौ जहाँ रस-पान रत मम मन मत्त मिलिंद॥

[१३१९]

(राग भैरव)

नहिं ममता, नहिं कामना, नहीं सङ्ग, अभिमान।
बिनय, त्याग भरपूर हिय, सो सेवक मतिमान॥
सेवक सेवा छाँड़ि कै, चहै न संपति स्वर्ग।
सेवा ही है परम फल, परम धर्म, अपबर्ग॥

[१३२०]

(राग रामकली—ताल झूमरा)

पिता तीर्थ है, जननि तीर्थ है और तीर्थ है श्रीआचार्य।
पति-पत्नी है तीर्थ परस्पर, अतिथि तीर्थ कहते हैं आर्य॥
दया-दान शुभ तीर्थ, तीर्थगुरु निर्मल मन है मन-भावन।
राम-नाम शुचि तीर्थराज है सकल कलुष-हर जग-पावन॥

[१३२१]

(राग गुनकली—ताल त्रिताल)

निज सुखकी परवाह न करके, करना सुखी प्रजाको नित्य।
फैलाना आचरण स्वयं कर, सदाचार, सेवा, तप, सत्य॥
ईश्वरमें रति बढ़े सतत, करना-करवाना ऐसे कर्म।
न्याय-दयायुत सदा बरतना—यही श्रेष्ठ राजाका धर्म॥

[१३२२]

(राग देस)

मुख, बाहू, जङ्घा, चरण अपने-अपने स्थान।
एक देहके अङ्ग हैं, निज-निज कार्य प्रधान॥
क्षेत्र-कार्य सबके पृथक्, किंतु महत्त्व समान।
सबकी आवश्यकता सदा, सबके कार्य महान॥
त्यों ही एक समाजके चार अङ्ग सुख-खान॥
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुचि शूद्र धर्म-मतिमान।
ज्ञानार्जन कर विप्र नित, वितरण करता ज्ञान॥
क्षत्रिय रक्षा-रत सतत शूरवीर बलवान॥
वैश्य न्यायसे धन कमा, देता सबको दान।
शूद्र नित्य श्रम-दान कर, करता अति कल्याण॥
एक समाज-शरीर-हित चारों हैं वरदान।
प्रभुसे चारों ही बने, चारोंमें भगवान॥

[१३२३]

(राग ईमन)

सत्य वचन हितकर मधुर परिमित, नित स्वाध्याय।
विद्या-विनय-विवेक-युत, शान्त-हृदय, रत-न्याय॥
शम-दम-श्रद्धा-त्याग, शुचि, निरत नित्य शुभ-कर्म।
अध्ययनाध्यापन, यजन-याजन ब्राह्मण-धर्म॥

[१३२४]

(राग वसन्त—ताल कहरवा)

वैश्य जो न्याय-धर्म-सम्पन्न। प्रचुर उपजाता कृषिसे अन्न॥
पालता पशु, उपजाता अर्थ। कभी करता न प्रमाद-अनर्थ॥
सदा करता विशुद्ध व्यापार। सत्यका करता नित सत्कार॥
न लेता पर-धन कभी अशुद्ध। बही-खाता रखता सब शुद्ध॥
छोड़ता कभी नहीं ईमान। विप्र-गो-हित करता नित दान॥
अर्थपर मान न निज अधिकार। बाँटता बनकर सदा उदार॥
छिपाकर नहीं लाभका अंश। राज्यको देता कर दशमांश॥
राज्य भी करता उसका मान। लूटता कभी न बन बेभान॥
चतुर, श्रमशील, कर्ममें दक्ष। लाभ करता पद अर्थाध्यक्ष॥
देव-आराधन, प्रभुकी भक्ति। सदा करता जितनी है शक्ति॥

[१३२५]

(राग अडाणा—ताल मूल)

व्रत-उपवास-नियम-तप-तत्पर, दान शक्तिभर, वत्सल-भृत्य।
दया, विनय, परनारी-वर्जन, स्व-स्त्री-रति, सब सुन्दर कृत्य॥
सदाचार-शुचि-शील-परायण, सरल, सत्यवादी, मतिमान।
मातृ-पितृ-सेवक, श्रद्धा-युत, शुद्ध-धर्म रत, गत-अभिमान॥
अर्थ न्यायसे अर्जन करता, रखता नित प्रभुमें विश्वास।
यथासाध्य सुख देता सबको, देता नहीं किसीको त्रास॥
आदर करता सब कुटुम्बका, पालन, सबका करता मान।
उस गृहस्थपर कृपा-सुधा बरसाते संतत श्रीभगवान॥

[१३२६]

(राग बिलावल—ताल मूल)

पुत्र सुपुत्र वही जो करता नित्य पिता-माताका मान।
तन-मन-धनसे सेवा करता, सहज सदा करता सुख-दान॥
भगवद्भक्त, जितेन्द्रिय, त्यागी, कुशल, शान्त, सज्जन, धीमान।
जाति-कुटुम्ब-स्वजन-जन-सेवक, ऋत-मित-हित-वादी, विद्वान॥
धर्मशील, तपनिष्ठ, मनस्वी, मितव्ययी, दाता, धृतिमान।
पुत्र वही होता कुल-तारक, फैलाता कुल-कीर्ति महान॥

[१३२७]

(राग खमाज)

पति-सेवाको मानती जो सौभाग्य अपार।
बनती वह, सब त्याग सुख, पत्नी सेवाधार॥
पूजनीय माँ-बापको जान ईश प्रत्यक्ष।
सेवा रत सुत समझता जीवनका यह लक्ष्य॥
होते पत्नी-पुत्र यों सेवक जहाँ अनन्य।
वे शुचि घर, वे कुल, धरणि होते अतिशय धन्य॥

[१३२८]

(राग भूपाली—ताल कहरवा)

समझकर पत्नीको अर्धाङ्ग। धर्ममें रखता संतत सङ्ग॥
दीन, दासी, गुलाम-सी जान। न करता कभी भूल अपमान॥
निरन्तर सुहृद, मित्र निज मान। सदा करता विशुद्ध सम्मान॥
'पूर्ण करती त्रुटियोंको नित्य। मिटाती दुविधा सभी अनित्य॥
हरण करती दुश्चिन्ता-क्रान्ति। चित्तको देती सुखकर शान्ति'॥
—देख यों पत्नी सद्‌गुण-रूप। हृदयका देता प्रेम अनूप॥
उसे गृहरानी कर स्वीकार। समझ उसका समान अधिकार॥
सलाह-सम्मति ले सदा ललाम। चलाता घर-बाहरका काम॥
मधुर वाणी, सुमधुर व्यवहार। सदा करता आदर-सत्कार॥
शुद्ध सुख पहुँचाता अविराम। यही पति-धर्म अमल अभिराम॥

[१३२९]

(राग गूजरी—ताल त्रिताल)

भारतीय नर-नारी दोनोंका घरमें समान अधिकार।
एक दूसरेके पूरक बन करते बिपुल शक्ति-संचार॥
जैसे दो पहिये गाड़ीके चला रहे गाड़ी अनिवार।
त्यों दोनों मिल सदा चलाते ये गृहस्थका कारोबार॥
रहते पहिये सक्रिय दोनों जब गाड़ीके दोनों ओर।
चलती तभी सुचारु रूपसे गाड़ी सतत लक्ष्यकी ओर॥
अगर जोड़ दे कोई दोनों पहिये कभी एक ही ओर।
चलना रुक जायेगा, गाड़ी पड़ी रहेगी उस ही ठोर॥
वैसे ही नारी सँभालती-करती घरका सारा काम।
पुरुष देखता है बाहरका, अर्थार्जनका कार्य तमाम॥
नारी है घरकी साम्राज्ञी, पुरुष बाहरी कार्याधीश।
सेवक-सखा परस्पर दोनों, दोनों ही दोनोंके ईश॥
है घर एक, तथापि सदा है कर्मक्षेत्र दोनोंके भिन्न।
हो यदि कर्म विभिन्न न, तो बस, हो जायेगा घर उच्छिन्न॥
खूब निखरता यों दोनोंके मिलनेसे गृहस्थका रूप।
प्रीति परस्पर बढ़ती, बढ़ता पल-पल सुख-सौभाग्य अनूप॥
दोनों दोनोंको सुख देते, रहते स्व-सुख-कामना-हीन।
स्वार्थ न होनेसे दोनोंका चित्त न होता कभी मलीन॥
दोनों दोनोंका ही आदर करते, करते सद्-व्यवहार।
प्रेरित करते दोनों प्रभुकी ओर परस्पर बारंबार॥
जहाँ त्याग है, वहीं प्रेम है, प्रेम स्वयं ही है सुख-धाम।
त्याग-प्रेम-सुखमय भारत-नर-नारीका गृहस्थ अभिराम॥

[१३३०]

(राग परज—ताल कहरवा)

जिनसे जगती विषय-वासना, बुद्धि ग्रहण करती अविवेक।
मन-इन्द्रिय होते अधर्म-रत, त्याग शास्त्र-मर्यादा-टेक॥
बढ़ जाती अधर्म-रति, होने लगता सहज यथेच्छाचार।
अधःपात होता, जीवनमें बढ़ते दुःख-अशान्ति अपार॥
ऐसे प्राणि-पदार्थ, दृश्य, साहित्य, वस्त्र, आहार-विहार।
हैं ये सभी कुसङ्ग, त्याज्य हैं, वृत्ति आसुरीके व्यवहार॥
बुद्धि विवेकवती हो, जिससे ऐसा हो सात्त्विक सत्सङ्ग।
मन-इन्द्रिय संयत हों, उनपर चढ़े पवित्र धर्मका रङ्ग॥
संयम-नियम धर्म-सम्मत हों, मनकी वृत्ति ईश्वराकार।
सर्व भूत हित, जीवन जिससे बने शान्ति-सुखका आगार॥

[१३३१]

(राग लावनी)

सर्व-शिरोमणि विश्व-सभाके, आत्मोपम विश्वम्भरके।
विजयी नायक जग-नायकके, सच्चे सुहृद चराचरके॥
सुखद सुधा-निधि साधु कुमुदके, भास्कर भक्त-कमल-वनके।
आश्रय दीनोंके, प्रकाश पथिकोंके, अवलम्बन जनके॥
लोभी जग-हितके, त्यागी सब जगके, भोगी भूमाके।
मोही निर्मोहीके, प्यारे जीवन बोधमयी माँके॥
तत्पर परम हरण पर-दुखके, तत्परता-विहिन तनके।
चतुर खिलाड़ी जग-नाटकके, चिन्तामणि साधक-जनके॥
सफल मार्ग-दर्शक पथ-भ्रष्टोंके, आधार अभागोंके।
विमल विधायक प्रेम-भक्तिके, उच्च भावके, त्यागोंके॥
परम प्रचारक प्रभु-वाणीके, ज्ञाता गहरे भावोंके।
वक्ता, व्याख्याता, विशुद्ध, उच्छेदक सर्व कुभावोंके॥

पथ दर्शक निष्काम-कर्मके, चालक अचल सांख्य पथके।
पालक सत्य-अहिंसा व्रतके, घालक नित अपूत पथके॥
नाशक त्रिविध तापके, पोषक तपके, तारक भक्तोंके।
हारक पापोंके संजीवन-भेषज विषयासक्तोंके॥
पावनकर्ता पतितोंके, पृथ्वीके, प्रेत-पितृ-गणके।
भूषण भूमण्डलके, दूषण राग-द्वेष रणाङ्गणके॥
रक्षक अतिदृढ़ सत्य-धर्मके, भक्षक भव-जंजालोंके।
तक्षक भोग-रोग, धन-मदके, व्यापारी सत-लालोंके॥
दक्ष-दुभाषी 'जन, जन-धन'के, मुखिया राम-दलालोंके।
छिपे हुए अज्ञात लोक-निधि, मालिक असली मालोंके॥
चूड़ामणि दैवी गुण-गणके, परमादर्श महानोंके।
महिमा-वर्णनमें अशक्त तव विद्या-बल विद्वानोंके।

[१३३२]

(राग वसन्त—तीन ताल)

संत महा गुन-खानी।
परिहरि सकल कामना जग की, राम-चरन रति मानी॥
पर दुख-दुखी, सुखी पर-सुख तें, दीन-बिपति निज जानी।
हरिमय जानि सकल जग सेवक उर अभिमान न आनी॥
मधुर, सदा हितकर, प्रिय साँचे वचन उचारत बानी।
बिगतकाम, मद-मोह-लोभ नहिं, सुख-दुख सम कर जानी॥
राम-नाम-पीयूष-पान-रत, मानद, परम अमानी।
पतितन को हरिलोक पठावन जग आवत अस ग्यानी॥

[१३३३]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

गुरु यथार्थमें वही, स्वयं हो जिसको प्रभुका तत्त्व-ज्ञान।
शम-दम-त्याग-समत्व-प्रेमकी जो हो पावन मूर्ति महान॥

निज आदर्श चरितकी द्युतिसे हरे शिष्यका तम-अज्ञान।
प्रभुकी ओर लगा, जो कर दे सहज समुज्ज्वल-जीवन-दान॥
सेवा करे सदा ऐसे सद्गुरुकी, समझ उसे भगवान।
श्रद्धा-विनय-भक्तिसे अनुगत रहे, करे पूजन-सम्मान॥
बना रहे आज्ञाकारी नित कर्म-वचन-मनसे सज्ञान।
गुरुकी सहज कृपासे उसका हो अभ्युदय, परम कल्यान॥

[१३३४]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

जिसका मन है अमल, सौम्य; है मौन, भाव जिसके संशुद्ध।
निगृहीत है सहज, सतत जो रहता प्रभुमें नित्य निरुद्ध॥
बाह्याडम्बरशून्य सरल जीवन सादा, शुचि, रहित-बिकार।
चमत्कारको समझा जाता दूषित जहाँ, व्यर्थ, निस्सार॥
लोगोंको आकर्षित करके देना उन्हें सदा उपदेश।
बार-बार है उन्हें सुनाना, मिला हुआ प्रभुका संदेश॥
अपनेमें श्रद्धा उपजाकर करना अति उनका उपकार।
अच्छा हो, पर उक्त संतजन, करते नहीं इसे स्वीकार॥
बिना किसी भी चमत्कारके, बिना दिये कुछ भी उपदेश।
उनके मूक सत्य जीवनसे मिलता सहज दिव्य संदेश॥
होता रहता उससे पावन सहज चराचर सब संसार।
दिव्य वायुमण्डल बनता, फैलाता सात्त्विक भाव-बिचार॥
सच्चे साधक बना दिव्य प्रभु-कृपा अहैतुकको आधार।
चलते दृढ़ साधन-पथपर वे, करके सभी त्याग स्वीकार॥
बाह्य प्रदर्शन-आडम्बरसे रह अति दूर, छोड़ अभिमान।
शीघ्र पहुँच जाते वे दुर्लभ प्रभुके पदपर साधु महान॥

[१३३५]

(राग दुर्गा—ताल दीपचंदी)

रह न गया जिसमें किंचित् भी, कहीं, कभी ममताका लेश।
प्राणि-पदार्थ-परिस्थिति देने लगे सभी समता-संदेश॥
रहा न जिसमें किसी वस्तु-स्थितिका किंचित्-सा भी अभिमान।
अहंकारके पूर्ण विलयसे हुआ जिसे पर-तत्त्व-ज्ञान॥
रहता सदा जगतमें, करता काम सभी विधिके अनुसार।
पर कुछ भी करता न कभी वह, रहता निर्मल-निरहंकार॥
अभिनय करता यथायोग्य वह सुन्दर नाम-रूप-अनुहार।
पर रहता निर्लेप नित्य वह, राग-काम-विरहित, अविकार॥
द्वेष, क्रोध, शोक, भय, चिन्ता, ईर्ष्या, मत्सर, हर्षामर्ष।
छू सकते न कभी उसको सब, हो अपकर्ष, भले उत्कर्ष॥
सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय, अतुल सब विधि संतोष।
करुण-हृदय संतत, सेवा-रत, शुभ गुणमय जीवन निर्दोष॥
पर-दुखमें दुखिया-सा होकर यथासाध्य सेवा करता।
पर-सुखमें कर हर्ष प्रकट, अति अमित मोद मनमें भरता॥
सुखकी नहीं स्पृहा करता, होता न कभी दुखमें उद्विग्न।
द्वन्द्व-रहित वह रहता, निज निर्मल स्व-रूप चिन्मयमें मग्न॥
कभी न होता किसी जीवका उससे किंचित् भी अपकार।
सदा सभीके हितमें रहती उसकी बुद्धि-विभूति उदार॥
पर होते आदर्श सभी उसके विशुद्ध सुन्दर व्यवहार।
जीवन्मुक्त वही अति पावन परम ज्ञान-विग्रह साकार॥
शम-दम, परहित-रति, ईश्वर-गुरु-सेवन उसके सहज सु-भाव।
पर-वैराग्य सहज शुचि रहता, नहीं भोगका किंचित् चाव॥
नहीं त्यागमें भी होता वह आग्रहवश कदापि अनुरक्त।
पूर्ण परात्पर सच्चिन्मय आनन्दरूप रहता अविभक्त॥

करता सहज रूपसे सारे सदाचार-संयुत शुभ कर्म।
नहीं छोड़ता किसी प्रलोभन-भयसे वह अपना सद्धर्म॥
पर रहता स्वरूपतः वह नित धर्माधर्म-रहित तत्त्वज्ञ।
नहीं समझ पाते, उसकी अन्तःस्थितिको बाहरसे अज्ञ॥

[१३३६]

(राग शंखध्वनि—ताल त्रिताल)

हरिने आदर दिया जिसे, वह है गरीब भी अति धनवान।
हरिने प्यार किया जिससे, वह हुआ मूर्ख भी अति मतिमान॥
हरिने अपना कहा जिसे, वह भाग्यहीन सौभाग्य-निधान।
हरिने जिसे हृदय चिपटाया, उसके कोई नहीं समान॥
भाग्य-पुण्य, गुण-गौरव—सब सेवन करते उसकी पद-रज।
साधक-सिद्ध, प्रसिद्ध देव-किंनर, ऋषि-मुनि, सुर-अधिपति, अज॥

[१३३७]

(राग चन्द्रकोश—ताल कहरवा)

ईश्वर नित्य प्रसन्न-वदन हैं, स्थित निज नित्य स्वरूपानन्द।
प्रेमीजन भी तद्वत् नित करते आस्वादन रस-आनन्द॥
प्रभुका हर मङ्गल-विधान उनको करता अनुपम सुख-दान।
हँसते रहते नित्य इसीसे वे प्रभु-विश्वासी मतिमान॥
मनका यह प्रसाद नित रखता उनके मन-शरीरको स्वस्थ।
प्रभु—आनन्दरूपमें स्थित रहते, होते न कभी प्रकृतिस्थ॥
निर्मल यह प्रसन्नता करती नित्य विशुद्ध ज्ञान-विस्तार।
फैलाते प्रसन्नता अबिरत फिर वे दूर-दूर अविकार॥
करते प्रभु उनके अति निर्मल सुखमय मनमें नित्य निवास।
अतः छिटकता रहता उनके जीवनसे नव-नव उल्लास॥
जिधर निकल जाते वे प्रभुके सदानन्दमय हँसमुख दास।
हो जाता आनन्द-ज्योतिका वहाँ विमल तत्काल विकास॥

[१३३८]

(राग अहीर भैरव—ताल धमार)

यद्यपि तूने किये अनेकों पातक घोर, दुष्ट-आचार।
है यदि तू पातकी जगत्का सर्वश्रेष्ठ नेता-सरदार॥
नरक-जन्तु नक्रादि भयानक फल भुगतानेको तैयार।
तो भी ज्ञान-तरणि चढ़ तू तर जायेगा भव-पारावार॥

[१३३९]

(राग देस)

स्तुति-निन्दा, सुख-दुःख सब, मान और अपमान।
इनमें जो नित सम रहे, सो ज्ञानी मतिमान॥

[१३४०]

(राग खट—ताल मूल)

'योग-विभूति-सिद्धि', अति दुर्लभ, सहज नहीं हो सकतीं प्राप्त।
पर इनसे न 'मुक्ति' मिल सकती, कहते सिद्ध अनुभवी आप्त॥
है अवश्य ही बड़ा विलक्षण यह मुनियोंका योग-महत्त्व।
जान सके वे इसके द्वारा ईश-सृष्टिका सारा तत्त्व॥
इसे छोड़, फिर हुए अग्रसर चिन्मय 'परम-धाम' की ओर।
मिले परम प्रभुमें वे जाकर, हुए 'नित्य आनन्द-विभोर'॥
यही चरम फल श्रेष्ठ योगका, यही योगियोंका नित साध्य।
इसीलिये करते साधन वे, मान एक प्रभुको आराध्य॥
वही 'युक्ततम' जो भजते हैं अन्तरात्मासे भगवान।
नित्य-निरन्तर हो अनन्य जो, रह प्रभुके प्रति श्रद्धावान॥

[१३४१]

(राग कामोद—ताल दीपचंदी)

जड-चेतन सबमें जो सदा देखता एकमात्र भगवान।
सबके सेवा-हितमें जो कर देता अपना सब बलिदान॥

निज सुख-दुखमें सदा देखता जो प्रभुका कल्याण-विधान।
क्षमावान्, पर-दुःख-दुखी जो, पर-कल्याण-निरत-मतिमान॥
जिसके इन्द्रिय-प्राण, बुद्धि-मन-देह सभी प्रभु-सेवा-लीन।
रहते सदा, त्याग अग-जगका सारा ही सम्बन्ध मलीन॥
सदाचार-रत रहता, पर करता न कभी किंचित् अभिमान।
जन्म-कर्म-वर्णाश्रम-कुलमें रखता नहीं राग विद्वान॥
राग-द्वेष रहित प्रभु-सेवा-हित करता विधिवत् व्यवहार।
पर न कहीं भी, कुछ भी करता अहंकार जो किसी प्रकार॥
एकमात्र प्रभुमें ही रहती जिसकी सब ममता-आसक्ति।
कर्ममात्र होते प्रभु-पूजा, प्रभुमें ही होती शुचि भक्ति॥
नहीं विमोहित कर पाते जिसको भुवनोंके दुर्लभ भोग।
नहीं त्याग करता, कैसे भी, वह शुचि प्रभु-स्मृतिका संयोग॥
प्रभुके शुचितम मधुर मनोहर लीला-नामोंमें अनुरक्त।
सदा-सर्वदा रहता, होकर सभी वासनाओंसे मुक्त॥
दैवी सम्पद्के गुण जिसकी सेवा कर नित होते धन्य।
भुक्ति-मुक्तिका त्यागी, अति बड़भागी प्रभुका भक्त अनन्य॥
प्राणि-पदार्थ-परिस्थितिमें सम, नित्य-निरन्तर द्वन्द्वातीत।
निकल रहा जिसके अणु-अणुसे नित्य मधुर प्रभुका सङ्गीत॥
इस प्रकार जो दिव्य गुणों-भावोंसे युक्त नित्य रमणीय।
वही श्रेष्ठ प्रभु-रत वैष्णव है, सेवनीय अति आदरणीय॥

[१३४२]

(राग जौनपुरी—ताल त्रिताल)

प्रभु-सेवामें 'अहं' समर्पित, केवल प्रभुमें मधुर 'ममत्व'।
सुख-दुःखादि सभी द्वन्द्वोंमें स्वाभाविक हो गया 'समत्व'॥
भोग-मोक्षकी मिटी 'कामना', रह नहिं गया 'वासना-लेश'।
मिटा 'मोह', सब नष्ट हो गये 'राग-द्वेष' 'मृत्यु-भय'-क्लेश॥

नित्य-निरन्तर केवल 'प्रभुकी स्मृति' में ही रहता मन लीन।
त्याग सभी 'अभिमान' निरन्तर प्रभुके सम्मुख रहता 'दीन'॥
नित्य-निरन्तर करता केवल एकमात्र 'प्रभुके ही काम'।
सबमें सदा देखता प्रभुका मधुर, मनोहर मुख अभिराम॥

[१३४३]

(राग श्यामकल्याण—ताल धमार)

जगमें जो कुछ भी है मिलता—कीर्ति-अकीर्ति, मान-अपमान।
धन-दारिद्र्य, शुभाशुभ, प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख, लाभ-नुकसान॥
जन्म-मृत्यु आरोग्य-रोग, सब ही निश्चित हित-पूर्ण विधान।
रचते मङ्गल-हेतु ज्ञानमय सुहृद-शिरोमणि श्रीभगवान॥
विश्वासी अति भक्त नित्य संतुष्ट बना रहता यह जान।
हर स्थितिमें पाता वह मङ्गलमय प्रभुका संस्पर्श महान॥
हर्ष-विषाद-रहित वह रहता, सदा परम आनन्द-निमग्न।
चित्त-बुद्धि सब रहते उसके नित्य सतत प्रभुमें संलग्न॥
प्रभुका अतिशय प्रिय वह होता, परम दिव्य समता-सम्पन्न।
होता उसके उरमें प्रभुका नित्य नवीन प्रेम उत्पन्न॥
एकमात्र प्रभुमें होती उसकी अनन्य ममता एकान्त।
हो जाता दुर्लभ फिर उसका परम भागवत-जीवन शान्त॥

[१३४४]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

द्वेष-रहित, जो मित्र सभीका, दीन-दुःखितोंका आधार।
ममता-अहं-शून्य, सम निज सुख-दुःख, क्षमी—वह संत उदार॥

[१३४५]

(तर्ज लावनी—तीन ताल)

काम-क्रोध-लोभ-मद-विरहित, शोक-मोह-भय-भ्रमसे हीन।
ज्ञानमूर्ति, निष्कामनिष्ठ अति, पावन परम प्रेमरस-पीन॥

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

पद-रत्नाकर

हनुमानप्रसाद पोद्दार

* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

पद-रत्नाकर

हनुमानप्रसाद पोद्दार

नित्य शान्ति, आनन्द नित्य ही, तृप्ति नित्य अविचल अत्यन्त।
सर्वभूत हित-रति स्वाभाविक, समता, ममता-रहित अनन्त॥
वज्रादपि कठोर निज-हित जो, पर-हित कोमल कुसुम-समान।
अचल प्रतिष्ठित दैवी सम्पद, नित्य ज्ञान-विज्ञान-निधान॥
जिनमें भरे अखण्ड पूर्ण आनन्द, प्रेम शुचि, निर्मल ज्ञान।
जिनके रोम-रोममें छाये रहते स्वयं नित्य भगवान॥
जिनके तन-मन-वचन बहाते अविरल भगवद्-रसकी धार।
ऐसे संतोंके पद-कमलोंमें प्रणाम है बारंबार॥

[१३४६]

(राग जैतकल्याण—ताल त्रिताल)

दम्भ-मान-मद-पद-यश-वैभवका जो करते मनसे त्याग।
दुःखयोनि इन्द्रिय-भोगोंमें भूल न रखते रञ्चक राग॥
काम-क्रोध-लोभसे विरहित, दुराचार-दुर्मतिसे हीन।
ममता-अहंकार-भय-वर्जित, द्रोह-वैर-हिंसादि-विहीन॥
'चमत्कार'-'आश्चर्य'-'सिद्धि' दिखलानेकी न भावना लेश।
नहीं बासना तनिक 'आत्मपूजन' की, धर 'विरक्तका वेश'॥
सरल अकृत्रिम सादा जीवन दैवीसम्पद्-युक्त विशुद्ध।
नहीं एक भी क्रिया-चेष्टा देह-चित्तकी शास्त्र-विरुद्ध॥
शम-दम-त्याग-तितिक्षा-समता-सत्य-अहिंसा-सेवाभाव।
शुचिता-तप-सहिष्णुता-करुणा-विनय-ईशचिन्तनका चाव॥
प्राणिमात्रमें देख नित्य प्रभुको, करते सबका सम्मान।
सबका सुख-हित-साधन करते, पावन परम धर्म यह मान॥
अथवा सबमें देख निजात्मा, आत्मामें सब भूत निहार।
आत्मोपम सुख-दुःख सभीके जान सदा करते व्यवहार॥
ऐसे जो आदर्श परम मानव हैं, वे ही 'सच्चे संत'।
उनका सेवन-सङ्ग सहज कर देता भव-बन्धनका अन्त॥

[१३४७]

(राग पूरिया—ताल त्रिताल)

पर-निंदा मिथ्या करि मानै, सुनै न कहै काउ तें बात।
बुरी लगै परसंसा अपनी, पर की सुनत सदा हरषात॥
छोटन तें बिनम्रता बरतै, करै बड़न कौ सुचि सत्कार।
निज सुख भूल, देत सुख पर कौं होय परम सुख सहज उदार॥
सहज दयालु रहै दीनन पर, करै सबनि सौं निस्छल प्रेम।
करै न किंचित् कपट, निभावै सुद्ध सरलता कौ नित नेम॥
बाचा-काछ रखै नित बस में, रहै परिग्रह-संग्रह-हीन।
करै न रति जग के परपंचनि, रहै सदा हरि-सुमिरन-लीन॥
निज-हित पर तें जैसो चाहै, करै सबनि सौं सो व्यवहार।
देखै सदा सबनि में हरि कौं, यहै संत कौ धर्माचार॥

[१३४८]

(राग नारायणी—ताल त्रिताल)

जिनके परस-दरस-सुमिरन तें महापाप सब मिटैं तुरंत।
सहज उदार-सुभाव कर रहे जग-कल्यान नित्य वे संत॥
फैल रही जिन तें सब जग में निर्मल भगवत्-ज्योति अपार।
सकल ताप-तम हर, करती सो उज्ज्वल भगति-ग्यान-विस्तार॥

[१३४९]

(राग रागेश्वरी—ताल त्रिताल)

नहीं जरा भी जिनमें ममता-राग-द्वेष-अस्मिता-मान।
जिनमें भरे सरलता-संयम-सर्वभूत-हित-रति अम्लान॥
जिनमें क्षमा-दया-शम-दम सब दैवी गुण, शुचि आत्मज्ञान।
ऐसे संत-स्मरण-मिलन-सेवनसे होता ध्रुव कल्यान॥

[१३५०]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

नित्य 'ज्ञानमय', 'नित्य ज्ञान' जो, नित्य 'ज्ञानके मूलाधार'।
वे भगवान् प्राप्त हैं जिनको परम प्रेष्ठ बनकर साकार ॥
बाहर-भीतर उनसे रहता बना एकरस जब संयोग।
तब न प्रयोजन वहाँ ज्ञानका, न कुछ प्रयोजन रखता योग ॥

[१३५१]

(राग भूपाली—ताल मूल)

मिलता नहीं बिना हरिकी अनुकम्पाके पावन सत्सङ्ग।
जिससे 'भोगोंमें सुख है' इस विषम भ्रान्तिका होता भङ्ग ॥
हो जाता तमाम इह-परके भोगोंसे तत्काल विराग।
हो जाता प्रभु-पद-पद्मोंमें सुदृढ़ और अनन्य अनुराग ॥
जिससे भोगोंमें सुख दिखता, बढ़ती मनमें विषयासक्ति।
मोह-जनित बढ़ती जाती आराम-नाममें ही अनुरक्ति ॥
हो चाहे 'सत्सङ्ग' नाम, पर है वह निश्चय ही 'दुस्सङ्ग'।
जिससे चढ़ जाता जीवनपर दोषमयी मायाका रङ्ग ॥

[१३५२]

(राग विभास—ताल त्रिताल)

सुख-दुःखोंसे रहित भागवत-जीवन ही है 'परमानन्द'।
प्रभुकी शुभ संनिधि है जिसमें नित्य बनी रहती स्वच्छन्द ॥
इन्द्रिय-मन-मति-चित्त—सभी नित रहते प्रभु-सेवा-संलग्न।
रहता जीवन नित्य दिव्य भगवद्-रस-सुधा-समुद्र-निमग्न ॥
रहता नहीं तनिक भी प्राकृत जगका कहीं पृथक् अस्तित्व।
रह जाता, बस, एकमात्र सच्चिदानन्दमय भगवत्तत्त्व ॥

[१३५३]

(राग रामकली—ताल धमार)

निर्गुण-निराकारके साधक पाते हैं 'कैवल्य' महान।
होते लीन ब्रह्ममें तत्क्षण क्षारोदधिमें लवण-समान॥
पर 'कैवल्य' नहीं दे पाता जिन प्रेमी भक्तोंको तोष।
मुक्त भक्त वे 'परमधाम' में जाकर पाते हैं परितोष॥

[१३५४]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

मानवका है चरम परम शुचि एक लक्ष्य केवल भगवान।
लगे साधनामें जो इसकी, वही सत्य मानव मतिमान॥
होता मङ्गलमय मानवताका शुभ तभी यथार्थ प्रकाश।
दैवी मानव-गुण-समूहका होता तभी विशुद्ध विकास॥
मानव ही क्यों, सकल चराचर पाते उनसे सुख-विश्राम।
अखिल विश्वकी सहज सुसेवा शुचि उनसे होती अविराम॥
होते पूजन-रूप नित्य उनके सारे आचार-विचार।
नित स्वकर्मसे करते वे केवल प्रभु-सेवाका व्यापार॥
होते सर्वभूत-हित, इन्द्रिय-विजयी, प्राप्त-ज्ञान-विज्ञान।
छूते नहीं उन्हें फिर मिथ्या माया-ममता-मद-अभिमान॥
हर्षामर्ष-शोच-आकाङ्क्षा-रहित, सहज समता-सम्पन्न।
सर्व-हितमयी धारा उनसे नित होती रहती उत्पन्न॥
यों प्रभुके शुचि सेवनसे वे करते परम 'अभ्युदय' प्राप्त।
प्रभु-पद-प्राप्ति रूप 'निःश्रेयस'को फिर वे पा जाते आप्त॥

[१३५५]

(राग माँढ़)

मानव वह जो करता है मानव बन, सब जगकी सेवा।
मिलती उसे सिद्धि मानव-जीवनकी, प्रभु-प्रसाद-मेवा॥

****

[१३५६]

(राग परज—ताल कहरवा)

माता, पिता, देव, गुरु, गुरुजन, गौ, द्विज, रुग्ण, आर्त अति दीन—
पशु, पक्षी, तिर्यक्, प्राणी सब शुचि सुन्दर या अशुचि मलीन ॥
सेवा जो करता सबकी श्रद्धा-युत, करता निर्भय दान ।
भगवद्भाव भरे अन्तरसे सुख पहुँचाता, ईश्वर जान ॥
दुर्व्यवहार न करता कभी किसीसे, देता सबको मान ।
इन्द्रिय जयी, चित्त-जयकारी, पर-धन जिसके धूलि-समान ॥
रक्षा करता पर-हितकी नित, सदा बचाता पर-अधिकार ।
मङ्गल-कुशल बाँटता सबको, मङ्गल-रूप स्वयं साकार ॥
निज-सुख-वाञ्छा परित्याग कर, पर-सुखको ही निज सुख मान ।
पर-हितार्थ कर सर्व-समर्पण, परम सुखी होता मतिमान ॥
पतित, उपेक्षित, अपमानितको जो मनसे आदर देता ।
तन-मन-धन देकर, बदलेमें उनका कष्ट-दुःख लेता ॥
करता नित्य पड़ोसीका हित, निज सुख देकर दुख हरता ।
दुष्ट-सङ्ग कर त्याग, सदा शुभ सङ्ग संत-जनका करता ॥
वर्ण-जाति-कुल-गृह-कुटुम्ब—सबका विधिवत् पालन करता ।
पर कर त्याग मोह-ममताका, जीवनमें समता भरता ॥
ब्राह्मण, श्वपच, श्वान, गौ, गजमें सदा देखता ब्रह्म समान ।
करता सब व्यवहार सविधि, अनिवार्य भेदको हितकर जान ॥
रहता नित कर्तव्य परायण, शास्त्र-संत-मतके अनुसार ।
होता कभी नहीं उच्छृङ्खल, करता कभी न स्वेच्छाचार ॥
सब कुछ वैध उचित ही करता, करता नहीं कभी अभिमान ।
सबका एक परम फल 'भगवत्-प्रीति' चाहता अमल महान ॥
सर्वकाल जो चिन्तन करता प्रभुके पावन गुण-गण, नाम ।
कर मन-बुद्धि-समर्पण, जो प्रभु-पदमें करता प्रेम अकाम ॥
ऐसे मानवसे रहता अति दूर सदा दुर्मति-दानव ।
ऐसा मानव ही 'जग-भूषण' कहलाता 'सच्चा मानव' ॥

****

[१३५७]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

पाता है जो जीवनमें सर्वत्र सदा प्रभुका संस्पर्श।
नहीं फूलता जग-सुखमें, होता न दुःखमें जिसे अमर्ष॥
प्रभु-प्रदत्त प्रत्येक परिस्थितिमें ही जिसको होता हर्ष।
वही सफल-जीवन है, जिसने प्राप्त किया ऐसा उत्कर्ष॥
जड-चेतनमें सदा देख पाता जो प्रभुको ही अभिराम।
तन-मन-धनसे यथाशक्ति जो सेवा करता है अविराम॥
प्रभुकी सेवाके निमित्त ही होते जिसके सारे काम।
वही सफल-जीवन है, सुखमय सत्य उसीका जन्म ललाम॥
सर्वकाल जो चिन्तन करता प्रभुका, रखकर भाव अनन्य।
कर मन-बुद्धि समर्पित प्रभुको, नहीं देखता कुछ भी अन्य॥
जिसके कभी न आती मनमें राजस-तामस वृत्ति जघन्य।
वही सफल-जीवन है शोभन, परम उसीका जीवन धन्य॥
प्रभुके पावन पद-पङ्कजमें ही जिसका रहता अनुराग।
ममता एकमात्र प्रभुमें ही, हुआ अन्य-ममताका त्याग॥
निर्मल परम प्रीति प्रभुमें ही, विषय-जगत्से सहज विराग।
वही सफल-जीवन है जगमें, पुण्यश्लोक, वही बड़भाग।

[१३५८]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

मानव-जीवनका है पावन एकमात्र यह लक्ष्य महान—
सत्कर्मोंसे सदा पूजकर, 'पाना परम-अर्थ भगवान'॥
इसे भूलकर, भोग-परायण हो, करता जो नित्य प्रमाद।
लक्ष्य-भ्रष्ट हो, करता वह निज भावी जीवनको बरबाद॥
व्यर्थ-अनर्थ क्रियाओंमें फँस, करता नित्य नये वह पाप।
खोकर जीवन, वह कुबुद्धि पड़ता नरकोंमें अपने-आप॥

[१३५९]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

मानव-जीवन मूल्यवान यह बीता चला जा रहा व्यर्थ।
'परम-अर्थ' प्रभुको कर विस्मृत, संग्रह हम कर रहे अनर्थ॥
प्रभुका चिन्तन छोड़, रात-दिन करते हम भोगोंकी याद।
बढ़ती भोगासक्ति दिनोंदिन, बढ़ते भय-भ्रम, शोक-विषाद॥
सत्पथ त्याग, इसीसे चलते हम कुमार्गपर भर उत्साह।
नये-नये पापोंका संचय होता, बढ़ता नित उर-दाह॥
पता नहीं, क्या-कैसा होगा इसका दुस्सह दुष्परिणाम।
इससे बचनेका उपाय है एकमात्र—'भजना श्रीराम'॥

[१३६०]

श्रेय परम मानव-जीवनका, प्रभुके पदमें पावन प्रेम।
यही मनुजका परम योग है, यही मनुजका सत्य क्षेम॥

[१३६१]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

भोग अनित्य, अपूर्ण सदा हैं, क्षणभङ्गुर, दुःखोंकी खान।
हैं प्रत्यक्ष देखते, तो भी उन्हें चाहते सुखमय मान॥
नित्य मनोरथ नये-नये हम करते, रचते विविध उपाय।
मिलते नहीं किंतु मनचाहे, हो रहते निराश, निरुपाय॥
मिलते तो फिर अधिक प्राप्त करनेकी मनमें उठती चाह।
इसी बीच वे मिले हुए भी चल देते विनाशकी राह॥
रहता यह विनाशका भय नित, छा जाता विनाशपर शोक।
इन असंख्य भय-शोकोंसे है भरा सदा भोगोंका लोक॥
'भोगोंमें सुख है'—यह रहती जबतक मनमें छायी भ्रान्ति।
तबतक नये-नये दुख आते, कभी न मिल सकती सुख-शान्ति॥

जो हम स्थिर सुख-शान्ति चाहते तो भोगोंकी आशा त्याग—
परम सुहृद आनन्दरूप प्रभुको ही भजें सहित अनुराग ॥
समझें एक उन्हींको 'मेरा', उनके ही हो रहें अनन्य।
उनके एक पुण्य आश्रयसे जीवन सफल, परम हो धन्य ॥
यही चरम फल है जीवनका, यही साध्य है एक पुनीत।
करें इसीके लिये प्रार्थना प्रभु-चरणोंमें नित्य विनीत ॥

[१३६२]

(राग बसन्त—ताल कहरवा)

इन्द्रियके सब भोग विविध भीषण दुःखोंकी गहरी खान।
सुखका भ्रम ही होता, इनमें सुखका तनिक न नाम-निशान ॥
'सफल मनोरथ निश्चय होगा मेरा सारा अबकी बार।
अबकी बार कटेंगे सब दुख, सुखका नहीं रहेगा पार ॥'
मिथ्या सुखकी आशा यह—रखती मन नित्य अशान्ति अपार।
रहता सदा भटकता, पर पाता न कहीं सुखका आसार ॥
मिलती कहीं सफलता, बढ़ता तुरत सफलताका अभिमान।
पर अन्योंका देख अधिक साफल्य, चित्त अति होता म्लान ॥
इतनेमें फिर कहीं पलट जाता पासा, आता दुख-भार।
रोता, पुनः कलपता, दुखोंसे न कहीं पा सकता पार ॥
नित्य नया भय, नित्य शोक, नित ही पद-पदपर आशा-भङ्ग।
नित्य नयी भीषण दुःखोदधिमें उठतीं उत्ताल तरंग ॥
तो भी ममता नहीं छूटती, हटता नहीं भोग अनुराग।
बढ़ती नित्य नयी तृष्णा मन, बढ़ता भोगोंमें नव-राग ॥
नित्य अशान्त, अघी जीवनका इतनेमें आ जाता अन्त।
मरता दुखी राग-ममतासे, ले सँग पाप-भार अत्यन्त ॥
होता मानव-जन्म विफल, फिर विविध योनि, नरकोंके भोग।
अमित भोगने पड़ते, बरबस या प्रारब्ध-जनित संयोग ॥
इसे समझ, मानव-जीवनको मत खोओ भोगोंमें भूल।
भोग-विरागी हो, भज हरि, पहुँचो भव-सागरके उस कूल ॥

[१३६३]

(धुन खंभावती—ताल कहरवा)

चाहे हों कितने ही विद्या-कला-निपुण, भोगी श्रीमन्त।
चाहे हों सम्राट, राष्ट्रपति, चाहे हों गृह त्यागी संत॥
भौतिक भोग-शरीर-नामसे जो रखते मनका सम्बन्ध।
पाते सतत अशान्ति-दुःख वे, नहीं टूटता उनका बन्ध॥
जो भोगस्थ न हों हो रहते नित्य सतत प्रभुके चरणस्थ।
वे आस्वादन करते द्वन्द्वरहित नितशान्ति-सुधा-सुख, स्वस्थ॥
चाहे हों दरिद्र वे सब विधि, दीन-हीन सबसे परित्यक्त।
सुख स्वरूप वे रहते नित्य अनन्त दिव्य प्रभु-पद-आसक्त॥
निर्मल भगवत्प्रेम-भास्करका होते ही दिव्य प्रकाश।
मिट जाता अघ दुःख-अन्धतम, छाता ज्योतिर्मय उल्लास॥
बहती वहाँ मधुर रस धारा प्लावित कर सारा संसार।
रह जाता न कहीं कैसा भी रञ्चक कटु विष, विषय-विकार॥

[१३६४]

(राग पलासी—ताल कहरवा)

मन मति सात्त्विक रहे, चित्तमें नित्य रहे सेवाका चाव।
बढ़ता रहे सदा जीवनमें सर्वभूतहितका शुचि भाव॥
चिंतारहित शान्त जीवन हो, हो न कदापि शोक, उर-दाह।
भय-प्रमाद मद-दम्भरहित हो प्रभु-पद-सेवनमें उत्साह॥
दीर्घ आयु, आरोग्य, सुसंतति धर्मयुक्त हो धन सम्मान।
सब कर्मोंसे सदा सुपूजित होते रहें एक भगवान्॥
शुभ विचार, आचार शुद्ध हों, निर्मल हों सब वैध सुकर्म।
शरणागति प्रभुकी अनन्य हो, सर्वोपरि जो मानवधर्म॥

[१३६५]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

जबतक यह आस्था है मनमें, देंगे 'मन-वाञ्छित सुख' भोग।
तबतक भोग-कामनाका नित प्रबल रहेगा चालू रोग॥
भोग-कामना देगी नित्य-निरन्तर दुःख, बनेंगे पाप।
पापोंका फल होगा भीषण कष्ट, नरक, अतिशय संताप॥
सदा अपूर्ण भोग हैं निश्चित, क्षणभङ्गुर, दुःखोंके खेत।
इनमें जो सुख मान, चाहता इन्हें, मूर्ख वह मनुज अचेत॥
मानव-जीवनका है शुचितम पावन परम एक ही काम—
भव-बन्धनसे मुक्ति-प्राप्ति-हित करना नित्य भजन निष्काम॥
इससे भी ऊँचा है अनुपम लक्ष्य—'प्रेम' पञ्चम पुरुषार्थ।
बड़े-बड़े ज्ञानी-मुनि करते कठिन तपस्या जिसके अर्थ॥

[१३६६]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

दुर्लभ मानव-तन मिला, साधन-धाम महान।
मत खो भोगोंमें इसे, भज ले श्रीभगवान॥
मोह-निशा-तम मिटे सब, समुदित हो रवि-ज्ञान।
पुनर्जन्मसे मुक्ति हो, प्रभु-पदमें हो स्थान॥

[१३६७]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

विश्व-चराचरमें है व्यापक नित्य सत्य-चित आत्मा एक।
देखें उसे सभी कालोंमें, सबमें रखकर दृष्टि विवेक॥
सबके सुख-हितको ही समझें नित्य 'स्वार्थ' निज सुख-हित-रूप।
'स्व' को रखें न सीमित, उसका करें सदा विस्तार अनूप॥
तन-मन-धनसे कभी न चाहें-करें किसीका तनिक अनिष्ट।
त्याग सर्वविध हिंसा, सबका करें सदा ही मङ्गल इष्ट॥

अति हितकर शुचि 'त्याग' तथा 'कर्तव्य' करें हम अङ्गीकार।
मोह-ममत्व छोड़कर, कर दें त्याग सहज 'धन', 'पद', 'अधिकार'॥
करें न संग्रह कभी वस्तुएँ, बनें न असत्-अभाव-दरिद्र।
फैसन-व्यसन त्याग, रक्खें जीवनको सादा, शान्त, पवित्र॥
दें अभावग्रस्तोंको प्रमुदित, सविनय अर्थ-भूमि-सम्मान।
विद्या-बुद्धि-सुसम्मति-आश्रय, जो कुछ हम दे सकें अमान॥
मानव-दानव-पशु-पक्षी-कृमि—सबमें नित देखें भगवान।
बरतें निज वेषानुसार, पर करें न कभी अहित-अपमान॥
सभी वस्तुएँ हैं स्वामीकी, हमें किया अधिकार प्रदान।
रखें, सँभालें, करते रहें नियमतः प्रभु-सेवामें दान॥
जहाँ अभाव वस्तु जिसका, हैं माँग रहे उसको भगवान।
प्रभुको प्रभुकी वस्तु नम्र हो, दे दें, करें नहीं अभिमान॥
सेवा करें सदा ही सबकी, शुद्ध ईश-सेवाके अर्थ।
सेवाका शुचि भाव बढ़े, प्रभु रखें सदा सेवार्थ समर्थ॥
करें न किसी पवित्र 'धर्म' पर, 'मत' पर तनिक कभी आक्षेप।
कहें-करें कुछ भी न कभी, जिससे हो पर-मनमें विक्षेप॥
कर सकते हैं न्याय्य अर्थ-अधिकार-सुरक्षा-हेतु प्रयास।
पर वह वैध, शास्त्र-सम्मत हो, रक्खें ईश्वरपर विश्वास॥
कभी न लें आश्रय अधर्मका, कभी न करें सत्यका त्याग।
तन-धन जायें, न जाय धर्म, सत्य, प्रभुपर श्रद्धा-अनुराग॥
जीवनका उद्देश्य एक हो पावन प्रभु-पद-प्रीति अनन्य।
प्रभु-पूजाकी सामग्री बन, कार्य, विचार, वस्तु हों धन्य॥

[१३६८]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

जन्म-मरणके चक्र घोरका तबतक कभी न होगा अन्त।
जबतक मानव नहीं भजेगा श्रद्धा-युत मनसे भगवन्त॥
दुःखयोनि भोगोंका मोह छुड़ाकर भजन बनाता संत।
पा जाता फिर इससे मानव सुखमय नित पर-धाम अनन्त॥

[१३६९]

(राग परज—ताल कहरवा)

मानव ! मानवता धारण कर, तभी सफल होगा जीवन।
मोहावृत हो विषय-भोग-रत मत हो, व्यर्थ न खो जीवन॥
मानवताका रूप एक ही—ईश-समर्पित हो जीवन।
तन-मन-मति-रति हों प्रभुमें ही, प्रभु, सेवामय हो जीवन॥
सब जीवोंमें प्रभु-दर्शन हो, प्रभु-चिन्तनमय हो जीवन।
राग-रोषसे रहित, सहित संतोष, मधुरतम हो जीवन॥
पर-निन्दा, पर-दोष-कथन-चिन्तनसे विरहित हो जीवन।
पर-सुख-संरक्षक, भक्षक पर-दुःख निरन्तर हो जीवन॥
आशा-तृष्णा-त्यागी, अति प्रभु-पद-अनुरागी हो जीवन।
प्रभुगत-चित्त, परायण प्रभुके, पूर्ण निवेदित हो जीवन॥
अग-जगमें प्रभुके दर्शन कर, शान्ति-विरतिमय हो जीवन।
प्रभुमें ओत-प्रोत सर्वदा, सुखी निरतिशय हो जीवन॥

[१३७०]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

मानव आज बन गया दानव, राक्षस, निर्दय प्रेत, पिशाच।
बन हत्यारा क्रूर, कर रहा नृशंसताका नंगा नाच॥
मानव, पशु-पक्षी, तिर्यक् सब, कीट-पतंग हो रहे भीत।
घातक बन, निर्लज्ज गा रहा वह दुर्वृत्त शान्तिके गीत॥
नित नव नाशक शस्त्र बनाता, नित नव रचता नाश-विधान।
इसी जघन्य कर्ममें उसका व्यय हो रहा ज्ञान-विज्ञान॥
इसी आसुरी वृत्ति-जनित तमसे आच्छादित उसके काम—
होते सभी वैर-हिंसाके वर्धक, दुःख-शोकके धाम॥
जीवनभर अनन्त चिन्ता-अशान्ति-दुःखोंमें वह रह चूर।
मरकर भीषण नरक-यन्त्रणा-भोग करेगा वह भरपूर॥

प्राणी सकल उसे नोचेंगे, खायेंगे, देंगे अति कष्ट :
हो जायेगी दुःख-यातना मिटनेकी सब आशा नष्ट ॥
दुःखमयी आसुरी योनियाँ उसे मिलेंगी बारंबार।
कोई बश न चलेगा, कोई नहीं सुनेगा आर्त-पुकार ॥
मानव बन होगा दरिद्र, रोगी, अपमानित, अङ्ग-विहीन।
दुःख-ताप-संतप्त रहेगा नित कराहता, होकर दीन ॥
इन सब बातोंपर विचार कर, हिंसा छोड़ बढ़ाओ प्रेम।
किसी जीवको दुःख न देकर, करो सभीका योग-क्षेम ॥
सबमें देख नित्य ईश्वरको, सबका सदा करो सम्मान।
यथाशक्ति हित करो सभीका, विनय-युक्त दो सुखका दान ॥

[१३७१]

(तर्ज-लावनी—ताल कहरवा)

भय, व्याकुलता, क्रोध, निराशा, चिन्ताको दो पूरा त्याग।
छोड़ो मोह-विषाद, बुझा दो वैर-द्वेषकी भीषण आग ॥
आशा धैर्य, शान्ति-साहस हों, पूर्ण भरा मनमें उल्लास।
निश्चय हो साफल्य-सिद्धिका, रहें पूर्ण प्रभुपर विश्वास ॥
रहो सदा प्रभुके शरणागत, प्रभुके लिये करो सब काम।
रहो अचल सत्पथपर, लेते रहो सदा श्रीहरिका नाम ॥
प्रभु-आश्रयके साथ रहेगा जहाँ नित्य सत्कर्मोत्साह।
विजय, विभूति, कीर्ति, श्री, निश्चित नीति रहेंगी वहाँ अथाह ॥

[१३७२]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

प्राणिमात्रमें बस रहे एकमात्र भगवान।
नमन नित्य करना उचित, सेव्य उन्हें नित मान ॥
सर्वभूत-हितमें सदा लगें देह-मन-प्राण।
धन-सम्पत्ति, समृद्धि सब, मिलें तभी कल्याण ॥

मनमें भी आ जाय यदि प्राणी-अहित-विचार।
है भगवत्-अपराध वह, दूषित पापाचार॥
व्यक्ति-स्वार्थने खा लिया प्राणि-जगत्का स्वार्थ।
मानव दानव बन गया, भूल गया परमार्थ॥

[१३७३]

(राग बागेश्री—ताल कहरवा)

घोर अविद्या, जो मानवको कर दे पापोंमें संलग्न।
असुर-भाव-भर, रखे त्याज्य जो अर्थ-काममें नित्य निमग्न॥
वह भी निश्चय विषम अविद्या, जो मनमें भरकर अज्ञान।
वैध-भोग-रत रखे, भुला प्रभुको, जो उपजाकर अभिमान॥
विद्या वह, जो दैवी-सम्पद्से भर दे, कर प्रभुका दास।
सदा रखे प्रभु-सेवामें जो, मिटा द्वन्द्व—सारे अभिलाष॥

[१३७४]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

राष्ट्रोंमें हो प्रेम परस्पर, रहे न रञ्चक वैर-विरोध।
सभी एक दूसरेका हित चाहें, करें परस्पर हितकर बोध॥
मिटें दुरित-दुर्भिक्ष, देश हो अन्न-शाक-फलसे भरपूर।
अशन-वसन, गृह-भूमि सभीके हों, सबके अभाव हों दूर॥
भोग-लालसा-रहित शुद्ध जीवनमें सुखद रहे संतोष।
रहें प्राप्त सब वस्तु सभीको जीवन-उपयोगी निर्दोष॥
तनसे-मनसे सभी स्वस्थ हों, हों पवित्र आहार-विहार।
करने लगें वकील-चिकित्सक अन्य-लाभदायक व्यापार॥
रहे न भय-आतङ्क कहीं भी, छाये निर्भयता आनन्द।
सभी लोग सुख-शान्ति-लाभ कर, करें पवित्रकर्म स्वच्छन्द॥
बंद सभी हों पशु-हत्यालय, मिटे क्रूर हिंसाका भाव।
जीवमात्रको निर्भय सुखी बनानेका हो सबका भाव॥

दुग्धवती गौएँ असंख्य हों, मिले दुग्ध-घृत-दही अपार।
सबल बैल अगणित धरतीमें करें प्रचुर कृषिका विस्तार॥
सत्यप्रिय हों सभी लोग, पालें वर्णाश्रमका आचार।
यज्ञ धूमसे छाये नभमें हो वेदध्वनिका गुञ्जार॥
पर सबके हों एकमात्र शुचि परम लक्ष्य परतम भगवान।
कर्म-विचार-वस्तु सब अर्पित कर दें इसी हेतु मतिमान॥
जीवमात्रमें देखें प्रभुको, करें सभीका हित सत्कार।
विनय-विनम्र स्वकर्मोंद्वारा पूजें सब प्रभुको अविकार॥
भारतके अध्यात्म तेजका, प्रभो! पुनः हो पूर्ण विकास।
तप्त विश्वमें फैला दे वह परम सुशीतल सुखद प्रकाश॥
करें स्वकर्म सभी तन-मनसे प्रभु पूजा-हित अभिनय-रूप।
ममता-राग-रहित हो बरतें प्रभुकी आज्ञाके अनुरूप॥
मङ्गलमय, हे परम दयामय, सर्वातीत, सर्वमय राम!
पूर्ण करो भारत-मानवकी यह विनीत प्रार्थना ललाम॥

[१३७५]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

सबके प्रभु! सर्वान्तर्यामी! सर्वशक्ति! हे सर्वाधार!
सुनो हमारी सत्य प्रार्थना, करो कृपा अनवरत अपार॥
दो हम भारतके निवासियोंको, प्रभु! यह मङ्गल वरदान।
भौतिक, आध्यात्मिक बलके हम हों विशुद्ध पूरे बलवान॥
कभी चिरंतन धर्म न छोड़ें—शूरवीरता, साहस, प्रेम।
वैर-शून्यता, राग-शून्यता, सर्वभूत-हित, सर्व-क्षेम॥
पूजें, अपना रक्त-दान कर रणमें, हम रणसे भगवान।
तन-मन-धन सबका ही कर दें अति उत्साह-पूर्ण बलिदान॥
शौर्य-शक्ति-बल-धर्म-त्यागका सुन्दर शुभ रक्खें आदर्श।
मिट जाये अन्यायी-अत्याचारीका आसुर-उत्कर्ष॥

****

हो आसुर-दुर्मति, दुस्साहस, दुष्ट-प्रकृतिका पूरा नाश।
पूर्ण विजय पायें हम, छाये सभी ओर सात्त्विक उल्लास ॥
चाहें कभी किसीका रञ्चक भी न बुरा हम किसी प्रकार।
सर्वोदय हो, सभी सुखी हों, प्रेम-धर्मका हो विस्तार ॥
प्राणिमात्र सब सुखी-शान्त हों, मिटें सभीके सारे खेद।
भेदरूप इस अखिल विश्वमें देखें एक अखण्ड अभेद ॥

[१३७६]

(राग बागेश्री—ताल कहरवा)

द्वेष-अमर्ष-वैर-हिंसा-प्रतिहिंसा-घृणा-दर्प-अभिमान।
मिटें समूल; भूलकर सारे भेद, करें सब सबका मान ॥
निज-पर-भेद मिटाकर, सबका साधें सभी परम कल्यान।
भोगें घोर दुःख पर-दुःखमें, पर-सुखसे हों सुखी महान ॥
सबमें देखें एक आतमा, सबमें हो स्वाभाविक प्रेम।
सभी सभीका वहन करें नित निज-जैसा ही योग-क्षेम ॥
करें हरेक कर्मके द्वारा प्रभुका पूजन ही केवल।
पान करें संतत सुखमय प्रभु-प्रेमामृत-रसका अविरल ॥

[१३७७]

(राग मधुवंती—ताल धुमाली)

देवाराधन करें-करायें निज-निज मत-श्रद्धा-अनुसार।
वेदाध्ययन, यज्ञ, गायत्री-पुरश्चरण कल्याणाधार ॥
सप्तशती, रुद्राभिषेक, जप-मृत्युंजय, नारायण-वर्म।
पाठ गजेन्द्रमोक्ष, पावन सप्ताह भागवत पाठ सुकर्म ॥
वाल्मीकि, मानस-रामायण-पारायण श्रद्धासे युक्त।
भगवन्नाम-अखण्ड-कीर्तन-जप विश्वास-भाव-संयुक्त ॥
ग्वाँर-बिनौला, भूसा-चारा भूखी गायोंको दें दान।
श्रद्धायुक्त हृदयसे शुचितम योग्य ब्राह्मणोंको गोदान ॥

अन्न-कष्ट-पीड़ित मानवको अन्न-दान शुचि सह-सत्कार।
दुःख दूर हो दुखीजनोंके करें नित्य ऐसा व्यवहार॥
असहाया विधवा बहनोंको, छात्रोंको दें गुप्त सहाय।
कूएँ बनवायें, जल-कष्ट-निवारणके सब करें उपाय॥
जैन, बौद्ध, सिख, करें सभी निज-निज धर्मानुकूल आचार।
ईसा-भक्त अन्यधर्मी सब करें करुण प्रार्थना-पुकार॥
करें-करायें पुण्य कार्य ये जगह-जगह सब बारंबार।
सन्मति-शान्ति-सुखोदयके हैं ये मङ्गल-साधन अविकार॥

[१३७८]

(राग गौड़मलार—ताल कहरवा)

सत्य, अहिंसा, सेवा, संयम, सबके साथ साधु-व्यवहार।
सर्वभूत-हितमें ही निज-हित समझ सदा करता आचार॥
वह पाता न कदापि यातना पुनर्जन्ममें किसी प्रकार।
जाता उच्च देवलोकोंमें, पाता दुर्लभ भोग अपार॥
पर जो इन शुभकर्मोंद्वारा सदा पूजता श्रीभगवान।
इह-पर लोक-भोग-विषयोंसे मनमें रख विरक्ति मतिमान॥
भगवत्स्मृति, भगवत्सेवा ही होते जिसके लक्ष्य महान।
भगवत्प्रेम प्राप्त करता वह उज्ज्वल, मिटता तम-अज्ञान॥

[१३७९]

(राग विलावल—ताल दीपचंदी)

सत्य-धर्म-रत, अनासक्त जो धर्म-कमाईपर निर्भर।
जननी-बहिन-सुता-सम जो पर-नारीको लखते नरवर॥
चोरी-रहित, नित्य निज स्थितिमें तुष्ट, बोलते सदा मधुर।
किसी हेतु जो झूठ न कहते, रहते सदा सत्यपर स्थिर॥
परद्रोह वर्जित, समदर्शी, दयाशील, जो नहीं निठुर।
भजन-परायण, निष्कामी वे दिव्यलोकमें जाते नर॥

[१३८०]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

गाली सुनकर भी, जो मनमें जरा नहीं दुख पाता है।
क्रोध दिलाने पर भी, जिसको क्रोध नहीं कुछ आता है॥
कड़वे वचन कदापि न कहता मर्म-बेध करनेवाले।
वचन सत्य, हित, मधुर बोलता, अमरित बरसानेवाले॥
पर-दुखसे हो दुखी, सदा जो पर-सेवा करता रहता।
दुःख उठाकर स्वयं, दूसरेके दुख नित हरता रहता॥
कपट-दम्भ-अभिमान छोड़, जो सबका करता है सम्मान।
हरिका हो, जो भजता हरिको, परम धर्म जीवनका मान॥
अपने शुभ आचरणोंसे जो हरता है पर-दुख-अज्ञान।
जगमें सबसे श्रेष्ठ वही है, वही जगतमें सदा महान॥

[१३८१]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

दुःख पराया जिसका सुख हो, वह है बड़ा अभागी।
अपना सुख दे पर-दुख हरता, मानव वही सु-भागी॥
निज सुख दान करो सबको, दुख सबका ले लो सारा।
परम पिता परमेश्वर तुमको समझेंगे अति प्यारा॥

[१३८२]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

मन वशमें हो, इन्द्रिय-निग्रह, सत्य, अहिंसा, शुद्धाचार।
सर्वभूत-हित-रतता हो, हो त्यागयुक्त सारे व्यवहार॥
हो वैराग्य भोग-विषयोंमें, हो प्रभु-स्मृतिमें दृढ़ आसक्ति।
पल-पल बढ़ती रहे निरन्तर प्रभु-पद-कमलोंमें अनुरक्ति॥

देख सदा सर्वत्र श्याम मुख-कमल, नेत्र मन हों बड़भाग।
जीवन सफल बने, पाकर श्रीहरिमें शुचि अनन्य अनुराग॥

[१३८३]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

विजयी वही, स्वतन्त्र वही है, वही यथार्थ वीर, बलवान।
मन-इन्द्रिय जिसके वश रह शुचि करते नित सत्कर्म महान॥
काम-क्रोध, लोभ-मद, ममता-राग, मोह-मैंपन—सब दोष।
बनते परम पवित्र सुलक्षण, साधन, भक्ति-रत्नके कोष॥
रहता 'काम' नित्य प्रभु-पद-रत, नित्य बढ़ाता सेवा-भाव।
'क्रोध' न पड़ने देता रञ्चक अशुचि विचारोंका कुछ दाव॥
भजन-विरोधी वृत्तिमात्रका करता वह तत्क्षण संहार।
'लोभ' नित्य बढ़ता रहता प्रभुकी सुमधुर स्मृतिका सुख-सार॥
प्रभुके प्रेमासवका शुचि 'मद' नित छाया रहता सब अङ्ग।
'ममता' पूर्ण एक प्रभुमें ही नित्य अचल हो रही, अभङ्ग॥
प्रभुका मधुर मनोहर पावन दिव्य परम सौन्दर्य ललाम।
एकमात्र है 'राग' उसीमें आत्यन्तिक अनुपम अविराम॥
'मोह' अनन्य नित्य मोहनके रस-चरित्र सुननेमें लीन।
'मैंपन' बना एकमात्र प्रभु-पद-रज-कणका सेवक दीन॥
'नेत्र' देखते सदा श्यामको अग-जगमें प्रकटित सर्वत्र।
'कान' सदा सुनते मुरली-रव कलित, ललित लीला-सुचरित्र॥
अङ्ग-अङ्ग पाते नित उनका सच्चिन्मय श्रीअङ्ग-स्पर्श।
श्रीवपु दिव्य-हार-सौरभसे 'नासा' नित पाती अति हर्ष॥
'रसना' नित पाती प्रसाद-रस, रहती परमानन्द-निमग्न।
'कर पद-जिह्वा' निज कार्योंसे रहते नित सेवा-संलग्न॥
इस प्रकार जो मन-इन्द्रिय-शरीरको कर निज वशमें शूर।
प्रभु-सेवामें कर नियुक्त, रखता है, वह विजयी भरपूर॥

[१३८४]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

जिसके मन बसते सदा काम, क्रोध, मद-मोह।
लोभ, ईरषा, द्वेष, छल, बैर पाप-संदोह॥
रहता नित वह जन दुखी, करता नव-नव पाप।
चिन्ता, दुःख, अशान्ति, भय पाता वह बेमाप॥
दया, अहिंसा, नम्रता, क्षमा, शान्ति, संतोष।
ऋजुता, सेवा, शम, मनन, संयम, व्रत-हरितोष॥
जिसके मन ये गुण सदा बसते, वह जन धन्य।
'मन-विजयी' वह पुरुष शुचि पाता भक्ति अनन्य॥

[१३८५]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

पर-दुख को निज-दुःख समझकर, कर प्रयत्न करते परिहार।
निज सुख देकर सुखी बनाते, सहज मान-मद रहित, उदार॥
पर-हितको निज स्वार्थ मान, वे पर-हित करते निज-हित त्याग।
अतुलनीय सुख अनुभव करते पुरुष इसीमें वे बड़भाग॥
पर-रक्षणमें कर देते वे अपने जीवनका बलिदान।
मनमें इसे समझते वे सज्जन अपना सौभाग्य महान॥
नहीं मानते वे फिर इसको किसी तरह भी पर-उपकार।
रविके सहज प्रकाश-दान-सम होता यह उनका व्यवहार॥
विनय-विनम्र-हृदय वे नर-वर नहीं जनाते कुछ अहसान।
उनपर सदा स्वयं बरसाते अपनी कृपा-सुधा भगवान॥
उनके लिये न रह जाता फिर दुर्लभ कुछ भी कहीं पदार्थ।
बन जाते वे आप सहज ही पावन परम, रूप परमार्थ॥

[१३८६]

(राग ललित)

सब बिधि सौं सेवा करै, करै सकल सुख-दान।
आपु बरै दुख मित्र को, करै न कछु अभिमान॥
दुराचार, दुर्मति, दुरित, हरै सहज दे ज्ञान।
सेवै निज आत्मा-सरिस, मित्र सो परम सुजान॥

[१३८७]

(राग सोहनी—ताल दादरा)

देश मैं है, देश मैं हूँ, देश-मैं हैं दो नहीं।
देशका ही स्वार्थ मेरा, है न अन्तर कुछ कहीं॥
देशका है लाभ मम, नुकसान मम नुकसान है।
देश-सेवककी यही, बस, एक ही पहचान है॥

[१३८८]

(तर्ज गजल—ताल कहरवा)

जबतक भोगोंकी खोज रही, जबतक भोगोंमें सुख दीखा।
तबतक न ईशका भजन बना, तबतक नहिं सुखका मुख दीखा॥

[१३८९]

(राग बिहागरा—ताल मूल)

पर-सुखमें दुख, पर-दुखमें सुख अनुभव करना गुरुतर पाप।
निज सुख-हेतु दुःख पहुँचाना परको अति उपजाता ताप॥
आँखोंके आँसू हर लेते बाहरके दुःखद संताप।
अन्तरके आँसू विनष्ट कर देते घोर भयानक पाप॥

[१३९०]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

जिनसे तृष्णा-कामना बढ़ती सतत अपार।
वे दुःखप्रद हैं सभी धन-जन, पद-अधिकार॥

बढ़ता जिससे नित नया सात्त्विक सुख निर्दोष।
एक परम सुख वह सदा, मनका शुचि संतोष॥
आशा-तृष्णा है नहीं, नहीं कामना शेष।
जिसके मन संतोष-धन, सो धनवान विशेष॥

[१३९१]

(राग वसन्त—तीन ताल)

जिनका हो परिणाम पराये-अपने हितका किंचित् नाश।
समझो पाप-कर्म उनको ही, कभी फटकने मत दो पास॥
जिनका हो परिणाम पराया-अपना हित निश्चित अनयास।
उन्हें पुण्य-कर्म समझो, अपनाओ सदा सहित उल्लास॥

[१३९२]

(राग भूपाली—ताल त्रिताल)

धन, जन, पद, अधिकार, कीर्ति-यश, भूमि, भवन, संतति, सम्मान।
सभी आदि-अन्तवाले हैं, क्षणभङ्गुर, दुःखोंकी खान॥
मोह-विवश—'इनमें सुख है', यह छायी मानव-मनमें भ्रान्ति।
इससे खोज रहा सुख इनमें, बढ़ते दुख नित नयी अशान्ति॥
एक मात्र प्रभुके स्वरूपगत है अतिशय सुख नित्य अनन्त।
सुख इच्छित यदि हो तो, मन अनन्यसे भजिये श्रीभगवन्त॥

[१३९३]

(राग राजकल्याण—ताल मूल)

सावधान रह, रहो देखते भाव हृदयके नित्य-निरन्तर।
हो न कभी मद-मान-दम्भ-आसुर भावोंका उदय लेश भर॥
जगे न मनमें नाम-रूपकी पूजाका अभिलाष क्लेशकर।
बढ़ती रहे सदा प्रभु-पद-रति, बनी रहे प्रभुकी स्मृति सुखकर॥

[१३९४]

(राग आसावरी—ताल त्रिताल)

राह पड़े सूखे तृणसे भी जो समझे नित निजको नीच।
जिसको हो संकोच बैठते महिमामय गुणियोंके बीच॥
तरुवत् सहनशील हो, नीरव सहे शीत-वर्षा औ घाम।
पत्थर फैंक मारनेवालोंको दे मीठे जामुन-आम॥
कट-छिद-जलकर भी स्वाभाविक ही जो करे सहज उपकार।
कीर्तन करे सदा—ऐसा जो, प्राप्त करे वह प्रभुका प्यार॥

[१३९५]

(राग देवगान्धारी—तीन ताल)

राग, काम, मद, लोभ, भय, इरिषा, द्वेष, बिकार।
हिंसा-बैर मिटे सकल, सोइ सुखी संसार॥
बोलत जो नित सत्य-प्रिय-हितकर बचन बिचार।
नाम जपत प्रभु कौ सतत, सोइ सुखी संसार॥
जो पर-सुख-हित-निरत नित, निज सुख सबै बिसार।
देत रहत नित सबनि कौं, सोइ सुखी संसार॥
जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, प्रभु-पद-प्रीति अपार।
सर्ब समर्पित प्रभु-चरन, सोइ सुखी संसार॥

[१३९६]

(राग गान्धारी तोड़ी—ताल मूल)

वर्ण-जाति, धन-जन, यौवन-अधिकार, उच्चपद-विद्या-ज्ञान।
इनमें किसी वस्तु-स्थितिका भी, जिसके हो न तनिक अभिमान॥
दीख पड़े निज दोष सर्वथा, होता रहे भूलका भान।
दीखें सदा सभीमें सद्गुण, बढ़े सभीके प्रति सम्मान॥
इन्द्रिय-विषय-जनित सब सुख ही लगें सदा विष घोर समान।
राग-कामना-ममता, मिथ्या-अहंकारका हो अवसान॥
दीखें नित सब प्राणि-पदार्थ-परिस्थितिमें केवल भगवान।
इस प्रकार जिसका जीवन हो, मानव वही यथार्थ महान॥

[१३९७]

(राग शुद्धसारंग—ताल त्रिताल)

संयम-नियम-पूर्ण जीवन हो सदाचार-सेवनसे धन्य।
प्रभुमें लगा रहे अविरत नित चित्त, भाव हो विमल अनन्य॥
विषयोंसे विरक्ति हो, उनमें रह न जाय रञ्चक आसक्ति।
विस्मृति रहे सदा भोगोंकी, प्रभु-चरणोंमें हो अनुरक्ति॥
हो मन-बुद्धि समर्पित प्रभुमें, प्रभुका स्मरण रहे सब काल।
क्षणभर भी न कभी विस्मृति हो, रहे न स्मरण जगत्‌-जंजाल॥
मृत्यु सफल हो ऐसे जनकी, मिटे कठिन माया-विस्तार।
प्रभु-चरणोंमें स्थान मिले, नित मिले पुण्य-सेवा-अधिकार॥

[१३९८]

(राग श्यामकल्याण—ताल एकताल)

प्राणिमात्रसे द्वेषरहित रह, रखो सभीमें मैत्री भाव।
दुखियोंको निज सुख देनेका रखो विनययुत सक्रिय चाव॥
छीनो नहीं कभी मनसे भी पर-धन, पर-यश, पर-अधिकार।
करो सभीसे सदा सत्य-हित-प्रेमभरा सात्त्विक व्यवहार॥
समझो सबके हितमें निज हित, सबके सुखमें निज सुख मूल।
करो न हनन किसीके हित-सुखका न कभी मनसे भी भूल॥
सबमें सदा देखकर प्रभुको दो सबको आदर-सम्मान।
छाये रहें सदा ही मनमें एकमात्र प्रियतम भगवान॥

[१३९९]

(राग हमीर—ताल त्रिताल)

अहित, असत्य, व्यर्थ, कटु, निन्दायुत, उद्वेग-वचनका त्याग।
लीला-भगवन्नाम-गुणोंका गान करे नित सह-अनुराग॥

मनसे काम-क्रोध-लोभके वेगोंका करके परिहार।
लीला-भगवद्गुण-नामोंका करे नित्य चिन्तन अविकार॥
हिंसामय अशुद्ध भोजनका, करे चटोरेपनका त्याग।
सादा शुद्ध सुभोजन सात्त्विक करे, स्वादका तजकर राग॥
सादे वस्त्र, आचरण सीधे, जीवन आडम्बरसे हीन।
आवश्यकता-अभाव-विरहित, सदा दीन-सेवामें लीन॥
विषयी-संसारी लोगोंका सङ्ग छोड़, सेवे सत्सङ्ग।
व्यर्थ-अनर्थ कार्य सब इन्द्रिय-मनके तजकर रहे असङ्ग॥
भजनोत्साह सदा, भगवत्-अस्तित्व-कृपामें दृढ़ विश्वास।
भजन-सहायक कर्मोंमें शुचि प्रीति, प्रवृत्ति, ध्यान-आयास॥
घोर विपद्में धैर्य, मानकर प्रभुका मङ्गलमय सुविधान।
राधा-कृष्ण-प्रेमको ही, बस मान एक उद्देश्य महान॥

[१४००]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

मन-इन्द्रिय-शरीर—सबके हैं स्वामी एकमात्र भगवान।
इनसे उनकी ही, बस, सेवा करो निरन्तर अव्यवधान॥
भवन विभूति, मान-मर्यादा, पद-ऐश्वर्य अमल, आराम।
सभी उन्हींकी वस्तु, सभीसे सेवा करो समुद अविराम॥
प्राणि-पदार्थ-परिस्थिति, प्रतिभा-प्रभुता, शुचि-प्रशंस्य परिवार।
करते रहो समर्पित सब ही प्रभुको सादर निरहंकार॥
सबमें सदा विराजित प्रभु हैं, सब ही हैं प्रभुके आकार।
आदर करो, सभीको सुख दो यथायोग्य, बूते अनुसार॥
विनयी बनो, अहंता छोड़ो, नष्ट करो सब मद-अभिमान।
बनो सहिष्णु, संयमी, शुचि-मन, सुहद, साधु, शुभ-गति, मतिमान॥

दुखद-परुष-कटु-अहित भाव-वचनोंका कर पूरा परिहार।
बनकर मधुर, मधुरता बाँटो, करो मधुर हितका विस्तार॥
सबको सुख हो, सबका हित हो, पायें सभी शान्ति-कल्याण।
अशुभ-अशान्ति, दुःख-दुर्मतिसे पा जायें तुरंत ही त्राण॥
इसी भावनासे सब सोचो, करो, इसीसे सारे कर्म।
इस प्रकारकी प्रभु-सेवाको समझो सदा मुख्यतम धर्म॥
पोषण करो सभीका, देकर सुख-सम्पत्ति सदा सानन्द।
प्रभु-पद-प्रीति करो वितरण, यों सेवाके द्वारा स्वच्छन्द॥
समझो सदा पूर्ण निश्चयसे तुम तो हो, बस, केवल यन्त्र।
यन्त्री वही, फूँकते सबके कानोंमें वे ही निज मन्त्र॥
प्रेरक वही, शक्ति उनकी ही, वस्तु उन्हींकी, वे ही भोग्य।
भोक्ता स्वयं एक, बस, वे ही, तुम केवल 'निमित्त' हो योग्य॥

[१४०१]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

तन-इन्द्रियको वशमें रखना, करना नित्य सभी शुभ काम।
अनाचारसे बचना, करना संयम, नित सेवा निष्काम॥
मधुर-सत्य-हित वचन बोलना, त्याग झूठ-कटु-अहित तमाम।
जपना प्रभुका नाम निरन्तर, जिह्वासे, मनसे अभिराम॥
मनमें दया-सौम्यता रखना, रखना उसपर निज अधिकार।
राग-द्वेष-भरे कर पाये नहीं कभी वह अशुभ विचार॥
नित्य देखना प्रभुको मनमें, बाहर भी सबमें साकार।
लोक तथा परलोक सुधरनेके हैं ये उपाय अनिवार॥

[१४०२]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

मनको वश कर, रहो नित राग-द्वेष-विहीन।
विषयोंमें विचरो उचित, होओ कभी न लीन॥

****

यों भगवत्-सेवा करो, पाओ महाप्रसाद।
सब दुःखोंका अन्त हो, मिटें सभी अवसाद॥

[१४०३]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

मन-इन्द्रियको वशमें रक्खो, करो कदापि न तनिक प्रमाद।
भोजन परिमित-सात्त्विक सेवन करो, न देखो जिह्वा-स्वाद॥
छोड़ो छद्म-कपट सब, छोड़ो दम्भ, सभी मिथ्या आचार।
करो उचित, परिणाम-सुखप्रद, परिमित सारे युक्त विहार॥
छोड़ो सभी निषिद्ध-अहितकर कर्म, करो केवल सत्कर्म।
वे भी परिमित, युक्त करो; फिर करो वही, जो हों निज धर्म॥
तामस निद्रावश मत सोओ, असमय, अधिक समय, बेकाम।
सोओ युक्त रात्रिको, जिससे मिले नवीन स्फूर्ति, विश्राम॥
राग-रोष, वादों-भोगोंमें व्यर्थ नहीं जागो दिन रात।
जागो प्रभु-सेवा-हित, नित, सुकर्म रत, युक्त, छोड़ उत्पात॥

[१४०४]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

पर हितको निज अहित मानता, पर-विकासको जो निज नाश।
पर-यशको निज अयश मानता, पर-उन्नतिको अपना ह्रास॥
पर-सुखको निज दुःख मानता, पर-पूजनको निज अपमान।
पल-पल पाप कमाता ऐसा मानव अति दुर्मति, अज्ञान॥
रोग-भोग, निन्दा-स्तुति, अनहित-हित, जय-हार, मान-अपमान।
मिलते सब, होता जैसा निज कर्म-जनित प्रारब्ध-विधान॥
कोई कर सकता न हमारा बिना कर्मके कुछ नुकसान।
पर निमित्त जो बनता, स्वयं खोदता वह निज दुखकी खान॥

हो चाहे प्रतिकूल परिस्थिति, हो चाहे सब विधि अनुकूल।
दोनों ही प्रभु-प्रेरित हैं, दोनोंमें प्रभु-अनुकम्पा मूल॥
उनसे लाभ उठाओ, चाहो सबका सदा परम कल्याण।
निज सुख-तन-मन-धन दे, चाहो परका सदा विपदसे त्राण॥

[१४०५]

(राग सोहनी—ताल रूपक)

भजन-धनको छोड़कर और कौन-सा धन चाहोगे ?
प्रेम अमृतको छोड़कर और कौन-सी सुधा पीओगे ?
सत्सङ्गके लाभको छोड़कर और किस लाभको सोचोगे ?
सेवा-सम्पतिको छोड़कर और कौन-सी सम्पति चाहोगे ?
पर-हितको छोड़कर और कौन-सा धर्म साधोगे ?
भगवान्‌के चिन्तनको छोड़कर और किसका चिन्तन करोगे ?
भगवच्चरणोंमें रति छोड़कर और किसमें प्रीति करोगे ?
मनके कुविचारोंको छोड़कर और किस शत्रुको मारोगे ?

[१४०६]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

प्रेम-भजन ही असली धन है, दैवी सम्पद ही सम्पत्ति।
विषय-वासना ही दरिद्रता, प्रभु-पद-विस्मृति घोर विपत्ति॥
ऊँचा पद-अधिकार, उच्च अति प्रभु-पद-सेवाका अधिकार।
जगका पद-अधिकार बनाता दुर्मद जो, अपवित्र विकार॥
शुचिता-सुन्दरता-विनम्रता-सत्य-अहिंसा-दैन्य-अमान।
अशुचि-असुन्दरता अति-अविनय-मिथ्या-हिंसा-मद-अभिमान॥
वही सफल-जीवन, जो पाता पावन प्रभु-पद-पङ्कज-प्रेम।
असफल वह जो भोग-जगत्‌के पाता मिथ्या योग-क्षेम॥

[१४०७]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

छिन-छिन हरि-सुमिरन करौ, छिनहू भूलौ नाहिं।
सुमिरन-सम कछु लाभ नहिं, हानि भूल-सम नाहिं॥

[१४०८]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

जो तू चाहे शान्ति-सुख, पर-दुख कभी न चाह।
पर-सुखसे नित रह सुखी, निज-सुख बेपरवाह॥

[१४०९]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

विषय-बासना तममयी नासत ग्यान-बिकास।
भजन-दिवाकर-उदय तैं करियै ता कौ नास॥

[१४१०]

(राग परज—ताल कहरवा)

करते रहो निरन्तर प्रतिदिन, प्रतिपल मन-मतिका उत्कर्ष।
शुद्ध भाव, शुचितम विचारको सदा बढ़ाते रहो सहर्ष॥
सदा दूसरोंके सुख-हितका पावन मङ्गलमय कुछ काम।
तन-मन-वाणीसे, शुचि प्रभुकी सेवा समझ करो निष्काम॥
पर न करो कर्तव्य आदिका मनमें किंचित् भी अभिमान।
प्रतिफल, पुरस्कार मत चाहो, पूजो समुद सहज भगवान॥
प्रभुकी वस्तु, प्रेरणा प्रभुकी, लेनेवाले भी प्रभु आप।
अर्पण करते रहो सर्वदा, मिटा असत्-ममताकी छाप॥

[१४११]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

भगवच्चिन्तन, सत्-चिन्तन, पर-हित-चिन्तनसे हो मन शुद्ध।
भगवन्नाम-गान, ऋत-हित-मित भाषणसे हो वाणी शुद्ध॥

विनय, अहिंसा, ब्रह्मचर्य गुरु-सेवासे होता तन शुद्ध।
सात्त्विक, हिंसा-रहित, सत्यसे अर्जित धनका भोजन शुद्ध॥
निज-पर-हित जिससे सुसाध्य हो, कर्म वही होता है शुद्ध।
सदाचार जो शास्त्र संत जन-सम्मत हो, वह होता शुद्ध॥

[१४१२]

(राग केदारा—तीन ताल)

जगत में कीजै यों ब्यवहार।
अखिल जगत हरिमय बिचारि मन, कीजै सब सों प्यार॥
मात-पिता-गुरुजन-पद बंदिय श्रद्धा-सहित उदार।
फल बिहाय, तिन की आग्या सौं कीजै सब आचार॥
देस-जाति, कुल-कुटुंब, नारि-सुत, सुहृद, देह, परिवार।
जथाजोग सब की सेवा नित कीजै स्वार्थ बिसार॥
बरनाश्रम-अनुकूल करम सब कीजै बिधि अनुसार।
फल-कामना-बिहीन, किंतु केवल करतब्य बिचार॥

[१४१३]

(राग वसन्त—ताल कहरवा)

पुत्र पितामें देखे ईश्वर, पिता पुत्रमें भी भगवान।
पत्नी पतिमें देखे ईश्वर, पति पत्नीमें भी भगवान॥
मालिक नौकरमें प्रभु देखे, नौकर मालिकमें भगवान।
गुरु देखे शिष्योंमें ईश्वर, शिष्य सभी गुरुमें भगवान॥
प्रजा नृपतिमें देखे ईश्वर, राजा प्रजारूप भगवान।
शूद्र विप्रमें देखे ईश्वर, विप्र शूद्रमें भी भगवान॥
जिससे जिसका जो कुछ भी हो जगमें दूर-निकट सम्बन्ध।
तदनुरूप व्यवहार करे, पर प्रभु-दर्शनका हो अनुबन्ध॥
करे न कभी किसीका कोई भर मद-मोह अहित-अपमान।
करें सभी हित-मान सभीका, सबमें सदा देख भगवान॥

[१४१४]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

जीव चराचरमें बसे एकमात्र भगवान।
उन्हें देख, नित कीजिये सबका हित-सम्मान॥
घृणा-द्वेषका त्याग कर, सबसे करिये प्रीति।
प्रभु-प्रसन्नताकी सुखद यह शुचि सुन्दर रीति॥
वर्ण-जाति-कुल-देशके, विविध मतोंके भेद।
प्रभु-लीला सब, हैं रमे सबमें राम अभेद॥
रहे भेद बर्तावमें नाम-रूप-अनुसार।
बना रहे पर नित्य सम सबमें आत्मविचार॥
मस्तकसे पदतक सभी एक देहके अङ्ग।
पर उनके व्यवहारमें रहता भेद-प्रसङ्ग॥
सबका हित-सुख चाहते, सबमें नित सम प्रेम।
करते सबका ही वहन प्रमुदित योग-क्षेम॥
इसी तरह सबमें सदा देखें प्रभुका रूप।
हितकर तन-मन-वचनसे सेवा करें अनूप॥

[१४१५]

(राग सोहनी—ताल दादरा)

भगवानने दी जो परिस्थिति, वही साधनरूप है।
विश्वास करके उसे बरतो, फल महान अनूप है॥
विश्वास हीन मनुष्यको सर्वत्र अन्धा कूप है।
विश्वाससे मिलते हरी, विश्वास प्रभुका रूप है॥

[१४१६]

(राग देस)

सत्ता कभी न 'असत्' की, 'सत्' का नहीं अभाव।
'सत्' में नित सुस्थित रहे, हो न असत्में भाव॥
'द्वन्द्व' जानकर 'असत्' सब, करो न हर्ष-विषाद।
नित्य सत्य हरिका सदा अनुभव करो प्रसाद॥

[१४१७]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

इह-पर दोनों लोकमें जो चाहो कल्यान।
पाप-कर्मसे विमुख हो, भजो सदा भगवान॥
काम-क्रोध-मद-लोभ-भय, कटु भाषण, अभिमान।
पर-दारा, पर-द्रव्य, पर-पीड़ा, पर-अपमान॥
तज इन सबको सर्वथा, कर सबका सम्मान।
करो नित्य शुभ आचरण, सेवो साधु-सुजान॥

[१४१८]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

रखो मत आसक्ति कर्ममें, फलमें ममता किसी प्रकार।
भलीभाँति सब कर्म करो समुचित पद्धतिसे बिना विकार॥
जैसे नट नाटकमें रखता कहीं नहीं ममता-आसक्ति।
पर वह यथायोग्य सब अभिनय करता बन वैसा ही व्यक्ति॥
भूल न हो अभिनयमें, बिगड़े कहीं न नाट्य-मञ्चपर खेल।
रसका उचित उदय हो, पर मनमें न कहीं हो विग्रह-मेल॥
वैसे ही ईश्वरके इस जग-नाट्य-मञ्चपर भली प्रकार।
खेलो अपना खेल यथोचित, तत्प्रीत्यर्थ, स्वाँग-अनुसार॥

[१४१९]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

सबका नित आदर करो, सबको दो शुचि प्यार।
सबके लिये सदा रखो खुला हृदयका द्वार॥
सबसे सत्य वचन करो, करो शुद्ध व्यवहार।
सबकी शुभ सेवा करो, बनकर परम उदार॥
सबमें निज प्रभुको लखो, सबको दो सम्मान।
सबके हितमें रत रहो त्याग सभी अभिमान॥

[१४२०]

(राग बागेश्री—ताल कहरवा)

हित-मित-सत्य-मधुर नित बोले, हित-मित-शुद्ध करे आहार।
नित्य रहे निर्भीक, मान-मद-रहित, रखे मन शुद्ध विचार॥
नियमित हो जीवन, इन्द्रिय-मन हों संयत, हो शुद्धाचार।
विषयासक्ति-रहित, समतायुत, क्षमावान हो, सहज उदार॥
सेवाभाव-समन्वित जीवन हो, सबका चाहे कल्याण।
रहे अडिग नित धर्म-शीलसे, हो शरीर चाहे म्रियमाण॥
विपद्ग्रस्तको आश्रय दे, कर दे उसका विपत्तिसे त्राण।
प्रभु-शरणागत रहे, स्वयंको कसता रहे धर्मकी शाण॥

[१४२१]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

तन-मन-धन सौं कीजिये निसिदिन पर उपकार।
यही सार नर देहमें, बाद-बिबाद बिसार॥
तन-पबित्र सेवा किये, धन पबित्र कर दान।
मन पबित्र हरि-भजन कर, होत त्रिबिध कल्यान॥

[१४२२]

(राग नट—ताल मूल)

दया देखती नहीं जाति-कुल, मनुज-पक्षि-पशु-मित्र-अमित्र।
देश-धर्म, निज-पर, बान्धव-अरि उच्च-नीच, धनवान-दरिद्र॥
बुध-जड, बाल-वृद्ध, नारी-नर भेद-भाव-विरहित सर्वत्र।
अपना दुःख बना देती पर-दुःख, जगाती भाव पवित्र॥
लग जाता फिर मानव उस निज-दुःख मिटानेमें तत्काल।
करता पूर्ण प्रयत्न, शक्तिभर, स्वाभाविक, न बजाता गाल॥
रहता निरभिमान वह, प्रभुकी इसे मानता कृपा विशाल।
अपना दुःख मिटाकर, अपने ही हो जाता परम निहाल॥

[१४२३]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

परम श्रेष्ठ जन समुद, हानि सह अपनी, करते पर-उपकार।
श्रेष्ठ मनुज, जो निज-हितकी रक्षा कर, करते पर-उपकार॥
मध्यम जन, जो निज हित करते, पर-हितका करते न विचार।
अधम मनुज, जो स्व-हित समझकर पर-हितका करते संहार॥
नीच मनुज, जो स्व-हित बिना भी करते संतत पर-अपकार।
महानीच जन, अहित स्वयंका भी कर, करते पर-अपकार॥

× × × ×

धर्म वही है, होता जिससे सदा-सर्वदा पर-उपकार।
उससे ही होता निश्चय अपना भी सहज सत्य उपकार॥
वह अधर्म है, जिससे होता तनिक दूसरेका अपकार।
उससे अपना भी निश्चय ही होता सहज अमित अपकार॥
बुद्धिमान जन इसीलिये नित करते रहते पर-उपकार।
क्योंकि उसीसे ही होता है उनका भी अपना उपकार॥
संत अहित-कर्त्ताका भी हैं कभी नहीं करते अपकार।
अपना भूल हिताहित, करते स्वाभाविक सबका उपकार॥
संत न कभी जानते-कहते—'मैं करता हूँ पर-उपकार'।
रविके सहज प्रकाश-दान सम सबको नित देते उपकार॥

[१४२४]

(राग वागेश्री—ताल कहरवा)

देखो दुःखी-दीन-आर्त-रोगीमें छिपे सदा भगवान।
सादर सेवा करो यथोचित, तन-मन-धनसे, सह सम्मान॥
दुखी जनोंपर हँसो नहीं, मत करो उपेक्षा, रख अभिमान।
कभी दिखाओ मत वैभव-पद-जाति-शक्तिकी झूठी शान॥

प्यार करो, सुख दो सबको ही यथायोग्य, आत्मा-सम मान।
दुखमें दुखी बनो दुखियोंके, करो न कभी तनिक अपमान॥
जो कुछ तुम्हें मिला, वह सब है प्रभुका, तन-धन-प्राणि-पदार्थ।
सबिनय प्रभु-सेवामें कर अर्पण, साधो निज असली स्वार्थ॥
अपने प्रति अन्योंसे तुम जो स्वयं चाहते हो व्यवहार।
सबके प्रति तुम करो नित्य तन-मनसे सदा वही आचार॥
जिसको तुम प्रतिकूल मानते अपने प्रति, ऐसा बर्ताव।
करो कभी मत अन्य किसीसे भी वह बर्त्तन, रख सद्भाव॥
सेवा करो पिता-माता-गुरुजनकी नित, रख मनमें चाव।
प्राप्त करो आशिष अमोघ तुम, रक्खो मनमें श्रद्धा-भाव॥
बोलो कभी न वचन झूठ, कटु, व्यर्थ, अहितकर, हो बेभान।
करो सत्य, शुचि, सार्थक, हितकर, मधुर वचनका सुखकर दान॥
सभी इन्द्रियोंके विषयोंमें नित्य बस रहे राग-द्वेष।
उन्हें जान तुम शत्रु-लुटेरे, कभी न वशमें होओ लेश॥
ममता रख अनन्य प्रभु पदमें, विषयोंमें नित रहो समान।
करो न अकर्तव्य तन-मनसे, इन्द्रिय-भोगोंमें सुख जान॥
ईश्वरको भजना-पाना ही मानवका कर्तव्य महान।
प्रतिपल जो रहता इस साधनमें संलग्न, वही मतिमान॥

[१४२५]

दोहा

(राग पीलू—ताल कहरवा)

सत्य-धर्मसे अल्प भी निर्मल अर्जित अर्थ।
सुख देता सब कालमें उपजाता न अनर्थ॥
धर्मरहित अन्याययुत अर्थ बढ़ाता पाप।
बन जाता फल अशुभका कारण, वह अभिशाप॥
तन-मनसे हिंसा सभी प्राणि-मात्रकी त्याग।
सबके सुख-हितके लिये जीओ, बन बड़भाग॥

मनमें भी आने न दो किंचित् पाप-विचार।
अन्तर्यामीसे न कुछ छिपा गुप्त व्यापार॥
प्रभुके सन्मुख तुम रहो निर्मल नित्य विशुद्ध।
लोग सभी मानें तुम्हें भ्रमवश भले अशुद्ध॥
प्रभु-सन्मुख जो शुद्ध है, वही, सत्य शुचि प्राण।
शुद्ध कहाने मात्रसे, कभी न हो कल्याण॥

[१४२६]

(राग भैरव—ताल कहरवा)

सबमें देखो निज आत्माको, सबमें भरे स्वयं भगवान।
सबकी सेवा करो, करो सबका प्रिय कार्य, छोड़ अभिमान॥
सबको सुख पहुँचाओ, निश्छल मनसे करो सभीका मान।
सबके बनो सदा हित-साधक, करो प्रेम सबसे निर्मान॥
रक्खो 'स्व' को न सीमित, कर दो सब जगमें उसका विस्तार।
समझो 'पर' का स्वार्थ स्वार्थ निज, करो सहज सबका उपकार॥
कर प्रकाश अध्यात्म-ज्योतिका, करो तुरंत मोह-तम-नाश।
बनो त्याग-तपमय, शुचि-जीवन, तजो मधुर विष भोग-विलास॥

[१४२७]

(राग अहीर-भैरव—ताल मूल)

जो निर्भर करता प्रभुपर ही जिसका प्रभुमें दृढ़ विश्वास।
नहीं सताती चिन्ता उसको, रहता वह न कदापि उदास॥
नित्य स्मरण करता वह प्रभुका मनमें भरे पूर्ण आह्लाद।
नित निश्चिन्त प्राप्त करता रहता वह प्रभुका कृपा-प्रसाद॥
प्राणि-पदार्थ-परिस्थिति—सबमें उसे दीखते श्रीभगवान।
मुदित सफल-जीवन उससे, प्रभु मिलते स्वयं बिना व्यवधान॥

[१४२८]

(राग बिहाग—ताल कहरवा)

जीवनके सर्वोत्तम काम।
सत्पुरुषोंकी संगति करना, मुखसे जपना हरिका नाम॥
सदा पवित्र कर्म ही करने, तजने खोटे कर्म तमाम।
विषयोंका चिन्तन तजमनसे, भजना प्रभुका रूप ललाम॥
कभी किसीका जी न दुखाना, बनना सबका ही सुख-धाम।
सबकी सेवा तन-मन-धनसे यथाशक्ति करना निष्काम॥

[१४२९]

(राग बागेश्री—तीन ताल)

मन सत-संगति नित कीजै।
संत-मिलन त्रय-ताप नसावन, संत-चरन चित दीजै॥
संतन निकट नित्यप्रति जइये, हरि-नामामृत पीजै।
संतनि सकल भाँति नित सेइय, सब बिधि मुदित करीजै॥
संतन महँ बिस्वास करिय नित, श्रद्धा अतिसय कीजै।
संतहिं नित हरिरूप निहारिय, संत कहैं सोइ कीजै॥
हरि कौ सकल मरम ते जानहिं, तिन सौं सब सुनि लीजै।
सुनि-सुनि मन महँ धारन कीजै, मन तासौं रँगि लीजै॥
संत सुहृद जे पंथ बतावैं, तेहि पथ गमन करीजै।
झटपट हरि के धाम पहुँचिये, प्रमुदित दरसन कीजै॥

[१४३०]

(राग तोड़ी—ताल त्रिताल)

जिनसे बढ़े तमोगुण तमकर, चले रजोगुण तमकी ओर।
आठों पहर भोग-चिन्तन हो भोग-कामनाका हो जोर॥
दम्भ-दर्प-ममता-मद-भय-चिन्ता-विषादका हो विस्तार।
ढके विवेक, बढ़े तन-मनमें पापपूर्ण आचार-विचार॥

धर्म, कर्मफल, ईश्वरमें जिनसे उठ जाये मन-विश्वास।
हिंसामय अवैध भोगोंसे मिले न क्षणभर भी अवकाश॥
ऐसे देश-वेष-भोजन-साहित्य-मनुज—सब हैं दुःसङ्ग।
इन्हे त्याग सत्वर मङ्गलमय सेवन करो नित्य सत्सङ्ग॥

[१४३१]

(राग बिहाग—तीन ताल)

दुर्जन-संग कबहुँ नहिं कीजै।
दुर्जन-मिलन सदा दुखदाई, तिन सौं पृथक रहीजै॥
दुर्जन की मीठी बानी सुनि, तनिक प्रतीति न कीजै।
छाँड़िय बिष-सम ताहि निरंतर, मनहिं थान जनि दीजै॥
दुर्जन संग कुमति अति उपजै, हरि-मारग मति छीजै।
छूटै प्रेम-भजन श्रीहरि कौ, मन विषयन महँ भीजै॥
बिनसै सकल सांति सुख मन के, सिर धुनि-धुनि कर मींजै।
मन अस दुर्जन दुख-निधि परिहरि, सत-संगति-रति कीजै॥

[१४३२]

(राग काफी—ताल कहरवा)

कभी न चाहो, किसी व्यक्तिसे कुछ भी सेवा।
दो सबको निज वस्तु, बनो तुम कभी न लेवा॥
तन-मन-धनसे करो सदा तुम सबकी सेवा।
तुम्हें मिलेगा सुन्दर प्रभु-प्रसादका मेवा॥

[१४३३]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

जो कुछ मिला, मिल रहा जो कुछ, जो कुछ आगे होगा प्राप्त।
सब प्रभुका मङ्गल-विधान है, सबमें कृपा नित्य परिव्याप्त॥
जन्म-मरण, निरवधि सुख, दारुण दुःख, मान अति, अति अपमान।
पूर्व-रचित मङ्गलमय प्रभुके सब मङ्गल अनिवार्य विधान॥

करुण, भयानक, सुन्दर, शुभ बीभत्स, सुसर्जन, अति संहार।
एकमात्र रसमयका सबमें सदा मधुर लीला-विस्तार॥
करना नहीं गर्व सुखमें, करना न दुःखमें कभी विषाद।
रहना अति संतुष्ट, समझकर सबमें प्रभुका कृपा-प्रसाद॥

[१४३४]

(राग परज—ताल कहरवा)

जो कुछ भी है मिला तुम्हें, उस सबके स्वामी हैं भगवान।
दीन-वेशमें माँग रहे हैं वही वस्तु अपनीका दान॥
प्राणिमात्रमें दीनरूपमें दीनबन्धुके कर दर्शन।
नम्रभावसे अर्पण कर दो उनको उनके तन-मन-धन॥

[१४३५]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

जो कुछ है, मिलता है तुमको, उसमें सबका हिस्सा जान।
करते रहो नित्य उसमेंसे यथायोग्य सबको ही दान॥
फिर जो बचा हुआ खाओगे, होगा वह शुचि, सुधा-समान।
उससे यहाँ-वहाँ पाओगे तुम निश्चित सुख-शान्ति महान॥

[१४३६]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

वस्तुमात्र जो तुम्हें मिली है—तन-मन-धन-बल-बुद्धि अपार।
हैं वे सभी एक प्रभुकी ही, उनका ही सबपर अधिकार॥
कभी न उनको मानो अपनी, कभी न करो तनिक अभिमान।
करते रहो विनययुत नित प्रभु-सेवामें ही उनको दान॥
ममता रखो एक प्रभुके पद-पद्मोंमें जो नित्य उदार।
सेवन करो सदा उनका ही, समझ यही जीवनका सार॥

****

[१४३७]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

मिले तुम्हें जो तन-मन, धन, बल, विद्या, बुद्धि और अधिकार।
करो उन्हें सार्थक, कर पर-हितमें उनका उत्सर्ग उदार॥
विनय-विनम्र रहो पर, मत आने दो तनिक त्याग-अभिमान।
समझो, हुई धन्य प्रभु-सेवामें लग प्रभुकी वस्तु महान॥

[१४३८]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

भूखे जनको अन्न-दान दो, प्यासेको दो जलका दान।
वस्त्रहीनको वस्त्र-दान दो, मानहीनको सच्चा मान॥
भय-विह्वलको अभय-दान दो, शरणहीनको आश्रय-दान।
शोक-विकलको शान्ति-दान दो, आतुर जनको सेवा-दान॥
दुखी पतितको धैर्य-दान दो, रोगी जनको औषध-दान।
पथ-भूलेको मार्ग-दान दो, दो निराशको आशा-दान॥
ज्ञानहीनको ज्ञान-दान दो, संशयालुको श्रद्धा-दान।
धर्महीनको धर्म-दान दो, नास्तिकको ईश्वरका ज्ञान॥
जो जिसको जब आवश्यक हो, करो तभी उसको वह दान।
जो तुम कर सकते हो; पर मत करो कभी उसपर अहसान॥
मत समझो दाता अपनेको, करो न कुछ भी तुम अभिमान।
सविनय करो समर्पण प्रभुको प्रभुकी वस्तु सहित सम्मान॥

[१४३९]

(राग वसन्त—ताल कहरवा)

डरे हुएको अभय-दान दो, भूखेको अनाजका दान।
प्यासेको जल-दान करो, अपमानितका साधो सम्मान॥
विद्या-दान करो अनपढ़को, विपद्ग्रस्तको आश्रय-दान।
वस्त्रहीनको वस्त्र-दान दो, रोगीको औषधका दान॥

धर्मरहितको धर्म सिखाओ, शोकातुरको धीरज-दान।
भूलेको सन्मार्ग बता दो, गृह-विहीनको दो गृह-दान॥
नम्र और निःस्वार्थ भावसे दो, कुछ भी न करो अहसान।
सबको ईश्वर मानो, सबको दो, उनका पूरा हक जान॥
प्रभु-पूजा करता जो इन बारह पुष्पोंसे, तज अभिमान।
हो निष्काम प्रेमयुत, उसको, निश्चय मिलते हैं भगवान॥

[१४४०]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

जहाँ 'घृणा'-'संदेह' भरे हैं, वहाँ 'प्रेम' दो, दो 'विश्वास'।
जहाँ 'दोष' हो, 'क्षमा'-दान दो, 'अन्धकार' में भरो 'प्रकाश'॥
दो 'निराश' को 'आशा' निश्चित, 'भय-पीड़ित' को 'अभय-प्रदान'।
करो 'विषादपूर्ण' मानवको 'घनानन्द' का निर्मल दान॥
दो 'मुर्झाये मन' वालेको अति उल्लासजनक 'उत्साह'।
जाग्रत करो हृदयमें जन-जनके प्रिय 'प्रभु-रतिकी शुचि चाह'॥
सबमें हरि हैं, सब हरिमें हैं, सब हरिकी लीलाके रूप।
बनो सभीके सेवक, सबके सुखद, हितैषी, सुहृद अनूप॥

[१४४१]

(राग काफी—ताल कहरवा)

वैरीको दो क्षमा, मित्रको सत्य हृदय दो।
मानहीनको मान, भीतको सदा अभय दो॥
प्रतिद्वन्द्वीको सहनशीलता, सुख, सेवा दो।
अपकारी-हितकारीको हितमय मेवा दो॥
भक्तिपूर्ण मनसे दो सदा पिताको आदर।
भाई-बहनोंको दो पुष्कल सम्पति सादर॥
तुम्हें जन्म देनेका हो गौरव मनमें अति।
माताको दो निज शुभ कर्मोंसे, ऐसी मति॥

शुभ आचरण स्वयं कर, दो बच्चोंको शिक्षा।
दीन जनोंको दो, उनका हक समझ, सुभिक्षा॥
अपनेको इज्जत दो, सेवा दो जन-जनको।
प्रभुके पावन चरणोंमें दे दो निज मनको॥
प्रेम पड़ोसीको दो, निर्मल मधुमय वाणी।
तन-धन सब दो समुद, समझ सब हरिमय प्राणी॥

[१४४२]

(राग परज—ताल कहरवा)

भूलो—हुआ कभी जो तुमसे अन्य किसीका कुछ उपकार।
भूलो—हुआ किसीके द्वारा कभी तुम्हारा कुछ अपकार॥
याद रखो—जो हुआ किसीसे कभी तुम्हारा कुछ उपकार।
याद रखो—जो हुआ किसीका तुमसे कभी तनिक अपकार॥

[१४४३]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

विपद-पड़े असहाय दीनका जो करते मनसे सम्मान।
जो उनकी सेवामें समुदित तन-मन-धनका करते दान॥
उलटे फिर उपकार मानते, करते नहीं तनिक अभिमान।
उनकी इस पूजासे उनपर अति प्रसन्न होते भगवान॥

[१४४४]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

कभी परायी वस्तुपर मत ललचाओ चित्त।
सोचो कभी न हरणकी बात अशुचि पर-वित्त॥
सदा परायी वस्तुको भारी विष-सम जान।
बचे रहो उससे, सदा मृत्यु-दायिनी मान॥
नित्य तुम्हारे सुहृद जो, सर्वेश्वर भगवान।
स्वाभाविक सर्वज्ञ जो, सर्वशक्ति-बलवान॥

उन प्रभुने कर दिया जो, उचित समझ, सु-विधान।
समुद करो स्वीकार वह, मान सुमङ्गल-खान॥
संस्पर्शज सब भोग हैं नहीं मात्र निस्सार।
दुःखयोनि, बन्धन-जनक नरक-कष्ट-आगार॥
रहते इनसे, इसीसे, बुधजन सदा विरक्त।
मधुकर ज्यों हरि-पद-कमल रहते जो अनुरक्त॥
भगवत्पद रति-रँग-रँगे मानव नित्य अनन्य।
सहज भोग-उपरत-हृदय उनके जीवन धन्य॥

[१४४५]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

सबको शुभ संकेत सदा दो, सबको दो नित सद्व्यवहार।
सबके अंदर सुप्त देवको तुरत जगा, कर दो साकार॥
देखो सदा दूसरोंमें सद्गुणों—भले भावोंको नित्य।
स्नेह-दान दे, मुक्तकण्ठसे करो प्रशंसा उनकी सत्य॥
सबमें भरे श्रेष्ठ सद्गुण हैं, पर हो पाया नहीं विकास।
प्रोत्साहन दे, उन्हें जगाओ, नित्य बढ़ाओ शुचि विश्वास॥
तुरत निराशा दूर करो सब, दैन्य-हीनता, दे उत्साह।
उपजा दो मन उच्च स्तरके सफल श्रेष्ठ जीवनकी चाह॥
प्रभुपर हो विश्वास नित्य दृढ़, ऐसा करो पवित्र प्रयास।
जिससे हो सत्वर मानवमें मानवताका दिव्य प्रकाश॥

[१४४६]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

नित करो भला ही सब, जो तुम कर सकते।
उन सभी साधनोंसे, जो तुम कर सकते॥
उन सभी पथोंसे भी, जो तुम कर सकते।
उन सब कालोंमें भी, जो तुम कर सकते॥

उन सभी स्थलोंमें भी, जो तुम कर सकते।
उन सभी प्राणियोंका, जो तुम कर सकते।
उस दीर्घकालतक, जबतक तुम कर सकते॥

[१४४७]

(राग वसन्त—ताल कहरवा)

दया करो तुम जीवमात्रपर, सबको करो स्नेहका दान।
बोलो सत्य-मधुर-हितकर-मित, जपो नाम हरिका निर्मान॥
प्रभुकी सब सम्पत्ति मानकर, करो नित्य पर-हित-उपयोग।
दुःख हरो दुखियोंके, दे निज सुख, रख प्रभुमें मन संयोग॥
पालन करो धर्म वर्णाश्रम, रखकर मनमें शुचि उत्साह।
धर्म बचाओ, शान्ति दानकर सबका हरण करो उर-दाह॥
सात्त्विक भोजन करो अहिंसक, छोड़ो सभी जीभके स्वाद।
लो भगवत्प्रसाद प्रतिदिन तुम, मिट जायें सब शोक-विषाद॥
श्रद्धायुक्त सरस सेवासे सुख पहुँचाओ, दो सम्मान।
गुरुजन-मात-पिता-गुरु-सुरको अपने मनमें ईश्वर जान॥
नित स्वाध्याय, नित्य हरि-पूजन, करो नित्य सात्त्विक सत्सङ्ग।
क्षमा, त्याग, गो-आतुर-सेवा सहज बना लो अपने अङ्ग॥
प्रभु-चरणोंमें रखो निरन्तर तुम अनन्य ममता-अनुराग।
पहुँचोगे तुम दिव्य धाममें, बनकर हरि-सेवक बड़भाग॥

[१४४८]

(राग पीलू—ताल कहरवा)

दुःख-अहित-उद्वेगकर, कटु, मिथ्या, निस्सार।
तिरस्कारमय, हो सहज जिनसे वैर-प्रसार॥
ऐसे वचन न बोलिये कभी कहीं भी, भूल।
जिनके सुनते ही चुभे कठिन हृदयमें शूल॥

सत्य मधुर हितकर वचन वाणीका श्रृङ्गार।
सुनते ही हो हृदयमें जिनसे सुख-संचार॥
मङ्गल वचन उचारिये विनय भरे, सत्-सार।
जिनसे हित-सुख-प्रेमका हो सबमें विस्तार॥

[१४४९]

(राग बसन्त—ताल कहरवा)

रक्षा करो पराधिकारकी, करो त्याग अपना अधिकार।
यथासाध्य पर-आशाओंको पूरा करो सहित सत्कार॥
ऐसा करके, कभी किसीपर करो नहीं कुछ भी अहसान।
कभी न कुछ भी बदला चाहो, त्याग करो मनसे अभिमान॥
प्राणि-पदार्थ-परिस्थितिसे तुम रखो कभी न कुछ भी आस।
करो आत्म सुखकी अभिलाषा, जो है नित्य तुम्हारे पास॥
जो सुख-सिद्धि-हेतु करता है अन्य किसीसे कुछ भी आश।
आत्मसिद्धि-सुखसे वह वञ्चित रहता, होता सदा निराश॥
समझो तुम जिन-जिन बातोंको अपने हित-मनसे प्रतिकूल।
उन्हें न बरतो कभी किसीसे, समझो इसे धर्मका मूल॥
दोष न देखो कभी किसीके, निन्दा-चुगलीको दो त्याग।
सद्‌गुण-सद्भावोंको देखो, सेवा करो सहित अनुराग॥
अपने सभी सुखोंको समझो दुखियोंसे ही लिया उधार।
वितरण कर उनको दुखियोंमें, करो बिषम ऋणका उद्धार॥
पेट भरे, उतने ही धनपर अपना हक है, अपना जोर।
इससे अधिक माननेवाला दण्डनीय, पर-हकका चोर॥
यज्ञ-शेष जो खाता है, वह होता सब पापोंसे मुक्त।
अपने लिये कमाता केवल, खाता पाप, पापसंयुक्त॥
सबको सबका हक देकर जो बचता, वही यज्ञ-अवशेष।
उससे जीवन-यापन करनेवालेके अघ होते शेष॥

बुरा न चाहो कभी किसीका, चाहो भला, करो कल्यान।
सबके सुखमें ही सुख समझो, सबके हितमें ही हित जान॥
प्रेम करो, सुख दो सबको ही, सबका करो सत्य सम्मान।
सबमें समझो निज आत्माको, या सबमें देखो भगवान॥
प्रभुने जो कुछ दिया, परिस्थिति दी जैसी, उसमें हित मान।
मङ्गलमय प्रभुका विधान वह, सद् उपयोग करो शुभ जान॥
प्रभुकी कृपा अनन्त सदा है, उसपर करो पूर्ण विश्वास।
उनकी सहज सुहृदतासे ही मिलती शान्ति बिना आयास॥
हैं अनित्य, क्षणभङ्गुर जगके सभी दुःखमय प्राणि पदार्थ।
उनमें स्वार्थ न देखो, मनसे देखो सदा शुद्ध परमार्थ॥
भोगोंकी आसक्ति-कामना तजकर, हो जाओ निष्पाप।
प्रभुकी सुखद शरणमें जाओ, शान्ति मिलेगी अपने-आप॥
नित्य-निरन्तर प्रभुका पावन नाम जपो, कर मन विश्वास।
मनमें सदा रखो प्रभुको ही, रहो निरन्तर उनके पास॥
दुर्लभ, सुलभ हुआ प्रभुकी अनुकम्पासे मानव-जीवन।
इसका लाभ उठा लो पूरा, कर अर्पण मन-वाणी-तन॥
सबमें सदा विराजित प्रभु हैं, सबमें वे हैं एक समान।
सबमें अपने शुभ कर्मोंसे अविरत पूजो श्रीभगवान॥
आश्रय सभी छोड़कर मनसे होओ प्रभुके शरण अनन्य।
जन्म सफल होगा निश्चय ही, हो जायेगा जीवन धन्य॥

[१४५०]

(राग काफी—ताल कहरवा)

करो सत्य व्यवहार, त्याग दो सारी हिंसा।
करो न संग्रह भोग, बाँट दो सबको हिस्सा॥
ममताको दो त्याग, मालिकी छोड़ो धनकी।
समता सबमें करो, छोड़कर लघुता मनकी॥

छल-कौशल सब छोड़ प्रेमयुत बरतो सबसे।
सबका आदर करो, छोड़ गुरुता-मद अबसे॥
सबके दुःख-अभाव स्वयं तुम ले लो सुखसे।
निज सुख देकर समुद, छुड़ा दो सबको दुखसे॥
पर-हितमें ही हित अपना मानो तुम निश्चय।
अभय-दान सबको कर, सत्वर दूर करो भय॥
वस्त्र, रत्न, धन, धाम, भूमि, विद्या, धी सारी।
भोग, काम, पद, मान, कला, चतुराई भारी॥
जो कुछ हो निज पास, न समझो उसको अपना।
सबको सबका समझ, छोड़ दो स्वत्व-कल्पना॥
भजो सदा भगवान, भोगका भजना छोड़ो।
हो सम्मुख हरिके अब, भोगोंसे मुँह मोड़ो॥
सबमें देखो ईश, सभीका मान करो नित।
सबकी सेवा करो, करो सबका सब विधि हित॥
सच्चे मानव बनो, सभीको दो मानवता।
नष्ट करो दुखदायिनि दारुण अति दानवता॥

[१४५१]

(राग काफी—ताल कहरवा)

सुखियोंका सुख है दुखियोंके सुखका शोषण।
लौटाते रहनेसे ही वह पाता पोषण॥
पर यदि उसे सहर्ष नहीं लौटाता मानव।
तो उसको जगसे मिटना पड़ता, बन दानव॥
संग्रहका कर त्याग, भोगसे ममता हर लो।
सारा सुख सबमें वितरणकर समता कर लो॥
इस जगमें जो कुछ भी है, सब ही ईश्वर है।
उतना ही भोगो, सच्चा हक जितनेपर है॥

पर-स्वसे नित बचो, कभी मत मन ललचाओ।
सबको उनका हक देकर, अपना हक खाओ॥
यज्ञ यही है, भगवत्पूजन, धर्म यही है।
मानवता है यही, शुद्ध सत्कर्म यही है॥

[१४५२]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

मत हँसो, किसीको गिरते देख, कभी तुम।
मत समझो यह कि 'गिरेंगे कभी नहीं हम'॥
उस गिरे हुएके पास दौड़कर जाओ।
सादर देकर अवलम्ब तुरंत उठाओ॥
जो झटपट तुमने नहीं उठाया उसको।
फिर कौन उठायेगा, गिरनेपर, तुमको॥
रोगी प्राणीको देख, न कभी घिनाओ।
उस बे-सहायके खुद सहाय बन जाओ॥
न करो कदापि उपेक्षा रोगीकी तुम।
मत सोचो—'कभी न रोगी ही होंगे हम'॥
ले प्रेम हृदयका आदर दे अपनाओ।
अपने हाथों उसके मल-मूत्र उठाओ॥
जो तुम उसकी सेवासे विमुख रहोगे।
बीमारीमें तुम भी असहाय रहोगे॥
मत करो घृणा तुम दीनोंसे,दुखियोंसे।
उनका हक है सुख पाना ही सुखियोंसे॥
दीनों-दुखियोंको कभी न भूल सताओ।
प्रत्युत तुम उनके परम सुहृद बन जाओ॥
सम्मान-प्रेम-हित-साधनमें जुट जाओ।
दे तन-मन-धन उनका सब कष्ट मिटाओ॥

जो उन्हें तुम्हारा नहीं सहारा होगा।
तो दुर्दिनमें फिर कौन तुम्हारा होगा॥
जैसा बोओगे बीज, मिलेगा वैसा।
जैसा करता जो, फल पाता है वैसा॥
दुख दो न किसीको, करो न कभी बुराई।
सुख चाहो तो नित करते रहो भलाई॥

[१४५३]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

करो न पर-दोषोंका चिन्तन-कथन कभी भी, किसी प्रकार।
करो न कुछ तन-मन-वाणीसे कभी किसीका भी अपकार॥
देखो थोड़े-से गुणको भी, उसे बढ़ाओ, कर सत्कार।
प्रोत्साहन दो निज-परकी शुभ वृत्ति मात्रको सभी प्रकार॥
मङ्गल ही सोचो नित मनमें, करो सभी मङ्गल-आचार।
सोचो-करो वही, जिसमें हो दैवी सम्पदका विस्तार॥
कभी किसीका जी न दुखाओ, दो न किसीको भी दुत्कार।
सबमें सदा विराजित ईश्वर, देखो उसे, करो सत्कार॥

[१४५४]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

मत देखो, किसके अंदर है कहाँ छिपा बैठा शैतान।
दीखे तो सद्भाव-शस्त्रसे करो तुरत उसका बलिदान॥
देखो सबके अंदर नित्य विराजित मङ्गलमय भगवान।
पूजो प्रेम-सुमनसे उनको, रखो जगाये नित, रख ध्यान॥
प्राणिमात्रमें रहे कहीं भी नहीं तुम्हारा किंचित् द्वेष।
वितरण करो प्रेम शुचि सबमें, करो दुःखमें दया विशेष॥
क्षमा करो सबके दोषोंको, ममता-अहंकार कर त्याग।
सम-सुख-दुःख रहो, बँटवाओ पर-दुःखोंमें अपना भाग॥

[१४५५]

(राग बागेश्री—ताल कहरवा)

देखो अपने दोष, न देखो दोष पराये, भूल कभी।
दोष मिटानेमें लग जाओ, करो प्रयोग उपाय सभी॥
बनकर विनय-विनम्र, छोड़ मद-मान, मान-सत्कार करो।
गुणी जनोंके गुण ले-लेकर, उनसे अपना हृदय भरो॥
सदा सर्तक रहो, रञ्चक भी दोष न उर रहने पाये।
भजो नित्य भगवान, करो सत्कर्म उन्हींके मनभाये॥

[१४५६]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

देखो नहीं, करो मत चिन्तन, कहो न कभी 'पराये दोष'।
ढूँढ़-ढूँढ़कर देखो सद्गुण, करो सदा सबका परितोष॥
सद्गुण-सद्व्यवहार दान कर, करो सभीका मानस शुद्ध।
पर न करो अभिमान तनिक भी, करो न कुछ भी धर्म-विरुद्ध॥

[१४५७]

(राग बागेश्री—ताल कहरवा)

उत्तम वह जो पर-दोषोंको अपने गुण देकर ढकता।
मध्यम वह, जो पर-दोषोंको सहन सहज ही कर सकता।
अधम मनुज, जो पर-दोषोंको सहन नहीं है कर पाता।
नीच मनुज, जो पर-दोषोंको बढ़ा-बढ़ाकर है गाता।
सबसे नीच, स्वयं गढ़-गढ़कर पर-दोषोंको बतलाता॥ १॥
उत्तम वह, जो अपकारीका भी करता है नित उपकार।
मध्यम वह, जो उपकारीका ही केवल करता उपकार।
अधम वही, जो पर-हित-रहित सदा करता अपना उपकार।
नीच मनुज, जो निज-हित कारण करता अन्योंका अपकार।
परम नीच, कर अहित स्वयंका करता अन्योंका अपकार॥ २॥

[१४५८]

(राग शिवरञ्जनी—तीन ताल)

है सौभाग्यवान पुण्यात्मा पुरुष वही, जो विषय-विरक्त।
जिसका जीवन नित्य-निरन्तर है प्रभु-पद-पङ्कज-आसक्त॥
अति दरिद्र, हो सर्व-उपेक्षित वह चाहे सहता अपमान।
निश्चय ही वह प्रिय है प्रभुका, है उसपर प्रसन्न भगवान॥
किंतु प्रचुर धन-मान प्राप्त हो, सहज प्राप्त हो पद-अधिकार।
पर हो विषयासक्त, भरे हों जिसके मनमें अमित विकार॥
भोग-वासना असुरभावसे हो जिसका जीवन आक्रान्त।
मन्दभाग्य वह, ईश-कृपासे वञ्चित नित, है दुष्कृत भ्रान्त॥

[१४५९]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

जैसा बीज, बहुत-से होते फल वैसे ही, उसी प्रकार।
कर्म-बीज होता जैसा, फल भी होते उसके अनुसार॥
इह-परलोक चाहते यदि तुम नित्य परम सुख-शान्ति अपार।
सावधान रह, करो सतत शुभ कर्म, पुण्य आचार उदार॥

[१४६०]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

अपने लिये चाहते सबसे तुम जो कुछ, जैसा व्यवहार।
वैसा ही तुम करो सभीसे, सदा सजग रहकर, व्यवहार॥
विनय-मधुर-भाषण, सुख-हितमय, सत्य करो सबसे व्यवहार।
बदलेमें तुम कई गुना पाओगे वैसा ही व्यवहार॥
प्रभुको सबमें देख, करो तुम सेवामय सबसे व्यवहार।
सेवारूप बने जीवनके एक-एक पलका आचार॥

[१४६१]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

शुद्ध कमाई अपने श्रमकी करती सदा बुद्धिको शुद्ध।
पर-श्रममें पर शोषण होता, जो है निश्चय धर्म-विरुद्ध॥
कभी न रखो भरोसा पर-श्रमपर, न करो ग्रहण पर-स्वत्व।
समझो निज श्रमके अपने हकके पैसेपर ही अपनत्व॥
धर्म-विरुद्ध पाप-चेष्टाका होता बहुत बुरा परिणाम।
योनि आसुरी, नरक-यन्त्रणा मिलती बार-बार दुख-धाम॥

[१४६२]

(राग वसन्त—ताल कहरवा)

धनका साधन, प्राप्ति, वृद्धि, रक्षा, व्यय, भोग और धन-नाश—
सबमें अति आयास, त्रास, चिन्ता, भ्रमका है नित्य निवास॥
चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ, मद, काम, क्रोध और अभिमान।
भेद, वैर, स्पर्धा, लम्पटता, अविश्वास, जूआ, मद-पान॥
'अर्थ' नामधारी 'अनर्थ' ही इन पंद्रह अनर्थका मूल।
अतः श्रेयकामी धनको दे त्याग दूरसे, करे न भूल॥
भाई, पत्नी, पिता, सुहृद—जो सदा स्नेहवश रहते एक।
कोड़ीके कारण फटता मन, बनते शत्रु त्यागकर टेक॥
अल्प अर्थके लिये क्षुब्ध हो, गुस्सेमें भरकर अत्यन्त।
सहसा तज सौहार्द, वैर-सन, जीवनका कर देते अन्त॥

× × × ×

पाकर भी इस नर-शरीरको, जो है स्वर्ग-मोक्षका द्वार।
कौन फँसेगा, इस अनर्थके धाम अर्थमें, करके प्यार॥

[१४६३]

(राग खमाज—ताल त्रिताल)

कर प्रमाद मत बनो आलसी, करो सुचारु रूपसे काम।
अपना काम स्वयं करनेमें, लाज-बड़प्पन तजो तमाम॥

हाथ-पैर—सब साधन प्रभुने दिये दयाकर तुम्हें समान।
फिर क्यों उनसे काम न लेते? क्यों रखते हो झूठी शान?
मन-तन दोनोंका हित करता निश्चय शारीरिक श्रम युक्त।
बनो स्वावलम्बी स्वतंत्र, होओ पर-निर्भरतासे मुक्त॥

[१४६४]

(राग भैरवी—ताल कहरवा

धनासक्त मानवमें होते धनके प्रति 'ममत्व', 'अभिमान'।
धनका मान बढ़ाता शठ वह 'सदाचार'का कर अपमान॥
'काम' प्रेमका स्थान छीनता, लेता 'भोग' 'त्याग'का स्थान।
आ जाता 'अधिकार', स्थानच्युत हो जाता 'कर्तव्य' महान॥
आती घोर 'बिषमता', पावन 'समता' हट जाती तत्काल।
'निर्दयता' 'दयालुता'का ले स्थान बना देती बेहाल॥
जो धन असत्-मार्गसे आता, नित्य बढ़ाता रहता पाप।
वह वरदान नहीं, जीवनमें है वह घोर अशुचि अभिशाप॥

[१४६५]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

सुर-ऋषि-पितर-मनुज, सब जीवोंको उनका हिस्सा देकर।
बचा हुआ जो खाता, वह हो पापमुक्त, पाता ईश्वर॥
पर जो निजके लिये कमाता, बिना दिये ही है खाता।
वह अघभोजी निश्चय ही यमदूतोंसे पीड़ा पाता॥

[१४६६]

(राग देश)

जीवन, तन, मन, वचन, धन, भोजन, जन-व्यवहार।
अति निर्मल सुपवित्र हों, वस्तु सभी आचार॥

[१४६७]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

कबतक फँसे रहोगे विषयासक्ति-वासनामें, हो दीन ?
कबतक मनमें भरे रखोगे दुर्विचार-दुर्भाव मलीन ?
जिन भोगोंके लिये हो रहे तुम लालायित, सुखमय जान।
घोर दुःख ही उपजेगा उनसे, बढ़ जायेगा अज्ञान॥
छोड़ो सब आशा-ममता, आसक्ति-कामना, मद-अभिमान।
एकमात्र, शरणागत होकर, भजो निरन्तर श्रीभगवान॥

[१४६८]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

राखै अपुने कौं सदा भगवत्-सुमिरन-लीन।
सुनै न जगके दोष-गुन, करै न चित्त मलीन॥
पूछै कछु, कछुवै कहै कोउ आय कैं पास।
सुनि लै, कछु बोलै नहीं, सब सौं रहै उदास॥
पर-निंदा पर-दोष के कथन सुनन में लोग।
जो आनँद अनुभव करैं, लहैं नरक के भोग॥
कहै न अपनी बात कछु, सुनै न परकी बात।
एकनिष्ठ प्रभु में रहै बस्यौ सदा दिन-रात॥
राग-रोष-दुख-दोषमय जग सौं रहै सचेत।
काहूँ सौं न करै कबौं वैर-भाव अरु हेत॥
सब सौं न्यारौ ह्वै रहै, खारौ हू नहिं होय।
सब की सब कुछ सहै नित, प्रभु को प्यारौ सोय॥
करै न जग-चरचा कबौं, रहै सदा चुपचाप।
रहि इकंत निज भजै प्रभु, ता कौं सेवैं आप॥
पै प्रभु के रस-प्रेम की निरमल गोपन बात।
कहै न काहू सौं कबौं, सहै सकल आघात॥

सहि न सकै प्रिय की तनिक निंदा, जो कहुँ होय।
सहज त्याग सर्वस्व करि, डारै निज कौं खोय॥
या जग में जा कै हृदय ऐसौ प्रेम समाय।
हरि ता कौं अति चाव सौं रखैं सदा अपनाय॥
निर्मल या प्रभु-प्रेम की महिमा कही न जाय।
अति प्रेमी जो स्याम कौ, हरि-हिय नित्य बसाय॥
दुख में संतत सुख लहै, सो आवै एहि बाट।
नाहिं त क्यौं रचना करै कपट नरक कौ ठाट॥

[१४६९]

(राग भिन्नषड्ज—ताल मूल)

मिला हुआ जो न्यायोपार्जित धनसे जो विशुद्ध आहार।
हिंसा-रहित, पवित्र, शुद्ध तन-मनसे हो निर्मित अविकार॥
सादा, सात्त्विक, युक्त, स्वास्थ्यकर हो, जिससे न बढ़े व्यय-भार।
प्रभुको अर्पित भोजन, करता उदय हृदयमें शुद्ध विचार॥

[१४७०]

(राग ईमन)

मांस, मद्य, अंडे, अशुचि, पापार्जित, उच्छिष्ट।
अघ-स्पर्शित, दुर्गन्धियुत, वर्धक व्याधि-अरिष्ट॥
इन सबका कर त्याग नित, करो शुद्ध आहार।
अर्पण कर प्रभुको प्रथम, मनमें भर सत्कार॥
होगा शुद्धाहार तो, मन भी होगा शुद्ध।
मनकी शुद्धि बनायगी, जीवनको परिशुद्ध॥
जीवनकी परिशुद्धिमें, होंगे शुचि सत्कर्म।
उनसे होगा मुक्तिप्रद विकसित मानव-धर्म॥

[१४७१]

(राग विहाग)

मानव, पशु, पक्षी, लता, पादप, कीट, पतंग।
सबमें प्रभु नित बस रहे, सब ही उनके अङ्ग॥
मांसाहारी मनुज ही, है हिंसाका मूल।
प्रभुपर करता चोट वह, जाता निज-हित भूल॥
घोर नारकी यातना मिलती उसे अपार।
नीच योनिमें दुःखसे करता हाहाकार॥
अतः किसीपर भी कभी करो नहीं आघात।
सबके हित-सुखकी सदा सोचो मनसे बात॥

[१४७२]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

कभी न करो किसी भी प्राणीकी हिंसा तन-मनसे, भूल।
बोलो कभी न व्यर्थ-झूठ-चुगली-छल-परुष वचन उर-शूल॥
तन-मन-वाणीसे न चुराओ कभी किसीकी धन-सम्पत्ति।
नीच स्वार्थ-साधन-हित, डालो नहीं किसीपर दुःख-विपत्ति॥
पर-नारी, पर-पुरुष त्यागकर, सेवन करो शुद्ध गृह-धर्म।
निज-पर धर्म-नाशके साधन करो कभी भी नहीं कुकर्म॥
अंडे-मांस-मद्यका खाना-पीना कर दो बिल्कुल त्याग।
तामस वस्तु, नशीली, जूँठनसे रक्खो परहेज-विराग॥
माता-पिता-देवता-गुरुका, गुरुजनका न करो अपमान।
सुख पहुँचाओ सबको संतत, मनमें रख श्रद्धा-सम्मान॥
बुरे सङ्गका, बुरे व्यसनका कभी न रक्खो मनमें मोह।
क्रोध-लोभको छोड़, करो सब जीवोंपर स्वाभाविक छोह॥
भोग वासना त्याग, करो श्रीप्रभु-चरणोंमें दृढ़ अनुराग।
बचे रहोगे नरकोंसे तुम, भक्त बनोगे शुचि बड़भाग॥

[१४७३]

(राग परज—ताल कहरवा)

जैसे कर्म किये जीवनभर, जैसे मनमें रखे विचार।
अन्तकालका भाव मनुजका होगा उसके ही अनुसार॥
तदनुसार ही सद्गति-दुर्गति होगी उसे प्राप्त अनिवार।
अतः रखो प्रतिपल ही मधुमय भगवत्स्मृतिमें हृदय उदार॥

[१४७४]

(राग परज—ताल कहरवा)

मृत्यु-समयकी अनुपम सेवा—मनसे दूर करे संसार।
करे न कभी जगत्की, भोगोंकी, घरकी चर्चा निस्सार॥
राग-कामना जगे, बढ़े जिससे ममता-मिथ्याऽहंकार।
छा जायें मनपर मिथ्या भय-चिन्ता-शोक-विषाद अपार॥
असत्-अनित्य-दुःखमय जगके भोग अशुचि सब, भरे विकार।
इनके दोष-दुःख दिखलाकर, प्रभु-चर्चा कर बारंबार॥
नाम-रूप-गुण गायें, जिससे बन जाये मन ब्रह्माकार।
मानव-जन्म सफल हो जाये, मिल जायें प्रभु सर्वाधार॥

[१४७५]

(राग प्रदीप—ताल त्रिताल)

भूत-प्रेतकी पूजा करता, करता जो तामस व्यवहार।
अंडे-मांस-शराब उड़ाता, चोरीका करता व्यापार॥
रखता मनमें वैर-द्वेष-मद, करता जो हिंसा-व्यभिचार।
होता घोर प्रेत वह, पाता असहनीय यातना अपार॥

[१४७६]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

काम-लोभ-बस कोप करि, करत जो तुअ अपकार।
निज अनिष्ट नित करत सो, निस्चै मूढ़ गँवार॥
ता कौं नित कीजै छमा, दया-पात्र तेहि जानि।
जो निज हाथहि तैं करत, अपनी अतिसै हानि॥

[१४७७]

(तर्ज गजल—ताल रूपक)

पापका धन सदा रह सकता नहीं।
क्योंकि, उसको धर्म सह सकता नहीं॥
झोंपड़ीकी आगसे होता प्रकाश।
किंतु, वह कर डालती है सर्व नाश॥
फैल जाता फिर सभी विधि अन्धकार।
फूँककर सब, मूढ़ होता निराधार॥
इसीसे, मत पापका संग्रह करो।
सर्वद्रष्टा सजग ईश्वरसे डरो॥
समझकर भगवान्‌के शुभ भावको।
मत बढ़ाओ भोग जनित अभावको॥
त्यागके आदर्शको मन-मान दो।
भोगके परिणामपर अब ध्यान दो॥
पापसे सम्पन्न जो धनवान है।
जोड़ता वह नरकका सामान है॥
भले उसका जगत्‌में सम्मान हो।
पूजते उसको कथित विद्वान हो॥
कभी मत चाहो कि वैसे बनो तुम।
दुर्दशा भावी समझकर डरो तुम॥
सादगी निर्लोभ-वृत्ति न पाप है।
लोभ अघ-संतति सकलका बाप है॥

[१४७८]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

क्रोध है बहुत बड़ा शैतान। क्रोधसे मारा जाता ज्ञान।
क्रोध करता नरको बेभान। क्रोध खो देता सारा प्रान॥

क्रोधमें आँखें होतीं लाल। क्रोधमें मुँह होता विकराल।
क्रोधमें खूब बजाता गाल। क्रोधमें सभी बिगड़ती चाल॥
क्रोधमें नोच डालता बाल। क्रोध कर देता है बेहाल॥
क्रोधसे जल्दी आता काल। क्रोध देता नरकोंमें डाल॥
क्रोधमें जलते सारे अङ्ग। क्रोधमें सत्य न रहता सङ्ग॥
क्रोधमें हो जाता मति-भङ्ग। क्रोधमें मिटती सभी उमङ्ग॥
क्रोधमें खोती सारी लाज। क्रोधमें कूएँ गिरता भाज॥
क्रोधमें गले बाँधता पाश। क्रोधमें करता आत्म-विनाश॥
क्रोधसे कँप उठती सब देह। क्रोधमें मिट जाता सब नेह॥
क्रोधमें मिटता सद्व्यवहार। क्रोधमें स्वयं मारता मार॥
क्रोधमें दुर्गुण आ डटते। क्रोधमें सब सद्गुण मिटते॥
क्रोधसे सदाचार हटते। क्रोधसे सद्विचार कटते॥
क्रोधमें गुरुजन को ललकार। क्रोधमें देता है दुतकार॥
क्रोधमें उन्हें मारता मार। क्रोधमें बिसराता सब प्यार॥
क्रोध जब आये, चुप हो रहो। क्रोध आते ही माला गहो॥
क्रोधमें राम-नाम-जप करो। क्रोधको सह करके तप करो॥
क्रोधको मत करने दो काम। क्रोधके समय रटो हरि नाम॥
क्रोधको खूब दिखाओ त्रास। क्रोधका करो क्षमासे नाश॥

[१४७९]

(तर्ज गजल—ताल कहरवा)

मित्रोंको नहिं दोष दीखते। उनसे हम कुछ भी न सीखते॥
वे गुण गाते नहीं अघाते। दोष तनिक भी नहीं बताते॥
उनको मित्र न मानो भाई। जो मुँहपर कर रहे बड़ाई॥
दोष बड़ाईसे न सुधरते। उल्टे आ-आकर घर करते॥
निन्दक दोष बताते भाई। हमें राहपर लाते भाई॥
मित्र उन्हें हम सच्चा मानें। ढूँढ़-ढूँढ़ जो दोष बखानें॥

फूलो मत सुन बड़ाई। भूलो मत मनकी अधमाई ॥
झूठी अधिक प्रशंसा होती। निन्दा अधिक सत्य ही होती ॥
जो केवल निज गुण सुनते हैं। वे नित ही जलते-भुनते हैं ॥
जो अपनी चाहते भलाई। धीरज रखकर सुनो बुराई ॥

[१४८०]

(राग खट—ताल त्रिताल)

नाम-रूपका बना हुआ है जिनके अन्तरमें अध्यास।
जिनके मनमें वर्तमान है भोगासक्ति, भोग-अभिलाष ॥
वाचिक ज्ञानयुक्त जो मानव करते मनमाना आचार।
विधि-निषेधसे परे मान, वे हैं अज्ञानी मिथ्याचार ॥

[१४८१]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

जिसमें नहीं विनय, ऋजुता, तप, त्याग, मधुर विनम्र व्यवहार।
जिसमें नहीं मधुर-हित-वाणी, सत्य, सुसंयम, शुभ आचार ॥
वचन असत्य, परुष, पर-हित-नाशक, मन भरा दर्प-अभिमान।
हिंसा-वैर-परायण, काम-क्रोध-लोभ-भय-दम्भ-निधान ॥
भक्ष्याभक्ष्य-विचार त्याग, जो करता तामस भोजन-पान।
साक्षर होकर भी वह नर-पशु मानवता-विरहित अज्ञान ॥
जिसमें दया, प्रेम, सेवा, तपका लहराता सिन्धु महान।
अक्षर-हीन भले हो, पर वह है मानव शिक्षित विद्वान ॥
व्यर्थ, अनर्थपूर्ण जीवन अपवित्र असुर-पशुका कर त्याग।
दैवी सम्पदका सेवन कर बनो सुशिक्षित शुचि बड़भाग ॥

[१४८२]

(राग भीमपलासी—ताल त्रिताल)

हो शरीर सेवा-संयममय, वाणी हो नित प्रिय-हित-सत्य।
सर्वभूत-हित-सम करुणा हो, मनमें भगवच्चिन्तन नित्य ॥

हो चाहे धन-मान-पद-रहित, हो चाहे समाजमें दीन।
'कुल-गौरव', वह परम धन्य-जीवन है जो प्रभु-पद-रति-लीन॥
वचन अहितकर-मिथ्या कटु हो, तन इन्द्रिय-भोगोंका दास।
मनमें हिंसा-काम-क्रोध-मद-निर्दयता, रति भोग-विलास॥
धन-अधिकार-मान-यश हो, पर प्रभु-पद-विमुख हृदय हो नीच।
'कुल-कलङ्क' वह रहा विषम-दुख-नरक-लताको संतत सींच॥

[१४८३]

अस्थि-चर्म-मात्र, नर-कङ्काल, शिथिल अङ्ग, नंगे बदन।
मुँह पिचका, पेट निकला, आर्त, क्षुधा-पीड़ित, क्लेश-सदन॥
रूपसी बाला, परित्यक्ता, अति अपमानित, पति-हीना।
समाजसे तिरस्कृता, बहिष्कृता, अश्रुमुखी, अति दीना॥
मातृ-पितृ-हीन बालक, अति अभाव-पीड़ित, दुर्दशाग्रस्त।
असहाय, आश्रयाभिलाषी, आतुर, अति भय-संत्रस्त॥
विद्याकामी, अर्थ-हीन, सम्बल-हीन छात्र-छात्रा।
बाध्य हो विद्या-विमुख रह, भोगते संकट अतिमात्रा॥
दीन-हीन, मूक प्राणी—गौ, अज, कुक्कुट, कबूतरादि।
हिंसा-भय-प्रपीड़ित, हिंसक मानवकृत, ग्रस्त महाव्याधि॥
ये सभी प्राणी सदा ही यथायोग्य दयापात्र हैं।
इनको पीड़ा देनेवाला नर असुर, दण्डपात्र है॥
दया मानवकी मानवताका लक्षण एकमात्र है।
दया-हीन, मानवता-हीन मानव दानव, कुपात्र है॥
नरकगामी, वह नारकी यन्त्रणाका भागी होगा।
फिर आसुर-योनियोंमें जाकर पापानुरागी होगा॥

[१४८४]

(राग परज—ताल कहरवा)

पहले 'मैं', फिर 'मेरी पार्टी', फिर आता है 'मेरा देश'।
'मैं' का स्वार्थ प्रथम, द्वितीय है पार्टीका, 'स्वदेश' का शेष॥

'देशभक्त' मैं सदा चाहता, हो स्वदेशका नित कल्याण।
पर 'मेरी पार्टी' को यदि मिलता हो उससे 'धन-पद-मान'॥
'पार्टी' को भी 'धन-पद' मिलना है मुझको तब ही स्वीकार।
यदि 'मैं' पाता हूँ निश्चित विशेष धन-मान-पूर्ण अधिकार॥
ऐसा 'मूढ़' न 'देशभक्त' मैं, कर अपना निजस्व बलिदान।
सोचूँ जो 'पार्टी'-'स्वदेश' का हित-अधिकार-स्वार्थ-सम्मान॥
हाँ, जब बोलूँगा, तब लूँगा पहले सदा 'देश' का नाम।
'पार्टी' का पश्चात्, न लूँगा अपना नाम कभी बेकाम॥
पर मेरे हितके बाधक 'स्वदेश-हित' को भी दूँगा त्याग।
बदलूँगा मैं 'पार्टी' को भी 'निज हित हेतु', न रखकर राग॥
क्योंकि वस्तुतः लक्ष्य एक है, सफल सदा करना निज स्वार्थ।
इसी एकमें हित है, गौरव-मण्डित यही परम पुरुषार्थ॥
यही तत्त्व है 'राजनीति' का, 'नेताका स्वरूप' यह 'भव्य'।
श्रेय त्यागकर 'स्वार्थपरायण रहना'—एक यही 'कर्तव्य'॥
'स्वार्थ-साधना' एकमात्र, बस यही मानना, रखना ध्यान।
'मानव धर्म' यही केवल है, 'मानवताका लक्ष्य' महान॥

[१४८५]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

देश-धर्मको भूले, भूले सर्वजीव-हित, श्रीभगवान।
छाया नीच स्वार्थ जीवनमें, छाया तम-पूरित अज्ञान॥
मानव दानव हुए, असुरता छायी जीवनमें सब ओर।
भूल गये 'कर्तव्य'-'त्याग', 'अधिकार' 'अर्थ'-मदमें घनघोर॥
नित्य विषय-चिन्तनसे क्रमशः उदय हो गये सारे दोष।
बुद्धि नष्ट हो गयी, मिटा सच्चिन्तन, बने पाप-विष-कोश॥

[१४८६]

(राग हिंदोल—ताल झूमरा)

धर्महीन जीवन पशु-जीवन घोर तामसिकता-भरपूर।
धर्महीन नर असुर-दैत्य बन रहता मिथ्या मदमें चूर॥
धर्महीन नर नीच स्वार्थवश नित्य बना रहता अति क्रूर।
धर्महीन नरसे रहते नित पुण्यकर्म-सुख-शान्ति सुदूर॥

[१४८७]

(राग काफी—ताल मूल)

काम-भोग-पर केवल जब हो जाता मानव।
मानवता खो, वह बन जाता पूरा दानव॥
अर्थ और अधिकार-कामना उठती नव-नव।
लोभ-क्रोध-प्रदाह, शान्ति पाता न कभी लव॥
हिंसा-वैर-विरोध-रत, जग हो जाता पापमय।
करते तब शिव रुद्र बन 'प्रलय-नृत्य' संहारमय॥

[१४८८]

(राग माँड़—ताल कहरवा)

महापुरुष, योगी बने, प्रेमी-ज्ञानी भंड।
शील-धर्म-धन ठग रहे, रच छलमय पाखण्ड॥
विषम-प्रीति-पूरित हृदय, कपट-साधुता धार।
भेड़ खालमें भेड़िये छाये सब संसार॥

[१४८९]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

दुःखोंसे है भरा हुआ यह क्षणभङ्गुर, अनित्य संसार।
इसमें नित्य सुखोंकी आशा दुःख बढ़ाती बारंबार॥
'भोगोंमें सुख है'—इस भ्रमसे करता मनुज विविध व्यापार।
पर नहिं पा दर्शन स्थायी सुखके करता नित हाहाकार॥

बार-बार दुख पाता, लगता आशापर भारी आघात।
पर न दुराशा मूढ़ छोड़ता, नये-नये रचता उत्पात॥
करता नित ममताकी वस्तु बढ़ानेके सूत्रोंका पात।
बढ़ते राग-द्वेष मोहवश, हो जाता जिनसे विनिपात॥
मेरा मत, मेरी भाषा, मेरा धन, मेरे भूमि-मकान।
मेरा दल, मेरा घर, मेरे पद-अधिकार, मान-सम्मान॥
मैं समर्थ, मैं सुखी, राष्ट्र-निर्माता मैं नेता महान।
है कौन जगतमें ऐसा, जो इन सबमें हो मेरे समान॥

× × × ×

यों करता वह निरी जल्पना, करता सदा वृथा बकवास।
रहता चिन्ताग्रस्त मृत्युके अन्तिम क्षणतक, सदा उदास॥
व्यर्थ बढ़ाकर अहंकार-मद, करता अपना आप विनाश।
सदा अशान्ति भोगता, आते नहीं शान्ति-सुख उसके पास॥
काल देखता नहीं और कुछ, सहज चला जाता निज चाल।
हो जाते निःशेष श्वास जीवनके, आता अन्तिम काल॥
अति असहाय, निराशा छायी, बदला रंग, हुआ बेहाल।
छूट चले 'मैं-मेरे' के सब पद-पदार्थ अति क्षुद्र-विशाल॥
प्राण निकल जाते, जाता वह छोड़ बाध्य हो गृह-संसार।
खोकर व्यर्थ सुअवसर, लेकर अघ-अनर्थका भारी भार॥
क्यों आया ? क्या किया ? गँवाया क्यों मैंने जीवन निस्सार।
पछताता, रोता, कराहता; पर न हाथ लगता कुछ सार॥

[१४९०]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

जिस मानव-शरीरमें होते सिद्ध सहज चारों पुरुषार्थ।
जिसमें सत्पथपर चल मानव मोक्षरूप पाता परमार्थ॥
उसे खो रहा मूढ़ मोहवश दुःखयोनि भोगोंमें व्यर्थ।
तिर्यग्योनि-नरक-दायक संतत संचित कर रहा अनर्थ॥

[१४९१]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

जबसे बना हमारे जीवनका उद्देश्य 'अर्थ', 'अधिकार'।
तबसे उठा पवित्र त्याग, आध्यात्मिक बलका शुचि आधार॥
आयी अस्त-व्यस्तता, छाया सभी ओर व्यापक व्यामोह।
मिटी सभी कर्तव्य-भावना, छाया नीच स्वार्थ, मद-मोह॥
हटा हृदयसे प्रेम, द्वेष-हिंसाने छीन लिया वह स्थान।
बुद्धि तामसी हुई, मिट गया धर्माधर्म-हिताहित-ज्ञान॥
तोड़-फोड़कर, आग लगाकर, हत्या कर, करते अभिमान।
दुर्बलको दुख देते, करते गुरुजनका सगर्व अपमान॥
छाया भ्रष्टाचार चतुर्दिक्, अनाचार, अति अत्याचार।
हुआ विनाश सत्यका, हुआ प्रवर्तित मिथ्यामय व्यापार॥
राजनीतिने कर ली वेश्यावृत्ति सहर्ष आज स्वीकार।
जहाँ 'अर्थ' वहाँ चली वरणकर, छोड़ सभी सिद्धान्त विचार॥
कैसे यह बहुमुखी रुकेगा पतन, पुनः होगा उत्थान?
सबको दे सद्बुद्धि पतित-पावन करुणाकर श्रीभगवान॥

[१४९२]

(राग शिवरञ्जनी—ताल कहरवा)

लक्ष्य भूल मानव जीवनका, बनते जो भोगोंके दास।
सहज मोहवश बँध जाते वे ममता-राग-रोषके पाश॥
'काम-क्रोध-लोभ' वश करते वे नित अकरणीय दुष्कर्म।
'अर्थ' और 'अधिकार' मात्र बस, बन जाते उनके प्रिय धर्म॥
भूल 'त्याग', 'कर्तव्य' ज्ञानको, तजकर 'सत्य-अहिंसा-प्रेम'।
मूढ़ चाहते तमोगुणी आसुर-साधनसे 'योगक्षेम'॥
मोह-मान-मद-कपट-कुटिलता-पूर्ण दुष्कृतोंसे वे भ्रान्त।
ज्यों-ज्यों सुख साफल्य चाहते' त्यों-त्यों होते असफल, क्लान्त॥

दुखी बनाकर सब जीवोंको स्वयं चाहते सुख-सम्भार।
चिन्ता-भय-विषाद व्याकुलता-दुख पाते वे बारंबार॥
खोकर दुर्लभ मानवता, वे बन जाते पशु-प्रेत-पिशाच।
पशुओं, प्रेत-पिशाचोंकी ज्यों लड़ते, करते नंगा नाच॥
इसे मानते जागृति, उन्नति, प्रगति, सभ्यता, उच्च विकास!
मानव-जन्म नष्टकर, करते मरकर भीषण नरक-निवास!!

[१४९३]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

सत्य ढक गया है अब तमसे, रज तमका हो गया गुलाम।
तमके संचालनमें होते इसीलिये हैं कर्म तमाम॥
सत्त्व सदा ले जाता ऊपर, रज रखता मानवको बीच।
कुप्रवृत्तिरत रख मानवको, तम है सदा गिराता नीच॥
तम बतलाता पुण्य पापको, कहता सदा पुण्यको पाप।
तमसाच्छन्न बुद्धिका होता सब उलटा निर्णय बेमाप॥
अवनतिको उन्नति बतलाती और पतनको वह उत्थान।
पर-हित, पर-सुखको वह अपना अहित-दुःख कहती बेभान॥
दुराचारको सदाचार कह, सदाचारको भ्रष्टाचार।
चोरी-ठगी-डकैतीको वह कहती आवश्यक आचार॥
करवाती दुष्कर्म, बताकर उन्हें प्रगतिका मूलाधार।
करवाती, कर्तव्य छुड़ाकर, मिथ्या अहंकार-ममकार॥
देश-धर्म, मत-वाद, जाति-भाषाका गाढ़ असत् अभिमान।
करती उदय स्वार्थ सीमित कर, छा देती सबमें अज्ञान॥
दानवता धारणकर मानव करने लगता स्वेच्छाचार।
बन जाते सब कर्म सहज ही दुष्ट, असत, अति भ्रष्टाचार॥
अपना हित-सुख मान सहज वह करता पर-हित-सुखका नाश।
'जो बोवै, सो मिलै'—न्यायसे होता उसका पूर्ण विनाश॥

प्राणि-प्राणहर वैज्ञानिक अण्वस्त्र आदिका आविष्कार।
जिसकी लगी होड़, है उन्नत(?) सब देशोंमें आज अपार॥
विद्या, बुद्धि, ज्ञान सबका ही लक्ष्य अनन्य 'अर्थ-अधिकार'।
संतत 'हम सम्पन्न, सुरक्षित रहें'—सभीका कर संहार॥
इसीलिये ईसाई-मुसलिम, हिंदू-बौद्ध हिताहित भूल।
करते कर्म जघन्य, अशुभ फलदायक, निज-हितके प्रतिकूल॥
पूँजी-साम्य-समाजवाद, गणतन्त्र, राज्यतन्त्रादि अनेक।
छाये वाद-विकार जगत्में 'क्षुद्र अहं' की रखने टेक॥
इसीलिये पातक-रत 'चीनी' पाकिस्तानी—सब षड्यन्त्र।
मोह-मुग्ध हो फूँक रहे सब, द्वेष-कलहका आसुर-मन्त्र॥
इस ही क्षुद्र 'अहं' के कारण भारतमें भी छाया मोह।
भाषा, वाद, प्रान्त-सीमाके नाम बढ़ रहा द्वेष-द्रोह॥
हत्या, लूट निरीह-निग्रहण, अत्याचार, यान-गृह-दाह।
गोलीवर्षा आदि हो रहे कर्म राक्षसी अकथ, अथाह॥
हिंसा, पर-धन-हरण, अनृत, व्यभिचार, अवाञ्छित सब व्यापार।
बने सहज स्वाभाविक दूषित, कलुषित जीवनके व्यवहार॥
सिख-हिंदू हैं एक मूलतः, एक धर्म-संस्कृति सुमहान।
क्षुद्र अहंवश वे आपसमें लगे बरतने शत्रु-समान॥
पंजाबी सूबा, हरियाना राज्य, महामालवकी माँग।
चम्बल प्रान्त भोजपुरिया, उर्दू सूबाका नूतन राग॥
मीजो, नागा, हरिजन, कडजम, द्रविड़ और सन्थाल-स्थान।
कई भाग उत्तरप्रदेशके, छिन्न-भिन्न हो राजस्थान॥
सभी जानते—देश-जातिका इनमें नहीं तनिक उपकार।
क्षुद्र अहंवश किंतु बताते बुधजन प्रचुर लाभ-विस्तार॥
रिश्वतखोरी, चोरी, मिश्रण, राज्योंके अपार कर-भार।
सभी संकुचित स्वार्थ-जनित ये दुःखद-दुरित कर्म, कुविचार॥

ढके सभ्यताके पर्देमें, या हो रहे खुले दुष्कर्म।
धर्म-नामसे छाया सबमें धर्म-विनाशी घोर अधर्म॥
हो चाहे सुविशाल राष्ट्र या हो कोई भी व्यक्ति नगण्य।
'क्षुद्र अहं' करवाता सबसे पातक छोटे-बड़े जघन्य॥
अखिल विश्वमें जिस दिन होगा एकमात्र आत्माका भान।
क्षुद्र 'अहं' मिट जायेगा तब, 'स्व' का असली होगा ज्ञान॥
सत्त्व अनावृत होगा तमसे, रज होगा तब सत्त्वाधीन।
सबके सुख हितमें स्वाभाविक होंगे सभी कर्म तल्लीन॥
सात्त्विक बुद्धि करेगी निश्चय निर्विवाद तब सत्य, यथार्थ।
फिर प्रत्येक कर्म, ही होगा शुभ भगवत्पूजन—परमार्थ॥
सहज सभी सबको सुख देंगे, सभी करेंगे हित-कल्याण।
पर-अधिकार सुरक्षित रखकर, दुःखोंसे पायेंगे त्राण॥
जहाँ कहीं भी राष्ट्र, व्यक्तिमें जब जागेगा ऐसा भाव।
तभी वहाँ उसके सारे दुःखोंका होगा सहज अभाव॥
जबतक यह न जगेगा सुन्दर मनमें शुचि सच्चा सिद्धान्त।
मानवता मरती जागेगी, दुःखोंका न आयगा अन्त॥
आत्माराम तपस्वी ऋषि-मुनि-नरपतियोंका भारत हाय!
लुटा सभी निज आध्यात्मिक धन, आज बन रहा वह असहाय!!
हे भगवान! मिटा दो, अब तो भारतका यह मोह-प्रमाद।
राग-द्वेष हटाकर इसके, सभी मिटा दो बैर-विषाद॥
ज्ञानचक्षु कर दो उन्मीलित, जिससे देख सकें प्रत्यक्ष।
सबमें भरे एक, बस, तुमको, पाये तुमको सदा समक्ष॥
सबमें आत्मसदृश सुख-दुःखोंका हो अनुभव सहित विवेक।
सबका भला देखने-करनेका हो जीवनका व्रत एक॥
सबकी सेवा, सबका सुख-हित करना स्वाभाविक हो भाव।
निज सुख दे, पर-दुःख-दलनका बढ़ता रहे निरन्तर चाव॥

पुनः सत्ययुग आ जाये, यह बने पुनः ऋषियोंका देश।
स्वयं सुशान्त-सुखी हो, जगको दे ऐसा ही शुभ संदेश॥
सुधा स्रवित हो सबसे, बिगलित हो जायें कठोर पाषाण।
सभी सुखी हों, सब निरोग हों, सभी सदा पायें कल्याण॥

[१४९४]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

'जीवन ऊँचे स्तर'का हो, यह आज हमारा है नारा।
'ऊँचे स्तर'का अर्थ यही है—ऊँची हो जीवन-धारा॥
सत्य, अहिंसा, त्याग, प्रेम, हो सदाचार सबको प्यारा।
जीवमात्रके माध्यमसे हो 'प्रभु-सेवा' ही ध्रुवतारा॥

× × × ×

अखिल विश्वके जड-चेतनमें हो पवित्र 'स्व' का विस्तार।
'सबका स्वार्थ' बने निश्चित ही 'अपना स्वार्थ' एक अविकार॥
सबका दुःख मिटाने, सुख देनेको सभी रहें तैयार।
करें सभी सबके सुख-हितके लिये सहर्ष त्याग स्वीकार॥
सदाचार, सद्भाव, साधुता, सत्य वचन, शुचि सद्व्यवहार।
सुख-दुःखादि द्वन्द्वमें समता, संयम, शील, शुद्ध आहार॥
सेवा, सर्वभूत-हितमें रति, सात्त्विक गुण, विचार-आचार।
सरल-सौम्य मन, संत-सङ्ग-रुचि, शान्ति, सुहृदता हो साकार॥
विनय-विनम्र, मधुर-हितकर हो वाणी, दे सबको सम्मान।
हो अस्तेय, असंग्रह, मन-तनसे न किसीका हो अपमान॥
ब्रह्मचर्य आठों प्रकारसे नित्य सुरक्षित रहे महान।
'ऊँचे स्तरका जीवन' यह—जिससे प्रसन्न होते भगवान॥

× × × ×

भय, विषाद, आलस्य, ईरषा, द्वेष, असूया, भूत-द्रोह।
राग, कामना, क्रोध, लोभ, मद, दम्भ, अशान्ति, दर्प, छल, मोह॥

नित्य अपूर्ण भोग-तृष्णा, पद-अर्थ-भोगकी ही नित टोह।
निन्दा, वैर, विरोध, क्रूरता, हिंसा, तनिक नहीं मन छोह॥
नित्य परोपकार-रुचि, दूषित तामस कर्मोंमें उत्साह।
चिन्तानल प्रज्वलित चित्तमें, नित्य हृदयमें दारुण दाह॥
विघटन नाश-अशान्ति-उपद्रवकी बढ़ती नित नूतन चाह।
निज मिथ्या सुख-हेतु नहीं मन पर-विनाशकी कुछ परवाह॥
नास्तिकता, अधर्ममें रति अति, बाह्य प्रदर्शन, मिथ्या त्याग।
ईश्वर, शास्त्र-संत-द्विज-निन्दामें रुचि सहज सहित अनुराग॥
उच्छृङ्खल, विधिहीन, यथेच्छाचारी, अघ-जीवन दुर्भाग।
'नीचे स्तर' के ये दुर्गुण—जिनसे आसुरपन उठता जाग॥

× × × ×

ये सब 'नीचे स्तर' के—उगते-बढ़ते जिससे दोष तमाम।
वही कहाता 'ऊँचे स्तरका जीवन' आज, बिगत-विश्राम॥
मर्यादा सब तोड़, छोड़कर कुलकी रीति-नीति अभिराम।
जन-जनसे ऋण लेकर करना भोग, बढ़ाना तन-आराम॥
करना मनमानी, कर गुरुजन शास्त्र वचनका अति अपमान।
सीनेमा प्रतिदिवस देखना, मनमें भर रखना अभिमान॥
मदिरा-मांस उड़ाना अंडे, शूट-बूट-नेकटाई तान।
सजे-धजे अकड़े रहना, नित खूब दिखाना झूठी शान॥
चाहे जहाँ, जभी, जो कुछ भी खाना-पीना, बिना विचार।
खड़े-खड़े ही मूत्र त्यागना, करना नित अशुद्धि-विस्तार॥
टबमें नंगे बैठ नहाना, कर चर्बी-साबुन-व्यवहार।
बिना नहाये बिस्तरपर ही पीना चाय त्याग आचार॥
फँस फैशन-कुव्यसन आदिमें, करना आडम्बर स्वीकार।
खर्च बढ़ाकर करना चोरी, सभ्य बने, कर कपटाचार॥
निम्न कोटिके नाच-गानको मान बैठना संस्कृति सार।
नर-नारीका मिलना, करना बाधारहित विलास-विहार॥

गला फाड़कर यह पुकारना—'हम स्वतन्त्र हैं, नहीं गुलाम।
निजका और देशका करते हम 'विकास' हर समय ललाम॥
जीवनको ऊँचे स्तरपर ला, हमने खूब कमाया नाम।
बनो कृतज्ञ हमारे सब तुम, समझो हमें देशहित-धाम'॥
'ऊँचे स्तर' के सुखद नामपर 'नीचे स्तर'के करना काम।
पुण्यकर्मके पूत नामपर करना घृणित पाप अविराम॥
तामस बुद्धि बताती उलटा सत्‌को दुःख, असत् सुख क्षाम।
'नीचे स्तर' का इसी बुद्धिसे रखा आज 'ऊँचा स्तर' नाम॥
इसीलिये हम भीख माँग, हैं ऋण-पर-ऋण ले रहे अमान।
छाया आज दुःख-परिणामी इस 'ऊँचे स्तर' का अभिमान॥
ले 'विकास'का नाम इसीसे हम कर रहे 'विनाश-विधान'।
शुद्ध बुद्धि दें हमें, मोह हर, आज दयामय श्रीभगवान॥

[१४९५]

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

'है सब जीवोंमें एक आत्मचैतन्य नित्य परिपूर्ण महा'।
'है विश्व चराचर—सबमें ही परमेश्वर एक विराज रहा'॥
'वसुधा है एक कुटुम्ब-सदृश', एकात्मरूप जग सारा था।
भारत-जनका यह अनुभव था, भारतका यह प्रिय नारा था॥
'सब हों निरोग, सब सुख भोगें, सबका हित हो, सबका विकास।
सबके मङ्गल-कल्याण-हेतु जीवनका बीते श्वास-श्वास'॥
था क्षुद्र 'अहं', था सीमित 'स्व', था 'स्वार्थ' व्यक्तिगत त्याज्य जहाँ।
था विश्वरूपमें ईश्वरका दर्शन-आराधन नित्य यहाँ॥
'सब भूत सदा स्थित हैं हरिमें, भूतोंमें स्थित नित हैं ईश्वर।
थी यही मान्यता जन-जनकी, सब कहते थे यों एक स्वर॥
एकात्मभाव था सहज, सभी थे सबका करते सुख-विधान।
पावन रुचि यही प्रजाकी थी, यह था राजाका संविधान॥

हा ! आज वही हम भूल गये अपना स्वरूप, अपने विचार।
छाया है इसीलिये हमपर यह घोर तमोमय अनाचार॥
है इतर प्राणियोंको न बात, मानवका शत्रु आज!
सर्वाङ्ग-नाशके हेतु सज रहा आज वही राक्षसी साज!!
है जाति, प्रान्त, भाषा, भू-सीमा, मजहबका ले क्षुद्र नाम।
खोकर विवेक, परिणाम भूल, कर रहा काम काले तमाम॥
भूले विद्वान सुविद्याको, नेतागण भूल गये स्वदेश।
भूले शिक्षार्थी शिक्षाको धारण करके विध्वंस-वेश।
'अनुशासन' रहा न रहा 'विनय' है रहा नहीं सौजन्य-लेश॥
नित बने जा रहे नये-नये दल-नीति-सैन्य-मत-संघ-वाद।
बढ़ता जाता संघर्ष, कलह, हिंसामय आपसका विवाद॥
कर दिये त्याग 'कर्तव्य', 'त्याग', ले लिये मात्र 'अधिकार', 'अर्थ'।
अधिकार-अर्थ-हित हो प्रमत्त, कर रहे आज भीषण अनर्थ॥
उत्तेजित करके छात्रोंको, भोले लोगोंको अनायास।
करवाते लूट-मार-हत्या, धन-सम्पदका बेहद विनाश॥
लगवाते आग वाहनोंमें, भवनोंमें, मीलोंमें अबाध।
पहुँचाते हानि निरर्थक, अति कर रहे घृणित नीचापराध॥
दुःखानल धधक उठा दूषित, है नहीं शान्ति-सुख किसी ओर।
सबका जीवन विपन्न, छाया सबपर सबका संदेह घोर॥
पहुँचाते दुःख परस्पर हैं, स्वाभाविक मानव-धर्म भूल।
फूलोंके बदले बिछा रहे सबके पथमें हैं सभी शूल॥
बढ़ रहे देशमें अन्न-कष्ट, दारिद्र्य, भुखमरी, दुःख-दाह।
हम स्वार्थ-शराब पिये पागल, करते न तनिक परवाह आह!!
है स्वार्थ-रोगसे ग्रस्त, ले रहा राष्ट्रवाद अब ऊर्ध्व श्वास।
खण्डित भारतको खण्ड-खण्ड करनेका चालू है प्रयास॥
है मानवताका पतन घोर, पशुता-दानवता रही जाग।
अब रही-सही मानवतामें भी लगा रहे सानन्द आग!!

****

है कम्पित होता हृदय देख इसका अति दुःखद कुपरिणाम।
छायेंगे रोग-शोक भारी दैवी कोपोंसे अष्टयाम॥
बुझ जायेंगे जीवन-दीपक, सब ओर कालका अन्धकार—
विस्तृत होकर, होगा दारुण नारकी यन्त्रणाका प्रसार॥
मानव-जीवनकी असफलता, मानवताका यह दुरुपयोग!
हैं नरक भोगते रहे, ले चले नरकोंके ही विपुल भोग!!

[१४९६]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

हुए विदेशी हम स्वदेशमें, कर सारा निजस्व बलिदान।
करते अन्ध 'परानुकरण', तज भारतीय संस्कृति-अभिमान॥
'पर'-भाषा, 'पर'-वेष, 'पराया'-खानपान, सब 'पर'-आचार।
शय्या-सज्जा, भवन-भ्रमण सब ही 'पर', 'पर' मन-बुद्धि-विचार॥
बच्चे कहने लगे पिताको 'पापा', माँको 'मम्मी' आज।
परम्परागत चाल छोड़ सब, सजने लगे 'पराया' साज॥
हटा हृदयसे गुरुजन, माता-पिता, पूर्वजोंका सम्मान।
'पर' बननेमें लगे मानने उन्नति, प्रगति, विकास महान॥

[१४९७]

(राग सोहनी—ताल कहरवा)

(निज) देशमें ही आज हम पूरे विदेशी हो गये।
मानसिक दासत्वसे सब रत्न घरके खो गये॥
साफ कुर्त्ता, श्वेत धोती, मिरजई, पगड़ी हटी।
कोट औ पतलूनके सँग नेक टाई आ डटी॥
खाने लगे जूँठन सभीकी मेजपर रक्खी हुई।
भोजकी पशु-रीति निकली 'बफे' नामक यह नई॥
मातृ-भाषा छोड़, अंग्रेजी लगे हम बोलने।
पश्चिमी रँगमें रँगे हम लगे हिलने-डोलने॥

बाल भी कह रहे 'माताजी', 'पिताजी' अब नहीं।
'ममी', 'डैडी' और 'पापा' बोलते हैं सब कहीं॥
अन्ध पर-अनुकरणताका सब तरफ ही जोर है।
इसीसे अब पतनका भी कहीं ओर-न-छोर है॥

[१४९८]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

नभमें शब्द भर रहे सारे—'प्रगति', 'विकास' और 'उत्थान'।
'नव-जागरण', 'नवोल्लास', बनती 'नव-नव योजना' महान॥
पर हो रहा इन्हीं नामोंपर 'पीछे हटना', पतन', 'विनाश'।
'नव-जागरण', 'योजना' सारी, है 'प्रवञ्चना', 'नव-उल्लास'॥
'सदाचार'का स्थान ले चुका 'अनाचार', 'अति भ्रष्टाचार'।
'त्याग' और 'कर्तव्य' छिप गये, आये 'अर्थ' और 'अधिकार'॥
'सत्य' और 'अस्तेय' उठ गये, बढ़ी 'झूठ', 'चोरी' सर्वत्र।
पैसेपर बिक रहा सहज ईमान, धर्म खो अत्र-परत्र॥
पैसा ही बन गया सभी कुछ—कर्म-धर्म-साधन-भगवान।
सत्पथ-न्याय छोड़, सब मानव भजते उसे, त्याग ईमान॥
बिकने लगी दया, सेवा सब, देश-भक्ति, ईश्वरकी भक्ति।
नीच स्वार्थ-साधनके पथ सब बने, बढ़ रही विषयासक्ति॥
नकली दवा, दूध-घी नकली, नकली सब खाद्यादि पदार्थ।
बनने-बिकने लगे अनर्गल, भूले सभी स्वार्थ-परमार्थ॥
खान-पानकी मिटी शुद्धता, बढ़ा अशुचि आमिष-आहार।
मांस-मत्स्य-अंडोंके नव-नव होने लगे बृहद् व्यापार॥
खुलने लगे कसाईखाने बड़े-बड़े वैज्ञानिक आज।
माइ-बाप सरकार कर रही घोर जीव-हिंसा, तज लाज॥
नये-नये दानवी करोंकी हुई भयंकर अति भरमार।
प्रजा प्रपीड़ित हुई, बन रही डाकू-सी नृशंस सरकार॥

बने अधिक ब्यापारी, प्रायः अधिकारी तन-मनसे चोर।
तेजीसे बढ़ रहा 'चोर-चोरी-पूजन' अब चारों ओर॥
घोर समाजशत्रु 'सीनेमा' राष्ट्र-चरित्र कर रहा नाश।
किंतु बढ़ रहा आग-सरीखा, करता सहज विवेक-विनाश॥
बढ़ी बढ़ रही नित्य भयानक महँगी, मुँह-बाये घनघोर।
जीवन बना क्लेश-कण्टकमय, छाये दुःख-मेघ सब ओर॥
बढ़ी भयानक गो-हत्या अब रहा न गोपालनका भाव।
कुत्ते लगे प्यारसे पलने, बड़े-बड़े घर छाया चाव॥
मिटने लगी सती-मर्यादा, पातिव्रत्य, त्याग-बलिदान।
तितली बनी बालिका-तरुणी इधर-उधर उड़ रही अमान॥
कुल-कन्या, कुल-वधू छोड़कर कुल-लज्जा, मर्यादा-मान।
जन-समूहमें लगी नाचने, अङ्ग दिखाने, करने गान॥
काम-क्रोध-लोभ—तीनों हैं आत्म-विनाशक नरक-द्वार।
आज हमारे सब कामोंमें है इनका प्रभाव-विस्तार॥
परम लक्ष्य मानव-जीवनका एकमात्र जो है भगवान।
भूल उसे, सब हुए दुःखमय भोगोंमें रत जड-विद्वान॥
पाप दीखता पुण्य, दीखता अनाचार ही अब आचार।
तमसे ढकी बुद्धि करती उलटा निर्णय, विपरीत विचार॥
इसीलिये हम पतन-गर्तमें गिरे जा रहे, कर अभिमान।
पता नहीं—अब कहाँ रुकेंगे, कब सुबुद्धि देंगे भगवान॥

[१४९९]

(राग भैरवी—ताल कहरवा)

मानवके हैं प्राण-आत्मा नित्य अनादि धर्म-भगवान।
ऋषि-मुनि-संत-भक्त—सबका अनुभूत यही सिद्धान्त महान॥
धर्मनिष्ठ, भगवद्विश्वासी मानव रहा सुदृढ़ सब काल।
'प्रगति' नामपर पागल हो, यह आज कर रहा भूल विशाल॥
छोड़ धर्म-भगवान चाहता वह भोगोंसे सुख-संदोह।
शीतलताकी आश अग्निसे जैसे, कैसा यह व्यामोह?

इसीलिये भर रहा दम्भ-मद-मान-वैरसे सब संसार।
काम-क्रोध-लोभ-भय-हिंसाका हो गया अमित विस्तार॥
बढ़ी प्रबल अति भोग-लालसा, बढ़ा सहज पापोंमें राग।
पशु-पिशाच हो चला आज मानव, कर मानवताका त्याग॥
होता रहा अगर ऐसे ही धर्म-ईश निष्ठाका ह्रास।
निश्चय ही होगा विकासके मधुर नामपर पतन-विनाश॥

[१५००]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

दम्भ-मान-मदयुक्त, भरी मन अमित कामनाएँ दुष्पूर।
असत् विचार-युक्त जीवनमें भ्रष्टाचार भरा भरपूर॥
चिन्ता अमित श्वास अन्तिमतक देती नित रहती संताप।
ध्येय एक ही है जीवनका, बस, कामोपभोग बेमाप॥
बँधे सैकड़ों आशाओंके कठिन पाशसे, भोगासक्त।
काम-क्रोध-परायण, नित अन्यायोपार्जनमें आसक्त॥
'आज मिला यह, वह भी पूरा होगा मेरा मन-अभिलाष।
होगा प्राप्त मुझे फिर भारी धन, पूजेगी सारी आश॥
बाधक वैरी मार दिया वह, औरोंको भी दूँगा मार।
ईश्वर, भोगी, सुखी सफल-जीवन, मैं हूँ बलका भंडार॥
हूँ सम्पन्न, मान्य जन-नायक, कोई मेरे नहीं समान।
'सेवा-दान करूँगा मैं'—यों बकते रहते वे अज्ञान॥
भ्रमित-चित्त वे विविध भाँतिसे, मोह-जालमें फँसे निगूढ़।
परमासक्त काम-भोगोंमें, पड़ते अशुचि नरक वे मूढ़॥

[१५०१]

(राग जंगला—ताल कहरवा)

धन-दौलत, अधिकार-मानसे होता कोई नहीं महान।
पर-दुख सुखी, दुखी पर-सुखमें जो, वह है पापोंकी खान॥
पर-सुख-साधनके निमित्त जो निज सुख कर देता बलिदान।
वह अमूल्य आभूषण जगका, वही जगतमें मनुज महान॥

अपना स्वार्थ साधनेको जो करता औरोंका नुकसान।
वह मानव जगका कलङ्क है, मानवताका शत्रु महान॥
जो स्वार्थी नर साधु-संत सज ठगता है, धोखा देता।
'बगुला भगत' नीच वह धर्म-जगत्‌का गौरव हर लेता॥
पढ़-लिख, जो उपाधि धारणकर, पर-सुख हरता साहंकार।
पढ़े-लिखे हिंसक उस पशु-मानवको बार-बार धिक्कार॥

[१५०२]

(राग भीमपलासी—ताल कहरवा)

धरकर वेश त्यागियोंका, जो बनते पुरुष महान।
ब्रह्मनिष्ठ, निष्काम कर्म-रत, मूर्त ज्ञान-विज्ञान॥
धरे स्वाँग, जो सदा दीखते सीधे-सादे संत।
ऐसे विनय-विभूषित, मानो निर्मानी अत्यन्त॥
सहज पापियोंसे बढ़कर वे घोर कपटकी खान।
ऊँचे आसन बैठ, निरन्तर जो बघारते ज्ञान॥
'एक ज्ञान—अद्वैत-तत्त्व ही है सबका सिरमौर।
निम्न-कोटिके अपसिद्धान्ती तत्त्व सभी हैं और'॥
करते विजय-घोषणा, मनमें रखकर अति अभिमान।
कहते—'माया निर्मित ही हैं ईश्वर या भगवान॥
है अज्ञान-कालमें ही जग-ईश्वरका अस्तित्व।
कुछ भी नहीं, कदापि हुआ-होगा कोई भी तत्त्व॥
नहीं तत्त्वतः सत्य किसीमें, सभी असत्य विकार।
माया-राज्य असत्‌में केवल असत् लोक-व्यवहार'॥
रखते नहीं ककहरेका भी शुद्ध प्रेमके ज्ञान।
गोपी-प्रेम विमलकी करते ये निन्दा-अपमान॥
सदाचारका ढोल पीटते, असदाचारी आप।
अपने सदाचारकी मिथ्या नित्य लगाते छाप॥

कहते—'सदाचारमें ही है एकमात्र उत्थान।
इसी सत्यको पकड़, सभीको चलना है अम्लान'॥
स्वयं पैर पुजवाते गुप-चुप, लिये विषय-अनुराग।
बाहर बड़ा विरोध दिखाते, ईश्वरका भय त्याग॥
जहर बताते घोर मानको, स्वयं ढूँढ़ते मान।
निन्दा करते स्तुतिकी, स्तुतिका करते खुद सम्मान॥
मान-कामिनी-काञ्चनका छाया नस-नसमें रंग।
इनमें फँसे भंड ये संतत बहते पाप-तरंग॥
नहीं हिचकते करनेमें ये ऐसे कर्म जघन्य।
कर पाते हैं नहीं जिन्हें भोगी-पापी भी अन्य॥
बने महात्यागी, संन्यासी, यती, त्याग जग-भोग।
दम्भी वे दिन-रात लगे रहते इन्द्रिय-सम्भोग॥
हरते धन अति चतुराईसे, बना त्यागका ढोंग।
महापुरुष, ईश्वर बतलाते इनको भोले लोग॥
रहते सदा विलास-परायण अधम, इन्द्रियाराम।
बाहर सजे विरक्त, विषय-सुख-विरहित, आत्माराम॥
रमणी-स्वर्ण, बड़ाई-पूजा, मान, देह-आराम।
लक्ष्य बना इनको जीवनका, करते पाप तमाम॥
भोग-दास ते सदा सोचते-करते निन्दित काम।
विषय-विरक्त संतजन भी जिससे होते बदनाम॥
कैसे हो सकता इनसे मानवताका उद्धार।
धूर्त मूर्त ये पाप-रूप, भीषणतम नरकागार॥

[१५०३]

हो गया उनका, वही, बस, स्वस्थ है।
शेष सारे रुग्ण, जो प्रकृतिस्थ हैं॥

═══ ★ ═══

प्रकीर्ण

[१५०४]

एक प्रेमी सज्जनको सलाह

नेहभरी श्रीनेहलता ! तुम धन्य सदाई ।
जुगल-कृपा ते लही जो दुर्लभ कृष्न-मिताई ॥
परम पूज्य, प्रिय, सखा, स्वामि, गुरु, हितू तिहारे ।
रसिक-सिरोमनि एक श्याम गोपीजन-प्यारे ॥
अनुकंपा उन की अपार कौ तुम्हैं सहारौ ।
का करि सकै बिगार घोर कलि-काल तिहारौ ॥
सकल ताप-संताप सुदारुन बिपति-बुराई ।
अहै तिहारे प्रीतम ही की सबै पठाई ॥
बड़ी मरम की पीर, बीर ! सहियो सब सुख सौं ।
पिय कौ प्रिय संदेस, न कछु कहियो निज मुख सौं ॥
संसारीहू बड़ी, होय जो हरि अनुरागी ।
अष्टजाम अनुगत, सेवा-रत अति बड़भागी ॥
ग्यान-कर्म कौ मर्म सुनत-समुझत क्यौं डरिये ।
सब ही सौं अपने मोहन की सेवा करिये ॥
नंदसुवन-सेवा ही सब कौ परम चरम फल ।
बिना दाम घनस्याम-हाथ बिकिबौ अति मंगल ॥
दारुन ग्रह, दुर्दैव स्याम-चेरिहि न सतावैं ।
स्याम-प्रेम सब काम सदा बरबस करवावैं ॥
चेरी कौ चित सदा एक स्यामै पहिचानै ।
भलौ-बुरौ परिनाम स्याम-पीतम ही, जानैं ॥

है निश्चिंत, अचिंत्य स्याम-पद सेवन कीजै।
दिवस-रैन मन-चैन स्याम-सुमिरन चित दीजै॥
बिनु पंखन के बाल-बिहँग जोहैं जननी-मग।
जिमि पत्नी पिय-दरस-हेतु आकुल-चित डगमग॥
तिमि प्यारे पीतम के अति पावन बिरहानल।
जरि-जरि लहियै अमल अलौकिक आनँद प्रतिपल॥
स्याम-चरन कौ एक भरोसौ कबहुँ न तजियो।
अग-जग की चिंता बिसारि गोपालै भजियो॥
मोपै हू करि कृपा इहै श्रीहरि सौं कहियो।
अपनी ओर निहारि छोह नित करते रहियो॥
बाढ़ी जग में ख्याति, लोक-रंजन मन छायौ।
रस की बातैं बिसरि ब्यर्थ ही काल गँवायौ॥
ह्वैहैं वे दिन कबै, जबै श्रीराधारानी।
गनि आपनौ गुलाम नेह सौं धरि सिर पानी॥
अपनी रुचि अनुकूल सकल आचरन बनावैं।
स्याम-सहित निज चरनन की सेवा करवावैं॥
लौकिक परिचय कछुक दीजियो, जो मन मानै।
तुम कौं हम कौं स्याम सदा निज-जन करि जानैं॥ *

---

* यह पद श्रद्धेय श्रीभाईजीने एक अज्ञात महानुभावके नीचे प्रकाशित पद्यात्मक पत्रके उत्तरमें (वै० कृष्ण १, सं० १९९९ वि० को) रचकर 'कल्याण' में प्रकाशित किया था।

परम-पूज्य प्रिय सखा, स्वामि, गुरु, हितू हमारे।
श्रीहनुमानप्रसाद (जी) भाव के भोरे-भारे॥
बंदौं चरन-सरोज सीस धरि सदा तुम्हारे।
देहु इहै आसीस, बसैं हिय जुगल हमारे॥
छायौ अब कलि-काल घोर, नहि धर्म-लेस कहुँ।
अनाचार, पाखंड, पाप बाढ्यौ देखत चहुँ॥

[१५०५]

प्रेमावस्था

(राग छाया नट—तीन ताल)

जबहि तें मोहन दृष्टि पर्‌यो।
चितवन तन को सभी भुलायो, हिय मुसक्यान हर्‌यो।
धरम-बिबेक-बिराग नसाने, गेह-नेह बिसर्‌यो॥
ममता-लाज-सरम सब छूटी, रूप-निधान बर्‌यो।
लुट्यो लोक आराम-भोग-सुख, दुख सुख-रूप धर्‌यो॥

कपटी, कायर, कुटिल, काम-बस, अतिसै क्रोधी।
बाढ़े चोर, जुवार, बिप्र-गुरु-संत-बिरोधी॥
तिन के मधि बसि रहन कठिन जिमि दसनन जीहा।
साँच कहै, है मरन, मिलन पिय कठिन अलीहा॥
ताहू पै त्रैताप घोर सौं तपत सदा तनु।
ऐसे भीषन बिपति-काल नहिं कोउ अवलंबनु॥
होते भीषन संसारी तौ यह सब सहि लेते।
काहू कौ उपकार-भार नहिं सिर पै लेते॥
कहा कहैं? कहि जात नहीं अब जिय की घातें।
बड़ी मरम की पीर, बीर रसिकन की बातें॥
मातु-पितादिक स्वजन निरस अति ग्यान सिखावैं।
कोउ निहकाम-सकाम कर्म के मर्म सुझावैं॥
एकौ लागत नाहिं किए उन अमित उपाई।
कहा करौं ह्वै गई संग बस कृष्न-मिताई॥
सो अब छूटत नाहिं, जतन मैं हूँ बहु हेरी।
बरबस ही करि लई स्याम बिनु मोलन चेरी॥
ना जानौं प्रारब्ध कौन-सौ बिमुख पर्‌यौ है।
जो बैरी इहि भाँति मोहि ते रहत अर्‌यौ है॥
अन-इच्छित जे कर्म तिनहिं बरबस करवावत।
पेरत है दिन-रैन मूढ़ तउ नास न पावत॥

[१५०६]

(राग पीलू—तीन ताल)

मिले पै मन की नहिं गई।
मोहन रूप सिंधु अति गहरो, कोउ न थाह लई॥
सुंदर अमित बदन नव-जलधर सुधा-वृष्टि अति बरसत।
द्वै नैना निरखत अघात नहिं अरब-खरब को तरसत॥
कैसे करूँ, कौन बिधि पीऊँ रूप-सुधा इक रंग।
सुख अनंत नैनन को कैसे पाऊँ एकहि संग॥

[१५०७]

(राग ईमन—तीन ताल)

प्रेम-सिरोमनि, प्रेम-मनि, प्रेमीगन सरताज।
प्रान होइ प्रेमी हिये, बसत सदा ब्रजराज॥
दिल को दिल, मन मनहि को, प्रान प्रान को स्याम।
जीवन को जीवन मधुर, प्रियतम प्राणाराम॥
कोटि प्रान-प्रियतम परम प्रेमीजनके हीय।
रूप-सुधानिधि प्रेमनिधि, निधिमय अति कमनीय॥

नित दुस्संगति पर्‌यौ, नाहिं सतसंग बसत तनु।
नहिं भागवत-पुरान-कथा कौ श्रवन-कीरतनु॥
अपनेहि कर करि रह्यो हाय! अपनी ही हाँती।
यहि सोचत हौं जबहिं, तबहिं भरि आवत छाती॥
बिनु पंखन के बिहँग सरिस उछरत औ गिरत हौं।
भव-दवाग्नि में बिबस हाय! अब नित्य जरत हौं॥
काढ़ी लीजियो मित्र! मोहि हिय करुना करि कै।
या दीजो मत उचित, करौं सोइ हिय हरि धरि कै॥
कठिन कुअवसर माहिं ह्वै रही मति गति भोरी।
ओ 'कल्यान'-सुदानीं! भरियो 'नेह' की झोरी॥

भोग-मोच्छा की बासना रहे न मन में एक।
रात-दिना लाग्यो रहै, कबहुँ न छाँड़ै टेक॥
एक पलक मत छाँड़ियो, स्याम तुम्हारो साथ।
भीतर-बाहर सर्वदा रहियो पकड़े हाथ॥

[१५०८]

(दोहा)

महाभाव-रसराजके मधुर मनोहर भाव।
दिव्य, मधुरतम, रागमय, दैन्य-विभूषित चाव॥
दोनों दोनोंके लिये सहज सभी कर त्याग।
सुखद परस्पर बन रहे, छलक रहा अनुराग॥
दोनों दोनोंके सदा प्रेमी-प्रेष्ठ महान।
नित्य, अनन्त, अचिन्त्य, शुचि, अनिर्वाच्य रसखान॥
सुख-दुख दोनों ही सुखद, प्रियतम-सुखके हेतु।
अन्य सभी टूटे सहज मिथ्या निजसुख-सेतु॥
राधा-माधव-प्रेम-रस वाचा-चित्त-अतीत।
करते शाखाचन्द्र-से इङ्गित सोलह गीत॥ *

[१५०९]

(राग ईमन)

निज तन-मन जिनके नहीं, प्रिय-तन-मन कौं धार।
प्रियमय, राधा-सी सती, अन्य कौन संसार॥

[१५१०]

(राग मालकोस—ताल तेवरा)

ठाढ़ी जसुमति मातु निज लिए स्याम कौं गोद।
दाऊ ठाढ़े अति निकट मन अतिसय मोद॥
रूप-शील-सौन्दर्य-निधि महाभाव रसखान।
स्याम-सुखी स्यामा अतुल राधा परम सुनाम॥

---

* श्रीराधा-माधव-रस-सुधा (षोडश गीत) की पुष्पिकाके रूपमें यह पद रचित हुआ।

जलभरि कलसी लाड़िली जामैं छिद्र हजारि।
कलँक भंजिनी स्यामलन छींटत ताकौ वारि॥
सुन्दर बन भांडीर बिधि सबिधि करायौ ब्याह।
रूप सिंधु सोहत उभै, सुन्दर भरे उछाह॥
ठाढ़ी राधा बारि लै, संग भैया श्रीदाम।
कनियो लें कीरति खड़ी स्यामा-मंजु. ललाम॥
स्याम बतावत प्रिया कौ भानु राज के द्वार।
तिनकौ जन्मोत्सव सुखद मन भर मोद अपार॥
नित नूतन गुन रूप रस दिव्य बढ़त बिनु पार।
राधा जीवन मुरलिधर सुन्दर स्याम उदार॥
कनिया लें कान्हहि चली अति सुषमा आगार।
गोपी मन प्रमुदित परम लखि भविस्य सुखसार॥

[१५११]

ब्राह्मण और बिच्छूकी कथा

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

विश्व-पावनी बाराणसिमें संत एक थे करते वास।
राम -चरण-तल्लीन-चित्त थे, नाम-निरत, नय-निपुण-निरास॥
नित सुरसरिमें अवगाहन कर, विश्वेश्वर-अर्चन करते।
क्षमा-शील, पर-दुख-कातर थे, नहीं किसीसे थे डरते॥
एक दिवस श्रीभागीरथिमें ब्राह्मण विदथ नहाते थे।
दयासिन्धु देवकिनन्दनके गोप्य गुणोंको गाते थे॥
देखा एक बहा जाता है वृश्चिक जल-धाराके साथ।
दीन समझकर उसे उठाया संत विप्रने हाथों-हाथ॥
रखकर उसे हथेलीपर फिर, संत पोंछने लगे निशंक।
खल, कृतघ्न, पापी वृश्चिकने मारा उनके भीषण डंक॥
काँप उठा तत्काल हाथ, गिर पड़ा अधम वह जलके बीच।
लगा डूबने अथाह जलमें निज करनीवश निष्ठुर नीच॥

देखा मरणासन्न, संतका चित करुणासे भर आया।
प्रबल बेदना भूल उसे फिर उठा हाथपर, अपनाया॥
ज्यों ही सँभला, चेत हुआ, फिर उसने वही डंक मारा।
हिला हाथ, गिर पड़ा, बहाने लगी उसे जलकी धारा॥
देखा पुनः संतने उसको जलमें बहते दीन-मलीन।
लगे उठाने फिर भी ब्राह्मण क्षमा-मूर्ति प्रतिहिंसा-हीन॥
नहा रहे थे लोग निकट सब, बोले—'क्या करते हैं आप ?
हिंसक जीव बचाना कोई धर्म नहीं, है पूरा पाप॥
चक्खा हाथों-हाथ विषम फल, तब भी करते हैं फिर भूल।
धर्म-कर्मको डुबा चुका भारत इस कायरताके कूल'॥
'भाई ! क्षमा नहीं कायरता, यह तो वीरोंका बाना।
स्वल्प महापुरुषोंने है इसका सच्चा स्वरूप जाना॥
कभी न डूबा क्षमा-धर्मसे, भारतका वह सच्चा धर्म।
डूबा, जब भ्रमसे था इसने पहना कायरताका वर्म॥
भक्तराज प्रह्लाद क्षमाके परम मनोहर थे आदर्श।
जिनसे धर्म बचा था, जो खुद जीत चुके थे हर्षामर्ष'॥
बोले जब हँसकर यों ब्राह्मण, कहने लगे दूसरे लोग—।
'आप जानते हैं तो करिये, हमें बुरा लगता यह योग'॥
कहा संतने--'भाई ! मैंने नहीं बड़ा कुछ काम किया।
निज स्वभाव ही बरता मैंने, इसने भी तो वही किया॥
मेरी प्रकृति बचानेकी है, इसकी डंक मारनेकी।
मेरी इसे हरानेकी है, इसकी सदा हारनेकी॥
क्या इस हिंसकके बदलेमें मैं भी हिंसक बन जाऊँ।
क्या अपना कर्तव्य भूलकर प्रतिहिंसामें सन जाऊँ॥
जितनी बार डंक मारेगा, उतनी बार बचाऊँगा।
आखिर अपने क्षमा-धर्मसे निश्चय इसे हराऊँगा'॥

संतोंके दर्शन-स्पर्शन-भाषण दुर्लभ जगतीतलमें।
वृश्चिक छूट गया पापोंसे संत-मिलनसे उस पलमें॥
खुले ज्ञानके नेत्र, जन्म-जन्मान्तरकी स्मृति हो आयी।
छूटा दुष्ट स्वभाव, सरलता, शुचिता सब ही तो आयी॥
संत-चरणमें लिपट गया वह करनेको निज पावन तन।
छूट गया भव-व्याधि विषमसे, हुआ रुचिर वह भी हरि-जन॥
जब हिंसक जड जन्तु क्षमासे हो सकते हैं साधु-सुजान।
हो सकते क्यों नहीं मनुज तब, माने जाते जो सज्ञान?
पढ़कर वृश्चिक और संतका यह नितान्त सुखकर संवाद।
अच्छा लगे मानिये, तज प्रतिहिंसा-वैर-विवाद-विषाद॥

[१५१२]

मालिकका दान

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

फैल गयी यह ख्याति देशमें, सिद्ध पुरुष हैं भक्त कबीर।
नर-नारी लाखोंने आकर घेरी उनकी वन्य-कुटीर॥
कोई कहता—'मन्त्र फूँककर मेरा रोग दूर कर दो'।
बाँझ पुत्रके लिये विलखती कहती—'संत! गोद भर दो'॥
कोई कहता—'इन आँखोंसे दैव-शक्ति कुछ दिखलाओ।
जगमें जग-निर्माताकी सत्ता प्रमाण कर समझाओ'॥
कातर हो कबीर कर जोड़े रोकर कहने लगे—'प्रभो!
बड़ी दया की थी पैदा कर नीच यवन-घर मुझे, विभो!
सोचा था, तव अतुल-कृपासे पास न आयेगा कोई।
सबकी आँख ओट, बस, वास करेंगे तुम-हम मिल दोई॥
पर मायावी! माया रचकर, समझा, मुझको ठगते हो।
दुनियाके लोगोंको यहाँ बुलाकर तुम क्या भगते हो'॥

कहने लगे क्रोध भारीसे भर नगरीके ब्राह्मण सब।
'पूरे चारों चरण हुए कलियुगके, पाप छा गया अब॥
चरण-धूलिके लिये जुलाहेकी सारी दुनिया मरती।
अब प्रतिकार नहीं होगा तो डूब जायगी सब धरती'॥
कर सबने षड्यन्त्र एक कुलटा स्त्रीको तैयार किया।
रुपयोंसे राजी कर उसको गुप-चुप सब सिखलाय दिया॥
कपड़े बुन कबीर लाये हैं उन्हें, बेचने बीच बजार।
पल्ला, पकड़ अचानक कुलटा, रोने लगी पुकार-पुकार॥
बोली—'पाजी, निठुर, छली ! अबतक मैंने रक्खा गोपन।
सरला अबलाको छलना क्या यही तुम्हारा साधूपन॥
साधू बनके बैठ गये वन बिना दोष तुम मुझको त्याग।
भूखी-नंगी फिरी, वदन सब काला पड़ा पेटकी आग॥
बोले कपट-कोपकर, ब्राह्मण, पास खड़े थे—'दुष्ट कबीर !
भण्ड तपस्वी ! धर्मनामसे धर्म डुबोया, बना फकीर॥
सुखसे बैठ सरल लोगोंकी आँखों झोंक रहा तू धूल।
अबला-दीना दानों-खातिर दर-दर फिरती, उठती हूल'॥
कबीर बोले—'दोषी हूँ मैं, मेरे साथ चलो घरपर—
घरमें अनाज रहते क्यों भूखों मरती, फिरती दर-दर ?'
दुष्टाको घर लाकर उसका विनयपूर्ण सत्कार किया।
बोले संत—'दीनकी कुटिया हरिने तुझको भेज दिया'॥
रोकर बोल उठी वह, मनमें उपजा भय-लज्जा-परिताप।
'मैंने पाप किया लालच-वश, होगा मरण साधुके शाप'॥
कहने लगे कबीर—'जननि ! मत डर, कुछ दोष नहीं तेरा।
तू निन्दा-अपमानरूप मस्तक-भूषण लायी मेरा'॥
दूर किया विकार मनका सब, उसको दिया ज्ञानका दान।
मधुर कण्ठमें भरा मनोहर उसके हरि-सुनाम-गुण-गान॥

'कबीर कपटी ढोंगी साधु'—फैली यह चर्चा सबमें।
मस्तक अवनत कर वह बोले—'हूँ यथार्थ नीचा सबमें॥
पाऊँ अगर किनारा, रक्खूँ कुछ भी तरणी-गर्व नहीं।
मेरे ऊपर अगर रहो तुम, सबके नीचे रहूँ सही'॥
राजाने मन-ही-मन संत-वचन सुननेका चाव किया।
दूत बुलाने आया, पर कबीरने अस्वीकार किया॥
बोले—'अपनी हीन दशामें सबसे दूर पड़ा रहता।
राज-सभा शोभित हो मुझसे, ऐसे भला कौन कहता'॥
कहा दूतने—'नहीं चलोगे तो राजा होंगे नाराज—
हमपर, उनकी इच्छा है दर्शनकी, यश सुनकर महाराज'॥
सभा बीच राजा थे बैठे, यथायोग सब मन्त्री-गण।
पहुँचे साथ लिये रमणीको, भक्त, सभामें उस ही क्षण॥
कोई हँसा, किसीने भौं टेढ़ी की (कइयोंने) मस्तक झुका लिये।
राजाने सोचा, 'निलज्ज है फिरता वेश्या साथ लिये'॥
नरपतिका इङ्गित पाकर प्रहरीने उनको दिया निकाल।
रमणी-साथ लिये विनम्र हो, चले कुटी कबीर तत्काल॥
ब्राह्मण खड़े हुए थे पथमें, कौतुकसे हँसते थे सब।
तीखे ताने सुना-सुना कर चिढ़ा रहे थे सब-के-सब॥
रमणी यह सब देख रो पड़ी, चरणों मस्तक टेक दिया।
बोली—'पाप-पङ्कसे मेरा क्यों तुमने उद्धार किया॥
क्यों इस अधमाको घर रखकर तुम सहते इतना अपमान'।
कबीर बोले—'जननी! तू तो है मेरे मालिकका दान'॥

(कवीन्द्र श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरके एक बंगला पदका भावानुवाद)

[१५१३]

पारस

(राग ईमन—एक ताल)

वृन्दावन यमुना-तट बैठे साधु सनातन।
जपते थे हरि-नाम प्रेमसे कर निश्चल मन॥

इसी समयमें एक दीन ब्राह्मणने आकर—
सादर किया प्रणाम भक्तको शीश झुकाकर ॥
पूछा उससे—'देव ! कहाँसे आप पधारे ?
कहिये अपना नाम, काम किस यहाँ सिधारे ?'
ब्राह्मण कहने लगा—'कहूँ क्या ? दर्शन पाया—
आज आपका बहुत दूरसे भटका आया ॥
बर्दवानके जिले मानकर गाँव हमारा।
'जीवन' मेरा नाम दीन, अति ही दुखियारा ॥
मुझ-सा और अभागा नहीं जगत्में कोई।
यज्ञ-यागमें बड़ी कीर्ति थी पहले, खोई ॥
जगह जरा-सी बची, हो रहा है नीचा सिर।
थोड़ी-सी है आय, नहीं चलता उससे घर ॥
उन्नतिकी इच्छासे शिवकी की उपासना।
वर चाहा मैंने, थी जैसी मनोकामना ॥
शेष रातको एक दिवस शिवने सपनेमें—
मुझसे कहा—'मिलेगा है जो माँगा तुमने ॥
जाओ यमुना-तीर, सनातन गोस्वामीके—
पकड़ो दोनों चरण भक्त-हित-अनुगामीके ॥
समझो उनको पिता-तुल्य, यह निश्चय मानो।
धनका सुगम उपाय हाथ उनके ही जानो ॥'

× × × ×

सुन ब्राह्मणकी बात, सोचने लगे सनातन।
'कुछ भी तो है नहीं इसे देनेको अब धन।
जो कुछ था सब छोड़-छाड़ वृन्दावन आया।
भीख माँगकर उदर-पूर्तिका काम चलाया ॥'
सहसा आयी याद, भक्तने कहा तमक कर—
'हाँ, हाँ, उस दिन नदी-तीरपर पारस पत्थर ॥

पड़ा मिला, तब वहीं धूलमें गाड़ दिया था।
आये किसके काम कभी, यह ख्याल किया था॥'
'जाओ ब्राह्मण! उसे निकालो अभी धूलसे।
दुःख तुम्हारा तुरत दूर हो विप्र! मूलसे॥'
ब्राह्मण आकर लगा हटाने बालू सत्वर।
ढूँढ़ निकाला मन चाहा वह पारस पत्थर॥
लोहेके ताबीज विप्रके पास रहे दो।
पारसके छूते ही सोना बने तुरत वो॥
अचरजमें पड़ ब्राह्मण तब बैठा बालूपर।
लगा सोचने मन-ही-मन वह विविध तर्क कर॥
यमुनाने कल्लोल-गानसे बातें कितनी—
'समझायीं चिन्तित ब्राह्मणको, चहिये जितनी॥
नदी-पार छा रही लालिमा थी नभ-मण्डल।
क्लान्त हुए दिवसान्त सूर्य पहुँचे अस्ताचल॥
तब ब्राह्मण गिर पड़ा भक्त-चरणोंमें जाकर।
पुलकित तन हो गया, कहा फिर अश्रु बहाकर॥
जिस धनसे हो धनी आप हे साधु सनातन!
नहीं समझते कुछ भी इस पारसको निज मन॥
उस धनका कुछ अंश दीजिये मुझे दयाकर'।
फेंका पारस यमुनामें, बस, इतना कहकर॥

(कवीन्द्र श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुरके एक बंगला पदका भावानुवाद)

[१५१४]

अतिथि-सेवा

(राग देश—तीन ताल)

धन्य कपोत-कपोती दंपति।
रही अतिथि-सेवा-हित जिन कैं पावन त्याग-सुरूपा संपति॥

****

देख दुखित हिम-पीड़ित ब्याधा पिंजरे परी कपोती सन्मति।
बोली—'नेकु न करौ दुःख तुम मोकूँ बद्ध देख, मेरे पति!
परीं पींजरे पूर्वकर्म-बस, ब्याधा बन्यौ निमित्त मूढ़मति।
सीत-छुधा तें व्यथित अतिथि यह पर्‍यौ आज दर पै दैवी गति॥
करौ अतिथि-सेवा याकी अब, लखि या में पूरन अग-जग-पति।'
सुनत कपोत चौंच भरि ल्यायौ अगिनि लुहार भवन तें द्रुत गति॥
पालव राखि जराई अगिनि ताप तें भई सीत की निर्वृति।
बिहँग महात्मा लखि ब्याधा कौं छुधा-ब्यथित पुनि भयौ दुखित अति॥
पर्‍यौ तुरंत अगिनि में जल-भुन बनन अहार ब्याध कौ सुकृति।
ब्याध दुखी हो खोल्यौ पिंजरौ, उड़ी कपोती पतिप्राना सति॥
परी तुरंत अगिनि, पति सँग भइ भसम, मिलि सुर-दुर्लभ सद्गति।
आयौ देव-बिमान सुसज्जित, चढ़े दिव्य धर देह पत्नि-पति॥

[१५१५]

अतिथि-सेवक-कपोतका बलिदान

(राग ईमन)

क्षुधा-क्षुब्ध अति व्याधको विहग दुखित पहचान।
अतिथि-सुखद उद्यत हुआ करने निज बलिदान॥
शुष्क पर्ण एकत्रकर स्वयं जलाकर आग।
कूद पड़ा पर-दुख-दुखी शुचि कपोत बड़भाग॥
देख कबूतरका विमल पर-हित शुचितम त्याग।
ब्याध-हृदय निर्मल हुआ, उठी धर्म-रति जाग॥
पुण्य-तपस्या-हेतु ले व्रत कठोर अति ब्याध।
चला महा-प्रस्थान-पथ निश्चित मन निर्बाध॥

[१५१६]

राजधर्माका विलक्षण मित्र-धर्म

[घोर कृतघ्नपर अहैतुकी प्रीति]

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

गौतम अति कृतघ्न पापी था, द्विज-शरीरमें असुर कठोर।
शरणद, धनद राजधर्माकी जिसने की हत्या अति घोर॥
विरूपाक्ष थे मित्र राजधर्माके राक्षस-अधिपति एक।
पकड़ मँगाया गौतमको, रख मित्र-धर्मकी सच्ची टेक॥
किया भयंकर पाप दुष्टने, कर विश्वास सरलका भङ्ग।
कटवाये शस्त्रोंसे उस पापी गौतमके सारे अङ्ग॥
नरभक्षी असुरोंने, दस्युगणोंने भी न किया स्वीकार।
महापातकी उस कृतघ्नके मांस-ग्रहणको किसी प्रकार॥
विरूपाक्षने किया मित्रका दाह, रचे सब शास्त्रविधान।
जली चितापर सुरभि-सुमुखसे झरे फेन-कण सुधा-समान॥
जीवित हुए राजधर्मा, उड़ गये तुरंत मित्रके पास।
विरूपाक्षने हृदय लगाया, भर मनमें अतिशय उल्लास॥
सुनते ही, दोनों मित्रोंसे मिलनेको आये सुरराज।
इन्द्र, पक्षिपति, राक्षसेश—तीनों सुखपूर्वक रहे विराज॥
सुरपतिसे बोले विहंगपति, कर प्रणाम, 'हे सुर-सम्राट!
गौतमको जीवित कर मेरे मनका दूर करें विभ्राट॥
गौतम मेरा मित्र, उसे मैं कभी नहीं सकता 'पर' मान।
सुधा वृष्टि कर देव! धर्ममय उसे दीजिये जीवन-दान॥'
विरूपाक्ष-सुरपतिने होकर चकित कहा—'हे पक्षी मित्र!
ऐसे नीच कृतघ्न जन्तुको मित्र मानना बड़ा विचित्र॥
छोड़ो इस अद्भुत आग्रहको, मानो मित्र! हमारी बात।
पचने दो उस महापातकीको, नरकोंमें ही दिन-रात॥

मानी नहीं बात धर्मात्मा वकने, उनका आग्रह मान।
सुधा-वृष्टिसे उसे जिलाया, हर्षित हुए इन्द्र धीमान॥
गौतम जीकर आत्म-ग्लानिसे हुआ शुद्ध, कर पश्चात्ताप।
हुआ धर्म-जीवन फिर उसका सत्य मित्रके पुण्य-प्रताप॥

[१५१७]

मोहकी महिमा

(राग पीलू—ताल कहरवा)

सुनकर सिंह-गर्जना हरिणीने डर, सरिमें भरी छलाँग।
गर्भ गिरा, मृगछौना निकला, हरिणी गयी देहको त्याग॥
दीन हरिण-शावकपर करुणा जगी भरत-मनमें अत्यन्त।
उठा लिया उसको गोदीमें, लाये निज आश्रममें संत॥
भोग-विरागी, तपोमूर्ति, जो थे प्रभु-पदमें ही अनुरक्त।
उदय हुई ममता मृग-शिशुमें, हुए परम उसमें आसक्त॥
साधन-साध्य भूल सब, उसके लालनमें ही हो संलग्न।
खोकर शान्ति-समत्व, हुए वे मृग-ममता-वारिधिमें मग्न॥
मिली उन्हें मृग-योनि, अन्तके उनके मन-मतिके अनुसार।
मोह-जालमें फँसे तुरत, खो बैठे प्राप्त मुक्ति-अधिकार॥

[१५१८]

नाम-गान-परायण श्रीनारद

(राग मालकोश—ताल त्रिताल)

गाते भगवन्नाम निरन्तर प्रेम-रस-सुधा-सागर-मग्न।
तन-मनकी-स्मृति नहीं तनिक-सी, वृत्ति नित्य प्रभु-पद-संलग्न॥
सहज बजाते वीणा सुस्वर मधुर, लिये करमें करताल।
हो उन्मत्त नृत्य करते, मुनि नारद रहते नित्य निहाल॥

[१५१९]

(राग देवगिरी—ताल कहरवा)

नित्य निरन्तर करते रहते सहज मधुर प्रभुका गुण-गान।
नित्य छेड़ते रहते नव-नव मधुमय नाम-गानकी तान॥
निर्मल परम ज्ञानकी मूरति, निर्मल प्रेम रत्नकी खान।
प्रेमभक्ति पथके सर्वोपरि मुनि नारद आचार्य महान॥

[१५२०]

(राग भैरव—ताल धमार)

भक्त-कीर्तनाचार्य-मुकुटमणि करते सदा नाम-गुण-गान।
अखिल विश्वमें विचरण कर, वे वितरण करते नाम महान॥
लगे नाचने भाव-मग्न हो, छेड़ी मधुर मनोहर तान।
आवाहित-से तुरत आ गये वीणा सुनते ही भगवान॥

[१५२१]

ध्रुवको माताका उपदेश

(राग विभास—तीन ताल)

दुःख-नाश, सुख लाभ, राज-पद, सर्वोत्तम ब्रह्मा-पद तात।
भौम, दिव्य आनन्द, मोक्ष-पद शुचि मुमुक्षु-वाञ्छित विख्यात॥
श्रीहरि-पद-पङ्कज-सेवासे मिलते दुर्लभ सभी पदार्थ।
इसके बिना न कभी किसीको मिलती वत्स! सुवस्तु यथार्थ॥
अतः कमल-दल-लोचन हरिको भजो, अनन्य करो विश्वास।
परम भृत्य-वत्सल निश्चय ही पूर्ण करेंगे मनकी आस॥

[१५२२]

अग्निमें बैठे हुए प्रह्लादकी उक्ति

(राग देश—तीन ताल)

राम-नाम जपनेवालोंको नहीं कहीं कुछ रहता डर।
सर्वरोगनाशक औषध है एकमात्र यह परम मधुर॥

देखो मेरी ओर पिताजी! मेरे सभी सुरक्षित अङ्ग।
पावक मुझे दे रहा मानो आज सलिल शीतलका सङ्ग॥

[१५२३]

महर्षि वसिष्ठ

(राग देश)

त्याग-तपस्या-क्षमामय साधु-चरित्र पुनीत।
कर्म-कुशल, वक्ता कुशल, अति विद्वान् विनीत॥
परम भक्त, ज्ञानी परम, शुचि ब्रह्मज्ञ-वरिष्ठ।
रघुकुल गुरु, श्रीराम-गुरु मृदुल महर्षि वसिष्ठ॥

[१५२४]

विरक्त भक्त श्रीशुकदेव

(राग भिन्नषडज—ताल मूल)

भेदरहित सम, ब्रह्मद्रष्टा, ब्रह्मरूप वर, परम विरक्त।
परम-तत्त्व-परिनिष्ठित-प्रज्ञा, दृश्य-प्रपञ्च सहज परित्यक्त॥
भगवत्-लीला-रसिक, भक्तवर, निर्मल भगवद्भावासक्त।
मुनि शुकदेव भागवत-वक्ता ज्ञान प्रेम मूर्त अभिव्यक्त॥

[१५२५]

द्वन्द्वातीत जडभरत

(राग भैरवी—ताल झूमरा)

शीत-उष्ण, सुख-दुःख, शुभाशुभ, जीवन-मरण, मान-अपमान।
स्तुति-निन्दा, प्रिय-अप्रिय द्वन्द्वोंमें समस्त नित समतावान॥
राग-द्वेष-कामके त्यागी, विगत मोह-ममता-अभिमान।
परम शान्त, जडवत् आचारी, ज्ञान-मूर्ति जडभरत महान॥

[१५२६]

शरभङ्ग मुनिका ब्रह्मधाम-प्रयाण

(राग काफी—ताल दीपचंदी)

विधिवत् अग्नि-स्थापना करके किया प्रज्वलित उसे अशेष।
घृतकी आहुति मन्त्रसहित दे, मुनिने उसमें किया प्रवेश॥

जला सभी कुछ, अग्नितुल्य धर तेजस्वी कुमारका रूप।
अग्नि-राशिसे ऊपर उठकर शोभा पाने लगे अनूप॥
रामभद्र सीता-लक्ष्मण-सह रहे देखते श्रीभगवान्।
सुर-मुनि-लोक लाँघ पहुँचे मुनि चिन्मय ब्रह्मधाम द्युतिमान्॥

[१५२७]

गुरु द्रोण और कौरव-पाण्डव बालक

(राग माँड़)

खेलत गुल्ली कुएँ गिरी, सकै न ताहि निकार।
रहे उदास निरास ह्वै कौरव-पांडुकुमार॥
कुँवरन कौ धिक्कार दै बोले गुरु गंभीर—
'निकरत नहिं यह नैक-सी गुल्ली तुम्ह ते वीर?'
फिर, गुरु ने निज मुद्रिका दई कूप में डारि।
बोले, देखौ दुहुन कौं अबहीं देउँ निकारि॥
सींक-बान ते बेधि दोउ जोरि सींक ते सींक।
दई निकारि तुरंत ही गुरु गुल्ली-अँगुरीक॥

[१५२८]

अनोखी गुरु-दक्षिणा

(राग कोशिया—ताल दादरा)

बान-वेध-कौसल बिलोकि एकलब्य कौ जु
बढ्यौ है अमर्ष अति अर्जुन कुमार के।
'तेरे सम होयगौ न कोऊ सम सिस्यन में
प्रभु तो कही यों' कही गुरु सौं गुहार के॥
ता कर करन प्रिय आये एकलब्य पास
पर्‌यौ पाद-पदुमन सौं गुरु कौं निहार के।
बोल्यौ अति आतुर ह्वै 'दास कौं सनाथ कियौ
कैसे कृपानाथ! आजु इतै पगु धार के'॥

बोले गुरु द्रौन 'बत्स ! सीखी बान बिद्या पै तैं
दीन्हीं गुरु-दच्छिना न आजु लौं हमारी है'।
याही काज आयौं सुनि बोल्यौ 'कहा देहुँ नाथ !
मो पै कहा आपुनो ये देह हू तिहारी है'॥
'दीजै निज दच्छिन अँगूठा भिल्लराज ! आज
यहै दिब्य दच्छिना हमन हिय धारी है'।
दीन्हीं सो सहर्ष काटि, धन्य ! धन्य !
एकलव्य, तेरी गुरु-भक्ति की सदा ही बलिहारी है॥

[१५२९]

द्रौपदीकी यज्ञसे उत्पत्ति

(राग मालकोश—ताल मूल)

विप्र याजके द्वारा सुरसरि-तटपर हुआ यज्ञ सम्पन्न।
द्रुपद नृपतिका, उसी यज्ञसे हुए बहन-भाई उत्पन्न॥
दिव्य रूप, गुण, धनुष, खड्ग, धन, कान्ति, कवच, कुण्डलसे युक्त।
धृष्टद्युम्न सुकुमार, कुमारी रमणीरत्न शील-संयुक्त॥
शुचि सर्वाङ्ग-सुन्दरी अतुलित सर्वाभरणवती अभिराम।
तनसे कमल-गन्ध फैलाती दूर-दूरतक मधुर ललाम॥
कृष्णवर्ण मनहारी-कृष्णा, पाञ्चाली, द्रौपदी सुनाम।
देख सभी पाञ्चाल याजको करने लगे सभक्ति प्रणाम॥

[१५३०]

अर्जुनका विशुद्ध आचरण और उर्वशीका शापरूप वरदान

(राग चन्द्रकोश—ताल कहरवा)

सुर-अप्सरा उर्वशीने आ माँगा अर्जुनसे रति-दान।
सहम गये सुनते ही, आँखें मुँदीं, हुए मानो बेभान॥
बोले—'तुम हो माता मेरी कुन्ती-माद्री-शची समान।
पूज्यभावसे देखा था मैंने निज-कुलकी जननी जान॥'

शाप दिया हो क्षुब्ध मनोभव-पीड़ित उसने अप्रिय मान।
नर्तक, षण्ड बनोगे तुम जा अबलाओंमें खो सम्मान॥
एक वर्ष अज्ञातवासमें हुआ शापका शुभ भुगतान।
सहज सुअवसर मिला उन्हें छिपनेका, बना शाप वरदान॥

[१५३१]

अन्न-दान न करनेसे दुर्गति

(राग ललित—ताल मूल)

राजा श्वेत हुए अति वैभवशाली तपोनिष्ठ मतिमान।
पर न किया था कभी उन्होंने जीवनमें भोजनका दान॥
क्षुधा भयानकसे पीड़ित वे आते प्रतिदिन चढ़े विमान।
धरतीपर, खाते स्वमांस अपने ही शवका घृणित महान॥

[१५३२]

भक्तिकी महिमा

(राग बिहाग—ताल त्रिताल)

भक्ति की महिमा अतुल अपार।
बारांगना-प्रीति तें रीझे, हरि साँचे रिझवार॥
अब लौं अबुध रिझावत भोगी लोगनि रही गँवार।
सपनें निरखि स्याम-सुंदरता बिसरी सब संसार॥
प्रेम-मगन सो भई बावरी, सजि सोरह सिंगार।
कर इकतार झाँझ लै निकसी, उमग्यौ रस-भंडार॥
नाचि-नाचि गावत जमुना तट प्रिय-गुन-नाम उदार।
अपलक नैन, भूलि अग-जग, मनमोहन रही निहार॥
प्रगटे स्याम मुदित मन निरखत प्रीति-रीति सुख-सार।
लगे बहावन भरि मुरली मग मधुर अमिय-रस-धार॥

[१५३३]

यमराजका दूतोंके प्रति आदेश

(राग बड़ाड़ी—ताल त्रिताल)

जिनका चित्त लगा श्रीहरिमें, हरिके शरणागत एकान्त।
सदा पूजते रहते हैं जो हरिको यहाँ भागवत शान्त॥
अथवा उठते और बैठते, सोते-चलते जो शुभ-धाम।
गिरते-पड़ते और खड़े होते जो लेते हरिका नाम॥
करते संकीर्तन जिस स्थलमें ऐसे जो मानव बड़भाग।
मत जाना उनके समीप तुम, उन्हें दूरसे देना त्याग॥

[१५३४]

पतिप्राणा सतियोंकी जय

(तर्ज लावनी—ताल कहरवा)

आत्मसमर्पण आत्मविसर्जन कर पतिमें पति-हित निर्भय।
'पति-सुख ही है नित्य परम सुख', रखती सदा यही निश्चय॥
तन-मनसे पति-सेवन करती, सदा मनाती पतिकी जय।
वन्दनीय सौभाग्यवती उन पतिप्राणा सतियोंकी जय॥

[१५३५]

वैष्णवाग्रय श्रीरघुनाथदास गोस्वामी

(राग बिहाग—तीन ताल)

करके त्याग अन्न-जल पूरा, लेते थोड़ा मट्ठा माप।
एक सहस्र दंडवत करते, करते लक्ष नामका जाप॥
प्रतिदिन करते दो सहस्र वैष्णव-जनको अति नम्र प्रणाम।
करते मानस-सेवन राधा-माधवका दिन-रात ललाम॥
एक प्रहर करते प्रतिदिन श्रीमहाप्रभुका मधु लीला-गान।
तीनों संध्या करते राधाकुण्ड-सलिलमें पावन स्नान॥
व्रजवासी वैष्णवको करते सदा समुद आलिङ्गन-दान।
साढ़े सात प्रहर करते यों भक्ति-प्रेम-साधन रस-खान॥

चार घड़ी सोना केवल, पर उसमें भी होता व्यवधान।
श्रीरघुनाथदास गोस्वामी वैष्णवाग्र्य आदर्श महान॥

× × × ×

कभी सुनो मत लोक-वार्ता, कभी करो मत, जान असार।
कभी न अच्छा खाओ अच्छा पहनो, तजो स्वाद-शृङ्गार॥
स्वयं अमानी मानद होकर कृष्ण-नाम जप-गान करो।
मानस-व्रजमें लाल लाडिलीका नित पूजन-ध्यान करो॥

× × × ×

यों मत पागल बनो, चित्त स्थिर कर जाओ घर।
क्रम-क्रमसे ही तरता है मानव भव-सागर॥
उचित नहीं करना मर्कट-वैराग्य दिखाकर।
अनासक्त हो भोगो युक्त विषय तुम जाकर॥
भीतरसे निष्ठा करो, बाहर जग-व्यवहार।
तुरत तुम्हारा करेंगे, कृष्ण परम उद्धार॥

[१५३६]

गोमाताके अङ्ग-अङ्गमें देवताओंका निवास

(राग भूपाली—तीन ताल)

हरि-हर विधि, शशि-सूर्य, इन्द्र, वसु, साध्य, प्रजापति, वेद महान्।
गिरा, गिरिसुता, गङ्गा, लक्ष्मी, ज्येष्ठा, कार्तिकेय भगवान्॥
ऋषि-मुनि, ग्रह-नक्षत्र, तीर्थ, यम, विश्वेदेव, पितर, गन्धर्व।
गोमाताके अङ्ग-अङ्गमें रहे विराज देवता सर्व॥

[१५३७]

गोवध सर्वथा बंद हो

(राग माँड़)

गो-हत्या होगी नहीं जबतक पूरी बंद।
तबतक होगा देशमें कहीं न सुख-स्वच्छन्द॥

****

असुर भाव नित बढ़ेगा, होगा नहीं विकास।
होता ही नित रहेगा दुःखद घोर विनाश॥
सबको प्रभु शुभ बुद्धि दें, हरें मोह-अज्ञान।
एक स्वरसे सभी लें गोवध-बंदी मान॥
करे घोषणा शुचि सुखद सत्वर यह सरकार।
पाप मिटे, फैले सुयश, हो ध्वनि जय-जयकार॥

[१५३८]

गोमाताके लिये प्रार्थना

(राग देशकार—तीन ताल)

जिस गोमाताके रक्षण-हित ग्रहण किया प्रभुने नर-रूप।
गोप बने, गो-रजमें खेले गो-वत्सोंके साथ अनूप॥
गोपालनका व्रत धारण कर त्रिभुवन-नाथ बने गोपाल।
वन-वन गाय चरायी, लेकर कर लकुटी बन नँदके लाल॥
वही गाय है आज कट रही उसी पुण्य-भारतमें आज।
दूध-दही-घृतके अभावमें दुखी हो रहा सभी समाज॥
प्रभु! सबको सुबुद्धि दो, सबका हरो तुरंत घोर अज्ञान।
गो अवध्य हो, मिट जायें सब पाप-ताप-दुर्भाग्य महान॥

[१५३९]

(राग बिहागरा—तीन ताल)

भगवन्! ऐसी सन्मति दो, हो जिससे गो-हत्या सब बंद।
पुण्यभूमिका महापाप यह मिटे सर्वथा, आनँदकंद!
फूले-फले पुनः भारतमें गो-धन सुखपूर्वक स्वच्छन्द।
बहे दूध-दधि-घीकी सरिता, बढ़े प्रजाजनमें आनन्द॥

[१५४०]

गोरक्षाकी महिमा

(राग पीलू—ताल कहरवा)

गौ भारतका प्राण है, गौको लेहु उबार।
गौ न बची तो जान लो, है भारत-संहार॥

× × × ×

गो-सेवासे सिद्ध हों सहज चतुर्पुरुषार्थ।
दुःख-नाश हों, सुख मिले, सधे चरम परमार्थ॥

[१५४१]

बालककी दैनिक प्रार्थना

(तर्ज गजल—ताल धुमाली)

हे भगवान! हे भगवान। हम सब बालक हैं अज्ञान॥
तुम हो माता-पिता हमारे। हर लो सबके पातक सारे॥
करें सभीसे सदा प्रेम हम। हरें सभीका दुःख-दोष हम॥
सबका भला सदा ही चाहें। दूर करें दुखियोंकी आहें॥
मात-पिता-गुरु-आज्ञा मानें। उनको परमेश्वर-सम जानें॥
सेवा करें सदा तन-मनसे। धनसे, जीवनसे, यौवनसे॥
गुस्सेको आते ही मारें। क्षमा, नम्रता मनमें धारें॥
करें किसीसे नहीं लड़ाई। करें किसीकी नहीं बुराई॥
नहीं किसीको गाली देवें। कोई दे तो हम सह लेवें॥
मारें-पीटें नहीं किसीको। कभी सतावें नहीं किसीको॥
झूठ न बोलें, चीज न लेवें। सदा सत्यको मनसे सेवें॥
राम-नामका जाप करें नित। रामायणका पाठ करें नित॥
गीताजीके श्लोक पढ़ें नित। गुरुओंके हम चरण पड़ें नित॥
पढ़े-पढ़ावें, खेले-खावें। ईश-कृपासे मौज उड़ावें॥
दो प्रभु! हमको यह वरदान। हे भगवान! हे भगवान!!

[१५४२]

बालकका मनोरथ

(तर्ज गजल—ताल कहरवा)

मैया ! मैं अब खूब पढ़ूँगा। कभी किसीसे नहीं लड़ूँगा ॥
पढ़-लिख होऊँगा होशियार। सभी करेंगे मुझसे प्यार ॥
पैसे खूब कमाऊँगा मैं। बढ़िया घर बनवाऊँगा मैं ॥
भाई-बहिन प्राणसे प्यारे। सुखी रहेंगे मुझसे सारे ॥
उनसे कुछ न छिपाऊँगा मैं। सबको हृदय लगाऊँगा मैं ॥
मेरा सब कुछ होगा उनका। अलग नहीं रक्खूँगा तिनका ॥
सबको मैं अपना समझूँगा। धनमें हिस्सा सबको दूँगा ॥
मेरी बाड़ीके फल-मूल। सुन्दर और सुगन्धित फूल ॥
सबके वे आयेंगे काम। सबको दूँगा मैं आराम ॥
पर-पीड़ामें मैं रोऊँगा। पर-सुख देख सुखी होऊँगा ॥
अपना सुख मैं सबको देकर। सुखी बनूँगा पर-दुख लेकर ॥
भूखोंको दूँगा निज-भोजन। सुखसे मैं कर लूँगा अनशन ॥
निज-पर-भेद मिटाऊँगा मैं। यों परमेश रिझाऊँगा मैं ॥
कोख तुम्हारी सफल करूँगा। सुखसे जीकर सुखी मरूँगा ॥

[१५४३]

माँका दुलार

(राग वसन्त—तीनताल)

'मैया ! कितने अपराध किये मैंने।'
'बेटा ! कुछ भी तो नहीं किया तैंने ॥'
'मैया ! मैं तो अति ही दुराचार हूँ।
तेरे यश-विटपके लिये कुठार हूँ ॥'
'बेटा ! तू क्यों इस कुविचारमें है।
माँका यश तो वत्सके प्यारमें है ॥'

'माँ ! मैंने तेरी बातोंको टाला ।
चावसे अनेक पातकोंको पाला ॥'
'बेटा ! मैंने उन सबको धो डाला ।
तुझे पहना दी यश-सुमनकी माला ॥'
'माँ ! यह यश तो पुण्यका बलिदान है ।'
'नहीं बेटा ! यह माँका वरदान है ॥'

[१५४४]

समर्पण

(राग देश)

साधन-हीन, मलीन-मन, दीन, विषय-रस-लीन ।
हम हैं अति दयनीय हरि ! तू अति कृपा-प्रवीन ॥
भक्त-चरित दुर्लभ परम, दुर्लभ उनका गान ।
तूने ही अवसर दिया, करके कृपा महान ॥
तेरे भक्तोंके चरित पावन परम उदार ।
तेरे सुन्दर सुयशका करते शुभ विस्तार ॥
तब भक्तोंके चरितकी कीरति यह कमनीय ।
तुझे समर्पित कर रहे प्रियतम वस्तु त्वदीय ॥*

[१५४५]

(राग ईमन)

जा प्रभु के पद-पदुम की प्रभा सकल संसार ।
तिनहिं निवेदन करहुँ किमि यह नैवेद्य असार ? †

* 'कल्याण'-'भक्त-चरिताङ्क'का समर्पण-निवेदन ।
† 'नैवेद्य' पुस्तकका समर्पण ।

[१५४६]

धर्म-मार्गसे डिगानेकी चेष्टाका कुपरिणाम

(राग भूपाली—तीन ताल)

पाप-वासना भर मनमें जो जाती किन्हीं महत्‌के पास।
उन्हें डिगाने धर्म-मार्गसे करती मिथ्या नीच प्रयास॥
वह राक्षसी शूर्पणखा-सी करती अपना आप विनाश।
होती विकृत मुखाकृति, कटते नाक-कान, होता उपहास॥

[१५४७]

चीन-दमनकी साधना और सिद्धि

(राग पीलू—ताल कहरवा)

एक ब्रह्म है व्यापक सबमें, सभी ब्रह्मका है विस्तार।
विश्व-चराचरका है केवल सच्चिन्मय वह ही आधार॥
शत्रु-मित्र, पर-बन्धु न कोई, नहीं कहीं भी कुछ भी अन्य।
एक सर्वगत लीलामयकी लीला ही चल रही अनन्य॥
लीलामें विभिन्न रस होते, अभिनय होते विविध विचित्र।
रङ्गमञ्चपर समुद खेलते, बनकर अभिनेता अरि-मित्र॥
इसी तरह है आज खेलना चीन-शत्रुसे हमको खेल।
उसे भगाना है भारतकी भव्य भूमिसे बाहर ठेल॥
कर विश्वासघात वह आया, दस्यु भयानकका धर वेश।
उसके इस दुःसाहस, दुष्टवृत्तिका है कर देना शेष॥
दाँत न खट्टे करने हैं, करना है विष-दन्तोंका भङ्ग।
जिससे हो जाये विष-वर्जित निर्मल उसके सारे अङ्ग॥
हो उत्पन्न सुबुद्धि, जगे फिर उसके उरमें पश्चात्ताप।
धर्म-ईशको माने, छोड़े नास्तिकताका सारा पाप॥
अतः लगाकर तन-मन-धन सब, लेकर प्रभुका ही आश्रय।
रखकर साथ धर्म-ईश्वरको, जूझें हम रणमें निर्भय॥

सब कर्मोंका करें निरन्तर हम केवल प्रभुमें संन्यास।
करें युद्ध, तज आशा-ममता, करके काम-ज्वरका नाश॥
ईश-प्रार्थना, देवाराधन हो, रखकर श्रद्धा-विश्वास।
पूर्ण विजय हो भारतकी, हो पाप-बुद्धिका सहज विनाश॥
बल-विज्ञानयुक्त देशोंके प्रमुखोंमें उपजे सद्बुद्धि।
सबमें हो सद्भाव, सभीमें हो हितयुक्त प्रेमकी वृद्धि॥
सभी सभीको सुख पहुँचावें, सबका सभी करें सम्मान।
सबके ही शुचितम कर्मोंसे सदा सुपूजित हों भगवान॥
हरि सेवामय शुद्ध कर्म यह जीवन सफल करे निष्काम।
मानवताका मिले परम फल निर्मल सच्चिन्मय परधाम॥*

[१५४८]

कल्याण-भावना

(राग ईमन)

ज्ञान-योग-वैराग्य, प्रेम-रति, सकल कामना-रहित सुकर्म।
सांख्य-त्याग-संन्यास, वर्ण-आश्रम, शुचि मानवके सब धर्म॥
इह-परलोक, पिता-सुत, पति-पत्नी, गुरु-शिष्य धर्म-आचार।
गो-ब्राह्मण-अबला-अनाथ-हित प्राणार्पण मङ्गल व्यापार॥
सभी दिशाओंमें नित देती जन-जनको उज्ज्वलतम ज्ञान।
हरती दुःख-शोक-भय-तम-सब, करती सुख-कल्याण-विधान॥
पात्रापात्र भेद कर विस्मृत, करती सदा सभीका त्राण।
सभी देश, सब काल, सभीका करती सदा परम कल्याण॥

---

* यह पद चीनद्वारा देशपर हुए आक्रमणके समय देशवासियोंके प्रबोधके लिये रचित हुआ था।

[१५४९]

दीपमालिकाका वन्दन

(राग बिहाग)

श्रीराधा-माधव हम सबका करें सदा सब विधि कल्याण।
दें अभ्युदय, नित्य निःश्रेयस, करें सभी विघ्नोंसे त्राण॥
मन निर्मल, मति अति विशुद्ध हो, हो पवित्र जीवन-निर्माण।
रहें सदा जीवनमें पावन केवल प्रभु रसमय रममाण॥
करें कृपा कर दीपमालिकाका विनम्र वन्दन स्वीकार।
दें अशीष सद्भाव, परम शुचिताका हो जिससे संचार॥
चाहें-करें सदा सबका ही यथाशक्ति हम हित सत्कार।
प्रभुकी कृपा अहैतुकसे हो सबमें सात्त्विक सुख-विस्तार॥

[१५५०]

(राग भूपकल्याण—तीन ताल)

दीप-ज्योति जाग्रत् कर दे शुभ दिव्य भागवत-ज्योति अपार।
नित्य दिव्य सुख-शान्ति, प्रीति हरि-पद हों जीवनके आधार॥
मङ्गलमय मुरलीधर कर लें निज जन हमको अङ्गीकार।
विनय-भरा वन्दन-अभिवादन आप करें मेरा स्वीकार॥

[१५५१]

शुभाशंसा

(राग हिंदोल—तीन ताल)

पुत्रि! समर्पित जीवन अपना रखना नित पतिके अनुकूल।
सास-ससुरके चरणोंमें नित नतमस्तक रहना सुख-मूल॥
पति-भ्राताओंकी भार्याओंके प्रति रखना निश्छल प्रेम।
ननदोंको सम्मानित करना, नित्य निभाना योग-क्षेम॥
गुरुजनके प्रति गौरव रखना, बन्धु-बान्धवोंके प्रति मान।
क्षमाभाव अपराधीपर भी रखना, मत करना अपमान॥

अतिशय भोग-साधनोंका भी तनिक न करना मन अभिमान।
विनय-विनम्र-भावयुत वाणी मधुर बोलना सुधा-समान॥
सेवक और सेविका-गणको करना नित सौहार्द प्रदान।
जीवमात्रका नित हित करना, सबमें देख भरे भगवान॥
मितव्ययी होना, विलासिता तजना, तजना झूठी शान।
पैसे प्रचुर बचाकर करना दीनोंको नित सात्त्विक दान॥
तन-मन-वाणीसे पति-सेवा-रत रहना, करना न विवाद।
सुखसे रहना नित्य—पिताकी यही सीख, शुभ आशीर्वाद॥

[१५५२]

(राग ईमन)

पावन सुख-सम्पन्नता, स्वस्थ देह-मन-बुद्धि।
दम्पतिमें शुचि प्रेम हो, निर्मल बढ़े समृद्धि॥
सेवा-संयम-सुहृदता-सत्य, शुद्ध आचार।
कुल-यश-बर्द्धक, त्यागमय, हों विनम्र व्यवहार॥
सकल चराचर विश्वको प्रभुका समझ स्वरूप।
सबके सुख-हित नित्य ही शुचितम कर्म अनूप॥
पायें प्रिय······जीवन उच्च महान।
ऐसी नित्य करें कृपा मङ्गलमय भगवान॥

[१५५३]

(राग देश)

दीर्घ आयु, आरोग्य, सुसंतति, शुभ सम्पत्ति, धर्मसे युक्त।
मङ्गलमय जीवन हो नव-दम्पतिका सदा प्रेम-संयुक्त॥
शुभ विचार, आचार शुद्ध हों, हों पवित्र मानसके भाव।
सबके सुख, सबके हितका हो नित्य हृदयमें अतिशय चाव॥
हो आदर्श चरित्र चारु, चिन्ता-विरहित हो चित्त उदार।
शुभ कर्मोंसे कीर्ति-लाभ हो, कुल-गौरवका हो विस्तार॥

सौमनस्य, सौजन्य, सौख्य, सौशील्य सौरभित सद्दृश-सुमन ।
जीवमात्रका प्रिय-हितकर हो विकसित, नित्य मधुर जीवन ॥
जीवनका उद्देश्य एक हो—प्रभु-पद-पङ्कज-प्रीति अनन्य ।
प्रभु-सेवामें सहज समर्पित पावन तन-मन-धन हों धन्य ॥

[१५५४]

सदाचार-सुविचार हों, रहें स्वस्थ मन-देह ।
करें सभी जन सर्वदा दोनोंसे शुचि स्नेह ॥
सुख-वैभव-संतति-सुयश हो पर्याप्त पवित्र ।
शुभ विद्या, शुभ मति, सुरुचि रहे सदा सर्वत्र ॥
सबके सुख-हितका बसे मनमें शुचितम काम ।
प्रभु-सेवा-हित बने नित जन-सेवा अभिराम ॥
हो आदर्श चरित्र अति, चिन्ताशून्य, उदार ।
कभी न मनमें हों उदय द्वेष, शोक, कुविचार ॥
जीवनमें संयम रहे, त्यागपूर्ण हो प्रेम ।
वहन नित्य करते रहें माधव योग-क्षेम ॥
संरक्षक जो धर्मके, जो दुष्कृतके काल ।
वे समर्थ करते रहें हरि सर्वदा सँभाल ॥

[१५५५]

मङ्गलमय जीवन रहे सुमति-सुरुचिसे युक्त ।
सुख, शुभ विद्या, शुचि सुयश, सुसम्पति संयुक्त ॥
सबके हित-सुखका सदा रहे हृदयमें चाव ।
जन-सेवामें रहे नित प्रभु-सेवाका भाव ॥
हो आदर्श चरित्र अति, चिन्ता रहित, उदार ।
कभी न मनमें हों उदय द्वेष, शोक, कुविचार ॥
जीवनमें संयम रहे, प्रभु-पदमें हो प्रीति ।
सदा विकासमुखी रहे नीति, प्रतीति सुरीति ॥

प्रभुके कृपा-कटाक्षसे मिले सफलता-सिद्धि।
होती रहे अबाध नित शुभ भावोंकी वृद्धि॥
केलि करें कमनीय जो कलकालिन्दी-कूल।
वे राधामाधव सदा रहें वरद अनुकूल॥
लज्जित जिनकी ज्योतिसे कोटि-कोटि शरदिन्दु।
बने रहें उनके सदा प्रियजन········॥

[१५५६]

(राग देश)

सात्त्विक सुख-समृद्धि, संतति, शुभ धर्म-समन्वित अर्थ अपार।
नित्य निरामय, दीर्घ आयु हो, प्रीति परस्पर परम उदार॥
शुभ विचार, आचार शुद्ध हों हों पवित्र मानसके भाव।
सबके सुख, सबके हितका हो नित्य हृदयमें अतिशय चाव॥
हो आदर्श चरित्र चारु, जन-सेवा हो जीवनका सार।
शुभ कर्मोंसे कीर्ति-लाभ हो, कुल-गौरवका हो विस्तार॥
जीवनका उद्देश्य एक हो—प्रभु-पद-पङ्कज-प्रीति अनन्य।
प्रभु-सेवामें सहज समर्पित हो, तब तन-मन-धन हो धन्य॥*

[१५५७]

(धुन बरवा—ताल कहरवा)

श्वेतद्वीपमें जा नारदने चुनकर दो-सौ हरिके नाम।
दर्शन-हेतु गुह्य उन नामोंसे की स्तुति अत्यन्त ललाम॥
हो प्रसन्न, हो गये प्रकट प्रभु विश्वरूप विस्मयकर धार।
नील-पीत-स्वर्णाभ-हरित-कज्जल-सम उज्ज्वल वर्ण अपार॥
नेत्र-कर्ण-मस्तक-कर-पद-कटि-उदर आदि अगणित अभिराम।
लिये करोंमें कुशा, कमण्डलु, दण्ड, रत्न, मणि शोभाधाम॥

---

* सं० १५६४ से १५७१ तकके पद प्रेमीजनोंके पुत्र-पुत्रियोंके विवाहके अवसरपर आशीर्वादके रूपमें रचित हुए हैं।

भक्ति-प्रणत मनसे नारदने प्रभु-चरणोंमें किया प्रणाम।
मुदित-चित्त प्रभुने दुर्लभ दे वर कर दिये पूर्ण सब काम॥

[१५५८]

(राग नट— ताल धमार)

दीपावलिकी दीपज्योतिसे हो भारत जाज्वल्य।
हो भारतके कण्ठ-सुशोभित शुचि-सद्गुणकी माल्य॥
सदाचार छा जाय, नष्ट हों सारे असदाचार।
हिंसा-द्वेष समूल मिटे, हो शुद्ध प्रेमविस्तार॥
सबका हित हो, सर्वोदय हो, हों सब व्याधि-विहीन।
सभी सभीके सेवा-सुख-सम्पादनमें हों लीन॥
सबमें सबही देखें निज आत्माको या भगवान।
सुखी रहें, हम समझें मङ्गलमय प्रभुका सुविधान॥

[१५५९]

(राग देश—तीन ताल)

तुमने ही प्रभु! आत्मरूपसे इन देहोंमें किया प्रवेश।
इसीलिये ये पूज्य सभी हैं, नाम-रूप विभिन्न धर वेश॥
तुम इनमें सुस्थिर हो तबतक ये पाते सबसे सम्मान।
जहाँ विलग तुम हुए, जलाने तन ले जाते तुरत श्मशान॥
तुम ही घर, घरवाले तुम ही, तुम्हीं सत्य प्रियतम आत्मीय।
अर्चनीय हो तुम्हीं एक बस वन्दनीय, अविरत वरणीय॥
अन्न तुम्हारी वस्तु, कर रहीं पाक तुम्हारी हम घनश्याम।
एक तुम्हारे लिये तुम्हारे ग्रहणयोग्य यह हो अभिराम॥
तुम्हीं ग्रहण कर, आस्वादन कर इसे बना दो महाप्रसाद।
सेवा-शक्ति बढ़े, मिट जायें सारे अन्तराय-अवसाद॥

[१५६०]

(राग पीलू—ताल धुन)

डरपो मत प्रभुजीको ध्यान धरो, डरपो मत ॥
पापकर्मसे दूर रहो थे, पुन्य कर्ममें चित ल्यावो ।
परमेश्वरको रूप समझकर, पतिकी सेवा खूब करो ॥
तन मन धन सब अर्पण करद्यो, पतिकी सेवाके खातर ।
एकमात्र पतिकी सेवासे भवसागरसे तिर ज्यावो ॥
पर पुरसाँनै उमर देखकर, पिता पुत्र भाई समझो ।
पर पुरसाँकी प्रीति सेती, नरक भोग दुख हो भारी ॥
जो नारी निष्कामभावसे, पतिसेवामें मन ल्यावै ।
उनके दुःख कदे नहीं व्यापै चिर सुहाग सुख भोग करै ॥

[१५६१]

(राग सारंग—ताल धुन)

आवो आवोजी सगाजी म्हारे द्वार, हरिका गुण गावोजी ।
करल्यो करल्योजी सदा सत्संग, कुसंग विसरावोजी ॥
प्रभुके चरणाँमें चित्त ल्याय, मस्त होय ज्यावोजी ।
थे तो सकल कामना छोड़, हरिमें मन ल्यावोजी ॥
सब जगने झूठो जाण, मोहने छोडोजी ।
मैं औ मेरोपण त्याग, मायाको बंध तोडोजी ॥
हरिकी शरणागत होय, नामको जप करल्योजी ।
श्रीनारायणको ध्यान, हृदयमें धरल्योजी ॥
इस कलियुगसे जुग माँय और गति नांहीजी ।
श्रीहरिको नाम जप ध्यान, सदा सुखदायीजी ॥

[१५६२]

(राग ईमन—ताल धुन)

श्रीराम भजे सब म्हारे घरका श्रीकृष्ण भजे प्यारा नणदोई ।
प्रभुने भज्यां सुख होय भारी, कष्ट कटे प्यारा नणदोई ॥

हिंसा त्याग करे म्हारा पतिदेव, व्रत अहिंसा पालो नणदोई।
झूठ बचन छोटे म्हारा पतिदेव, साच बचन बोलो नणदोई॥
चोरी नहीं करे म्हारा पतिदेव, छिपाव त्याग करो नणदोई।
ब्रह्मचर्य पालै म्हारा पतिदेव, शुक्र रक्षा करो नणदोई॥
संग्रह नहीं करे म्हारा पतिदेव, अपरिग्रह करो नणदोई।
शुद्ध रहेगा म्हारा पतिदेव, पवित्र रहो प्यारा नणदोई॥
तृष्णाने त्यागे म्हारा पतिदेव सन्तोष रखो प्यारा नणदोई।
व्रतादि तप करे म्हारा पतिदेव, माँ-बापकी सेवा करो नणदोई॥
जप स्वाध्याय करे म्हारा पतिदेव, रामनामको जप करो नणदोई।
हरि शरणागत म्हारा पतिदेव, प्रभु प्रणिधान करो नणदोई॥
यम और नियमको पालन करो, सदा सुख पावो प्यारा नणदोई॥

[१५६३]

(राग सोहनी—ताल रूपक)

अभ्युदय हो सभीका शुभ, सभीका सुविकास हो।
स्तेय, हिंसा, लोभ, मिथ्याचार, मदका नाश हो॥
मिटे शोक-विषाद-भय सब पूर्ण उर-उल्लास हो।
चेतनाचेतन सभीमें स्पष्ट ईश-प्रकाश हो॥
हों पवित्र विचार, शुभ आचार, सब ही भक्त हों।
युक्त सत्-चित् नित्यसे हों, कभी भी न विभक्त हों॥
ईश अभिमुख हृदय हो शुचि, ईश-सेवा कार्य हों।
कर्म सारे ईश-पूजाके लिये अनिवार्य हों॥

नोट—पद-संख्या १५७५ से १५७७—ये पद नमूनेके तौरपर रचयिताकी 'मारवाड़ी धार्मिक गीत'—पुस्तिकासे लिये गये हैं। यह पुस्तक गीताप्रेससे सं॰ १९९२ में समाज-सुधारके लिये मुद्रित हुई थी। स्थानके अभावमें सब पद नहीं लिये गये हैं।

[१५६४]

स्वात्म-समर्पण

(राग तोड़ी—ताल कहरवा)

शक्ति-प्रेरणा-स्फुरणा देकर, सब कुछ तुम करवाते, नाथ !
प्राणि-प्रकृतिकी प्रति चेष्टामें रहता सदा तुम्हारा हाथ ॥
उसी तुम्हारी पुण्य-प्रेरणाका ही यह भी है परिणाम।
वस्तु तुम्हारी तव चरणोंमें अर्पणकर, कर रहा प्रणाम ॥

[१५६५]

(राग देवगन्धार—तीन ताल)

प्रेरक तुम, प्रेरणा तुम्हारी, रस-रति-भाव तुम्हारे रूप।
करके तुम्हीं दिखाते, स्वयं लिखाते लीला तुम्हीं अनूप ॥
देते खोल भाव अनुपम, शब्दोंका शुचितम तुम भण्डार।
रचना तुम करवाते, सुनते तुम्हीं उसे फिर कर मनुहार ॥
विमल भाव-मुख निज दर्शनका यह अपना ही कृति-दर्पण।
ज्योति बढ़ाता सहज परस्पर, तुम्हें हो रहा है अर्पण ॥
भली-बुरी यह वस्तु तुम्हारी, तुम्हीं सर्वथा स्वामि अनन्य।
तुच्छ अबोध मलिन इस जनको बना निमित्त कर दिया धन्य ॥

——★——

‘पद-रत्नाकर’पर सम्माननीय विद्वानोंके विचार

(‘पद-रत्नाकर’के प्रथम संस्करणपर देशके बहुत-से आदरणीय विद्वान् महानुभावोंने अपने विचार लिखकर भेजे थे। उनमेंसे कुछ आंशिकरूपसे नमूनेके तौरपर नीचे दिये जा रहे हैं।—प्रकाशक)

परम आदरणीय श्रीप्रभुदत्तजी ब्रह्मचारी, झूँसी (प्रयाग)

××× पुण्यश्लोक भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार कविता करनेके लिये कविता नहीं करते थे। समय-समयपर उनके हृदयसे उद्गार प्रस्फुटित होते थे। उन्होंने कभी अपने नामसे उन कविताओंको छपाया भी नहीं। वे इधर-उधर स्फुटरूपसे बिखरी पड़ी थीं। उनके परलोक-गमनके पश्चात् गीताप्रेसके संचालकोंने यह बड़ा ही श्लाघनीय कार्य किया है कि उनकी इधर-उधर बिखरी समस्त कविताओंका संग्रह ‘पद-रत्नाकर’के नामसे प्रकाशित कर दिया है। भाईजीकी कविताएँ क्या हैं उनके हृदयोद्गार हैं, उनमें उनकी अन्तरात्माकी झलक दिखायी देती है। ‘पद-रत्नाकर’के प्रत्येक पद रत्नके सदृश हैं, वे पठनीय, स्मरणीय, श्रवणीय तथा मनन करनेयोग्य हैं। प्रायः विविध विषयोंपर उन्होंने पद लिखे हैं। ××× प्रत्येक घरमें यह ग्रन्थरत्न रखनेयोग्य है।

पूज्य श्रीडोंगरेजी महाराज

××× पूज्यवाद सद्गत भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार प्रभुके धामसे आये थे। अनेक जीवोंका जीवन सुधारनेके लिये श्रीकृष्ण-लीला-चिन्तन-रूप ‘पद-रत्नाकर’ प्रभुकी प्रेरणासे भगवद्भावभावित अन्तःकरणसे निकली हुई उनकी दिव्य वाणी अमृतरूप है। मैंने उसका अध्ययन किया और अपार आनन्दका अनुभव किया। उसी प्रकार साधक लोग ‘पद-रत्नाकर’का चिन्तन, पठन, मनन करके दिव्य आनन्दका अनुभव करेंगे, ऐसी श्रद्धा है।

प्रभुपाद प्राणकिशोर गोस्वामी

परमश्रद्धेय भाईजीकी स्मरणीय पद-रत्नावली एक अनोखी रचना है। × × × इस ग्रन्थके पाठ साधकोंके लिये त्याग, वैराग्य, ज्ञान और भक्तिके समन्वय साधनके लिये लोकातीत आदर्श हैं। इसीमें दास्य-भाव, विनय, प्रार्थना, शरणागतिके मार्गमें स्वाभाविक भावसे समाकृष्ट करनेके सिद्ध मन्त्र पाये जाते हैं। × × ×

याज्ञिक सम्राट् पं॰ श्रीवेणीरामजी शर्मा गौड, वेदाचार्य, काव्यतीर्थ, वाराणसी

परमश्रद्धेय श्रीयुत भाईजीका जीवन प्रारम्भसे ही साधनामय था। कार्य करते-करते उन्हें समाधि लग जाया करती थी, जो घण्टों बनी रहती थी। 'पद-रत्नाकर' ऐसे ही अधिकारी पुरुषके सरस हृदयका छलकता हुआ अवदान है। इस ग्रन्थके 'श्रीराधा-माधव-स्वरूप-माधुरी' एवं 'श्रीराधा-माधव-लीला-माधुरी' ये दो प्रकरण अद्भुत अनुभूतियोंसे भरे हैं। इनका वर्णन तो वही कर सकता है, जिसे भगवान्‌की दिव्य लीलामें प्रवेश प्राप्त हो। पुस्तकका कण-कण व्रजरसके आस्वादसे भरपूर है। इस कराल कालमें इस पुस्तकका प्रसार मिटती मानवताके लिये सञ्जीवनीका काम कर सकता है।

डॉ॰ विजयेन्द्र स्नातक, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

× × × मैं यह कल्पना नहीं कर सकता था कि भाईजी तीन भाषाओंपर समान अधिकार रखते हुए इतना उच्च भाव-पूर्ण साहित्य सृजन कर सकते थे। यह 'पद-रत्नाकर' एक श्रेष्ठ भक्त कविकी पूर्ण संवेदनशील अभिव्यक्तिकी द्योतक रचना है। मैंने हिन्दी साहित्यके भक्तिकालीन कवियोंकी रचनाएँ पढ़ी हैं, उनका विवेचन-विश्लेषण भी किया है, कुछ अनुसंधान भी किया है। मैं अपने अल्प ज्ञानके आधारपर कह सकता हूँ कि भाईजीका यह पद-साहित्य इस श्रेणीके कवियोंसे किसी भाँति कम नहीं है। वरन् इसकी विशेषता तो

भाषात्रयका एकत्र समाहार है। खड़ी बोलीमें इतना सरस, भावपूर्ण भक्ति-साहित्य मेरे देखनेमें नहीं आया है। × × ×

डॉ॰ रामकुमार वर्मा, भू॰ पू॰ हिंदी-प्रोफेसर, मास्को, (सोवियत-संघ) प्रयाग

'पद-रत्नाकर'की प्रति प्राप्त हुई। इस अनुपम रसानुभूतिके ग्रन्थको बार-बार पढ़कर संत सूरदासकी काव्य-मन्दाकिनीमें अवगाहनका आनन्द प्राप्त होता है। भाईजी कितने बड़े भक्त कवि थे—यह 'पद-रत्नाकर'को पढ़कर आज ही ज्ञान हो सका। × × ×

व्रज साहित्यके मर्मज्ञ डॉ॰ प्रभुदयाल मीतल, मथुरा

परमश्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारकी जीवन-व्यापी सारस्वत साधनाने इस जगत्‌के जीवोंका कितना कल्याण किया है, यह सर्वविदित है। किंतु उनकी साधना काव्य-क्षेत्रमें भी इतनी प्रशस्त थी, इसका ज्ञान अधिक व्यक्तियोंको नहीं है। मैंने श्रद्धेय भाईजीकी कुछ काव्य-कृतियोंका पहले रसास्वादन किया था, किंतु उन्होंने इतने विपुल परिमाणमें काव्य-रचना की थी, इसका परिज्ञान मुझे इस 'पद-रत्नाकर' ग्रन्थसे ही हुआ है। × × × इनका गायन एवं वाचन दिव्य वातावरणकी अवतारणा करनेमें समर्थ है। मुझे इनसे जो आनन्द प्राप्त हुआ है, उसका उल्लेख शब्दोंद्वारा करना सम्भव नहीं है। मैंने इसे श्रीभाईजीकी वाङ्मयीसाधनाके प्रसादरूपमें ग्रहण किया है। × × ×

═══ ★ ═══